पूर्ण संख्या—१७९ Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. **Reg No. A. 708.**

भाग ३१ VOL. 31. | मेष संवत् १९८७ | संख्या १ No. 1.

अप्रेल १९३०

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३१ | मेष, संवत् १९८७ | संख्या १

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द (२)

[ले० सत्यप्रकाश, एम. एस-सी, एफ. आई. सी. एस.]

हिन्दी साहित्यमें जबसे गद्य भागका विकास हुआ है तबसे ही लोगोंका साहित्यिक-दृष्टि-कोण विस्तृत होता जा रहा है। प्रारम्भिक समय में प्रेम सागर या नासिकेतोपाख्यानके समान पौराणिक आख्यायिकाओंसे भाषाका प्रवाह आरम्भ हुआ, फिर धीरे धीरे अन्य गम्भीर विषयों पर भी लेख और ग्रन्थ लिखे जाने लगे। पाश्चात्य सभ्यताके प्रवेशके साथ साथ ही साहित्य और विज्ञानके अन्य अंगोंकी ओर भी ध्यान आकर्षित हुआ। बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे पूर्व तक वस्तुतः हिन्दी भाषाका समस्त साहित्य धार्मिक, पौराणिक तथा दार्शनिक विषयोंका संग्रह ही था। जिन हिन्दुओंको अन्य विषयोंकी आवश्यकता पड़ती थी, वे तत्सम्बन्धी साहित्यको संस्कृतकी पुस्तकों द्वारा ही प्राप्त कर लेते थे। ज्योतिष, धर्म, गणित, और चिकित्सा एवं वैद्यक सम्बन्धी ग्रन्थ या तो संस्कृतमें ही पढ़े जाते थे, अथवा फार्सीकी पुस्तकोंके आधार पर भी ज्ञान प्राप्त किया जाता था। यदि प्रचलित भारतीय भाषामें किसी ग्रन्थ की रचनाकी भी जाती थी तो वह भी फारसी अथवा संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद अथवा टीका रूप ही थी। वस्तुतः संस्कृतिक साहित्यिकों की यह एक प्रकारकी विशेषता थी कि वे मौलिक ग्रन्थ कम लिखते थे, भाषा और टीकाओंके रूपमें ही उन्हें जो कुछ कहना होता था, कह डालते थे।

हम यहां यह नहीं कहना चाहते हैं कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका आरम्भ किस प्रकार हुआ, और फिर उसकी प्रगति किस प्रकार आगे बढ़ी।

वैज्ञानिक साहित्यके उत्कर्षमें पारिभाषिक शब्दोंका प्रश्न सर्वदा ही विकट रहा है। इसके सम्बन्धमें मतभेद भी बहुत रहते हैं। विज्ञानमें पारिभाषिक शब्दोंकी रचनाके विषयमें पहले भी कई बार लेख प्रकाशित हो चुके हैं और उन लेखोंमें प्रायः प्रत्येक दृष्टिसे ही इस विषयकी मीमांसा की जा चुकी है। लगभग बीस बरससे इस ओर काम हो रहा है। इस सम्बन्धमें विज्ञानमें प्रकाशित साहित्यकी सूची हम यहाँ दे रहे हैं।

१. हमारे पारिभाषिक शब्द—[ले० मुख्तार-सिंह, मेरठ] १९१६, ३, १०२

२. शरीर विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द—[डा० त्रिलोकीनाथ वर्माके 'हमारे शरीरकी रचना' नामक ग्रन्थमें प्रयुक्त शब्द,] १९१९, १०, ८४, १३७

३. चुम्बकीय परिभाषा—[प्रो० सालिगराम भार्गवकी चुम्बक' पुस्तकके शब्द] १९२०, ११, ६४

४. भारतीय भाषाओं में समान वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता और उनके बनानेके साधन—[श्री गुलाबराय और श्री सूर्य्यनारायण] १९२०, ११, १५०

५. हिन्दीमें विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द—[श्री सम्पूर्णानन्दजी] १९२०, ११, २०४

६. देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य—[श्री नवनिद्धिराय] १९२५, २१, ११

७. देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य—[श्री फूलदेवसहाय वर्मा] १९२५, २१, १३

८. तत्त्वोंके हिन्दी नाम—[डा० निहालकरण सेठी] १९२६, २२, १

९. तत्त्वोंका नामकरण—[श्रीरामचन्द्र भार्गव तथा सत्यप्रकाश] १९२६, २२, १६

१०. कार्बनिक रसायनकी पद सूची [सत्य-प्रकाश] १९२६, २३, ९७

११. वनस्पति विज्ञानके कुछ पारिभाषिक शब्द—[पं० शंकरराव जोशी] १९२९, २९, ५२

१२. भौतिक रसायनके पारिभाषिक शब्द—[सत्यप्रकाश] १९२९, ३०, ३७

१३. कुछ वैज्ञानिक शब्द [वासुदेव शरण अग्रवाल] १९३०, ३०, २८२

श्री नवनिद्धिरायजीने अपने लेखमें विज्ञान परिषद्की नीतिको इस प्रकार प्रकट किया था :—

"(१) पहले प्रयत्न यह किया जाता है कि भाषामें प्रचलित कोई शब्द ऐसा मिल जाय जो विदेशी वैज्ञानिक शब्दके भावको प्रकट कर सके।

(२) किसी उपयुक्त प्रचलित शब्दके न मिलने पर ऐसा शब्द ढूंढा जाता है जो है तो विदेशी, परन्तु किसी कारखानेमें कुछ विकृत रूपमें प्रचलित हो गया है। ऐसा शब्द मिलने पर यह उचित समझा जाता है कि इसका प्रयोग कर लिया जाय।

(३) इसके बाद विदेशी वैज्ञानिक शब्दके भावको प्रकट करनेवाला सरल संस्कृत शब्द निर्माण किया जाता है।

(४) संस्कृत शब्द निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि यह नया शब्द बहुत बड़ा, कठिन और दुरूह न हो, इसलिये यदि विदेशी शब्द छोटा सरल हमारी भाषामें घुल-मिल जानेवाला प्रतीत होता है तो जैसे का तैसा या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्त्तनके साथ इसका प्रयोग कर लिया जाता है।

(५) यह नीति नहीं रक्खी गई है कि सब अंग्रेजी शब्द जैसेके तैसे बिना किसी भी परिवर्त्तनके ले लिये जायँ, क्योंकि अनुभवसे यह प्रतीत हुआ है कि अपनी भाषासे कुछ सम्बन्ध रखनेवाला शब्द ज्यादा आसानीसे भाषामें मिल जाता है। यदि सब ही वैज्ञानिक शब्द विदेशी हों तो भाषा मधुर नहीं वरन कर्णकटु और ऊबड़-खाबड़ मालूम पड़ेगी।"

अंजुमन तरक्की उर्दू, औरंगाबादकी ओरसे जो फरहङ्ग इस्तलाहात इलमिया प्रकाशित हुआ है उसकी भूमिकामें अंजुमनके मन्त्री श्री अब्दुलहक़जी ने अपनी नीति इस प्रकार दी है :—

१—'इस्तलाहात इल्मियाके लिये उन सब ज़बानोंसे अलफ़ाज़ वज़ाकर सकते हैं जिनसे उर्दू ज़बान मुरक्कब है, यानी अरबी, फारसी, हिन्दी, तुरकी से बिला तकलीफ़ मदद ली जा सकती है।'

२—लफ़्ज़ दूसरी ज़बानके ले सकते हैं 'लेकिन इन अलफ़ाज़से इश्तक़ाक़ या तरकीबके ज़रियेसे जो दूसरे अलफ़ाज़ बनाये जायंगे वह उर्दू नह्वके क़ायदे के बमूजिब होंगे'। 'उनसे अफ़आल या सिफ़ात या मुरक्कब अलफ़ाज़' बनाये जायं तो वह अपनी भाषाके व्याकरणके अनुसार न कि जिस ज़बानके वे शब्द हैं।

३—'इस्तुलइमकान मुख्तसर अलफ़ाज़ वज़ा किये जायें।'

४—ज़रूरतके वक्त अपने या ग़ैर ज़बानोंके इस्मासे नये मसादिर या अफ़आल बनाये जायं जैसे बर्कसे बर्काना।

५—'जो इस्तलाहात क़दीमसे हमारे यहां रायज़ हैं और अब भी इसी तरह कारआमद हैं उन्हें बरक़रार रखा जाय और उनमें किसी किस्मकी तब्दीली' न की जाय।

६—'ऐसे अंग्रेज़ी इस्तलाही अलफ़ाज़ जो आमतौरसे रायज़ हो गये हैं या ऐसे लफ़्ज़ जिनके इश्तक़ाक़ मश्कूक़ हैं या ऐसी इस्तलाहें जो मौजूदों या तहक़ीक़ करने वालोंके नामपर रक्खी गई हैं उन्हें बदस्तूर' रखा जाय।

७—कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि अंग्रेज़ी के बहुतसे शब्द आधुनिक अनुसंधानोंकी दृष्टिमें भ्रमपूर्ण सिद्ध हो गये हैं। उन्हें आधुनिक विचारोंके अनुसार परिवर्तित भी कर दिया गया है।

काशीके कुछ विद्वान् अंग्रेज़ीके शब्दोंको ग्रहण करनेके विषयमें अन्तर्जातीयताकी कुछ युक्तियाँ अवश्य दे रहे हैं। श्री फूलदेव सहायजी वर्माने अपने एक लेखमें जो 'देश' में प्रकाशित हुआ था और बादको विज्ञानमें भी उद्धृत किया गया, अपने कुछ विचार इस प्रकार प्रकट किये थेः—

"दो ही मार्ग इसके लिये खुले हैं। एक तो संस्कृत और अर्बी शब्दोंसे वैज्ञानिक शब्द निर्माण किये जायं। इसमें दो मुख्य कठिनाइयां हैं। प्रथम सभी वैज्ञानिक शब्दोंके लिये संस्कृत और अर्बी शब्दोंका मिलना असम्भव है। फिर ये साधारण मनुष्योंके समझनेमें उतने ही कठिन होंगे जितने अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओंके शब्द। दूसरे, इससे होनेसे हिन्दी और उर्दूका भेद दिन दिन बढ़ता जायगा। राजनैतिक दृष्टिसे यह आवश्यक है कि इन दो भाषाओं की उन्नति ऐसे सिलसिलेसे हो कि अन्तमें दो लिपियोंमें लिखी हुई ये दोनों एकही भाषा बन जायं। संस्कृत और अरबीके प्रचारसे ऐसा नहीं हो सकता। इसमें शब्दोंका प्रचार साहित्य वृद्धिमें रुकावट ही नहीं उपस्थित करेगा वरन् राष्ट्रीयताके विचारसे देशके लिये हानि कारक भी होगा।

"दूसरा मार्ग अंग्रेज़ी शब्दोंको ही ज्योंका त्यों अथवा कुछ परिवर्तनोंके साथ देशी भाषाओंमें व्यवहार किये जानेका है। मैं आचार्य्य रामावतार शर्मासे सहमत नहीं हूँ कि अंग्रेज़ी शब्दोंको देशी पोशाक पहना कर (Newton) को नवतनु और (Cald well) को कद्‌बल बनाकर व्यवहार किया जाय। ऐसे शब्द न केवल देशी भाषाओंके जानने वालोंके समझनेमें कठिन होंगे किन्तु अंग्रेज़ी जानने वालोंके भी। फिर इससे क्या लाभ। अंग्रेज़ी शब्दोंके व्यवहारसे कुछ न कुछ अंग्रेजीका ज्ञान रखना आवश्यक होगा। अंग्रेज़ीका ज्ञान रखना कोई बुरा नहीं है। भारतमें अंग्रेज़ोंका शासन न रहने पर भी संसारसे वाणिज्य व्यवहार रखनेके लिये अंग्रेज़ीका ज्ञान भी अवश्य करना ही पड़ेगा। अंग्रेज़ी भाषा ही अवश्य ऐसी भाषा है जिसके सहारे मनुष्य सारी पृथ्वीकी सरलतासे परिक्रमा कर अपने मनके भावोंको हरदेशमें प्रकट कर सकता है। इससे अंग्रेज़ी शासन न रहने पर भी संसार से सम्बन्ध स्थापित रखनेके लिये अंग्रेज़ी भाषाका ज्ञान अवश्य रखना पड़ेगा। दूसरे अंग्रेजी शब्दोंके

प्रयोगसे अन्यान्य यूरोपीय भाषाओंकी वैज्ञानिक पुस्तकोंके अध्ययनमें भी सुभीता होगा। इससे देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी अवश्य ही बड़ी शीघ्रतासे वृद्धि होगी।"

तत्वोंके हिन्दी नाम सम्बन्धी लेखमें डा० निहालकरण सेठीने भाषाको उदारताका पाठ पढ़ाते हुए यह लिखा था कि "जब हम दूसरी भाषाओंकी ओर दृष्टि डालते हैं तब ज्ञात होता है कि मृत भाषाओंको छोड़कर संसारकी कोई भी जीवित भाषा ऐसी नहीं है जिसने सहर्ष अन्य भाषाओंके शब्दोंको ग्रहण कर अपना भंडार परिवर्धित न किया हो। स्वयं अंगरेज़ी भाषामें लैटिन और ग्रीक को छोड़कर 'संस्कृत, अरबी, हिन्दी, आदि अनेक भाषाओंके शब्द विद्यमान हैं और नित्य प्रति उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है।"

"इस प्रश्नके साथ देश और जातिका अभिमान मिलाकर भाषाको ज्योंकी त्यों बनाये रखना कदापि उचित नहीं हो सकता। वह स्वदेश प्रेम झूठा है और वह जात्यभिमान मिथ्या है। उसके कारण हमारी उन्नतिमें बाधा होती है और हमें पग-पग पर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।"

"परन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्तों और आविष्कारों को व्यक्त करनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके लिये तो यह और भी आवश्यक जान पड़ता है कि वे शब्द ज्योंके त्यों हिन्दी भाषामें सम्मिलित कर लिये जावें। इसका एक विशेष कारण है। ये किसी ख़ास भाषाके शब्द नहीं हैं। इन पर किसी भी जातिका कोई विशेष अधिकार नहीं है। इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका और यहां तक कि जापान में भी सर्वत्र इन्हीं शब्दोंका प्रयोग होता है। ये शब्द अन्तर्जातीय हैं। इनके प्रयोगसे किसी भाषा-का अपमान नहीं समझा जाता और न किसीके स्वाभिमानमें किसी प्रकारका फर्क आता है।"

"एक बात और भी विचारने की है। ये पारि-भाषिक शब्द ऐसे हो नहीं सकते जो साधारण बोल चालमें प्रचलित हों। अवश्य ही ये शब्द नये बनाये जावेंगे। तब स्पष्ट है कि चाहे संस्कृतकी सहायतासे बनाये जावें अथवा अंग्रेज़ी भाषासे लिये जावें, सीखनेवालोंके लिये दोनों दशाओंमें उतनी ही कठिनाई है। संस्कृत जात शब्दोंके सीखनेमें कोई विशेष सुभीता नहीं।" "और जो बात तत्त्वोंके नामके लिये ठीक है वही बात और भी अनेक वैज्ञानिक शब्दोंके लिये भी उतनी ही सत्य है।" "और जब प्रारम्भिक विज्ञानसे आगे बढ़कर कोई उच्च विज्ञानका अध्ययन करेगा और स्वयं भी वैज्ञानिक उन्नतिमें भाग लेनेकी इच्छा करेगा। तब तो इन अन्तर्जातीय शब्दोंको सीखना ही पड़ेगा। क्योंकि बिना इनकी सहायताके संसारके अन्य किसी देशकी पत्रिकाओंका पढ़ना असम्भव है। अतः अन्तमें प्रत्येक व्यक्तिको दोनों ही प्रकारके शब्द सीखने पड़ेंगे। इससे लाभ क्या हुआ?"

श्री फूलदेव सहायजीने अपनी प्रारम्भिक रसा-यन नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि "तत्त्वों और यौगिकोंके नाम और सूत्रोंके सम्बन्धमें लेखक ने उचित समझा है कि अन्तर्राष्ट्रीय नाम और संकेत ही प्रयुक्त हों। जो तत्त्व इस देशमें पहलेसे मालूम हैं और जिनके संस्कृत या हिन्दी नाम मिलते हैं वे तो वैसे ही रखे गये हैं किन्तु जो तत्त्व इस देशमें ज्ञात नहीं थे और जिनके पर्य्यायवाची शब्द संस्कृत या हिन्दीमें नहीं हैं, उन्हें तोड़ मरोड़कर हिन्दीका रूप देना जैसा कुछ लोगों ने किया है, लेखक ने उचित नहीं समझा है, वरन् ज्योंका त्यों उनको वास्तविक रूपमें ही दिया है। संकेतों और सूत्रोंके सम्बन्धमें लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय संकेतों और सूत्रोंका ही प्रयोग उचित समझा है।"

इन सब अवतरणोंसे स्पष्ट पता चलता है कि इस समय जिन युक्तियोंके आधार पर अंग्रेज़ी के शब्दोंके प्रयोगकी अनुमति दी जा रही है वे संक्षेपतः निम्न हैं :—

(१) यह असम्भव है कि सम्पूर्ण वैज्ञानिक शब्दोंके लिये उपयुक्त हिन्दी अथवा संस्कृत-जात-हिन्दी शब्द मिल जावें।

(२) संस्कृत के शब्दोंको अधिक अपनानेसे हिन्दी और उर्दूमें पारस्परिक विरोध बढ़ता ही जायगा जो नैतिक दृष्टिमें अहितकर होगा।

(३) अंग्रेज़ीके शब्द किसी एक भाषाकी सम्पत्ति नहीं हैं, ये अन्तर्जातीय हैं।

(४) अंग्रेज़ीका सर्वथा बहिष्कार स्वतंत्र भारतके लिये भी कल्याणकारी न होगा। व्यापारिक व्यवहारमें अंग्रेज़ीको अपनानाही होगा।

(५) उच्च विज्ञानके अध्ययनके लिये अन्य कई यूरोपीय भाषाओंका पढ़ना आवश्यकही होगा अतः यदि अंग्रेज़ीके शब्द अपना लिये जांय तो ऐसा करनेमें बड़ी सुविधा होगी।

(६) अंग्रेज़ीके शब्द अपनालेनेसे पारिभाषिक शब्द बनानेका प्रश्नही सर्वथा लुप्त हो जायगा। इस प्रकार शक्तिका व्यर्थ व्यय न होगा।

(७) ऐसा करनेसे भारतीय वैज्ञानिक साहित्यमें बहुतही शीघ्र वृद्धि हो सकेगी।

(८) इस सार्वभौमिक समस्यामें भारतीयताका मिथ्याभिमान न करना चाहिये, प्रत्युत प्रत्येक जीवित भाषाको उदार होना चाहिये।

इन प्रबल युक्तियोंमेंसे बहुतसोंकी मीमांसा लेखके (१) ले भागमें की जा चुकी है। अब हम इनमेंसे कुछ का उल्लेख यहां और करना चाहते हैं।

विशेषज्ञोंका प्रश्न

हिन्दीमें वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंकी आयोजना करते समय यह यत्न किया जाता है कि जहां तक हो प्रचलित शब्दोंका ग्रहण किया जावे। पर विज्ञानके विस्तृत क्षेत्रमें केवल इतनेसे काम नहीं चल सकता है। समस्त वैज्ञानिक विषय प्रचलित और सार्वजनिक हो भी नहीं सकते हैं। ऐसी अवस्थामें अप्रचलित शब्दोंका ही ग्रहण करना पड़ेगा। हमारे सहयोगियोंका कहना है कि जब नये शब्दही बनाये, तो फिर अंग्रेज़ी शब्दोंके ग्रहण कर लेनेमेंही कौनसा हर्ज़ है। जब लोगोंको नये शब्द सीखनेही पड़े, तो उनके लिये तो जैसे अंग्रेज़ी के, वैसेही संस्कृत-जात शब्द। यह ठीक है, जब नवजात शिशुको वर्णाक्षर सिखाकर भाषा सिखाने का प्रयत्न किया जाता है, तो उस बच्चेको जितनी कठिनाई हिन्दी सीखनेमें पड़ती है, उतनीही कठिनाई उसे अंग्रेज़ी या जर्मन सीखनेमें पड़ेगी। जब उसे नयी भाषाही सीखनी है तो उसके लिये जैसी हिन्दी, वैसी बंगाली, वैसीही जर्मन और वैसीही अंग्रेज़ी। जाने दीजिये, उसे हिन्दी पढ़ाकर क्या करेंगे, उसे सार्वभौमिक अंग्रेज़ीही क्यों न पढ़ा दीजिये, आखिर उसे उच्च शिक्षाके लिये अंगरेज़ी पढ़नी ही पड़ेगी। उच्च रिसर्चके कार्य्यके लिये जर्मन और फ्रैञ्चसे भी कुछ परिचय प्राप्त करना ही होगा। ऐसी अवस्थामें उसकी कठिनाइयां बिल्कुल हल हो जायंगी, यदि उसे अंग्रेज़ीही अंग्रेज़ी पढ़ाई जाय, अंग्रेजी लिखना बोलनाही नहीं, अंग्रेज़ीमें सोचना भी सिखाया जाय। उस नये बालकको अपनी युवावस्थामें विज्ञानके विस्तृत अध्ययनके लिये विलायत जाना ही होगा, वहाँ उसे विलायती कपड़े और विलायती प्रणालीका भोजन करना ही होगा। इस कामके लिये यदि आप बचपनसे ही अभ्यास करा दें तो फिर भविष्यकी कठिनाइयां दूर हो जायंगी। फिर तो आपको चाहिये कि अपने घरसे लोटा, गिलास, बेलना, चकरा, आदि सब फेंक कर तश्तरियां, रक़ाबियां, कांटे और छुरी ग्रहण कर लें।

पर ऐसा करने पर आप सहमत न होंगे। उच्च विज्ञानके अध्ययनका प्रश्न और अन्वेषणका कार्य्य प्रत्येक भारतीय विद्यार्थीका प्रश्न नहीं है, पर साधारण ग्रेजुयेट कक्षा तकके विज्ञानका अध्ययन अधिकांश विद्यार्थियों का प्रश्न है। विज्ञानके कई सौ विद्यार्थियोंमें से केवल तीन चार ही तो आगे जाकर अन्तर्जातीय विज्ञानमें भाग लेने का प्रयास करते हैं, और ज्यों ज्यों विज्ञानका प्रचार बढ़ता जायगा, साधारण वैज्ञानिक शिक्षा पाने वालोंकी संख्या ही अधिक बढ़ेगी और अत्युच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी एक सहस्रमें एक भी न

होंगे। तात्पर्य यह है कि बी० एस-सी० आनर्स के स्टैण्डर्ड तक का विज्ञान तो सार्वजनिक विज्ञान समझना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि क्या अधिकांश जनताकी सुविधा कुछ थोड़ेसे इने गिने विशेषज्ञोंके लिये ताक पर रख दी जाय। साधारण विद्यार्थियोंको तो इस उच्च विज्ञानका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं आता है, फिर उन्हें निजी भाषा के पदोंमें ही क्यों न शिक्षा दी जाय। विशेषज्ञोंकी बात ही विचित्र है, उनके लिये तो आप किस किस बातकी चिन्ता करेंगे। अभी क्या है, हमारे भविष्यके विशेषज्ञ तो प्राणीमात्रके रहस्योंके उद्घाटनके लिये जानवरोंकी बोलियोंके अध्ययन में ही अपना जीवन बिता देंगे। उनकी सुविधा के लिये आप अपने स्कूल और कालेजोंमें कौन कौन सी भाषा आरम्भ से सिखावेंगे। पुरातत्वके अध्ययन करने वाले विशेषज्ञ पुराने शिलालेखोंके विन्यासमें अपना समर्पण करना चाहेंगे। ऐसी परिस्थिति में, उन्हें यदि आरम्भसे देवनागरी लिपि न सिखा कर बौद्ध कालीन लिपि ही पढ़ाई जाती तो शायद उनका बहुत सा समय बच जाता और परिश्रम भी कम पड़ता। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि विज्ञानके विशेषज्ञोंकी सुविधाके लिये अन्तर्जातीय योजनाकी युक्ति देना न केवल भ्रममूलक ही है, प्रत्युत भयङ्कर भी है। विशेषज्ञ होना बुरा नहीं है, देशको अनेक विशेषज्ञोंकी आवश्यकता भी है पर सामान्य जनताकी आवश्यकतायें और उनकी आवश्यकतायें भिन्न भिन्न हैं। इस विचारसे अपनी भाषामें और अपनी ही भाषाके निकटतम पारिभाषिक शब्दोंमें शिक्षा देना सामान्य जनताके लिये श्रेयस्कर होगा। विशेषज्ञोंके लिये थोड़ा सा अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। हमारा तो यह प्रयत्न होना चाहिये कि अपनी अन्वेषण सम्बन्धी पत्रिकायें भी भविष्यमें अपनी ही भाषामें निकालनेकी चेष्टा करें। सचमुच यदि स्वतन्त्र भारत में भारतीय भाषाओंका उत्कर्ष अधिक बढ़गया तो ऐसा होना असम्भव भी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हम अन्य भाषाओंमें प्रकाशित लेखोंके सारांश और संक्षेप (Abstracts) भी अपनी ही भाषायें प्रकाशित करेंगे।

विशेषज्ञोंका प्रश्न कोई कठिन प्रश्न नहीं है। भविष्यमें हम क्या करेंगे, आइये, इसका कुछ स्वप्न देखा जाय। एम० एस-सी० परीक्षाओं तथा सामान्य रुचिके विषयोंके पाठ्य ग्रन्थ आवश्यकतानुसार सभी हिन्दीमें आसानीसे बन सकते हैं। यदि माँग हो तो ऐसे ग्रन्थोंके बननेमें दस वर्ष समुचित हैं। यदि इस कक्षा तकके ग्रन्थ बना लिये जांय तो हमारे पास पारिभाषिक शब्दोंका इतना भंडार हो जायगा कि फिर आगे नये पारिभाषिक शब्द बनानेकी बहुतही कम आवश्यकता रहेगी। विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नति होने पर भी नये शब्द बहुतही कम बनते हैं, अतः एक बार काम पूर्ण होने पर हमें संसारकी प्रगतिके साथ रहनेमें अधिक कठिनाई नहीं होगी। इतना होनेके बाद हम अपने लेखोंको अन्य देशोंमें प्रचलित करानेके लिये और अन्य देशोंके ज्ञानको अपने देशको भेंट करनेके लिये एक समितिकी आयोजना करेंगे जिसमें बहुभाषाविज्ञ होंगे। ये विचारोंके पारस्परिक विनिमयके लिये कई भाषाओंमें—अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रैश्च, इटेलियन, जापानी आदिमें—हमारे लेखोंके संक्षेप प्रकाशित करेंगे, और विदेशोंके लेखोंका संक्षेप भी हमारी भाषामें प्रकाशित किया जायगा। अर्थात् अंग्रेज़ीमें केमिकल सोसाइटीके Abstracts और जर्मनमें 'Chemisches-Zentral-blatt' जिस रीतिका अनुसरण करते हैं, उसका ही हम भी करेंगे। यदि यूरोपके छोटे छोटे देश इस प्रकारकी योजनायें कर सकते हैं, तो कोई कारण नहीं, कि इतना बड़ा भारतवर्ष इस प्रकारका कार्य्य क्यों नहीं कर सकेगा। हमारा तो यह विश्वास है, कि यदि भारत स्वतंत्र हो जावे, यहाँ औद्योगिक व्यवसाय भी बढ़ने लगे और हमें अपनी आवश्यकताओं के लिये विदेशी कारखानोंका मुँह न ताकना पड़े तो हमारे देशमें विज्ञानकी उन्नति अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक वेगसे ही होगी। क्या इस बात

का आप स्वप्न नहीं देख सकते हैं कि आज जिस विज्ञानको आप यूरोपीय या पाश्चात्य विज्ञान कह रहे हैं, वह भविष्यमें भारतीय विज्ञान भी कहा जावेगा। आज जैसे आप अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेञ्च आदि सीखना अनिवार्य्य समझ रहे हैं, एक समय वह आवेगा जब अन्य देश वाले आपकी भाषाको भी सीखना अत्यावश्यक समझेंगे। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह स्वप्न किसी दिन ठीक निकलेगा। कमसे कम हमें आशा ऐसी ही करनी चाहिये।

संस्कृत शब्दोंकी योग्यता

कुछ लोगोंका कहना है कि न तो ठेठ हिन्दी के शब्द ही सब पारिभाषिक शब्द बना सकते हैं और न संस्कृत शब्दोंकी सहायतासे ही यह कार्य्य हो सकता है। ऐसी अवस्था में यूरोपीय शब्दोंके ग्रहण कर लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यह ठीक है कि पारिभाषिक शब्दोंकी रचनाका कार्य्य कठिन तो अवश्य है, पर यह असम्भव नहीं है। इसके सम्बन्ध में हमारी नीति इस प्रकार रहनी चाहिए :—

१ पहले ठेठ शब्दोंका प्रयोग।

२ उसके पश्चात् संस्कृतजात शब्दोंका प्रयोग

३ अन्य भारतीय भाषाओंके ठेठ शब्दोंका प्रयोग।

४ यथा सम्भव अति प्रचलित फार्सी, अर्बी शब्दोंका ग्रहण।

५ वे अंग्रेज़ी शब्द जो इस समय तक साहित्यमें साधारणतः प्रचलितहो चुके हैं, उच्चारण आदि की सुविधाके भेदके साथ।

६ वे यूरोपीय नाम जो व्यापारमें पेटेण्ट्सके रूपमें उपस्थित हैं।

संस्कृत भाषाकी सहायतासे जो नये शब्द ग्रहण किये जावेंगे, वे कहीं कहीं तो संस्कृतके व्याकरणके नियमोंके अनुसार होंगे, कहीं हिन्दी के व्याकरणके अनुसार और कभी कभी दोनोंकी व्याकरणोंका उल्लंघन करना होगा। संस्कृतके प्रत्यय और उपसर्ग न केवल संस्कृत शब्दोंमेंही लगाये जावेंगे प्रत्युत ठेठ और अन्य भाषाओंके शब्दोंमें। उदाहरणतः घुलना या घोलना ठेठ शब्द है पर इसमें संस्कृत नियमोंका प्रयोग करके घोलक, घुलनशीलता, घोल, आदि शब्द बनाये जावेंगे। कुछ पदान्तोंमें यूरोपियन शब्दोंकी पद्धति का भी अनुसरण किया जावेगा। जैसे सल्फेटके लिये गन्धेत, सल्फाइडके लिये गन्धिद, सल्फाइटके लिये गन्धित आदि। तात्पर्य्य यह है कि किसी ख़ास व्याकरणके नियमोंका प्रयोग करना अनिवार्य्य नहीं होगा। जहाँ जैसी सुविधा समझी जावेगी, शब्द बनाये जावेंगे। शब्दोंके सरल और सुवाच्य होनेका यथाशक्ति ध्यान रखा जावेगा। इतनी उदारता रखने पर यह शंका करना कि समस्त वैज्ञानिक शब्दोंके लिये हिन्दी-संस्कृत-जात पर्य्याय शब्द नहीं बनाये जा सकेंगे, केवल भ्रमही है। पारिभाषिक Technical शब्द बनानेमें संस्कृतवाले सदासे ही तेज़ रहे हैं। जहाँ अलंकार, रस, नायिकाभेद आदिमें सैकड़ों उपयुक्त शब्दोंको जन्म दे दिया गया हो, जहाँ सैकड़ों प्रकारके छन्दोंके पृथक् पृथक् नाम दे दिये गये हों, जहाँ अस्त्र शस्त्र, मिठाई और पकवानोंके लिये अनेक नाम, घोड़ोंकी जातियों के अनेक शब्द और जड़ी बूटियोंके सहस्रों नाम विद्यमान हों, वहाँ इस बातमें शंका करना कि यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दोंके पर्य्यायवाची न बन सकेंगे, केवल उपहासास्पद होगा। वस्तुतः संस्कृतभाषा तो वैसे ही कामधेनु थी, और यदि उसके साथ ठेठ भाषाके नियमोंको भी सम्मिलित कर लिया जाय तो फिर हमें पारिभाषिक शब्दोंके बनानेमें अधिक कठिनाई नहीं होगी।

व्यापारिक शब्द

वैज्ञानिक साहित्यमें जहाँ वैज्ञानिक तात्विक शब्दोंका प्रयोग होता है, वहाँ कुछ ऐसे शब्दोंका भी व्यवहार होता है जिन्हें हम व्यापारिक शब्द कह सकते हैं। कुछ उदाहरण हम यहाँ देते हैं—

वैज्ञानिक नाम	व्यापारिक नाम
Copper Sulphate, ताम्रगन्धेत	Blue vitriol तूतिया
Ferrous Sulphate, लोह गन्धेत	Green vitriol, कसीस
Silver nitrate, रजत नोषेत	Lunar caustic,
Mercurous chloride, पारदस हरिद्	Calomel,
Potassium Nitrate, पांशुज नोषेत	Nitre, शोरा
Sodium borate, सैन्धकटंकेत	Borax, सुहागा

इसी प्रकार अनेक रगों और ओषधियोंके नाम हैं। सैलवर्सन ओषधिका रासायनिक नाम द्विश्र-मिनोद्वि उदौष-संक्षीण बानजावीन उदहरिद् है, इसी प्रकार सैलोल, एस्पिरिन, टोलेमिन आदि अनेक ओषधियाँ हैं। रंगोंके व्यापारिक नाम सूडान, फास्टब्राउन, कांगोरेड, प्रिमुलिन आदि हैं। अब प्रश्न यह है कि इन पेटेण्ट नामों का अनुवाद करना भी आवश्यक है या नहीं। वस्तुतः ये व्यापारिक नाम एक प्रकारसे व्यक्ति वाचक संज्ञा समझने चाहिये। ऐसी अवस्थामें इनका क्या करना चाहिये, यह एक प्रश्न है।

पहले रंगोंकी समस्या लीजिये। कल्पना कीजिये कि भारत वर्षमें अंग्रेजीका प्रचार सर्वथा लुप्त हो गया है, ऐसी अवस्थामें यदि कोई व्यापारी अपने रंग बेचना चाहेगा तो वह red, yellow, brown, green, blue आदि शब्दोंका व्यवहार करके अपने पदार्थ भारतीय जनतामें नहीं बेच सकता है, ऐसी परिस्थितिमें उसे 'congo-red' को लालकांगो कहना पड़ेगा न कि कांगो-रेड, यद्यपि पूरा 'कांगोरेड' नाम पेटेण्ट है पर तब भी कमसे कम उसके आधेनामका अनुवाद करनाही पड़ेगा। जर्मनी देश वालेभी इसे congo-red न कहकर Kongo rot, इसी प्रकार Anilin-rot आदि शब्दका व्यवहार करते हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि यद्यपि पेटेण्ट व्यापारिक नामोंके सर्वथा अनुवाद करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं है, पर सुविधाके लिये यदि कुछ परिवर्तन कर दिया जाय तो कोई हानि भी नहीं है। यहाँ एक बातका ध्यान रखना चाहिये। यदि हमने वैज्ञानिक भारतीय नामोंका ग्रहण किया तो विदेशके व्यापारी भी उन पदार्थों को हमारे देशमें हमारे दिये गये नामोंके साथ ही बेचेंगे। उनका उद्देश्य तो व्यापार ही है अतः यह कोई आवश्यक नहीं है कि किसी वस्तुका जो पेटेण्ट नाम यूरोपमें हो वही भारतवर्षमें भी हो, आजकल भी बहुत सी बोतलों पर आप दो-दो नाम लिखे पावेंगे, अंग्रेज़ी और जर्मन के। रासायनिक प्रयोगशालामें जिन पदार्थों का उपयोग होता है, उनकी अनेक बोतलों पर आप ऐसा ही पावेंगे। व्यापारी लोग तो जनताकी सुविधाका ध्यान पहले रखते हैं, और शेष बातोंका बाद को। यदि भारत-वासी 'खद्दर' पसन्द करता है तो लंकाशायर और जापानसे 'खद्दर' नामसे ही मोटा कपड़ा आपके देश में भेज दिया जाता है। गान्धी दियासलाई और गान्धी-सिगरेट भी तो विदेशसे बनकर हमारे देशमें आ गई हैं। अतः यदि हम वैज्ञानिक यन्त्रों और रासायनिक द्रव्योंको भारतीय नाम-से पुकारना स्वीकार करेंगे तो कोई कारण नहीं है कि पाश्चात्य व्यापारी भी हमारे देशके लिये इन नामोंको न स्वीकार कर लें। बोतलों पर सल्फूरिक एसिडकी जगह गन्धकाम्ल और पोटा-शियम आक्ज़ेलेटकी जगह पांशुज काष्ठेत लिखकर हमारे देशमें भेजना उनके लिये कौनसी कठिन बात है। पर आपत्ति तो यह है कि हमें अपनेमें स्वयं विश्वास नहीं है, हम स्वयं अपने शब्दोंको स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है। जब हम स्वयं अपने लिये चिन्ता नहीं कर सकते हैं, तो फिर दूसरे हमारी क्यों परवाह करेंगे !!

वैज्ञानिक साहित्यकी प्रगति

कुछ लोगोंका यह विचार है कि नये पारिभाषिक बनानेके कारण भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिकसाहित्यकी प्रगति बहुत धीमी है। उनका कहना यह है कि यदि नये शब्द न बनाये जावें और केवल योरोपीय शब्दोंका ही व्यवहार कर लिया जाय तो ग्रन्थ-रचनामें बड़ी सरलता होगी, और विज्ञान सम्बन्धी साहित्य बहुत शीघ्र ही उन्नत हो सकेगा। यह विचार साधारण दृष्टिसे तो बहुत कुछ ठीक मालूम पड़ता है पर वास्तविक बात यह नहीं है। हम कह चुके हैं कि अंग्रेज़ीके वैज्ञानिक पद यूरोपमें ही सर्वथा अन्तर्जातीय नहीं है, और न इतने विदेशी शब्दोंको ही कोई भारतीय भाषा अपने अन्दर जज़्ब कर सकती है, और इसलिये इस प्रकारके प्रयत्नसे भाषाकी सरलता, सुगमता और स्वाभाविकता नष्ट होकर कुरूप बननेकी अधिक सम्भावना है। ऐसा न भी हो तो भी वैज्ञानिक साहित्यकी प्रगति से और पारिभाषिक शब्दोंसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। विचार पूर्वक देखा जाय तो पारिभाषिक शब्द हमारे मार्गमें इतने बाधक नहीं है, जितने कि अन्य कारण। यदि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य अधिक नहीं है तो इसका कारण केवल यही है कि इसकी मांग नहीं है। शिक्षाका माध्यम कितने वर्षोंसे अंग्रेज़ी ही है, तो फिर ऐसी अवस्थामें कोई लेखक भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखेगा ही क्यों और कोई व्यापारी प्रकाशक इन ग्रन्थोंके छपवानेमें अपना धन खतरेमें डालेगा ही क्यों! राजा और प्रजा दोनों ही इस ओर उदासीन हैं। यदि अभी यह घोषणा कर दी जाय कि ५ वर्ष पश्चात् सम्पूर्ण विश्वविद्यालयोंमें पुस्तकें हिन्दीमें पढ़ाई जावेंगी, तो न केवल आपके देशी प्रकाशक प्रत्युत यही विलायतके मैकमिलन, लांगमैन, औक्सफोर्ड प्रेस आदि वाले इतने थोड़े समयमें ही आपको हिन्दी भाषामें एम० एस-सी० तकके ग्रन्थ तैयार करके दिखा देंगे। वे तो शुद्ध व्यापारी हैं, आपकी जैसी मांग होगी, उसको वैसा ही वे पूरा करेंगे। अभी कुछ दिन हुए मैट्रिकुलेशन कक्षामें इतिहास और भूगोल अंग्रेज़ीमें पढ़ाये जाते थे। जब हिन्दी माध्यम करनेका विचार प्रस्तुत किया गया तो उपयुक्त पुस्तकोंके अभावकी युक्ति विरोधमें दी जाने लगी। पर यह सभी जानते हैं कि वर्नाक्युलर माध्यमकी घोषणा करते देर न हुई, विदेशी और देशी, सभी प्रकारके प्रकाशकोंकी ओरसे एकसे एक अच्छी पुस्तकें निकलनी आरम्भ हो गईं। अतः यह स्पष्ट है कि साहित्यकी प्रगति मांगके अनुसारही बढ़ती है। बेचारे लेखक निस्स्वार्थ सेवा कब तक करेंगे और उदार प्रकाशक कब तक ऐसी पुस्तकोंमें घाटा सह सकेंगे। यदि हमें दृढ़ता पूर्वक विश्वास हो जाय कि हम भविष्यमें अपनी भाषाको ही शिक्षाका माध्यम उच्चतम कक्षाओं तक बनावेंगे और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द भी युक्ति-पूर्वक देशीही रखेंगे तो वैज्ञानिक साहित्यके बनने में देर कौनसी लगती है। पर खेद तो यही है कि हमें न तो अपने ऊपर विश्वासही है और न हमें इस प्रकारके विश्वास रखनेकी स्वतंत्रता ही है। हमारा यह अनुभव है कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका बनाना अधिक कठिन नहीं है, और साहित्यकी प्रगतिमें पारिभाषिक शब्द बाधक नहीं है। बाधक है हमारी परतन्त्रता और विश्वासहीनता।

भाषा की कुरूपता

यह होते हुए भी कि अंग्रेज़ीके शब्द सर्वथा अन्तर्जातीय नहीं है, यदि हम इन्हें ज्योंका त्यों अपना लें, तो ऐसी अवस्थामें जो हमारी भाषा बनेगी वह विचित्र ही हो जायगी। हम इसे स्पष्ट करनेके लिये केवल दो अवतरण ही यहां देना समुचित समझते हैं। नीचे के अवतरणमें वैज्ञानिक शब्द ज्योंके त्यों बिना अनुवाद किये हुए रखे गये हैं :—

(१) "सोडियम कार्बोनेट या हाइड्राजन कार्बोनेटकी उपस्थिति तथा अनुपस्थितिमें जलीय सोडियम क्लोरेट और ओस्मियम टेट्रक्साइडके साथ औक्सी-

डेशन किया गया। क्रोटोनिक एसिडसे औक्ज़ेलिक और डाइहाइड्रौक्सी ब्यूटरिक एसिड मिला। सिनेमिक एसिडसे फिनाइल ग्लिसरिक एसिड, बेंज़लडीहाइड और स्टाइरीनके समान गन्ध वाला एक द्रव मिला।"

(२) "कुछ फ्लोरोसीन पदार्थोंके जल और अनेक एलकोहलोंमें सल्यूशनोंकी विस्कोसिटी और डिफ्यूज़नकोएफिशएट निकाले गये हैं। डिफ्यूज़न कोएफिशएट निकालनेके लिये एक विशेष प्रकार का माइक्रोकलरीमीटर बनाया गया है। आइंस्टाइनके सिद्धान्तके अनुसार परिणामोंकी विवेचना की गई है जिससे पता चलता है कि बड़े सैल्यूट मोलिक्यूलोंके सरफेस पर सौल्वेएटकी ऐडसोर्बड-लेयर बन जाती है। जितने भी सौल्वेएटों की जांच की गई है, उन सबमें यह लेयर अधिकतर यूनी मैलिक्यूलर है, यद्यपि एडसोर्पशनकी मात्रा सौलवैएट और सौल्यूटके एलेक्ट्रिक गुणोंपर भी कुछ कुछ निर्भर है। फ्लोरेसीनके क्षारीय घोलोंमें हाइड्रोक्सील आयनोंकी लेयर एडसोर्ब हो जाती है, और ऐसी अवस्था में साल्वेएट का एडसोर्पशन रुक जाता है।"

अब प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकारकी भाषासे हमारे हिन्दी प्रेमियोंको सन्तोष हो सकता है, और क्या वे इस को भाषाकी कुरूपता न कहेंगे। हम समझते हैं कि इस प्रकारकी भाषासे अधिक कल्याणकी आशा नहीं की जा सकती है। यदि रासायनिक नामोंको अंग्रेज़ी बना रहने दिया तो कोई कारण नहीं है कि भौतिक पद भी अंग्रेज़ीही क्यों न बने रहें, और ऐसी परिस्थितिमें भाषा इतनी विकृत हो जायगी जिसका कुछ नहीं कहा जा सकता है।

हिन्दी उर्दू का बैर

सामान्यतः लोगोंका यह विचार है कि राजनैतिक परिस्थितिकी दृष्टिसे हिन्दी और उर्दूका वैर बहुतही हानिकर है। यह बात कुछ अंशमें ठीक भी है। पर यह समस्या इतनी विचित्र है कि जितना इसको सुलझानेका यत्न किया जाता है उतनी ही यह और उलझती जाती है। इस प्रश्नको चुपचाप रहने दीजिये और छेड़िये नहीं तो यह अवश्य शान्त हो जायगी। यह दूसरी बात है कि दोनों भाषायें मिलकर एक न हो सकेंगी पर जहां भारतवर्ष में इतनी और भाषायें हैं, वहाँ एक और भी बनी रही तो आपत्तिही क्या है? जिस प्रकार यह कभी प्रयत्न नहीं किया गया कि हिन्दी और मराठी या गुजराती सब एकही हो जायं, उसी प्रकार इन्हें भी पृथक् रहने दीजिये। जैसा पहिले लेखमें कहा जा चुका है कि हिन्दी और उर्दू वस्तुतः दो भाषायें नहीं हैं, और इन दोनों का मुख्य अन्तर पृथक्-पृथक् लिपियोंके होनेके कारण ही है। जब तक लिपि एक नहीं हो जाती है तब तक दोनोंके सहयोगकी याद दिलाना भी हानिकर है।

पर यह युक्ति तो हमारी समझमें आती ही नहीं है कि यदि संस्कृत जात पारिभाषिक शब्द हिन्दीमें और फारसी-अरबी-जात शब्द उर्दूमें बनानेसे दोनों भाषाओंका वैर और अधिक बढ़ सकता है तो इसका समाधान अंग्रेज़ोंके शब्दोंको ग्रहण करनेसे हो जायगा। यह युक्ति तो इसी प्रकारकी है कि यदि स्वतन्त्र भारतमें राष्ट्रपति कोई हिन्दू हो जायगा तो मुसलमान लोग लड़ पड़ेंगे और यदि मुसलमान होगा तो हिन्दू लड़ पड़ेंगे, अतः न हिन्दू हों, न मुसलमान, और दोनोंकी जगह किसी अंग्रेज़ को राष्ट्राधिपति बना दिया जाय। आपसके झगड़े को किसी तीसरी सत्ता द्वारा निबटाना बन्दर और बिल्लियोंवाले न्यायसे कुछ कम शोचनीय न होगा।

वस्तुतः हम तो अन्तर्देशीय युक्तिके आधारपर संस्कृत जात-शब्दोंका ग्रहण कर रहे हैं जो राष्ट्रीय परिस्थितिके अनुकूल है, आवश्यकता पड़ने पर कुछ फार्सी शब्द भी ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि यूरोपीय भाषाओंकी अपेक्षा वे हमसे निकटतम हैं, पर हम

दोनोंके विरोधके कारण अपना न्याय तीसरी सत्ता-से नहीं करा सकते हैं। इससे तो अच्छा है, कि हम आपसमें ही निपट लेंगे। वस्तुतः हमारा उद्देश्य तो हिन्दी और उर्दूके झगड़ेको छेड़ना ही नहीं है क्योंकि जब तक दोनोंकी एक लिपि न होगी, इस मर्ज़का कोई इलाज नहीं है।

सृष्टिके चमत्कार

[लेखकः—श्री वा० वि० भागवत, एम. एस-सी.]

"अति परिचयात् अवज्ञा" इस न्यायसे किसी विषयका अधिक परिचय प्राप्त होनेसे वह विषय नीरस हो जाता है। बच्चेने स्लेटपर आमका चित्र खींचा या शेरकी नक़ल की तो हम उसकी वाह ! वाह ! कह कर प्रसंशा करते हैं। लेकिन जिस सृष्टिमें ऐसे चित्र एकबार नहीं, सदा ही बना करते हैं उसकी प्रशंसा कौन करता है ? कोई भी नहीं। क्या उनको सृष्टिमें कुछ भी आश्चर्यकारक और नया नहीं मालूम होता !

बेलके तीन ही पत्ते होते हैं। आमके वृक्षमें लगे हुए आम यदि छोटे बड़े हों तो भी एकही आकारके होते हैं। उनमें कितना साद्रश्य है ? यदि आप सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे उसकी परीक्षा करें तो भी कुछ भेद मालूम नहीं होता। शंख, कौड़ी, शिंपल, फूल, पान, जानवरोंके सींग, अस्थि-रचना, इत्यादि सब चीजें कितनी कुशलतासे बनायी गई हैं। हर एककी रचना बिलकुल शास्त्र-शुद्ध है।

सुई, या पिनकी नोंक बिलकुल बारीक होती है। शास्त्रीय यंत्रसे बनाये जानेके कारण उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। लेकिन यह पिन या सुई मधु-मक्खी या बिच्छूके सूक्ष्म डंककी बराबरी कभी नहीं कर सकती है। दोनोंको यदि सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे देखा जाय तो तुरन्त ही सृष्टि निर्मित और मनुष्य निर्मित पदार्थोंका अन्तर मालूम हो जायगा।

जानवरोंके तथा फूल पत्तोंके रंग बनानेमें तो सृष्टिने अपनी चतुराईकी पराकाष्ठा दिखादी है। सिंहका रंग ऐसा बनाया है कि जंगलमें वह ध्यान में ही न आये। बहुतसे पक्षियोंका रंग ऐसा होता है कि सूक्ष्मतासे देखते हुए भी वे वृक्षों पर दिखाई नहीं देते ! इस साद्रश्यको अंग्रेजीमें Camsuflage कहते हैं। हम लोगों को उसका अच्छी तरहसे विचार करके बहुत कुछ सीखना आवश्यक है। इसके लिये एक दो द्रष्टान्त काफ़ी हैं।

इस महायुद्धके पहिले फ्रेंच सिपाहियोंके कपड़े हरे रहते थे, तथा अंग्रेज सिपाहियोंके लाल होते थे। लेकिन महायुद्धके समयसे वे ख़ाकी कर दिये गये। हेतु यह था कि जब सेना का मार्च हो तब वह शत्रुके ध्यानमें न आवे। वैसे ही लड़ाऊ जहाजोंको इस तरहसे रंग दिया गया कि इसका रंग पानीसे अलग है यह शत्रुको पता न चले।

सृष्टिकी ओर हम जितनी ही अधिक द्रष्टि डालें उतनी इसकी अधिक प्रशंसा हम करने लगेंगे। लेकिन यह प्रशंसा किसको करनी चाहिये ? कवि सृष्टिका महत्व अपने काव्यमें वर्णन करता है। लेकिन उसकी द्रष्टि केवल काव्य द्रष्टि ही होती है। उसकी भाषा मधुर होती है। अपने काव्यमें वह भावना भी प्रगट करता है, तथापि उसका उपयोग काव्य सृष्टिके बाहर होना ही नहीं है। यह बात कवि के बारेमें है। सामान्यजनोंके बारेमें तो इससे भी शोचनीय स्थिति होती है। न तो उनको सृष्टि ज्ञान ही रहता है, और न उनमें भावना प्रगट करने का माधुर्य ही होता है। शास्त्रज्ञोंकी स्थिति तो इससे भी लाचारी की है। वे सृष्टि सौन्दर्य्यका अनुभव कर सकते हैं। वे उसको समझते हैं। लेकिन इन बातोंको सामान्यजनताके सामने रखनेके लिये इनमें भाषा माधुर्य नहीं है। उनकी भाषा कठोर, तथा क्लिष्ट ही रहती है। उसमें माधुर्यका तो अंश भी नहीं होता। इसलिये उन्होंने कितने भी प्रेमसे और आस्थासे सृष्टि ज्ञानके लाभ देनेका

यत्न किया भी तो वह कर्कश और नीरस ही मालुम होता है। प्रस्तुत लेखमें मुझे भी यही डर है।

किसी भी बात की शास्त्रीय विवेचना करना कितना कठिन है यह मोटी दृष्टि वाले साधारण व्यक्तियोंके ध्यानमें नहीं आ सकता। यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अपनी बनाई हुई वस्तुओंको सर्वदा वैसा ही नहीं बना सकता है। ताजमहल के समान फिर किसी ने दूसरा ताजमहल नहीं बनाया। चमार जिस प्रकारका जूता एक बार बना लेता है, ठीक उसी प्रकार दूसरी बार बनाना उसे कठिन हो जाता है। पर सृष्टिके प्राकृतिक नियमों में इस प्रकार की भ्रान्ति बहुत ही कम होती है।

प्राचीन समयमें ग्रीसमें एक बार एक विचित्र भयंकर रोग फैल गया था। वहाँके निवासी अपनी देवीके पास गये और बिनतीकी कि 'यदि रोग बन्द हो जाय तो तेरा चौरस (वर्गाकार) चबूतरा दुगुना कर देंगे।' पर जब रोग दूर हो गया तो यह विकट प्रश्न उठा कि वर्गाकर चबूतरा दुगुना कैसे किया जा सकता है। यद्यपि ग्रीस देशमें गणितज्ञों, शिल्पियों और दार्शनिकोंकी कमी नहीं थी पर इस प्रश्न का समाधान करना कठिन हो गया। यदि चबुतरेकी दोनों भुजायें दुगुनी की जाती हैं तो चबूतरेका क्षेत्रफल पहलेका चौगुना हो जाता है, और यदि एक ही भुजा दुगुनीकी जाती है तो चबूतरा वर्गाकार नहीं रहता है। इस कठिनाईको ग्रीसवासी किसी प्रकार भी दूर न कर सके और देवीके सामने उन्होंने जो प्रतिज्ञाकी थी वह पूरी न हो सकी। पर सृष्टिमें क्या कभी इसी प्रकारकी कठिनाइयां उपस्थिति हुई हैं। मनुष्यके शरीरको ही देखिये वह किस प्रकार चारों ओरसे बढ़ता जाता है। कभी कभी दो भाइयोंके रूपमें कितनी समानता हो जाती है, दोनों आरम्भमें भी एकसे मालूम होते हैं और एकसे ही बढ़ते भी जाते हैं। प्रत्येक आयु में एकसे ही रहते हैं।

इस प्रकारकी समानताके और भी बहुतसे चमत्कारिक उदाहरण हैं। यहाँ केवल एकका और वर्णन किया जावेगा। जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी लम्बाई फुट डेढ़ फुट होती है। और यदि उसका नियम पूर्वक विकास होता जावे तो वह तेईस चौबीस बरसमें ६ फुटके लगभग हो जाता है। पर उसकी लम्बाई उसके अपने साढ़े तीन हाथ सदाही रहती है। यह क्यों होता है यह कहना कठिन है पर यह रहस्य अवश्य चमत्कार पूर्ण है। इस नियमका पालन इतनी चतुराईसे होता रहता है कि हम आश्चर्यमें ही पड़ जाते हैं। मिश्र देशके पिरैमिडोंके विषयमें यह कहा जाता है कि उसकी चौड़ाई और लम्बाई का अनुपात वही है जो वृत्त और उसके व्यासमें अर्थात् ३.१४१६का सम्बन्ध है। पिरैमिड बनाने वाले इस सम्बन्धको जानते थे और उन्होंने जानबूझ कर ऐसा किया था। कहा जाता है कि कुछ ऐसे ही नियम ताजमहलमें हैं, पर इस प्रकारके नियममनुष्यकी रचनामें बहुतही कम पाये जाते हैं, अधिक नहीं। पर किसी भी देशका और किसी भी कालका कोई आदमी ले लीजिये, उसका शरीर उसके हाथ का साढ़े तीन गुना ही होवेगा। इस नियममें मुश्किल से अपवाद मिलेंगे। मनुष्य शरीर की आरम्भिक अवस्था में शरीर हाथकी अपेक्षा साढ़े तीन गुनासे कुछ अधिक (३%) होता है पर ४० बरसकी उमर तक यह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। क्या यह कम आश्चर्य की बात है।

सृष्टि में गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त भी कुछ कम महत्व का नहीं है। मनुष्यको अपनी बाल्यावस्था से इस शक्तिके विरुद्ध झगड़ना पड़ता है। बचपन में बच्चा कमज़ोर होता है, वह अपनी गर्दनको संभाल नहीं सकता है। इसी लिये वह खड़ा नहीं हो सकता है और उसे जमीनके सहारे ही लेटे रहना पड़ता है। पर ज्यों-ज्यों वह बढ़ता जाता है उसके शरीरकी शक्ति और ऊँचाई बढ़ती जाती है। इसलिये अब वह जमीनसे शरीरको पृथक् रखनेमें समर्थ हो जाता है। वह इधर उधर घूम सकता है,

खेल सकता है, कूद सकता है। इस उमरमें इसकी ऊँचाई बढ़ती रहती है, और इसी कारण उसकी ऊँचाई ३॥ हाथसे कुछ अधिक होती है। बचपनके बाद आदमीका बढ़ना कम हो जाता है इस लिये उसकी ऊंचाई ३॥ हाथसे कुछ कम होती जाती है। इसी समय गुरुत्वाकर्षणकी शक्तिसे युद्ध करनेकी सामर्थ्यभी उसमें कम होने लगती है, धीरे-धीरे उसे वृद्ध आयुमें चलना, फिरना भी मुश्किल होजाता है, और खाट या भूमि पर पड़े रहनेमें ही उसे आनन्द आता है। इसी अवस्थामें इसका शरीरांत भी हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य पृथ्वीकी प्रबल गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे कब तक युद्ध कर सकता है!

सृष्टिके नियम अत्यन्त सुलभ होते हैं। उनके अध्ययन करनेसे लाभ भी बहुत हो सकता है। खंभेकी मज़बूती उसके पैंदेके क्षेत्रफल अर्थात् लम्बाई और चौड़ाईके गुणनफल पर निर्भर रहती है। पतले खंभेसे मोटा खंभा ज़्यादा ताकतवर होता है। यद्यपि यह बात ठीक है तथापि इसके समझनेमें हम एक ग़लती करते हैं। पैंदेका क्षेत्रफल जिस जिस प्रकार लम्बाई और चौड़ाई पर, और यदि वृत्ताकार है तो व्यास पर निर्भर है, उसी प्रकार उसका आकार और बोझ घनफल अर्थात् उसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई पर निर्भर है। मज़बूती के लिये यदि खूब भारी खंभा लिया जाय तो उसका वज़न बहुत हो जाता है; और लम्बाई तथा मूल्य की दृष्टिसे ऐसा होना इष्ट नहीं है। व्यवहारमें इससे हानि ही होती है, यह सब जानते हैं।

यदि बड़े और छोटे दो पुल बंधे हुए हों तो ऊपर कहे गये विचारोंसे यह स्पष्ट है कि बड़ा पुल छोटे पुलकी अपेक्षा कमज़ोर होगा। सृष्टिके प्राकृतिक पदार्थोंमें इस नियमका बहुत ही कुशल-पूर्वक ध्यान रखा गया है। इसको समझानेके लिये हम यहाँ एक दृष्टान्त देना ही समुचित समझेंगे। श्वासोच्छ्वास तथा मलविसर्जनके लिये मनुष्यकी त्वचामें बहुतसे छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। ये छिद्र ऊपरकी त्वचामें होते हैं, और इसी प्रकार के छेद छोटे-छोटे जीव जन्तुओं और कीड़े मकोड़ोंके शरीरोंमें भी होते हैं। यदि इन छिद्रोंका आकार मनुष्य और छोटे-छोटे जीवोंके शरीरोंमें एकसा ही रखा जाय तो छोटे जीवों को अत्यन्त क्षति पहुँचेगी, क्योंकि ऐसा होने पर उनकी शारीरिक क्रियाओंकी प्रगति अत्यन्त बढ़ जायगी। यदि पृष्ठ तल बढ़ाया जाय तो आकार भी उसीके हिसाबसे बढ़ जायगा। त्वचा क्षेत्रफलके ऊपर निर्भर है और आकार घनफल पर। यदि सब परिमाण अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई, तीनों दुगुने किये जायं तो क्षेत्रफल चौगुना और घनफल अठगुना हो जावेगा। छोटे-छोटे कीड़ोंको इस विपदासे बचानेके लिये प्रकृतिने एक सुगम उपाय निकाला है। उनकी त्वचाको उसने अधिक मज़बूत और कम छेदोंवाला बनाया है।

इसी विषयका दूसरा उदाहरण नैसर्गिक वृक्षोंकी चौड़ाई, उनका बढ़ना, और उनकी मज़बूतीके विषय में है। जब वृक्षमें फल आता है तो वृक्षोंकी डालियों को उनका बोझ संभालता पड़ता है। ऊपर दिये गये विचारोंके अनुसार फलका बोझ और आकार उसके घनफल पर निर्भर है, और ज्योंही लम्बाई और चौड़ाई थोड़ीसी भी बढ़ी, उसके आकारमें बहुत ही अधिक वृद्धि हो जाती है। डालीकी मज़बूती उसके क्षेत्रफल पर निर्भर है, अर्थात् इस प्रकारकी योजना होनी चाहिये कि पतली डाली पर बड़ा फल न लगे। यही बात है कि ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर कभी बड़े फल लगते ही नहीं है। पर पतली पतली बेलों पर कुम्हड़ोंके समान भारी भारी फल लगजाते हैं, क्यों कि इन फलोंका बोझ केवल लताको ही नहीं सहना पड़ता है, प्रत्युत उसको भी जिसके आश्रय पर लता फैली हुई है।

गर्दन को अपना सिर संभालना पड़ता है इस लिये जिसकी गर्दन पतली होती है उसका सिर भी छोटा होता है, और जिसकी गर्दन भारी होती है और उसकी गर्दन बहुत कम ऊंची होती है, या बड़ी भारी चौड़ी होती है। घोड़ेकी गर्दन और उसका शिर, ऊँटकी पतली लम्बी गर्दन और उसका

छोटा सिर, हाथीका बड़ा भारी सिर और उसकी बड़ी भारी और चौड़ी गर्दन उपर्युक्त विचारोंकी सत्यता स्पष्ट करनेके लिये काफी दृष्टान्त हैं।

कुछ पेड़ छोटे हैं, और कुछ ऊँचे और सीधे बढ़ते हुए चले जाते हैं, कुछ सब ओर फैलते हैं, इस प्रकार वृक्षोंके बहुतसे भेद हैं। परन्तु जो पेड़ नारियल और ताड़के समान ऊंचे बढ़तेही चलेजाते हैं उनका गठन नियम पूर्वक ही होता रहता है। ये पेड़ यद्यपि बहुत ऊंचे बढ़ते हैं तो भी उनकी ऊंचाई की एक मर्य्यादा होती है, यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी। वृक्षकी तौल उसके तनेके ऊपर निर्भर होती है और उसकी मज़बूती उसके क्षेत्रफल पर। पेड़के वज़नके अनुसार उसकी मज़बूती कम-अधिक करनेके लिये उसी तरहका तना बनाया जाता है। जहाँ एक बार तनेकी चौड़ायी स्थिर होगई उसकी तौल और ऊंचाई भी स्थिर हो जाती है। बोझ के कारण वृक्ष के नम जानेकी आशंका रहती है। यदि कमज़ोर लकड़ी पर हम ज़ोर दें तो वह नम जाती है पर टूटती नहीं। यही वृक्षों के विषयमें भी होता है। उनकी ऊंचाईके विषय में भी यही बात है। यदि तनेकी चौड़ाई ठीक न होगी तो वह वृक्षके बोझको न संभाल सकेगा और बुड्ढे आदमीके समान झुक जावेगा। तने की चौड़ाई ११ इंच हो तो वह पेड़ ३०० फुट तक बढ़ सकता है, यह हिसाब लगाकर दिखा दिया गया है। सृष्टिमें भी ऐसी ही बात है। यदि हम इक्कीस इंच चौड़ाईका अर्थात् पांच साढ़े पांच फुट घेरेका ३०० फुट ऊँचाईका खंभा खड़ा करना चाहें तो मुश्किल है! इतना ऊंचा करनेके लिये खंभों की पेटी कुछ अधिक मोटी रखनी होगी, और वृक्ष जितना ऊंचा होता जावे उसकी मोटाई उत्तरोत्तर कम होती जानी चाहिये। १००० फुट ऊंचाईकी 'इफेल' मीनारकी रचना इसी सिद्धान्तके अनुसार की गई है और सृष्टिमें भी गगनचुम्बी पेड़ोंकी रचना ऐसी ही पाई जाती है।
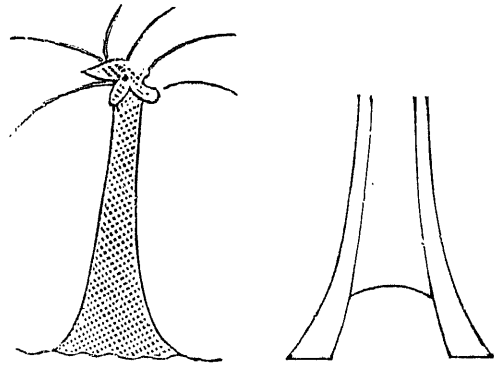
जिस नियमके अनुसार इफेलमीनार कम होती जाती है उसी नियमके अनुसार जो वक्र रेखा निर्धारित की जाती है उसे "लघुरिकथ वक्र" कहते हैं। पेड़ भी इसी वक्र रेखाके अनुसार कम होते जाने चाहिये। केवल शंकुके समान कम होते जानेसे काम नहीं चलेगा।

ऊँचाईके कारण तने पर पड़नेवाले बोझके संभालनेके लिये जिस प्रकार योजना की जाती है उसी प्रकार वायु, पानी, और शीतसे सुरक्षित रहने के लिये भी ध्यान दिया जाता है। यह बहुधा देखा जाता है कि अधिक वर्षा होते समय बड़े पेड़ तो टूट जाते हैं पर लतायें वैसी ही रहती हैं, उन्हें अधिक क्षति नहीं होती है।

———

वैज्ञानिक प्रवृत्ति

[लेखक 'वैज्ञानिक']

प्रायः विरला ही मनुष्य ऐसा होगा जो रामलाल विज्ञानीके नामसे परिचित न हो। उनके दर्शनका सौभाग्य तो बहुत ही कम मनुष्योंको प्राप्त हुआ होगा परन्तु उनके किसी न किसी कार्य्य से और उनके नाम से सभी परिचित होंगे। आप हमारे विश्वविद्यालयके एक बड़े ही प्रमुख गणाचार्य्य हैं। आपका नाम संसार की सभी बड़ी बड़ी उपाधियोंसे आभूषित है। भारतवर्षके वैज्ञानिकोंकी नामावलीमें रामलालका नाम शिखर पर नहीं तो उसके अत्यन्त ही निकट तो अवश्य ही लिखा जाता है। सदा ही यह विश्वविद्यालयकी प्रयोगशालामें काम करते हैं। गृह कार्य्यके लिए इनको अवकाश कहां! कहते हैं कि आपको अपनी स्त्रीसे प्रेम-व्यापारका समय नहीं मिलता। मुझे जो सौभाग्य आपकी संगतका प्राप्त है उससे यह अवश्य कह सकता हूँ कि जिस किसीसे भी वह बोलते हैं उससे बोलते बड़े ही प्रेमसे हैं। बोलते अवश्य उतना न्यूनतम जितनेसे कि कार्य्य सर जाता है परन्तु बोलते हैं सदा ही मुसकरा कर और ऐसे शब्दोंमें कि जिससे वार्त्तालापका भाव चाहे जैसा ही निराशा-जनक हो आगन्तुक उनके पाससे प्रसन्न चित्त ही लौटता है। अनेक समितियोंसे एवम् उत्सवोंसे आपके पास न्योता आया करता है और आप उन लोगोंके कार्य्योंमें सम्मिलित होनेकी आशाभी पूर्ण रूपसे दिला देते हैं परन्तु जाते कभी नहीं। झूट और सचके झगड़ेमें आप कभी नहीं पड़ते। इसके विषयमें तो आपका यही मत है कि मनुष्यको सदा ऐसी बातें एवम् ऐसे कार्य्य करने चाहिए जिससे कि वह जीवनरणमें सफलता पूर्वक विजय प्राप्त कर सके। उनसे कभी भी प्रार्थना करो "न" तो कभी करेंगे ही नहीं परन्तु उस प्रार्थनाके पूर्ण होनेमें सदा हो कोई न कोई बाधा निकल आवेगी जिसके लिए आपको बहुत ही शोक होगा। इस प्रकार प्रार्थना करने वाला भी सदा प्रसन्न और रामलाल भी प्रार्थना पूर्त्तिकी चिन्तासे सदामुक्त रहेंगे। परन्तु ऐसे क्षणोंके अतिरिक्त जिनमें वह किसीसे वार्त्तालाप करते रहते हैं—और ऐसे क्षण सदा ही बहुत ही छोटे होते हैं—आप बड़े ही गहरे विचारोंमें डूबे रहते हैं। सदा ही अपने अन्वेषणके विषयमें सोचते रहते हैं और सोचते समय आपको बाह्य जगतका कुछ ध्यान नहीं रहता। एक दिनकी बात है कि वह रातको दस बजे कुछ पढ़ रहे थे। पढ़ते पढ़ते उनका विचार किसी पठित बात पर अटक गया और वह उसी विषयमें सोचने लगे। विचारोंमें मग्न वह उस स्थानसे उठकर, कमरेके सामनेके जंगले पर हाथ रखकर विचारते रहे। चन्द्रमाकी ज्योतिसे चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश फैला हुआ था और वायु भी कुछ कुछ ठंडी चल रही थी, परन्तु विज्ञानी जी को न तो उस समयका ज्ञान और न वायुका ध्यान वह तो विचारोंसे आच्छादित हो रहे हैं। इतनेमें उनकी स्त्री उस चन्द्रमाकी ज्योतिको चुनौती देती हुई आकर उनके पीछे खड़ी हो गई। न जाने उसके हृदयमें क्या भाव थे अथवा इन भावोंकी लहरें उसके अन्तः-करणमें किस रूपमें बह रही थीं। उसने विज्ञानी जीकी दोनों आंखें अपने हाथोंसे बन्द करलीं। न जाने वह क्या सोच रही थीं। एक क्षण-दो क्षण यद्यपि रामलालकी भौहोंके बाल उसके हाथोंमें छिद छिद कर असह्य हो रहे थे तो भी वह आंखें बन्द किए रहीं। तीसरा क्षण, क्षण पर क्षण बीतते गए। जिस प्रकार यदि बड़े वेगसे किसी लक्षपर लाठी चलाओ और लक्षके हट जानेसे चोट खाली जावे तो पृथ्वीमें लगकर लाठी भी टूट जाती है और मारने वालेके हाथोंमें भी मोच आ जाती है, इसी भांति उस रमणीको भी अपने लक्षके चूक जानेसे उसके हृदयमें भी न जाने कैसी चोट लगी होगी।

प्रातःकाल होते ही रामलाल विज्ञानी नित्यकी भांति आज भी कुक्कुट ध्वनि सुनते ही अपने भाई सरलानाथके साथ कंधे पर अँगोछा डाल कर चल दिए। रास्तेमें बराबर अपने भाईसे बातें करते

जाते थे। उनकी यह बातें भी व्यर्थ न जाती थीं। वे किसी न किसी विज्ञान सम्बन्धी पाठका लक्ष लिए हुए बातें करते थे और इन्हीं बातोंमें वे उस लक्षको सरलानाथके हृदयमें इस गम्भीर रूपमें बिठा देते कि वह फिर कभी उनके हृदयपटसे हटने की चेष्टा भी न करता वे इसी प्रकार बातें करते जा रहे थे कि उन्होंने कुछ मनुष्योंको इक्के पर जाते देखा। वह रास्ता तो सीधा गंगा जी को जाता था और आदमियोंके पास पूजासामिग्री, धोती एवम् लोटा इत्यादि होनेसे स्पष्टही था कि वे सब गंगास्नान के लिए ही जा रहे हैं। उन्हें देखते ही रामलालने कहा कि "देखो यह मनुष्य कैसे मूर्ख हैं, जाते तो हैं गंगाजी को, लेकिन जाते हैं इक्के पर, इससे तो इनका न जाना ही अच्छा।" यह सुन कर सरलानाथ कहने लगे "क्यों! क्या जो कुछ लाभ है, टहलने ही में है, गंगा स्नानसे कुछ लाभ ही नहीं?"

विज्ञानी—लाभ क्यों नहीं, लाभ उसमें भी है लेकिन असल बातका तो इन लोगोंको ज्ञान ही नहीं मालूम होता। हमारे पूर्वजों ने जब प्रातः-काल गंगा स्नानकी प्रथा डाली थी तो उनका मतलब कुछ और ही था। बहुधा गंगाजी शहरसे कमसे कम दो तीन मील दूर ही होती हैं। उन दिनों घोड़ा गाड़ी तो थे ही नहीं जो कोई गंगा जी जाना चाहता तो चार बजे उठता और पैदल चल कर गंगा जी जाता। मार्गमें उसे स्वच्छ वायु मिलती, इस वायुसे उनका समस्त रक्त शुद्ध हो जाता, चलते चलते उनकी व्यायामकी भी मात्रा पूरी हो जाती, उससे उनका शरीर शुद्ध हो जाता, फिर गंगास्नान के विचारसे चलनेके कारण उनका ध्यान स्वतः ही ईश्वरीय बातोंकी ओर जाता, साथी मनुष्योंसे कुछ ज्ञानकी चर्चा करते और इस प्रकार उनके मनकी भी शुद्धि हो जाती, फिर जाते गंगा जी में मलमल कर नहाते, समस्त शरीर दमक उठता और तब उनको गंगास्नानका पूरा लाभ प्राप्त होता। आजकल तो लोग केवल गंगाजी में जाकर उसमें एक क्षणिक डुबकी से ही, अपने सब पापोंका निपटारा कर देना चाहते हैं सो कैसे हो।

सरलानाथ—यह लोग पूरा नहीं, थोड़ा ही लाभ लेना चाहते होंगे। वायु तो सभी जगह और दिन भर ही मिलती रहती है।

विज्ञानी—थोड़ा क्या, इन्हें तो कुछ भी लाभ न होगा, उलटी हानि ही होगी। गंगा जी में तो खूब घंटो नहानेसे लाभ होता है। उसकी धारा बड़ी ही तीव्र है और शरीर पर कमसे कम घंटे, आध घंटे प्रवाह होने देनेसे वह जड़ तकका मैल निकाल लेती है। सो यह लोग घंटो मलमल कर तो नहाते नहीं। गए डरते डरते घुसे और जहाँ पैर डूबा और धाराका प्रवाह ज्ञात हुआ कि बस पानी ऊपर उलीच लिया और चले आए। यदि दैवयोगसे धाराका प्रवाह अधिक न हुआ तो कुछ आगे भी बढ़े और एकदम डुबकी लगाकर मामला पाक कर दिया, चले आए। अरे इससे तो गंगा जीके जलकी रेती उनके शरीर पर और जम जाती है, कुछ शरीर शुद्ध थोड़ेही होने पाता। फिर इक्के पर चढ़े चढ़े चलते चलते, उसकी खचर खचरसे उनकी कमर दर्द करने लगती होगी और बहुधा मैले इक्केवालों और उनके घोड़ोंकी दुर्गन्धसे उनका दिमाग़ भी सड़ जाता होगा। फिर जहाँ इस प्रकारके दो चार मनुष्य इकट्ठे होते हैं वहाँ ज्ञानकी चर्चा कहांसे आई, वही सदाकी बदमाशियोंके विषयमें नई नई युक्तियां सोचा करते हैं। और इस प्रकार भले विचार उनके पास आनेके बदले सदा ही उनसे दूर भागनेकी टोहमें लगे रहते हैं। रही वायुकी सो वह सदा और सब जगह तो नहीं होती। मनुष्यके शरीरमें अनेक रोगोंके कोटिशः कीटाणु भरे रहते हैं और अनेकानेक रोग कीटाणु सदा ही मानसिक शरीरमें प्रविष्ट होनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। वायुमें जो ओषजन होता है उसके द्वारा उत्पन्न तीव्र ओषदीकरणको यह कीटाणु नहीं सह सकते और एकदम नष्ट हो जाते हैं। और इस प्रकार शुद्ध वायु सदा ही मनुष्यके लाभार्थ इन कीटाणुओंसे युद्ध

करके मनुष्यको बलिष्ठ बनाती है, परन्तु इतने मनुष्योंके उसीमें इतनी बार श्वासप्रश्वास लेनेसे वायुमें अनेक अशुद्धियां आ जाती हैं और ऐसी अशुद्ध वायुकी ओषदोकरणशक्ति इतनी तीव्र नहीं होती कि यह कीटाणु मर सकें। सब जगह और सदाकी वायु तो ऐसी ही होगी। यह तो केवल प्रातःकालकी ही वायु होती है, और विशेषकर बसे हुए स्थानसे बाहरकी वायु जो मनुष्यके श्वासप्रश्वाससे युक्त रहकर आठ दस घंटेमें शुद्ध हुई है। इससे जो मनुष्यको लाभ होगा, उस लाभकी कमी और किसी विधिसे पूरी नहींकी जा सकती।

सरलानाथ—नहीं, यह कोई बात नहीं है। गंगा-स्नानका काम तो दैविक है, वैज्ञानिक थोड़े ही।

विज्ञानी—है कैसे नहीं, दैविक तो कुछ भी नहीं होता। सभी वैज्ञानिक है। यह तो हमारे पूर्वजों की बुद्धिमत्ता का चमत्कार है कि उन्होंने सब बातें इस प्रकार प्रबन्धित कर रक्खी हैं कि मूर्ख से भी मूर्ख मनुष्य यदि पुरानी लकीर ही पर चला आवे तो विज्ञान का लेश मात्र ज्ञान न होते हुए भी वह एक महान् विज्ञान वेत्ता का सा जीवन व्यतीत करता प्रतीत होगा परन्तु आज कल के मनुष्य तो लकीर ही लकीर चलते हैं और न फिर पूरे वैज्ञानिक अनुसन्धान का ही अनुकरण करते हैं। दुरंगा कार्य्य करते हैं, जहां पर जिससे सामयिक लाभ प्रतीत हुआ वैसा ही करते हैं और इसीलिए अन्य जन उन्हें उल्लू बनाते हैं। तुम्हें मालूम होगा कि ऋषियों के कथनानुसार स्नान कितने प्रकार का होता है ?

रामलाल—हां—जो स्नान प्रातःकाल ही तारागणों की विद्यमानता में किया जाता है वह 'उत्तम' होता है, जो तारागण तो विलिप्त हो गए हों परन्तु सूर्य्यनारायण न निकले हों अथवा निकल रहे हों उस समय का स्नान 'मध्यम' होता है और इसके पश्चात् की स्नान 'निःकृष्ट' होता है।

विज्ञानी—हां यह तो ठीक है परन्तु ऐसा विभाग क्यों है तुम्हें नहीं मालूम होगा। ऋषियों की नियम बनाने की शैली 'वैकल्पिक विन्दु से प्रस्थान' अथवा 'जो कह दिया सो कह दिया' की नहीं थी। उनके कथनानुसार तीन पहर रात्रि तो सोने के लिए है, फिर उठ कर जो मनुष्य गंगा जी जाकर ताराओं की विद्यमानता में नहा कर लौटेगा उसे उत्तम स्नान का फल मिलेगा। इसका अर्थ यही है कि आते जाते दोनों ही समय उसे शुद्ध वायु का पूरा लाभ होगा। इसके अतिरिक्त सूर्य्योदय के समय की प्रथम किरणों में एक विशिष्ट ओषानिक एवम् रश्मिक प्रभाव होता है और इनका प्रभाव मनुष्य के शरीर पर ऐसा ही होता है जैसा कि छन्ने कागज़ का गन्देल पानी पर छानने में होता है, ऊपरवाले मनुष्य को जाते समय मार्ग में यह लाभ भी मिल जावेगा। तारोंके विलिप्त हो जाने पर नहाने वाले को केवल एक ओर से आने पर तो शुद्ध वायु का लाभ और सूर्य्योदय का विशिष्ट लाभ ही मिलगा। इससे भी बाद वाले को कुछ नहीं ! इस समय बहुत से मनुष्य आ चुकते हैं और आने लगते हैं, उनकी श्वास प्रश्वास से वायु तो अशुद्ध हो ही जाती है और सूर्य्योदय का विशिष्ट लाभ भी जाता रहता है।

सरलानाथ—नहीं भाई। यह तो सब कहने की बातें हैं। न तो कभी सूर्य्योदयका दर्शन करने वाला हृष्ट पुष्ट सहस्त्रवर्षी ही हुआ है और न सब निःकृष्ट ज्ञान करने वाले अल्पायु वाले ही हुए हैं।

विज्ञानी—अरे यह बात नहीं है। मानुषिक जीवनमें कितने अंग हैं। किसीकी आयु केवल 'उत्तम' या 'निःकृष्ट' स्नान ही पर तो निर्धारित नहीं होती, अन्य भी तो इतनी बातें होती हैं। फिर किसी पर इन स्नानोंका ही कोई विशेष प्रयोग करके देखा भी नहीं गया है। परन्तु हां, यह तो आधुनिक विज्ञानकी हालतमें सभीको ज्ञात होगा कि अनेक ऐसी क्रियाएं जो अँधेरेमें नहीं होतीं प्रकाशमें भली भांति हो जाती हैं, सहस्रों ऐसी क्रियाएं जो कृत्रिम प्रकाशमें नहीं होतीं, सूर्य्यके प्रकाशमें हो जाती हैं। सहस्रों क्रियाएं अरुण किरणोंमें बड़े वेगसे होती है और अनेक क्रियाएँजो साधारण किरणोंमें नहीं होती हैं वह

'परा-बैंजनी' किरणोंमें हो जाती हैं। अन्तिम श्रेणीकी कब किरणें अत्यन्त ही तीव्र होती है और सूर्य्योदयके प्रकाशमें ऐसी किरणोंकी अधिकता, जब चाहे कोई किरण चित्र लेकर देख ले। उसका रश्मिक प्रभाव और उस समय वायुमें ओषोनकी अधिक मात्रा सहस्रों बार देखी जा चुकी है। इस प्रकार सूर्य्यके प्रकाशके विचित्र विचित्र गुण और उनका मानुषिक जीवन पर अद्भुत प्रभाव भली भांति देखा जा चुका है और तभी वैज्ञानिक लोग यह बात इतने गौरवसे कहते हैं। वास्तवमें प्रकाशके इन्हीं गुणों पर अधिष्ठित चिकित्साकी एक नई विधि ही निकल आई है। यह प्रकाश चिकित्सा है। यद्यपि यह अभी अपनी बाल्यावस्था ही में है तथापि इससे आशा बहुत है। सूर्य्योदयके किरण प्रभावने तो समस्त जगतीको ही चमत्कारमें डाल दिया है, फिर भी तुम ऐसी बात कहते हो।

सरलानाथ—अच्छा जाने दो, ऐसा ही सही, परन्तु यह सब प्रकाशके लाभ तो उन्हें सवारी पर बैठे बैठे भी मिल सकते हैं।

विज्ञानी—हां यह तो ठीक है, परन्तु सवारी पर बैठे बैठे ठीक रीतिसे स्वाँस ही नहीं ले मिलेगी। चलनेमें यदि किसीकी साँस जल्दी चलने लगती है तो वह हांफने लगता है और हाँफी रोकनेकी चेष्टामें लम्बी लम्बी सांसे लेता है और सांस रोकनेकी भी कोशिश करता है। इस प्रकार प्राणायामकी ओर एक डग स्वतः बढ़ जाता है। इक्केमें कमर झुकाकर बैठते हैं और साँस पूरी ली ही नहीं जा सकती। यदि कोशिश भी करो और कमर सीधी कर लम्बी सास लो भी तो भी सांस पूरी होनेसे पहिले ही इक्केसे सांसमें विघ्न पड़ेगा। पूरी सांससे फेफड़े ऊपर नीचे और सामने हर ओर फैलाना चाहिए। पूरी सांस लेने के लिए धीरे धीरे सांस लो और सांस लेनेके साथ ही साथ पेट फुलाते जाओ, जब पेट खूब फूल जावे तो उसे खला कर ऊपरकी ओर खींचो और सांस बराबर खींचते जाओ। सांस जितनी खिंच सके उतनी खींचो। अब सांस रोक लो और छातीको फुलानेकी चेष्टा करो। खूब बल लगा दो यहाँ तक कि सीना फटता सा मालूम पड़े और चेहरा लाल हो जावे। अब सांस फिर उतार लो और धीरे धीरे निकल जाने दो। इस प्रकार पूरी सांसका जब चाहो तब अभ्यास करो परन्तु इसके लिए उत्तम समय प्रातः एवम् सायंकाल और नदीका तट ही होता है क्योंकि इन स्थानोंकी वायु अत्यन्त ही शुद्ध होती है। दस बार ही दोनों समय करनेसे प्रत्येक मनुष्य अपना सीना बढ़ानेका अनुभव कर सकता है। विशेष विचारकी बात यह है कि सांस एकदम रोकनेकी चेष्टा न की जावे। अभ्यासके प्रारम्भ में पहिले केवल स्वांस धीरे धीरे खींचने और शनैः शनैः उतार देनेका अभ्यास करे। यह अभ्यास हो जाने पर रोकने और कुछ बल लगाकर सीना फुलानेका अभ्यास करे। फिर क्रमशः सांसके रोकनेका समय तथा फुलानेका बल बढ़ाते रहना चाहिए।

मोहनदास रामलाल विज्ञानीके परम मित्रोंमें से हैं। यों तो रामलालके मित्रोंकी गणना अत्यन्त ही पराकाष्ठित हैं परन्तु मोहनदास उन्हींके सहपाठियोंमें से हैं। अधिकांश पढ़ाई समाप्त हो जाने पर रामलालकी प्रवृत्ति तो विज्ञानकी ओर पड़ गई और मोहनदासकी ईश्वरीय ज्ञानकी ओर। एक ने विज्ञानाध्ययन प्रारम्भ किया और दूसरे ने नीतिशास्त्र। दोनों ने अपनी अपनी शाखामें अत्यन्त ही ज्योतिर्मय सफलता प्राप्त की। रामलाल तो विश्वविद्यालयमें विज्ञान विभागमें एक अध्यापक नियुक्त हो गए और मोहनदास ने हाईकोर्टमें वकालत आरम्भ कर दी। होते होते रामलाल तो एक उच्च पदके गणाचार्य्य हो गए और इनके मित्र एक बड़े भारी वकील। मोहनदास अपनी समस्त आय निर्धनोंकी सहायतामें लगा देते थे और आपका आदर्श गृहस्थ जीवन व्यतीत करते करतेभी योग साधनका था। यह साधुओंकी सेवामें बहुत रहते थे, परन्तु उनको अपना धन न लुटाते थे। इनके मतानुसार उन लोगों को धन का अभाव न था।

उनको धन देनेवाले तो बहुत से पुरुष होते हैं। इसके अतिरिक्त जिसकी प्रवृत्ति ईश्वरीय ज्योति की ओर है उसे धन की आवश्यकता ही क्या! इनके धन की आवश्यकता निर्धनों को। यह निर्धन बेचारे सारे दिन अपना शरीर नष्ट करके परिश्रम करते हैं और फिर भी इनको पेट भर भोजन प्राप्त नहीं होता। कोई भी इनको धन देनेका विचार न करता वरन् इनसे पैसा निकालनेकी ही चेष्टा में सब लोग रहते। मोहनलाल अपना धन इन्हींकी भलाई के लिए व्यय करते हैं। इनके व्यवसायिक जाल में तो सदा मोटे ही मनुष्य फँसते थे और आप उनसे धनोपार्जन में कुछ कमी न करते क्योंकि आप जानते थे कि उनसे चाहे जितना धन ले लिया जावे कभी धनाभाव का कष्ट उन्हें न सतावेगा। परन्तु इस धनमें से वह अपने लिए उन लोगों की आयसे अधिक व्यय करना अधर्म समझते थे जो उनसे अधिक परिश्रम करते थे। देश के सारे धन पर समस्त देशवासियों का अधिकार है। एकका अधिक ले लेना दूसरे पर अन्याय है। ऐसा भी विचार करके अपना सब धन निर्धनों के लाभ के लिए व्यय कर देते थे और चाहे इसे ईश्वरीय कृपा समझी जाय या उनकी व्यवसायिक बुद्धि का चमत्कार। उन्हें कभी भी इन कामोंके लिए रुपए की कमी न रहती।

आज संध्या समय हो आया है। दिन भर चलते चलते लू भी कुछ थकित होकर विश्राम करने का विचार कर रही है और वायुमें कुछ शीतलता सी आ गई है। दिन भर दिवाकरके तापमें तपनेके बाद अब किसी वाटिकामें जाकर टहलना और वहांके सुगन्धित फूलोंकी सेवाको ग्रहण करनेसे चित्त अत्यन्त ही प्रसन्न होगा। ऐसा ही विचार करके मोहनदास ने विचारा कि चलो आज विज्ञानी जी को साथ लेकर किसी सुगंधित फूलोंसे हरी भरी वाटिकामें चलें। कपड़े पहिन कर और अपना द्विपादयान (साइकिल) लेकर चटसे विज्ञानी जी के घर पहुँचे। आप अपने पाठनालय में बैठे हुए थे। उसके कपाट खुले हुए थे और आप कुछ रेखा गणितकी समस्या पर विचार कर रहे थे। जाते ही उन्होंने दरवाजेके बाहर हीसे प्रणाम किया। रामलाल ने भी अपने हाथ उठाकर प्रणामका प्रत्युत्तर तो दिया परन्तु ऐसा मालूम हुआ मानो कि यह हाथ किसी यन्त्र द्वारा स्वतः उठ गए अथवा उनमें किसी मानुषिक शक्तिका आभास नहीं है। मोहनदास वहाँ जाकर बैठ गये और दो तीन मिनट चुपचाप बैठे रहनेके पश्चात् घूमने चलनेका प्रस्ताव पेश किया। विज्ञानी जीने भी सर हिलाकर उसका समर्थन किया और फिर बिना किसी बातचीतके किए हुए वह अन्दर चले गए। कपड़े पहिन कर चल दिए। मोहनदासने भी उसकी विचार शैलीमें विघ्न डालना कुछ उचित न समझा और बिना ही कोई बात चीत किए हुए उनके साथ हो लिया। दोनों ही व्यक्ति चुपचाप चले जाते थे। मोहनदास सोचते थे कि आज यह एक बड़े अद्भुत रूपमें शान्तिको धारण किए हुए हैं, कौन सा प्रश्न करके इनकी इस शान्तिका अन्त किया जावे, और आया कि इनकी शान्तिका अन्त करना समयानुकूल भी होगा कि नहीं... वह इसी प्रकार सोचते जा रहे थे कि एकदम किसीके धड़ामसे गिरने और घंटी बजनेकी आवाजने उन्हें चौंका दिया। देखा तो ज्ञात हुआ कि विज्ञानीजीकी गाड़ी लुढ़क गई थी। कुछ अधिक चोट न आई थी और अब वह फिर चढ़नेके लिए सम्हल रहे थे। उन्होंने इधर उधर किसी पत्थर इत्यादिकी खोजमें आंखें दौड़ाई जिससे कि टकरा कर वह गिरे हों परन्तु वहां पर न तो कोई पत्थर ही था, न कोई गर्त्त ही और न कोई अन्य व्यक्ति ही निकटमें दिखलाई दिया। रास्ता बिलकुल स्वच्छ और चिकना पड़ा था और उनकी समझमें इनके गिरनेका कोई कारण प्रतीत न हुआ। अब वार्त्तालापके श्री गणेशका सुअवसर देख कर मोहनदासने कहा "कहिए साहब, इस समय तो आपके गिरनेका कोई भी विशेष कारण प्रतीत नहीं होता। मैं तो समझता हूं कि ईश्वरने तुम्हारे लिए इस

समय गिरनेकी सोची होगी सोई तुम गिर पड़े"। विज्ञानीने कहा कि अरे नहीं, प्रत्येक ही बातका वस्तुतः कुछ न कुछ कारण होता है। मैं ईश्वरीयवाद का ऐसा पोषक नहीं हूं। मेरे इस गिरनेका कारण मुझे तो ज्ञात ही है। बात यह थी कि मैं आज बड़ी देरसे रेखा गणितकी एक समस्या पर जुटा हुआ था। न तो मुझे यह मालूम हुआ कि तुम किस समय आए, न इस समयका ज्ञान और न यह ज्ञान कि किधर आ निकले हैं। मैं तो उसी समस्या पर लगा हुआ था परन्तु मेरे हाथ पैर सब यन्त्र रूपमें कार्य्य कर रहे थे। जो रेखा चित्र मैंने घर खींचा था वह मेरे नेत्रोंमें अभी एक क्षण पीछे तक जैसे का तैसा बना हुआ था। मैंने केवल उस चित्रको दूसरी ओरसे देखनेके विचारसे जैसे ही अनुमान पत्र घुमाया कि उसी समय मेरी साईकिल गिर गई। अब तो वह चित्र कैसा था मैं बिल्कुल भूल गया। घंटीने बज कर मुझे अन्य सब बातोंका ज्ञान करा दिया परन्तु रेखाचित्र—उसके लिये तो वह घंटी मृत्यु घंटी ही हुई।

मोहनदास—नहीं! खैर इस समय कोई कारण तुम्हें मिले या मिले, परन्तु तुम्हारा ईश्वरीयवादका पोषक न होना मुझे भला नहीं मालूम होता। कितने मनुष्योंने इस ज्ञान को प्राप्त किया और उन्होंने क्या क्या चमत्कार दिखलाए? हमारे ग्रन्थ ईश्वरीयवाद के ही ज्वलन्त सिद्धान्तोंसे भरे पड़े है।

विज्ञानी जी—मैं नास्तिकता का प्रचार तो नहीं करता किन्तु हां यह बात अवश्य है कि जहां तक एक साधारण मनुष्य की बुद्धि कार्य्य कर सकती हो वहां एक अनुमानित अदृश्य महान्‌शक्तिको प्रतिबिम्बित करना मुझे इतना भला नहीं प्रतीत होता। और ऐसी भी बातोंमें जहां मेरी बुद्धि नहीं घुसती है, मैं केवल ऐसे ही ईश्वर का अनुमान करता हूँ जो विज्ञानके ज्ञान की मूर्त्ति हो। उसके अंगों प्रत्यगों का ढूंढना ही हम लोगों का कार्य्य है। उस मूर्त्ति का भली भांति पता लग जाने पर प्रायः कोई भी स्थान न होगा, जहां मेरी बुद्धि न पहुँचे। मैं यों ही पत्थर की मूर्त्ति पर आश्रित होकर उससे कभी भी यह आशा नहीं कर सकता कि वह मुझे पास करा सकती है या कि जब मुझ पर भोजन न हो तो भोजन दे सकती है। सबसे उपर्युक्त ज्ञान तो आत्मज्ञान है। किसीसे कोटि कहो कि द्यूतक्रीड़ा अथवा वैश्यागमन अथवा अमुक कार्य्य अपकार्य्य है अथवा शुभकार्य्य है, वह कदापि न मानेगा परन्तु जब स्वयम् ही किसीको किसी कार्य्यके भले बुरेका अनुभव हो जाता है तब उसके विपरीत चाहे लाखों लहरें उठें उसके वह विचार हिल नहीं सकते। मनुष्य का वैज्ञानिक ज्ञान तो इसी प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित है। वह हिलाया नहीं जा सकता परन्तु ईश्वरीय ज्ञान! न तो यह मूर्त्तियां कभी प्रत्यक्षमें कुछ कर्त्तव्य दिखलाती ही हैं और न इनका प्रत्यक्ष अनुभव करा ही सकती हैं।

मोहनदास—प्रत्यक्ष ज्ञान है तो वास्तवमें वास्तविक ज्ञान, पर ईश्वरीयवादके सम्बन्धमें यह ज्ञान इतना सरल नहीं है। तुम छोटी छोटी सी बातोंकी प्रत्यक्षता तो सरलतासे किसीको अनुभव करा सकते हो पर कठिन बातोंमें अधिक कठिनाई पड़ती है। फिर यह ईश्वरीय ज्ञानका प्रयोग तो है ही सर्वक्लिष्ट क्योंकि इसके प्रत्यक्ष हो जानेसे तो अन्य सभी कुछ प्रत्यक्ष हो जावेगा। रही मूर्त्तियों की बात, यह तो तुम लोगोंका भ्रम है। मूर्त्तियोंको पूजने को कहता ही कौन है? वह तो केवल आधार रूप हैं। बिलकुल बिना देखी हुई वस्तुका अनुमान कोई कैसे कर सकता है? इसलिए एक मूर्त्ति उसके लिए बना दी। पहिले वह उस प्रत्यक्ष मूर्त्ति का ध्यान करे। वह मन्दिरमें जाकर उस मूर्त्तिको देखे फिर वह उसी मूर्त्तिरूपको बिना मन्दिर वाली पत्थर की मूर्त्तिको देखे। इस प्रकार वह जहाँ चाहे उसी मूर्त्ति को देख सके। यही ईश्वरीय ज्ञानका प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। मूर्त्तियां तो केवल आधार रूप और निर्बलोंको केवल उसी प्रकार की मदद देनेके लिए हैं जैसी कि बच्चों को वर्णमाला की शिक्षा देते समय गुटकोंसे होता हैं। रही मूर्त्तियोंके रूप की, सो ईश्वरका ध्यान

किसी रूपमें करो। वह तो निराकार है और प्रत्येक रूप धारण कर सकता है। और फिर कोईसा भी धर्म्म लो मूर्त्तियां किसी न किसी रूपमें सभी धर्म्मो में हैं। धर्म्मग्रन्थ धर्म्मचिन्ह जैसे क्रास इत्यादि, धर्म्म चित्र सभी मूर्त्तियों की ही श्रेणीमें हैं क्योंकि किसी विपरिजनके इनमेंसे किसी भी वस्तुका अपमान करनेसे धार्म्मिक मनुष्यको ग्लानि होती है। सभी धर्म्मों की ऐसी ही धारणा है।

विज्ञानी—सभी धर्म्मों की हो या एक धर्म्म की, वैज्ञानिकके समक्ष सब एकसे ही हैं। मैं किसी धर्म्मको नहीं मानता। मेरा धर्म्म एक वैज्ञानिक धर्म्म है और इसकी समस्याएं कभी भी किसी धर्म्मके विरुद्ध न पड़ेंगी। इसकी बातें सभी धर्म्मोंमें समान रूपसे शामिल हैं। मैं सत्य और ईमानदारीका अवश्य पोषक हूं लेकिन इस लिए नहीं कि मुझे ऐसा करनेसे अगले जन्ममें सुख मिलेगा अथवा मैं किसी ब्राह्मणके घर जन्म लूंगा वरन् इसलिए कि ऐसा करनेसे मैं इसी जीवनसमरमें सफलता प्राप्त कर सकूंगा। मिथ्यावादसे मेरी बातोंका मान सदाके लिए घट जावेगा। बेईमानी करनेसे एक व्यापारीके व्यापारकी भारी हानि होगी। यदि मैं कभी दूसरों की मदद नहीं करूंगा तो मुझे भी आवश्यकता पड़ने पर कोई सहायता न देगा। यही बातें हैं। हास्य रूपमें या गल्पके समय मिथ्यावादनसे मैं पाप नहीं समझता। ईश्वरीयवाद भी मैं सर्वथा व्यर्थ नहीं समझता। यह किसी महान् पुरुषकी अन्वेषण-शक्तिका प्रतिभाशाली प्रमाण है। इसके द्वारा ये पुरुष जो अपने मस्तिष्कसे कभी काम न लेते अथवा जो अपनी आगामी दशाका अनुमान अपनी आजकी करनीसे न कर पाते सुधारे जा सकते हैं। धर्म्मकी ओटमें इन निर्बलों एव मूढ़ोंको ईश्वरीय ताड़नाका भय देकर उनके कुचालोंकी कुछ रोककी जा सकती है और प्रायः धर्म्मका अन्वेषण इसी अभिप्रायसे हुआ होगा। परन्तु आजकल तो इसमें भलाईकी अपेक्षा बुराइयां अधिक समा गई हैं और बुरे मनुष्योंके कुचालोंको रोकनेके बदले इसके ही कुचालोंसे मनुष्यों को बचना दुर्लभ मालूम पड़ने लगा है। मैं तो ऐसी बातोंको कभी मानने वाला नहीं हूं जिनका कि सब कुछ अदृश्य ही में हो।

मो०—क्यों, क्या किसी वस्तुका अप्रत्यक्ष होना ही उसके न माने जानेके लिए उपयुक्त कारण हो सकता है। विज्ञानके ही अंदर और प्रायः इसके प्रत्येक विभागमें अनेक बातें ऐसी होती हैं जो देखी नहीं जातीं, फिर तुम क्यों मानते हो। रसायनमें ही देखो। एक अणु, अणुके अन्दर परमाणु एवम् उनका विशिष्ट प्रबन्ध और प्रत्येक परमाणुके अभ्यन्तरगत विशिष्ट रूपसे प्रबन्धित चक्राकारोंमें विद्युत कण क्या यह सब तुमने देखे हैं? कार्बनिक रसायनके ऐसे यौगिकोंका अनुमान करो जिसके अणुमें दो तीन सौसे भी अधिक परमाणु हों, फिर उस अणुमें इन परमाणुओंको प्रबन्धित करो, फिर इन परमाणुओंके अन्दर उन सब विद्युत कणोंको प्रबन्धित करो? कितना जटिल और पेचीदा रूप बना। यदि किसी यन्त्रकला-कुशलसे इसकी मूर्ति बनानेको कहो तो वह प्रायः एक मील भरकी जगह लेकर ही सब प्रबन्धित दिखला सकेगा। फिर भी उस वस्तुके उस न्यूनतम भागमें जो तुम हाथमें अथवा चुटकीमें लेनेमें समर्थ हो कमसे कम सहस्रों अणु होंगे। क्या यह समस्या कुछ कम जटिल है? क्या ईश्वरीय समस्याकी अपेक्षा इस समस्याके अनुमानमें अनुमान शक्तिको अधिक फैलाना नहीं पड़ता है? विज्ञान भी यदि माना जाय तो मानुषिक समस्याओंको सरल करनेके लिए ही था परन्तु अब यह स्वयम् इतना जटिल होता है कि अल्प समय में ही संसारके लिए इसका रूप बड़ा भयंकर हो जावेगा।

विज्ञानी—यद्यपि इन अणुओं और अणुओंके अभ्यन्तर गत विद्युत कणों को किसी ने देखा नहीं है परन्तु फिर भी अणुओं को फोड़ा जा सकाता है। उनके फूटनेसे विद्युत कण इधर उधर उड़ते हुए पाए गए हैं और भागते समय उनका चित्र लिया जा सका है। इन सब प्रमाणोंसे इनकी परिस्थिति भली भांति ज्ञात होती है। मुझे ऐसी परिस्थितियों ने

कभी भी चक्कर में नहीं डाला। परन्तु आज जो तुमने यह जटिलता प्रगटकी उससे मेरा हृदय कुछ कुछ चिन्तित अवश्य होने लगा है। इसमें कुछ ऐसी बात तो नहीं है जो समझी न जा सके परन्तु इसकी जटिलताका प्रत्यक्ष एवम् ऐसा स्पष्ट रूप मैंने पहिले कभी न देखा था।

मो०—ऐसा जटिल रूप भी अब तुम लोगोंको पूर्ण परिचित और अति सरल प्रतीत होने लगा है। इसका कारण केवल यही है कि अपना सारा बल लगाकर तुम लोगों ने बीस पचीस वर्षों तक इसका अध्ययन किया है और क्रम क्रम से इसके अङ्ग अङ्गको समझते चले आए हो। ईश्वरीयवादमें कोई इतना ध्यान ही नहीं लगाता। तात्कालिक लाभ चाहने लगते हैं। विद्याध्ययनमें सभी पचास साठ रुपया मासिक व्यय करते हैं और यह व्यय बहुधा बीस वर्षसे अधिक समय तक भी पहुँच जाता है और कोई उससे लाभ प्राप्त करनेकी शीघ्रता नहीं करता। यदि ईश्वरीय ज्ञानका भी अध्ययन किया जावे तो उससे इस समयसे कममें ही वैज्ञानिक लाभकी अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो जावेगा। व्ययकी तो बात ही नहीं। इस अध्ययनमें धनकी आवश्यकता ही नहीं। फिर जो तुमने अपने बड़े बड़े नेताओं द्वारा इसकी जटिलताएं सुलझानेकी बात कही सो तो ईश्वरीय ज्ञानके भी नेता लोग हैं जिन्हें ऋषि कहते हैं। उनके पास अध्ययन करनेसे इन बातोंकी जटिलताका कभी ज्ञान भी न होगा। ऋषियोंका अभाव आजकल अवश्य है परन्तु फिर तुम्हारा विज्ञान भी तो एक ऐसे समयसे आरम्भ हुआ जब संसारमें कोई भी वैज्ञानिक न था। ईश्वरीय ज्ञानमें प्रकाश डालनेके लिए तो अब इतने बड़े बड़े ग्रन्थ एवम् साधुओंका ज्ञान है भी। यदि कोई चेष्टा करे और ऐसा प्रयत्न करें जैसे कि आरम्भमें विज्ञानका प्रकाश करनेवालों ने की थी तो अवश्य एक अतुल लाभ एवम् चिरस्थाई आनन्द प्राप्त हो सकेगा। परन्तु इधर तो कोई प्रयोग करता ही नहीं। यदि किसी ने किया भी तो दो दिनमें तात्कालिक लाभ न पाकर फिर उसकी अवहेलना कर दी।

विज्ञानी—सम्भव है। परन्तु मुझे तो ईश्वरीय शक्तिकी स्थिति माननेकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। यह वृक्ष कैसे बने, यह पशु कैसे बने, वृक्ष एक ही स्थान पर पड़े पड़े कैसे बलिष्ठ हो जाते हैं यह बातें ईश्वरीय शक्तिका प्रत्यक्ष रूप कही जा सकती हैं परन्तु केवल अज्ञानियोंके लिए; मुझे तो इनमें कोई विशेष बात मालूम ही नहीं होती। तुम्हें भी जो वनस्पति शास्त्रका ज्ञान है उससे इन सबकी क्रियाओंका ज्ञान तो होगा ही। फिर तुम इनमें एक अपूर्व शक्तिका आभास कैसे समझते हो? हाँ यह अवश्य है कि हम लोग अभी इतने इतने सूक्ष्म रूप एवम् यन्त्र नहीं बना सकते हैं और यह भी अवश्य है कि हम कोटिशः ऐसी रासायनिक प्रतिक्रियायें जो इन जीवधारियोंमें होती है नहीं कर सकते हैं और जो कर भी सकते हैं सो भी इतने अल्प समयमें नहीं जितनेमें कि वह जीवधारियोंमें हो जाती है, परन्तु फिर भी अभी तो विज्ञानका जन्म ही हुआ है, जो उन्नति हम लोगों ने इतने दिनोंमें की है उसी गतिको स्थिर रखनेसे बड़ी बड़ी आशाएं की जा सकती हैं।

मो०—और उसीके साथ मनुष्यके जीवनकी संकीर्णता? उसको कहां तक बढ़ानेका विचार करते हो? मेरे अनुमानसे तो मानुषिक जीवन जितना ही सरल हो उतना ही अच्छा है।

विज्ञानी—यदि मानुषिक जीवन सरल किया जा सके तो मैं उस सरलता पर हृदयसे बधाई दूंगा परन्तु मैं समझता हूँ कि यह सम्भव नहीं है। विज्ञान वास्तवमें संकीर्णताकी ओर जा रहा है और यद्यपि मुझे संकीर्णतासे भय लगता है परन्तु फिर भी मैं उसके विरुद्ध आन्दोलन करनेका साहस नहीं कर सकता क्योंकि मैं जानता हूं कि सांसारिक उन्नतिके लिए संकीर्णतासे बचा नहीं जा सकता।

मो०—बचा क्यों नहीं जा सकता! क्या तुम नहीं जानते कि पहिलेके भारतवासियोंका जीवन

कैसा सरल और कैसा उच्च था। मैं तुम्हें उसी जीवनकी ओर ले चल सकता हूँ।

विज्ञानी—तो तुम विज्ञानके विरुद्ध आन्दोलन करोगे और यह आन्दोलन वैज्ञानिकोंको सह्य न होगा।

पांचवां अध्याय

सरल रेखाओंके बीचके कोण

(ले० गणितज्ञ)

६५-दो ज्ञात सरल रेखाओंके बीचका कोण निकालना।

कल्पना करो कि दो सरल रेखायें च छ, और च ज य—अक्ष से छ और ज बिन्दु पर मिलती हैं।

(१) मान लो कि इन रेखाओंके समीकरण ये हैं :—

चित्र २३

$$\left.\begin{array}{l} र = त_१ य + ग_१ \\ र = त_२ य + ग_२ \end{array}\right\} \ldots (१)$$
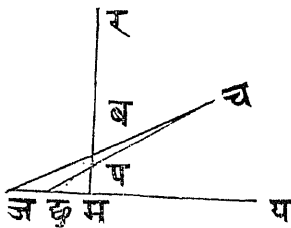
अतः सूक्त ४७ के अनुसार—

स्पर्श च छ य = $त_१$ और स्पर्श च ज य = $त_२$

परन्तु $\angle$ छ च ज = $\angle$ च छ य − $\angle$ च ज य

अतः स्पर्श छ च ज = स्पर्श (च छ य − च ज य)

$$= \frac{\text{स्पर्श च छ य} - \text{स्पर्श च ज य}}{१ + \text{स्पर्श च छ य. स्पर्श च ज य}}$$

$$= \frac{त_१ - त_२}{१ + त_१ त_२}$$

अतः दोनों रेखाओं के बीच का कोण छ च ज

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{त_१ - त_२}{१ + त_१ त_२}$$

[यदि किसी उदाहरणमें यह परिणाम धनात्मक हो तो समझना चाहिये कि यह स्पर्श न्यून कोण का निकाला गया है और यदि परिणाम ऋणात्मक हो तो यह स्पर्श अधिक कोणका समझना चाहिये।]

(२) सरल रेखाओंके निम्न समीकरण मान कर भी परिणाम निकाला जा सकता है।

$$\left.\begin{array}{l} क_१ य + ख_१ र + ग_१ = 0 \\ क_२ य + ख_२ र + ग_२ = 0 \end{array}\right\}$$

इन दोनों समीकरणों को क्रमशः $ख_१$ और $ख_२$ से भाग देने पर :—

$$\left.\begin{array}{l} र = -\frac{क_१}{ख_१} य - \frac{ग_१}{ख_१} \\ र = -\frac{क_२}{ख_२} य - \frac{ग_२}{ख_२} \end{array}\right\} \ldots (२)$$

ये समीकरण भी ऊपरके समीकरण (१) के अनुरूप हैं। दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि—

$$त_१ = -\frac{क_१}{ख_१} \text{ और } त_२ = -\frac{क_२}{ख_२}$$

अभी हमने दोनों रेखाओंके बीचके कोण का मान स्पर्श$^{-१}$ $\frac{त_१ - त_२}{१ + त_१ त_२}$ निकाला था। $त_१$ और $त_२$ का उपयुक्त मान देने से :—

$$\text{कोण} = \text{स्पर्श}^{-१} \left(\frac{-\frac{क_१}{ख_१} + \frac{क_२}{ख_२}}{१ + \left(-\frac{क_१}{ख_१}\right).\left(-\frac{क_२}{ख_२}\right)} \right)$$

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \left(\frac{\frac{क_२}{ख_२} - \frac{क_१}{ख_१}}{१ + \frac{क_१ क_२}{ख_१ ख_२}} \right)$$

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{क_२ ख_१ - क_१ ख_२}{ख_१ ख_२ + क_१ क_२}$$

६६-उस अवस्थाको ज्ञात करना जब कि दोनों सरल रेखायें परस्परमें समानान्तर हों।

दो सरल रेखायें समानान्तर तब होती हैं जब उनके बीचका कोण शून्य हो। यदि कोण शून्य है तो उसका स्पर्श भी शून्य होगा।

यदि गत सूत्रमें कोणका स्पर्श

$$= \frac{त_1 - त_2}{1 + त_1 त_2} = 0$$

$$\therefore त_1 - त_2 = 0$$

$$\therefore त_1 = त_2$$

अतः यदि दो रेखाओंका समीकरण 'त' के रूपमें दिया गया है तो वे तब समानान्तर होंगी जब उन दोनों के 'त' बराबर होंगे। अर्थात् वे दोनों केवल स्थिर पदोंमें भिन्न होंगी।

इसी प्रकार यदि समीकरण का य+खर+ग=० के रूपमें हैं तो उनके बीचके कोणका स्पर्श शून्य करनेसे समानान्तर रेखायें मिल सकती हैं :—

अर्थात्

$$\frac{क_2 ख_1 - क_1 ख_2}{क_1 क_2 + ख_1 ख_2} = 0$$

$$\therefore क_2 ख_1 = क_1 ख_2$$

$$\therefore \frac{क_1}{क_2} = \frac{ख_1}{ख_2}$$

इस अवस्थामें रेखायें समानान्तर होंगी।

अभ्यास—उस सरल रेखाका समीकरण निकालो जो (३, −२) बिन्दुसे होकर जाती है और ५ य + ६ र + ८ = ० रेखाके समानान्तर है।

किसी भी रेखाका जो ५ य + ६ र + ८ = ० के समानान्तर है, समीकरण निम्न रूपका होगा—

$$५ य + ६ र + ग = ०$$

यदि यह रेखा (३, −२) बिन्दुसे होकर भी जावे तो इस समीकरणमें य और र को इस बिन्दु के युग्मांकोंका मान देने पर :—

$$५ \times ३ + ६ \times (-२) + ग = ०$$

$$\therefore १५ - १२ + ग = ०$$

$$ग = -३$$

अतः समानान्तर रेखाका पच्छित समीकरण यह है :—

$$५ य + ६ र - ३ = ०$$

६७—उस अवस्थाको ज्ञात करना जब दो सरल रेखायें जिनके समीकरण दिये हुए हैं, परस्परमें लम्ब रूप हैं:—

कल्पना करो कि सरल रेखाओंके समीकरण ये हैं :—

$$र = त_1 य + ग_1$$

$$र = त_2 य + ग_2$$

इन दोनोंके बीचके कोणका

$$स्पर्श = \frac{त_1 - त_2}{1 + त_1 त_2}$$

ये रेखायें परस्परमें लम्ब रूप हैं अर्थात् दोनोंके बीचका कोण समकोण है जिसका स्पर्श अनन्त (∞) है अतः—

$$\frac{त_1 - त_2}{1 + त_1 त_2} = \infty$$

$$\therefore 1 + त_1 त_2 = 0$$

$$\therefore त_1 = -\frac{1}{त_2}$$

अतः यदि रेखा $र = त_1 य + ग_1$ रेखा $र = त_2 य + ग_2$ पर लम्ब रूप है तो $त_1 = -\frac{1}{त_2}$।

इसी प्रकार यदि सरल रेखाओं का समीकरण :—

$$क_1 य + ख_1 र + ग_1 = 0$$

$$और\ क_2 य + ख_2 र + ग_2 = 0$$

है जिनमें $त_1 = -\frac{क_1}{ख_1}$ और $त_2 = -\frac{क_2}{ख_2}$ तो ये रेखायें तब लम्ब रूप होंगी जब :—

$$\left(-\frac{क_1}{ख_1}\right)\left(-\frac{क_2}{ख_2}\right) = -1$$

$$\therefore क_1 क_2 + ख_1 ख_2 = 0$$

उप सिद्धान्त :—यह स्पष्ट है कि ये निम्न सरल रेखायें परस्परमें लम्ब रूप हैं :—

$क_१ य + ख_१ र + ग_१ = ०$

$ख_१ य - क_१ र + ग_२ = ०$

क्योंकि उनके 'त' ओं का गुणनफल -१ है अर्थात्

$$-\frac{क_१}{ख_१} \cdot \frac{ख_१}{क_१} = -१$$

अतः यह स्पष्ट है कि यदि किसी समीकरण में य के गुणक को र का गुणक कर दिया जाय और र के गुणक को य का गुणक कर दिया जाय और उन दोनों में से किसी एक का धनर्ण (धन या ऋण) चिह्न परिवर्तित कर दिया जाय तो इस प्राप्त समीकरण द्वारा सूचित रेखा पूर्व समीकरण द्वारा सूचित रेखा के लम्ब रूप होगी।

अभ्यास—उस सरल रेखाका समीकरण निकालो जो (३,—५) विन्दु से होकर जाती है और $२ य + ३र = ४$ के लम्ब रूप है।

गत उप सिद्धान्त के अनुसार कोई रेखा जो इस समीकरणः—

$$२य + ३र - ४ = ०$$

के लम्ब रूप है, निम्न समीकरण द्वारा सूचित की जा सकती है :—

$$३य - २र + गा = ०$$

यह रेखा (३, $-$५) विन्दु से भी होकर जाती है अतः—

$$३ \times ३ - २. (-५) + गा = ०$$

$$९ + १० + गा = ०$$

$$गा = -१९$$

अतः पच्छित समीकरण $३य - २र - १९ = ०$ है।

६८—उन रेखाओंके समीकरण निकालो जो किसी ज्ञात बिन्दु (या, रा) से होकर जाती हैं और जो दी हुई रेखा $र = त य + ग$ से कोई ज्ञात कोण $ट°$ बनाती हैं।

दिये हुए बिन्दु ब के युग्मांक (या, रा) हैं। च प फ दी हुई रेखा है जिसका समीकरण
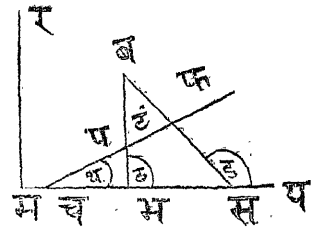
चित्र २४

$$र = त य + ग$$

है। यह रेखा य अक्ष से $थ°$ कोण बना रही है, अतः—

$$स्पर्श\ थ° = त$$

सामान्यतः जब तक $ट°$ कोण शून्य अथवा समकोण न हो, दो रेखायें ब प भ और ब फ स दी हुई रेखा से $ट°$ कोण बनाती हुई खींची जा सकती हैं। कल्पना करो कि ये दोनों रेखायें य अक्ष से $ठ°$ और $ड°$ कोण बनाती हैं। अतः दोनों पच्छित रेखाओंके समीकरण सूक्त ५९ के अनुसार निम्न होंगे :—

$$र - रा = स्पर्श\ ठ° \ (य - या) ...(१)$$

$$र - रा = स्पर्श\ ड° \ (य - या) ...(२)$$

$$तथा\ ठ° = \angle प च भ + \angle च प भ = \angle प च भ + \angle ब प फ = थ° + ट°$$

$$और\ ड° = \angle प ब फ + \angle ब भ स$$
$$= १८० - २ट + ठ$$
$$= १८० - २ट + थ + ट$$
$$= १८० - ट + थ$$

$$अतः\ स्पर्श\ ठ° = स्पर्श\ (ट + थ)$$

$$= \frac{स्पर्श ट + स्पर्श थ}{१ - स्पर्श ट.\ स्पर्श थ} = \frac{स्पर्श ट + त}{१ - त\ स्पर्श ट}$$

$$और\ स्पर्श\ ड° = स्पर्श\ (१८० - ट + थ)$$
$$= स्पर्श\ (थ - ट)$$
$$= \frac{स्पर्श थ - स्पर्श ट}{१ + स्पर्श ट.\ स्पर्श थ}$$
$$= \frac{त - स्पर्श ट}{१ + त\ स्पर्श ट}$$

स्पर्श ठ और स्पर्श ड के ये मान समीकरण (१) और (२) में लगाकर हमें सरल रेखाओंके पच्छित समीकरण निम्न रूपमें मिलेंगे।

$$र - रा = \frac{स्पर्श ट + त}{१ - त\ स्पर्श ट} (य - या)$$

$$र - रा = \frac{त - स्पर्श ट}{१ + त\ स्पर्श ट} (य - या)$$

६९-यह सिद्ध करना कि बिन्दु (या, रा) का किसी रेखा

$$का\ य + खा\ र + गा = ०$$

के एक ओर या दूसरी होना काया + खारा + गा के धनात्मक या ऋणात्मक होने पर निर्भर है।
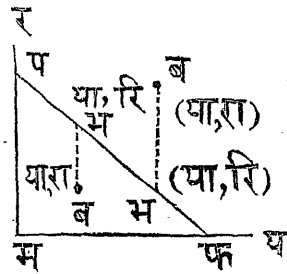
चित्र २५

कल्पना करो कि प फ रेखाका समीकरण

$$का\ य + खा\ र + गा = ०$$

है और ब बिन्दुके ज्ञात युग्मांक (या, रा) हैं। ब से एक रेखा र-अक्षके समानान्तर खींचो। यह प फ से भ स्थान पर मिलती है।

मान लो कि भ के युग्मांक (या, रि) हैं। बिन्दु भ सरल रेखा पफ पर है। अतः

$$का\ या + खा रि + गा = ०$$

$$\therefore\ रि = - \frac{गा + का\ या}{खा} \quad \cdots (१)$$

चित्रसे स्पष्ट है कि ब भ य-अक्षकी धनात्मक या ऋणात्मककी दिशामें तब खींचा गया है जब ब बिन्दु पफ रेखाके एक ओर है या दूसरी ओर अर्थात् यह इस पर निर्भर है कि रि > या < रा अर्थात् रि - रा धन है या ऋण है।

समीकरण (१) से —

$$रि - रा = - \frac{(का\ या + गा)}{खा} - रा$$

$$= - \frac{१}{खा} [\ का\ या + गा + खा\ रा\ ]$$

अतः बिन्दु (या, रा) का रेखा पफ के एक या दूसरी ओर का या + खा रा + गा के धनात्मक अथवा ऋणात्मक होने पर निर्भर है। यदि का या + खा रा + गा धनात्मक हो हम बिन्दुको रेखाके धनात्मक और स्थित कहेंगे और यदि ऋणात्मक हो तो बिन्दु रेखाके ऋणात्मक ओर कहा जावेगा।

उपसिद्धान्त—बिन्दु (या, रा) और मूल बिन्दु किसी दी हुई रेखाके एक ही ओर तब होंगे जब का या + खा रा + गा
और का $\times$ ० + खा $\times$ ० + गा
दोनों ऋण या धन हों अर्थात् का या + खा रा + गा का वही धनर्ण संकेत हो जो अकेला गा का है।

उदाहरणमाला ४

१—निम्न सरल रेखाओंके बीचके कोण निकालो :—

(i) र = २ य + ५ और ३ य + र = ७

(ii) य - ४ र = ३, और ६ य - र = ११

(iii) का य + खा र + गा = ०, और (क + ख) य - (क - ख) र = ०

(iv) र = ३ य + ७ और य - ३ र + ८ = ०

[उत्तर—४५°, स्पर्श$^{-1}\frac{२३}{१०}$, ४५°, स्पर्श$^{-1}\frac{४}{३}$]

२—सिद्ध करो कि बिन्दु (२, -१) ; (०,२) ; (२,३) और (४,०) किसी समानान्तर चतुर्भुजके कोणीय बिन्दु हैं। उसके कर्णोंके बीचके कोण भी निकालो।

[उत्तर स्पर्श$^{-1}$२]

३—उन दो सरल रेखाओंके समीकरण निकालो जो बिन्दु (२,३) से होकर जाती हैं और य + २ र = ० रेखा से ४५° का कोण बनाती है।

[उत्तर य − ३ र + ७ = ०; ३ य + र = ९]

४—उस सरल रेखाका समीकरण निकालो जो (५, −३) बिन्दुसे होकर जाती है और ३ य + ५ र + ७ = ० के समानान्तर है।

[उत्तर ३ य + ५ र = ०]

५—उस सरल रेखाका समीकरण निकालो जो (४,७) से होकर जाती है और ५ य + ६ र = ९ के लम्ब रूप हो।

[उत्तर ६ य − ५ र + ११ = ०]

छठा अध्याय

लम्बोंकी लम्बाइयां और कोणोंके अर्द्धकोंके समीकरण

७०, उस लम्बकी लम्बाई निकालना जो किसी ज्ञात विन्दुसे किसी ज्ञात रेखा पर खींचा गया है।
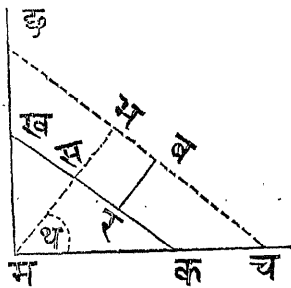
चित्र २६

(१) कल्पना करो कि किसी सरल रेखा क ख का समीकरण यह है :—

य कोज्या थ + र ज्या थ − ल = ०

इस रेखा पर म से एक लम्ब म स खींचा गया है जिसकी लम्बाई ल है और यह लम्ब य−अक्ष से थ° का कोण बनाता है। अतः ∠स म क = थ, और म स = ल।

ब कोई ज्ञात बिन्दु है जिसके युग्मांक (या, रा) हैं। इस बिन्दुसे क ख पर एक लम्ब ब र खींचा गया है जिसकी लम्बाई निकालनी है। ब से एक रेखा क ख के समानान्तर खींचो और म स को बढ़ाकर इस रेखा में भ बिन्दु पर मिला दो। यदि म भ की लम्बाई ला हो तो सूक्त ५२ के अनुसार ब भ रेखा का समीकरण यह होगा:—

य कोज्या थ + र ज्या थ − ला = ०

यह रेखा ब बिन्दु (या, रा) से भी होकर जाती है, अतः या कोज्या थ + रा ज्या थ — ला = ०

∴ ला = या कोज्या थ + रा ज्या थ

पर ऐच्छिक लम्ब ब र = म भ − म स

= ला − ल

= या कोज्या थ + रा ज्या थ − ल

अतः लम्ब की लम्बाई सरल रेखाके समीकरणमें दिये हुए बिन्दु के युग्मांक स्थापित कर देनेसे प्राप्त हो सकती है।

(२) यदि रेखाका समीकरण

का य + खा र + गा = ०

हो, तो भी लम्बकी लम्बाई निकाली जा सकती है। सूक्त ५३ के समान इसे

$\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}$ से भाग देने पर—

$$\frac{\text{का य}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}} + \frac{\text{खा र}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}} + \frac{\text{गा}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}} = 0$$

इस समीकरणकी य कोज्या थ + र ज्या थ − ल = ० से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि :—

$$\text{कोज्या थ} = \frac{\text{का}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}}$$

$$\text{ज्या थ} = \frac{\text{खा}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}}$$

$$\text{और} -\text{ल} = \frac{\text{गा}}{\sqrt{(\text{का}^2+\text{खा}^2)}}$$

ऊपर हमने कहा है कि बिन्दु (या, रा) से इस रेखा पर लम्बकी लम्बाई

= या कोज्या थ + रा ज्या थ = ल

$$= \frac{\text{का या}}{\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}} + \frac{\text{खा रा}}{\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}}$$

$$+ \frac{\text{गा}}{\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}}$$

$$= \frac{\text{का या} + \text{खा रा} + \text{गा}}{\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}}$$

अतः (या, रा) बिन्दु से काय + खार + गा = ० पर लम्बकी लम्बाई निकालनेके लिये पहले तो समीकरणमें बिन्दुके युग्मांक स्थापित करने चाहियें और फिर उसको य और र के गुणकोंके वर्गोंके योगके वर्ग मूल से भाग देना चाहिये।

उपसिद्धान्त – (१) मूल बिन्दु (०,०) से

काय + खार + गा = ०

$$\text{पर लम्ब की लम्बाई} = \frac{\text{गा}}{\sqrt{(\text{का}^2 + \text{खा}^2)}}$$

(२) सूक्त ६९, के अनुसार लम्बकी लम्बाई का धनात्मक और ऋणात्मक होना (या, रा) बिन्दुके एक ओर या दूसरी ओर होने पर निर्भर है।

७१, उन सरल रेखाओंका समीकरण निकालना जो दो दी हुई रेखाओं के बीचके कोणों को दो बराबर भागों में बांटती हैं, अर्थात् दो रेखाओं के बीच के कोणों के अर्धकों के समीकरण निकालना। कल्पना करो कि दो रेखायें अप₁ और अप₂ जिनके समीकरण

$$\text{क}_1\text{य} + \text{ख}_1\text{र} + \text{ग}_1 = 0 \ldots(1)$$

$$\text{क}_2\text{य} + \text{ख}_2\text{र} + \text{ग}_2 = 0 \ldots(2)$$

हैं, परस्पर में अ पर कटती हैं और इनके बीचके कोणोंके अर्द्धक अब₁ और अब₂ हैं। इन अर्द्धकों पर कोई बिन्दु भ लो और इस बिन्दु से रेखाओं पर भ न₁ और भ न₂ लम्ब खींचो।

चित्र २७

सभी बातों में △ भ अ न₁ = △ भ अ न₂

अतः लम्ब भ न₁ = लम्ब भ न₂
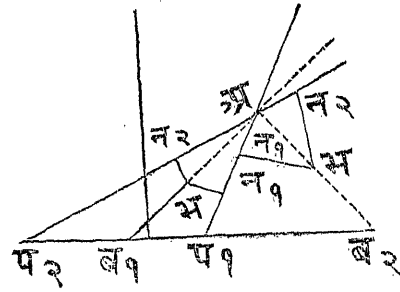
इन रेखाओं के समीकरण इस प्रकार लिखो कि ग₁ और ग₂ ऋणात्मक हों और $\sqrt{(\text{क}_1^2 + \text{ख}_1^2)}$ तथा $\sqrt{(\text{क}_2^2 + \text{ख}_2^2)}$ दोनों धनात्मक हों, अतः सूक्त ७० के अनुसार, यदि भ बिन्दु के युग्मांक (य, र) हों, तो भ न₁ और भ न₂ की लम्बाई यह होगी।

$$\frac{\text{क}_1\text{या} + \text{ख}_1\text{रा} + \text{ग}_1}{\sqrt{(\text{क}_1^2 + \text{ख}_1^2)}} \text{ और } \frac{\text{क}_2\text{या} + \text{ख}_2\text{रा} + \text{ग}_2}{\sqrt{(\text{क}_2^2 + \text{ख}_2^2)}} \ldots(3)$$

यदि भ बिन्दु दोनों रेखाओं अप₁ और अप₂ के बीच के उस कोण के अर्द्धक पर है जिसके घेरने वाली रेखाओं के बीच में मूल बिन्दु विद्यमान है तो भ बिन्दु और मूल बिन्दु दोनों ही प्रत्येक रेखा के एक ओर ही स्थित होंगे अतः सूक्त ६९ के उपसिद्धान्त के अनुसार (३) की दोनों मात्रायें तथा ग₁ ग₂ या तो दोनों ही ऋणात्मक हैं या दोनों ही धनात्मक हैं। अतः

$$\frac{\text{क}_1\text{या} + \text{ख}_1\text{रा} + \text{ग}_1}{\sqrt{(\text{क}_1^2 + \text{ख}_1^2)}} = \frac{\text{क}_2\text{या} + \text{ख}_2\text{रा} + \text{ग}_2}{\sqrt{(\text{क}_2^2 + \text{ख}_2^2)}}$$

पर यह वह अवस्था है जब (या,रा) बिन्दु निम्न रेखा पर स्थित हो।

$$\frac{\text{क}_1\text{य} + \text{ख}_1\text{र} + \text{ग}_1}{\sqrt{(\text{क}_1^2 + \text{ख}_1^2)}} = \frac{\text{क}_2\text{य} + \text{ख}_2\text{र} + \text{ग}_2}{\sqrt{(\text{क}_2^2 + \text{ख}_2^2)}}$$

अतः यह अब₁ का समीकरण है।

यदि भ दूसरे अर्धक अब₂ पर हो तो परिणाम (३) की दोनों मात्राओं का धनर्ण संकेत एक दूसरे

के विरुद्ध होगा। अतः अब$_2$ का समीकरण

$$\frac{क_1 य + ख_1 र + ग_1}{\sqrt{(क_1^2 + ख_1^2)}} = -\frac{क_2 य + ख_2 र + ग_2}{\sqrt{(क_2^2 + ख_2^2)}}$$

अतः दोनों रेखाओंके बीचके कोणोंके अर्द्धकोंके समीकरण ये हैं :-

$$\frac{क_1 य + ख_1 र + ग_1}{\sqrt{(क_1^2 + ख_1^2)}} = \pm \frac{क_2 य + ख_2 र + ग_2}{\sqrt{(क_2^2 + ख_2^2)}}$$

धन संकेत उस कोणके अर्द्धकका सूचक है जिसमें मूल बिन्दु स्थित है।

७२. अभ्यास—निम्न सरल रेखाओंके बीचके कोणोंके अर्धकोंके समीकरण निकालो :—

$$४ य + ६ र + ७ = ०$$

$$और\ ३ य - २ र - ५ = ०$$

इन समीकरणों को इस प्रकार लिखने से कि दोनों में स्थिर पद धनात्मक हों :—

$$४ य + ६ र + ७ = ०$$

$$-३ य + २ र + ५ = ०$$

अतः उस कोणके अर्धकका समीकरण जिसमें मूल बिन्दु स्थित है; यह है :—

$$\frac{४ य + ६ र + ७}{\sqrt{(४^2 + ६^2)}} = \frac{-३ य + २ र + ५}{\sqrt{[(-३)^2 + २^2]}}$$

अर्थात्

$$\frac{४ य + ६ र + ७}{२\sqrt{१३}} = \frac{-३ य + २ र + ५}{\sqrt{१३}}$$

$$\therefore ४ य + ६ र + ७ = -६ य + ४ र + १०$$

$$\therefore १० य + २ र - ३ = ०$$

इसी प्रकार दूसरे अर्धकका समीकरण—

$$\frac{४ य + ६ र + ७}{\sqrt{(४^2 + ६^2)}} = -\frac{-३ य + २ र + ५}{\sqrt{[(-३)^2 + २^2]}}$$

$$\therefore ४ य + ६ र + ७ = ६ य - ४ र - १०$$

$$\therefore १० र - २ य + १७ = ०$$

७३—उस सरल रेखाका समीकरण निकालना जो दो दी हुई रेखाओंके अन्तर-खण्डसे होकर जाती है।

इस समीकरणके निकालनेका सबसे सरल उपाय यह प्रतीत होता है कि अन्तर खण्डके युग्मांक (या, रा) दी हुई रेखाओंके समीकरणों द्वारा निकाल करके मालूम करलें और फिर र − रा = त (य − या) सूत्रका उपयोग करके समीकरण ज्ञात हो जायगा। इससे भी अच्छी विधि इस प्रकार हो सकती है।

कल्पना करो कि रेखाओंके समीकरण ये हैं :-

$$क_1 य + ख_1 र + ग_1 = ० \quad \ldots (१)$$

$$क_2 य + ख_2 र + ग_2 = ० \quad \ldots (२)$$

निम्न समीकरणकी विवेचना करो :—

$$क_1 य + ख_1 र + ग_1 + च (क_2 य + ख_2 र + ग_2) = ० \quad \ldots (३)$$

यह भी एकघातका समीकरण होनेके कारण किसी न किसी सरल रेखाका अवश्य सूचक होगा। यदि उपर्युक्त (१) और (२) रेखाओंका अन्तर-खण्ड बिन्दु (या, रा) है तो यह दोनों रेखाओं पर अवश्य ही स्थित है अतः

$$क_1 या + ख_1 रा + ग_1 = ०$$

$$क_2 या + ख_2 रा + ग_2 = ०$$

और इस लिये

$$क_1 या + ख_1 रा + ग_1 + च (क_2 या + ख_2 रा + ग_2) = ०$$

यह अन्तिम समीकरण इस बातका सूचक है कि बिन्दु (या, रा,) समीकरण (३) पर भी स्थित है। अतः समीकरण (३ उस सरल रेखाका सूचक है जो दो रेखाओं (१) और (२) के अन्तर-खण्डसे होकर जाती है। इस समीकरण (३) में च को भिन्न भिन्न मान देनेसे अन्तरखण्डसे जाने वाली भिन्न रेखाओंके समीकरण उपलब्ध हो सकते हैं। इस प्रकारसे एच्छित रेखायें प्राप्त हो सकती हैं।

अभ्यास--उस सरल रेखाका समीकरण निकालो जो दो रेखायों

$$२ य + ३ र - ५ = ०$$

$$और\ ५ य - ३ र + ७ = ०$$

के अन्तरखण्डसे और बिन्दु (४,५) से संयुक्त होकर खींची जाती है।

दोनों रेखाओंके अन्तरखंडसे होकर जानेवाली प्रत्येक रेखा निम्न समीकरण द्वारा सूचित होती है :—

२ य+३ र−५+ च (५ य—३ र+७)=०...(१)

यह रेखा बिन्दु (४,५) से भी होकर जाती है, अतः

२×४+३×५—५+
च (५×४—३×५+७) =०
∴ ८+१५−५+च (२० −१५+७) =०
१२ च=—१८
$\text{च} = -\frac{३}{२}$

समीकरण (१) में च का यह मान देनेसे :—

$(\text{२य}+\text{३र}-\text{५}) - \frac{३}{२}(\text{५ य}-\text{३ र}+\text{७}) = \text{०}$

∴ ४ य+६ र−१०−१५ य+९ र−२१=०
∴ −११ य+१५ र−३१ =०
∴ ११ य−१५ र+३१ =०

यही पच्छित समीकरण है।

७४—यदि तीन सरल रेखाओंके समीकरण ये हों—

कय+खर+ग=०
काय+खार+गा=०
और किय+खिर+गि=०

और यदि हमें तीन स्थिर मात्रायें च, छ, ज इस प्रकारकी प्राप्त हो जायं कि इस समीकरण

च (क य+ख र+ग) +छ (काय+खार+गा) +ज (किय+खिया+गि) =० की पूर्ति हो जाय अर्थात् य और र का प्रत्येक मान इसमें स्थापित किया जा सके तो तीनों रेखायें एक ही विन्दु पर मिलेंगी। क्योंकि समीकरण (१) से स्पष्ट है कि किसी बिन्दुके युग्मांक यदि किन्हीं दो रेखाओंके समीकरणकी पूर्ति करेंगे तो वे तीसरे समीकरणकी भी पूर्ति अवश्य करेंगे। इस सिद्धान्त का बहुधा उपयोग किया जाता है।

अभ्यास—सिद्ध करो कि तीन सरल रेखायें जो किसी त्रिकोण के कोण बिन्दुओं को सामने वाली भुजाओं के मध्य बिन्दुओं से संयुक्त करती हैं, परस्पर में एक ही बिन्दु पर मिलेंगी।

कल्पना करो कि त्रिकोण क ख ग के कोण बिन्दु क, ख, और ग सामने वाली भुजाओं ख ग, क ग और क ख के मध्य बिन्दु त, थ और द से संयुक्त हैं। यदि क, ख और ग के युग्मांक क्रमानुसार (या, रा), (यि, रि), और (यी, री) हैं तो त, थ और द मध्य बिन्दुओं के युग्मांक ये होंगे—

$$\left(\frac{\text{यि}+\text{यी}}{\text{२}}, \frac{\text{रि}+\text{री}}{\text{२}}\right); \left(\frac{\text{या}+\text{यी}}{\text{२}}, \frac{\text{रा}+\text{री}}{\text{२}}\right)$$

$$\text{और} \left(\frac{\text{या}+\text{यि}}{\text{२}}, \frac{\text{रा}+\text{रि}}{\text{२}}\right)$$

अतः सूक्त ६० के अनुसार क त का समीकरण यह है :—

$$\text{र}-\text{रा} = \frac{\frac{\text{रि}+\text{री}}{\text{२}} - \text{रा}}{\frac{\text{यि}+\text{यी}}{\text{२}} - \text{या}} (\text{य}-\text{या})$$

अथवा

र (यि+यी−२य) −य (रि+री−२रा) +
या (रि+री) −रा (यि+यी) =०

इसी प्रकार ख थ और ग द के समीकरण निकालने से ये होंगे :—

र (यी+या−२य) −य (री+रा−२रि) +
यि (रा+री) −रि (या+यी) =०
और र (या+यि−२यी) −य (रा+रि−२री) +
यी (रा+रि) −री (या+यि) =०

इन तीनों समीकरणों को जोड़ने से योग शून्य आता है अतः ये तीनों रेखायें एक ही बिन्दु पर मिलेंगी।

उदाहरणमाला ५

१ उन लम्बोंकी लम्बाई बताओ जो (i) बिन्दु (५, ७) से सरल रेखा ४य+५=८ पर (ii)

बिन्दु (−२, ३) से ५र − ४य + ७ = ० पर (iii) बिन्दु (−८, −५) से सरल रेखा ३य + ७र + २ = ० पर खींचे गये हैं।

$$\left[\text{उत्तर } \frac{४७}{\sqrt{४१}},\ -\frac{३०}{\sqrt{४१}},\ -\frac{५७}{\sqrt{५८}} \right]$$

२ सिद्ध करो कि सरल रेखा २य + ११र = ५ पर के किसी बिन्दु से जो लम्ब दो सरल रेखाओं २४य + ७र = २० और ४र − ३य = २ पर खींचे जाते हैं परस्पर में बराबर होते हैं।

३ सिद्ध करो कि उस त्रिकोण का क्षेत्रफल जिसकी भुजाओं के समीकरण $र = त_१ य + ग_१$, $र = त_२ य + ग_२$ और य = ० हैं यह होगा।

$$\frac{१}{२}\ \frac{(त_१ - त_२)^२}{त_२ - त_१}$$

४ निम्न सरलरेखाओंके बीचके कोणोंके अर्द्धकों के समीकरण निकालो :—

(i) ५ य + ६ र − ७ = ० और २य − ६र + ३ = ०

(ii) ५ य + १२ र + ५ = ० और ४ र − ३ य + २ = ०

(iii) २य + र = ४ और र + ३य = ५

[उत्तर—(i) (− १०√१० ∓ २√६१) य − (१२√१० ∓ ६√६१) र + १४√१० ∓ ३√६१ = ०

(ii) ६४य + ८र − १ = ०, १४य − ११२ र − ५१ = ०

(iii) य (२√२ ∓ ३) + र (√२ ∓ १) = ४√२ ∓ ५]

५ उस सरलरेखा का समीकरण निकालो जो दो सरल रेखाओं

४य − ५र = २ और ५य + २र = १६

के अन्तरखण्ड से और किसी बिन्दु (४, ५) से संयुक्त होकर खींची जाती है।

[उत्तर ३य − र − ७ = ०]

"इन्द्र-धनुष"

[ले० श्री रघुनाथसहाय भार्गव एम. एस-सी.]

संसारमें कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसने प्रकृतिके अनेक अनमोल रत्नोंमेंसे इस रत्नको जिसको हम धनुष कहते हैं न देखा हो। यह भिन्न-भिन्न रङ्गोंका रङ्गा हुआ अधिकाधिक एक कभी-कभी दो, कमानके समान, सूर्यके दूसरी ओर वर्षा होनेके पश्चात् आकाशमें प्रतीत होता है। उसकी उपस्थिति बच्चोंके हेतु कैसी मनोरञ्जक, किसानके लिए कैसी आशा दिलानेवाली, तथा वैज्ञानिकोंके वास्ते कैसी विचार-शील है। परन्तु आश्चर्य होता है कि यह रत्न कहाँसे आया और आकाशमें दर्शन देकर कहाँ चला गया? क्या यह अमिट है जो स्थान-स्थान पर सूक्ष्म समयके वास्ते ठहरता हुआ, सदैव घूमता रहता है, या प्रकृति इसको उत्पन्न करती है और थोड़े समयके पश्चात् नष्ट कर देती है। विचार करनेसे दूसरे भावमें सत्यता प्रतीत होती है क्योंकि अनुभवसे देखा गया है कि धनुष कभी दिनमें दो बार कभी सप्ताहमें दो चार मरतबा दिखाई दे जाता है और कभी महीनों तक नहीं दिखाई देता है। यदि प्रकृतिकी घूमनेवाली अमिट रचनाओंमें इसका स्थान होता तो इसकी चाल प्रकट होनेके समयमें इस प्रकार अदल-बदल न रहता। परन्तु इतना अवश्य देखा गया है कि वह सदैव वर्षा होने पश्चात् ही आकाश निर्मल होने पर उदय होता है। इस बातसे यह परिणाम आवश्यक है कि इसका वर्षासे घनिष्ट सम्बन्ध है इस सम्बन्ध पर विचार करते हुए डे-कार्टेज (Descartes) ने १६३७ ई० में इसके विषयमें यह विचार प्रकट किए कि वर्षा होनेके पश्चात् वायुमंडलमें जलकी मात्रा अधिक हो जाती है। यह जल सूक्ष्म बूंदोंके रूपमें वायुमंडलमें उपस्थित रहता है और जिस समय सूर्य किरणें इन बूँदों पर आकर टकराती हैं वे अन्दर

प्रवेश करती हैं। यदि माध्यम समान रहता तो यह किरणें अपनी पूर्व-दिशामें ही चली जातीं परन्तु माध्यम भिन्न २ हो जानेके कारण अपना मार्ग त्याग करके दूसरा मार्ग अपना लेती हैं जो लम्बकी ओर झुका होता है। सूर्य प्रकाश सफेद प्रतीत होता है परन्तु सत्य तो यह है कि वह भिन्न-भिन्न रङ्गका समूह है। प्रत्येक रङ्गकी किरणोंके हेतु यह झुकाव भिन्न है अर्थात् नीली किरणोंके वास्ते अधिक और लाल किरणोंके वास्ते कम है। इसलिए पानीकी बूँदमें प्रवेश होने पर सूर्यका सफेद प्रकाश अनेक रङ्गोंमें प्रथक हो जाता है। यह अनेक रङ्गकी किरण बूँदके दूसरे गोल भाग पर टकराकर पूर्णतया परावर्तित (Reflect) होती हैं और फिर उसके पश्चात् आवर्जित (Refract) होकर वायुमें निकलती हैं जो हमारे नेत्रों तक आती हैं। इस प्रकार जल बूँदों से सूर्य प्रकाशके आवर्जन तथा परावर्त्तन होनेसे धनुष उत्पन्न होता है। ऐसे धनुष को प्रधान धनुष कहते हैं। इसके अतिरिक्त आवर्जन और दो बार पूर्ण परावर्त्तन होनेसे जो धनुष उत्पन्न होता है वह उपधनुष कहलाता है। प्रधान धनुष का अर्धव्यास ४१° का कोण बनाता है जिसका लाल रङ्ग बाहर और बैंजनी अन्दर की तरफ रहता है। उपधनुष प्रधान धनुष की अपेक्षा तीव्रता में कम परन्तु आकार में बड़ा रहता है जिसके अर्ध व्यास नेत्रों पर ५२° का कोण बनाते हैं। इसका बैजनी रङ्ग बाहर और लाल रङ्ग अन्दर रहता है। इनके अतिरिक्त तीन या चार बार पूर्ण परावर्त्तन होनेसे भी धनुष उत्पन्न होते हैं जो सूर्य की ओर मुँह करने पर दिखलाई देते हैं। यह इतने मन्दे होते हैं कि सरलतासे नहीं दिखाई देते। यदि सूर्यके समीप किसी समय बादल आ जावें तो यह कभी कभी दिखलाई दे जाते हैं। कभी कभी मन्दे धनुष प्रधान धनुषके अन्दर भी दिखलाई देते हैं जिनको अन्तर्धनुष (Supernumerary bows) कहते हैं। इनके उत्पन्न होनेके विधान उच्च कोटिके सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं जो प्रकाशके बड़े २ ग्रन्थोंमें मिल सकते हैं। इस अवसर पर हम केवल प्रधान और उपधनुष का वर्णन पूर्णरूपमें करना ही अपने लेखका उद्देश्य रक्खेंगे।
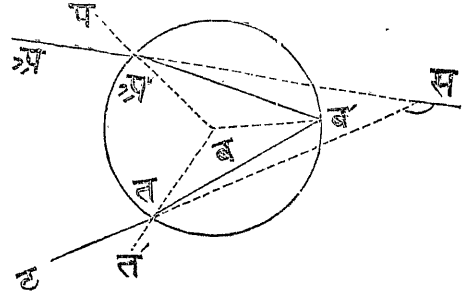
चित्र १

विचार कीजिये कि अ अ' दिशामें प्रकाश किरणें आकर अ' ब त' अपारदर्शक गोल जल बूँद पर अ' स्थान पर टकराती हैं। यदि हम ब केन्द्र को अ' से मिला दें तो वह अ' स्थान पर लम्ब रहेगा—इस प्रकार ब अ' बढ़ाने पर प अ' अ परावर्त्तन कोण (Angle of reflection) होगा। यह किरणें जल में प्रवेश होने पर ब अ' लम्बकी ओर झुक जावेंगी अर्थात् आवर्जित (Refract) होकर नीचे वाले समीकरणसे प्रगट किये हुए सम्बन्धके अनुसार ब अ' ब' आवर्जन कोण (Angle of refraction) बनावेंगी।

$$\text{ज्या आ} = \frac{\text{ज्या प}}{\text{ना}}$$ जहां ना आवर्जन संख्या है।

यह किरणें आगे चल कर बूँदके पिछले वाले भाग पर पतित होंगी। यदि हम ब ब' को मिलादें तो हमको ज्ञात होगा कि ब ब' तथा ब अ' अर्धव्यास होनेके कारण बराबर होंगे और ब' ब अ' त्रिकोण समद्विबाहु होगा, इसलिए अ' ब' किरण ब' स्थान पर आवर्जन कोण र जो आ के बराबर होगा। बनावेंगी और यदि परावर्त्तनहोने के पश्चात् किरण ब' त मार्ग अपनावेगी तो त ब' ब कोणकी मात्रा भी र होगी। इस प्रकार परावर्तन

होनेके पश्चात् वह त स्थान पर पतित होगी। ब त अर्धव्यास खींचनेसे ज्ञात होगा कि कोण ब त ब' तथा ब ब' त बराबर हैं अर्थात ब त ब'=आ

इसलिए बूँदसे आवर्जन होनेके कारण किरण त ट मार्गमें चली जावेगी जब कि

$$\frac{\text{ज्या ब त ब}'}{\text{ज्या ट त त}'}=\frac{१}{\text{ना}}$$

$$\text{या ज्या ब त ब}'=\frac{\text{ज्या ट त त}'}{\text{ना}}$$

लेकिन ∠ ब त ब'=आ, इसलिए ∠ ट त त' 'प' के बराबर होगा, यदि अ अ' तथा ट त बढ़ाई जावें तो जो झुकाव अ' पर आवर्जन द्वारा, ब' पर परावर्त्तन द्वारा और त पर आवर्जन द्वारा है मिलकर 'स' कोणके बराबर होगा। यह वह कोण है जिसके बराबर अ अ' पतित किरणको त ट बाहर निकालनेवाली किरणसे मिलानेके लिए मोड़ना पड़ेगा।

'स' कोणकी मात्रा सरलतासे प्राप्त की जा सकती है। यह विचार करने पर शीघ्र स्पष्ट हो जावेगा कि अ', ब', त स्थान पर झुकाव एक ही ओर चला गया है। इस वास्ते पूर्ण झुकावकी मात्रा मालूम करनेके लिए हमको इन सब झुकावको जोड़ना पड़ेगा।

अ' स्थान पर (प – आ), ब' स्थान पर (१८०° – २ आ) तथा त पर (प – आ) झुकाव हुआ है।

अर्थात पूर्ण झुकाव = (प – आ) + (१८०° – २ आ) + (प – आ)
= १८०° + २ प – ४ आ

न्यूनतम झुकाव का कोण

यदि हम विचार करें कि इस प्रकार समानान्तर किरणें जब बूँदों पर पतित हो रही हैं तो वह किरणें जो केन्द्र 'ब' की ओर जावेंगी बूँदेंके तल पर लम्ब होने के कारण पतित कोण शून्य बनावेंगी और वह किरणें जो स्पर्श रूप में (Tangentially) पतित होंगी ९०° का कोण बनावेंगी। इस प्रकार किसी दिशा से आनेवाली ०° तथा ९०° के अन्दर ही अन्दर पतित कोण बनावेगी। और किसी मुख्य पतित कोणके वास्ते आ आवर्जित कोण की मात्रा मालूम की जा सकती है। यदि 'प' और 'आ' की मात्रा मालूम हो जावे तो निम्न लिखित समीकरणकी सहायता से अन्तिम झुकावका मूल्य मालूम हो सकता है।

$$\text{झ} = १८० + २\ \text{प} - ४\ \text{आ}$$
$$\text{ज्या आ} = \text{ज्या प}/\text{ना}$$
$$\text{ना} = १.३३$$
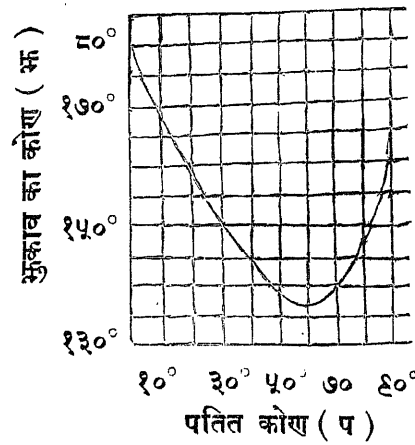
चित्र २

इस चित्रमें एक वक्र दिया हुआ है जिसमें पतित कोणकी मात्रा ०° से ९०° तक है और प्रत्येक पतित कोण के लिए झुकावको मात्रा दी हुई है। इस वक्र (Curve) पर विचार करने से ज्ञात होता है कि जिस समय प की मात्रा ०° है तो झुकाव १८०° के बराबर रहता है। किरणें पूर्ण परावर्तित होकर अपने मार्ग पर फिर वापस आ जाती हैं। जिस समय प की मात्रा ९०° होती है तो झुकाव लगभग १६४° के बराबर होता है। प की मात्रा ०° से ज्यों ज्यों बढ़ती है झुकाव कम होता चला जाता है। अन्तमें प की एक मुख्य मात्रा पर यह झुकाव न्यूनतम हो जाता है जिसके पश्चात् प की मात्रा बढ़ाने पर झुकाव बढ़ने लगता है। प की वह मात्रा ६१° है जब

कि झुकाव १३८° या (१८०—४२) होता है। क्योंकि झुकाव किसी भी किरण के वास्ते (१८०-४२) से कम नहीं होता है। इसलिए तमाम किरणें जो जल बूंदसे बाहर निकलती हैं एक समवृत्तिक शंकु (Right circular cone) के अन्दर होती हैं जिसके शीर्षक कोण का आधा ४२° के बराबर होता है।

इसके अतिरिक्त इस वक्र पर विचार करनेसे यह भी स्पष्ट होता है कि झुकावकी मात्रा वक्र (Curve) के नीचे वाले भागके निकट और स्थानकी अपेक्षा शनैः शनैः बदलती है। इसलिए बूंदसे बाहर निकलने वाली किरणें शंकुके तल
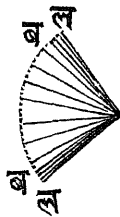
चित्र ३

पर अधिक घनिष्ट होती हैं इससे हम इस तात्पर्य पर आते हैं कि जल बूँदसे बाहर निकलनेवाली किरणें एक शंकु के अन्दर रहती हैं जिसका शीर्षक कोणका आधा ४२° के बराबर होता है और शेष भागकी अपेक्षा किरणें शंकुकी तल पर घनिष्ट होती हैं जैसा कि ऊपर वाले चित्र ३ से विदित होता है।

ऊपरवाला वक्र खींचने तथा 'आ' का मूल्य निकालनेमें आवर्जन संख्याकी मात्रा १.३३ मान ली गई है जो प्रकाशके भिन्न-भिन्न रङ्गोंकी आवर्जन-संख्याओंका औसत है। परन्तु सत्यरूपमें बैंजनी रङ्गके वास्ते आवर्जन संख्याका मूल्य लाल रङ्गकी अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार जिस समय सफेद प्रकाश बून्द पर पतित होगा, आ का मूल्य बैंजनी रङ्ग के वास्ते लाल रङ्गकी अपेक्षा कम होगा और झुकाव बैंजनी रङ्गके वास्ते लाल रङ्गकी अपेक्षा अधिक होगा। दूसरे शब्दोंमें इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि बाहर निकलनेवाली सब बैंजनी रङ्गकी किरणें एक शंकुके अन्दर होंगी जिसके शीर्षक कोण (Vertical angle) की मात्रा लाल रङ्गकी अपेक्षा कम होगी। यदि एक सफेद पर्दा किसी बूँदके सन्मुख रक्खा जाय तो उस पर गोल रङ्गे हुए लहरिये दिखलाई देंगे जिनके बाहिरी भाग लाल रङ्ग और भीतरी बैंजनी रङ्गके होंगे तथा इधर-उधरके भाग तीव्र और माध्यम मन्द दिखलाई देंगे।

उप धनुष

यह हमने आरंभमें बतला दिया है कि उप धनुष सूर्य्य किरणोंके आवर्जन तथा दो बार पूर्ण परावर्तन होने पर जो किरणें बाहर निकलती हैं उनके द्वारा विदित होता है। यदि हम चित्र नम्बर १ में विचार करें कि किरण "ब त" जो बूँदके भीतरी भाग पर त स्थान पर पतित होती है एक बार और पूर्ण परावर्तित हो तो उसका मार्ग "ब' त" की दूसरी ओर और अर्द्ध व्यास ब त पर आ° केकोणके बराबर झुका हुआ होगा यह पूर्ण परावर्तित किरण फिर बूँदके अन्दरूनी भाग पर पतित होगी जो इस बार आवर्जित होकर नियमानुसार बाहर निकल जावेगी। यह भली भाँति स्पष्ट है कि अन्दर प्रवेश करने तथा बाहर निकलने पर झुकावकी मात्रा (प – आ) है और प्रत्येक पूर्ण परावर्तन पर (१८० – २ आ) है। इस प्रकार पूर्ण झुकाव = झ

= २ (प – आ) + २ (१८० – २ आ)

= ३६० + २ प – ६ आ

पहिलेके समान पतित कोण "प" तथा पूर्ण झुकाव "झ" के सम्बन्धमें एक वक्र खींचा जा सकता है। ऐसा करने पर यह ज्ञात हुआ है कि यह वक्र पहिले वक्रके समान है। "प" की एक मुख्य मात्रा पर "झ" की मात्रा न्यूनतम हो जाती है जो २३२° के बराबर अर्थात (३६० – १२८) है।

वह सूर्य्य किरणें जो बूंदके केन्द्रकी ओर जा रही हैं बूंदके पृष्ठतल पर लम्ब होनेके कारण अन्दर

अपने ही मार्गमें चली आवेंगी और दो बार परावर्तित होनेके कारण अपना मार्ग दो बार उलटेंगी जिसके कारण झुकाव ३६०° के बराबर होगा। शेष किरणें एक शंकुके बाहरी भागमें रहेंगी जिसके शीर्षकोण का आधा (१८० – १२८) के बराबर होगा जैसा कि नीचे वाले चित्रसे स्पष्ट होता है। यह किरणें शंकुके पृष्ठके निकट अधिक घनिष्ट होती हैं। इसके अतिरिक्त बैंजनी किरणोंके हेतु "आ" की मात्रा अधिक है जिसके कारण "भ" की मात्रा

कम रहती है। 'भ' की मात्रा कम होने पर इस शंकुके शीर्ष कोणका आधा उनके लिये ज्यादा होगा और लालके वास्ते कम। इस प्रकार यदि सूर्य्य प्रकाश दो बार पूर्ण परावर्तित होनेके पश्चात् एक सफेद परदे पर पड़े तो वह एक गोल किनारीके रूपमें दिखलाई देगा जो एक बूंदके पीछे एक बिन्दु पर ५२×२=१०४ का कोण बनावेगा। ऐसी किनारीका रंग बाहर की ओर बैंजनी और अन्दर की ओर लाल दिखलाई देगा।

इन्द्रधनुषकी उत्पत्ति

जिस समय सूर्य्य प्रकाश किसी वायुमें लटकी हुई जल बूंद पर टकराता है तो उसमेंसे ऊपर बतलाये हुये प्रकारकी किरणोंका समूह निकलता है। परन्तु भिन्न २ प्रकार की किरणें भिन्न २ कोण बनानेके कारण मनुष्यके नेत्रोंपर किसी मुख्य स्थान पर एक साथ नहीं आ सकती हैं। केवल एकही प्रकार की और वह भी गिनी चुनी आकर नेत्रों पर टकरावेंगी। धनुष बहुतसी बूंदोंसे आने वाली किरणों के कारण विदित होता है। उन बहुतसी बूंदोंकी स्थिति दर्शककी स्थिति पर निर्भर रहती है जो निम्न लिखित कथनसे स्पष्ट हो जावेगी।

चित्र ५

विचार कीजिये कि च स्थान पर दर्शकके नेत्र हैं और कुछ बूंदें प, प१, प२, प३ स्थान पर एक लम्ब रेखामें उपस्थित हैं और 'च ग' सूर्य्य किरणों के समानान्तर खींची गई है। इस समय पर हम केवल उन्हीं किरणों पर विचार करेंगे जो एक बार पूर्ण परावर्तित होकर नेत्रों तक पहुंचेगी। विचार कीजिये कि वह प१ स्थानसे चलती हैं और च प१, च ग से ४१° का कोण बनाती है। इस दशामें प१ बूँद च को कुछ न्यूनतम झुकाव वाली किरणें भेजेंगीं और प१ स्थान प्रकाशित दिखलाई देगा। प स्थानसे जो किरणें च पर पहुँचेगी वह अधिक झुकाव वाली होंगी और कम संगठित होने के कारण वह स्थान मन्दा चमकेगा और "प२" स्थानसे आने वाली किरणें एक बार पूर्ण परावर्तित वाली न होंगी।

यदि हम कल्पना करें कि रेखा "च प१" च ग केचारों ओर चक्कर लगाती है तो "प१" एक गोला बनावेगी और प्रत्येक बूँद जो इस गोले पर उपस्थित होगी "च" को प्रकाश भेजेगी। यह गोला इस रीतिसे प्रकाशित विदित होगा। चूंकि न्यूनतम झुकाव लाल किरणों के हेतु ४३° और बैंजनी किरणोंके लिये ४१° है इसलिये यह धनुष

रंगीन दिखाई देगा। लाल रंग के किनारे नेत्रों पर २ × ४३° = ८६° का कोण और बैंजनी २ × ४१ = ८२° का कोण बनावेगें। यह प्रधान इन्द्र धनुषकी उत्पत्ति वर्णन करती है।

इस प्रकार यदि हम विचार करें कि प₁ बूँद से च पर वह किरणें आ रहीं हैं जो दो बार पूर्ण परावर्तित होंगी हैं और च प₂ च ग से ५८° का कोण बनाती है तो वह बूँद च को कुछ न्यूनतम झुकाव वाली किरणें भेजेगी जो दो बार पूर्ण परावर्तित हो चुकी हैं इसलिये प₂ स्थान प्रकाशित विदित होगा। प₂ से जो स्थान ऊपर हैं वह अधिक झुकाववाली किरणें भेजेगें जिस कारण वह मन्दे दिखलाई देंगे और जो स्थान प₁ तथा प₁ के बीचमें है वह च को कोई किरणें नहीं भेजेंगे। अगर हम कल्पना करें कि च प₁ रेखा चारों ओर चक्कर लगाती है तो प₁ एक गोला बनावेगा और तमाम बूँदें जो इस गोले पर उपस्थित होंगी वह च को किरणें भेजेंगे। चूंकि न्यूनतम झुकाव वाली लाल किरणें ५१° का और बैंजनी ५४° का कोण पतित किरणोंसे बनाती हैं इसलिये स्पष्ट है कि वह धनुष रंगीन होगा जिसका अन्दरूनी भाग लाल तथा बाहरी भाग बैंजनी होगा। लाल भाग के किनारे नेत्रों पर ५१ × २ = १०२° तथा बैंजनी ५४ × २ = १०८° का कोण बनावेंगे। इस प्रकार उप धनुषकी उत्पत्ति होती है। प्रधान और उप-धनुषके बीचका स्थान शेष आकाशकी अपेक्षा अधिक काला दिखाई देता है जैसा कि इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होता है।

चूंकि सूर्य्यसे आनेवाली किरणें समानान्तर नहीं होती हैं इस लिये रंग शुद्ध नहीं दिखाई देते हैं बल्कि एक दूसरे पर मिले हुए मालूम होते हैं। धुँधले वायु मंडलमें जब कि सूर्य्यकिरणोंके छितरानेसे सूर्य्यका दिखावटी आधार बड़ा हो जाता तो यह धनुष एक दूसरेके मिलनेसे सफ़ेद तक प्रतीत होने लगते हैं।

अणुओंकी उत्तेजना

(Activation of molecules)

[ले० श्रीकृष्णचन्द्र एम. एस-सी]

आरहीनियसने सबसे पहिले रसायन शास्त्रमें उत्तेजित अणुओंका सिद्धान्त रासायनिक प्रक्रियाके उच्च तापक्रम गुणकको समझानेके लिये निर्धारित किया था। उसने निम्नलिखित सम्बन्धका प्रयोग किया।

$$\frac{\text{त लघु क}}{\text{त ता}} = \frac{\text{स}}{\text{र ता}^2}$$

ता केल्विन तापक्रम, र गैसस्थिरांक है, क प्रक्रियाकी गतिका स्थिरांक है।

यहाँ पर स स्थिर संख्या है—इसमें प्रक्रियाकी गति और तापक्रमका सम्बन्ध दर्शाया गया है—

दूसरी साम्यावस्था (equilibrium) में

$$\text{खा} + \text{गा} \rightleftarrows \text{का}$$

साम्यावस्थाका स्थिरांक क तापक्रमके साथ बदलता है और इसका यह सम्बन्ध निम्नलिखित वाण्टहाफ आइसोकोरसे स्पष्ट है।

$$\frac{\text{त लघु क}}{\text{त ता}} = \frac{\text{स}}{\text{र ता}^2}$$

जिसका चलराशि-रूप इस प्रकार है—

$$\text{लघु} \frac{\text{क}_1}{\text{क}_2} = \frac{\text{स}}{\text{र}} \left(\frac{1}{\text{ता}_2} - \frac{1}{\text{ता}_1} \right)$$

इसमें स प्रक्रियासे निकला ताप है।

साधारण चीनीके उदविश्लेषणका उदाहरण देते हुये आरहीनियसने इस ऊपर लिखे हुये मतका इस प्रकार समर्थन किया है कि चीनी घोलमें दो रूपमें वर्त्तमान है, एक 'उत्तेजित' और दूसरी 'साधारण' और परिमाण साम्यावस्था (Mass equilibrium) में उत्तेजित रूप बहुत ही कम होता है और तुरन्त ही स्थायी हो जाता है। आरहीनियसका विचार है कि उत्तेजित अणु ही केवल उदविश्लेषित होते हैं और प्रक्रियाका उच्च तापक्रमगुणक पूर्णतः

उत्तेजित अणुओंकी मात्राके बढ़ जानेके कारण है। आरहीनियसने इस मतका प्रयोग उत्प्रेरण (Catalysis) की क्रिया समझानेमें भी किया है—उनके विचारमें प्रत्येक उत्प्रेरक साम्यावस्थाको 'उत्तेजित' भागकी ओर सरका देता है और यही कारण है कि प्रक्रियाकी गति बढ़ जाती है।

मार्सला और राइसका भी समीकरण आरहीनयसके समान है किन्तु उनका विचार है कि प्रक्रियाकी तभी सम्भावना है जब अणुओंकी अंतरङ्ग सामर्थ्य एक यथोचित (Critical) सीमा पर पहुँच जाती है—इसलिये इनके मतानुसार प्रक्रियाकी गति उत्तेजित अणुओंकी तायदाद पर निर्भर नहीं है परन्तु जिस गतिसे अणु अंतरङ्ग सामर्थ्य की इस सीमा पर पहुँचते हैं उस गति पर निर्भर है। उन्होंने इस सम्बन्धक प्रयोग किया है—

$$\frac{\text{त लघु क}}{\text{त ता}} = \frac{\text{इ}}{\text{र ता}^{२}}$$

इ उस अधिक अंतरङ्ग सामर्थ्यको सूचित करती है जिसकी आवश्यकता यथोचित सीमा प्राप्त करनेके लिये है और यही सामर्थ्य है जिसे प्राप्त करने पर अणु उत्तेजित होकर प्रक्रियामें भाग लेनेके योग्य हो जाते हैं। मार्सलाके समीकरणका चलराशि रूप इस प्रकार है :—

$$\text{लघु}\,\frac{\text{क}_{१}}{\text{क}_{२}} = \frac{\text{इ}}{\text{र}}\left(\frac{१}{\text{ता}_{१}} - \frac{१}{\text{ता}_{२}}\right)$$

अणु किस प्रकारसे उत्तेजित हो जाते हैं इसका विवरण नीचे दिया जाता है—इसके विषयमें कई वैज्ञानिकों के भिन्न २ मत हैं परन्तु इसका निर्णय कि सबसे अधिक कौन सा मत विश्वसनीय है अन्तमें किया जायगा।

(१) ट्रौज़, लीविस, और पैरांके मतानुसार उत्तेजना का कारण विकिरण है और इसी उत्तेजना के कारण रासायनिक प्रक्रिया होती है। अपने मत को और निश्चित रूप देते हुए उनका कहना है कि संम्भवतः परालाल किरणें (Infra-red radiation) जो कि प्रत्येक प्रक्रियामें तापक्रमके कारण वर्त्तमान हैं, साधारण अथवा तापिक रासायनिक परिवर्तन (Chemical) को गतिको तीव्र करने का कारण है।

संक्षेपमें विकिरण सिद्धान्त इस प्रकार है। आंतरिक सामर्थ्य जिसके प्राप्त होने पर एक अणु प्रक्रियामें भाग लेने योग्य हो जाता है इसको परालाल विकिरण सामर्थ्यसे जो उस प्रक्रियामें वर्तमान रहती है, प्राप्त होती है। एक बारमें सामर्थ्यका केवल एक काण्टम शोषित होता है। सामर्थ्यका एक काण्टम जिसकी झूलनसंख्या (Frequency) झ है एक अणु (molecule) को उत्तेजित करने के लिये आवश्यक है।

पैरांने इस मतको इन शब्दोंमें वर्णन किया है:— प्रत्येक रासायनिक प्रक्रिया विकिरण द्वारा आरम्भ होती। है इनकी गति विकिरण की तीक्ष्णता पर निर्भर है। साथ साथ यह तापक्रम पर भी निर्भर है क्योंकि तीक्ष्णता तापक्रम पर निर्भर है।

इस प्रकार विकिरण सिद्धान्त आइन्सटाइन के नियम का विशेष अंग है और इस नियमके अनुकूल रासायनिक क्रिया एक-वार्णिक-विकिरण (Monochromatic radiation) जिसकी झूलन संख्या झ है उसीके शोषण ही से आरम्भ होती है।

$$\text{इ}_{\text{च}} = \text{ना प झ}$$
$$E_c = Nhv$$

$\text{इ}_{\text{च}}$ उतनी सामर्थ्यका परिमाण है जो एक अणु को उत्तेजित करनेके लिये आवश्यक है। इससे यह और स्पष्ट है कि तापक्रमसे जो गतिमें तीव्रता आती है उसका सम्बन्ध विकिरणके घनत्वसे है अर्थात् यदि विकिरणका घनत्व किसी प्रकार बढ़ा दिया जावे तो रासायनिक प्रक्रियाकी गति भी बढ़ जावे।

यदि $\text{झ}_{१}$ प्रक्रियाके एक ओरकी उत्तेजित करनेवाली झूलन संख्या है और $\text{झ}_{२}$ दूसरे ओर की तो

$$\text{स} = \text{इ}_{२} - \text{इ}_{१} = \text{ना प}\,(\text{झ}_{२} - \text{झ}_{१})$$

$$\text{और}\quad \frac{\text{त लघु क}}{\text{त ता}} = \frac{\text{ना प}\,(\text{झ}_{२} - \text{झ}_{१})}{\text{र ता}^{२}}$$

इसमें स का प्रयोग प्रक्रिया (reaction) के तापके लिये किया गया है और क साम्यावस्थाका स्थिरांक है।

(२) टक्कर लगनेके कारण उत्तेजना—

यह सिद्ध है कि एक प्रकारके अणुओंका एक निश्चित अंश ही रासायनिक प्रक्रियामें भाग लेने योग्य होता है। इसे सत्य मानते हुये ट्रौज़ और लीविसने यह दिखाया है कि वायव्योंमें द्वयणुक-प्रक्रिया (Bimolecular reaction) की गति उत्तेजित अणुओंके टकरानेकी भूलन संख्या (Frequency) से नापी जा सकती है।

किसी द्वयणुक प्रक्रिया में

का + खा ⇄ का खा

का और खा के उत्तेजित अणुओंकी हर एक टक्करसे का खा का एक अणु उत्पन्न होता है। इसी कारण का खा के उत्पन्न होनेकी गति का और खा के उत्तेजित अणुओंकी टक्करोंकी गणनासे विदित होती है। एक घनशतांशमीटर में एक सैकेण्डमें का और खा के उत्तेजित अणु एक दूसरेसे कितनी बार टकराते हैं यही नाप है। इस गणनासे उन्होंने कई सम्बन्ध स्थापित किये हैं और इन सम्बन्धोंकी सत्यता लीविस और डुशमैनने द्वयणुक प्रक्रियाओंके कई उदाहरण देकर स्थापित की है। जो फल उन्हें मिले हैं उनसे यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके सम्बन्ध (जो टक्करों की गणना पर निर्भर है) एक बड़ी हद तक विश्वसनीय हैं। प्रयोगोंसे पाया हुआ फल और हिसाब लगाकर आया हुआ फल इतने समान हैं कि हम इस मतमें बड़ी भारी सत्यता का अनुभव करते हैं।

(३) अभी हालमें क्रिस्चिन्सन (Christiansen) ने मत इस प्रकार प्रकट किया है कि दो अणु जब क्रिया करते हैं तो इस क्रियाके ताप फल-स्वरूप जो अणु प्रकट होते हैं उनमें वर्त्तमान रहता है और यह उष्ण अणु अपनी उष्णता दूसरे अणुओंको पहली टक्करमें ही दे देते हैं और इस प्रकार उन्हें उत्तेजित कर देते हैं। यही क्रिया और आगे बढ़ती है और एक प्रकारकी शृंखला स्थापित हो जाती है। एक सैकेण्ड में शृंखलाकी जो कड़ियाँ उत्पन्न होती हैं वे एक सैकेण्डमें फलीभूत टक्करोंके बराराबर होती हैं।

(४) हिन्शलउड और बर्कने यह दिखाया है प्रत्येक प्रक्रियाका घात (Order) उत्प्रेरककी उपस्थितिमें भिन्न होता है। और एक ग्राम अणु को उत्तेजित करनेकी शक्ति भी उत्प्रेरक की उपस्थितिमें कम लगती है। इसलिये यह विदित होता है कि उत्प्रेरक की सतह पर अणुओंको किसी प्रकार की उत्तेजना प्राप्त होती है। इस सतह पर समानेमें अणुओंके आकारमें भिन्नता आ जाती है और यवनों (Ions) की सजावटमें भी तबदीली की बहुत भारी सम्भावना है।

(५) वर्त्तमान समयमें उत्तेजित वायव्योंका अध्ययन बहुत ध्यान पूर्वक हो रहा है और परमाणुओंकी भिन्न भिन्न प्रकार की सजावटों ने एक मनोरंजक समस्या उपस्थित कर दी है। विद्युत्-संचारसे उत्तेजित उद्जन और नोषजनमें बहुत कुछ काम हुआ है और कई मत प्रचलित हैं। विद्युत्-संचार (Electric discharge) से वायव्यके अणु परमाणुओंमें विभाजित हो जाते हैं और यह परमाणु नवीन प्रकारकी सजावटमें उत्तेजित गैसके रूपमें प्रकट होते हैं। उत्तेजित गैसके गुण साधारण गैससे सर्वथा भिन्न होते हैं परन्तु उत्तेजना की आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

उत्तेजित नोषजनके बनानेमें थोड़ी अशुद्धता की आवश्यकता है। नलीमें बहुत ही थोड़ा उद्जन-गन्धिद ($उ_2$ ग) अथवा पारद-वाष्पके वर्त्तमान होनेकी आवश्यकता है। इस नोषजनके उत्तेजित होने का क्या कारण है इसके कई मत हैं। धार का मत है कि कणोंमें विद्युतशक्ति ग्रहण करने का गुण है और उत्तेजना इस पर निर्भर है कि यह कण किस आसानीसे अपनी शक्ति निकाल सकतेहैं। जब उत्तेजित रूप अपने साधारण रूपमें परिवर्तित होता है तो प्रकाश होता है जिसे हम देख सकते हैं।

साहा और सूर का विचार है कि विद्युत् शक्ति के प्रभावसे एक प्रकारके नये रूप की उत्पत्ति हो जाती है और यह रूप स्थायी नहीं होता—इस अल्प आयु धारी रूप (नो₂) में सामर्थ्य परिमाणित है जो ८·५ वोल्ट है। उत्तेजित नोषजनसे जो दूसरे पदार्थों का किरण चित्र विकसित होता है उसका कारण यह है कि उत्तेजित नोषजन अपना सामर्थ्य उन पदार्थों के अणुओंमें तबदील कर देता है। यह मत दोष रहित नहीं है।

ट्रौज़ का विचार है कि उत्तेजित नोषजन का रूप नो₃ है क्योंकि नोषिद (Nitrides) और अजीविद (Azides) मिलते हैं।

(६) गैस की नवजात (Nascent) अवस्था को भी हम एक प्रकार की उत्तेजना कह सकते हैं। प्रत्यक्ष रूपमें हम देख सकते हैं कि लोहिक हरिद पर उस उदजन का जो उसमेंसे प्रवाहित किया जाय कोई प्रभाव नहीं होता परन्तु यदि गैस दस्तम् और उदहरिकाम्लसे बन रही हो तो लोहिक हरिद तुरन्त अवकृत (reduce) हो जाता है। इसका कारण यही है कि दूसरी अवस्थामें गैस नवजात है और इस प्रकार की उत्तेजनाके कारण बड़ी आसानीसे वह कार्य्य कर सकती है जो साधारण गैस की शक्तिके बाहर है।

अन्तमें फ्रैंक और कैरिओके काम का उल्लेख करना बहुत आवश्यक है। १६२२ में इन्होंने यह दिखाया कि परा-बैंजनी-किरणें जिनकी लहर लंबाई २५३७ आँ है, उदजनको उत्तेजित नहीं कर सकती परन्तु इन्हीं किरणों द्वारा यही गैस उत्तेजित हो सकती है यदि पारद वाष्प वर्तमान हो। उत्तेजित गैस ताम्रिक ओषिद (Cupric oxide) या वुलफ्राम ओषिद का अवकरण कर देती है।

उनका विचार है कि २५३७ आँ की किरणें पहिले पारदवाष्पमें समा जाती हैं और फिर किसी तरह उदजनमें प्रवेश कर जाती हैं जो उत्तेजित हो जाता है। उनका कथन है कि यह 'दूसरी प्रकारकी टक्कर' के कारण गैसमें प्रवेश करती हैं।

टेलर और मार्शल इन "दूसरे प्रकारकी टक्करों" से उत्पन्न उत्तेजित गैसोंसे (जिनमें पारद वाष्पकी उपस्थिति आवश्यक है) निम्नलिखित यौगिक बनानेमें सफल हुये हैं।

क₂ उ₂ + २ उ₂* = क₂ उ₆

क ओ + उ₂* = उ क उ ओ

७ उ₂* + ५ ओ₂ = ४ उ₂ ओ + ३ उ₂ ओ₂
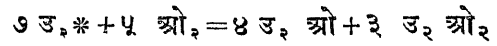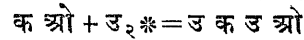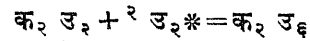
वे इस सीधे सीधे तरीकेसे अमोनिया नहीं बना सके। उन्होंने उत्तेजित उदजन और नोषजन मिलाया परन्तु कामयाब नहीं हुये इसका कारण यह था कि अमोनिया बनने के लिये नोषजन का उत्तेजित होना भी आवश्यक है।

ऊपर के मतों में कौनसा मत सब से विश्वसनीय है इस का निर्णय तब तक नहीं हो सकता जब तक हर एक मत का अध्ययन विस्तार पूर्वक न किया जाय।

परमाणुकी विरल रचना

[ले० श्री दत्तात्रय श्रीधर जोग, एम-एस-सी.]

हिटॉर्फ (Hittorf) व क्रूक्स (Crookes) के प्रयोगोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि परमाणु अभेद्य नहीं है, और ऋणाणु परमाणुका एक आवश्यक अंग है, यदि परमाणु अभेद्य नहीं है, उसका विभाग होना यदि संभव है और ऋणाणु हरएक परमाणुका एक आवश्यक अंग है तो यह प्रश्न अवश्य ही उपस्थित होते हैं कि ऋणाणुके सिवाय परमाणुके और कौनसे अंग हैं ? क्या हरएक तत्व (element) के परमाणुओंमें ऋणाणुओंको संख्या वही होती है या भिन्न होती है ? इस संबन्धमें कुछ निश्चित नियम है या नहीं ? परमाणुओंमें ऋणाणुओंकी किस प्रकार की रचना है। इस विषयमें क्या निश्चित ज्ञान मिल सका है इत्यादि ? इन सब प्रश्नोंका विचार

*का अर्थ उत्तेजित से है

प्रस्तुत और इसके आगेके लेखोंमें किया जायगा।

ऋणाणुओंके गुण कहते समय उनके संबन्धमें यह कहा गया था कि वे ऋणविद्युत् संचरित, अति सूक्ष्म व भारमें अत्यंतही हलके कण हैं। ये कण हरएक परमाणुमें कम अधिक परिमाणमें अवश्य होते हैं इसलिये परमाणु भी ऋणविद्युत् संचरित होना चाहिये। परंतु यह ठीक मालुम है परमाणु किसी प्रकार के (धन या ऋण) विद्यतसे संचरित नहीं हैं। इसका क्या अर्थ हुआ! इससे यह निश्चित सिद्ध हुआ कि ऋणाणुओंके सिवाय परमाणुमें जो दूसरा विभाग है वह धन विद्युत् संचरित है। इतना ही नहीं यह धनविद्युत् उस परमाणुके ऋणाणुओंके ऋणविद्युत्के बराबर है। इन दोनों विद्युत्के परिमाण बिलकुल बराबर होनेके कारण परमाणु विद्युत् रहित मालूम होता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि परमाणु कमसे कम दो विभागका बना है, एक ऋण विद्यत् संचरित ऋणाणु और दूसरा धन विद्यत् संचरित विभाग। ऋणाणुओंका भार अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण परमाणुका मुख्य भार इस दूसरे विभागके ही कारण अवश्य होना चाहिये। इस विभागको ही आगे केन्द्र (Nucleus) कहा गया है। इसको केंद्र क्यों कहते हैं, यह थोड़ी देरमें ही स्पष्ट हो जायगा।

प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक जे० जे० टॉमसन (J. J. Thomson) ने पहिले पहल परमाणुकी रचनाका चित्र (Structural model) देनेका प्रयत्न किया। उनके मत के अनुसार धनविद्यत् संचरित विभाग या केंद्रका भार तो लगभग परमाणु-भारके बराबर होता ही है परन्तु उसका आकार भी परमाणुके आकारके लगभग बराबर ही होता है। ऋणाणु इस केन्द्रके आसपास उसके बहुत समीप ही चक्कर लगाते हैं। टामसनने परमाणुकी घटनाके विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा। परन्तु इतनेसे ही इस विषयमें कुछ भी निश्चित ज्ञान नहीं हो सकता। इस घटनां-चित्रमें यद्यपि परमाणु के दा विभाग (केन्द्र व ऋणाणु) माने गये तोभी केन्द्रका आकार परमाणुके लगभग बराबर समझनेके कारण परमाणुकी घटना तो करीब करीब ठोस ही मानी गयी थी। परन्तु बादमें जो नये नये व महत्त्वपूर्ण प्रयोग विल्सन (C. T. R. Wilson) नामक वैज्ञानिकने किये उनसे इस ठोस घटनाके सम्बन्धमें सन्देह होने लगा। एलफा (α) और बीटा (β) नामक किरण रश्मिशाक्तिक तत्त्वोंसे (Radio-active elements) निकलते हैं। हिमजन (Helium) तत्त्वके परमाणुमेंसे २ ऋणाणु निकल जाने पर जो धन विद्युत् संचरित कण रहता है वही कण ये एलफा (α) किरण हैं। यह कण बहुत शीघ्र गतिसे चलते हैं। इनकी गति प्रति सैकेण्ड $१०^{८}$ होती है। प्रकाशवान होनेके कारण इनको एलफा किरण कहा जाता है। बीटा किरण तो केवल ऋणाणु ही हैं। ये ऋणाणु रश्मिशाक्तिक पदार्थोंसे निकलते हुए एलफा कणोंसे भीब हुत शीघ्र चलते हैं। इनकी गति प्रकाशकी गति का $\frac{९}{१०}$ या कभी कभी $\frac{९९}{१००}$ अंश भी होती है। विल्सन साहबने एलफा और बीटा कण हवा या किसी वायव्य (gas) में जिस मार्गसे चलते हैं उसका क्या आकार होता है इस विषय में प्रयोग द्वारा अभ्यास किया। विशिष्ट प्रकारके प्रयोगोंसे उन्होंने इन मार्गोंकी तस्वीर खीचीं। ये तस्वीर किस तरह खीचीं गयीं, इसका साधारण स्वरूप बहुतही संक्षेपमें नीचे दिया गया है। एलफा या बीटा कण जब किसी वायव्यमेंसे चलते हैं उस वायव्यके अणुओंका यापन (ionize) करते हैं। अगर इस वायुके साथ पानीकी भाप काफी मिली हुई हो तो यह भाप उन यापित गैस कणों पर (ionized particles) ठंडी हो जाती है और पानी के छोटे छोटे बूंद बन जाते हैं। इस अवस्थामें गैसको प्रकाशित कर दिया जाय तो ये बूंद चमकने लगते हैं। यह बूंद ठीक उसी जगह बनेंगे जिस मार्गसे एलफा या बीटा वायव्यमें चले थे। कैमरा ऐसी जगहपर रखा जाय कि मूल प्रकाश उसके ताल (lens) पर न गिरे तो इन चमकने वाली

बूंदोंकी तस्वीर खींची जा सकती है। यह तस्वीर एलफा या बीटा कणोंने उस गैसमें जिस मार्गका आक्रमण किया होगा उस मार्गकी ही होवेंगी। विलसन साहबने इसी सिद्धान्त पर अपने यन्त्रकी रचना करके एलफा और बीटा कणके मार्गकी तस्वीरें खींचीं।

एलफा कणोंके मार्गकी तस्वीरोंसे यह बात साफ दिखाई देती है कि पहले थोड़ी दूर तक सीधी रेखा में चलकर अपने मार्ग के आखरी हिस्सेमें एलफा एकदम झुककर दूसरी दिशामें चलने लगता है। दूसरी बात यह है कि इसी आखिरी हिस्सेमें जहां एलफा कणकी गति बिलकुल कम हो गयी है मार्गकी तस्वीर अधिक तेज दिखाई देती है। इसका अर्थ यही है इस हिस्सेमें एलफा कण गैसके अणुओंमेंसे चलता हुआ उनको अधिक परिमाणमें यापित (ionize) करता है। अब यह ऊपरवाली दोनों बातें कि एलफा कणकी गति कम हो जानेके बाद (१) उसके मार्गका एकदम झुकना (तब तक वह बिलकुल सीधी रेखामें चलता है) व (२) उनसे गैसके अणुओंका अधिक परिमाणमें यापन (ionization) होना यद्यपि देखनेमें बहुत साधारण मालूम होती हैं, तथापि परमाणुकी रचनाके विषयमें इनका बड़ा भारी महत्त्व है। इन्हीं बातोंका सूक्ष्म विचार होनेके बाद परमाणुकी रचनाके विषयमें पहिलेके मत बिलकुल बदल गये और नये निश्चित सिद्धान्त स्थापित किये जा सके। इन बातोंका परमाणुकी रचनाके विषयमें अधिक निश्चित ज्ञान होनेमें कैसा उपयोग हुआ इसका विचार नीचे संक्षेपमें किया जायगा।

प्रथमतः इस बातका विचार करना उचित है कि यदि टामसनके मतानुसार परमाणुका गठन ठोस है तो एलफा कणके मार्गका क्या आकार होना चाहिये। अगर विलसन द्वारा पायी हुई तस्वीरों का आकार इनसे मिलता नहीं है तो टामसनके गठन चित्रमें सुधार करना आवश्यक है। वह कैसा होना चाहिये इत्यादि विचार आगे किया जायगा। एलफा कण को गैसमेंसे चलते हुए प्रति १ शतांशमीटर अन्तरमें लगभग २०००० अणुओंके साथ टक्कर देनी पड़ेगी। अगर परमाणु ठोस है तो उनसेही बने हुए अणुओंके साथ टक्कर देते हुए एलफा कणका मार्ग सीधी रेखासे बहुतही जल्दी बदल जाना चाहिये। अणुओं से टकराते हुए उसका मार्ग झुक जाना चाहिये। वह सीधी रेखामें बहुतही थोड़ी दूर तक चल सकेंगे। परन्तु प्रत्यक्ष तस्वीरोंसे तो साफ दिखाई देता है कि वे बहुत दूर तक तो सीधी रेखामें ही चलते हैं। जब कि अन्तमें उनकी गति बिलकुल ही कम हो जाती है (व थोड़ी देरके बाद वे बिलकुल रुक जाते हैं), तब वे कम अधिक परिमाणमें झुके हुए दिखाई देते हैं इसका कारण क्या हो सकता है? एक कारण तो यह हो सकता है कि गैसके अणुओंमेंसे चलते हुए भी एलफा कणको उनके साथ टकरानेका कामही न पड़ता हो—बहुतही कम अणुओंके साथ टकराना पड़ता हो। परन्तु यदि परमाणु ठोस है तो यह बात कभी सम्भव नहीं। एलफा कणको अणुओंके साथ बिना टकराये हुए आगे चलना असम्भव है। यह बात तभी हो सकती है अगर परमाणुकी गठन ठोस न होती हुई किसी जालके (net) समान विरल हो। परमाणुके अन्दरसे एलफा कण निकल जानेको अगर जगह मिल सके तो उससे बिना टकराये ही वह उसमेंसे चला जा सकेगा। इसकी अधिक ठीक उपमा सूर्यमंडलसे दी जा सकती है। सूर्यमालाका केन्द्र-सूर्य और उसके आसपास घूमने वाले ग्रह हर एकका या सबका एकदम मिलाकर भी आकार सूर्यमालाकी संपूर्ण व्याप्तिकी तुलनामें अत्यंत ही सूक्ष्म है। इसी प्रकार यदि परमाणुका केन्द्र व उसके आसपास घूमने वाले ऋणाणुका आकार (size) परमाणुकी संपूर्ण व्याप्ति (size) की (केन्द्र के आसपास चक्कर लगानेसे ऋणाणु जितनी कुल जगह घेरते हैं उतना सभी परमाणुकी व्याप्ति (size) कहा जाता है) बराबरीमें अत्यंत सूक्ष्म हो तो परमाणु की किसी रचनाके साथ एलफा कणके टकरानेकी संभावना बहुत ही कम हो जाती है। एलफा कण परमाणुके अंदरसे केन्द्र या ऋणाणुओंसे बिना टक-

राये हुए निकल जा सकेंगे। परमाणुके केन्द्रमें परमाणुका लगभग सभी भार होता है। उससे टकराना पड़े तो एलफा कणका मार्ग झुक जानेकी संभावना अधिक है। परंतु केन्द्रका आकार ही ऊपर लिखे अनुसार बहुत ही सूक्ष्म हो तो इससे एलफा कणके टकरानेकी संभावना भी बहुत कम हो जाती है। एलफा कणोंका सरल रेखामें इतनी दूर तक चल सकना किस प्रकार संभव है यह देखा गया। जापानके प्रसिद्ध वैज्ञानिक नागाओका ने (Nagoaka) सर्व प्रथम ऊपर लिखे हुए विचारोंके अनुसार परमाणुके सूर्यमाला-चित्र (Planetory-structure) की कल्पना निर्धारित की। उन्होंने कहा कि केन्द्र धन-विद्युत संचरित है और उसमें परमाणुका लगभग सभी भार है। सूर्यके आसपास जैसे ग्रह वैसे ही इस केन्द्रके आसपास ऋणाणु चक्कर लगाते हैं। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक रदरफोर्ड (Rutherford) ने १९१३ में इसी सिद्धांतको प्रस्थापित किया। परमाणुकी विरल रचना माननेसे एलफा कणोंका गैसमें बहुत दूर तक सीधी रेखामें चलना कैसे संभव है यह तो सिद्ध हुआ ही परंतु वे अणुओंको अधिक परिमाणमें क्यों यापित करते हैं इत्यादि बातें भी उससे बहुत ठीक प्रकारसे सिद्ध हो सकीं। परमाणुसे बिना टकराते हुए उसमेंसे निकल-जाना संभव होनेसे एलफा कण सीधी रेखामें चले जाते हैं। एलफा कण धनविद्युत संचरित कण हैं। वह हिमजन गैसके परमाणुओंसे २ ऋणाणु निकाल देने पर बचा हुआ हिस्सा है इत्यादि ऊपर आरंभमें ही कहा गया है। एलफा कण परमाणुमें ही जब चलता है, परमाणुके केन्द्रके धन विद्युतका हटाव (repulsion) या ऋणाणुओंके ऋण विद्युतका आकर्षण उसपर जरूर होता है परंतु वे जब बहुत शीघ्र गतिसे चलते हैं तब इसका परिमाण उसपर दिखाई नहीं पड़ता परंतु इस कारणसे टकर खानेके कारण भी जब उसकी गति कम हो जाती है ऊपर लिखी हुई बातोंका परिणाम होनेको अवसर मिलता है और इसीलिये वे अंतमें झुकते हैं। एलफा कण जब किसी ऋणाणुसे टकराता है और उसको परमाणुके क्षेत्रमेंसे बाहर निकाल देता है तब वह परमाणु या अणु-यापित, कहा जाता है। परमाणु अगर ठोस होता तो आरंभमें एलफा कण को जब वह बहुत शीघ्र गतिसे चलता है, परमाणुओंसे ज़ोरसे टकराकर अधिक परमाणुओं को यापित कर सकना चाहिये था। परंतु तस्वीरमें इसके बिलकुल उलटा है। विरल रचनासे यह बात बिलकुल ठीक सिद्ध होती है। आरंभमें बहुत शीघ्र चलनेके कारण एलफा कण प्रति शतांशमीटरका अंतर बहुत ही शीघ्र पार कर जाता है, इसलिये ऋणाणुओंको परमाणु क्षेत्रके बाहर निकाल देनेके लिये उसे पूरा समय नहीं मिलता। परंतु जब उसकी गति कम हो जाती है। वह अधिक परमाणुओंको यापित कर सकता है। यही सब बातें बीटा कणोंके संबंधमें सत्य हैं। बीटा कण तो एलफा कणसे भी बहुत अधिक दूर वायुमेंसे या धन पदार्थमेंसे भी चल सकते हैं। इसका कारण परमाणुकी विरल रचना ही होना चाहिये, यह इससे सिद्ध है। इससे परमाणुकी विरल रचना निश्चित सिद्ध हो गयी। यहां एक बात कहनी आवश्यक है कि ऋणाणु केन्द्रके आसपास घूमते हैं ऐसा अभीतक बार बार कहा गया है। यह प्रश्न उपस्थित होना संभव है कि क्या ऋणाणुओंका केन्द्रके आसपास घूमना आवश्यक ही है, वे स्थिर नहीं माने जा सकते ? इसका उत्तर यही है कि उनको स्थिर मानना असंभव है। उनको केन्द्रके आसपास घूमना ही पड़ेगा, क्योंकि यदि वे न घूमेंगे तो केन्द्रके आकर्षणसे उसपर जा गिरेंगे और परमाणुका अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा। इसलिये सूर्यके आसपास नवग्रहोंका घूमना जैसे आवश्यक ही है (नहीं तो सूर्यके आकर्षणसे सब ग्रह उसकी तरफ जाकर सूर्यके ऊपर गिर जानेके कारण सब सूर्य मण्डल ही नष्ट हो जायगा) उसी प्रकार ऋणाणुओंका केन्द्रके आसपास घूमना आवश्यक ही है। इस लेखमें परमाणुकी रचना विरल क्यों है, उसको ठोस समझनेमें क्या हानि है इस बातका विचार किया गया। अब परमाणु विरल है तो ऋणाणु व

केन्द्रके आकार (size) कितने बड़े हैं, इनकी परमाणुमें रचना किस प्रकारकी है, किस परमाणुमें ऋणाणुओं की संख्या कितनी होती है इत्यादि विषयोंका विचार आगे किया जायगा।

गेहूँ

(ले०—राय साहब पं० नन्दकिशोर शर्मा)

मुख्तलिफ़ विद्वानों का मुख़्तलिफ़ मत है कि गेहूँ असली किस जगह की पैदावार है लेकिन इसमें शुबहा नहीं कि हिन्दोस्तान या परशियामें शुरूमें पाया गया है। बाज़ विद्वानों का मत है कि कुदरत ने गेहूँको नहीं पैदा किया बल्कि मनुष्यने अपनी विद्या बलसे मौजूदा शक्लके गेहूँको बनाया है। कहा जाता है कि (Acgilop Arata) घाससे यह मौजूदा गेहूँ बनाया गया है। इसके प्रमाणमें ख़ास दलील जो दिखाई पड़ती है वह यह है कि हिन्दोस्तानमें जहां कि इसका सबसे पहिले पाया जाना सिद्ध होता है किसी भी शुभ कार्य्यमें इसका व्योहार नहीं होता है। हिन्दोस्तान शुरू ज़मानेसे विद्या और आविष्कारका केन्द्र रहा है। सम्भव है यहींके किसी विद्वानने आविष्कार किया हो, यज्ञ हवन इत्यादिमें प्रायः ऐसी चीज़ काममें आती हैं जो असलियतमें वही हैं। जैसे तिल, जौ, उड़द इत्यादि इत्यादि गेहूँ चूंकि मनुष्यकी बनाई हुई चीज़ मालूम होती है पस वर्ण शंकर होनेके कारण यह शुभ कामोंमें आता हुआ नहीं मालूम पड़ता। मुझे भी अपना अनुभव है कि जिस समय मैं गेहूँ बनानेका काम करता था उस समय मैंने यह देखा कि बाज़ बाज़ मौक़े पर दोग़ला बनाये हुये गेहूँके बीजसे पहिली नस्लमें कुछ पौधे घास हो जाते थे और उनमें गेहूँका बीज नहीं आता था। दूसरे दोग़ली चीज़ हमेशा अच्छी और भली होती है सम्भव है यही कारण है कि आज गेहूँ सब नाज़ों में सर्ताज है।

जितनी मुख़्तलिफ़ चीज़ें गेहूँसे जीवधारी मात्र के लिये तय्यार हो सकती हैं या होती हैं उतनी और किसी नाजसे नहीं होती। गेहूँ हर जगह जहां दौरान काश्त दस इंच पानी बरसता हो पैदा हो सकता है।

१—गेहूँकी अच्छी पैदावार हासिल करनेके लिये खेत जिसमें यह बोया जाय पूरी तौरसे तय्यार होना चाहिये। नई तोड़ ज़मीनमें गेहूँ कदापि न बोना चाहिये। बारिशके दिनोंमें जब कभी अवसर मिले खेतको जोत डालना चाहिये। और फिर क्वार कार्तिकमें जितनी दफ़े खेत जुत सके जुतना चाहिये और अगर कोई आदमी जेठ आषाढ़में अंग्रेज़ी लोहेके हलोंसे खुश्क ज़मीनको जोत कर खुली धूपमें छोड़ दें तो इस अमलके करनेसे क़रीब दो मन फी एकड़ पैदावारकी अधिकता हो जाती है।

जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं गेहूँ एक ऐसा नाज है जिसको नोषजन (Nitrogen) की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है और बिला इस पदार्थके पैदावार बहुत ही कम होती है। इस पदार्थ को गेहूँके खेतोंमें सबसे अधिक सरल और मूल्य में हम बहुत आसानीसे सनई बो कर और फिर उसे जोत कर बढ़ा सकते हैं। सब्ज़ खाद इसी अमलको कहते हैं। यानी पहली बारिश पर ख़ूब घना सनका बी जबो देते हैं और बोनेके चालीस या पैंतालीस दिन बाद पटेला लगाकर ज़मीन पर गेर देते हैं और उसी समय अंग्रेज़ी लोहेके हलोंसे जोत कर मिट्टीमें दबा देते हैं और क़रीब एक महीनेके इस तरह इसको ज़मीनमें सड़ने देते हैं। बादमें गेहूँ के लिये जैसी जुताई होती है करते रहते हैं और ठीक वक़्त पर आकर बोवाई कर देते हैं सब्ज़ खाद यानी सनईको इस तरह जोत देनेसे गेहूँकी पैदावारमें औसतन पांच मन फ़ी ऐकड़ बढ़ती हो जाती है और दस मन फ़ी ऐकड़ भूसा की। बस इसीसे समझ लें कि सनई बोकर जोत देनेसे कितना लाभ होता है।

२—गेहूँ की क़िस्में—गेहूँकी बहुत सी किस्में हैं अपने प्रांतमें दो ख़ास क़िस्में हैं यानी मुड़िया और सीकुरदार और इन हर दो में कठिया, पिसिया, गंगाजली, तामड़ा इत्यादि इत्यादि हैं जिनके भेद इस तरहसे हैं :—

(अ) कठिया के माने काठ के हैं यानी जो मुश्किलसे पिसै।

(ब) पिसिया यानी वह जो आसानीसे पिसै।

गंगाजली—यानी कठिया पिसिया सफ़ेद इत्यादि मिले हों।

तामड़ा—यानी जो हलके तांबेके रंगका हो।

गेहूँ सबसे अच्छा वह समझा जाता है जिसमें रोटी बनानेके लिये सबसे अधिक पानी सोखता हो और जिसकी रोटी हलकी और स्पंजकी तरहकी तय्यार होती हो। हमारे देशमें लोगोंको यह ज्ञान नहीं है कि किस कामके लिये कौनसा गेहूँ काममें लाना चाहिये। हर एक कामके लिये अलग अलग क़िस्मके गेहूँकी ज़रूरत है यानी रोटियों के लिये अलग, पूड़ी, मिठाईके लिये अलग, सेमई के लिये अलग, दलियाके लिये अलग। अगर कोई अपनी मेहनत और लागतका पूरा फ़ायदा उठाना चाहता है तो उसको इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिये कि वह ख़ालिस एक ही क़िस्मके गेहूँको जो उसके खेतमें अच्छा पैदा होता हो बोवै। अपने देशमें गेहूके रंग पर भावका असर पड़ता है। लेकिन अन्य देशोंमें जहां कि वैज्ञानिक विद्या ऊंचे दर्जे पर पहुँच रही है इसकी तनिक भी पर-वाह नहीं करते वहां तो उसी गेहूँकी मांग है जो पानी ज्यादा सोख सके और जिसमें नमी कम हो। सर्कारी प्रयोगशालाओंकी जांचसे सिद्ध हुआ है कि अपने देशी गेहुंओंके मुक़ाबिलेमें गेहूँ पूसा नं० ४, गेहूँ पूसा नं १२ विशेष तौरसे अधिक पैदावार देने वाले हैं, और इन गेहुंओंमें गिरवी या हर्दा या ज़र्दाका रोग बिलकुल ही नहीं लगता है। यह रोग गेहूँके लिये अति हानिकारक है, याने बाज़ बाज़ सालमें जब इस रोगकी अधिकता होती है तब तो जितना बीज बोते हैं उतना भी फ़सल पर नहीं मिलता है। पस इसीसे इस रोगसे हानिका अन्दाज़ा कर लें। गेहूँकी पूरी फ़सल हासिल करनेके लिये खेतमें नमीका होना और सिंचाईका उचित प्रबंध होना बहुत ज़रूरी है, जहां जैसे साधन हो वहांके लिये उसीके अनुकूल बीज बोना चाहिये, यानी दुमट या पडुआ ज़मीनमें जहां सिंचाई अच्छी मिल सके वहां पूसा नं० ४ और मटियार या मार ज़मीनमें गेहूँ पूसा नं० १२ और बंधी या तालाबोंमें गेहूं सी० नं० १३ बोना चाहिये। इसके बोनेके तरीक़े भी अलग अलग क़िस्मकी ज़मीनके लिये अलग अलग हैं, याने पड़वा या दुमटके लिए देशी हलके कूंड़के पीछे क़रीब तीन अंगुलकी गहराई पर डाल कर पटेला लगा कर बीजको ढक देना चाहिये और मटियार या मार ज़मीनोंमें सात आठ अंगुल गहरा बीज डालना चाहिये। दुमट या पड़वा ज़मीनमें एक कूंड़से दूसरी कूंड़का फ़ासला क़रीब एक बालिश्तका होवे और मारमें इससे दूना और उसपर पटेला कभी न फेरना चाहिये। हर पौधेके लिये हवा और रोशनी और ख़ूराककी ज़रूरत है। यह चीज़ें पौधेको गुड़ाई निकाईसे ही मिल सकती हैं। इसलिये बीजके जम आनेके बाद और सिंचाईके बाद कांटा या हैरो (Harrow) खेतमें चलाना चाहिये। जिन लोगोंको अपने खेतसे पूरी पैदावार लेना मंजूर है उनको चाहिये कि गेहूँ बोनेके बीस पचीस दिन बाद कमसे कम दो मन फ़ी एकड़के हिसाबसे सोडा नाइ-ट्रेट (सैन्धक नोषेत) अपने खेतमें छिड़क दें। इससे पैदावार सैन्धक नोषेतकी कीमतके मुक़ाबिलेमें दुगुना तो ज़रूर हो जाता है और इसके छिड़कनेका सबसे सरल उपाय तो यह है कि एक हिस्सा सैन्धक नोषेतमें पांच हिस्सा रेत मिला लें और फिर इस मिली हुई चीज़को खेतमें बराबर बराबर फैला दें। फैलानेके बाद खेतमें हलका हलका पानी दे दें और फिर ताव पर आने पर खेतमें कांटा या

लीवर हैरो चला दें। इस बातका ध्यान रहे कि इतना अधिक पानी न लगावें कि यह सब बह जाये। यह लोगोंका ख़्याल ग़लत है कि बहुत पानी देनेसे बहुत पैदावार होती है। प्रमाणके लिये खुद देख लीजिये कि कुंएकी सिंचईसे जिसमें अधिक मेहनत व लागत होती है अधिक पैदावार होती है। बमुक़ाबिले नहरकी सिंचाईके जिसमें बहुत कम मेहनत व लागत लगती हैं इस तरह सींच देनेके बाद कांटा चलानेसे आठ दस दिनके भीतर ही पौधोंका रंग रूप कुछ और ही दीख पड़ने लगेगा जिसका फ़र्क लोग बराबर वाले दूसरे खेतोंसे जिनमें यह अमल नहीं हुआ है देख सकते हैं।

३—बीज—जैसा बीज होगा वैसी ही पैदावार होगी एस अच्छेसे अच्छे उचित समय पर बीज बोना चाहिये। एक एकड़में एक मन बीज लगता है और अगर बीज बोनेवाला होशियार है तो इसमें काफ़ी कमी कर सकता है। बीजोंमें दूसरे गेहूँ और अन्य नाजका मेल न होना चाहिये। पहिले ऊपर ज़िक्र हुये गेहुओंका बीज सरकारी बीज भंडारोंसे बहुत आसानीसे मिल सकता है।

४—बीज बोनेके पश्चात् फ़सल काटने तक सिंचाई और निकाईकी ज़रूरत होती है जो कोई जितनी होशियारीसे इन कामोंको कर लेगा उतना ही अधिक फ़ायदा उठावेगा। चतुर व होशियार किसानको हमेशा अपने खेतकी उत्तमसे उत्तम पैदावारमें से ही अपनी आइन्दः ज़रूरतके मुताबिक़ अपना बीज पैदा कर लेना चाहिये। गेहूँके लिये सबसे अच्छा बीज उन पौधोंका होता है जिसमें सबसे पहले वह पके और कोई उसमें बीमारी न हो। ऐसे पौधों पर कुछ निशानी कर उनको बीजके लिये अलग काटकर बीज निकाल लेना चाहिये। ऐसा कर लेनेसे उनको अच्छेसे अच्छा बीज अपने ही खेतमें मिल जायेगा, और फिर वह दूसरोंसे बीज लेनेके मुहताज न रहेंगे।

५—कटाई—फ़सल तैयार होने पर कटाई होती है उस मौक़े पर मज़दूरोंकी बहुत कमी हो जाती है और अगर ठीक वक़्से दो चार दिन भी फ़सल खड़ी रही तो बालीसे दाना छिटक जानेका डर रहता है इसलिये यह बहुत ज़रूरी है कि ठीक वक्त पर जितनी जल्दी हो सके उतनी ही जल्दी कटाई हो जानी चाहिये। इस कटाईके अभावको दूर करनेके लिये एक मशीन है जिसको रीपर कहते हैं। इस मशीनसे दो जोड़ी बैल और तीन आदमियोंके द्वारा दस घंटेमें करीब पांच एकड़ कटाई कर लेते हैं। लांक खेतमें से काटकर छोटे छोटे बोझोंमें बांध लेना चाहिये और इन बोझोंको जबतक सारी कटाई न हो जाय खलिहानमें ऐसी आयतकी शक्लमें रखना चाहिये कि बालियां भीतर की तरफ हों और आयत खतम होने पर काफी ढाल ऊपर के हिस्से पर चारों तरफ रहे। इस तरह इसके रखने की जरूरत इसलिये है कि इन दिनों में अक्सर आंधी पानी हुआ करता है और बाज बाज मौके पर अच्छी तरह व कायदे से ढेर न बने होने के कारण सारी मिहनत और लागत खराब हो जाती है जो ढेर इस बताये हुये तरीके के मुताबिक रक्खे जाते हैं उनको आंधी पानी कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकता है।

खलिहानमें चिलम या सिगरेट पीना महा पाप समझना चाहिये। बाज बाज दफे चिलम और सिगरेट में थोड़ी सी लापरवाही होनेके कारण बड़े बड़े नुकसान देखनेमें आये हैं। यही नहीं कि जिसकी लापरवाही हो उसी का नुकसान होता है, बल्कि थोक के थोक लोगों का नुकसान हो जाता है। आम रिवाज यह है कि दस बीस लोगों का एक ही जगह होता है और अगर दुर्भाग्यवश एक चिनगारी भी कहीं चल पड़ती है तो सारा खलिहान तनिक ही देरमें राखका खलिहान बन जाता है, इस लिये चिलम या सिगरेटका खलि-हानमें होना ही महापाप कहा गया है।

६—मड़ाई—जब सब लांक खलिहानमें जमा हो जाती है और खेतमें कुछ लांक बाक़ी नहीं रहती उस वक्त मड़ाई शुरू होती है या दांय चलाई जाती है, पुराना तरीक़ा लांकको फैला कर उस पर एक या इससे ज्यादा बैलोंसे रुंदाईकी जाती है जिससे गेहूँके पौधे टूट कर कुचिल जाते हैं और बालें कुचिल कर गेहूं अलग हो जाता है, इस तरीक़ेसे गो भूसा आला दर्जेका बन जाता है लेकिन यह काम बैलोंके लिये अति दुखदाई होता है और समय भी अधिक लेता है। इन दोनों कष्टोंके कम करनेके दो तरीक़े हैं पहिला यह कि थ्रेशरके ज़रियेसे बालोंको कुचिल कर दाना और बाली का भूसा अलग कर लिया जाय और पौधोंके डंठल अलग कर लिये जायं, दूसरा यह कि नूराग थ्रेशरके ज़रिये माड़नेमें आसानी कर ली जाय नूराग थ्रेशर एक क़िस्मका २५ से लेकर ३५ तक लोहेके तवेदार आलाका नाम है जो कि एक जोड़ी बैलसे दांये पर चलाया जाता है। एक नूराग थ्रेशर और एक जोड़ी बैलका काम क़रीब क़रीब चार जोड़ी बैलोंके कामके बराबर होता है पहिले नम्बरमें यानी थ्रेशरके काममें सबसे बड़ी दिक़्क़त यह रह जाती है कि उसमें पौधेका डंठल ज्योंका त्यों रह साबित निकल जाता है जिसका कि बादमें भूसा अच्छी तरह नहीं बन सकता, इन तरीक़ोंसे मड़ाई पर दांय चला कर भूसा तैय्यार कर लेते हैं।

७—उड़ाई—लांक मड़ जाने पर उड़ाईका काम यानी दाना और भूसाके अलग अलग करनेका काम शुरू होता है—इस कामके लिये अधिकतर तेज़ हवा पर निर्भर रहना पड़ता है। बाज़ मौक़े पर तेज़ हवा न होने पर इस काममें बहुत रुकावट हो जाती है और चूंकि इन दिनोंमें आंधी पानी अक्सर हो जाता है जिससे कि बहुत कुछ नुक़सान होता है पस हर ख़ैरख्वाह मुल्क की कोशिश यह होनी चाहिये कि इन कामोंके लिये वक्त और मिहनत बचाने वाले आलातका रिवाज दिलाया जाय मामूली तौरसे हमारे यहां हवाकी कमीको दूर करनेके लिये दो आदमी किसी कपड़ेकी चादर के दोनों किनारोंको पकड़ कर इधर उधर हिला कर हवा पैदा करते हैं और इस हवाके झोंकोंसे भूसे को उड़ाते हैं। यह काम बहुत दिक़्क़त तलब और देर तलब है। इस काम के लिये छोटी छोटी मशीनें बन गई हैं। जिनको बिनोअर कहते हैं इनके ज़रियेसे दिन भरमें एक बिनोअर और तीन मज़दूरों के ज़रिये से बीस मन गेहूँ बहुत अच्छी तरहसे भूसेसे अलग किया जा सकता है। इस तरह से उड़ाई करनेके बाद बोरी बन्दी होने पर गेहूँ का काम ख़तम होता है, गेहूँ बोरों में बन्द होकर कुछ हिस्सा किसानों के घर में और ज़्यादः हिस्सा बाज़ारमें बिकनेको चला जाता है। भूसे का ढेर बना कर गोल बैडे में रख लिया जाता है।

८—बाज़ार—हमारे देश में अभी लोगों को बाज़ार के रंग और ढंगके बाबत वाक़फ़ियत बहुत कम है और न किसी नाजकी सफ़ाई व ग्रेड का ध्यान है। लोग यह समझते हैं कि अगर हम किसी तरह से किसी जिन्सका वज़न बढ़ा सकें उतना ही हमको फ़ायदा है। यह उनका ग़लत ख़्याल है। ऐसा करनेसे हम आपस में ही एक दूसरे को धोका भले ही दे लें और अपने देश के लिये कलंक का नाम पैदा करलें वरना विलायत के ब्योपारी हमारे इस धोके में कभी नहीं फंस सकते। जो कुछ माल वहां खरीदते हैं हमेशा नमूने से यह पता लगा लेते हैं कि इसमें असली माल कितना है और फिर कुल माल पर कर्दा काट देते हैं। मैंने तो बाज़ बाज़ मौक़े पर ५ से ७ फ़ी सदी कर्दा कटते हुये देखा है याने १०० रुपया मन माल की क़ीमत के बजाय पंचानवे तिरानबे (९५–९३) मन माल की क़ीमत मिलती है। हिसाब लगाने से पता चलता है कि हम लोगों की लापरवाही व बेइहतमाली और छोटी नियतके कारण करोड़ों

रुपये साल का नुक़सान होता है। देश के ख़ैर-ख्वाहों का यह फ़र्ज़ होना चाहिये कि वे लोगों को इन बातों की जानकारी दें। हर किसान को यह जानना ज़रूरी है कि जितनी साफ़ और असली चीज़ जिसकी है उसकी क़ीमत उसको ज़्यादः मिलती है। मड़ाई उड़ाई के बाद गेहूं को बोराबन्दी करने या बाज़ार में लानेसे पहिले यह बहुत ज़रूरी बात है कि वह पूरी तौरसे साफ़ कर दिया जावे। न उसमें कोई मेल मिलावट हो और न कोई दूसरा गेहूं हो याने जिस नापका गेहूं बोया गया है वही होना चाहिये। इस काम के लिये मुख्तलिफ़ नापके छेद की चलनियां होती हैं उनसे यह काम बहुत आसानी व किफ़ायत से हो जाता है। इस काम में इस बात का भी ध्यान होना बहुत ज़रूरी है कि पतले या झिरी गेहूं भी अच्छे गेहुंओंसे अलग कर दिये जांय। गेहूं चीज़ ऐसी है कि जिसको अर्से तक रखनेकी ज़रूरत पड़ती है, चाहे तो बीजके लिये चाहे खाने के लिये। गेहूं रखनेमें इसका सबसे बड़ा दुश्मन घुन है बाज़ बाज़ मौक़े पर तो इसके खत्ते के खत्ते घुन जाते हैं आम तौर से अपने देश में जो गेहूं रखने का क़ायदा है याने मंडी में या खत्तियों में वह बहुत ही अच्छा है लेकिन बाज दफ़ा थोड़ी सी बेइहतियाती से बहुत कुछ नुक़सान हो जाता है याने घुन इसमें भी लग जाता है। जो गेहूं अच्छी तरह से सुखा कर हवा और नमी से बचाते हुये भूसे में मिला कर रक्खा जा सकता है उसमें घुन नहीं लगता।

वैज्ञानिक रीति गेहूंको घुनसे बचानेकी यह है

(अ) मिट्टीके बड़े बड़े घड़ोंमें गेहूं रक्खा जाय। घड़ेके मुंहसे पांच छः अंगुल खाली हो। उस खाली जगह पर एक मिट्टीकी प्यालीमें "कारबन बाई सलफ़ाइड" (कर्बन द्विगन्धिद) रख कर घड़ेका मुंह मिट्टीके प्यालेसे बन्द करके फ़ौरन ही भीगी मिट्टीसे लेप देना चाहिये। २॥ ढाई मन बीजके लिये आधी छटांक "कार्बन द्विगन्धिद" काफ़ी है। यह अंगरेज़ी दवा पानीके शक्लकी होती है और ज़हरीली है। इसमें आग पकड़ लेनेका बड़ा भारी गुण है इस लिये इसके पास आग या जलती हुई दियासलाई कभी न लानी चाहिये।

(ब) मन भर गेहूँके लिये एक छटांक "कापर कार्बोनेट" (ताम्रकर्बनेत) पीस कर मिला देना चाहिये इसी हिसाब से जितना गेहूँ हो उतना ताम्रकर्बनेत मिलाकर गेहूंको बोरोंमें बन्द कर हवा और पानीसे बचे हुये कोठोंमें रख देना चाहिये।

आम हालत और तरक्क़ीके उपाय

अब तक तो हमने जो कुछ गेहूँके मुताल्लिक़ मामूली बातें हैं लिख दीं। अब यह बताना चाहते हैं कि हम किस तरह से इसमें तरक्क़ी कर सकते हैं।

हमारे यहांके किसानोंकी हालत ऐसी नहीं है कि वह इन सब मशीनों व औज़ारोंको काम में ला सकें। वजह यह है कि हमारे यहांके किसानों का औसतन रक़बा गेहूँ पांच एकड़से ज़्यादा नहीं है। इस थोड़ेसे रक़बेके लिये कोई भी इतनी लागत लगा कर इन बताये तरीक़ोंको व आलोंको काम में नहीं ला सकता फिर यह काम हो तो किस तरह से हो।

हमको दूसरोंसे जो ऐसे कामोंमें कामयाब हुये हैं सबक़ लेना चाहिये, और वह सबक यह है कि जगह जगह पर स्वयं सहायक समितियां क़ायम करनी चाहिये और फिर उन्हींके द्वारा यह सब कार्य आसानीसे हो सकते हैं। मिसालके लिये मान लीजिये कि किसी गांवमें सौ किसान मेम्बर होकर एक ऐसी समिति क़ायम कर लेते हैं। फिर एक एक रुपया फ़ी मेम्बर चन्दा कर सौ रुपया पूंजी कर लेते हैं इन्हीं सौ रुपयोंसे शुरूमें कुछ अंग्रेज़ी लोहेके हल और कलटीवेटर ख़रीद लेते हैं और फिर इस समितिसे हर मेम्बर वाजिब केराये

पर इन औज़ारोंको काममें लाकर अपने खेतकी पैदावार बढ़ाता है और फिर फ़सल पर अपनी बढ़ोतीमें से हर मेम्बर अपनी समितिकी पूंजी बढ़ाता है और फिर उससे ऐसे ही और कार आमद औज़ार जैसे "लीवर हैरो" नूरागथ्रेशर, थ्रेशर, बिनोबर इत्यादि इत्यादि ख़रीद लेते हैं और उनसे पूरा फ़ायदा उठाकर हर मेम्बर मालोमाल होते हैं कुछ दिनोंमें इसी तरहसे काम करते चले जाने पर बड़ी बड़ी मशीन ख़रीदी जा सकती हैं और फिर अधिकसे अधिक फ़ायदा उठाया जा सकता है। बतौर इशारे के सब बात बताई गई हैं और सर्कारने हर विषय पर सलाह और मदद देने के लिये जगह जगह पर अफ़सर मोक़र्रर कर रक्खा है जिनसे लोगोंको अपनी ज़रूरतके मुताबिक सब बातचीत पूछ कर जो बात समझ में न आवे उसे समझ कर काममें लाकर पूरा फ़ायदा उठाना चाहिये। हम अपने मनमें अपनेको कैसा ही समझ लें लेकिन अपनी हालत क्या है। इसके लिये हम एक नकशा दे रहे हैं जिससे कि पैदावार गेहूँ फ़ी एकड़ संसार के उन मुल्कोंकी जहां गेहूँ अधिकतर पैदा होता है ज़ाहिर है। पस इसीसे देख लीजिये कि हम दूसरे मुल्कोंके मुक़ाबलेमें कितने नीचे दर्जेमें हैं। अगर हम मामूली साधनोंको भी काममें लावें तो दो मन फ़ी एकड़ पैदावार बेशी कर लेना कोई बड़ी बात नहीं हैं और केवल इस सिर्फ़ थोड़ी सी ही बेशी से संयुक्त प्रांतमें हो अकेले क़रीब क़रीब नौ करोड़ रुपयोंको सालाना गेहूँसे आमदनी बढ़ी है।

औसत पैदावार फ़ी एकड़ संसार के नामी गेहूँ उत्पन्न करनेवाले देशों की मनों में; यह नक़शा श्री विलियम क्रूक्स साहब बहादुर की किताब "गेहूँ" जोकि सन् १९१७ ई० में छपी है, उससे लिया है:—

नाम देश	पैदावार मनों में फ़ी एकड़
(१) डेनामार्क	३०·४
(२) इङ्गलैन्ड-स्काट लैन्ड वेलस ...	२१·२
(३) न्यूज़ी लैन्ड	१८·५
(४) नार्वे	१८·३
(५) जर्मनी	१६·९
(६) हालैन्ड	१५·६
(७) बेलजियम	१५·६
(८) फ्रांस	१४·२
(९) हांगरी	१३·५
(१०) रोमेनिया	१३·४
(११) आस्ट्रेलिया	११.८
(१२) पोलैन्ड	११·८
(१३) कैनाडा	११·३
(१४) आरजन्टीना	९·४
(१५) इटली	८·८
(१६) अमेरिका	८·७
(१७) आस्ट्रालेशिया	७·३
(१८) इण्डिया	६·८
(१९) विलायत की रशिया ...	६·२
(२०) आलजोरिया	५·४
(२१) साउथ आस्ट्रेलिया ...	५·१

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३१ | वृष, संवत् १९८७ | संख्या २

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द (३)

[लेखक सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०]।

गत दो लेखोंमें पारिभाषिक शब्दोंके विषयमें मैंने कुछ विचार प्रस्तुत किये हैं। इस विषयमें मतभेद होनेकी संभावना बहुत अधिक है। प्रत्येकको अपने स्वतंत्र विचार रखनेका पूर्ण अधिकार है, प्रत्येक की युक्तियोंमें कुछ न कुछ मूल्य होता ही है, और ऐसे विवादास्पद विषयोंके लिये एक दम यह कह देना कि यह पक्ष सर्वथा निर्भ्रान्त है या वह पक्ष, कठिन है। ऐसी अवस्थामें क्या किया जाय, यह एक प्रश्न है। कोई किसीकी बातको मानने और सुननेके लिये तैयार नहीं है, यह इसलिये नहीं, कि वह हठधर्मी है, पर इसीलिये कि ऐसी समस्यायें युक्तियोंके आधार पर सुलझाई नहीं जा सकती हैं। पारिभाषिक शब्दोंके प्रचारमें भी जीवन संघर्ष और घोर प्रतिद्वन्द्वताकी मात्रा है। समयही इस बातको सिद्ध करेगा कि कौनसी रीति अथवा कौन सा मार्ग परिस्थिति के अनुकूल है। सब निर्णय समयके ही आश्रित होगा।

पारिभाषिक शब्द बनानेवालोंका काम बड़ा कठिन है, विशेषतया जब हमारा दावा यह है कि जो भी कोई शब्द हम बनावें वे ऐसे हों जो समस्त भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त हो सकें। यदि हिन्दीवालों ने अलग शब्द बनाये, गुजरातीवालों ने अलग, मरहठी और बंगालीवालों ने अपने लिये नये शब्दोंकी आयोजना की तो भयंकर विप्लव होनेकी आशंका है। रासायनिक तत्त्वों और यौगिकोंके नामोंको छोड़कर विज्ञानके अन्य शब्दोंके लिये

पारिभाषिक शब्द बनानेही होंगे, इसमें किसीका भी विरोध नहीं है, काशीकी वैज्ञानिक मण्डली भी इस बातसे सहमतही है। भौतिक विज्ञानके शब्दों का संग्रह काशीवालोंकी संरक्षतामें हो थोड़े दिन हुए नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराया जा चुका है। उससे यह स्पष्ट है कि अधिकांशतः हमें पारिभाषिक शब्द बनानेही पड़ेंगे। समस्त यूरोपीय शब्दोंको अपनाना और उनको अपने अन्दर जज़ब करना असम्भव ही है। अब यदि पारिभाषिक शब्दोंकी रचनासे छुटकारा मिलना असम्भव है तो ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये जिससे समस्त भारतीय भाषायें एकताके सूत्र में बंध जांय। इसमें सन्देह नहीं कि केवल संस्कृतजात शब्द ही ऐसे हैं जिनका व्यवहार समस्त आर्य्य भाषाओंको मान्य होगा, पर केवल इस सिद्धान्तसे ही तो काम नहीं चल सकेगा और केवल इतनेसे ही सब भाषाओंके वैज्ञानिक शब्द एक न हो जायँगे। यदि एकही भावके लिये हिन्दीवालोंने संस्कृतका एक शब्द नियुक्त किया, और बंगालीवालोंने संस्कृत का दूसरा पर्यायवाची पद ग्रहण किया, मरहठी और गुजरातीवालों ने तीसरा और चौथा, तो फिर सबका मूल सिद्धान्त एक होते हुए भी भिन्नता बहुतही रहेगी, और ऐसी अवस्थामें हम अपना उद्देश्य पूर्ण न कर सकेंगे।

आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्र राय आदिके प्रयत्नसे बंगालीमें रासायनिक पारिभाषिक शब्दोंका एक संग्रह कदाचित् वंग-साहित्य परिषदने प्रकाशित किया था, यह बहुत दिनों पुरानी बात है। पर इसके बहुत दिनों बाद तक बंगालीका रासायनिक साहित्य जहाँ तक मेरा अनुमान है, कुछ अधिक न बढ़ सका; यद्यपि आज भी भारतवर्षके अधिकांशतः प्रमुख रसायनज्ञ बंगालीही हैं। जबसे 'प्रकृति' नामक वंगपत्रिका का जन्म श्रीसत्याचरण लाहाने दिया है, तबसे कुछ लेखकोंका ध्यान इस ओर फिर गया है। इतना खेद अवश्य है कि लब्ध प्रतिष्ठ बंगाली रसायनज्ञ अपनी भाषाके साहित्यकी ओर उदासीन ही प्रतीत होते हैं। अस्तु, प्रकृतिमें कुछ दिन हुए रासायनिक तत्वों और यौगिकोंके पारिभाषिक पदोंका संकलन श्री मणीन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय न किया था। इससे पूर्व श्रीअक्षयकुमार दत्त, तथा श्री हेमन्द्रनाथ ठाकुरने भी इस ओर कुछ प्रयत्न किया था। श्री हेमेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा कुछ रासायनिक शब्द इस प्रकार थेः—

ठाकुर	अंग्रेज़ी	हमारे शब्द
अंजन	Antimony	आंजनम्
आलक	Arsenic	संक्षीणम्
गन्धकद्रावक	Sulphuric acid	गन्धकाम्ल
तरल	Liquid	द्रव
दस्ता	Zinc	दस्तम्
स्रवंग	Platinum	परशैप्यम्
वसुमत	Bismuth	विशद
वारुणी	Alcohol	मद्य
रोहितक	Iodine	नैलिन्
शिलिक	Silicon	शैलम्
सर्ज	Sodium	सैन्धकम्
स्फुरक	Phosphorous	स्फुर
अरुणक	Bromine	अरुणिन्
खटिक	Calcium	खटिकम्
दहक	Oxygen	ओषजन
फटिक	Aluminium	स्फटम्
सोमक	Selenium	शशिम्
हरितीन	Chlorine	हरिन्
मरुतक	Nitrogen	नोषजन
पत्रक	Potassium	पांशुजम्

इन शब्दोंके देखनेसे पता चलता है कि आंजनम्, गन्धकाम्ल, दस्तम्, शैलम्, स्फुर, अरुणिन्, खटिकम्, स्फटम् और हरिन् शब्द जो हमने अपनी भाषामें निर्धारित किये हैं, वे श्रीहेमेन्द्रनाथ ठाकुर की शब्दावलीसे भी मिलते जुलते हैं। मद्य और वारुणी, तरल और द्रव, सोमक और शशिम् एकही पर्यायके दो शब्द हैं, जिनमेंसे किसी को भी ग्रहण

किया जा सकता है, कोई विशेष युक्तिकी बात ही नहीं है। सोडियम् के लिये साधारण नमकसे हमने सैन्धकम् शब्द बनाया और उन्होंने दूसरे यौगिकके आधार पर सज्जी मिट्टी (सोडा) से सर्ज शब्द बनाया। आयोडीन के लिये रंग का ध्यान हमने भी रखा और उन्होंने भी। पर हमने नैलिन् कहना अधिक उचित समझा और उन्होंने रोहित। कदाचित् इसका रंग लाल नहीं प्रत्युत् नीला होता है। अतः नैलिन् कहना अधिक उचित् होगा। कुछ शब्द जैसे मरुतक; पत्रक, आदि भिन्न हैं। पर भिन्नता होते हुए भी हमारे और ठाकुरजीके शब्दों में वास्तविक नीति-विरोध नहीं है, और सहयोग और समझौतेकी बहुत कुछ संभावना हो सकती है।

समध्वन्यात्मक परिवर्तन

पर एक दूसरा भी सम्प्रदाय है जो अंग्रेजी शब्दोंमें केवल ध्वन्यात्मक परिवर्तन करना ही श्रेयस्कर समझता है और परिवर्तन करनेके उपरान्त संस्कृतके कामधेनु-व्याकरणका आश्रय लेकर कुछ सन्धियां तोड़कर विचित्र निरुक्तियाँ करके उन शब्दोंको भारतीय होनेकी घोषणा करना चाहता है।

श्री मणीन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय इस ध्वन्यात्मक सम्प्रदायके ही व्यक्ति हैं। उनकी युक्ति इस प्रकार है। अंग्रेजोंने अपनी सुविधानुसार मुम्बई को Bombay (बाम्बे), कलिकाताका Calcutta, गंगा को Ganges, मथुराको Muttra, (मुट्रा) मन्द्राज को Madras, कहना पसन्द किया है, अथवा जिस प्रकार हम भी उच्चारणकी सुविधाके अनुसार London को लण्डन न कहकर लन्दन, February को फर्वरी, December को दिसम्बर, September को सितम्बर, Lantern को लालटेन कह लेते हैं, इसी प्रकार समस्त वैज्ञानिक शब्दों में कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन कर दिया जाय तो कोई हानि नहीं है। श्री मणीन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायने न केवल ध्वनियों को ही परिवर्तित करके तत्त्वोंके भारतीय नाम रखे, प्रत्युत पाणिनीकी व्याकरणकी सहायतासे उन परिवर्तित शब्दोंके अर्थ भी निकाल डाले। हम इनके प्रयत्नका कुछ दिग्दर्शन यहाँ करा देना आवश्यक समझते हैं। पाठकोंका इससे मनोरञ्जन अवश्य होगा।

Oxygen—**अक्षजन**—अक्षजन—अक्षं अस्त्रं (अक्षं चक्रं अस्त्रं इति मेदिनी) अस्त्रवत् तीक्ष्णं—इति भावः। तीक्ष्णास्वादं अम्लास्वादं वा जनयति यः सः—अक्षजनः।

अक्ष + जन—निच् + अच् (meaning acid producer).

Nitrogen—**नेत्रजन**—नेत्रजन = नेत्रं वृक्षमूलं ('नेत्रं मूले द्रुमस्यच इति मेदिनी') जनयति वर्द्धयति यः सः नेत्रजनः—नेत्र + जन + निच् – अच्। वृक्ष वर्द्धकः।

वृक्षमूलम्—वृक्षस्य आद्यम् स्थिति कारणम् = पृथिवी = भूमि, क्षारभूमि, मृत्तिका—क्षार मृत्तिका, रसा—क्षार रसा।

वृक्षमूलम्—वृक्षस्य आद्यम् स्थिति कारणम् अस्य बलं मज्जा, सारः स्थिरांसः। [सारः—वज्र क्षारम् (Nitre) इति राज निर्घण्टः] ..

Chlorine—**कुलहरिण**—कुल हरिण—कुलम् शरीरं स्वरूपं इत्यर्थः। हरिणं पाण्डु वर्णं यस्य इति कुलहरिणः। कुल + हरिण = कुल हरिण पृषोदरादित्वात् अ लोपः। कुलं तनौ इति मेदिनी "हरिणः पाण्डुः" इत्यमरः। (a substance having a pale green body or appearance),

Iodine—**एतिन**—एतं कर्व्वूर वर्णं अस्य अस्ति अस्त्यर्थे इन्—'एतिन'। ("एतः कर्व्वूरः" इति मेदिनी)—आ + इ + क्तिन् = एतिन्। इसका अर्थ एक पदार्थ जिसका वर्ण रक्तनील।

Arsenic—**आर्जनिक**—(ज + अनट् = अर्जनं) अर्जनं बलं अस्य अस्तीति आर्जनिकं।

Sulphur—शुल्वारिः—'शुल् वारिः गन्धकः' इतिहेमचन्द्रः ।

इसी प्रकार की अनेक मनोरञ्जक निरुक्तियों के आधार पर श्री वन्द्योपाध्याय जी ने निम्न शब्द बनाये हैं:—

Fluorine—प्लोरान
Antimony—अन्तमनीकम्
Bismuth—विषमद्
Selenium—सलिलीनम्
Boron—बुरन
इत्यादि ।

इस प्रकारके अनुवाद करनेकी प्रथा केवल वैज्ञानिक क्षेत्रमें ही नहीं, अन्य विषयोंमें भी पायी गई है। पाश्चात्य संस्कृतज्ञ मैक्समूलर साहेब इस प्रकारकी मनोहारिणी भावनासे प्रेरित होकर संस्कृतमें अपना नाम स्वयं 'मोक्षमूलर' लिखते थे। प्राचीन आर्य संस्कृतिके भक्तोंने देश विदेश सभी के नामोंमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन करके व्याकरणकी सहायतासे निरुक्तियाँ कीं, और कुछ न कुछ अर्थ निकालही लिये। यह लहर पहले तो बहुत देखने में आती थी पर अब कम हो गई है। काशीके जिन सज्जनने हिन्दु वैद्युत् शब्दावली निकाली थी उन्होंने Spiral, electron, ion, circuit आदि अनेक शब्दोंके लिये इसी प्रकारके समध्वन्यात्मक शब्द बनाये थे।

इस प्रकारकी आयोजनायें अपने निर्माताकी कुशल बुद्धिकी परिचायक अवश्य हैं। उसको अपनी विशद-भाषा-विज्ञताके प्रदर्शित करनेमें परिश्रम भी अवश्य उठाना पड़ता है। एक बार तो साधारण व्यक्ति भी उसकी भावनाओंकी दुहाई अवश्य दे देते हैं। वस्तुतः उसका यह प्रयत्न सराहनीय अवश्य है। पर प्रश्न यह है कि इस प्रकारकी नीति कितनी कल्याणमय है ? इन सब लेखकोंके पवित्र उद्देश्य होते हुए भी हम इस नीतिका घोर विरोध करना चाहते हैं और हमारी समझमें इसका प्रभाव शुद्ध विदेशी शब्द अपनानेसे भी अधिक दूषित होगा। यही नहीं, ऐसा करना हास्यास्पद भी होगा।

सम-ध्वन्यात्मक परिवर्तन कुछ अवस्थाओंमें तो क्षम्य होता है। जब हम किसी विदेशी शब्दको अपना लेनेके लिये तैयार हो जाते हैं, पर उस विदेशी शब्दका विदेशी उच्चारण हमारी भाषामें कुछ कर्णकटु और क्लिष्ट प्रतीत होता है तब हम सुविधानुसार कुछ उच्चारण परिवर्तन कर देते हैं और तदुपरान्त जैसे के तैसा अपना लेते हैं। इसी सुविधा के आधार पर जैन्योरी न कह कर जनवरी, फेब्रूयोरीके स्थानमें फर्वरी सैप्टेम्बरके स्थानमें सितम्बर, लैएटर्न के स्थानमें, लालटेन, एंजिनके लिये इंजन, कैप्टेनके लिये कप्तान, क्रिश्चियनके लिये क्रुस्तान, इसी प्रकार अनेक शब्द कुछ परिवर्तित रूप में व्यवहृत होते हैं। इनके विपरीत कुछ शब्द ज्योंके त्यों ही हमारी भाषामें प्रविष्ट हो गये जैसे बिसकुट, रेल, ट्राम, साइकिल, बिगुल, स्टेशन, टावर, स्टूल, स्कूल। इन ध्वन्यात्मक परिवर्तनोंमें मुख्यतः इन नियमोंका प्रयोग प्रतीत होता है, यद्यपि ये परिवर्तन किसी एक व्यक्तिने किसी समय किसी नियमके आधार पर जानबूझ कर नहीं किये प्रत्युत जनताने स्वयं ही अपनी सुविधाके अनुसार कर लिये:—(१) कहीं कहीं टवर्गके स्थानमें तवर्ग का प्रयोग होना, अर्थात् ट,ठ,ड, ढ के स्थानमें त, थ, द, ध हो जाना। अंग्रेज़ी भाषामें टकार और डकारका विशेष प्रयोग होता है, यहाँ तक कि 'तकार' का नाम भी नहीं है। हिन्दीमें 'ट' को विशेषरीतिसे कर्ण कटु मानते हैं। अतः त और द का प्रयोग ट और ड के स्थानमें हुआ। जैसे सैप्टेम्बरका सितम्बर और डेसम्बरका दिसम्बर हो जाना। (२) उदात्त स्वरोंको कहीं कहीं अनुदात्त बना देना अर्थात् जो स्वर ऊँचे बोले जाते हैं उन्हें धीमा कर देना। इस प्रकार ए को इ या अ और ओ को उ या अ कर दिया जाता है। एंजिन से इंजन, ओक्टोबर, से अक्टूबर, जैन्योरीसे जनवरी

इत्यादि। (३) विदेशी संयुक्ताक्षरों को वियुक्त करके सरल बना देना। ऐसी अवस्थामें कभी कभी कुछ बीचके अक्षरोंका लोपभी हो जाता है अथवा कुछ समध्वनिक नये अक्षर भी स्थापित हो जाते हैं। जैसे जैन्योरीसे जनवरी। इन तीन मोटे नियमोंके अतिरिक्त स, श का परिवर्तन और कुछ ऐसे और भी नियम उपयोगमें आते हैं।

हमने रासायनिक तत्त्वोंकी जो सारिणी प्रकाशितकी थी उसमें भी इन्हीं नियमोंकी दृष्टिसे कुछ परिवर्तन किये गये थे। जैसे मैगनीशियमके स्थान में मगनीसम्, स्ट्रौंशियमके लिये स्त्रंशम्, टैण्टेलियम् के लिये तन्तालम्, पैलेडियम्को पैलादम्, स्कैण्डियम्के लिये स्कन्दम् इत्यादि। ये सब उच्चारण-परिवर्तन ध्वन्यात्मक भाषा विज्ञानके अनुकूल हैं।

ग्रिम महोदयके भाषाविज्ञान सम्बन्धी नियमोंके अनुसार संस्कृत और अंग्रेज़ीके अक्षरोंमें बहुधा निम्न प्रकार परिवर्तन होना सम्भव है:—

संस्कृत	Pप	Tत	Kक	Bब	Dद	Gग
अंग्रेज़ी	Fफ	Thथ,द	Hह	P	T	K
				भ	ध	घ
				Bब	Dड	Gग

जिस बातके लिये ग्रिम महोदयने इस प्रकारके नियम बनाये थे, उससे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की अवस्था बिल्कुल विपरीत पड़ती है। क्योंकि यूरोपीय भाषाओंका विकास संस्कृत भाषाके आधार पर, और उसके पश्चात् ही हुआ था। पर हमें तो यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दोंसे भारतीय शब्द बनाने हैं। ऐसी अवस्थामें साधारणतः तो यह हो सकता है कि हम ग्रिम महोदयके नियमको उलट दें अर्थात् जहां अंग्रेज़ीमें F, Th, H, P, T, K, B, D, G, है वहीं हम क्रमशः P, T, K, B, D, G, Bh, Dh, Gh रखदें पर ऐसा करना सब जगह युक्तिसंगत न होगा। जैसे यह तो ठीक है कि संस्कृतके भ, ध, घ अंग्रेज़ी में सब जगह B, D, और G हो जाते हैं, पर इस आधार पर हम अंग्रेजीके सब B, D, G के स्थानमें भ, ध, और घ नहीं कर सकते हैं, मुख्यतः इनके स्थानमें हमें ब, द, और ग ही रखना होगा। अस्तु, हम यहाँ भाषा विज्ञानके नियमोंकी विस्तृत आलोचना नहीं करना चाहते हैं, हमारा यह कहना है कि उच्चारण की सुविधाके अनुसार कभी कभी ध्वन्यात्मक परिवर्तन कर देनेमें कोई आपत्ति नहीं है, प्रत्युत ऐसा करना भाषा विज्ञानके नियमोंके अनुकूल और सर्वथा कल्याणमय ही होगा। परन्तु हाँ, इस प्रकारके परिवर्तन सब स्थानोंमें करने आवश्यक नहीं हैं।

ध्वन्यात्मक विज्ञानकी नीतिके अनुसार जहाँ कहीं परिवर्तन किया जाय, वहाँ तो कोई आपत्ति नहीं है, पर यूरोपीय शब्दोंको भ्रष्ट करके व्याकरण की सहायतासे विचित्र निरुक्तियाँ करना अवश्य निन्दनीय है। शब्दोंको भ्रष्ट करना और बात है, और सुविधानुसार उनका परिशोध करना और बात है। मणीन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय अथवा उनके ही समान विचार रखने वालोंने यूरोपीय शब्दोंको भारतीय बनाने की जो चेष्टा की है उसमें शब्द भ्रष्ट हो गये हैं। क्लोरीनका कुलहरिन, नाइट्रोजनका नेत्रजन, सल्फरका शुल्वारि, ओषजनका अक्षजन बनाना भाषा-विज्ञानके नियमों के सर्वथा विपरीत है। इस प्रकारके प्रयासमें खैंचातानी और मनमानी की ही अधिक गन्ध आती है। ऐसा करनेसे शब्द सरल और सर्वोपयोगी होनेके स्थानमें अधिक जटिल, क्लिष्ट और संकीर्ण हो जाते हैं। मान लीजिये कि आपने खैंचातानी करके इस प्रकारके शब्दोंको सार्थक सिद्ध भी कर दिया, पर उन शब्दोंकी जान तो सब निकल गई, अब तो वे मुर्दा हो गये, उनसे क्या लाभ? हमारी समझ में तो ऐसे प्रयत्न अधिक सफल नहीं हो सकते हैं। इस प्रकारकी कौतूहलजनक निरुक्तियाँ करके भला हम कितने शब्द बना सकेंगे? ऐसा प्रयत्न विदेशियोंके सम्मुख हास्यास्पद ही तो रहेंगे। अतः भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इस प्रकारकी निरुक्तियोंका कोई महत्व नहीं है।

पारभाषिक शब्दों के लिङ्ग

हिन्दी भाषामें लिंगोंका प्रश्न एक मज़ेदार समस्या है। इसके लिये कोई नियम तो हो ही नहीं सकता है। बड़े आदमी जिसको जो लिंग कहदें वही ठीक समझा जा सकता है। कोई 'मेरा पुस्तक' लिखता है तो कोई 'मेरी पुस्तक', बूँद कोई स्त्री लिंग मानता है तो कोई पुल्लिंग। 'छोटी छोटी बूँद' 'बड़े बड़े बूँद'। कोई कहता है कि 'वायु बहरहा है' तो 'कोई वायु चल रही है', ऐसा भी लिखता है। 'मीठादही' और 'मीठीदही' में पूर्व और पश्चिमी संयुक्त प्रान्तीयों में सदाही विवाद रहता है। 'मेरा क़लम' उर्दू की व्याकरणसे ठीक है पर हिन्दी वाले लेखनीके वज़न पर 'मेरी क़लम' ही कहना पसन्द करेंगे। इन सब मतभेदों के लिये हिन्दी भाषियोंके पास कोई युक्ति तो है ही नहीं। जैसी जिसकी रुचि हुई, वहाँ वैसा लिख दिया।

कहीं कहीं एक शब्द अमुक लिंगका इसी लिये माना जाता है, क्योंकि उसका एक दूसरा पर्याय उस लिंग का है। वायुको बहुतसे स्त्री लिंगमें इसीलिये प्रयोग करते हैं क्योंकि इसका एक पर्याय हवा स्त्रीलिंग है। ऐसी अवस्थामें बहुतसे संस्कृत के पुल्लिंग शब्द हिन्दी में आकर स्त्री लिंग हो गये हैं। अग्नि और आग दोनों स्त्री लिंग माने जाते हैं। बहुत से व्यक्ति भावुकता की युक्ति पर 'मेरी प्रभात' तक लिख कर कोमलता का आवाहान करते हैं।

पर यह बात तो उन शब्दों की है जिनका प्रयोग साहित्यमें बहुत दिनों से होता आया है। इन शब्दोंके अतिरिक्त वैज्ञानिक साहित्यमें अनेक संज्ञायें इस प्रकार की प्रविष्ट हुई हैं, जिनसे साधारण साहित्य और साधारण जनताका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अब प्रश्न यह है कि इनका लिंग किस प्रकार निर्धारित किया जाय। इसमें तो किसी को संशय हो ही नहीं सकता है कि लिंग की आवश्यकता अवश्य ही है, जब कि लिंग के अनुसार ही बहुधा विशेषण और क्रियायें और विभक्तियाँ निर्धारित की जाती हैं।

पहले तो कुछ विदेशी शब्दों पर विचार कीजिये जिनका प्रवेश हमारी भाषा में हो रहा है।

१ बिसकुट अच्छी है, बिसकुट अच्छे हैं।

२ यह मेरा फाउण्टेनपेन है, यह मेरी फाउन्टेनपेन है।

३ गैस जल रहा है, गैस जल रही है।

४ नावेल अच्छी है, नावेल अच्छा है।

इन उदाहरणोंमेंसे, संभव है, हमारे पाठक किसी एक लिंगका व्यवहार करते हों अथवा दूसरेका। पर तब भी बहुतसे संशयमें अवश्य पड़ जायंगे, और लिंग निर्धारित न कर सकेंगे। लिंगों का विशेष झगड़ा अकारान्त शब्दों में ही पड़ता है। ईकारान्त अथवा आकारान्त शब्द बहुधा स्त्रीलिंग स्वीकार कर ही लिये जाते हैं। महीनोंके नामही देखिये। अकारान्त नाम सब पुल्लिंग, पर जनवरी, फर्वरी मई, और जूलाई ये चार महीने स्त्रीलिंग। इससे स्पष्ट है, कि लिंगों का भाव से अधिक सम्बन्ध नहीं रहता है। बहुधा लाघवी शब्द (Dimunitive forms) स्त्रीलिंग मान लिये जाते हैं, जैसे लोटा पुल्लिंग, पर लुटिया स्त्रीलिंग।

जिस समय मैंने रसायन सम्बन्धी पुस्तकें लिखनी आरम्भ की थीं, उस समय लिंग भेदने विशेष आपत्ति डाली थी, gas के लिये मैंने कभी तो 'गैस' शब्द ही और कभी वायव्य शब्द का उपयोग किया था। इनमें सामान्य बोलचाल में गैस शब्द स्त्रीलिंग माना जाता है, पर वायव्य शब्द पुल्लिंग। ऐसी अवस्था में मुझे दो प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करना पड़ा:—

उदजन वायव्य हलका होता है।

उदजन गैस हलकी होती है।

इन दोनों वाक्योंकी समता का विचार करते हुए यह प्रश्न सर्वथा अनिश्चित ही रहा कि उद्जन आदि गैस-तत्वोंको स्त्रीलिंग माना जाय या पुल्लिंग। हरिन्, अरुणिन्, नैलिन् और प्लविन् शब्दों में पदान्त-इन् होनेके कारण कभी यह रुचि होती कि इन तत्वोंको स्त्रीलिंग मान लिया जाय और वाक्योंमें इनका प्रयोग स्त्रीलिंगके समान ही किया जाय। शेष धातु तत्व, और अधातु ठोस तत्वोंको मैंने पुल्लिंग ही मानना ठीक समझा क्योंकि बहुधा ये अकारान्त या मकारान्त थे।

कार्बनिक रसायनके यौगिकोंके लिंग निर्धारण करनेमें भी यही कठिनाई थी। अधिकांशतः जितने भी नये नाम बनाये गये हैं, वे सबके सब पुलिंग ही माने गये है, चाहें उनका पदान्त कुछ भी क्यों न हो, इस प्रकार बानजावीन, नीलिन्, दिव्योल, अम्ल, पिरीदिन, नशास्ता, मूत्रिया, रंग और ओषधियोंके रासायनिक नाम सभी पुलिंगके रूपमें ही व्यवहृत हुए हैं।

इन शब्दोंके लिङ्ग निर्णय करनेका कोई उपाय ही नहीं है। जिस रूपमें ये साहित्यिक पुस्तकोंमें प्रविष्ट हो जायंगे, उसी प्रकार इनका आगे प्रयोग होता रहेगा। वस्तुतः व्याकरणकी सीमा ही यह है कि वह भाषाके अनुकूल अपने नियमोंका निर्माण करे, न कि भाषाको अपना अनुयायी बनावे। बहुतसे शब्द हिन्दीमें उभयलिंगी माने जाते हैं, और इसलिये किसी एक ग्रन्थकार ने कोई एक शब्द कहीं पुलिंग और कहीं उसीने उसे स्त्रीलिंगके रूपमें प्रयुक्त किया तो भी कुछ हानि नहीं है। पर जहाँ तक ऐसा न हो, अच्छा ही है।

भिन्न पर्याय

यह सभी चाहते हैं कि समस्त भारतीय वैज्ञानिक साहित्यमें एक ही प्रकारके वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग होने लगे। यद्यपि सामान्यतः संस्कृत संज्ञा, प्रत्यय, और उपसर्गोंकी सहायतासे ही सब अपने अपने शब्द बनाते हैं, पर तो भी यह स्पष्ट है कि सबके शब्दोंमें भिन्नता पायी जाती है, एक ही भावको प्रदर्शित करने के लिये एक लेखक एक शब्द प्रयोग करता है, तो दूसरा लेखक उसी भावके लिये दूसरा पर्य्यायवाची शब्द प्रयुक्त करने लगता है। इसका प्रभाव यह होता है कि अन्ततोगत्वा कोई भी पारिभाषिक शब्द प्रचलित नहीं होने पाता है, और साधारण जनताके लिये समस्त वैज्ञानिकसाहित्य एक विचित्र तरहकी उलझन और पहेली हो जाता है। साधारण जनता यह सदा आक्षेप करती ही रहती है कि हम किस लेखककी बात सुनें, एक कुछ शब्द कहता है और दूसरा कुछ, और तीसरा कुछ। जितने लेखक उतनी ही तरह के शब्द।

हम यहाँ कुछ साधारणसे शब्द देंगे जिनसे हिन्दी और बंगालीके कुछ साधारण भेदोंका पता-चल जावेगा।

	हिन्दी	बंगाली
Positive electricity	धन विद्युत्	धन तड़ित्
Diffusion	निस्सरण	व्याप्ति
Liquid	द्रव	तरल
Surpeetension	पृष्ठ तनाव	बाह्यातान चाप
Thermometer	तापमापक	उष्णमान, तापमान

इसी तरह अनेक पर्य्याय एक ही भावके लिये प्रयुक्त होते हैं। यह ठीक है कि बंगालीके जो शब्द हमने यहाँ दिये हैं, वे वंगभाषा में भी सर्वमान्य नहीं हैं। बंगालियोंके यहाँ भी एक सम्प्रदाय अंग्रेज़ीके शब्दों को ज्यों का त्यों रखने के पक्ष में है। प्रकृति (पंचम वर्ष, १३३५ शीत संख्या पृ० ४२६-४३५ की 'गाछेर कथा' नामक लेखमाला में श्रीशैलेन्द्रचन्द्र वसु ने 'अस्मोसस् (osmosis) 'डिफिऊसान' (Diffusion), टरजिडिटि (Turgidity), प्रेसार (Pressure)' 'काईनेटिक ओ पोटेन्सियाल एनार्जि', 'अक्सिडेसन,' 'कम्बस्चान' आदि अंग्रेज़ी के शब्दों को ज्यों का त्यों रखा है। साइन, कोसाइन आदि गणित के पद भी कई लेखकों ने इसी रूपमें प्रयुक्त किये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि बंगालियों ने अभी पारिभाषिक शब्दोंके विषयमें कोई भी मत निर्धारित नहीं किया है। इस ओर कुछ प्रयत्न अवश्य हो रहा है।

बंगाली और हिन्दीकी एकताका प्रश्न अभी दूर है। न बंगाली भाषामें प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्यकी पहुंच हिन्दी-साहित्यिकों तक है और न हिन्दी में प्रकाशित साहित्य बंगालियों तक ही पहुँचता है। अन्य भाषायें और भी दूर हैं। ऐसी परिस्थितिमें जब कि एक दूसरेको न कोई समझता है, न सुनता है, यह आशा कबकी जा सकती है कि समस्त आर्य्य भाषाओंमें एक पारिभाषिक पदावली का प्रचार हो सकेगा। पारस्परिक भाव विनिमयको ओर कोई ध्यान ही नहीं देता है।

हिन्दी और अन्य भाषाओंके सहयोगका प्रश्न तो दूर की बात है। यहाँ अकेली हिन्दीमें ही पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें इतनी भिन्नता विद्यमान है जिसका कुछ कहना नहीं। गत तीन चार वर्षोंसे हमने 'विज्ञान' और विज्ञान परिषद् की यह नीति रक्खी है कि जहाँ तकहो सके 'विज्ञान' में प्रकाशित सम्पूर्ण लेखोंके पारिभाषिक शब्दोंमें विरोध न पड़े, क्योंकि विरोध रहनेसे साधारण पाठकोंको सदा धोखा ही रहेगा। जहाँ तक हो सका, हमने इस नीतिको निभाया है और हमें इसमें समुचित सफलता भी मिली है। पहले यह होता था कि विज्ञानके एक ही अंकके दो लेखकों द्वारा लिखे गये लेखोंके पारिभाषिक शब्दोंमें बहुधा विरोध हो जाता था।

पर वैज्ञानिक विषयोंपर लिखनेवाले समस्त हिन्दी लेखक न तो 'विज्ञान' को पढ़ते ही हैं और न विज्ञान-परिषद्से प्रकाशित पुस्तकोंकी ही ओर वे ध्यान देते हैं। अतः प्रत्येक लेखक अपनी बुद्धि और योग्यतानुसार नये नये शब्द बनाने बैठ जाता है, और अन्ततोगत्वा इसका फल यह होता है कि पुराना बना बनाया काम एक दम मिट्टी बराबर हो जाता है। प्रत्येक नये लेखकका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि नये शब्द बनानेसे पूर्व इस बात को देख ले कि पूर्ववर्ती साहित्यमें अमुक भावके लिये कोई शब्द बनाया गया है या नहीं। फिर आगे जैसा चाहे करे। पसन्द आवे तो ग्रहण करले, न पसन्द आवे, छोड़ देवे। ऐसा करने पर बहुत सम्भव है, उसे दूसरेके परिश्रमसे कुछ लाभ हो सकेगा और उसकी शक्ति व्यर्थ नष्ट न होगी। प्रत्येक हिन्दी वैज्ञानिक प्रेमीका यह पहला कर्त्तव्य है कि वह हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्य से पूर्ण (uptodate) परिचय रखे, तदुपरान्त उसका यह कर्त्तव्य दूसरा होना चाहिये कि अपनी योग्यतानुसार यथाशक्य इस साहित्यकी वृद्धिके लिये कुछ करे। वैज्ञानिक साहित्यके लेखकोंसे भी अधिक आवश्यकता वैज्ञानिक साहित्यके पाठकोंकी है।

अभी हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक लेख पत्र-पत्रिकाओंमें बहुत ही कम प्रकाशित होते हैं। इन लेखोंसे सम्पादक भी घबड़ाते हैं और पत्रिकाओंके ग्राहक भी। माधुरी, सुधा, सरस्वती, चांद, विशाल-भारत, त्यागभूमि प्रभृत उच्चकोटिकी पत्रिकाओंमें वैज्ञानिक विषयोंके लिये स्तम्भ अवश्य होते हैं, पर उनमें कुछ मनोरञ्जनकी सामिग्री, साइंटिफिक अमरीकन, डिसकवरी, पोपुलर साइन्स आदि अङ्गरेजी के भड़कीले पत्रोंके कटिंग्सके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। ऐसा होना कोई बुरा भी नहीं है, क्योंकि सामान्यजनता विज्ञानके चमत्कारोंको पढ़ कर कुछ मनोरञ्जन और दिल बहलाव अवश्य कर लेती है। कभी साल छः मासमें एक दो बार गम्भीर वैज्ञानिक लेखभी किसी किसी मासिक पत्रिकामें निकल जाते हैं। पर इतनेसे ही वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धि नहीं हो सकती है। इतनी विख्यात प्रमुख पत्रिकाओं में, जहाँ बीसियों अन्य गम्भीर और सरस लेख, गल्प आदि रहते हैं वहाँ यदि प्रतिमास एक नीरस गूढ़ वैज्ञानिक लेख साहित्यकी अभिवृद्धिकी दृष्टिसे भी रहा करे तो हानिही क्या है? इन पत्रिकाओंकी ग्राहक संख्य ।

अधिक है, उनके पाठक अधिक हैं। 'विज्ञान' के समान विशिष्ट पत्रोंके पढ़ने, खरीदने और समझने वाले बहुत कम हैं। ऐसी अवस्थामें सहयोगीपत्रिकाओंसे हमारा अनुरोध है कि अपनी पत्रिका की उपयोगिता और सरसताका ध्यान रखते हुए यदि साल भरमें तीन चार गम्भीर लेख भी वैज्ञानिक विषयों पर निकाल दिया करें, तो इससे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका भी प्रचार होगा, वैज्ञानिक साहित्यकी भी अभिवृद्धि होगी, और कालान्तरमें उनकी पत्रिकाओंकी उपयोगिता भी बढ़ जावेगी। वैज्ञानिक विषयोंपर लिखनेवालोंकी संख्या भी इसी प्रकार बढ़ेगी।

हमारे सहयोगियोंका आक्षेप है कि वैज्ञानिक विषय नीरस होते हैं, उनमें सामान्य जनता रुचि नहीं लेती है। हम समझते हैं कि यह बात बिलकुल भ्रमपूर्ण है। यदि इन पत्रिकाओंमें दार्शनिक गम्भीर लेख, अर्थ शास्त्र सम्बन्धी गूढ़ लेख, प्राचीन इतिहास और भाषा विज्ञान एवं पुरातत्व सम्बन्धी एक से एक उलझन पैदा करनेवाले लेख प्रकाशित हो सकते हैं, यदि काव्य, नाटक, और उपन्यास कला पर समालोचनात्मक निबन्ध निकल सकते हैं, तो फिर वैज्ञानिक विषयोंके लिये क्या आपत्ति है ?

जनता की योग्यताका स्टैण्डर्ड इन्हीं पत्रिकाओं के हाथमें है। यदि जनता वैज्ञानिक विषयोंसे घबड़ाती है, तो इसीलिये कि इन पत्रिकाओंने इन विषयोंकी ओर जनताका ध्यान अभी तक आकर्षित नहीं किया है। हमें आशा है कि यदि चार पांच वर्ष इन मासिक पत्रिकाओं ने जहाँ प्रतिमास या दूसरे महीने एक एक ही वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किया तो धीरे धीरे जनता भी इस मर्य्यादा तक ऊँची उठ आवेगी कि उसे वैज्ञानिक विषय सरस और ग्राह्य प्रतीत होने लगेंगे। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि ऐसा होने पर जनता इन विषयोंमें काफी दिलचस्पी लेने लगेगी। क्या हम इस विषयमें अपने सहयोगी पत्र पत्रिकाओंसे कुछ आशा रख सकते हैं ?

पत्र पत्रिकाओंसे वही काम सिद्ध हो जाता है जो सभा सोसाइटी, और समितियोंसे निकलता है। कुछ लोगोंका विचार है कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंको निर्धारित एवं निश्चित करनेके लिये अन्तर्प्रान्तीय समितियाँ बनाई जायँ और उनके द्वारा जो निर्णय हो वही ठीक माना जाय। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि साहित्यिक-व्यक्ति समितियोंके निश्चयोंके बन्धनसे मुक्त हैं। किसी साहित्यिक समस्याका समाधान हाथ उठवाकर अधिकमत गिन लेनेसे नहीं हो सकता है। इन समस्याओंके लिये तो संघर्षकी आवश्यकता है, और इस संघर्षका सबसे अच्छा और निष्पक्ष क्षेत्र पत्र-पत्रिकायें हैं। इस क्षेत्रमें जो पारिभाषिक शब्द अधिक कालतक जीवित रह सकेंगे और जनता का ध्यान आकर्षित कर सकेंगे, अन्तमें उन्हींकी विजय होगी। ऐसी अवस्थामें यदि वैज्ञानिक विषयोंके प्रति हमारी प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओंकी उदासीनता कुछ दूर हो जाय और उनके संचालक एवं सम्पादक कुछ उदार हो जायँ तो पारिभाषिक शब्दोंको पारस्परिक संघर्षका अवसर मिल जायगा और इस प्रतियोगितामें जो भी शब्द प्रचलित हो जायँगे वे स्वभावतः सर्वमान्य होंगे, अनुपयोगी शब्द स्वयंही भस्मसात हो जायँगे।

खेतसे मोथा निकालने की विधि

(Eradication of motha weed)

[ले० श्री बलदेव सहाय निगम, एल० जी०]

बंबई प्रान्तमें इसके बहुतसे नाम हैं—मराठी भाषामें इसको लवाला या नागरमोथा कहते हैं—गुजरातीमें गनदर्दो (Gundardo) कनारीमें कुराई टेक (Kurai tak) और तामिल भाषामें किज़हांगू (Kizhangu) कहते हैं।

इसका वैज्ञानिक नाम साइप्रेस रोटंडस (Cyperus rotundus) है। इसका बंशज साइप्रेसी (Cyperaceae) है जो घासके वंशोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

गर्म देशोंमें यह बहुत पाया जाता है—भारतवर्षमें ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसमें तना बहुत सूक्ष्म होता है। पत्तियाँ खड़ी होती हैं और उनके बीचमें नाली सी होती हैं और पत्तियोंके गुच्छेके बीचसे फूलोंका गुच्छा घासकी तरह फूटता है।

मोथा खेतोंमें ऊगने वाला खर है। सींचे हुए खेतोंमें बहुतायतसे होता है—पड़तीमें यह उगने नहीं पाता है। गुजरातमें किसान उन खेतोंको जिनमें मोथा होता है, कुछ वर्षोंके लिये पड़ती छोड़ देते हैं और दूसरे खर इसको उगने नहीं देते।

मोथा खारी धरतीमें या पानी लगनेवाले स्थानोंमें नहीं उगता है—यह सूखाको बहुत सहन कर सकता है।

औसत तौरपर फूलके एक गुच्छेमें लगभग २२० बीज होते हैं—यदि हम एक वर्ग गज धरती में ५० मोथाके पौधे मान लें तो एक एकड़के खेतमें ५,३६,००,००० बीज हर चार महीनेंके बाद होंगे। इससे यह अनुभव किया जा सकता है कि इससे कितनी हानि हो सकती है।

केवल धरतीकी नमीमें बिना तर हवाके मोथा के बीज नहीं जमते और इस वजहसे खेतोंमें केवल बरसात हीमें बीज जम सकते हैं।

धरतीके नीचे जड़में आलूकी तरह बहुत सी गाठें (Tubers) होती हैं—यह गाठें एक प्रकार से धरतीके नीचे रहनेवाले तने हैं। इनमें बहुत सी कलियां होती हैं और इन सब कलियोंसे कल्ले फूटते हैं। अच्छी धरतीमें हलकी धरतीकी अपेक्षा यह गँठीले तने अधिक होते हैं।

धरतीके नीचे रहनेवाले गठीले तने (Tubers) पांचसे सात दिनमें जम जाते हैं।

गरम रखनेवाले संदूक (Incubator) में ४०° शतांश (१०४° फाहरेनहीट) के तापक्रम पर १४ दिन गठीले तनोंको रखनेसे जमनेकी ताक़त मर जाती है। यदि इसी तापक्रम पर खेतमें ऊपर या ३ इंच गहराई तक ८ दिन खुले रखनेसे भी जमने की शक्ति मर जाती है। जेठ या वैशाख के महीनेमें मोथाके गठीले तने धरती पर ले आये जायँ तो सूर्य की गर्मीसे वह मर जाते हैं। सनई बोनेसे भी मोथा कम हो जाता है।

वर्षा होते ही कई जुताई करके मोथाके सारे गँठीले तनोंको सितह पर ले आते हैं और सूरज की गर्मीसे यह मर जाते हैं। यदि खेत खाली हो तो कोई हरी खादवाली फसल जैसे सनई (सन) बो देना चाहिये और थोड़ा बढ़ने पर जोत कर फसलको दवा देना चाहिये।

यदि खरीफमें कोई फसल लेना हो तो उस खेतमें बराबर निकाई करते रहना चाहिये ताकि मोथाकी पत्तियां बराबर टूटती रहें। मोथामें पत्तियां न होने पर धरतीके नीचे गठीले तने बनने नहीं पाते। गर्मीमें जुताई करनेसे मोथा कम हो जाता है और तीसरे साल गर्मीमें जुताई करनेसे सारे गठीले तने ऊपर आकर सूरज की कड़ी गर्मीमें मर जाते हैं।

भारतमें ब्रॉडकास्टिंग

(ले० श्रीधर्मनाथ प्रसाद कोहली एम० एस-सी०)

आज कल यूरोपमें प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें ब्राडकास्टिंग कम्पनी है। वहाँसे जो भी विषय बखेरा जाता है वह केवल यूरोपमें ही नहीं, और देशोंमें भी कर्णगोचर होता है। हालैण्ड की कम्पनी इतनी प्रसिद्ध है कि बहुतसे लोगोंने उसका नाम सुना होगा। वहाँसे एक भाषामें नहीं, किन्तु कितनी ही भाषाओंमें विषय बखेरा जाता है। भारतमें भी लोग उसे सुनते हैं। "बखेर" से

लाभ बहुतसे हैं। प्रथम तो इसके द्वारा खबर बहुत ही शीघ्र देश भरमें फैल सकती है। दूसरे इसमें गाना और बजाना हो सकता है जिससे मनोरञ्जन भी होता है। तीसरे इसके द्वारा सुविख्यात लोगों का व्याख्यान बहुत दूर तक बहुत कम समयमें पहुँच सकता है। इससे शिक्षा भी बहुत मिलती है। इन सब बातोंके होते हुये भी भारतमें कोई ऐसी कम्पनी न थी, जो इसीमें लिप्त होकर कार्य करे। बंबईमें कुछ 'क्लब' थे जो मनोरञ्जनार्थ 'बखेर' किया करते थे, किन्तु उससे कुछ कार्य न निकलता था, उनकी शक्ति कम थी।

१६२७ ई० में भारतीय ब्राड कास्टिंग कम्पनी खुली, और जूलाईमें वाइसराय लार्ड इर्विनने प्रथम बार बंबईमें इसको खोला। उसीके कुछ समयके उपरान्त कलकत्तेमें भी उसी कम्पनी का दूसरा स्टेशन खुल गया। इन दोनों स्थानों पर जो बखेर होती है उसकी शक्ति ३ किलोवाट है। बम्बई की लहर लम्बाई (Wavelength) ३५७·१ मीटर और कलकत्तेकी ३७०·४ मीटर है। यह कम्पनी २½ वर्ष तक कार्य करती रही, और इसको हानि पर हानि ही हुई। यहाँ तक कि फरवरी १६३० में कम्पनी बन्द हो गई। तदुपरान्त भारत सरकारने इसके चलते रहने का उपाय किया, और स्वयं उसके संचालन का भार लेने वाली है। सरकार कम्पनी को खरीदना चाहती है।

हमको यहाँ पर कम्पनीके हानि उठानेके कारणों पर ही दृष्टिपात करना है। कम्पनीकी आयके दो ज़रिये थे। प्रथम तो उसे लाइसेन्स फीसमें से महान् भाग मिलता था। दूसरे बेतार माल(Wireless goods) पर जो कर लगता है उसमें का भी बड़ा भाग। किन्तु इनमेंसे बहुतसे "श्रोता" तो लाइसेन्स ही बचा जाते थे, और कर भी कम्पनी को कठिनतासे मिलता था। सरकार करमेंसे अपना भाग तो बन्दर पर ही ले लेती थी, और कम्पनी का भाग छोड़ देती थी, जिसको लेनेमें कम्पनीको बहुत कठिनता पड़ती थी। इस प्रकार उसकी आय कम होती थी। कुछ और लोग हैं जो कहते हैं कि उसके कार्यक्रम (Programmes) ठीक नहीं होते थे और ऐसे नहीं होते जिनमें जनता अधिक ध्यान लगावे।

इन कारणोंके अतिरिक्त एक और भी बड़ा कारण है जिससे जनतामें इसका प्रचार कम हुआ। भारत वर्षमें अभी विद्युत् धारा प्रत्येक स्थान पर नहीं है और श्रोतागणों को बाटरी चार्ज करानेमें कठिनता पड़ती है। फिर कलकत्ते और बम्बईसे ही बखेर होती है। संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब वासियोंको बहुत कम सुनाई देता है। यदि एक स्टेशन प्रयाग में बनाया जावे तो श्रोतागण बहुत हो जावें।

प्रयाग मध्य में है। यहांसे मध्य प्रान्त तथा देहली आदि भी दूर नहीं है। १० या १२ बड़े बड़े शहर इसके चारों ओर १०० या २०० मील की दूरी पर स्थित हैं। इनमेंसे अधिकमें बिजली है। फिर हाइड्रोएलेकट्रिक स्कीमके अनुसार मेरठ, मुज़फ्फर नगर, मुरादाबाद आदि ज़िलोंमें बिजली बहुत सस्ती हो जावेगी और गाँव गाँवमें मिल सकेगी। ऐसी अवस्थामें श्रोतागण की कितनी वृद्धि होगी यह प्रत्यक्ष ही है। यदि श्रोता अधिक हों तो कम्पनी को हानि न हो और कार्य भी सुचारु रूपसे चलता जावे। बम्बई और कलकत्तेके एक एक ओर सागर है; जहाँ श्रोताओं-का होना असम्भव है। प्रयागके चारो ओर श्रोता ही श्रोता मिलेंगे। प्रयागसे उत्तम स्थान इस कार्यके लिये शायद ही भारतमें मिले। चूँकि अब सरकार स्वयं प्रबन्ध करने वाली है, इस कारण यह आवश्यक है कि इस प्रश्न पर पूर्णतया विचार किया जावे।

खाद्य पदार्थमें मिश्रित वस्तुएँ व उनकी जाँच (२)

[ले० श्री लक्ष्मणसिंह भाटिया, एम० एस० सी०]

पिछले लेखमें मैं गावोत्पादक वस्तुओंमें मिश्रित वस्तुयें तथा तनकी जाँचका तरीका बता चुका हूँ। अब इस लेखमें कुछ और वस्तुओं के बारेमें बताऊँगा।

"मांस तथा अण्डे"

यह सर्व साधारणको विदित है कि कुछ न मिले तो मनुष्य न जाने कितनी अखाद्य वस्तुयें भी खा जाता है पर साधारण तौर पर मनुष्य बकरे का गोश्त या भेड़ की माँस खाते हैं तथा अण्डोंमें मुर्गीका अण्डा तथा और कई प्रकारके अण्डे खाते हैं।

मांस एक, दो रोज तक अच्छा बना रहता है और फिर खराब हो जाता है। इस हेतु कि वह अच्छा रहे और खराब न हो उसमें शोरा, सुहागिक तेजाब, गन्धसाम्ल, विटापकाम्ल तथा बानजाविकाम्ल मिलाते हैं जिसमें वह चीज़ें जो उसमें अर्थात् माँसमें) उत्पन्न होकर उसको खराब कर देती हैं मर जाती हैं तथा पैदा नहीं हो पाती हैं और इसीलिये माँस ठीक बना रहता है।

कभी कभी सस्ते किस्मका गोश्त अच्छे गोश्तके बदलेमें बाजारमें बिकनेको आता है। यह बात प्रमाण रूपसे पाई गई है कि बहुधा कीमेंमें (कीमा-एक, प्रकार माँससे तैयार किया गया भोज्य पदार्थ, है जिसे माँसको कूट पीसकर बनाते हैं) तथा सोसेज (अंतड़ियों को साफ करके तथा उसमें मसाला इत्यादि भर कर बनाते हैं—इस जगह यह लिखना उचित होगा कि म्यूस (muice) नामक माँससे तैयार किया हुआ भोज्य पदार्थ तथा सोसेज (sausage) इत्यादि भोज्य पदार्थ कम्पनी द्वारा तैयार किये जाकर विलायतसे बन्द डिब्बोंमें आते हैं। विलायतसे मटन नामक गोश्त भी आता है, यह भेड़ीका गोश्त रहता है) अब उपर्युक्त माँसोंमें घोड़ेका माँस काममें लाते हैं जो कि नहीं लाना चाहिये परन्तु क्योंकि घोड़ेका माँस सस्ता होता है इस वास्ते उसे इस्तेमाल करते हैं। घोड़ेका माँस तो कभी कभी पाया जाता है पर खराब तथा बासी माँस तो अक्सर बाजारमें बिकने आता है। केण्ड मीट (अर्थात वह माँस जिसको सिर्फ साफ करके बनाते हैं) में बहुधा दस्तम्, वंगम्, और सीसा मिला रहता है और कभी कभी तो थोड़ीसी मात्रा में संखिया भी मिला रहता है। लालनीलिन् (ऐनेलिनरेड—एक प्रकारका रंग) कोचीनील कारमाइन (एक प्रकारका रंग) इत्यादि रंगभी मिलाते हैं जिसमें कि पिसे हुये या कटे हुये माँसका रंग ठीक रहे। कभी कभी पिसे हुये चावल भी सोसेज इत्यादि माँसोंमें मिला देते हैं। मछली तथा घोंघे को सुहागा या टंकिकाम्ल द्वारा सुरक्षित रखते हैं।

ताजे व भुने हुये माँसको सुरक्षित रखनेवाली वस्तुएं

शोरा:—उपर्युक्त माँस ज्यादातर शोरेसे सुरक्षित रखा जाता है। इसको निम्न लिखित तरीके से हम जाँच सकते हैं—जरासा माँस लो व थोड़ेसे द्विदिव्यीलामिनका घोल गंधकके तेजाबमें बनाओ और दोनोंको मिला दो। यदि शोरा मौजूद होगा तो नीलारंग आ जायगा। गंधकका तेजाब कर्बनिक वस्तुओंको जलाकर काला बना देता है। परन्तु इसका असर कुछ न होगा तथा नीला रंग अवश्य आ जायगा।

टंकिकाम्ल या सुहागेका तेजाब:—इसकी विधि पहले लेखमें लिखी जा चुकी है।

गन्धसाम्ल:—यह तेजाब भी गंधकसे तैयार किया जाता है। इसके जाँचनेके लिये निम्नलिखित रीतिको काममें लाना उपयोगी होगा। थोड़ा सा गोश्त लेकर गरम पानीमें उबालो। इसके उपरान्त उसके रसको उसमें जितने प्रोटीड्स (एक प्रकारका पदार्थ जिसमें नोषजनका बहुत अधिक

भाग रहता है। यह वस्तुएं बहुत अधिकतासे मौजूद रहती हैं तथा पानी में घुल जाती हैं। इस चीज़के मौजूद रहनेसे ही ज़्यादा मांस खाना हानि-कारक होता है क्योंकि यह चीज़ जोड़ों पर जम जाती है और अधिक जमजाने पर मनुष्यको बाई व गठियाकी बीमारी होजाती है) होंगे वह सब नीचे बैठ जायंगे—फिर उसको छान लो, व छाननको गरम करो और फिर उस वस्तुको इकट्ठा करो जो कि वाष्पके संग आती है। फिर उसमें थोड़ासा नैलिन् मिला दो तथा उसको उबालो। अब उसमें थोड़ासा भार-हरिदका घोल मिलाओ। अब यदि ज़रासा भी सफेद सफेद अवक्षेप नज़र आये तो यह समझना चाहिये कि उस मांस में उपर्युक्त तेजाब मौजूद था।

नीचे इसकी अपेक्षा एक और आसान रीति बताई जाती है, जो कि काम में लाई जाती है। एक सोखतेका टुकड़ा लो व उसको पांशुजनैलेतमें भिगोओ। व फिर उसपर एक या २ बून्द गन्धक के तेजाबकी डालो। इस प्रकारके कागज पर गोश्त के टुकड़ेको रखो। अब अगर गन्धसाम्ल तेजाब मौजूद है तो नीला रंग जाहिर होगा—यह उस हालतमें भी जाहिर होगा जिस हालतमें कि गोश्त पुराना होगा—इसी वास्ते यह जांच हरएकके लिये नहींकी जा सकती है।

विटपिकाम्लः—इस वस्तुकी जाँच पिछले लेख में दी जा चुकी है।

बानजाविकाम्लः—पहले छटांक भर गोश्त लेकर छटांक भर पानीमें गरम करो और उसमें १ तोला स्फुरसाम्ल मिलाओ और फिर छानलो और फिर उसमें दाहकक्षार डालकर तेजाबको बिलकुल शिथिल कर दो और फिर उस घोलको गरम करो, यहाँ तक कि थोड़ा सा रह जाय। फिर इसके बाद थोड़ी मात्रामें गंधकका तेजाब छोड़ो और गरम करो कि यहाँ तक कि उसमें सफेद सफेद धुआँ सा निकलने लगे—फिर इसके बाद शोरेके कुछ टुकड़े उसमें डाल दो तथा घोल को गरम करो कि वह साफ हो जाय। फिर उसको ठण्डा करके उसमें अमोनिया मिलाओ व उसको एक शीशेकी नलीके समान एक बर्तनमें रखो ताकि दो एक बून्द अमोनियम गन्धिद डालनेमें आसानी हो। यदि यह वस्तु डालतेही लालरंग आ जाता है तो उसमें बानजाविकाम्ल मौजूद था। यदि उपर्युक्त जांच ठीक से नहीं की जावेगी तो बेकार है क्योंकि कुछ दूसरी वस्तुएँ भी आसानीसे ऐसा ही रंग पैदा कर देती हैं।

केण्ड मांस

जैसा कि मैं ऊपर लिखचुका हूँ कि केण्ड माँस ताज़े गोश्तको साफ करके बनाते हैं। यदि सिर्फ यही रीति काममें लाई जाय तो किसी भी चीज़ की उस को सुरक्षित रखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। परन्तु कभी कभी केण्ड माँसके तैयार करनेमें धुआरा मांस तथा सुधारा माँस काममें लाते हैं। सुधारे माँससे मेरा यह तात्पर्य्य है कि जब माँस ख़राब हो जाता है तो उसमें कुछ वस्तुयें ऊपरसे मिलाकर ऐसा बना देते हैं कि थोड़ी देर के लिये तो वह बिलकुल ताज़ा मालूम होता है। इस वास्ते इसमें भी वही चीज़ें सुरक्षित रखनेके लिये मिलाते हैं।

ऐसी मछली को जिसमें नमक लगाकर सुखा डालते हैं सुहागा या सुहागिक तेज़ाबके मिश्रणसे सुरक्षित रखते हैं। घोंघोंके लिये भी वही चीज़ें इस्तेमालकी जाती हैं। इन सबकी जाँच इसीप्रकार की जासकती है जैसा कि ऊपर लिखा जाचुका है।

बाहरी रंग

गोश्तकी बहुतसी क़िस्मोंमें बाहरी रंग उसको रंगनेके लिये मिलाते हैं। पीछे लिखा जा चुका है कि दो प्रकारके रंग खास तौरपर इस्तेमाल होते हैं। लाल नीलिन (एनेलीनरेड) को हम बहुत आसानीसे जान सकते कि हम उसको स्पिरिटमें

डुबोयें। फिर छान लें व सफेद ऊन स्पिरिटमें डुबायें तो उसमें रंग आ जायगा।

दूसरा रंग कोचनील कारमाइनको बहुत आसानीसे मालूम कर सकते हैं। गोश्तको लेकर उसको मुधरोल (गिलीसरीन) के संग गरम कीजिये। यदि गिलीसरीन लाल हो जाय तो उपर्युक्त रंग मौजूद है।

नशास्ता

ऊपर लिखा जा चुका है कि कुछ गोश्तोंमें नशास्ताभी मिला देते हैं—यहाँ पर इतना लिखना उपयुक्त होगा कि नशास्ता आलू, चावल इत्यादि में बहुतायत से पाया जाता है। यदि उबले हुये चावलोंको सुखवाकर पीस डाला जावे तो नशास्ता तैयार हो सकता है। नशास्ता एक सफेद सफेद वस्तु होती है।

इस वस्तु को सोसेज तथा बहुत प्रकारके माँस तथा भोज्य पदार्थोंमें मिलाते हैं। इस वस्तुकी जाँच बड़ी आसानीसे हो सकती है। कुछ गोश्त लेकर पानीके संग उबाल डालो। फिर पानीको थिरालो व ठंडा होने दो। पर एक या दो बून्द नैलिन् को डालो। नीला रंग पैदा होगा अगर काफी नशास्ता मौजूद है। और थोड़ी मात्रा में है तो यह बात जाँचने के हेतु एक बहुत बढ़िया खुर्दबीन इस्तेमाल करनी पड़ेगी तब कहीं इसके कण मालूम हो सकते हैं।

ख़राब गोश्त

गोश्त कुछ दिनों रखनेके बाद ख़राब हो जाता है और उसमें सड़ाँद पैदा होने लगती है। सड़ाँदका मतलब है कि कुछ ऐसी वस्तु जो कि ज़िन्दा होती हैं लेकिन आँखोंसे नहीं दीख सकतीं, उनका काम यह है कि वह उस वस्तु यानी गोश्त को उसके असली हिस्सोंमें आहिस्ता आहिस्ता अलग करदे। इस वास्ते जिस गोश्तमें यह शक हो कि इसमें ख़राबी आ गई है उसको ज़रा सा लेकर ज्वलक, मद्य तथा नमकके तेज़ाबके मिश्रण पर रखो। सफेद सफेद धुआँ सा निकलेगा। इस बातका ख़्याल रहे कि यह तेज़ाबका नहीं बल्कि अमोनियम हरिद होगा।

घोड़ेका माँस, सोसेज व कीमें के अन्दर पाई जाने वाली वस्तुयें :—

इस प्रकारकी मिलावट का इस देशमें रिवाज़ नहीं है। घोड़ेका माँस मधुरोजन (Glycogen) की मात्रासे जाना जाता है कि उपर्युक्त वस्तु उस माँस में कितनी मौजूद है। यदि इस बातकी जाँच करना चाहते हैं तो उसको उबाल करके छान लो और थोड़ा सा लेकर नैलिन् मिलाओ। यदि मधुरोजन ज्यादा मात्रा में मौजूद है तो घोल का रंग भूरा हो जाता है।

अण्डे

यदि यह मालूम करना हो कि अण्डा कितने दिनका है तो उसको नमक के पानीमें रखो। बिलकुल ताज़े अण्डे तो नीचे डूब जायंगे। जो अण्डे आधे आध पर टँगे रहते हैं तो कम से कम उनकी उम्र तीन दिन हैं और जो ऊपर तैरने लगें वह ५ दिन पुराना हो गया है। अंडा जितना पुराना हो जाता है उतना ही तैरता है व एक सिरे पर खड़ा होता है। यह सब बातें सुरक्षित अडोंमें नहीं मिलेंगी। अब यदि एक ताज़ा अंडा लिया जावे और उसको सूरज की रोशनीमें देखें तो यदि अन्दर लाल लाल मालूम होता है तो अंडा अच्छा है। यदि उसके अन्दर सफेदी दिखाई देती है तो अंडा ख़राब है।

इस समय अण्डे व मांस पर इतना ही लिखना उपयोगी होगा।

अब मैं अन्न द्वारा तैयार की हुई वस्तुओंके बारे में कुछ बताना चाहता हूँ।

आटा

आटेसे ही सब चीज़ें बनती हैं और जब तक अच्छे आटेसे न बनाई जावें वह अच्छी नहीं हो सकतीं व नुकसान करेंगी। आटेमें कभी कभी मेल कर देते हैं और अच्छे आटेकी जगह मामूली आटा इस्तेमाल करते हैं। उदाहरणसे मालूम होता है कि कभी राईके आटेमें गेहूँका आटा मिलाते हैं। जब आटा खराब हो जाता है और दूकानदार उस ख़राब आटेको अच्छे आटेमें मिला कर बेचना चाहता है तो उसमें थोड़ी सी फिटकरी पीसकर मिला देता है। यह डबल रोटी जो कि बाज़ारमें बनाई जाती है इसमें भी यदि खराब या सस्ते मेलका आटा इस्तेमाल करना हो तो उसमें भी फिटकरी मिला देते है। कभी कभी ज़रा सा तूतिया मिलाते हैं जिसमें कि रंग आ जाये। जिन-जर रोटी (एक खास किस्म की रोटी होती है जिसको कि अच्छे आटे व शहदसे तैयार करते हैं) के तैयार करनेमें भी लोग बदमाशी करते हैं। चुकंदरके आटेसे रोटी बनाते हैं, उनकी शकल ठीक करनेके लिये वंग हरिद् व पांशुज कर्बनेत मिलाते हैं।

उपर्युक्त मिश्रण-वस्तुओंकी जांच नीचे दी जाती हैं।

फिटकरी

थोड़ासा आटा लेकर पानीमें मिलाओ और जिलेटीनके कुछ टुकड़े उसमें भिगोओ। थोड़ी देर बाद उन्हें निकाल लो और उन जिलेटीनके टुकड़ों को अमोनियम कर्बनेत व चीड़की लकड़ी के टिंकचर के घोलमें डुबोओ। यदि फिटकरी मौजूद होगी तो जिलेटीनके टुकड़े नीले पड़ जायंगे।

तूतिया।

इसको बड़ी आसानीसे जाना जा सकता है। आटे या रोटी को पानीमें भिगोओ, और फिर उसमें थोड़ा पांशुज लोहो श्यामिद मिलाओ और ज़रा सिरके का तेज़ाब डाल दो। यदि तूतिया होगा तो लाल भूरा रंग दिखाई पड़ेगा।

बदले हुये आटे

पहले नमक का तेज़ाब ५ भाग व मद्य ६५ भाग, दोनों को हिसाबसे मिलाओ फिर उसको (अर्थात् आटेको) उपर्युक्त घोलमें मिलाओ और गरम करो और फिर ठण्डा होने दो जिसमें कि जो कुछ घोलमें बनाया हो वह नीचे बैठ जाय। अब जो ऊपर निथरा हुआ घोल रह जाता है उसको देखने पर मालूम हो सकता है कि वह अगर साफ है तो उस आटे में कुछ नहीं मिला है और अगर कुछ रंग लिये हुये है तो उसमें बहुत सी चीज़ें मिली हो सकती हैं।

यदि गेहूंके आटेमें जौका आटा मिला हो तो निम्नलिखित रीतिसे जान सकते है। थोड़ा सा आटा लेकर मधुरिनमें मिलाओ और फिर गरम करो। यदि आटा शुद्ध न होगा तो उसमें एक खास किस्मकी खुशबू आवेगी।

यदि गेहूँ का आटा राईके आटेमें मिलाया जावे तो उसे बहुत आसानीसे जान सकते हैं। आटा लेकर उसको शीशेके चूरेमें मिलाओ और फिर पानी मिलाओ और उस लपसीका थोड़ासा भाग लेकर शीशेको दो चपटे टुकड़ोंके बीचमें दबाओ तो शीशेके टुकड़ों पर सफेद सफेद निशान पड़ जायंगे। यदि ज्यादा मिश्रण हैं तो सफेद छोटे पड़ जायंगे।

यदि आटेमें इरगट मिला हो तो थोड़ा सा आटा लो व उसको काष्ठिकाम्ल व ज्वलकके संग गरम करो। यदि इरगट है तो लाल रंग हो जायगा।

रोञ्जन किरणोंकी उपयोगिता

गोली कितनी दूर है ?

[ले० श्री रघुनाथ सहाय भार्गव एम० एस-सी०]

आज कल कौन ऐसा मनुष्य है जिसने रोञ्जन किरणोंका नाम न सुना हो। इन किरणोंके वह अद्‌भुत कार्य देख पड़ते हैं कि केवल वैज्ञानिकों-नेही नहीं बल्कि डाक्टरों तथा व्यापारियोंने इनको अपना हर समयका साथी बना रक्खा है। और क्यों न ऐसा हो जब इनकी सहायतासे शरीरके भीतरी भागका ज्ञान प्राप्त होता है। हड्डीका टूटना आँतोंका फोड़ा, गुर्दा तथा मूत्राशय (Bladder) में पथरीका मालूम करना एक सरल विषय प्रतीत होता है। यूरोपके पिछले महायुद्धमें इन किरणोंने जो सहायता दी थी उसका अनुभव करना कठिन क्या, असम्भव है। जिस समय सैकड़ों तथा हज़ारोंकी संख्यामें गोली खाये हुए सिपाही अस्प-तालोंमें लाये जाते थे तो वह इन किरणोंकी ही शरण लेते थे। उस समय प्रश्न यह होता था कि वीर सिपाहीने युद्ध क्षेत्रमें गोली किस पहलू से खाई हैं। इसका मालूम करना अधिक कठिन नहीं है। शरीरके जिस स्थान छेदपर हो, उसमेंसे रक्त बह रहा हो वहींसे गोली शरीरमें घुसी है। परन्तु कठिनाई तो उस समय मालूम होती थी जब कि यह जानना चाहते थे कि वह खालसे कितनी नीचे है। इस नीचाईका ज्ञान आवश्यक था जिसके बिना गोली निकालनेके लिए नशतर (Operation) लगाना एक नई आपत्तिका मोल लेना, तथा विचारे घायल सिपाहीका जीवन ख़तरेमें डालना था। इस दूरीका मालूम करना एक सरल बात नहीं है लेकिन इन किरणोंने इस कामको सरलकर रक्खा था। किस प्रकार यह पता लगाया जा सकता है यह हमारे लेखका उद्देश्य है।

यह हम भलीभाँति जानते हैं कि सूर्य की किरणें काँचमेंसे पार हो सकती हैं। यदि हम काँचके एक ओर खड़े होकर देखें तो दूसरी ओरकी वस्तुएं बिल्कुल साफ दिखलाई देती हैं। यदि लकड़ीमेंसे हम देखना चाहें तो असम्भव है। इससे हम इस तात्पर्य पर पहुँचते हैं कि सूर्यकी किरणोंके वास्ते काँच पार-दर्शक और लकड़ी अपारदर्शक है। परन्तु लकड़ी जो सूर्य किरणोंके हेतु अपारदर्शक है रोञ्जन किरणोंके वास्ते पारदर्शक है। यदि हम रोञ्जन लैम्पके सामने एक लकड़ीका टुकड़ा रक्खें और लकड़ीके टुकड़ेके दूसरी ओर एक चमकने वाला पर्दा रक्खें तो वह चमकने लगता है। परिणाम यह हुआ कि रोञ्जन किरणें लकड़ीमेंसे पार होकर पर्दे पर टकराई हैं जिनके टकरानेसे पर्दा चमकने लगा है। यदि लकड़ीके पीछे एक लोहेकी या किसी धातुकी गोली रख दें तो हमको पर्दे पर गोली की छाया (Shadow) दिखलाई देगी, जिसका कारण यह है कि रोञ्जन किरणें गोलीमेंसे पार नहीं हो पाती हैं इसीलिए गोलीके सामने वाले पर्दे का भाग नहीं चमकता है परन्तु शेष भाग पहिलेके समान चमकता रहता है। इसका सारांश यह हुआ कि इस संसारमें कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं जिनमेंसे यह किरणें पार नहीं हो सकती हैं। वह वस्तुएं जैसे लोहा, तांबा इत्यादि इन किरणोंके वास्ते अपारदर्शक हैं।

जिस समय यह किरणें हमारे हाथ या शरीरके किसी भागमें प्रवेश कराई जाती हैं और चमकने वाला पर्दा दूसरी ओर रख दिया जाता है तो उस पर्दे पर शरीरकी हड्डियाँ दिखलाई देने लगती हैं। कारण यह है कि यह किरणें शरीरके माँसमेंसे पार हो जाती हैं परन्तु उन हड्डियोंमेंसे पार नहीं हो पाती हैं और हड्डियों की छाया (Shadow) पर्दे पर दिखलाई देने लगती है। यदि शरीरके उस भागमें कोई दूसरी वस्तु जैसे गोली इत्यादि हो तो उसका भी छाया (Shadow) पर्दे पर मालूम हो सकती है। जैसा चित्र संख्या १ में एक

काले गोलाकारके केन्द्रमें एक गोली दिखलाई देती है।

अब हम बड़ी सरलतासे समझ सकते हैं कि जिस समय हमको गोलीका स्थान मालूम करना हो तो शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमे रोञ्जन किरणें प्रवेश करानी चाहिए और दूसरा ओर पर्दे पर देखना चाहिए कि गोलीकी छाया दीखती है या नहीं। भिन्न भिन्न भागोंकी परीक्षा भिन्न भिन्न रीतिसे की जाती है जिनमें अधिकतर निम्न यन्त्र उपयोगमें लाया जाता है।
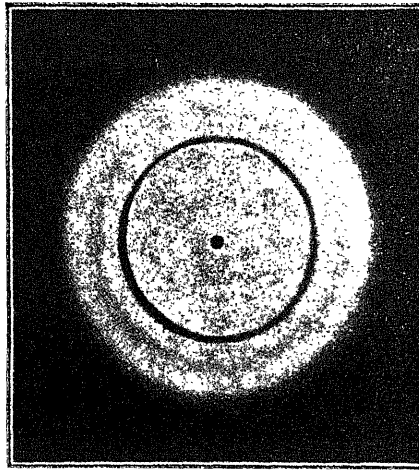
चित्र सं० १—शरीरमें गोलीका चित्र

इस यन्त्रको (चित्र सं० २) देखनेसे ज्ञात होगा कि यह एक चौकोर (Rectangular) मेज़ है जिस पर गद्दा बिछा हुआ है। इसके इधर उधर एक डट्टा (Stand) लगा हुआ है जिसमें एक रोञ्जन किरण उत्पन्न करने वाला लैम्प थमा हुआ है। इस लैम्पमेंसे किरण नीचेकी ओर जाती हैं। इसके अतिरिक्त रोञ्जन किरण लैम्प नीचे भी मौजूद है। नीचे वालालैम्प चर्खी और डोराकी सहायतासे मेज़के नीचे वाली लम्बी पट्टियों पर इधर उधर चलाया जा सकता है। हमको यह भी दिखलाई देता है कि नीचे वाली अगली पट्टी पर एक सीधा लोहेका लट्ठा लगा हुआ है। यह ऊपर चलकर ९०° का कोण बनाकर पट स्थितमें कर दिया गया है। इसके आख़िरी स्थानसे डोरेकी सहायतासे एक गोली लटका हुई है।
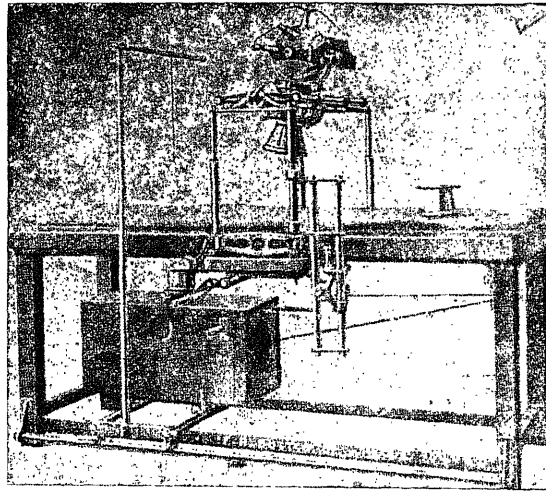
जिस समय शरीर-परीक्षा करते हैं तो रोगीको इस मेज पर लिटा लेते हैं। ऊपर वाले लैम्पको यदि उपयोग में लाना हो तो उस हालतमें लगा रहने देते हैं, वर्ना मेज़के एक कोने पर कर देते हैं, और उसका मुँह ढक्कनसे बन्द कर देते हैं जो मेज पर रक्खा हुआ दिखलाई देता है। नीचे वाले लैम्पको चलाकर रोञ्जन किरण उत्पन्न करते हैं और लैम्पको लगभग पैरोंके नीचे ले आते हैं। जिस समय यह पैरोंके नीचे आ जाता है तो किरणें मेज और पैरोंमें होकर ऊपर निकलने लगती है। अब पैर पर चमकने वाला पर्दा रखते हैं। यही किरणोंके कारण चमकने लगता है। इसी तरीकेसे नीचे वाले गोलेको एक कोनेसे दूसरे कोने तक चलाते हैं और शरीरके स्थान स्थानकी परीक्षा करते हैं। जिस स्थान पर गोली मौजूद रहती है वहां गोलीकी शक्ल पर्दे पर बन जाती है। बस उसी जगह नीचे वाले लैम्पको इधर उधर चलाना बन्द कर देते हैं।

चित्र सं० २—रोञ्जन-चित्र लेनेकी मेज़

इस समय हम दो बातें बतलाना चाहते हैं। यही किरणें यदि अधिक समय तक शरीरमें प्रवेश कराई जावेंगी तो शरीरको हानि पहुंचनेकी सम्भावना है जिसके कारण लैम्पका चलाना अधिक चतुर और फुर्तीले मनुष्यके हाथ सुपुर्द किया जाता है। हृदय और नेत्रोंको इन किरणों से बचाते हैं। यदि नेत्रोंही में गोली या किसी बाल इत्यादिका स्थान मालूम करना हो तो दूसरे प्रकार उनका परीक्षा करते हैं जैसा कि चित्र सं० २ से मालूम होता है। इन नेत्रोंकी परीक्षामें अधिक तीव्र किरणें बहुत कम समयके लिये प्रवेश कराई जाती हैं।

जिस समय गोलीका हमको लगभग स्थान मालूम हो जाता है तो फिर उसका उचित स्थान निम्न लिखित रीतिसे मालूम करते हैं।

नीचे लटकी हुई गोलीको ऐसी हालत में करते हैं कि उसकी नोंक चमकने वाले परदे पर गोलीके केन्द्रसे मिल जाय। यदि ऐसा न हो तो लैम्पको इधर उधर चलाते हैं जिसकी सहायता से प्रति ऋणोद का वह स्थान जहां से किरणें निकल रही हैं शरीरके अन्दर वालीका केन्द्र तथा लटकन की नोंक एक रेखामें हो जाय। यह हम नीचेवाले चित्रसे बड़ी सरलतासे समझ सकते हैं।

चित्र सं० ३

इस चित्रमें ख ख' रोगी की खालकी सतह है और ग शरीरके अन्दरवाली गोली है जिसका केन्द्र एक वृत्तसे दिखलाया गया है। हमको अपना लैम्प जो 'ब' बक्स में मौजूद है इस प्रकार रखना है कि प्रति ऋणोद का 'प्र' स्थान जहां से किरणें निकल रही हैं तथा ग तथा ख एक रेखा में हों। और यह उसी समय हो सकता है जब कि 'प' परदे पर 'ग' गोलीकी छाया (Shadow) का केन्द्र लटकनकी नोक से मिल सके। ऐसा करनेके पश्चात् परदेको हटा देना चाहिए और लटकनको इतना नीचा करना चाहिये कि वह खालसे बिल्कुल छू जाय। जिस स्थानपर वह खाल को स्पर्श करे वहां रोशनाईसे या रजत नोषेत से एक चिह्न बना लेना चाहिए। गोली इस चिह्नके बिलकुल नीचे होगी। इस निशान को लगाने के पश्चात् हमको ब ख दूरी नापना चाहिए। कुछ यंत्रोंमें खड़े हुए लोहेके लट्ठे पर एक पैमाना लगा रहता है जिसकी सहायतासे ठीक तौर पर यह दूरी मालूम हो सकती है। यदि किसी प्रकारका पैमाना मौजूद न हो तो साधारण रीतिसे यह दूरी नापी जा सकती है। इस दूरी को नापनेके बाद रोगीको फिर लिटा कर गोली की छाया को देखते हैं। और उसके केन्द्रका निशान परदेके काँच पर लगा लेते हैं और रोञन लैम्प को पूर्व स्थानसे दस शताँशमीटर एक ओर हटाते हैं। यह दूरी मेजके नीचे वाले पैमाने से निश्चय की जा सकती है। गोलेको दस शतांश मीटर हटानेके पश्चात् ज्ञात होगा कि उसके दूसरी तरफ गोली की छाया (Shadow) हट गया है। अब दूसरी छाया (Shadow) पर दूसरानिशान लगा कर पहिली और दूसरी छायाओं (Shadow) के अन्तर को मालूम कर लेते हैं।

यह सब बातें जानने के बाद गोलीकी दूरी मालूम करना एक साधारण गणितका समस्या रह जाती है। यदि हम विचार करें कि हमारी व ख दूरी ५५ शतांश मीटर है और दोनों छायाओं (Shadow) के बीच का अन्तर अर्थात् 'क ख' एक शतांश मीटर है जब कि रोञन लैम्प 'व' स्थान से वा पर जो दस शतांश मीटर दूर है हटा दिया गया

चित्र सं० ४

है। तो गोली 'क वा' और 'ख व' रेखाके सङ्गम पर होगी। अब हमको 'ख ग' लम्बाई मालूम करनी है। यदि हम मान लें कि वह 'द' शतांश मीटर है तो 'ग क ख' तथा 'ग व वा' त्रिकोणमें

∠ क ग ख = ∠ व ग वा क्योंकि यह दोनों आमने सामने के कोण हैं। और :—

∠गववा = ∠गखक क्योंकि यह दोनों समकोण हैं इसलिए यह दोनों त्रिकोण समान हैं।

इसलिए क ख : ख ग :: ववा : वग

$$\text{या } \frac{\text{क ख :}}{\text{ख ग :}} = \frac{\text{व वा}}{\text{व ग}} \text{ या } \frac{१}{\text{द}} = \frac{१०}{५५\text{-द}}$$

या ५५ — द = १० द ; या ११ द = ५५

∴ द = ५ शतांश मीटर

इसके वास्ते हम एक सूत्र (Formula) इस प्रकार का दे सकते हैं जिनमें हरएक लम्बाई की मात्रा रखने से गोली की दूरी मालूम हो सकती है।

$$\text{द} = \frac{\text{प} \times \text{स}}{\text{फ} + \text{स}}$$

जहां

स = दोनों छायाओं के बीचकी दूरी

प = रोञ्जन लैम्प के प्रति ऋणोद से खाल तक की दूरी

फ = जितनी दूर रोञ्जन लैम्प हटाया गया है

ऊपर दिये हुये यन्त्र के प्रयोग में हमको पर्दे पर छायाका निशान मालूम करना होता है जिसको अत्यन्त स्पष्ट प्राप्त करनेके विचारसे तीव्र रोञ्जन किरणें उपयोग में लाना आवश्यक है। परन्तु मोटे स्थान जैसे जंघा इत्यादि पर तीव्र से तीव्र किरणें उपयोग में लाने पर भी कभी कभी ठीक स्थान निश्चय करना कठिन प्रतीत होता है। ऐसे अवसर पर हम चित्र पट उपयोग में लाते हैं। मेकेञ्जी डेविडसन ने एक दूरी मापक बनाया है, जिसमें चित्र पट पर गोली का चित्र उतार कर गोली की दूरी मालूम करते हैं। इस दूरी-मापकका चित्र नीचे दिया हुआ है।
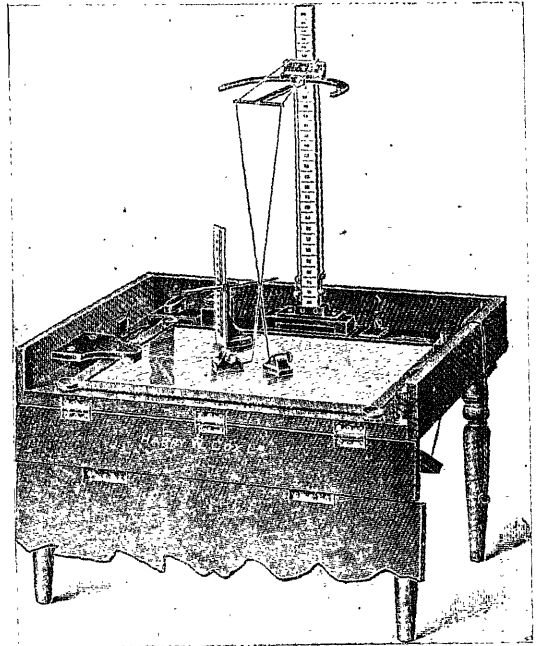
चित्र सं० ५—मेकेञ्जी डेविडसन दूरीमापक

इसका वर्णन आरम्भ करनेके पहले बतलाना आवश्यक है कि इसको उपयोगमें लानेसे पूर्व क्या किया जाता है। इसके वास्ते भी एक ऐसेही यन्त्र की आवश्यकता है जिसको हमने अभी बतलाया है। इस यन्त्रकी सहायतासे पूर्व विधि अनुसार

गोलीका लगभग स्थान मालूम कर लेते हैं। उसके पश्चात् ऊपर दी हुई रीतिसे प्रतिच्छेद, गोलाके केन्द्र और लटकनकी नोकको एक रेखामें करलेते हैं। इतना करनेके बाद खाल पर रोशनाई से चिह्न लगा लेते हैं। अब एक चित्र पट उसके लकड़ीके बक्समें रख लेते हैं। इस बक्सको जिस प्रकार पारसल बाँधते हैं एक डोरे या तारसे बाँध देते हैं जैसा कि चित्रमें बतलाया है। इस प्रकार बाँधने से पटके केन्द्रका स्थान डोरेके स्वस्तिक 'च' से मालूम हो जाता है। इस पटको रोगीके शरीर पर इस प्रकार रखते हैं कि यह स्वस्तिक रोशनाईवाले निशानसे मिल जाय।
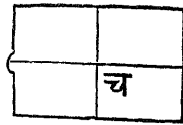
चित्र सं० ६ स्वस्तिक

अब रोंजन लैम्पको तीन शतांश मीटर एक ओर सरकाते हैं और लैम्प जला कर उस गोलीका चित्र लेते हैं। दूसरी बार लैम्पको बीचके स्थान-से तीन शतांश मीटर दूसरी ओर सरका कर लैम्प-को जलाकर उस गोलीका दूसरा चित्र लेते हैं। इस प्रकार यदि हम विचार करें कि एक बार लैम्प 'गा' स्थान पर था और पट 'प' पर उसने 'गि' चित्र बनाया और दूसरी बार वह 'गा' स्थान पर था तो पट पर 'गी' चित्र बनाया तो हमको ज्ञात होगा कि 'द' दूरी अर्थात् 'म गो' लम्बाई गोली की दूरी है। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए 'मेकेन्ज़ी डेविडसन' दूरीमापक बनाया गया है। इसको देखनेसे मालूम होगा कि इसमें दो सीधे पैमाने एक मेज़ पर खड़े हुए हैं। इनमेंसे एक लम्बा और दूसरा छोटा है। लम्बे पैमाने पर एक पट पटरी आगे को निकली हुई है जिसके कोने पर एक पट परन्तु पहिली पट पटरी पर लम्ब दूसरी पटरी है। इसके दोनों ओर तीन तीन
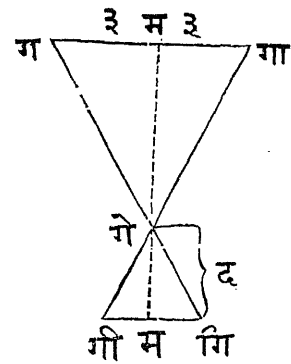
चित्र सं० ७

शतांश मीटर पर छेद हैं जिनमें डोरे पिरोये जाते हैं। इन डोरोंका एक कोना पीछे चला गया है जिनमें पत्थर बंधे हुये हैं ताकि डोरे तने रहें। यह पटरी 'गा ग' का कार्य पूर्ण करती है। यह लम्बे पैमाने पर पेंच ढीला करके नीचे ऊपरकी जा सकती है। इसको ऊँचाई म के बराबर कर लेते हैं, जो मेज़ पर नापकर पहिली दी हुई रीतिसे मालूम हो जाती है।

दूसरे पैमाने पर एक पट छड़ लगी हुई है। यह छड़ आगे नोकीली करदी गई है। इसको भी पेंच ढीला करके ऊँचा नीचा कर सकते हैं। नीचे एक मेज़ है जिसका बीच दो रेखाओं द्वारा मेज़की आमने सामनेकी पट्टियोंके बीचको मिलाकर मालूम कर लिया जाता है। जो चित्र ऊपरवाली रीतिसे लिए गये हैं उभारकर तथा स्थिर करनेके पश्चात् इस मेज़ पर इस प्रकार रखते हैं कि पटका बीच मेज़ के बीच से मिल जाय। दोनों डोरोंके नीचे निकले हुए कोनों को गोलीके चित्र पर इस प्रकार जमा देते हैं कि इधर का उधर और उधर का इधर हो जावे। जैसा चित्र में दिया हुआ है बीचमें कट जावें। अब यह इसी प्रकार हो जाता है जैसा कि चित्र नम्बर ७ में दिया हुआ है। जिस स्थान पर यह डोरे कटते हैं उनकी मेज़से ऊँचाई मालूम करने पर गोलीकी दूरी मालूम हो जाती है।

यह ऊँचाई लम्बे पैमानेकी छड़को ऊँचा करके और उसकी नोकको उस स्थान से मिलाकर मालूम की जा सकती है।

चित्र पटका उद्घाटन

इस दूरीमापकको प्रयोगमें लानेसे पूर्व इस बातका निश्चय करना आवश्यक है कि हमको अपना पट रोञ्जन किरणोंके समीप कितने समय तक उघाड़े रखना चाहिये। जितनी देर पटको उघाड़े रखते हैं पटका उद्घाटन कहलाता है। यह उद्घाटन सेकेण्डोंमें दिया जाता है। इसकी मात्रा निश्चय करनेके हेतु कोई नियम नहीं दिया जा सकता है। क्योंकि यह कई बातों पर निभर है।

(१ रोञ्जन किरणोंको तीव्रता:—

यदि रोञ्जन किरणें मन्दी हैं तो हमको अधिक समय का उद्घाटन देना होगा और पटका उद्घाटन ज्यों ज्यों किरणोंकी तीव्रता अधिक होती चली जावेगी कम होता जावेगा।

(२) शरीरके भिन्न भिन्न भाग :—

यदि हमको नेत्रोंका परीक्षा करनी है तो नाम मात्रका उद्घाटन देना होगा। यदि हम उँगलियों तथा हथेलीका चित्र लेना चाहते हैं तो हमको कुछ अधिक समयका उद्घाटन देना होगा। केवल जंघा और पसलियोंका चित्र लेनेमें काफी समय तक पटको उघारना होगा।

(३) मनुष्य मनुष्य पर :—

कुछ मनुष्य पतले और कुछ मोटे होते हैं। शरीरके एक भागमेंही मनुष्य मनुष्यमें इतना अन्तर हो जाता है जितना कि एक ही मनुष्यके हाथ और पैर में। इसलिये उद्घाटनका निश्चय करना कठिन है।

(४) लैम्पकी शरीर से दूरी :—

यदि लैम्प दूर है तो अधिक समयका और निकट है तो कम समयका उद्घाटन देना होगा। यदि लैम्प 'द' दूरी पर है तो उद्घाटन '$द^2$' पर निर्भर है।

इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी हम एक साधारण लैम्पके लिये जिसमेंसे सहस्रांश एम्पियर धारा बह रही है और पटकी लैम्पसे चौबीस इञ्च की दूरी है निम्न लिखित समयका भिन्न भिन्न स्थानके वास्ते उद्घाटन देना चाहिए।

शरीर भाग	उद्घाटन
हाथ और पैरके पंजे	२० सैकेण्ड
बाजू	३० ,,
कंधा	६० ,,
थोरेक्स	६० ,,
सर	२ से ३ मिनट
पेट	२ से ३ ,,
जंघा	२ ,,
घुटना	१ ,,
जघा, टांग	४० सैकेण्ड
टखना	३० ,,

लेकिन यह ध्यान रखना आवश्यक है कि नियुक्त समय से उद्घाटन कम नहीं होना चाहिए। यदि अधिक हो जावे तो ज्यादा हानिकर नहीं। यदि लैम्पमें एक सहस्रांश एमपियरसे अधिक धारा बह रही है तो उद्घाटन इस हिसाबसे कम कर देना चाहिए कि विद्युत् धारा और समयका गुणन फल एक भागके वास्ते एकही रहे अर्थात् यदि दो सहस्रांश एमपियर धारा बह रही है तो उद्घाटन का समय आधा कर देना चाहिए।

कपड़े और रोञ्जन चित्र

शरीरका चित्र लेते समय कपड़ोंको जहाँ तक सम्भव हो उतरवा देना चाहिए। स्त्रियोंके वास्ते एक पृथक् कमरा रहना चाहिए जिसमें वे अपने कपड़े उतार कर एक ऐसा साया पहिन लें जिसमें किसी प्रकारकी गाँठ इत्यादिका उपयोग न होता हो। यदि किसी कारणसे कपड़े उतरवाना दुखदायक या रोगीकी इच्छाके विरुद्ध हो तो इसकी अधिक आवश्यकता भी नहीं है। घावकी पट्टी इत्यादि हटाना हवाके लग जानेके भय से स्वीकार

न हो तो उनके भी हटानेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह किरणें बड़ी सरलता से कपड़ोंमें होकर चली जाती हैं। ऐसी दशामें केवल उद्घाटन ऊपर दिये हुए समयसे अधिक कर देना होगा।

मक्का

[ले० रायसाहब श्री नन्दकिशोर शर्मा]

संसारमें मुख्य नाजोंमेंसे मक्का भी एक मुख्य नाज है। गेहूँ और चावल के बाद इसी का नम्बर है। यानी प्राणीमात्रके जीवनके लिये यह एक ख़ास नाज है। इसकी जन्म भूमि अमरीका है और वहींसे सारे संसारमें फैली है। इसके बारे में भिन्न भिन्न विद्वानों का भिन्न भिन्न मत है। लेकिन अब यह निश्चय रूपसे सिद्ध हो गया है कि अमरीका देशका पीरू प्रान्त इसकी जन्म भूमि है। मक्का अभी तक कहीं भी जंगली असली हालत में पैदा होती हुई नहीं पाई गई है। और बहुतसे विद्वानों का मत है कि आज कलकी हमारी मक्का गामा(Goma)या टियोसिंट(Teosint)घाससे बनी है। कुछ भी हो आज दिन जो इस नाम का महत्व है उसका वृतांत जो कुछ लिखा जाय वह थोड़ा है क्योंकि प्रति एकड़ मनुष्यमात्रके योग्य खाद्य पदार्थ मक्का से मिलते हैं वह संसारमें किसी दूसरे नाज से नहीं मिलते। अगर एक एकड़में २५ मन पैदावार मान ली जाय तो उसमें क़रीब क़रीब २ मन प्रत्यमिन (Protein) वह चीज़ जिससे मांस मज्जा बनता है होती है। जर्म्मन महासमरके दिनोंमें मक्का भी एक विजय का कारण थी। और सन् १९१७ में केवल अमरीकामें ही ११७०००००० एकड़ भूमि पर बोई गई थी। समरके दिनोंमें व बादको भी मामूलीके अलावा ३६६०००००० मन सालानासे अधिक मक्का विलायतमें अमरीकासे आती रही जिससे कि अनगिनती लोग जीवित रहे और समर सफलतामें ख़ास योग दिया। नाजोंमें जितने भिन्न भिन्न कामोंमें मक्का काम आती है या जितनी भूमि पर यह बोई जाती है या जितनी अधिक इसकी पैदावार होती है इसका मुक़ाबिला दूसरा कोई नाज नहीं करता है। याने इसका आटा बनता है, निशास्ता बनता, लपसो बनती हैं, लोग चबाते है, मद्देगी बनती है और तेल बनता है। और आज दिन मद्य ख़ास तौरसे इससे बन रहा है। और अगर किसी समय दैव योग से मिट्टीका तेल मिलना बन्द हो जावे तो संसारमें मद्यकी प्रतिका उपाय मक्का ही होगी।

अच्छी पैदावार मक्काके लिये अच्छे बीज और पौधेकी बढ़नेकी ताक़त पर निर्भर है और बीजके जमनेके लिये (१) बीज की ज़िन्दगी, (२) नमी, (३) गर्मी और (४) ओषजन की ज़रूरत है। बीज हमेशा नया होना चाहिये। गो मक्काके बीजमें जमने की ताक़त दस साल तक बनी रहती है लेकिन एक सालके बाद ज्यों ज्यों पुराना बीज होता जाता है त्यों त्यों उसकी ताक़त कम होती चली जाती है। बिला अच्छी नमीके मक्का का बीज अच्छी तरह नहीं जमता और मक्काके बीजके जमनेके लिये बमुक़ाबले और नाजोंके बीजके अधिक गर्मीकी ज़रूरत होती है। इसलिये जहाँ तक हो सके खेतीको पलेवा करके ज्येष्ठमें इसकी बुवाई हो जाना चाहिये और खेत ऐसा होना चाहिये जिसमें पानी न रुकता हो। मक्का एक ऐसी चीज़ है कि इसको पानीकी भी बहुत ज़रूरत है। बीज भले ही जम आवें,अगर खेतमें काफ़ी नमी न होगी तो पौधोंकी परवरिश अच्छी न हो सकेगी और पैदावार बहुत कम होगी। चूंकि इसका पौधा बहुत बड़ा होता है और पत्ते इसके काफ़ी लम्बे चौड़े होते हैं। अतः स्वभाविक तौरसे यह पौधे भूमिमेंसे बहुत पानी खींचते हैं। और फिर वह पानी पौधे व पत्ते द्वारा हवामें उड़ जाता है। विद्वानोंने पता लगाया है कि गर्मीके दिनोंमें मक्का के पौधे एक एकड़ भूमिसे क़रीब २०००० मन पानी हवामें भाप बना कर उड़ा देते हैं। पौधेकी

परवरिशके लिये रोशनी भी अति आवश्यक चीज़ है। बिला रोशनीके पौधेमें आटा बनानेका माद्दा नहीं तैयार होगा। और यह गुण यानी रोशनीकी आवश्यकता मक्कामें सबसे अधिक है। मक्कामें तीन जड़ होती हैं (१) रेशे वाली, (२) पक्की, (३) ऊपरी। रेशे वाली वह है जो सबसे पहले बोजमें नीचेकी तरफ़से भूमिमें जाती है। उगनेके दो तीन हफ़्ते तक पौधेको इन्हीं रेशे वाली जड़ोंसे भोजन मिलता है। बादमें यह रेशे वाली जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं और पक्की वाली जो कि इनसे मज़बूत होती हैं अपना काम करने लगती हैं और फिर भूमिके ऊपर पौधेके तनेमेंसे जड़ें निकलती हैं। यह ऊपरी कहलाती हैं। इन ऊपरी जड़ों का काम पौधेको मज़बूत करना और ताक़त देना है। मक्काके लिये गर्मियोंमें ही खेत अच्छी तरह तय्यार करना चाहिये और खेतमें अच्छी तरह खाद देना चाहिये। गोबर का खाद ३०० मन फी एकड़के हिसाबसे कम न होना चाहिये। खेत को अच्छी तरह जोत कर तय्यार होनेके बाद पलेवा करके असाढ़ यानी जूनमें बुवाई हो जाना चाहिये। लगते जून या आधेसे ज़्यादे १५, २० जून तक बुवाई हो जाना चाहिये। चूंकि इसके पौधे पड़े होते हैं और इसके लिये गुड़ाई निकाईकी बहुत ज़रूरत होती है अतः मक्का हमेशा कतारोंमें बोनी चाहिये। कतार का फ़ासिला एक दूसरे से पौने दो हाथसे कम न होना चाहिये, और एक पौधेसे दूसरे पौधे का फ़ासिला क़रीब पौन हाथ होना चाहिये, क़तारें पूरब पच्छिम होना चाहिये। अगर यह पौधे ठीक ठीक क़तारोंमें न बोए जायं तो बादमें इनकी निकाई गुड़ाईमें रुकावट होनेके कारण पैदावार पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अगर अच्छी पैदावार लेना मंजूर है तो बुवाईके थोड़े कष्ट और मिहनत की परवा न करना चाहिये। अगर ज़्यादा रकबा बोना मंजूर है तो हलके पीछे बोना चाहिये वरना अच्छा और सहल तरीक़ा तो यह है कि खेतमें लाइन बना लेनी चाहिये यानी पच्छिम-पूरब और उत्तर-दक्खिन और जहाँ जहाँ पर इन दोनों लाइनों का काट होवे वहाँ ४ बीज क़रीब दो अंगुल नीचे गाड़ देना चाहिये और फिर उस जगहको थोड़ी दाब देना चाहिये, और इसी तरह खेत ख़तम करके उसी समय बरहा मेंड़ बना देनी चाहिये और बोनेके ६-७ दिन बाद हलकी निकाई कर देनी चाहिये, और बीजोंके जम आने पर जब पौधे ५, ६ अंगुलके हो जांय उनमेंसे कमज़ोर पौधोंको उखाड़ डालना चाहिये और अगर पानीकी ज़रूरत मालूम पड़े तो सिंचाई कर देनी चाहिये, और फिर एकाद दिनमें ही निकाई कर देनी चाहिये ताकि खर पतवार दूर होता रहे और सतह ज़मीन भुरभुरी बनी रहे, जब कि पौधे क़रीब डेढ़ हाथके होने लगें। इस समय सैन्धक नोषेत (नीमका खाद) या अमोनियम गंधेत (गंधकी नौसादर खाद) बहिसाबदो मन फी एकड़ पौधों को देना चाहिये। आसान तरकीब इसकी यह है कि दो मन ऊपरी खादमें दस मन रेत या धूल वग़ैरः मिला लेनी चाहिये। फिर इस १२ मनको पौधोंके जड़ोंके चारों तरफ डालना चाहिये। अगर पौधे ऊपर लिखे फ़ासिले पर बोए गये हैं तो एक एकड़में २५८१३ पौधे होंगे। अतः हर एक पौधेकी जड़में यह रेत मिली खाद डेढ़ तोला डाल कर जड़के पास खुरपीसे मिट्टीमें मिला देना चाहिये, और उसी मिट्टीको पौधेकी जड़के चारो तरफ चढ़ा देना चाहिये। इस तरह खाद देने के बाद अगर पानी बरस जाय तो अति उत्तम, वरना खेतमें पानी देना ज़रूरी होगा। इसके बाद खेतमें गुड़ाई निकाई होती रहना चाहिये और हर गुड़ाईके समय पौधेके चारों तरफ़ मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिये ताकि पौधा मज़बूत खड़ा रहे। बुवाई के ५०-५५ दिन बाद इसके फूलनेका समय आता है। ऊपरी फूलोंसे पराग हवासे या काड़ोंसे पौधेकी गांठोंमें रेशम पर गिर गर्भाधान करता है और फिर कुदरतके नियमके मुताबिक भुट्टे पैदा होते हैं। भुट्टे आने शुरू होते ही चारो तरफ़से तोता कौवा

थोड़े समयमें अधिकसे अधिक पैदावार देने वाली फ़स्ल इससे अच्छी दूसरी नहीं है। जो भुट्टे बीजके लिये रक्खे जायं उनको हवादार मकान में लटका कर रखना चाहिये। बेहतर यह है कि लोग जिन मकानोंमें रोटी करते हैं उनमें लटका रक्खें। लटकानेकी तरकीब यह है कि भुट्टोंको बान या सुतली में एकके बाद दूसरा बांध कर लटकाना चाहिये। इस तरहसे क़रीब २५, ३०, भुट्टे एकजगहमें बांधे जा सकते हैं। अन्य देशोंमें जहां कि कृषिको भी ऊँचे दरजे पर पहुँचा रखा है वहां तो नाना प्रकार के मकान व तरकीब बीज रखनेकी प्रचलित हैं। उनका यहां ज़िक्र करना भी फ़जूल है। बीज बोने से पहिले अगर तूतियाके पानीमें तर कर लिये जांय तो बहुत अच्छा होता है क्योंकि देखा गया है कि जहां तूतियाके पानीसे तर करके जो बीज बोया गया है तो बहुतसे रोगोंसे फ़स्ल बच गई है। तूतियाके पानीसे तर करनेका तरीक़ा बहुत सादा है। यानी ५ सेर पानीमें एक छटांक तूतिया घोल लिया जावे और जब यह सब पानीमें मिल जाय उस समय जिस बीजको भिगोना मंजूर होवे उसे उस पानीमें ५ मिनट डाल देना चाहिये। बादमें यह बीज छायामें सुखा लिया जाय। तूतियाका पानी किसी मिट्टीकी नांद या लकड़ीके बर्तनमें तैयार करना चाहिये। मक्काका दाना बहुत कड़ा होता है। आसानीसे नहीं पीसा जा सकता और अगर इंजन चक्कियोंसे पीसा जावे तो इसके आटेमें यह ख़ासियत होती है कि यह हवासे नमी अपनेमें ले लेता है और फिर इससे बहुत जल्द ख़राब हो जाता है यानी एक क़िस्मकी बुसनेकी सी महक आने लगती है और आटा गूंधनेमें लोच रहित हो जाता है, जिससे रोटी नहीं बन सकती अतः यह ज़रूरी हो जाता है कि जहां तक हो सके इसका ताज़ा ही आटा काममें आवे। आटा तैयार करनेका सुगम तरीका यह है कि जितने मक्काका आटा तैयार करना होवे उतनी मक्काको एक घंटा पानी में भिगो कर नर्म कर लिया जाय और फिर

इत्यादि परिन्द इन पर हमला करना शुरू कर देते हैं, अतः इस समय रखाईकी पूरी ज़रूरत है और इस मौक़े पर जो किसान इसमें कमी करता है वह अपनी सारी मिहनत व लागत पर पानी फेर देता है और बादको अपनी तक़दीरको दोष दे रोता है। भुट्टे लगनेके बाद क़रीब एक माहमें यह पक जाते हैं और फिर यह समय इनके काटनेका होता है। सहल तरीक़ा इसका यह है कि पौधों परसे ही भुट्टे तोड़ लेना चाहिये और फिर खलियानमें इनको रख अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये। जिन भुट्टोंको बीज के लिये रखना मंजूर होवे उनके पंख न तोड़ने चाहिये और बक़ीयाके पंख छील कर भुट्टोंसे मक्का निकाल लेनी चाहिये। मक्का निकालनेका अपना पुराना तरीक़ा यानी भुट्टोंको लाठियोंसे तोड़ना बहुत मेहनत व दर्द सर है, और देर तलब भी है। भुट्टोंके भुकानेकी छोटी छोटी मशीनें कृषि विभागके द्वारा मिल सकती हैं जिनसे यह काम बहुत आसानी व थोड़े समयमें हो जाता है। मशीन अधिक क़ीमती भी नहीं है, क़रीब ३०) में आ जाती हैं। मक्काकी बहुत क़िस्में हैं और अमेरिका में तो सैकड़ों क़िस्मकी पैदा कर ली गई हैं। अपने प्रान्तमें इसकी ख़ास दो क़िस्में हैं। एक पीले दाने की, दूसरी बहुत हलके पीले दानेकी। बाज़ बाज़ दफ़े लाल दानेकी मक्का भी देखनेमें आती है, लेकिन यह कभी कभी होती है चूंकि यह नाज एक बहु-मूल्य पदार्थ है अतः बेहतर हो कि लोग अच्छेसे अच्छे क़िस्मका बीज बोवें और पूरा फ़ायदा उठावें। आम तौरसे जौनपुरी मक्का बहुत अच्छी पैदा वार वाली है पर कभी कभी मुज़फ़्फ़रनगरी मक्काकी पैदावार भी अच्छी होती है। फ़ी पौधा दो भुट्टा देने वाली मक्का अच्छी होती है बनिस्बत उसके कि जिसमें तीन या चार भुट्टा फ़ी पौधा आते हों।

एक एकड़के लिये आठ सेर बीज काफ़ी होता है और औसतन अच्छी पैदावार क़रीब २० मन फ़ी एकड़ होती है।

ओखली मूसलसे उसे कूट लिया जाय और अच्छी तरह सुखा कर मामूली हाथसे चलाने वाली घरेलू चक्कियोंमें पीस लिया जाय और ताज़ी ताज़ी रोटियां बनाकर इसका स्वाद चक्खा जाय, इसकी रोटीका मज़ा मठा और गुआरकी फलीकी तरकारी के साथ है। बाज़ लोग इस प्रकारके भोजनको गँवारू भोजन कहते हैं। लेकिन अगर किसीको अपना शरीर हृष्ट पुष्ट करने और स्वास्थ्यको बनाये रखनेको इच्छा है तो इसका व्यवहार ज़रूर करना चाहिये। मक्का अधिकतर भाड़में भून कर चबानेके काममें बहुत आती है और यह चबेना अपने ग़रीब भाइयोंके लिये एक बहु-मूल्य पदार्थ है। इसकी उपयोगिता और स्वास्थ्यदायक होनेका प्रमाण यही है कि हमारे ग़रीब किसान ऐसे मोटे रूखे स्वादिष्ट जिन्सोंके ही बदौलत आज इस क़दर मेहनत करते रहने पर अपना काम काज किये चले जा रहे हैं। अलावा चबेना रोटी इत्यादिके मक्का की ख़ास चीज़ महेरी बनती है। यह महेरी मट्ठेमें पकाई जाती है और एक ख़ास स्वादिष्ट भूख बढ़ाने वाली पाचन शक्ति क़ायम रखने वाली चीज़ है। और चीज़ें जैसे कि मिठाई लोज़ वग़ैरः भी इसकी बनती है।

दूध देने वाले गाय भैंस इत्यादिको इसका दलिया बहुत लाभदायक होता है। दूधकी मिक़दार बढ़ जाती है, और उस दूधमें घीकी मिक़दार बढ़ जाती है। अपने यहाँ मक्काकी छूछ व मक्काका रेशम किसी काममें नहीं आता। या तो जला दिया जाता है या इधर उधर ख़राब कर दिया जाता है। सन् १९०६ व १९०७ में कानपूरमें श्री हेमन साहबने छूछ का पशुओंके लिये रातिब तैयार कराया था, जिसको पशु अति रुचिके साथ खाते थे और अच्छे बलिष्ट बने रहे गाड़ी तांगोंमें चलने वाले घोड़े भी बड़ी रुचिसे खाते थे, लेकिन मन्द भाग्य वश इसका प्रचार न होने पाया था कि हेमन साहब चल दिये। अपने लोगोंकी हालत यह है कि अपनी तरफसे कुछ उद्योग नहीं करते। कोई दूसरा सब तैयार करके देदे तो काममें ले आवें, और जब तक लगातार कोई ऐसा न करता रहे आप जनता इससे लाभ नहीं उठाती। छूछका रातिब इस रीतिसे बनाया गया था। छूछके छोटे छोटे टुकड़े गड़ासेसे काट सुखाकर अंजन चक्कीसे पिसवा लिये गये थे उसमें थोड़ी जौ चना अरहरकी भूसी मिलाकर शीराका पोचारा दिया गया और एक मन इन सब चीज़ोंमें १½ सेर सोंठ १½ सेर अजवाइन पीसी हुई मिलाई गई, और फिर ज़रूरतके मुताबिक़ यह रातिब पशुओंको दिया जाता था।

मक्काके रेशमका उपयोग यह हो सकता है कि रुईके बजाय गद्दा इत्यादिमें भरनेके काम आ सक्ता है। रुई ग़रीब आदमियोंको गद्दा इत्यादिके लिये नसीब नहीं होती। अगर पुराने कपड़ोंके गद्दे बना लिये जाँय और रुईके बजाय यह रेशम भर लिया जाय तो जाड़ोंका आनन्द जो इन गद्दोंको काममें लावें वही जान सकते हैं। दूसरे, इसका रोज़गार भी निकल सकता है, क्योंकि ताँगा, मोटर; कुर्सी रेलके गद्दे इत्यादिके यह काम आ सकता है। उद्योगी मनुष्यके लिये संसारमें सब कुछ है, काहिल अपाहिजके लिये कुछ नहीं है। पौधोंसे भुट्टा तोड़ लेनेके बाद पूरी तौरसे सूख जानेसे पहले ही अगर यह पौधे काटके अंगुल डेढ़ अंगुलके टुकड़े करके बन्द जगहमें रख लिये जांय तो एक अच्छी चरीका काम दे सकते हैं, याने इनकी सानी अगर खलीके पानीके साथ जानवरोंको दी जाय तो जानवर बहुत रुचि के साथ खाते हैं और हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं।

मक्काकी खेती करने वालों को यह अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि यह ज़मीनको बहुत कमज़ोर कर देती है अतः दो तीन सालसे अधिक कभी भी यह फसल एक ही खेतमें न बोनी चाहिये और वह भी हर साल काफी खाद खेत में देते रहना चाहिये।

रसायन और जंगलकी पैदावार

[ले० श्री राय परमात्मा प्रसाद माथुर, एम. एस-सी.]

लकड़ीकी लुगदी बनाना

हमारे अनेक कामोंमें प्रतिदिन जंगलकी पैदावार प्रयोगमें आती है। वास्तवमें यह कहनाही कठिन है कि किसी देशकी सभ्यताकी कल्पना हम वहाँके गन्धकाम्लके बननेसे कर सकते हैं, या इस बातसे कि वहाँके जंगलोंका प्रयोग किन किन अनेक कामोंमें होता है। सच तो यह है कि केवल जंगलकी लकड़ियोंके प्रयोगोंनेही, एक आधका तो कहनाही क्या, अनेक भिन्न भिन्न हुनरोंकी नींव डाल दी है। और यदि हम उनका ही वर्णन करने लगें तो एक छोटेसे लेखका तो कहना ही क्या एक पूरी पुस्तक भी सर्वथा अपूर्ण होगी। यहां इतना कहना ही उचित होगा कि बढ़ईगीरी इन हुनरोंमेंसे ऐसी है कि जिसे प्रायः हर कोई जानता है।

आज कल प्रत्येक काममें शीघ्रताकी अधिकता हो रही है। मनुष्य चाहता है कि जो भी काम वह करे वह बहुत शीघ्र हो जावे। कारण, दुनिया ऐसी भौतिक उन्नतिके शिखर पर है कि मनुष्य बड़े वेगसे अपने कामको पूरा करना चाहता है। और तो और, प्रत्येक दिवस हम लोग मोटर और हवाई जहाजोंकी रफ़तारोंकी उन्नतिकी चरचा पढ़ते हैं। जो हमारे पुरखोंके लिये असम्भव था, बहुत शीघ्रताके साथ सम्भव होता जा रहा है। रसायन भी शेष और विज्ञानोंके समान मनुष्य जातिकी इस वेगताके विचारोंको उन्नति देता रहा है। अस्तु, एक मन्द गतिको वेग-से आरम्भ करनेमें रसायन सबसे अधिक उपयोगी है। इसी कारण वह वस्तु जो पहले कम बननेके कारण कुछ गिने चुने मनुष्य ही पा सकते थे पहले की अपेक्षा शीघ्र बननेके कारण सहज में ही प्रत्येक मनुष्यको मिल सकती है। वास्तवमें हरेक औद्योगिक विज्ञान एक प्रकारका उत्प्रेरक है, और दूसरे विज्ञानोंकी अपेक्षा रसायन इस बातमें बहुतही आगे है।

लकड़ीकी लुगदी बनानेकीजो विधि पहले प्रचलित थी वह अब काम नहीं दे सकती। कारण यह कि संसार की उन्नतिके साथ साथ लकड़ीकी लुगदीका (pulp) व्यय भी बढ़ता जा रहा है। वर्तमान कालमें रसायन ही यहां भी मनुष्यकी सहायताको आई। कारण यह कि लकड़ीकी लुगदी रासायनिक विधिसे बहुत शीघ्रता और आसानीसे बन सकती है। लकड़ीकी लुगदी क्या है?—लकड़ीकी लुगदीमें लकड़ीके रेशे हैं जो अनेक विधियोंसे अलग किये जाते हैं। यह रेशे वास्तवमें निरे छिद्रोज (Cellulose) होते हैं। संसारमें जितना कागजका व्यय है उसका अधिक हिस्साही इससे नहीं बनता, बल्कि और बहुतेरी चीजोंके बनानेमें भी यह इस्तेमाल किया जाता है। कारण यह है कि इससे मुलायमसे मुलायम कपड़ेसे धात जैसा कड़ा तख़ता तक बन सकता है। इसका बना हुआ काग़ज़ भी कई प्रकारका होता है। मामूली छन्ना-कागज़से लेकर बड़ा मजबूत चिमड़ा कागज़ (Parchment) तक इसीसे बनता है।

यह किसी भी रंगमें रंगा जा सकता है और ऐसा बन सकता है कि न तो गले ही और न आग ही लगे। काग़ज़ बनानेके अतिरिक्त इसका उपयोग चित्रों के चौखटे, तख्ते, पट्टे, तथा कई प्रकारके अत्युपयोगी कृत्रिम रेशम, और बुने जाने योग्य तन्तुओंमें होता है। इससे नोषछिद्रोज आदि विस्फोटक भी बनाये जा सकते हैं। कभी कभी रेलगाड़ीके पहियोंमें इस्पातके खोलोंके अन्दर इसे ख़ूब ठूस कर भर देते हैं।

लकड़ीकी लुगदी दो प्रकारकी होती है, यान्त्रिक और रासायनिक यान्त्रिक लुगदीकी अपेक्षा रासायनिक लुगदी अधिक उपयोगी है। पर लकड़ीकी लुगदीसे बनाया गया काग़ज रुई और लिनेनके मिश्रणसे बनाये गये काग़जकी बराबरी नहीं कर सकता है, पर इसके व्यापारमें जिस तीव्रतासे अभिवृद्धि हो रही है उससे यह आशाकी जा सकती

है कि भविष्यमें इस लुगदीसे बनाया गया काग़ज भी बहुत मज़बूत और सुन्दर हो सकेगा।

वह काग़ज जिसपर साधारण समाचार पत्र छापे जाते हैं ७० / से ८० /. तक यान्त्रिक लुगदी और २०% ३० % तक रसायनिक लुगदीका मिश्रण होते हैं। इसकी उपयोगिताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अभी एक लण्डनके दैनिक पत्रने ३ वर्ष तकके लिये १० हज़ार टन कागज़ लेनेका इक़रार किया है। यान्त्रिक लुगदीसे केवल मामूली क़िस्मका कगाज़ ही बन सकता है। रसायनिक लुगदी अच्छी श्रेणीके कागज़ तैयार करनेके काममें आती है। इस लुगदीसे बहुतसा कागज़ तो इतना अच्छा बनता है कि यह अनुमान नहीं किया जा सकता है कि लकड़ी काही यह रूपान्तर है और केवल विशेषज्ञही इसमें और लिनेनसे बने कागज़में भेद समझ सकते हैं।

लकड़ीकी लुगदीके लिये शहतीर नरम और रंगों-से रहित, होने चाहिये और उनमें जितनी कम गांठेंहों उतनाही अच्छा है। यूरोप और अमरीकामें मुलायम सपुच्छ तथा शंक्वाकारी और पोपुलस जातिके वृक्षोंका जिनके तनेका व्यास ६ से २० इञ्च तक होता है उपयोग किया जाता है। इस कामके लिये जिन जातियों के वृक्ष भारतवर्षमें उपयोगी समझे गये हैं, वे पाइनस, लांगीकोलिया, पाइसिया मोरिण्डा, पाइनस एक्सेलसा आदि हैं। बर्मा प्रदेशके जंगलों के बांस भी इस काममें बहुतही अच्छे सिद्ध हुए हैं। लकड़ीकी लुगदीका कारखाना चलानेके लिये इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि स्वच्छ पानी समुचित मात्रामें मिल सके और कामके लायक़ शहतीरोंकी भी कमी न पड़े। रसायनिक विधिसे लुगदी बनानेके लिये यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि आवश्यक रासायनिक पदार्थभी सस्ते मिल सकें।

लकड़ीकी यान्त्रिक लुगदी

Mechanical wood pulp.

लकड़ीकी लुगदी यान्त्रिक विधि से बनानेके लिये लकड़ीके एक दो फुट लम्बे गट्ठे काटते हैं, और इसे एक विशेष मशीन द्वारा छीला जाता है। इस छीलनको जहाँ तक हो सके अलग कर देना चाहिये, नहीं तो गूदेमें छीलनके दाग़ बने रहेंगे। इसके बाद इन गट्ठोंको काटा और तराशा जाता है, और ख़राब टुकड़े निकालकर दूर कर दिये जाते हैं। फिर लकड़ीके टुकड़ोंको "पाकेट" नामक यन्त्रके विशेष भागोंमें भर दिया जाता है और हाइड्रॉलिक मशीनमें बड़े दबाव पर पत्थरके बेलनों द्वारा पीसा जाता है। इस प्रकार सब लकड़ी पिस जाती है, और फिर पानीकी धारके साथ इसके रेशेभी दूर कर दिये जाते हैं। पीसते समय लकड़ीके टुकड़ोंको चक्कीके बेलनोंके पृष्ठके समानान्तर रखते हैं। टूटे हुए रेशे पानीकी सहायतासे अलग कर लिये जाते हैं, और फिर इसे कई छन्नियोंमें छाना जाता है जिससे बड़े बड़े टुकड़ेभी अलग कर लिये जाते हैं, जिन्हें फिरसे चक्कीमें पीसा जाता है। इस गूदेको फिर थोड़ा बहुत या पूर्णतः सुखाया जाता है और बाज़ारमें बिकनेके लिये भेज दिया जाता है।

कभी कभी पीसनेसे पूर्व लकड़ीका शोधन भी किया जाता है। इसके लिये कई प्रकारकी विधियोंका उपयोग किया जाता रहा है। कभी कभी लकड़ीको उबलते गरम पानीमें १०-२४ घण्टे तक भिगोया जाता है, जिससे पिसनेमें आसानी होती है। पानीमें सैन्धक चूना, ऐसेही अन्य क्षारीय पदार्थ भी मिला देते हैं। इससे रेशोंको आसक्ति (Adhesion) कम हो जाती है, और रेशे लम्बे भी हो जाते हैं, लकड़ीके पीसनेके लिये अनेक विधियोंका आविष्कार किया गया है।

लकड़ीकी रासायनिक लुगदी

रासायनिक विधि द्वारा लकड़ीकी लुगदी तैयार करनेके लिये लकड़ीको कई रासायनिक घालकों द्वारा संचालित करते हैं, जो छिद्रोजको छोड़कर लकड़ीके शेष सब पदार्थोंको घोल लेते हैं। इन्हें छानकर अलग कर देते हैं और केवल लकड़ीकी लुगदी रह जाती है। इसके लिये कई रासायनिक विधियोंका

उपयोग किया गया पर तीन विधियाँही ऐसी हैं जो व्यापारिक मात्रामें सफल कही जा सकती हैं, (१) पहली विधि गन्धित विधि है। (२) दूसरी दाहक सैन्धकक्षार विधि ; और (३) सैन्धक गन्धेत विधि है। रासायनिक विधिकी प्रारम्भिक प्रक्रियायें भी वही हैं जो यान्त्रिककी, अर्थात् लकड़ीके छोटे छोटे गट्ठे बनाये जाते हैं, इन्हें छीला जाता है और फिर मशीन द्वारा २½ इञ्चके लगभग मोटे टुकड़े काटे जाते हैं, इतना करनेके बाद रासायनिक विधिका उपयोग किया जाता है।

(१) गन्धित विधि:—(Sulphite process) लकड़ीके टुकड़ोंको ऐसी नादोंमें जिनमें चूने या मगनीसियाके अर्ध गन्धितोंका घोल भरा होता है रखते हैं, और ११५° से १२०° तकके तापक्रम पर उसमें ८ घंटेसे लेकर ३ दिन तक पड़ा रख छोड़ते हैं, और दबाव ७ वायु मण्डलका रखते हैं। जब प्रक्रियाँ पूरी हो जाती हैं, तो गूदेको गरम पानीसे धोते हैं। और कई छन्नों द्वारा छानकर मोटे और बड़े टुकड़ोंको अलग कर दिया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें सुखाकर बेचे जानेके लिये इनके बण्डल बना दिये जाते हैं। यदि रंग रहित गूदेकी अवश्यकता हो तो गूदेको रंग विनाशक चूर्ण द्वारा प्रभावित किया जाता है। गन्धितद्रव लोहे को खा जाता है और सीसा पर भी असर कर देता है, अतः रासायनिक प्रक्रियाके लिये ईंटोंकी चुनाई उपयोगी समझी गई है; और लोहे और सीसेकी मांदे इस कामके लिये अनुपयुक्त हैं।

(२) दाहक सैन्धक क्षार विधि :—इस विधिमें लकड़ीके टुकड़ोंको ८-१० घंटे दाहक क्षारके साथ उबाला जाता है और दबाव १० वायु मण्डलका रखाजाता है। दाहकक्षार कीमती चीज़ है, परन्तु जितना सैन्धक इसमें उपयोग किया जाता है उसका ८५ °/₀ के लगभग वापस भी मिल जाता है जिसका व्यवहार किया जा सकता है। इस विधिसे तैयार किया गया गूदा कुछ खाकी भूरे रंगका होता है और गन्धित विधिसे तैयार किये गयेकी अपेक्षा अधिक मटमैला होता है। परन्तु यह बहुत आसानी-से नीरंग किया जा सकता है।

(३) सैन्धक गन्धेत विधि :—इस विधिमें लोहेके पात्रोंमें लकड़ीके टुकड़ोंको सैन्धक गन्धेत द्वारा संचालित करते हैं। यह विधि दाहकक्षार विधिसे सस्ती है क्योंकि सैन्धक वापस भी मिल सकता है, पर ऐसा करने में उदजन गन्धिद गैस निकलती है जिसमें इतनी दुर्गन्ध होती है, कि असह्य हो जाती है। अतः जहाँ सैन्धक गन्धेत विधिका कारखाना स्थापित करना हो वहाँ आसपासकी जनताकी सुविधा का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

गूदा बनानेमें लकड़ीके बुरादे के उपयोगका भी प्रयत्न किया गया है पर अब तक इसमें बहुत सफलता नहीं हुई है क्योंकि अभी तक कोई ऐसा घोलक द्रव नहीं मिला है जिसका उचित रीतिसे व्यवहार किया जा सके।

सप्तम अध्याय

ध्रुवीय समीकरण और तिर्यकक्षोंका प्रयोग।

[ले० गणितज्ञ]

७५—ध्रुवीय युग्मांकोंमें सरल रेखा का सामान्य समीकरण निकालना।

म य स्थिर अक्ष है और प फ एक सरल रेखा है इसके ऊपर एक लम्ब म र खींचो जिसकी लम्बाई ल है और यह स्थिर अक्ष से ट° कोण बनाता है।
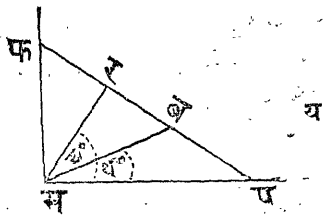
चित्र २८

इस रेखा पर कोई बिन्दु ब लो। कल्पना करो कि इस बिन्दुके ध्रुवीय युग्मांक (न, थ°) हैं हमको इस रेखा प फ का समीकरण न, थ°, ल और ट° के पदों में निकालना है।

△ म र ब में—

ल = न कोज्या र म ब = न कोज्या (ट° – थ°) = न कोज्या (थ° – ट°)

अतः ऐच्छित समीकरण यह है कि—

न कोज्या (थ—ट) = ल।

७६—उस सरल रेखाका समीकरण निकालना जो दो दिये बिन्दु ($न_1, थ_1$) और ($न_2, थ_2$) को संयुक्त करती है।

कल्पना करो कि च, छ दो बिन्दु हैं जिनके युग्मांक ($न_1, थ_1$) और ($न_2, थ_2$) हैं। इन बिन्दुओंको संयुक्त करनेवाली रेखा पर कोई बिन्दु ब लो जिसके ध्रुवीय युग्मांक (न, थ) हैं। इस प्रकार—

चित्र २९
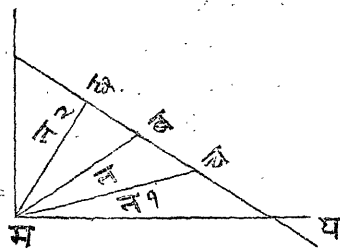
△ च म छ = △ च म ब + △ ब म छ

अतः—सूक्त ३४ के समान—

$\frac{1}{2}$ $न_1$ $न_2$ ज्या च म छ = $\frac{1}{2}$ न $न_1$ ज्या च म ब + $\frac{1}{2}$ न $न_2$ ज्या ब म छ

∴ $न_1$ $न_2$ ज्या ($थ_2$ — $थ_1$)

= न $न_1$ ज्या (थ — $थ_1$) + न $न_2$ ज्या ($थ_2$ – थ)

$$\text{अतः } \frac{\text{ज्या}(थ_2 - थ_1)}{न} = \frac{\text{ज्या}(थ - थ_1)}{न_2} + \frac{\text{ज्या}(थ_2 - थ)}{न_1}$$

यह ऐच्छित समीकरण है।

तिर्यकक्षोंका प्रयोग

७७—तिर्यकक्षोंको प्रयोग करके किसी सरल रेखाका समीकरण निकालो।

कल्पना करो कि अक्षोंके बीचमें ल° कोण है। और प फ भ कोई सरल रेखा है जो अक्षोंसे फ और भ बिन्दु पर मिलती है।
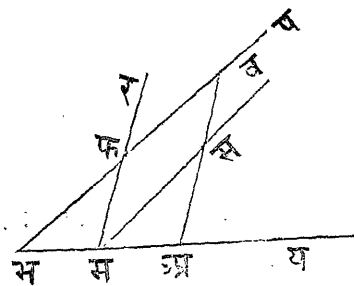
चित्र ३०

इस रेखा पर कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक (य, र) हों। ब से एक रेखा बअ र—अक्षके

समानान्तर खींचो। मूल बिन्दु म से एक रेखा म स रेखा प फ भ के समानान्तर खींचो। यह रेखा अ ब से स में मिलती है। अतः—

र = अ ब = अ स + स ब ...(१)

परन्तु $\frac{\text{अ स}}{\text{म अ}} = \frac{\text{ज्या अ म स}}{\text{ज्या (ल—अ म स)}}$ = स्थिर मात्रा = त (मान लो)।

और स ब = म फ = ग (मान लो)

∴ र = त य + ग [(१) से]।

अतः यदि रेखा प फ भ य अक्षसे थ° का कोण बनाती है तो।

$$\text{त} = \frac{\text{ज्या थ}}{\text{ज्या (ल—थ)}}$$

$$= \frac{\text{ज्याथ}}{\text{ज्याल. कोज्याथ—ज्याथ, कोज्याल}}$$

∴ त ज्या ल कोज्या थ—त ज्या थ. कोज्याल = ज्या थ

∴ ज्या थ + त ज्या थ कोज्या ल = त ज्याल कोज्या थ

∴ ज्या थ (१ + त कोज्या ल) = त ज्याल कोज्या थ

$$\therefore \frac{\text{ज्या थ}}{\text{कोज्या थ}} = \frac{\text{त ज्या ल}}{\text{१ + त कोज्या ल}}$$

$$\therefore \text{स्पर्श थ} = \frac{\text{त ज्या ल}}{\text{१ + त कोज्या ल}}$$

अतः तिर्यकक्षों में र = त य + ग उस रेखाका सूचक है जो म-अक्ष पर

$$\text{स्पर्श}^{-१} \frac{\text{त ज्या ल}}{\text{१ + त कोज्या ल}^\circ}$$

कोण बनावे।

७८ उन दो सरल रेखाओंके बीचका कोण निकालो जिनके समीकरण तिर्यकक्षोंकी अपेक्षासे दिये हुए हों—

कल्पना करो कि रेखाओंके समीकरण ये हैं:—

र = त य + ग

और र = ताय + गा

और ये क्रमानुसार अक्षों से थ° और था° के कोण बनाते हैं अतः गत सूत्रके अनुसार—

$$\text{स्पर्श थ} = \frac{\text{त ज्या ल}}{\text{१ + त कोज्या ल}}$$

$$\text{और स्पर्श था} = \frac{\text{ता ज्या ल}}{\text{१ + ता कोज्या ल}}$$

$$\text{अतः स्पर्श (थ—था)} = \frac{\text{स्पर्श थ} - \text{स्पर्श था}}{\text{१ + स्पर्श थ स्पर्श था}}$$

$$= \frac{\frac{\text{तज्याल}}{\text{१ + तकोज्याल}} - \frac{\text{ताज्याल}}{\text{१ + ताकोज्याल}}}{\text{१} + \frac{\text{तज्याल}}{\text{१ + तकोज्याल}} \frac{\text{ताज्याल}}{\text{१ + ताकोज्याल}}}$$

$$= \frac{\text{तज्याल (१ + ताकोज्याल)} - \text{ताज्याल}}{\text{(१ + तकोज्याल) (१ + ताकोज्याल)}}$$

$$\frac{\text{(१ + तकोज्याल)}}{\text{+ त ताज्या}^{२}\text{ ल}}$$

$$= \frac{\text{(त − ता) ज्याल}}{\text{१ + (त + ता) कोज्याल + त ता}} \cdots (१)$$

अतः दोनों सरल रेखाओंके बीचका कोण

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{\text{(त − ता) ज्याल}}{\text{१ + (त + ता) कोज्या ल + त ता}}$$

उपसिद्धान्त १—ये रेखायें परस्परमें लम्बरूप तब होंगी जब स्पर्श (थ − था) = ∞ अर्थात्

१ + (त + ता) कोज्याल° + त ता = ०

उपसिद्धान्त २—ये रेखायें परस्परमें समानान्तर तब होंगी जब स्पर्श (थ − था) = ०

अर्थात् (त − ता) ज्याल = ०

∴ त = ता

उपसिद्धान्त ३—यदि दोनों रेखाओंके समीकरण ये हों:—

क य + ख र + ग = ० का य + खा र + ग = ०

और इन दोनोंके बीचका कोण थ° हो तो—

$$\text{त} = \frac{\text{क}}{\text{ख}} \text{ और ता} = \frac{\text{का}}{\text{खा}}$$

त और ता के ये मान समीकरण (१) में उपयुक्त करनेसे—

स्पर्श थ =

$$\frac{(\text{का ख} - \text{क खा}) \text{ ज्या ल}}{\text{क का} + \text{ख खा} - (\text{कखा} + \text{खका}) \text{ कोज्या ल}}$$

ये रेखायें परस्परमें लम्बरूप तब होंगी जब—

$$\text{कका} + \text{खखा} + (\text{कखा} + \text{खका}) \text{ कोज्या ल} = ०$$

और ये समानान्तर तब होंगी जब—

$$\text{का ख} - \text{क खा} = ०$$

$$\text{का ख} = \text{क खा}$$

७९—किसी रेखा $\text{क य} + \text{ख र} + \text{ग} = ०$से किसी बिन्दु (च, छ) की लम्ब-दूरी निकालो।
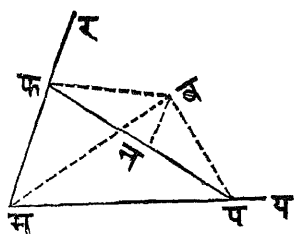
चित्र ३१

कल्पना करो कि प फ रेखा य—अक्ष और र—अक्षको प और फ पर काटती है। ब कोई दिया हुआ बिन्दु है जिसके युग्मांक (च, छ) हैं। ब से प फ पर एक लम्ब ब न खींचो।

$\triangle$ ब प फ $= \triangle$ ब म प $+ \triangle$ ब म फ— $\triangle$ म प फ.. ...(१)

$\therefore$ ब न $\times$ प फ

$=$ म प छज्याल $+$ म फ. च ज्याल $-$ म प म फ ज्याल ...(२) समीकरण (१) ब बिन्दुकी स्थितिके अनुसार परिवर्त्तित किया जा सकता है पर समीकरण (२) ब कहीं पर हो सबके लिए एकसा है। अब :—

$$\text{म प} = -\frac{\text{ग}}{\text{क}} \qquad \text{मफ} = -\frac{\text{ग}}{\text{ख}}$$

तथा प $\text{फ}^२$

$$= \text{म प}^२ + \text{म फ}^२ - २ \text{ म प म फ कोज्याल}$$

$$= \frac{\text{ग}^२}{\text{क}^२ \text{ ख}^२} (\text{क}^२ + \text{ख}^२ - २ \text{ क ख कोज्याल})$$

समीकरण (२) से

$$\text{ब न} = \frac{(\text{क च} + \text{ख छ} + \text{ग}) \text{ ज्या ल}}{\sqrt{(\text{क}^२ + \text{ख}^२ - २ \text{ क ख कोज्या ल})}}$$

८० उन रेखाओंके बीचका कोण निकालना जो—

$$\text{क य}^२ + २ \text{ ढ य र} + \text{ख र}^२ = ०$$

समीकरण द्वारा सूचित की जाती हैं। अक्षों-के बीचका कोण ल है। यदि ये रेखायें र=ता य और र=ति य हैं तो :—

$$\text{ता} + \text{ति} = -\frac{२\text{ढ}}{\text{ख}} \text{ और ता ति} = \frac{\text{क}}{\text{ख}}$$

$$\therefore \text{ ता} - \text{ति} = \frac{२ \sqrt{(\text{ढ}^२ - \text{कख})}}{\text{ख}}$$

परन्तु सूक्त ७८ के अनुसार र=ताय और र=तिय के बीचका कोण

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{(\text{ता} - \text{ति}) \text{ ज्या ल}}{१ + (\text{ता} + \text{ति}) \text{ कोज्या ल} + \text{ता ति}}$$

$\therefore$ एच्छित कोण

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{\frac{२ \sqrt{(\text{ढ}^२ - \text{क ख})} \text{ ज्या ल}}{\text{ख}}}{१ + (-\frac{२\text{ढ}}{\text{ख}}) \text{ कोज्या ल} + \frac{\text{क}}{\text{ख}}}$$

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{२ \sqrt{(\text{ढ}^२ - \text{क ख})} \text{ ज्या ल}}{\text{ख} - २\text{ढ कोज्या ल} + \text{क}}$$

ये रेखायें परस्परमें लम्ब रूप तब होंगी जब

$$\text{ख} - २\text{ढ कोज्या ल} + \text{क} = ०$$

और समानान्तर तब होंगी जब

$$२ \sqrt{(\text{ढ}^२ - \text{क ख})} \text{ ज्या ल} = ०$$

अर्थात् $\text{ढ}^२ = \text{क ख}$

उपसिद्धान्त—यदि आयताक्षों का प्रयोग किया जाय तो इन दो रेखाओंके बीचका कोण सूक्त ६५ के अनुसार

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{\text{ता} - \text{ति}}{१ + \text{ताति}}$$

$$= \text{स्पर्श}^{-१} \frac{\frac{२ \sqrt{(\text{ढ}^२ - \text{कख})}}{\text{ख}}}{१ + \frac{\text{क}}{\text{ख}}}$$

$$= \text{स्पर्श}^{-1} \frac{२\sqrt{(ढ^२ - क\ ख)}}{ख + क}$$

यदि क + ख = ०, तो ये रेखायें परस्परमें लम्ब रूप होंगी और यदि $ढ^२$ = क ख, तो ये समानान्तर होंगी।

उदाहरण माला ६

१—यदि अक्षोंके बीचमें ४५° का कोण हो, तो निम्न रेखायें य-अक्षसे क्या कोण बनावेंगी ?

(i) र = य + ३ [उत्तर स्पर्श $^{-1} \frac{१}{१ + \sqrt{२}}$

(ii) र = ३√२ + ४ [उत्तर स्पर्श $^{-1}$ $\frac{३}{४}$

२—यदि दो अक्षोंके बीचमें ६०° का कोण है तो र = २ क + ७ रेखा य-अक्षसे क्या कोण बनावेगी ? (उत्तर स्पर्श $^{-1}$ $\frac{१}{३}$)

३—यदि अक्षोंके बीचमें ६०° का कोण है तो निम्न रेखाओंके बीचके कोणका स्पर्श क्या होगा ?

२ र = ८ य + ४, ३ र = ६ य + ३

$$\left[\text{उत्तर } \frac{\sqrt{३}}{१२} \right]$$

४ सिद्ध करो कि रेखायें र + य = ग और र = य + घ के बीचका कोण समकोण है, चाहे अक्षों के बीचमें कोई भी कोण क्यों न हो ?

५—यदि रेखायें र = $त_१$य + $ग_१$ और र = $त_२$य + $ग_२$ य-अक्षसे बराबर कोण बनाती हों, पर एक दूसरेके समानान्तर न हों तो सिद्ध करो कि $त_१ + त_२ + २ त_१ त_२$ कोज्या ल = ०

६—यदि अक्षोंके बीचमें ६०° का कोण हो तो बिन्दु (२, ३) से य + २ र + ३ = ० रेखा पर लम्बकी लम्बाई क्या होगी।

$$\left[\text{उत्तर} = -\frac{१}{२} \right.$$

७—यदि अक्षोंके बीचमें १२०° का कोण हो तो (१, १) बिन्दुसे ३ य + ४ र + ५ = ० पर खींचे गये लम्बका समीकरण और लम्बाई निकालो।

[उत्तर १० र — ११ य + १ = ०; $\frac{६}{३७}\sqrt{१११}$

अष्टम अध्याय

दो या अधिक सरल रेखाओंके सूचक समीकरण

८१—कल्पना करो कि हमें निम्न समीकरणका बिन्दु पथ निकालना है :—

$२ य^२ + य र - र^२ = ०$ ......(१)

यह समीकरण इस रूपमें भी लिखा जा सकता है:—

(य + र) (२ य - र) = ०

यह स्पष्ट है कि इस समीकरणमें वे सब युग्मांक उपयुक्त हो सकते हैं, जिनसे पहला कोष्ठ शून्यके बराबर हो जाय और वे सब युग्मांक भी उपयुक्त हो सकते हैं जिनसे दूसरा कोष्ठ शून्य हो जाय, अर्थात्—

य + र = ०...(२)

और २ य - र = ०...(३)

इस प्रकार समीकरण (१) दो समीकरणोंमें विभाजित किया जा सकता है, और ये दोनों समीकरण (२) और (३) एक एक सरल रेखाओंके सूचक हैं। अतः समीकरण (१) से दो सरल रेखायें सूचित होती हैं। समीकरण (२) और (३) से यह स्पष्ट है कि ये दोनों रेखायें मूल बिन्दु (०,०) से होकर जाती हैं। रेखा (२) य-अक्षसे— ४५° का कोण बनाती है और रेखा (३) य-अक्षसे स्पर्श$^{-1}$ २ का कोण बनाती है।

८२—(१) समीकरण य र = ० का बिन्दु-पथ खींचो।

इस समीकरणमें वे सब युग्मांक उपयुक्त हो सकते हैं जो इन दो समीकरणोंकी पूर्ति करते हैं—

य = ० ; र = ०

अतः उपर्युक्त समीकरणसे य-अक्ष और र-अक्ष ये दो रेखायें सूचित होती हैं।

(२) समीकरण $य^२$ + ३य - १० = ० का बिन्दु-पथ खींचो।

$$य^2 + ३ य - १० = ०$$
$$\therefore (य + ५)(य - २) = ०$$

∴ यह समीकरण य + ५ = ० और य = २ इन दो रेखाओंका सूचक है।

(३) इस समीकरण य र − ४ र − २ य + ८ = ० का बिन्दु पथ निकालो।

$$य र - ४ र - २ य + ८ = ०$$
$$\therefore य (र - २) - ४ (र - २) = ०$$
$$\therefore (य - ४)(र - २) = ०$$

∴ यह समीकरण य − ४ = ० और र − २ = ० रेखाओंका सूचक है। पहली रेखा र-अक्षके समानान्तर ४ इकाईकी दूरी पर और दूसरी य-अक्षके समानान्तर २ इकाई की दूरी पर है।

८३—दो घातोंका सामान्य समीकरणयह है:—

$$क य^2 + २ ज य र + ख र^2 = ० \ldots (१)$$

इसे क से गुणा करने पर—

$$क^2 य^2 + २ क ज य र + क ख र^2 = ०$$
$$\therefore (क^2 य^2 + २ क ज य र + ज^2 र^2) - र^2 (ज^2 - क ख) = ०$$
$$\therefore (क य + ज र)^2 - र^2 (ज^2 - क ख) = ०$$
$$\therefore [क य + ज र + र \sqrt{(ज^2 - क ख)}] [क य + ज र - र\sqrt{(ज^2 - क ख)}] = ०$$
$$\therefore क य + ज र + र\sqrt{(ज^2 - कख)} = ० \quad (२)$$
$$और\ क य + ज र - र\sqrt{(ज^2 - क ख)} = ० \ldots (३)$$

समीकरण (२) और (३) दो सरल रेखाओंके सूचक हैं, अतः सामान्य समीकरण (१) भी दो सरल रेखाओंका सूचक है। ये दोनों रेखायें मूल-बिन्दुसे होकर जाती हैं। जो युग्मांक समीकरण (२) और (३) में उपयुक्त हो सकते हैं वे समीकरण (१) में भी उपयुक्त हो सकते हैं। ये दोनों रेखायें वास्तविक और भिन्न होंगी यदि $ज^2 > कख$। पर यदि $ज^2 < क ख$ तो दोनों रेखायें काल्पनिक होंगी क्योंकि समीकरण (२) और (३) में र के कुछ गुणक वास्तविक और कुछ काल्पनिक होंगे।

यदि $ज^2 < क ख$, तो दोनों रेखायें काल्पनिक होंगी पर वे दोनों रेखायें वास्तविक बिन्दु पर कटेंगी क्योंकि मूल बिन्दु (०, ०) दोनों रेखाओं पर विद्यमान है।

सूक्त ८० के उपसिद्धान्तमें यह दिखाया जा चुका है कि इन दोनों सरल रेखायोंके बीचका कोण

$$स्पर्श^{-1} \frac{२\sqrt{(ज^2 - कख)}}{क + ख}$$

है। यदि क + ख = ०, तो ये रेखायें परस्परमें लम्ब रूप होंगी। और यदि $ज^2 = क ख$, तो ये समानान्तर होंगी।

उदाहरणतः $य^2 - र^2 = ०$, यह समीकरण दो लम्ब रेखाओं का सूचक है। और:—

यदि $ज^2 = क ख$, तो दोनों रेखायें समानान्तर होंगी और ये दोनों रेखायें मूल बिन्दुसे भी होकर जाती हैं अतः ये दोनों रेखायें एक दूसरे को ढक लेती हैं, और एक ही बन जाती हैं अर्थात् ये दोनों पराच्छादित रेखायें हैं। अतः समीकरण (१) में $ज = \sqrt{क ख}$ रखनेसे

$$क य^2 + २\sqrt{(क ख)}\, य र + ख र^2 = ०$$
$$\therefore [य\sqrt{क} + र\sqrt{ख}]^2 = ०$$

ये दो पराच्छादित रेखायें हैं।

उदाहरणतः, $४ य^2 + ४ य र + र^2 = ०$

$$\therefore (२ य + र)^2 = ०$$
$$\therefore (२ य + र)(२ य + र) = ०$$

अतः ये दोनों पराच्छादित रेखायें हैं

८४—$क य^2 + २ ज य र + ख र^2 = ०$ समीकरण द्वारा सूचित रेखाओंके बीचके कोणोंके अर्द्धकोंके समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि

$$क य^2 + २ ज य र + ख र^2 = ० \ldots (१)$$
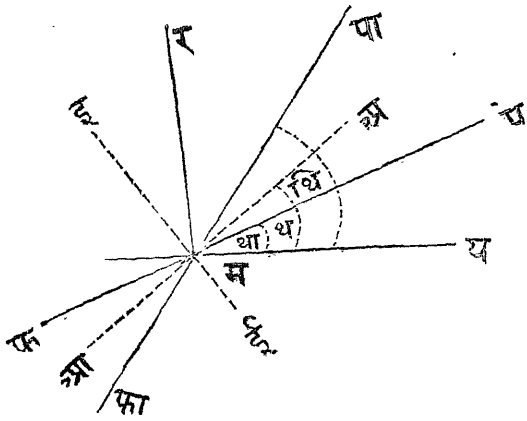
चित्र ३२

समीकरण द्वारा सूचित रेखायें प म फ और पा म फा य-अक्षके साथ था° और थि° कोण बनाती हैं। अतः समीकरण (१) निम्न समीकरण के रूपमें लिखा जा सकता है—

ख (र − य स्पर्श था) (र − य स्पर्श थि) = ०

अतः स्पर्श था + स्पर्श थि $= -\frac{२ ज}{ख}$

और स्पर्श था · स्पर्श थि $= \frac{क}{ख}$

कल्पना करो कि म अ और म इ दोनों रेखाओं के बीचके कोणों के अर्द्धक हैं। अतः।

< अ म प = < पा म अ

∴ < अ म य − < प म य = < पा म य − < अ म य

∴ < अ म य − था° = थि° − < अ म य

∴ २ < अ म य = था° + थि°

इसी प्रकार < इ म य = < इ म अ + < अ म य
= ९०° + < अ म य

∴ २ < इ म य = १८०° + < अ म य
= १८०° + था° + थि°

यदि < अ म य या < इ म य में से किसीको थ° से सूचित करें तो

स्पर्श २ थ = स्पर्श (था + थि)

$= \frac{\text{स्पर्श था} + \text{स्पर्श थि}}{१ - \text{स्पर्श था . स्पर्श थि}}$

$= \frac{-२ ज/ख}{१ - \frac{क}{ख}} = -\frac{२ ज}{ख - क}$

यदि म अ या म इ रेखा पर किसी बिन्दुके युग्मांक (य, र) हों तो

स्पर्श थ $= \frac{र}{य}$

$\therefore -\frac{२ ज}{ख - क} =$ स्पर्श २थ $= \frac{२ \text{ स्पर्श थ}}{१ - \text{स्पर्श}^२ \text{ थ}}$

$= \frac{२ र/य}{१ - र^२/य^२} = \frac{२ य र}{य^२ - र^२}$

$\therefore \frac{य^२ - र^२}{ख - क} = \frac{य र}{ज}$

अर्द्धकों पर कोई भी बिन्दु क्यों न लिया जाय, यह परिणाम सदा उपयुक्त होगा अतः यह पच्छित अर्द्धकोंका समीकरण है।

८५—दो घातोंका सामान्यतम समीकरण—सबसे समान्यतम समीकरणमें जिसमे य और र के पद दो से अधिक घातके न हों, ये पद सम्मिलित हो सकते हैं:—$य^२$, यर, $र^२$, य, र, और कोई स्थिर मात्रा। साधारणतया दो घातका सामान्यतम समीकरण इस रूपमें प्रकट किया जाता है:—

क $य^२$ + २ ज य र + ख $र^२$ + २ छ य + २च र + ग = ०......(१)

यह समीकरण बड़ा उपयोगी है। इसे सदा स्मरण रखना चाहिये।

८६—उस अवस्थाका निकालना जिसमें दो घातों का समान्यतम समीकरण दो सरल रेखाओं का सूचक हो।

सामान्यतम समीकरण यह है:—

क $य^२$ + २ ज य र + ख $र^२$ = २ छ य + २च र + ग = ०...(१)

यदि इस समीकरणके बायीं ओरके पद दो गुणावयवोंमें विभाजित हो सकें तो यह समीकरण

दो सरलरेखाओंका सूचक होगा ? कल्पना करो कि ये दो गुणावयव निम्न हैं :—

$$द\ य+ध\ र+न=0$$

$$दा\ य+धा\ र+ना=0$$

समीकरण (१) इस रूपमें लिखा जा सकता है (द य+ध र+न) (दा य+धा र + ना) $=0$...(२)

समीकरण (१) और (२) के गुणकोंकी तुलना करने पर :—

द दा=क, ध धा=ख, न ना=ग...(३)

द धा+दा ध=२ ज ; न दा+ना द=२ छ

और ध ना+धा न=२ च...(४)

अन्तिम तीनोंको गुणा करने पर

२ च. २ छ. २ ज

=(ध ना+धा न) (न दा+ना द) (द धा +दा ध)

∴ ८ च छ ज=ददा धधा नना+ददा (धा^{2} न^2 +ध^2 ना^{2})+धधा (दा^{2} न^2+ना^{2} द^2)+ नना (द^2 धा^{2}+ध^2 दा^{2})

परिणाम (३) और (४) के प्रयोग करने से—

८ च छ ज=कखग+क (४च^2 −२ ख ग) +ख (४ छ^2−२ क ग)+ग (४ ज^2−२ क ख)

[क्योंकि—

धा^{2} न^2 +ध^2 ना^{2}

=(धान+धना)^2 - २ धान धना

=४ च^2−२ धधा नना

=४ च^2−२ ख ग

इसी प्रकार

दा^{2} न^2+द^2 ना^{2}

=(दान+दना)^2 −२ ददा नना

=४ छ^2−२ क ग

और

द^2 धा^{2}+दा^{2} ध^2

=(दधा+दाध)^2 −२ ददा धधा

=४ ज^2 −२ क ख]

∴ ८ च छ ज=२ क ख ग+४क च^2 − २ क ख ग+४ ख छ^2 −२ क ख ग+४ ग ज^2 −२ क ख ग

=४ क च^2 +४ ख छ^2 +४ ग ज^2 −४ क ख ग

∴ २ च छ ज=क च^2 +ख छ^2 +ग ज^2 −क ख ग

या क ख ग−क च^2 −ख छ^2 −ग ज^2 + २ च छ ज ० (sic)

$$\text{या}\quad \begin{vmatrix} क & ज & छ \\ ज & ख & च \\ छ & च & ग \end{vmatrix} = 0$$

(सूक्त ११ अभ्यास ४ के अनुसार)

इस फलको याद रखनेमें यह कनिष्ठ फल बहुत सहायता देगा।

८७—न−घातों का समघातिक* समीकरण मूल बिन्दुसे होकर जाने वाली न—सरल रेखाओं का सूचक होता है।

कल्पना करो कि समीकरण ये हैं :—

क र^{न}+ख र$^{न-1}$य+ग र$^{न-2}$ य^2+घ र$^{न-3}$ य^3+ ... +प य^{न}=०...(१)

इसको य^{न} से भाग देने पर :—

$$क\left(\frac{र}{य}\right)^{न}+\ ख\left(\frac{र}{य}\right)^{न-1}+ग\left(\frac{र}{य}\right)^{न-2}$$

$$+\ ..\ +प=0\ ..\ (१)$$

मान लो कि इस समीकरणके मूल म$_1$, म$_2$, म$_3$ .., म$_{न}$ हैं, अतः समीकरण इस रूपमें लिखा जा सकता है :—

$$क\left(\frac{र}{य}-म_1\right)\left(\frac{र}{य}-म_2\right)\left(\frac{र}{य}-म_3\right)$$

$$......\left(\frac{र}{य}-म_{न}\right)=0$$

* समघातिक से तात्पर्य यह यह है कि समीकरण (१) के सब पदोंमें अज्ञात य, और र के घातों का योग एकसा अर्थात् (न) हो।

अतः

$$\frac{र}{य} - म_१ = ०$$

$$\frac{र}{य} - म_२ = ०$$

$$\frac{र}{य} - म_३ = ०$$

इत्यादि ।

अतः प्रत्येक बिन्दु जो समीकरण (१) पर है, न–सरल रेखाओंमें से किसी न किसी सरल रेखा पर अवश्य स्थित है। उपर्युक्त समीकरण निम्न न–रेखाओं का सूचक है :–

$र - म_१ \, य = ०$

$र - म_२ \, य = ०$

....

$र - म_न \, य = ०$

८८—निम्न दो समीकरणोंके सम्मिलित बिन्दुओं और मूल बिन्दु को संयुक्त करने वाली दो रेखाओं का समीकरण निकालना ।

$$क \, य^२ + २ \, ज \, य \, र + ख \, र^२ + २ \, छ य + २ \, च र + ग = ० \quad ...(१)$$

$$और \quad द \, य + ध \, र = न \quad ...(२)$$

समीकरण (२) को इस रूप में भी लिख सकते हैं :—

$$\frac{द \, य + ध \, र}{न} = १ \quad ...(३)$$

समीकरण (३) का उपयोग करके समीकरण (१) को समघातिक बनाने से :—

$$क \, य^२ + २ \, ज \, य \, र + ख \, र^२ + २ \, छ \, य \left(\frac{द \, य + ध \, र}{न} \right) + २ \, च \, र \left(\frac{द \, य + ध \, र}{न} \right) + ग \left(\frac{द \, य + ध \, र}{न} \right)^२ = ० \quad ...(४)$$

अतः सूक्त ८७ के अनुसार यह समीकरण इन सरल रेखाओं का सूचक है जो मूल बिन्दुसे होकर जाती हैं । यह निकालने के लिये कि समीकरण (४) समीकरण (३) से किन बिन्दुओं पर काटा जाता है, यह आवश्यक है कि समीकरण (४) में $\frac{द \, य + ध \, र}{न} = १$ को उपयुक्त कर दो। तब समीकरण (१) की पूर्ति हो जावेगी जिससे प्रकट है कि रेखा (४) रेखा (१) और (२) के सम्मिलित बिन्दुओंसे होकर जाती है ।

उदाहरणमाला ७

निम्न समीकरण किन सरल रेखाओंके सूचक हैं और उनके बीचके कोण भी बताओ :—

(१) $२ \, य^२ + ७ \, य \, र + ५ \, र^२ = ०$

[उत्तर $(य + र) (२ \, य + ५ \, र) = ०$; $स्पर्श^{-१} \frac{३}{७}$

(२) $२ \, य^२ + ५ \, य \, र + २ \, र^२ = ०$

[उत्तर $(२ \, य + र) (र + २ \, य) = ०$; $स्पर्श^{-१} \frac{३}{४}$

(३) $य^३ - ६ \, य^२ + ११ \, य - ६ = ०$

[उत्तर $य = १$, $य = २$, $य = ३$

(४) $य^२ + २ \, य \, र \, छेदन \, थ^० + र^२ = ०$

[उत्तर

$य (१ - ज्या \, थ) + र \, को ज्या \, थ = ०$,

$य (१ + ज्या \, थ) + र \, कोज्य \, थ + ०$, थ

५—निम्न समीकरणों द्वारा सूचित युगल सरल रेखाओंके बीचके कोणोंके अर्धकोंके समीकरण निकालो —

(i) $३३ \, य^२ - ७१ \, य \, र - १४ \, र^२ = ०$

[उत्तर $७१ \, य^२ + ९४ \, य र - ७१ \, य^२ = ०$

(ii) $४ \, य^२ - २४ \, य र + ११ \, र^२ = ०$

[उत्तर $१२ \, य^२ - ७ \, य \, र - १२ \, र^२ = ०$

६—सिद्ध करो कि निम्न समीकरण द्वारा सूचित दो रेखाओंके बीचमें $\angle$ २ अ कोण है :—

$$(य^२ + र^२) (कोज्या^२ \, थ \, ज्या^२ \, अ + ज्या^२ \, थ) = (य \, स्पर्श \, अ - र \, स्पर्श \, थ)^२$$

७ सिद्ध करो कि समीकरण

$$१२ य^२ + ७ य र - १० र^२ + १३ य + ४५ र - ३५ = ०$$

दो सरलरेखाओंका सूचक है जिनके बीचमें स्पर्श$^{-1}$ $\frac{२३}{२}$ का कोण है।

[उत्तर $३ य = २ र - ७$
$४ य = - ५ र + ५$

८—निम्न समीकरणमें ज को क्या मान दिया जाय कि यह दो सरल रेखाओंको सूचित करने लगे :—

$$३ य^२ + २ ज य र - ३ र^२ + २९ य - ३ र - १८ = ०$$

[उत्तर $- ४, \frac{३६}{१२}$

९—निम्न समीकरणोंमें त को क्या मान दिया जाय कि ये दो सरलरेखाओंके सूचक हो सकें :—

(i) $१२ य^२ - १० य र + २ र^२ + ११ य - ५ र + त = ०$

[उत्तर २

(ii) $य^२ - त य र + ४ र^२ + य + २ र - २ = ०$

[उत्तर ५

(iii) $२ य^२ + य र - र^२ + त य + ६ र - ९ = ०$

[उत्तर - ३

१०—सिद्ध करो कि निम्न समीकरण दो समानान्तर रेखाओं का सूचक है :—

$$य^२ + ६ य र + ९ र^२ + ४ य + १२ र - ५ = ०$$

११—एक समानान्तर-चतुर्भुजकी आमने सामने वाली युगल रेखायें निम्न समीकरणों द्वारा सूचित होती हों, तो इसके कर्णोंके समीकरण क्या होंगे ?

$$य^२ - ७ य + ६ = ०$$
$$र^२ - १४ र + ४० = ०$$

[उत्तर $५ र + ६ य = ५६; ५ र - ६ य = १४$]

नवम अध्याय

अक्षों का परिवर्तन

८९—कभी कभी यह उपयोगी पाया गया है कि अक्षोंको परिवर्तित कर दिया जाय। कोई परिणाम जो कि दो अक्षोंकी अपेक्षासे निकाला गया है, अक्षोंके परवर्त्तित कर देने पर थोड़ेसे रूपान्तरके उपरान्त निश्चित किया जा सकता है। अक्ष-परिवर्त्तनके लिये या तो मूलबिन्दुको परिवर्त्तित कर देते हैं और अक्षोंकी दिशा पूर्ववत् रखते हैं या अक्षोंकी दिशाको परिवर्त्तित कर देते हैं और मूल-बिन्दु पूर्व स्थान परही स्थित रहता है अथवा मूल-बिन्दुके स्थान और अक्षोंकी दिशाओं दोनोंको परिवर्त्तित कर देते हैं।

९०—अक्षोंकी दिशा बिना परिवर्त्तित किये हुए मूल बिन्दुको परिवर्तित करना।

कल्पना करो कि अक्षोंकी पूर्व स्थिति य म और म र थी और अब मूलबिन्दु म से मा पर परिवर्त्तित होकर आगया और नये अक्ष या मा और मा रा हैं। मा या अक्ष म य अक्षके समानान्तर है। इसी प्रकार म र और मारा समानान्तर हैं अर्थात् अक्षोंकी दिशा परिवर्त्तित नहीं हुई है।
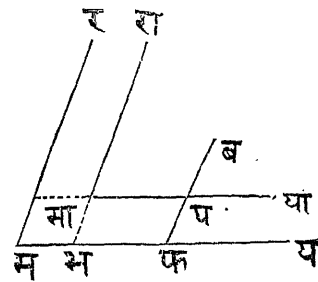
चित्र ३३

मान लो कि पूर्व अक्षोंकी अपेक्षासे नये मूल-बिन्दु मा के युग्मांक (त, थ) हैं। कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक पूर्व-अक्षोंकी अपेक्षासे (य, र) हों और नये अक्षोंकी अपेक्षासे (या रा) हों। ब फ

को म र के समानान्तर खींचो। यह ब द अक्ष य म को फ बिन्दु पर और अक्ष यामा को प बिन्दु पर काटता है।

अतः र=ब फ=ब प+प फ=ब प+मा भ =रा+थ

और य=म फ=म भ+भफ=म भ+माप= त+या

इस प्रकार पूर्व अक्षोंकी अपेक्षासे ज्ञात युग्मांकोंको नये अक्षोंकी अपेक्षामें परिवर्त्तित किया जा सकता है। किसी समीकरणमें यह मान उपर्युक्त करनेसे वक्र का नया समीकरण उपलब्ध हो सकता है।

९१—मूल बिन्दु की स्थिति में बिना परिवर्तन किये अक्षों की दिशाओंमें परिवर्तन करना—
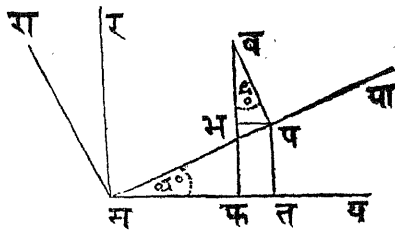
चित्र ३४

मूल बिन्दु म को स्थित रखते हुए अक्षों को थ° घुमाकर या म और म रा की स्थितिमें ले आओ। अतः ∠ य म या=∠ र म रा=थ°

कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक पूर्व-अक्षोंके अनुसार (या, र) हैं और नवीन अक्षोंके अनुसार (या, रा) हैं। ब से य म पर ब फ लम्ब डालो और या म पर ब प लम्ब डालो। प से एक रेखा प भ अक्ष य म के समानान्तर ब फ को भ पर काटती हुई खींचो। △ प ब भ में ∠ प ब भ = थ°।

अब

य=म फ=म त−फ त=म त−प भ= प म कोज्या थ° − ब प ज्या थ°=या कोज्या थ° − रा ज्या थ°।

और र=ब फ=ब भ+भ फ=ब भ+प त =ब प कोज्या थ°+म प ज्या थ°=रा कोज्याथ° +या ज्या थ।

इस प्रकार पूर्व अक्षों की अपेक्षासे ज्ञात किसी बिन्दुके युग्मांक इन नवीन अक्षों की अपेक्षामें परिवर्तित किये जा सकते हैं।

९२—मूलबिन्दु को बिना परिवर्तित किये हुए तिर्यक्‌कक्षोंके एक समूह को दूसरे समूहोंमें परिवर्तित करना।
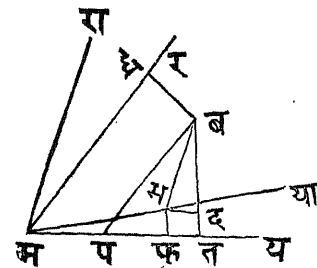
चित्र ३५

कल्पना करो कि पूर्व-तिर्यकक्ष समूह य म र है। य म और म र के बीच में ल° कोण है। परिवर्तित नवीन तिर्यकक्ष समूह या म रा है जिसमें या म और रा म के बीच का कोण ला° है। तथा कोण ∠ या म य=थ°।

कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक पूर्व तिर्यकक्ष की अपेक्षा (य, र) और नवीन तिर्यकक्षकी अपेक्षा (या, रा) हों। इस प्रकार चित्र में:—

म प=य, प ब=र; म भ=या, ब भ=रा क्योंकि प ब रेखा म र के समानान्तर है और ब भ तथा मरा समानान्तर हैं।

ब त तथा भ फ को य म पर लम्ब रूप खींचो।

अतः ब त=त द+द ब=भ फ+द ब

∴ र ज्या ल=या ज्या या म य+ रा ज्या य म रा

=या ज्या थ°+रा ज्या (थ°+ल°)

इसी प्रकार ब से म र पर एक लम्ब बध खींच कर पूर्ववत् करने से य ज्या ल°=या ज्या याम र −रा ज्या र म रा।

=या ज्या (ल° − थ°) − रा ज्या (ला° + थ° − ल°)

९३—यदि तिर्यकक्षोंमें किसी प्रकार परिवर्त्तन कर देनेसे क $य^2$ + २ ज य र + ख $र^2$ परिवर्तित होकर का$य^2$ + २ जा य र + खा $र^2$ हो जाता है और यदि तिर्य-कक्ष समूहोंके अक्षोंके बीचके कोण ल° और ला° हों तो—

$$\frac{क + ख − २ ज कोज्या ल°}{ज्या^2 ल°} = \frac{का + खा − २ जा कोज्या ला°}{ज्या^2 ला°}$$

$$तथा \frac{क ख − ज^2}{ज्या^2 ल°} = \frac{का खा − जा^2}{ज्या^2 ला°}$$

यदि म मूलबिन्दु है और ब कोई बिन्दु है जिसके युग्मांक पूर्व अक्षोंकी अपेक्षासे (य, र) और नवीन अक्षोंकी अपेक्षासे (या, रा) हैं तो $मब^2$ = $य^2$ + $र^2$ + २ यर कोज्याल° तथा म $ब^2$ = $या^2$ + $रा^2$ + २ यारा कोज्याला° । इस प्रकार $य^2$ + $र^2$ + २ य र कोज्या ल परिवर्तित होकर $या^2$ + $रा^2$ + २या रा कोज्या ला हो गया।

तथा उपर्युक्त कल्पना से क $य^2$ + २ जयर + ख$र^2$ परिवर्तित होकर का $य^2$ + २ जा यारा + खा$रा^2$ हो गया।

अतः यदि स कोई स्थिर मात्रा हो तो

क$य^2$ + २ज य र + ख$र^2$ + स ($य^2$ + $र^2$ + २ य र कोज्याल) परिवर्तित होकर का$या^2$ + २ जायारा + खा $रा^2$ + स ($या^2$ + $रा^2$ + २ या रा कोज्याल) हो जायगा। यदि स को इस प्रकार का मान दिया जाय कि इनमेंसे एक पूर्ण वर्ग हो जाय तो स के उसी मान से दूसरा भी पूर्ण वर्ग हो जायगा।

पहला पूर्ण वर्ग तब होगा जब—

$$(क + स) (ख + स) — (ज + स कोज्याल)^2 = ०$$

दूसरा पूर्ण वर्ग तब होगा जब—

$$(का + स) (खा + स) — (जा + स कोज्या ला)^2 = ०$$

इन दो वर्गात्मक समीकरणों से स का मान निकाला जा सकता है और दोनोंमें स का एक ही मान होना चाहिये। इसको हम इस रूपमें भी लिख सकते हैं :—

$$स^2 + \frac{क + ख — २ ज कोज्याल}{ज्या^2 ल} स + \frac{क ख — ज^2}{ज्या^2 ल} = ०$$

$$तथा स^2 + \frac{का + खा − २ जा कोज्या ला}{ज्या^2 ला} स + \frac{का खा − जा^2}{ज्या^2 ल} = ०$$

जिससे स्पष्ट है कि

$$\frac{क + ख − २ ज कोज्या ल}{ज्या^2 ल} = \frac{का + खा — २ जा कोज्या ला}{ज्या ला}$$

$$तथा \frac{क ख − ज^2}{ज्या^2 ल} = \frac{का खा − जा^2}{ज्या^2 ला}$$

उदाहरणमाला ८

१ यदि किसी दिये गये आयताक्षों की अपेक्षा किसी का समीकरण

$$३ य^2 + २ यर + ३ र^2 − १८ य − २२ र + ५० = ०$$

हो तो उन आयताक्षों की अपेक्षा यह समीकरण क्या होगा यदि इन आयताक्षों का मूलबिन्दु (२, ३) हो और पहले आयताक्षोंसे ये ४५° का कोण बनाते हों।

पहले मूलबिन्दु परिवर्तित होनेके कारण य = या + २, और र = रा + ३, अतः नया समीकरण यह होगा :—

$$३ (या + २)^2 + २ (या + २) (रा + ३) + ३ (रा + ३)^2 − १८ (या + २) + २२ (रा + ३) + ५० = ०$$

$$\therefore ३ या^2 + २ या रा + ३ रा^2 − १ = ०$$

अतः यह समीकरण ३ $य^2$ + २ य र + ३ $र^2$ = १ हुआ...(१)

अब अक्षों को ४५° घुमाने पर य के स्थानमें हमें या $\frac{१}{\sqrt{२}}$ – रा $\frac{१}{\sqrt{२}}$ और र के स्थान में या $\frac{१}{\sqrt{२}}$ + रा $\frac{१}{\sqrt{२}}$ लिखना होगा। अतः समीकरण (१) यह हुआ :—

$$३\left(\frac{या-रा}{\sqrt{२}}\right)^२+२\left(\frac{या-रा}{\sqrt{२}}\right)\left(\frac{या+रा}{\sqrt{२}}\right)$$

$$+३\left(\frac{या+रा}{\sqrt{२}}\right)^२=१$$

$$\therefore ४ या^२+२ रा^२=१$$

अतः एच्छित समीकरण $४ य^२+२ र^२=१$ हुआ।

२—यदि अक्षों को ३०° घुमा दिया जाय तो $४ य^२+२\sqrt{३}\ य र+२\ र^२-१=०$ समीकरण क्या हो जायगा ?

उत्तर $५ य^२+र^२=१$

३—यदि अक्षों की दिशा परिवर्तित न की जाय, और मूलबिन्दु (१, –१) कर दिया जाय तो निम्न समीकरणों का रूप क्या होगा ?

(i) $य^२+३ य र+२ र^२=०$

उत्तर $य^२+३ य र+२ र^२-य-र+१ य र=०$

(ii) $२ य^२+र^२-४ य+४ र=०$

उत्तर $२ य^२+र^२+२ र+४=०$

४—सिद्ध करो कि यदि अक्षोंकी दिशा न परिवर्तित की जाय, तो मूल बिन्दु किस ऐसी जगह स्थापित किया जा सकता है कि निम्न समीकरण में केवल द्वितीय घातों के पद ही आवें :—

$१२ य^२-१० य र+२ र^२+११ य-५ र+२=०$

५—किसी सरलरेखाका समीकरण ३०° कोण बनानेवाले तिर्यकक्षोंकी अपेक्षा $र=२ य+१$ है। यदि य–अक्ष और मूलबिन्दु परिवर्त्तित न किये जायं और तिर्यकक्षोंके बीचमें ४५° का कोण हो तो यह समीकरण क्या होगा ?

उत्तर—$२ या-\sqrt{६}\ रा+१=०$

६—निम्न समीकरण ६०° वाले तिर्यकक्षों की अपेक्षा से है :—

$य^२+य र+र^२=८$

इन अक्षोंके बीचके कोणके अर्द्धकोंकी अपेक्षा से यह समीकरण क्या होगा ?

$या^२+रा^२=८$

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३१ | मिथुन, संवत् १९८७ | संख्या ३

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द (४)

[ले० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी, एफ० आई० सी० एस०]

श्रद्धेय बाबू श्याम सुन्दरदास जी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी वैज्ञानिक कोषकी भूमिकामें सन् १९०६ में लिखा था कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माण का सर्व प्रथम विधिवत् प्रयास सन् १८८८ ई० में प्रोफेसर टी० के० गज्जरने बड़ौदा नरेशके संरक्षणमें किया था। महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने इस कार्यके लिये ५० सहस्र रुपयेकी स्वीकृति दी थी। यह धन गुजराती और मराठी साहित्यके लिये था। पहले वर्ष इससे पाँच पुस्तकें प्रकाशित की गईं। गज्जर महोदयने कलाभवन बड़ौदाके सन् १८९१-९२ के वार्षिक वृत्तान्तमें सामान्य शब्दकोषों में दिये गये कुछ पारिभाषिक शब्दोंके विषयमें यह विचार प्रस्तुत किये थेः—

"The lexicographers did not seem to have always borne in mind that words were but thought-germs and must have certain qualities before they can prove fruitful; that they must be easily portable, *i.e.*, neither stiff nor cumbrous, and very easy to pronounce if they were meant to be extensively used, and that as far as possible they should convey their technical meaning by their structure."

अर्थात् गज्जरजीके विचारोंके अनुसार पारिभाषिक शब्द भावोंके उपयुक्त, सरल, सुवाच्य और सुगठित होने चाहिये। इस प्रयत्नके पश्चात्

दूसरा प्रयत्न कलकत्ताकी वंगीय साहित्य परिषद् का था जिसने रसायन, भूगोल और ज्योतिषके शब्दोंका संकलन प्रकाशित किया। तदुपरान्त काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाने इस कार्यकी ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया। सन् १८६३ से बराबर इस संस्थाने वैज्ञानिक साहित्यके लिये यथाशक्ति सहायता ही दी है। बाबू श्याम सुन्दरदास जी लिखते हैं कि उस समयकी यह अवस्था थी (मेरी समझमें अब भी ऐसी ही हालत है) कि यदि किसी व्यक्तिसे वैज्ञानिक लेख अथवा पुस्तक लिखनेके लिये कहा जाता तो वह इसी शर्त पर स्वीकार करता कि सभा उन्हें पारिभाषिक शब्द बनाकर देवे। सन् १८६८ तक ऐसी ही दशा रही, तदुपरान्त यह आवश्यक समझा गया कि एक हिन्दी वैज्ञानिक कोष तैयार किया जाय। इस कामके लिये एक उपसभा बनाई गई। इस उपसभाने यह विचार किया कि सबसे पहले ज्योतिष, रसायन, भूगोल, गणित, दर्शन, भौतिक विज्ञान और अर्थ-शास्त्रके शब्दोंका संकलन किया जाय। वेब्सटरकी इएटरनेशनल डिक्शनरीसे शब्दोंका चयन किया गया। विभागोंका सम्पादन इस प्रकार हुआ:—

१ भूगोल—बा० श्याम सुन्दरदासजीके सम्पादनमें १५ फर्वरी १६०१ को। ये पारिभाषिक शब्द वंगीय साहित्य परिषद्की सूचीसे सहायता लेकर तैयार किये गये।

२ रसायन—बा० ठाकुरप्रसाद द्वारा १५ जुलाई १६०१ को। इसे बा० रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, एम० ए०, रिपन कालेज, की बनाई हुई बंगाली सूचीके अनुसार परिशोधित किया गया।

३ ज्योतिष—पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा १ अक्टूबर सन् १६०१ को।

४ गणित—पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा १ दिसम्बर सन् १६०१ को।

५ दर्शन—यह कार्य बा० इन्द्रनारायण सिंह एम० ए० ने आरम्भ किया तदुपरान्त स्व० राय बहादुर प्रमदादास मित्रने कुछ दूर तक चलाया तदुपरान्त १ मई १६०२ को पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे पूरा कर दिया।

६ अर्थ शास्त्र—पं० माधव राव सप्रे, बी० ए० ने १ जुलाई १६०२ को।

७ भौतिक विज्ञान—बा० ठाकुर प्रसादने २० जुलाई १६२० को।

इस प्रकार यह अधिकांश कार्य १६०१-१६०२ में हुआ। ३० जून सन् १६०३ तक जनताको यह समय दिया गया कि इन शब्द-संकलनोंकी भली प्रकार मीमांसा कर लें। इतना ही नहीं, सभाने बंगाल, पंजाब, मध्यप्रदेश और संयुक्त प्रान्तके शिक्षा विभागोंसे इसके लिये सहानुभूति और सहायता माँगी। मध्यप्रान्त ने पं० विनायकराव जीको अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। पंजाबने लाला मुन्शीलाल तथा उनके न आ सकने पर बा० खुशीराम, एम० ए० को और बंगालने ला० भगवती सहाय एम० ए० पटनाको प्रतिनिधि नियुक्त किया। संयुक्त प्रान्तके तो वैसे ही इतने व्यक्ति काम कर रहे थे अतः यहाँ के शिक्षा विभागने कोई विशेष प्रतिनिधि भेजना आवश्यक न समझा। इन सब व्यक्तियोंका पहला अधिवेशन सैन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारसमें सोमवार २१ सितम्बर १६०३ से मंगलवार २६ सितम्बर १६०३ तक हुआ। इस समितिने पारिभाषिक शब्द बनानेकी नीति इस प्रकार रखी:—

(१) प्रचलित सामान्य हिन्दी शब्दोंको प्रधानता दी जाय।

(२) जहाँ ऐसा न हो सके वहाँ—

(क) अन्य प्रचलित भारतीय भाषाओं · मराठी, गुजराती, बंगाली, और उर्दूके कुछ उपयुक्त शब्दोंका व्यवहार किया जाय।

(ख) जब ऐसा भी न हो सके तो।

(i) प्रचलित संस्कृत शब्दोंका व्यवहार किया जाय।

(ii) अंग्रेज़ी शब्द अपनायें जायँ।

(iii) और संस्कृतसे नये शब्द भी बनाये जायँ।

भिन्न भिन्न विभागोंके संकलित शब्दोंको परिशोधित करनेके लिये अनेक उपसमितियाँ बना दी गईं। तदुपरान्त मुख्य समिति का अधिवेशन २७ दिसम्बर १९०३ से ८ जनवरी १९०४ तक किया गया। इस प्रकार यह कार्य समाप्त किया गया। उसी बीचमें सितम्बर १९०३ में सभाने श्रीमाधवराव सप्रेको बम्बई और पूनाको वहाँके वैज्ञानिकों और विद्वानों का परामर्श लेनके लिये भी भेजा। बा० श्यामसुन्दरदास जी स्वयं कलकत्ता गये। इस प्रकार इस परिशोधित पारिभाषिक शब्दावलीको यथा-शक्य सर्वमान्य एवं उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया गया। बा० भगवानदास, एम ए०, बा० भगवती सहाय, एम. ए. बी. एल, बा० दुर्गाप्रसाद बी. ए, ला० खुशीराम एम. ए०, प्रो० एम० बी० रानाडे, बी० ए०, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, बा० ठाकुरप्रसाद, पं० विनायकराव, बा० श्याम सुन्दरदास तथा पं० गंगानाथ झा. के परिश्रम और सहयोगसे यह काम समाप्त हुआ। परिशोधित संस्करणमें शब्दोंकी संख्या इस प्रकार थी :—

	अंग्रेजी	हिन्दी
भूगोल	४८१	६७५
ज्योतिष	८१३	९४८
अर्थ शास्त्र	१३२०	२११५
रसायन	१६३८	२२१२
गणित	१२४०	१५८०
भौतिक	१३२७	१५४१
दर्शन	३५११	७१९८
योग	१०३३०	१६२६९

नागरी प्रचारिणी सभाके ३५९ पृ० के हिन्दी वैज्ञानिक कोषके निर्माणका यह संक्षिप्त इतिहास है जो सन् १९०६ में प्रकाशित हुआ। इस कोषने लगभग बीस वर्ष तक अपना जीवन स्थित रखा। अब इसके परिशोधनके लिये काशी विश्वविद्यालय के अध्यापकोंकी एक समिति बनाई गई है। इसने अभी भौतिक विज्ञानकी शब्दावली (१९२९) प्रकाशितकी है, जिसका सम्पादन श्री डा० निहालकरण सेठीने प्रो० कृष्णकुमार माथुर, प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा प्रो० शुकदेव पांडेय, डा०, मुकुन्द स्वरूप वर्मा, प्रो० नन्दकुमार तिवारी, प्रो० चन्द्रबल, कविराज प्रतापसिंह, तथा पं० काली प्रसाद मिश्र की सहायतासे किया है। इसके प्राक्कथनमें लिखा गया है :—

Where a word has different meanings in different senses, an attempt has been made to see that the Hindi equivalent conveys the exact sense of the English word. A Sankrit scholar has been associted with the commitee to see that the Hindi word has been given its proper grammatical form. It is perhaps unnecessary to point out that no attempt has been made at puritanism. Words of foreign origin have been unhesitatingly accepted, and even English words have been taken with the nearest approach of their pronounciation in Hindi.

तात्पर्य यह है कि जहाँ तक हो सका, यह ध्यान रखा गया है कि भावोंको ठीक प्रदर्शित करने वाले शब्द ही चुने जायं। शब्दोंको शुद्ध व्याकरणसंगत रूप प्रदान करनेके लिये एक संस्कृतज्ञकी भी सहायता ली गई है, लेकिन इस विषयमें कट्टरपनसे काम नहीं लिया गया है। विदेशी शब्द भी निस्संकोच अपना लिये गये हैं, और अंग्रेजी शब्द भी इस रूपमें रखे गये हैं कि हिन्दी भाषियोंको उनके उच्चारणमें असुविधा न पड़े।

इसी प्राक्कथनमें यह भी लिखा गया है कि सभाका उद्देश्य यह है कि जहाँ तक हो सके समस्त भारतवर्षके लिये एक पारिभाषिक शब्दावली निश्चित हो जाय। सभा यह आशा करती है कि किसी समय एक ऐसी कान्फ्रेन्स बुलाई जायगी जिसमें सब भारतीय भाषाओंके प्रतिनिधि इन शब्दोंको सर्वमान्य स्थायी रूप दे देंगे।

भारतीय भाषाओंके पारिभाषिक शब्दोंके इतिहासमें नागरी प्रचारिणी सभाका यह कार्य सदा स्मरणीय रहेगा, और इसी विचारसे हमने इसका इतना विस्तृत वर्णन देनेकी धृष्टताकी है। काशीके इस कोषसे लेखकोंको सदा सहायता मिलती आई है, पर सभीने इसकी अपूर्णता पर असन्तोष भी प्रकट किया है, जो कि स्वाभाविक ही था। स्वयं काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित श्री सम्पूर्णानन्द जी कृत "भौतिक विज्ञान" की भूमिकामें ये शब्द हैं जो सन् १९१६ में लिखे गये थे :—

"विवश होकर नये नये शब्द रचने पड़ते हैं। इस बातमें काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने जो हिन्दी वैज्ञानिक कोष बनाया है उससे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। उसके निर्माणमें बड़े बड़े विद्वान सम्मिलित थे। मेरे आचार्य अध्यापक अभयचरण सान्यालने भी उस काममें योग दिया था। परन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी वह पूर्ण या सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती (?) उसमें बहुतसे उपयोगी शब्द छूट गये हैं, और बहुतके अर्थ अयुक्त और बेठीक प्रतीत होते हैं। मुझे स्वयं कई जगह उससे मतभेद करना पड़ा है।"

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि सम्पूर्णानन्द जी के भौतिक विज्ञानमें स्कूलकी दसवीं कक्षासे अधिककी सामग्री नहीं है, अतः सभा का कोष कालेजोपयोग विज्ञानके लिये तो और भी अपूर्ण था। हाँ, डा० सेठीके परिवर्धित संस्करणमें अब अधिक विस्तार दे दिया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभाके प्रकाशित कोषकी सहायतासे हिन्दीमें दो विशेष पुस्तकोंकी रचना हुई। एक तो महेशचरणसिंहका 'हिन्दी कैमिस्ट्री या रसायन शास्त्र' और दूसरी प्रोफेसर रामशरण दास सकसेना, गुरुकुल कांगड़ीका 'गुणात्मक-विश्लेषण' इन दोनों ग्रन्थोंको रचनाका श्रेय गुरुकुल कांगड़ीको ही है क्योंकि वहाँ आरम्भसे ही शिक्षा का माध्यम हिन्दी था। अतः अध्यापनके लिये पुस्तकोंकी आवश्यकता थी। गुणात्मक विश्लेषण बहुतही अच्छी पुस्तक है। यह पुस्तक १९१७ में लिखी गई और १९१९ में प्रकाशित हुई। यह खेद की बात है कि इस पुस्तक का गुरुकुल क्षेत्रके बाहर प्रचार न हो सका। उस समय इतनी उच्च कोटिकी साढ़े तीन सौ पृष्ठकी वैज्ञानिक पुस्तक लिखना और प्रकाशित करना, दोनोंही अभिवादनीय हैं। वैज्ञानिक पुस्तकें बहुत ही शीघ्र पुरानी पड़ जाती हैं, पर हिन्दी भाषामें इन पुस्तकोंके दूसरे संस्करण निकलनेका अवसरही नहीं आता है, यह खेदकी बात है। यदि गुणात्मक रसायनका परिवर्धित और संशोधित संस्करण प्रकाशित हो जाय तो बहुत ही अच्छा होगा।

महेशचरणसिंहजी ने दो और उत्तम पुस्तकें प्रकाशितकी थीं, जिनका सम्बन्ध विद्युत् शास्त्रसे था। जिस समय इन ग्रन्थोंकी रचनाकी गई थीं, उसकी दृष्टिसे इनकी उपयोगिता बहुतही अधिक है। यही नहीं उसके पश्चात् आज तक विद्युत्के सम्बन्धमें कोई विशेष पुस्तक प्रकाशितही नहीं हुई है। अतः इस समय तक अपने क्षेत्रमें ये अकेलीही पुस्तकें हैं।

महेशचरणसिंह और सकसेनाजी दोनोंने अपनी रसायनिक पुस्तकोंके अन्तमें शब्द कोष भी दे दिये हैं। इनके पारिभाषिक शब्दोंका हम यहाँ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझते हैं :—

अंग्रेज़ी	नागरी प्रचारिणी कोष	महेशचरणसिंह	सकसेना	हमारे शब्द
Hydrogen	उज्जन	अभिद्रवजन	उदजन	उदजन
Oxygen	अम्लजन	ओषजन	ओषजन	ओषजन
Crucible	घड़िया	घड़िया	मूषा	घरिया
Compound	सम्मेलन	सम्मेलन	समास	यौगिक
Reduction	संस्कार क्रिया	संह्रद क्रिया	अपचयन	अवकरण
Oxidation	—	ओषजनीकरण	उपचयन	ओषदीकरण
Catalytic	योगवाही	—	सहायक	उत्प्रेरक
Atom	परमाणु	परमाणु	अणु	परमाणु
Moblecule	अणु	अणु	मात्रा	अणु
Valency	परमाणु ग्रहण शक्तिता	परमाणु ग्रहण शक्ति	बलांश	संयोग-शक्ति
Boiling Point	कथन बिन्दु	कथन बिन्दु	खौलाव बिन्दु	कथनांक

इस प्रकारके भेद होते हुए भी महेशचरणसिंह जी और सकसेना जी दोनोंने मुख्यतः तत्त्वोंके नाम वही रखे हैं जो नागरी प्रचारिणी सभाने निर्धारित किये थे। कमसे कम इतना स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्दोंके बनानेकी इन सबकी नीति वही है जो नागरी प्रचारिणी सभाने निश्चितकी थी। साधारणतः नागरी प्रचारिणी सभाके तत्त्वोंके नाम अच्छे ही हैं, पर इसने भी समन्वयात्मक परिवर्तनका सिद्धान्त अधिक अपनाया। इन नामोंके विषयमें हमारे ये विचार हैं:—(१) बहुतसे तत्त्व जो भारतीय थे, उनके नाम हमने भी वैसेही रखे हैं जैसे नागिरी प्रचारिणी सभाने जैसे स्फटम्, आंजनम्, टंकम्, खटिकम् ताम्र, स्वर्ण, लाह, सीस, पारद, गन्धक, वंग। (२) कुछ नाम जो किसी स्थान-विशेष या खनिज-विशेषके नाम पर पड़े हुएहैं वे भी हमारे और इनके मुख्यतः समान हैं। जैसे बेरिलम्, भारम् (भारियम्), कोबल्टम्, परबम् (पर्बियम्), गालम् (गैलियम), जर्मनम् (शर्म), मगनीसम् (मग्न), पैलादम् (पलेदियम्), रुथेनम् (रुथेनियम्), सामारम (समेरियम्) स्कन्दम् (स्कन्ध), स्त्रंशम् (स्त्रंतम्), तंतालम् (तंतुलम्), थैलम् (थेलियम्), थोरम् (थोरियम्), टिटेनम् (तीतेनियम्), यित्रम् (इत्रियम्), यत्रिबम् (यंत्रब्यम) ज़िरकुनम् (जिरकोनियम्)। अंग्रेजीमें जिस स्थान पर 'ium' लगता है, वहाँ पर नागरी प्रचारिणी सभाने 'इयम' रखा था। हमने उचित समझा कि केवल 'म्' लगा देनेसे ही काम चल जावेगा। पृथक् पृथक् संकेत (Symbols) निर्धारित करने के लिये कुछ साधारण भेद और कर दिये गये। यह अनिवार्य था। (३) कुछ नाम गुणोंके आधार पर अनुवाद करके रखे गये। इनमें हम दोनोंके कोषोंमें कुछ समता और कुछ विषमता है। समान शब्द ये हैं: - हरिन्, प्लविन्, उदजन (उज्जन), नैलिन् (नैल), इन्द्रम्, नक़लम् (निकल) स्फुर, शैलम्। असमान शब्द ये हैं:—

अंग्रेजी	ना० प्र० स०	हमारे शब्द
Arsenic	ताल	संक्षीणम्
Caesium	श्याम	व्योमम्
Indium	हिन्दम्	नीलम्
Lithium	ग्राव	शोणम्
Manganese	मांगल	मांगनीज़
Nitrogen	नत्रजन	नोषजन
Oxygen	अम्लजन	ओषजन
Rubidium	रूपद	लालम्

(४) हमारा और नागरी प्रचारिणी सभाका विशेष मतभेद इसमें है, कि बहुत से ऐसे शब्द जो हिन्दीमें अनूदित हो सकते थे, उनको भी हिन्दी नाम क्यों नहीं दिया गया। कुछ नामोंको ज्योंका त्यों अपना लेना, और कुछका अनुवाद कर देना न्याय-संगत नहीं मालूम होता है। ऐसी परिस्थिति में हमें नागरी प्रचारिणी सभाके कुछ शब्दोंको छोड़ देना पड़ा, इसका हमें खेद अवश्य है, पर ऐसा करना हमें श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। इस प्रकार जो शब्द हमने बदले वे ये हैं:—

ना० प्र० स०	हमारे
आर्गन	आलसीम् A
बिस्मत्	विशद Bi
ब्रम	अरुणिन् Br
कादमियम्	सन्दस्तम् Cd
श्रीयम्	सूजकम् Ce
क्रोम्	रागम् Cr
हेल	हिमजन He
क्रुप्तम्	गुप्तम् Kr
लेथनम्	लीनम् La
मोलद्	सुनागम् Mo
नोदिमम्	नौजोनम् Nd
न्योन	नूतनम् Ne
ओसमम्	वासम् Os
प्लाटिनम्	परारौप्यम् Pt
पोटाशियम्	पांशुजम् K
प्रसेदिमम्	पलाशजीनम् Pr
रेडियम्	रश्मिम् Ra
रोडियम्	ओड्म् Rh
सेलनम्	शशिम् Se
सोडियम्	सैन्धकम् Na
तेलुरियम्	थलम् Te
तुङ्गस्त	वुल्फ्रामम् Wo
युरेनियम्	पिनाकम् U
वान्दियम्	बलदम् V
जीनन	अन्यजन Xe

हमारे और नागरीप्रचारिणी सभाके दिये गये आधे नामोंमें विरोध पड़ गया है, पर हम समझते हैं कि ऐसा होना कुछ अधिक बुरा नहीं है, और हमारा यह अनुभव है कि हमारे दिये गये शब्दों के व्यवहारमें कुछ भी असुविधा न होगी।

नागरी प्रचारिणी सभाके कोषमें कार्बनिक रसायनके शब्दों को सम्मिलित नहीं किया गया था। प्रो० रामशरण दास सकसेनाने अपनी 'गुणात्मक विश्लेषण' पुस्तकमें कुछ कार्बनिक यौगिकोंकी परीक्षायें देनी भी आवश्यक समझीं। अतः उन्हें कुछ शब्द बनाने पड़े। पर ऐसा प्रतीत होता है कि कार्बनिक रसायनके पदोंको विधिवत् हिन्दी रूप देनेकी ओर उनका विचार नहीं गया, अतः अधिकांश स्थानों पर उन्होंने अंग्रेज़ के शब्द जैसेके तैसे ही रख दिये। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उनकी नीति ही अंग्रेज़ी शब्द अपनाने की थी। प्रत्युत् उन्होंने यह कार्य्य भावी-लेखकोंके लिये ही छोड़ दिया। हम उनके कुछ शब्दोंको यहाँ दे देना उचित समझते हैं, क्योंकि कार्बनिक रसायनके पदों का प्राथमिक श्रेय उन्हीं को जाना चाहिये:—

Thymol	अजवायन का सत
Uric acid	मूत्रिक अम्ल
Acetic acid	सिरकाम्ल
Primary	प्राथमिक
Secondary	द्वितीयिक
Tertiary	तृतीयिक
Amine	एमीन
Radical	मूलक
Catechol	कत्था
Quinine	कुनीन
Sugar	शर्करा (ऊख; अंगूरी दुग्ध, फल)
Alcohol	मद्यसार
Cellulose	रेशा

Hydroxyl	उदौषित
Morphine	अफीम का क्षार
Strychnine	कुचले का क्षार
Nicotine	तमाकू का क्षार
Starch	निशास्ता

पर आपने औग्ज़ालिक, नैलिक, थैलिक, फार्मिक, बैञ्जोइक, सिलिसिक, ईथर, एलब्यूमेन, कैफीन, कैसीन, प्रोटीड, जैनतोन, दास्तेज (Diastase) नार्कटोन, फानोन, बैन्जीन, ब्रूसोन, इथाइल, यूरिया, रिसोर्सिनोल, मिथोक्सि, इथोक्सि, ऐमिनो, एलिडहाइडिक आदि शब्दोंका ज्योंका त्यों व्यवहार किया है। वस्तुतः कार्बनिक रसायनके पारिभाषिक शब्दोंका बनाना बड़ा ही कठिन हो जाता है यदि नियम पूर्वक आरम्भ न किया जाय। मैं ने कार्बनिक शब्दोंको सूची विज्ञानमें (१९२६, २३, ६७) प्रकाशितकी थी। इसके उपरान्त कार्बनिक रसायन की एक पुस्तक भी प्रकाशित की। इस सम्बन्धमें मेरा अनुभव है कि जिस नीतिका अनुसरण मैंने किया है वह अधिक निराशाजनक नहीं है।

लगभग १५ वर्ष हुए, संवत् १९७२ वि० में गोरखपुर निवासी श्री हरिगुलामजी ठाकुरने 'प्रैक्टिकल फाटोग्राफी' नामक एक उपयोगी पुस्तक लिखी थी जिसमें १६४ पृष्ठ हैं। यद्यपि इस पुस्तककी भाषा बहुतही दूषित है पर लेखकका श्रम अवश्य अभिनन्दनीय है। लेखक पारिभाषिक शब्दोंके चक्करमें पड़ा ही नहीं है। कैमरा, लेन्स, स्लाइड, स्टैण्ड, ड्राइ प्लेट, प्रिंटिङ्ग फ्रेम, डेवलपर, टानिंग सल्यूशन, डिश आदि शब्द ज्योंके त्यों अपनाये गये हैं। इसी प्रकार फोटोग्राफीके कामके रासायनिक पदार्थ जैसे पैरोगैलिक एसिड, पोटैसियम ब्रोमाइड, मेटाबाइ सल्फाइट, लिकर अमोनिया, मेटोल, हाइड्रोकीनन, आदि भी ज्योंके त्यों रखे गये हैं। वस्तुतः आज कल साहित्यिक पारिभाषिक शब्द व्यापारिक अथवा सार्वजनिक कामोंमें उपयोग करनेमें आशंकाही रहती है, यही अवस्था ओषधियोंकी भी है।

हिन्दीमें पाश्चात्य डाक्टरीकी पुस्तकें भी यथा तथा प्रकाशित हुई हैं, पर उनमें लेखकोंका यह साहस नहीं हो सका है कि पाश्चात्य नामों को भारतीय रूप दे दें, क्योंकि बाजारमें ये सब ओषधियाँ अंग्रेज़ी नामोंसे ही मिलती हैं। ऐसी अवस्थामें अगर कोई लेखक हिन्दी शब्दोंके उपयोग करने का साहस करेगा भी तो उसकी पुस्तक कोई भी न लेगा, क्योंकि ये शब्द उसके व्यावहारिक जीवनमें काममें नहीं आ सकते हैं। डाक्टर लोग नुसखे भी अंग्रेज़ीमें ही लिखते हैं, ऐसी परिस्थिति में समस्या का सुलझाना कुछ सरल नहीं है। इसके विरुद्ध जब तक कोई राष्ट्रीय सार्वजनिक आन्दोलन न होगा तब तक पारिभाषिक शब्दोंकी रचना का प्रयत्न ही व्यर्थ ही रहेगा। अथवा इसका फल यह होगा कि हमारी भाषाके दो विभाग हो जायंगे—(१) साहित्यिक विज्ञान जिसमें हम अपने बनाये गये शब्दोंका व्यवहार करेंगे, (२) व्यापारिक विज्ञान जिसमें अङ्गरेज़ीके शब्दों का ही उपयोग किया जायगा। हमारे सम्पूर्ण वैज्ञानिक ग्रन्थ इन दो विभागोंमें बँट जायंगे। यदि ऐसा हुआ तो परिस्थिति और भी अधिक भयंकर हो जायगी। दोनों प्रकार की पुस्तकोंके बीचमें विचित्र संघर्ष उत्पन्न हो जायगा। साहित्यिक विज्ञानके ग्रन्थोंको ही स्वाभावतः इसमें घाटा रहेगा क्योंकि इसके तरफ़दार केवल विशेषज्ञ ही होंगे पर अधिक मत व्यापारिक विज्ञान वालों का ही होगा क्योंकि सम्पूर्ण सामान्य जनतासे उनका सम्बन्ध रहेगा। ऐसा होनेसे उलझनें भी बहुत होंगी। इनका समाधान किस प्रकार होगा यह कौन कह सकता है, कदाचित् समय ही इस बात को बता सकेगा।

उपनिषदोंमें परमाणुवाद

[ले०—श्री० वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

क्या हमारी अवनति अबाधित कालसे चली आ रही है ! क्या हमारी पूर्व संस्कृति का कुछ भी अवशेष नहीं रह गया है ? अपनी प्राचीन संस्कृतिके वास्ते भी क्या हम अंग्रेजोंके गुलाम हैं ?

इन प्रश्नोंका बहुतसे अनभिज्ञ व्यक्ति 'हां' ऐसा जवाब देते हैं। लेकिन यह उनकी अज्ञानता है। हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि हमारी संस्कृति इतनी प्राचीन और विशिष्ट है कि जिस पर हमारी अर्वाचीन संस्कृति निर्भर है। क्या हमारे पूर्वजों को विज्ञानका भी ज्ञान था ? अवश्य। यह बात त्रिकालाबाधित सत्य है। आप वेदोंको खोलिये। उपनिषदोंको पढ़िये। बादमें उसके अर्थ पर विचार कीजिये। फिर आपको मालूम होगा कि विज्ञानका ज्ञान था या नहीं।

अंग्रेज़ी पढ़नेसे हमारी दृष्टि परिवर्तित हो गयी है। जैसे शराब पीने वालेको सब जग नया दिखाई पड़ता है, जैसे उसको हर एक चीज नयी मालूम पड़ती है, वैसी ही स्थिति आज हमारी हो गई है। आप दूसरा दृष्टांत लीजिये। जैसे सूर्य-प्रकाशमें रहनेसे बादमें अंधेरा मालूम होता है। वैसे ही पाश्चात्य विज्ञानको पढ़नेसे ही हम स्वयं अपनेको भूल गये। आपने इसपनीतिमें एक शेर की बात सुनी होगी। एक शेरका बचा था। बचपनसे ही उसको बकरोंके साथ रख दिया गया। दिनों दिन उनके ही साथ बढ़ता चला गया। वह अपनेको भूल गया और खुदको बकरा समझने लगा। एक दिन जब एक दूसरा शेर उन बकरों पर टूट पड़ा तब यह शेर भी डरके मारे दौड़ने लगा। आप क्या समझते हैं, वह शेर ही न था ? इसी तरह हम भी हीन दीन होनेसे लाचार हो गये हैं। एक वक्त हम वैभवके शिखर पर थे यह बात हमारी समझमें नहीं आ सकती।

वेदमें यज्ञकांडको पढ़िये। उसमें अनेक प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं। हर एक यज्ञके लिये विशिष्ट प्रकार तथा आकारका यज्ञकुंड बतलाया गया है। उसकी चौड़ाई तथा लम्बाई दी गई है। उसकी ऊंचाई भी बतलाई गई है। फिर उसमें कितनी ईंटे होनी चाहिये यह भी कहा गया है। उसके आकारका वर्णन भी दिया गया है। इन सब बातोंको जानकर फिर यज्ञ-कुंड बनाना पड़ता है। उसके लिये, त्रिकोण मिति भूमिति इत्यादि का श्रेष्ठ ज्ञान आवश्यक है। यह एक शिल्प शास्त्रके विभागकी बात हुई। हम इसके बारेमें इस समय अधिक विचार करना नहीं चाहते। आजके लेखमें 'परमाणुवाद' की ही चर्चा उपस्थितकी जावेगी।

परमाणुकी कल्पना किसने निकाली ? हिन्दुस्तानियोंने ! झूठ ! वे सब जंगली आदमी थे। फिर क्या डाल्टनने निकाली ? हां साहब, वह एक बड़ी भारी विभूति थी। यह सब बातें हमारी नालायकी बतलाती हैं। हम गुलामोंसे भी गुलाम हो गये हैं। खोज करनेकी हमारी अक़ल नष्ट हो गयी है। हम अपने ग्रंथोंको पढ़ते नहीं ? खोजेंगे नहीं ? विचार भी न करेंगे, लेकिन उनके विषयमें अपनी सम्मति अवश्य दे देंगे। क्या ज्ञान है, क्या अकलमंदी है ? धन्य है हमारी !

आज हम इस लेखमें अपने ऋषि लोगोंको जिनको द्रष्टा कहते हैं—परमाणुकी सूक्ष्मताका ज्ञान था यह बतलाने वाले हैं। आपने उपनिषदोंका नाम सुना होगा। उपनिषदोंमें दस उपनिषद प्रमुख हैं। इन दस उपनिषदोंका उल्लेख एक श्लोक में किया गया है।

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुंड-मांडूक्य-तैत्तिरः।
एतरेयंच छांदोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंड, मांडूक्य, तैत्तिरीय, एतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक यह दस उपनिषत् प्रमुख हैं। वैसे तो उपनिषदोंकी संख्या सौ से भी अधिक है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

और अथर्ववेद वेदोंके ये चार प्रमुख विभाग सबको मालूम हैं। उनमें हरएक वेदोंके उपविभाग भी हैं। प्राचीन कालमें 'वेद' के तीनही विभाग थे और उनको त्रयी-विद्या कहते थे। उस वक्त अथर्ववेद नामक एक स्वतंत्र विभाग नहीं था। 'अथर्वन्' नामाभिधानके मंत्र या ऋषि इन्हीं तीनों वेदमें समाविष्ट थे। इन ऋषियोंका अथर्वाङ्गिरस नाम था। तैत्तरीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें अथर्वांगिरसोंका कई बार नाम आया है। बादमें अथर्ववेद अलग कर दिया गया और उस वक्तसे वेदके चार विभाग हो गये। वेदकी हरएक शाखाके संहिता, ब्राह्मण, और आरण्यक तीन विभाग हैं। और उनमें उपनिषदोंका आरण्यकमें समावेश किया जाता है। इसमें हरएक शाखामें 'उपनिषद्' होते हैं यह आपके ध्यानमें आ गया होगा। इन सब उपनिषदोंकी संख्या यद्यपि सौ-सवा सौ से कम नहीं है, तो भी सूत्रकारों तथा भाष्यकारोंने ऊपर दी हुई दस उपनिषदोंको ही प्रधानतादी है।

आज हम मुंडकोपनिषद् का विचार करनेवाले हैं। मुण्डकोपनिषद्के दूसरे मुंडकके द्वितीय खंडका दूसरा श्लोक नीचे दिया है:—

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च
यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि॥

[सोम्य, यत् अर्चिमत् यत् अणुभ्यः अणु च, यस्मिन् लोकाः लोकिनः च निहिताः। तत् एतत् अक्षरम् ब्रह्म। सः प्राणः तत्उ वाङ्मनः। तत् एतत् सत्यम्। अमृतम्। तत् वेद्धव्यम् [इति] विद्धि।]

इस श्लोकका अर्थ यह है कि, 'हे वत्स, जो तेजोमय है, और जो परमाणुसे भी सूक्ष्म है और जिसमें पृथ्वी और दूसरे लोक तथा उनके रहनेवाले समाविष्ट होते हैं वही अविनाशी ब्रह्म, वही इन्द्रिय समूह। भाई इसको अमृत कहते हैं। इसीलिये उनकी तरफ ध्यान देके उसीको हल करनेकी कोशिश कीजिये।

इस मंत्रके प्रथम चरणमें सृष्टिके कारण स्वरूप का वर्णन आया हुआ है। यह वर्णन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कोई भी विचारी आदमी इसकी तरफ ठीक तरहसे ध्यान दे तो उसको विद्युत्कणोंका (Electrons) स्मरण हुए बिना नहीं रहेगा। इस श्लोकमें यह स्पष्ट बतलाया गया है कि यह सृष्टि ऐसे सूक्ष्म जड़ परमाणुसे नहीं बनी हुई है लेकिन उनकाभी मूल तत्व तेजोमय है यानी विद्युतकण-अणाणु—है। परमाणुसे भी अत्यन्त सूक्ष्म ऐसे तेजोमय विद्युत्कणही सृष्टिके मूल कारण हैं, ऐसा आधुनिक भौतिक शास्त्रज्ञोंका सिद्धान्त है। आधुनिक सृष्टि शास्त्रज्ञ 'सर आलिवर लाज' ने प्रयोगोंसे यह बतला दिया है कि, सृष्टिके मूलकारण जो ९२ तत्व माने जाते हैं इन सबका आदि कारण धन और ऋण विद्युत्कण (Electrons or Protons) अर्थात् अर्चिमन् परमाणुही हैं। अभीतक यह समझा जाता था कि जड़ और चैतन्यके मिश्रणसे यह सृष्टि बनी हुई है लेकिन जड़ कुछ भी चीज़ नहीं है, किन्तु वह भी चैतन्य यानी विद्युत्कणोंसे बनी है, यह सिद्ध किया गया है। इससे स्थावर जंगम रूप सृष्टि चैतन्यही है यह बात स्पष्ट है। इस मंत्रके द्रष्टा यानी कर्ता अंगिरस् ऋषिके मस्तिष्कमें विद्युत परमाणुकी यह कल्पना हो या न हो लेकिन यह सृष्टि तेजोमय है यानी तेजसे बनी हुई है, जड़ परमाणुसे बनी हुई नहीं है यह बात तो उसको साफ साफ मालूम थी यह मानना ही पड़ेगा। वेदोंमें परमाणुकी कल्पना स्पष्टतासे है यह बात बिलकुलही सिद्ध है।

———

विज्ञानेश्वरकी पूजा

[ले० श्रीयुत अवधबिहारी लाल बी० ए० विशारद]

संसारमें दो प्रकारकी सृष्टि दिखलाई पड़ती है—सजीव और निर्जीव। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि सम्पूर्ण जगत दो प्रकारकी वस्तुओंसे भरा है। एक प्रकारकी वस्तुयें वह हैं जो प्राण रखती हैं। इन्हींको हम प्राणी, जीवधारी अथवा चेतन भी कहते हैं। दूसरे प्रकार की वस्तुएँ वह हैं जो प्राण रहित हैं। इन्हीं को हम निर्जीव जड़ या अचेतन कहते हैं। इतना समझ लेने पर हम कह सकते हैं कि यदि हम इस दृश्यमान जगतकी प्राणसहित तथा प्राणरहित वस्तुओंकी रचनाविधिको समझ लें तो फिर हमारे लिये जगतके रहस्यका समझना अत्यन्त सरल और सुगम होजायगा।

भला जिस जगतमें हम उत्पन्न हुए और जिसमें हमें जीवन पर्यन्त निवास करना है, उसीकी द्विविध वस्तुओंकी रचनाको न समझें तो हम जैसा अज्ञानी और मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है? हम बालकसे युवक और युवकसे वृद्ध होकर मर जाते हैं परन्तु यह नहीं समझते कि "सूर्य" क्या है, "जल" क्या है, "थल" क्या है। हममें से अधिकांश अभी सूर्यको रथ पर चढ़कर चलने वाला देवता समझते हैं। उसे प्रसन्न करके अपनी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये जल चढ़ाते हैं। यही बात जल-राशिके सम्बन्धमें भी है। गंगा-गोदावरी और समुद्र मनोकामना पूर्ण होनेके लिये पूजे जाते हैं। बात क्या है कि हम सब इस अन्धकारमें पड़े हैं। इन सबका कारण यही है कि हम नहीं जानते कि सूर्य कैसे बना है, जल क्या है और इन दोनोंके संयोग और वियोगका परिणाम क्या है।

सूर्य और जलका विषय तो कठिन है। एक अति साधारण बात लीजिये। चेचक अर्थात् शीतलाके रोगको प्रायः लोग "देवी या माता मैया" समझते हैं। इसका कारण क्या है? बात यह है कि लोग रोग या रोगके कारणको नहीं जानते। वह जो कुछ समझे हुए हैं, उसे ही ठीक समझते हैं। इसीसे उन्हें हानि पहुँचती है। बहुतसे भाई तो सचाईसे इतनी दूर हैं कि रोगको भूत-शैतान समझ कर ओझाओंके कहने पर चलते और उनके संकेत पर कठपुतलीकी भांति नाचते हैं और फिर भी अन्तमें विफल मनोरथ ही रहते हैं। इन सब भ्रम-जालोंका कारण क्या है? उत्तर—वही है जो पहले कहा गया अर्थात् जगत की वस्तुओंकी रचना-विधि और कार्य कारण संबंधको ठीक ठीक न समझना। इसीसे सिद्ध है कि मनुष्योंमें "अज्ञान" बहुत है। और जब तक उनमें अज्ञान रहेगा तब तक उन्हें हानियाँ पहुंचती रहेंगी।

अब प्रश्न यह है कि मनुष्योंसे अज्ञान कैसे दूर हो सकता है। उत्तर स्पष्ट है कि ज्ञानके फैलानेसे अज्ञान दूर हो सकता है। जिन जिन बातोंके विषयमें मनुष्योंको अज्ञान है उन्हीं बातोंके विषयका ज्ञान करानेसे उन्हें सत्य वा तथ्यका बोध होगा। समस्त चेतन और जड़ जगतकी रचनाके ज्ञानको हम लोग "विशेष ज्ञान" वा "विज्ञान" कहते हैं। जब तक "विज्ञान" का प्रसार मनुष्यमात्रमें सुगम न होगा तब तक मानव समाज अन्धकार और उसके स्वाभाविक परिणाम दुःखमें ही पड़ा रहेगा। अतः हम सब का कर्तव्य है कि 'विज्ञान' (Science) के फैलाने में कठिन परिश्रम करें।

प्रायः लोग कह बैठते हैं कि वैज्ञानिक पुरुष (Scientist) अपने विज्ञानमें इतना लीन हो जाता है कि वह परमात्माकी सत्ता नहीं मानता अर्थात् वह नास्तिक (Athiest) हो जाता है। सच पूछिये तो "विज्ञान काण्ड" में परमात्माका विषय ही नहीं है। विज्ञान न तो परमात्माकी सत्ता को स्वीकार ही करता है और न अस्वीकार ही। वैज्ञानिक पुरुष तो भौतिक जगतकी रचनाको भौतिक

शक्ति द्वारा समझता या समझनेकी चेष्टा करता है। वह अपने परीक्षणों (Experiment) द्वारा भूतों (Matter) की सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंकी खोज करता और फिर उसे सब सामने स्पष्टतया प्रकट कर देता है। वैज्ञानिक (Scientist) सचाई का अन्वेषण करता और उसीमें अपना जीवन बिताता है। हमने तो आज तक न सुना कि विज्ञान की किसी पुस्तकमें यह लिखा हो कि परमात्मा है या नहीं। उसकी पूजा करनी चाहिये या नहीं। "विज्ञान" परमात्माकी सत्तासे सर्वथा अलग है अर्थात् वह परमात्माके विषयमें उदासीन या तटस्थ है। वह ईश्वरके व्यक्तित्व, अस्तित्व वा महत्वके विषयमें हाँ या नहीं कुछ भी नहीं कहता है। वह तो विषय ही दूसरा है। भला भौतिक वा प्राकृतिक विषयसे अलौकिक (परमात्मा सम्बन्धी) विषयका क्या सम्बन्ध? अतः यह स्पष्ट है कि विज्ञान किसीको आस्तिक या नास्तिक नहीं बनाता। वह एक स्वतंत्र विषय है।

एक और साधारण उदाहरण लेनेसे यह विषय अत्यन्त सरल प्रतीत होगा। यदि कोई किसी गणितज्ञ (Mathematician) से पूछे कि अपनी गणितसे बतलाओ कि तुलसीदास या शेक्सपियर का काव्य कैसा है। उसी गणितसे यह भी सिद्ध करो कि आत्मा और परमात्मा हैं या नहीं। यदि हैं तो वे कब तक रहेंगे और उनका क्या कर्तव्य हैं। इन प्रश्नोंके सुनते ही गणितज्ञ उत्तर देगा कि तुलसी दास या शेक्सपियरके काव्यसे हमारे गणितसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार हमारे गणित में आत्मा और परमात्माका रत्ती भर भी उल्लेख नहीं। अतः हम किसी कविके काव्य या आत्मा-परमात्माके विषयमें एक गणितज्ञकी स्थितिमें कुछ भी नहीं कह सकते। हम तो केवल गणित जानते हैं। हम नहीं जानते कि तुलसीदास या शेक्सपियर थे भी या नहीं, क्योंकि हमने उनका कुछ भी अध्ययन नहीं किया और हमारा विषय गणित एक स्वतंत्र विषय है। गणितज्ञके इस स्वाभाविक उत्तरसे यदि कोई यह परिणाम निकाल बैठे कि गणित लोगोंको काव्य हीन अथवा नास्तिक बनाता है तो यह उसकी भारी भूल होगी। इसी प्रकार विज्ञान भी एक स्वतंत्र विषय है जो भौतिक या प्राकृतिक विषयोंको हमारे समक्ष अपने परीक्षणों द्वारा स्पष्ट करता है। वह किसीको आस्तिक या नास्तिक नहीं बनाता।

परमात्माके उपासक या विश्वासी यह मानते हैं कि वही (परमात्मा) सारी सृष्टिका बनानेवाला है। वे यह भी मानते हैं कि उसे प्रकृतिके प्रत्येक कणका पूरा ज्ञान है। अतः सिद्ध है कि परमात्मा प्रकृति या भूतोंका पूर्ण ज्ञान रखता है। इसी प्रकृति या जगतके पदार्थोंके ठीक ठीक ज्ञान को हम लोग विज्ञान (Science) कहते हैं। तो क्या हम प्रकृतिके पूर्ण विज्ञान रखने वाले परमात्माको विज्ञानेश्वर या (Master of science) कह सकते हैं? हमारी अल्प बुद्धि तो यही बतलाती है कि परमात्मा अवश्य "विज्ञानेश्वर" या (Master of science) है। वरन् उससे बढ़कर अन्य कोई भी वैज्ञानिक (scientist) इस जगत में नहीं है।

जब परमात्मा विज्ञानेश्वर है तब वह यही चाहता होगा कि उसके भक्त (सब मनुष्य) जगत के विज्ञानको ठीक उसी प्रकार समझें जैसे वह (परमात्मा) स्वयं समझता है अर्थात् मनुष्य जड़-चेतनका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर लें। एक उदाहरणसे यह बात ठीक ठीक समझ में आजायगी। यदि कोई मनुष्य यह समझता है कि पृथ्वी गाय के सींगँ या साँप के सर पर है तो प्रश्न होता है की गाय या साँप किस पर है। लोग इस प्रश्नके उत्तरमें कुछ आँय बाँय शांय बक कर विश्वास या धर्मकी दुहाई देने लगते हैं। विज्ञान बतलाता है कि पृथ्वी अपनी शक्ति द्वारा आकाश में घूमती और सूर्यकी आकर्षणशक्ति द्वारा बिना किसी अन्य वस्तुके सहारे स्थित रहती है। जब सचाई यह है तब विज्ञानेश्वर परमात्मा भी यही चाहता होगा कि लोग पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति

केभावको समझें न कि गाय या सांपकी कहावत को।

विज्ञानसे अनभिज्ञ पुरुष यह नहीं जानता कि जलमें बिजलीकी शक्ति यथेष्ट परिमाणमें वर्तमान है। परन्तु विज्ञानसे अभिज्ञ पुरुष यह भली भाँति जानता है कि जल-राशिसे विद्युत्शक्ति यथेष्ट परिमाणमें उत्पन्नकी जा-सकती है। भारतवर्षका अवैज्ञानिक पुरुष वैज्ञानिकोंको नास्तिक समझता और अपने आपको परमात्माका उपासक समझता हुआ कशमीरकी झीलोंको नमस्कार करता है। परन्तु स्वीजरलैण्डका वैज्ञानिक पुरुष आल्प्सकी झीलोंसे बिजली उत्पन्नकरके नाना प्रकारके औद्योगिक कार्य सम्पादन करता है। कशमीरकी अनुपम झीलें नमस्कार करनेके काम आती हैं परन्तु स्वीजरलैण्ड की साधारण झीलें विज्ञान वालोंके कारण लाखों रुपयोंका लाभ प्रति मास पहुँचाती हैं। इस महान् अन्तरका कारण स्पष्ट है। भारतवर्षका अवैज्ञानिक विज्ञानको नास्तिकताका कारण समझ कर उसकी अवहेलना करता है परन्तु स्वीज़रलैण्ड का वैज्ञानिक विज्ञानको लाभकारी समझकर उसके द्वारा संसारका उपकार करता है। यदि वह परमात्मामें विश्वास करता है तो उसे महानतम "विज्ञानेश्वर" समझता है और यदि वह नास्तिक है, तो भी विज्ञान द्वारा लाखोंका उपकार करता है। परमात्माके उपासकोंका कल्याण ही करता है। यदि परमात्मा है, तो वह "विज्ञानेश्वर" होने से वैज्ञानिकोंसे प्रसन्न ही होता होगा।

इस प्रकार समस्त वैज्ञानिक चाहे आस्तिक हों वा नास्तिक, परमपिता परमात्माके विज्ञानेश्वर रूपके उपासक अवश्य हैं। यदि वे आस्तिक हैं, तो प्रत्यक्ष रूपसे, अन्यथा परोक्षरूपेण वे विज्ञानेश्वर ब्रह्मके उपासक हैं। क्योंकि दोनों अवस्थाओं में वे उसी विज्ञानेश्वरके विज्ञानका प्रसार करके जगतका उपकार करते हैं। क्या आप इसे विज्ञानेश्वरकी पूजा न कहेंगे?

हमारे देशमें वंशी और डमरू बजानेवाले परमात्माओंके उपासक करोड़ों हैं। उँगली दिखाकर चाँदके दो टुकड़े कर देने वाले पैग़म्बरके पुजारी भी लाखों हैं। परन्तु परमात्माको विज्ञानेश्वर मानकर विज्ञान द्वारा प्राकृतिक ज्ञानार्जन करनेवाले दालमें नमकके तुल्य ही हैं। चाहिये तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति विज्ञानसे अभिज्ञ हो अथवा वैज्ञानिक को सब प्रकारकी सहायता दे परन्तु इसके बदले लोग उलटे उन्हें नास्तिक समझते हैं। ऐ परमात्माके भक्तो! कब तक अविद्यान्धकार में पड़े रहोगे? परमात्माको 'विज्ञानेश्वर' कब समझोगे? चाहे तुम परमात्माको विज्ञानेश्वर समझकर विज्ञानोपार्जन करो या न करो। वैज्ञानिक पुरुष तो सदा विज्ञानोपार्जन करके जगतका ज्ञान बढ़ाते रहेंगे। चाहे तुम मानो या न मानो, वैज्ञानिक पुरुष सदा अपने ढङ्गसे विज्ञानेश्वर परमात्मा की पूजा करते रहेंगे। देखें परमात्माके भारतीय-भक्त कब कटि-बद्ध होकर विज्ञान सीखते तथा विज्ञानेश्वरकी पूजा वास्तविक रूपसे करते हैं?

मकानोंके बनानेमें ध्वनिका विचार

[ले० श्री जनार्दन प्रसाद शुक्ल]

ऐसी बहुत कम इमारतें मिलेंगी जिसमें वक्ताके शब्द लोगोंको ठीक ठीक सुनाई पड़ सकें। पहले ऐसे किसी स्थानकी आवश्यकता न थी और इस कारण इस ओर किसी वैज्ञानिकका ध्यान न हुआ था पर जब उनको किसी तंत्रके वक्तव्यके सुननेकी आवश्यकता पड़ी तब उन्हें यह कठिन प्रतीत हुआ कि एकत्रित लोग उसका आनंद ले सकें। इस कारण उन्होंने ऐसे कमरे बनाने शुरू किये जिसमें कि ठीक शब्द हर कोने में सुनाई दें।

यदि शब्द एक स्थान पर बोला जाय तो वह दबावकी लहरों द्वारा हर ओर फैल जाता है। और अगर उस लहरको रोकनेके लिये कोई दीवाल इत्यादि न हो तो वह साफ साफ सुनाई पड़ता

है। पर यदि कोई ऐसी कठोर रुकावट उसके बीचमें आ जाय तो वह लहरको तब तक परावर्तित करेगी जब तक कि उसकी सामर्थ्य दीवालमें खप न जाय। ऐसी अवस्थामें श्रोताको उसी शब्दकी गूंज अनेक बार सुनाई देगी। अर्थात् शब्द ठीक ठीक न सुनाई देकर झन्ना जायेगा। झन्नाटा कुछ निश्चित समय तक सुनाई पड़ता है और फिर धीरे धीरे इतना मंद हो जाता है कि वह बिलकुल सुनाई नहीं देता। इतने समय को जो कि एक शब्द के बोले जाने से झन्नाटेके बंद होने तक लगता है उसे झन्नाटेका समय (Time of reverberation) कहते हैं।

यदि आवाज़ एक बड़े कमरेमें किसी निश्चित स्थानसे लगातार कीजाय तो उस आवाज़ की लहरें चारों ओर फैलने लगेंगी और सुनने वालों को मालूम हो जायगा कि आवाज़का होना कब आरंभ हुआ पर कुछ समयके बाद उनके कानोंमें उसी आवाज़ (यानी स्रोत) की तो लहरें न पहुंचेंगी पर जो दीवालोंमें परावर्तित होंगी वह भी अपना शब्द गुञ्जारने लगेंगी। परिणाम यह होगा कि पहिला शब्द ठीक सुनाई न देगा। पर सभी लहरें परावर्तित नहीं होतीं। कुछ खिड़की इत्यादि ऐसे खुले स्थानोंसे बाहर निकल जाती हैं और कुछकी ताक़त दीवालके टकरानेसे कम हो जाती है। अर्थात् कुल सामर्थ्यकी दुगुनीसे कम ही शक्ति उनके कानोंमें पहुंचती है पर यदि आवाज़ करना काफी देर तक जारी रक्खा जाय तो सामर्थ्यका घटाव भी कम हो जावेगा। इस प्रकार कुल सामर्थ्यमें जो एक सेकेंडमें निकलती है और जो उसके कानों तक पहुंचती है एक निश्चित संबंध है।

अब अगर आवाज़ करना बंद कर दिया जाय तो आवाज़ जल्दी धीमी होने लगेगी क्योंकि लहरें बाहर निकलनेसे कम भी होती जाती हैं और टकरानेसे कमजोर भी होती जाती हैं। इस प्रकार इससे शब्दके झन्नाटेके ज़ोर और धीरे होनेका ज्ञान होता है।

ठीक वक्तव्य या धीमे स्वरोंको सुननेके लिये यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक स्थान पर सामर्थ्य बराबर पहुंचे और झन्नाटा या लहरों का परिवर्तन जल्द खतम हो जाय और नये स्वरकी लहरोंको सुनने वालेके कानों तक पहुँचने दे। संगीतमें स्वर मिश्रणका ध्यान चाहे कम ही हो पर रेडियो द्वारा वक्तव्यके सुननेमें इसका ध्यान आवश्यक है।

वालेस सेबाइनने यह मान कर कि निश्चित् आयतनमें सामर्थ्यका औसत मालूम हो और अन्य नाशक वस्तुओंके असरको छोड़ कर सामर्थ्य के ठुकरानेसे जो कमी होती है उसे भी मालूम किया जा सके एक संबंध निकाला। इस संबंध के अनुसार जो निश्चित समय कि झन्नाटेके बंद होनेमें लगता है वह जितना ही बड़ा कमरा हो उतना ज्यादा होता है और जितनी ही आवाज़ दीवालोंमें करानेसे कमज़ोर हो जाय उतना ही कम। उपर्युक्त संबंधकी अन्य वैज्ञानिकोंने भी परीक्षाकी पर किसीको कोई पथ नहीं दिखलाई पड़ा। इस प्रकार झन्नाटेका समय मालूम करके और एक खुली खिड़कीका शोषण गुणक (Coefficient of absorption) शून्य मान कर अन्य वस्तुओंका शोषणगुणक मालूम किया गया।

झन्नाटेके समयका मालूम करना अति सरल है। जब कोई स्रोत या बांसुरी आवाज़ करना शुरू करती है तो विद्युत् द्वारा एक घूमते हुये बेलन पर निशान हो जाता है और फिर जब झन्नाटा बंद होता है तो सुनने वाला उस पर निशान बना देता है जिसके अंतरसे समय मालूम हो जाता है।

अब अगर पहले झन्नाटेका समय मालूम हो और एक खिड़कीको खुली रखने पर शोषण गुणक भी माना जाय फिर खिड़की बंद कर एक ऐसे तकियेका उपयोग कर जिसका गुणक मालूम

करना हो झन्नाटेका समय निकाला जाय तो उस वस्तुका गुणक जिसका वह तकिया बना हुआ है मालूम हो जायगा। या अगर कुछ क्षेत्रफल जो उतना ही शोषण गुणक देता हो जितना एक खुली खिड़की तो गुणकका सम्बंध भी उनके क्षेत्रफलों के अनुसार होगा। इन दो उपायोंसे जब गुणक मालूम हो गया तो उपर्युक्त संबंधके अनुसार झन्नाटेका समय जितना चाहे घटाया जा सकता है। परंतु इमारत या कमरेमें जो सामान या धातुयें लगेंगी उनका गुणक उतना अधिक होना चाहिए जितना बड़ा कमरा है। अभ्यास द्वारा सेबाइन साहेबने यह भी मालूम कर लिया कि झन्नाटेके समय और श्रोता वक्ताके स्थानों से कोई मतलब नहीं है। यह तो अब इच्छा पर है कि झन्नाटेका समय कितना रक्खा जाय। पर अनेक वैज्ञानिकों द्वारा निश्चित समय एक १०००० घनफुट आयतनके कमरेके लिये १'०३ सैकेण्ड है।

पर इतना नहीं। जब कमरेमें ऐसा गोलाव है कि नतोदरता की नाभि एक स्थान पर है और नतोदरता कई जगह पर है तो ऐसे स्थान केवल ध्वनिके परावर्तन ही द्वारा हो जावेंगे जहाँ आवाज़ बिलकुल न पहुँचे और लहरें एक दूसरेमें मिल जायँ या आवाज़ बहुत अधिक ज़ोरसे हो। इन अवस्थाओंमें सजावट द्वारा काम लेकर ऐसे स्थान बनाये जाते हैं।

जब बड़ी इमारतें आज कल बनाई जाती है तो पहले, एक छोटा नमूना बना कर उक्त उपयोग कर लिये जाते हैं जिससे परावर्तन द्वारा कष्ट नहीं होने पाता। और दूसरे एक तालमें विक्षोभ उत्पन्न करके लहरोंके देखनेसे भी परावर्तन का अंदाज़ा बैठाया जा सकता है।

नीचे दी हुई सारिणी कुछ लाभदायक होगी। झूलन संख्या=५१२

पदार्थ	शोषण गुणक
एसबेस्टस ($\frac{3}{4}''$)	'२६
दरी ($\frac{1}{2}''$)	'३०
कंकरीट	'१७
काग (२")	'२३
कांच	'०२७
बालों का फेल्ट (१$\frac{1}{2}''$)	'१५
संगमरमर	'०१
साधारण प्लास्टर	'०३
ध्वनिक प्लास्टर	'३०
काष्ठावरण	'०६

शोषण इकाइयां निकालनेके लिये यह आवश्यक है कि क्षेत्रफल निकाल कर उपर्युक्त गुणक से गुणा करें और फिर ठीक प्लास्टर लगाने वाली वस्तुसे प्लास्टर लगाकर बड़े कमरे को सुननेके योग्य बनावें।

नादका उपयोग

[ले० श्री जनार्दनप्रसाद शुक्ल]

महायुद्ध से संसारको बड़ी हानि हुई पर जहाँ इतनी हानि हुई वहाँ अनेक लाभ भी हुये। कमसे कम वैज्ञानिक संसारकी उन्नति में इस युद्ध ने बहुत ही अधिक सहायता दी। पहले वैज्ञानिकोंको नादसे संगीतका आनंद लेनेके अतिरिक्त न और किसी उपयोगकी आवश्यकता ही थी और न उनकी वृत्तिही इस ओर लगी— पर जब गत महायुद्ध में नादकारी तोपों ने बहुत कोलाहल मचाया तो वैज्ञानिकों की वृत्ति इस ओर आकर्षित हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने नादके अनेक उपयोग निकाले। इस प्रकार यदि इस समय कोई नाद कहीं पर शब्दकरे तो उसकी ठीक स्थिति निकालना या जल पर किसी

पोतको विपत्ति हो तो सूचना देना इत्यादि बहुत सरल हो गया है।

अब हमको यह देखना चाहिये कि यह संकेत किस प्रकार किये जाते हैं और नाद के उपयोग से स्थिति का पता कैसे लगता है। यह तो एक साधारण पुरुष भी जानता है कि वस्तुकी ठीक स्थिति जाननेके लिये उसके तीन भुजांक मालुम होने चाहिये। यदि तीन अलग अलग स्थानों से कोई एक ही शब्द या नाद को सुने तो वास्तविक स्थिति का निश्चय हो सकता है। ऐसे स्थानों को हम श्रावक स्थान (Listenning Stations) कहेंगे।

यह विदित है कि शब्दका ज्ञान हमको लहरों द्वारा होता है जो हवामें उड़कर हमारे कानों तक पहुँचती हैं और एक विशेष झिल्लीको तदनुकूल झंकृत (Sympathetically Vibrate) करती हैं। वैज्ञानिक इन लहरोंको एक सूक्ष्म-शब्द-ग्राही (Microphone) में पकड़ कर एक केंद्र पर लाते हैं। इसी प्रकार तीन सूक्ष्म शब्दग्राही तीन अलग श्रावक स्थान पर रख कर लहरें एक ही केंद्र पर इकट्ठा की जाती हैं। इस केन्द्र पर करखे का रँगा हुआ एक बेलन घूमा करता है जिस पर एक लेखनी रक्खी रहती है और जब नाद सूक्ष्म-शब्द-ग्राहीमें सुनाई देता है तो लेखनी अपनी जगहसे हट कर उस पर निशान बना देती है। इन निशानों द्वारा, एक तो उन श्रावक स्थानों की अपेक्षा दिशा का अनुमान हो जाता है, दूसरे उन लहरोंका आकार। इस प्रकार यह अनुमान हुआ कि जलयान या वायुयान या तोप कहाँ पर किस दिशा में है।

अनेक वैज्ञानिकों ने नादकी गति पहले मालूम कर ली है। इस कारण कुछ समयमें नाद कितनी दूर तक पहुँच सकेगा इसका पता तो लगना अति सरल है। इस प्रकार अगर $क_1$, $क_2$, $क_3$ समय नाद को सूक्ष्म शब्द ग्राहियों तक पहुँचनेमें लगता है तो नाद की पहुंच इन समयों पर एक एक वृत्त तक होगी जिसके व्यास भी $क_1$, $क_2$, $क_3$ हैं और केन्द्र नादकारी वस्तु है जिसकी स्थिति का पता लगाना है।
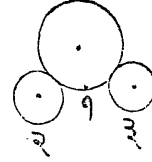
अगर $क_1$ सबसे कम समय हो तो वह घेरा $क_1$ ग मील व्यास का होगा जब ग मील नाद की गति है। और दो घेरे जिनका केन्द्र दो श्रावक स्थान होंगे उनके व्यास ($क_2 - क_1$) ग और ($क_3 - क_1$) ग मील होंगे और ये घेरे उसको छूते रहेंगे।

इस कारण अब अगर हम ऊपर वाले व्यासों-से श्रावक स्थानों २ और ३ पर घेरे खींचें तो कुल पता लगनेके लिये सिर्फ एक ऐसे घेरेके खींचने की आवश्यकता रह जायेगी जो श्रावकस्थान १ से होकर निकले और दो ऊपरके घेरों को छुये। इसका केंद्र तो फिर मालूम हो जायगा।

यह काम एक तो खचित पत्र पर बहुत से घेरे खींच कर ठीक बैठता हुआ घेरा निकालने से हो सकता है। यही रीति युद्ध में भी लागू थी। दूसरे गणित से।

गणित यह बताती है कि यदि घेरा २ और १ को लेकर उसका बिन्दुपथ निकाला जाय तो वह एक ऐसे वक्रपर होगा जिसमें किसी विन्दु २ और १ की दूरी का क्षण ($क_1 - क_2$) ग होगा। यह वक्र एक अतिपरवलय है। ऐसे ही एक अतिपरवलय ३ और १ को लेकर निकाला जाता है और जहाँ यह दोनों मिलेंगे वहीं वह केन्द्र होगा। इन अतिपरवलयों

को भी यंत्र ही निकालते हैं और ऊपर की समस्या चन्द मिनटों में ही हल हो जाती है।

पर ऊपर की कही हुई रीति में कई कठिनाइयाँ भी उठ खड़ी होती हैं। इस तरह जब गोला मानो निकला तो नाद की लहरें तो संचालित होती ही हैं पर गोला हवा में तेजी से जाता है और उसकी भी लहरें वायु में उठेंगी। फिर जहाँ गोला गिरा वहाँ भी कुछ फटने का शब्द होगा। तब कौनसा ठीक शब्द है यही पता लगना कुछ कठिन हो जाता है। प्रोफ़ेसर एसक्लैंगन (Esclangon) ने इस कठिनाई-को बहुत सरल कर दिया। उन्होंने यह कहा कि जो निशान बेलन पर ठीक नाद का होगा वह सबसे बड़ा होगा जैसा कि इस चित्रसे विदित है।
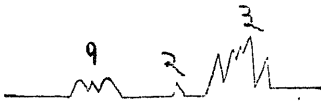
१. गोलों द्वारा संचालित लहरोंका प्रभाव
२. गिरनेके स्थानका प्रभाव
३. ठीक छूटनेका प्रभाव

जो लहरें ठीक विस्फोटन (Explosion) से संचालित होती हैं उनके झोटे अधिक होते हैं और सरलताके लिये केन्द्र पर एक बेलन की अपेक्षा एक मोनोमीटर (Monometer) पर भी अपना असर इतना दिखा देगा कि उसका ही उपयोग हो सके।

जब स्थान का पता लग गया तो गोले की पहुँच और तेज़ी तो मालूम ही हो जाती है पर नाद की गति ठीक मालूम होनी चाहिये। यह गति ताप-के अनुसार बदलती है पर किसी परिचित ज्ञात जगहसे गोला छुटाकर इसका अंदाजा एक बार लगा लिया जाता है जिसका उपयोग किया जाता है। नाद की गति वायु की अपेक्षा जलमें बहुत अधिक है और ऊपर की कठिनाइयां पानीमें अति सरलता से लागू हैं। गत महायुद्धमें इसका बड़ा उपयोग हुआ। इस प्रकार जलडुब्बियोंकी स्थिति जो नीचे जलमें अदृष्ट थीं बंदरगाहों पर मालूम हो जाती थी और जहाज़ों को जिस पर कि उनकी निगाह थी सूचना देकर बचाया जाता था।

उस नाद का जिसकी दिशा मालूम करना था (महायुद्ध में) वह दुश्मनके वायुयान थे। और उसके लिये बनावटी कान बनाये गये थे। ये कान दो लंबे शंकु रूपके बिगुलोंके थे जो कि एक रेखा की धुरी पर जमा दिये गये थे जो कई फीट ऊँचे एक खंभे पर जड़े थे। यह उस दिशा की ओर घुमाये जा सकते हैं जिसका पता लगाना है। बिगुलोंके पेंदे पर नली होती है जो सुनने वालेके कानों तक पहुंचती है और इनकी स्थिति तब तक घुमाई जाती है जब तक कि दोनों कानोंमें एक ही जोरसे शब्द न सुनाई दे।

ऊंचाई निकालनेके लिये भी दो जोड़ा बिगुल जड़ दिये गये और हर एक जोड़ेमें दो सुनने की नली थीं और दो सुनने वाले। कुछ थोड़ी ही कठि-नताके बाद इसका अभ्यास हो जाता है कि वायु-यानका पीछा किया जा सके और एक दूसरेके जमानेमें कोई अड़चन न हो।

ये बुगल १५ फुट लम्बे और १२ फुट चौड़े थे और १२ फुट की दूरी पर रक्खे गये थे और ०'१ डिगरी तक ठीक दिशा का अनुमान करते थे। इस ऊपर के बिगुलों को और धीमा सुनाई देनेके लिये बड़े २ गोल शीशे लगा दिये गये थे जिनके द्वारा चौड़ान आदि तो कम हो गई और परावर्तन द्वारा शब्द अधिक सरलतासे सुनाई देने लगा। ये शीशे भी अपनी धुरीपर घुमाये जा सकते थे जिससे कि दिशामें कोई अड़चन न पड़े।

अपिन एवम् कपूर

[ले० श्री ब्रजविहारीलाल दीक्षित, एम. एस-सी.]

अनेक वृक्षों एवम् पौधोंमें अत्यन्त ही तीव्र सुगन्ध होती है और विशेषकर कोनीफर और साइट्रस सम्बन्धी वृक्षोंकी तो गन्ध बहुत ही सुन्दर होती है। इन दोनों ही समुदायोंके वृक्ष ऊँचे पहाड़ोंपर होते हैं अथवा शीत प्रदेशके नीचे भागोंमें जहाँ सूर्य्यका प्रकाश इतना शक्तिशाली नहीं होता है। कारण यह है कि वह सभी पदार्थ जिनके कारण कि इन वृक्षोंमें सुगन्ध होती है बहुधा अत्यन्त ही उड्डायी होते हैं और उष्ण प्रदेशोंमें सूर्य्यके अति तीव्र प्रकाशकी उष्णतासे सभी पदार्थ शीघ्र ही विभाजित हो जाते हैं और इस कारण यह पदार्थ वृक्षोंमें कुछ अधिक समय तक नहीं रह सकते। शनैः शनैः शताब्दियोंके समयमें वृक्षोंमें ऐसे पदार्थोंकी उत्पादन शक्ति भी जाती रहती है। यदि यह चीड़ सम्बन्धी वृक्ष शीत प्रदेशसे लाकर उष्ण प्रदेशोंमें लगाए भी जावें तो प्रथम तो उनके लगनेमें ही सन्देह है; फिर यदि लग भी जावें तो वह विशिष्ट सुगन्ध यौगिक उनमें नहीं पैदा होंगे जो कि शीत प्रदेशोंमें होते होंगे। सूर्य्यका ताप उनको शीघ्र ही नष्ट कर देगा।

एक अन्य ही वंशके पौधे होते हैं जिनको वनस्पति विज्ञानके आधुनिक नामकरण संस्कारकी नियमावलीके अनुसार लैवियेटी वंशका बोलते हैं। वह भी विना सुगन्धके नहीं रह सकते। इन पौधों में और उपर्युक्त समुदायके वृक्षोंमें तो कुछ सम्बन्ध नहीं है। उपर्युक्त वृक्ष तो नग्न रूपमें बीज पैदा करते हैं और अत्यन्त ही ऊँचे होते हैं। उनमें ऐसे प्रत्यक्ष पुष्प नहीं होते हैं परन्तु यह बहुधा छोटे छोटे पौधे होते हैं। इनके पुष्प बहुत ही सुन्दर और प्रत्यक्ष होते हैं और डण्ठल चौकुन्ठे होते हैं। इनके बीज अनेक पत्तोंसे आच्छादित रहते हैं। इनके सुगन्ध यौगिक इतने उड्डायी नहीं होते हैं और यह अधिक तीव्र सूर्य्यका ताप सहन कर सकते हैं। तुलसी अथवा कुकुरौंधा इसी वंशके उदाहरण हैं।

कम्पोज़िटी वंशके पौधे भी सुगन्ध यौगिकोंमें धनी होते हैं। इनका आकार भी छोटा होता है परन्तु इनके पुष्प बड़े ही सुन्दर होते हैं। प्रत्यक्ष रूपसे जो एक ही फूल होता है वस्तुतः उसीमें अगणित पुष्प होते हैं। गेंदा एवम् सूर्य्यमुखी इसी वंशके उदाहरण हैं। अनेक अन्य वंश भी ऐसे होते हैं जिनके कुछ व्यक्ति सुगन्ध यौगिकोंसे मुक्त नहीं होते हैं तथापि अनेक सुगन्ध युक्त पौधे इन्हीं गिने चुने वंशोंमें से होते हैं।

ऐसे पदार्थ जिनके कारण कि सुगन्ध वृक्षों अथवा पौधोंमें आने लगती है बहुधा नन्हीं नन्हीं कलियों और छोटे छोटे फूलोंमें ही होते हैं। अन्य भागोंमें इनकी मात्रा अत्यन्त ही न्यून होती है। जब यह कलियाँ या फूल तोड़ कर भभकेमें चढ़ा दिये जाते हैं तो सुगन्ध पदार्थ खिंच आते हैं और फिर उनमेंसे सुगन्ध यौगिक पृथक् पृथक् शुद्ध रूपमें प्राप्त किया जा सकता है। वाष्पस्रवणसे इस क्रियामें बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि सभी ऐसे पदार्थ जलवाष्पमें उड्डायी होते हैं और जब जलवाष्प इन पौधोंके ऊपर प्रवाहितकी जाती है तो वाष्पके सन्सर्गसे सुगन्ध यौगिक भी उड़कर जलवाष्पमें ही इकट्ठे हो जाते हैं।

वाष्प स्रवणमें किसी बर्तन में पानी उबलता रहता है। वहांसे होकर जलवाष्प एक नलकी द्वारा स्रावकमें प्रवाहित की जाती है। नलकी स्रावककी पेंदी तक पहुँचनी चाहिये। स्रावकमें एक वायुबद्ध डाट लगी होती है जिसमेंसे होकर यही वाष्प नली आती है। एक और नली डाटके कुछ नीचे से ही निकल कर स्रवित पदार्थोंको स्रावकसे शीतक तक ले जाती है और वहांसे ठंडे होकर जल और अन्य स्रवित सुगन्ध यौगिक संचकमें इकट्ठे हो जाते हैं। कुछ समय तक स्थिर रहने देनेसे सुगन्ध यौगिक जलमें घुल-

नशील न होनेके कारण जल पर तैरने लगते हैं। और फिर पृथक्करण कीप द्वारा पृथक कर लिये जाते हैं और फिर स्रवण द्वारा शुद्ध कर लिये जाते हैं।

सुगन्ध यौगिक प्राप्त करनेकी एक और भी विधि यह है कि वृक्षके ऐसे भागोंको लेकर जिसमें कि सुगन्ध अधिक आती है ऐसे घोलकों के साथ स्रवित करते हैं जिनमें कि सुगन्ध यौगिक अधिक मात्रामें घुलनशील होते हैं। बहुधा ज्वलक एक बड़ा ही कार्य्य कुशल पदार्थ है; इसमें सभी तैल एवम् सुगन्धें घुल जाती हैं। जिस वस्तुमें से सुगन्ध खींचनी हो उसको पीस कर एक कुप्पी में भर देते हैं और उसमें एक सीधा खड़ा भपका लगा देते हैं। इससे ज्वलक बार बार वाष्पशील होकर भपकेमें जाता है और वहांसे ठंडा होकर फिर कुप्पीमें गिर पड़ता है। इसी प्रकार एक डेढ़ पहर तक होता रहता है। ज्वलक शनैः शनैः प्रारम्भिक पदार्थकी नस नसमें प्रवेश कर जाता है और घुलनशील पदार्थोंको खींच लाता है। अन्ततोगत्वा ठंडा करके छान कर ज्वलक घोल निकाल लिया जाता है और इस घोलमेंसे स्रवण द्वारा ज्वलक निकाल देनेसे सुगन्ध यौगिक प्राप्त हो जाते हैं और फिर क्षीण दबावमें अथवा आंशिक स्रवण द्वारा अथवा क्षीण दबावमें आंशिक स्रवण द्वारा प्रत्येक यौगिक पृथक् किया जासकता है और शुद्ध रूपमें प्राप्त किया जा सकता है।

एक अत्यन्त ही सरल और कार्य-कुशल यंत्र इस कामके लिए 'साक्सेलट निष्कर्षक' होता है। इसका चित्र यहाँ दिया गया है। कुप्पीमें एक ऐसा ही निष्कर्षक लगा देते हैं और निष्कर्षकके अन्दर एक चोसक पत्रकी नली बनाकर उसके अन्दर जिस वस्तुका तीव्रांश या मूल पदार्थ निकालना हो उसको डालकर रख देते हैं। इस नलीकी पेंदी बन्द कर दी जाती है परन्तु ऊपरी भाग खुला रहता है। निष्कर्षकमें फिर एक प्रति स्रवक (सीधा) भभका लगा देते हैं। निष्कर्षककी पेंदीमें छिद्र नहीं होता होता है। परन्तु इसकी पेंदीकी नलीमेंसे एक पार्श्वनली (मोटी सी) निकाल कर उसके ऊपरी भागमें खुलती है। पेंदीके कुछ ऊपर हीसे एक पतली सी पार्श्वनली निकाल कर उसकी पौनी लम्बाई तक ले जाकर उसे फिर लौटा लाते हैं और इस प्रकार नीचे लाकर पेंदीवाली नलीमें निकालते हैं कि एक डाट द्वारा जिस समय चाहे निष्कर्षकमें का द्रव कुप्पीमें पहुँचाया जा सकता है। कुप्पीमें से द्रव की वाष्पें वाष्पशील होकर चौड़ी नलिकामें होती हुई, वाष्प निष्कर्षकके ऊपरी भागमें जाती हैं। यहां कुछ तो उसीमें ठंडी हो जाती हैं परन्तु अधिकांश भभकेमें जाकर और वहांसे ठंडी होकर टपकती हैं। किसी प्रकार हो, शीतल होकर द्रव घोलक निष्कर्षक में गिरता रहता है और रक्खी हुई वस्तु में से होता हुआ उसमें इकट्ठा होता रहता है। ताप अधिक होनेके कारण और घोलक वस्तुके संसर्गमें भली भांति और अधिक समय तक आने के कारण घोलकमें जो कुछ भी घुल सकता है सो घुल जाता है। यहां इकट्ठे होनेके साथ ही साथ पतली पार्श्व नलिकामें भी घोलक भरता रहता है। जब घोलकका तल पतली नलिकाके मोड़से ऊंचा उठ जाता है तो नीचेवाली डाट खोलने पर सब घोलक कुप्पीमें पहुँच जावेगा। यहाँसे फिर वही चक्र चलेगा। जो वस्तु घुल कर कुप्पीमें आती है वह उड़ायी न होनेके कारण वहीं इकट्ठी होती रहती है। इस प्रकार घोलककी थोड़ी ही मात्रासे सरलतासे ही तीव्रांश (active principle) निकाला जा सकता है। कार्य्यके प्रारम्भमें घोलक भभकेके ऊपरसे इतना डाल दिया जाता है कि वह दो बार निष्कर्षकमेंसे खिंचकर कुप्पीमें आ जावे। घोलकके कथनांकके अनुसार कुप्पी गरम करनेके लिए जल
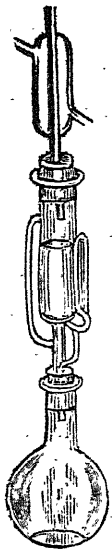
कुंडी, रेणुकुण्डी, तैलकुण्डी अथवा मुक्त दग्धकका प्रयोग किया जा सकता है। क्रिया बहुधा पहर भरमें समाप्त हो जाती है और इसकी समाप्तिका अनुमान जो द्रव निष्कर्षकमेंसे कुप्पीमें जाता है उसके रंग रूपसे लगाया जा सकता है। समाप्त हो जाने पर घोलको स्रवण द्वारा ज्वलकसे मुक्त कर लेते हैं और फिर तीव्रांशको क्षीण भारमें स्रवण द्वारा या आंशिक श्रवण द्वारा पृथक् पृथक् और शुद्ध कर लेते हैं।

फूलोंमेंसे सुगन्ध यौगिक निकालनेकी एक विधि यह भी है कि जल कुण्डमें बहुतसे फूल डाल दिये और उनको दबा दिया ताकि वह जल पृष्ठसे कुछ नीचे ही तक रहें। अनेक दिनों तक इसी भांति पड़े रहनेसे उनमेंकी सुगन्धित वस्तुएँ निकल आती हैं और जल पर तैरने लगती हैं। यह तैरते हुए बिन्दु परों द्वारा या अन्य ऐसे किसी यन्त्र द्वारा उठा लिए जाते हैं जिनमें वह सोक न जावें और फिर उनको उपर्युक्त विधियों द्वारा शुद्ध कर लेते हैं। फिर फूलोंको निकालकर उसमें और ताज़े डलवा दिये जाते हैं।

बहुधा व्यापारिक मात्रामें यह सुगन्धित यौगिक तैलोंमें मिला कर निकाल लिए जाते हैं और फिर यह तैल उसी विशिष्ट सुगन्धका तैल कहा जावेगा। इस प्रकार निकालनेके लिए बहुधा तिलीके तैलका प्रयोग होता है। विशेष विशेष पुष्पभवनोंमें यह क्रियाएँ की जाती हैं। कमरोंमें पहिले चार इंच मोटी तह तिलोंकी बिछा दी जाती है फिर उस पर १ फुट ऊंचे फूल (उदाहरणार्थ चमेलीके फूल) बिछा दिए जाते है फिर इनके ऊपर कोई चार अंगुल मोटी तिली बिछा दी। फिर फूल बिछा दिए और फिर तिलीका परत लगा दिया, इसी प्रकार फूलों पर तिलीका, तिली पर फूलोंका ढेर लगाते लगाते कमरा छत तक भर दिया और फिर उसको इस प्रकार बन्द कर दिया कि वायु अन्दर बाहर न जा सके। पन्द्रह दिन इस प्रकार बन्द रहनेके बाद तिली निकाल ली और फूल फिकवा दिए। तिलीको पेरनेसे अब तिलीके तैलमें एक अत्यन्तही तीव्र चमेलीकी सुगन्ध होगी। इसमें से क्षीण दबावमें आंशिक स्रवण द्वारा सुगन्ध यौगिक स्थापित किए जाकर विशुद्ध रूपमें प्राप्त हो सकते हैं।

यह सुगन्ध पदार्थ या "उड़ायी तैल" पहिले एक ही समूहमें रक्खे जाते थे परन्तु अब यह भली भाँति ज्ञात हो गया है कि इनका रासायनिक संगठन बहुत ही भिन्न भिन्न होता है और सबको एक ही समुदायमें विभाजित करना शास्त्रसंगत न होगा। इस प्रकार कटु बादाम का तैल केवल बानजावमद्यानार्द्र है, ज़ीरेका तैल श्यामीन एवम् ज़ीरिन मद्यानार्द्रका मिश्रण है और अन्य भी इसी प्रकार हैं। परन्तु इन सबको छोड़ कर जो इधर उधर विशेष समुदायों में आ जाते है बहुधा सभी का रासायनिक संगठन एक सा ही होता है। यह ज्ञात हो गया है कि इनमेंसे अनेकमें एक विशिष्ट केन्द्र होता है जिसमें पांच कर्बन परमाणु और आठ उदजन परमाणु होते हैं। यह सभी उड़ायी तैल दो चारके व्यतिक्रमोंके अतिरिक्त या तो इसी एक केन्द्रके होते हैं या उनमें इनके द्विगुण अथवा त्रिगुण तक परमाणु होते हैं और एक दूसरेके भिन्न भिन्न गुण इन्हीं परमाणुओंके भिन्न भिन्न प्रबन्ध ही पर आधारित होते हैं। इतना घनिष्ट सम्बन्ध होनेके कारण वह सभी उड़ायी तैल एक ही समूहमें रक्खे गए हैं जिनका कि परमाणु इन्हीं केन्द्रोंसे बना है अथवा जिनका प्राथमिक सूत्र $क_५ उ_८$ है। सर्व प्रथम तैल जो ऐसे स्वरूपका प्राप्त किया गया था वह तारपीनका तैल था। इस तैलमें मिश्रित अनेक वस्तुओंको अब पृथक् कर लिया गया है और उनको विशुद्ध रूपमें प्राप्त करके उनके गुण भली भाँति मालूम किये जा चुके हैं। तारपीनके तैलसे ही इधर उधर शाखा रूप फैलनेके कारण इस समस्त समुदायका नाम त्रपिन (Terpene) पड़ा और प्रत्येक पृथक् पृथक् यौगिकको इसी शब्दमें कुछ न कुछ प्रत्यय लगा कर नाम दिया गया।

है। इन्हींमें अनेक यौगिक ऐसे हैं जिनमें उदजनके दो अणु एक ओषजनके अणुसे स्थापित कर दिए गए हैं। इस प्रकार उत्पन्न पदार्थ साधारणतः कीतोन होते हैं परन्तु कीतोनोंमें एक अत्यन्त ही पूर्ण परिचित पदार्थ कर्पूर है जिसकी प्राचीनता इतिहास-सिद्ध है। इसलिए त्रपिन सम्बन्धी कीतोन "कर्पूर" (Camphor) नामके समुदायमें रख दिए गए हैं और किसी त्रपिनसे उत्पन्न कीतोनका नाम रखनेके लिए उस त्रपिनका—'इन' के स्थानमें—'ओन' कर देते हैं। इसी प्रकार त्रपिनसे प्राप्त मद्योंमें—'इल मद्य' या—'योल' लगा देते हैं और उससे प्राप्त मधुओल सम्बन्धीजनको—'इल मधुओल' लगाकर पुकारते हैं। इसी प्रकार अन्य सम्बन्धीजन भी।

भौतिक गुणोंमें सभी त्रपिन एक दूसरेसे अत्यन्त ही मिलते जुलते हैं। रासायनिक गुणोंमें भी बहुत कुछ समानता होती है। त्रपिनोलिन् फेन्चिन, बोर्नलिन, कार्बेस्त्रिन एवम् थ्युशिनके अतिरिक्त सभी चीजें ईश्वरीय प्रकृतिमें पाईजाती हैं। कर्पुरिन एवम् बोर्नेलिन ही साधारण ताप पर ठोस होती है। अन्य सब ही द्रव रूपमें पाई जाती हैं। इन सबके क्वथनांक भी एकसे ही हैं और सभी १५५° से लेकर १८५°शके ही तापके अन्दर स्रवित की जा सकती हैं। इस ताप पर विभाजन नहीं होता है। इनकी आवर्जन संख्या तो ऊँची होती है, बहुधा १'४६ से लेकर १'४७ तक, लेकिन आपेक्षिक घनत्व बहुत ही कम अर्थात् ०'८४-०'८६ के ही निकट होता है। यह सभी चाक्रिक पदार्थ होते हैं जो गुणोंमें बानजाविन समुदायके उदकर्बनों एवम् असम्पृक्त उदकर्बनोंके मध्यमें स्थित मालूम पड़ते हैं। एक ओर तो वे लवणजनोंसे, लवणजन अम्लोंसे, नोषिल हरिद, नोष त्रिओषिद् एवम् चतुरोषिदसे युक्त-यौगिक बनाते हैं और दूसरी ओर वे पर-श्यामिन और कभी कभी मध्य श्यामिन (Cymene) में परिवर्तित हो जाते हैं। बहुधा सभी निष्वर्ण और सुन्दर सुगन्धसे युक्त पदार्थ होते हैं। ये उबालनेसे विभाजित नहीं होते हैं और जलवाष्पमें उड़ायी होते हैं। बहुतसोंमें तो भ्रामक शक्ति होती हैं। कुछमें निर्भ्रामक होनेके कारण ऐसी शक्ति नहीं होती है और कुछ में विषमपाती तत्व न होनेके कारण ऐसी शक्ति ही नहीं होती है।

त्रपिनके संविभाग एवम् नाम करणमें आजकल कुछ गड़बड़ीसी पड़ी हुई है परन्तु यह शीघ्र दूर हुई जाती है। कुछ लोगोंके मतानुसार तो कोई भी यौगिक जिसका रूप $क_५ उ_८$ से या इसके अन्य गुणक दर्शाया जा सके उसे त्रपिन कह सकते हैं और फिर इसको "वास्तविक त्रपिन' में जिनका सूत्र $क_{१०} उ_{१६}$ हो और "असम्पृक्त त्रपिन" में जिनका सूत्र $क_५ उ_८$ या $क_{१०} उ_{१६}$ हो पुनर्विभाजित कर सकते हैं जो कि खुली शृङ्खलाके यौगिक होते हैं और जिनमें एक या एकसे अधिक द्विबन्ध होते हैं। दूसरे लोगोंके मतानुसार $क_५ उ_८$ वाले यौगिकोंको अर्द्ध त्रपिन, $क_{१०} उ_{१६}$ वालों को त्रपिन और $क_{१५} उ_{२४}$ वालोंको स्यर्ध त्रपिन कहते हैं। उनमें अणु संगठन चाहे जैसा हो। $क_{२०} उ_{३२}$ या इसके आगेके गुणक वाले यौगिकों को बहु त्रपिन कहते हैं। सरलताके कारण इस मतानुसार त्रपिन फिरसे अन्य छोटे छोटे समूहों में विभाजित कर लिये गये—

१—असम्पृक्त त्रपिन—वह खुली शृङ्खलाके यौगिक होते हैं जिनमें कोई चक्र नहीं होता। उदजनोंकी कमी केवल कर्बन द्विबन्धोंसे पूरी होजाती है। इसमें ३ द्विबन्ध होते हैं और इस कारण वह लवणजन या लवणाम्लके तीन परिमाणोंसे युक्त-यौगिक बना सकते हैं। इन्हीं द्विबन्धोंके स्थान पर और पार्श्वश्रेणियों पर त्रपिनोंकी समरूपता आधारित रहती है।

२—एक चक्रिक यौगिक—ऐसे यौगिक जिनमें एक चक्र होता है। इसके लिए या तो यह त्रपिन पर—, या मध्य श्यामीनके द्विउदजन युक्त सम्बन्धी जन माने जा सकते हैं या सम्पृक्त पूदिनेनमें (menthane) दो द्विबन्ध पड़े हुए यौगिक माने जा सकते

हैं। बाद वाला विचार अधिक सरल मालूम होता है और इस लिए सब त्रपिन पूदिनद्विवीन (menthadiene) कही जाती हैं और द्विबन्धोंका स्थान स्पष्ट करनेके लिए दसों कर्बन अणुओं पर गिन्ती डाल कर सूत्रमें △ लगा कर इस पर गिन्ती लिख देनेसे द्विबन्धोंका स्थान समझा जाता है। द्विबन्ध सदा गिन्तीके बाद होता है। इससे यह स्पष्ट ही है कि चाहे मध्य पूदिनद्विवीन किया जावे चाहे पर-पूदिनद्विवीन दोनोंसे ही अनेक समरूप प्राप्त हो सकते हैं। पर-पूदिनद्विवीनसे उत्पन्न समरूप निम्नरूपसे नाम नाम रक्खे और दरशाए जाते हैं—

△ १.८ (९)　△ २.४

△ २.५　△ २.१ (७)

△ २.४ (८)　△ २.८ (९)

△ ३.१ (७)　△ ३.८ (९)

△ १.(७).४(८)　△ १ (७)८(९)
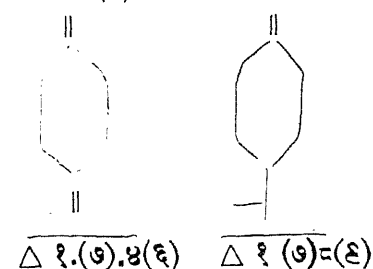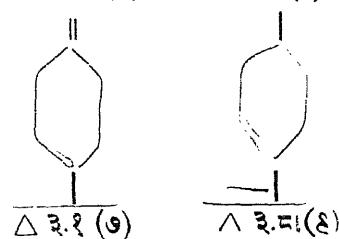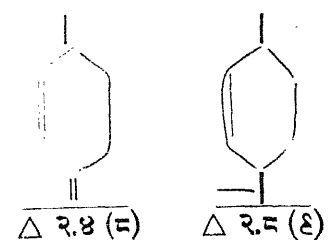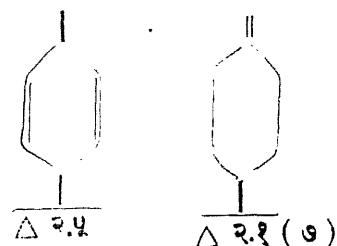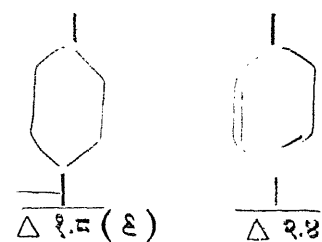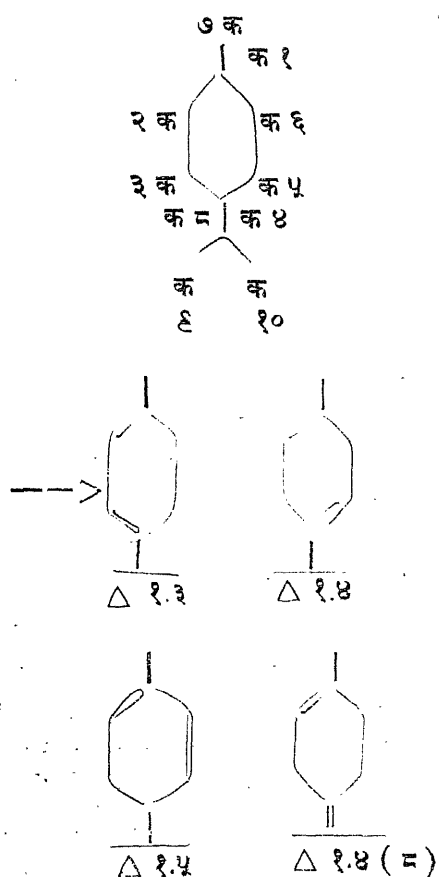
इस प्रकारसे एक ही रसायनिक संगठनकी पूदिनद्विवीनके कितने ही चित्र हो सकते हैं। नाममें द्विबन्धोंका स्थान दिखलानेके लिये △ चिह्न बना

कर उनके अंक लिख दिए हैं। यदि चक्रके अन्दर ही द्विबन्ध होता है तब तो एक ही गिन्तीसे काम चल जावेगा क्योंकि जो द्विबन्ध △ १.३ से दरशाए जावेंगे वह १ और २, और ३ और ४ नम्बर वाले कर्बन अणुओंके मध्यमें होंगे परन्तु जोद्विबन्ध केन्द्रके बाहर होगा उसका स्थान एक ही अंकसे नहीं दिखलाया जा सकता। इस कारण उसके दूसरे सिरे वाले कर्बनका भी अंक लिखना पड़ता है और उसे कोष्टके अंदर लिखते हैं। जैसे कि १·४ (८) वाले द्विबन्धोंका स्थान १ और २ अङ्क वाले कर्बन अणुओंके मध्यमें और ४ और ८ अङ्क वाले अणुओंके मध्यमें होगा। इस प्रकारसे उनमें कुछ मतभेद नहीं हो सकता।

मध्य पूदिनद्विवीनका रूप निम्न प्रकारसे होगा। उसके कर्बनोंके अङ्क एवम् उनसे प्राप्त समरूपोंके नाम भी चित्ररूपमें साधारण पूदिन-द्विवीनके समान अंकित किये जा सकते हैं।
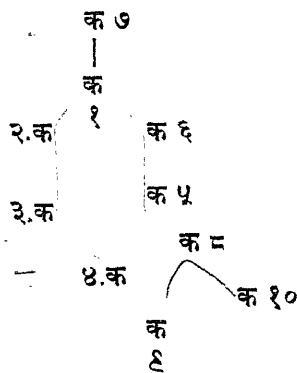
इसके समरूपोंके द्विबन्ध निम्न हो सकते हैं—

१-३	२-५ (८)
१-४	२-८ (८)
१-५(६)	३-७(७)
१-५(८)	३-८(९)
१-८(९)	१(७)-५(८)
२-४	१(७)-८(८)
२-५(६)	
२-१(७)	

इन द्विबन्ध सम रूपकोंके अतिरिक्त उपर्युक्त अनेक यौगिक प्रकाश समरूपता भी दरशाते हैं और उनमेंसे प्रत्येक ही के अनेक अनेक समरूपक होंगे। फिर उपर्युक्त प्रत्येक रूपका परावर्तित चित्रके रूपमें द्विबन्धोंको उलट देनेसे बदला जा सकता है। इस प्रकार
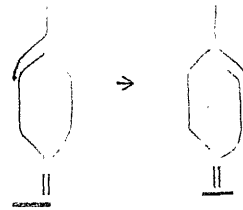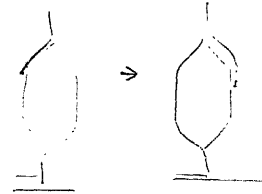
.... इसी भांति

सबही बदले जा सकते हैं। इस प्रकार त्रपिनोंकी समरूपक समस्याकी जटिलताका अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकारकी त्रपिनोंमें यह स्पष्ट ही है कि दो कर्बन द्विबन्ध होनेके कारण वह लवणजन अथवा लवणाम्लके दो परिमाणोंसे युक्त हो सकते हैं। निम्बुनीनसे उदजन अरुणिदसे द्विउदअरुणिद, और अरुन्से चतुर अरुणिद, प्राप्त होता है। इसी भाँति सभी यौगिकोंसे अनुसारिक यौगिक प्राप्त किये जा सकते हैं।

३—द्विचाक्रिक त्रपिन—इस समुदायके त्रपिनों में एक चक्रके स्थानमें दो चक्र होते हैं। एक तो साधारण बानजावीन चक्र होता ही है दूसरा इसी चक्रके अन्तर्गत ही एक और चक्र होता है। हर एक चक्रकी अधिकतामें दो जोड़नेके स्थान नए निकल आते हैं और इस कारण एक द्विबन्ध इसमें प्रयोग हो जाता है। इस प्रकार इस समुदायकी त्रपिनोंमें केवल एक ही द्विबन्ध मुक्त होता है और

लवणजन या लवणाम्लके केवल एक ही परमाणुसे युक्त यौगिक बनानेमें समर्थ हो सकते हैं।

चक्रके अन्तर्गत चक्र लगानेसे बानजावीन चक्र के केवल तीन ही रूप हो सकते हैं। इस प्रकार

और इन्हीं तीन रूपों पर इस समुदायकी त्रपिनोंका संगठन आधारित है। प्रत्येक त्रपिनमें एक न एक ऐसा चक्र गत चक्र रूप और एक द्विबंध होगा। द्विबन्ध पर उदजन युक्त करके अनुसारिक सम्पृक्त यौगिक भी प्राप्त कर लिए गए हैं। उनके नाम संस्कार इस प्रकार किया गया है—

संक्षेपके निमित्त आवश्यकता पड़ने पर यह चिह्न
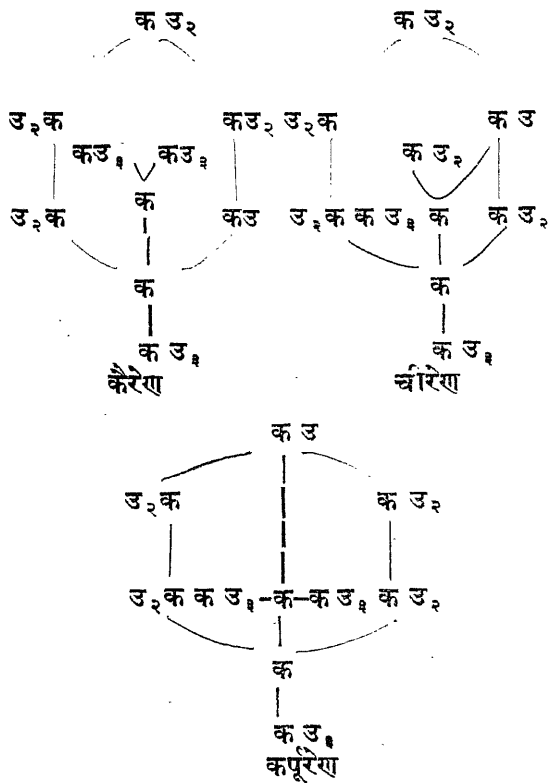
रूपमें इस प्रकार दर्शाये जा सकते हैं—

इनसे प्राप्त त्रपिनोंके नाम केवल कैरीण (कैरीन) चीरीण (चीरीन) अथवा कर्पूरीण (कर्पूरीन) होगा। इन सब ही में एक द्विबन्ध होगा और इसी बन्धके स्थान पर समरूपकता निर्धारित रहेगी परन्तु समरूपकताकी समस्या इनमें इतनी जटिल नहीं हो सकती जितनी कि एक चक्रिक त्रपिनोंमें है क्योंकि उसके मार्ग यहाँ इतने स्वच्छन्द रूपसे खुले नहीं हैं।

त्रपिनोंकी समस्या बहुत पुरानी नहीं है। अभी थोड़े ही समयसे वैज्ञानिकोंका चित्त इस ओर आकर्षित हुआ है। इसकी विशेष उन्नति तो केवल पिछले ३० वर्षों ही में हुई है परन्तु फिर भी इसने इतनी उन्नति प्राप्त करली है जितनी इतने अल्प समयमें इससे किसी प्रकार भी आशा न थी। इस सबका श्रेय श्रीमान् वालक साहबको है जो कि इस विषयमें मुख्य कार्य्यकर्त्ता रहे हैं। आपने अपनेको तन मन धनसे इस विषयके अर्पण कर दिया और साहित्यमें इधर उधर फैले हुए जटिलता एवम् अज्ञानकी शाखाप्रशाखाओंमें दबे पड़े हुए गुप्त रहस्योंको इस प्रकार सुलझाया है कि उससे आपकी कार्य्य कुशलता, अनुमानशक्ति एवम् उनके रसायनिक ज्ञानकी गम्भीरता सूर्य्य-प्रकाशकी भांति स्वच्छ चमक रही है। यह आपका ही चमत्कार था कि इस विषयमें भी समरूपकोंकी ढेरीमेंसे एक एकको निकालकर, शुद्ध कर और उसके पहिचान लेनेकी विधियां अब रसायनज्ञोंके हाथमें है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्येक सदस्यका सम्बन्ध अन्य सदस्योंसे निकाल लिया है और उनके रूप एवम् संगठनका कार्य्य निश्चित बिन्दुके बहुत ही निकट तक पहुंचा दिया

है। यह अवश्य ही है कि इसमें अभी अनेक जटिलताएं एवम् विवादास्पद बातें भी हैं, कुछ यौगिकोंका निश्चय रूपमें क्या, अनुमान रूपमें भी, संगठनका अभी ज्ञान नहीं है, और यह भी अवश्य है कि जिनका ज्ञान है वह श्रृङ्खला-बद्ध और अपरिवर्तनिक रूपमें निश्चित नहीं है परन्तु फिर भी जो उन्नति वालक साहब ने इस अल्प समयमें कर दिखाई है उससे यह पूरी आशाकी जाती है कि इससे भी अल्प समयमें यह विषय इतनी परिपूर्णता तक पहुँच जावेगा जहां तक कि और कोई नहीं पहुँचा है।

कपड़ोंके कीड़े

[ले० श्री मदन गोपाल मिश्र, एम० एस-सी०]

यद्यपि ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि एवं शक्ति दी है—उसे अपनी सृष्टिका राजा बनाया है, तथापि उसने उसके शत्रुओंकी रचना करनेमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं किया। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो मनुष्य चारो ओर से कठिनसे कठिन शत्रुओंसे घिरा हुआ है, जो अवसर पाकर अपना दाँव कभी नहीं चूकते। नाना प्रकारके अदृश्य जीवाणु मनुष्यके सहस्रों रोगोंके कारण बने हुए हैं। इनमें से प्लेग, विषूचिका, इनफ्लुएञ्जा आदि भीषण महामारियोंको ईश्वरके नवीन आविष्कार ही समझिए। केवल यही नहीं मनुष्यको प्रायः अपने प्रत्येक कार्य में किसी न किसी प्रकारके शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ उसकी फ़सलों पर विभिन्न पशु, पक्षी, टिड्डियाँ तथा कृमिकीट, उसकी पुस्तकों तथा अन्य सामान पर दीमक आदि कीड़े तथा उसके शरीर पर खटमल या मच्छड़ सदैव आक्रमण करनेके लिए उद्यत रहते हैं। उनके घरोंमें रक्खा हुआ अनाज भी चूहों व घुनोंके कारण सुरक्षित नहीं रह पाता, और न उसके वस्त्र ही कीड़ोंकी कृपा दृष्टिसे बचते हैं।

कपड़ोंका कीड़ा भी वास्तवमें एक बड़ा ही उत्पाती जीव है जिन लोगों ने अपने ऊनी कपड़े लापरवाहीके साथ बहुत दिनों तक बन्द कर रक्खे होंगे उन्हें इन कीड़ोंके घृणित कृत्यका पूर्ण अनुभव हुआ होगा।

हमारे देशमें पाया जानेवाला ऊनका कीड़ा जो हम लोगोंको बहुधा देखनेमें आता है एक छोटासा जीव होता है। यह लम्बाई में लगभग २ इञ्चका होता है और उसके शरीरके ऊपर भूरे रुएँ लगे होते हैं जिससे वह अपनेको ऊनमें भली भांति छिपा सकता है। उसके छः पैर होते हैं और शरीरके ऊपर काली काली बेड़ी धारियाँ बनी होती हैं। इन्हीं धारियोंके एक ओर किनारे पर रोओंकी पंक्ति जमी हुई होती है। एक छोटीसी रुएँदार पूँछ भी उसके लगी होती है। गर्मी और बरसातके दिनों में वह अधिक नुकसान करता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने ऊनके कीड़ोंके विषयमें बहुत कुछ खोजकी है। इङ्गलैण्डके महावैज्ञानिक स्वर्गीय सर रेलैङ्केस्टर (Sir. Ray Lankester) ने एक लेखमें अपने देशके ऊनके कीड़ेका बड़ाही मनोरंजक वर्णन किया है। यह कीड़ा भूरे पीले रंगका एक बहुतही छोटासा पंखदार जीव होता है। उसके फैले हुए दोनों पंखोंका विस्तार प्रायः आध इंच से अधिक नहीं होता। उसके मुखपर एक पतली सुईसी लगी होती है, परन्तु आश्चर्य यह है कि यह कीड़ा अपनी प्रौढ़ावस्थामें ज़राभी हानिकारक नहीं होता। न तो उसके जाबड़ेही होते हैं और न वह खानाही खाता है। यह कीड़ा अपने अंडोंको ऊन के कपड़े परही रखना पसन्द करते हैं। इन अंडोंसे निकले हुए बच्चेही कपड़ोंके लिए हानिकारी सिद्ध होते हैं। ये बच्चे पंख विहीन तथा मुलायम होते हैं और सरलतासे पीस दिए जा सकते हैं। उनके मुख पर बहुतही कठोर काली चिमटियाँ होती हैं जिनसे वे ऊनको काटते और खाते हैं। उनके विषय में यह बात अद्भुत है कि वह ऊनको काटकर अपनी रक्षाके लिए एक घर बना लेते हैं और इसी घरके

साथ वह इधर उधर रेंगते हैं। जैसे जैसे यह कीड़ा बढ़ता जाता है वैसेही वह अपने घरको भी बढ़ाता जाता है। कपड़े व उसके घरका रंग समान होनेके कारण वह अपनेको आसानीसे छिपा सकता है। अपने घरकी चौड़ाई बढ़ानेके लिए वह पहले उसे काट देता है और फिर उस कटी हुई जगहको ऊनके नए रेशोंसे भर देता है। इन कीड़ोंको घर सहित एक रंगके कपड़ेसे दूसरे रंगके कपड़ेमें रख देने से एक रंगबिरंगी व धारीदार ऊनकी नली तैयार हो जाती है।

यह कपड़ोंके कीड़े एकही प्रकारके नहीं होते। कुछ कीड़ोंके बच्चे अपने लिए घर नहीं बनाते और प्रायः मोटे कम्बलों और कपड़ोंको काटते हैं।

किसी भी गृहस्थको अपने वस्त्रोंको सुरक्षित रखनेके लिए इन कीड़ोंसे सदैव सचेत रहना पड़ता है। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि इन कीड़ोंको अंडे देनेके पहलेही नष्ट कर दिया जाय। जो वस्त्र खुली हवामें रखकर नित्य झाड़े और साफ किये जाते हैं अथवा जो रोज़ पहने जाते हैं उनमें इन कीड़ोंको अंडे देनेका अवसर ही नहीं प्राप्त होता, परन्तु जो कपड़े बकसोंमें रख छोड़े जाते हैं और बहुत दिनों तक निकाले नहीं जाते उन्हींमें यह कीड़े सुबोतेसे फूलते फलते हैं। परन्तु यदि इन कपड़ोंके बीचमें थोड़ीसी नफ्थैलीनकी गोलियाँ या कर्पूर रख दिया जाता है तो उनमें इन कीड़ोंके लगनेकी संभावना बहुत कम हो जाती है। इस लेखकने बहुतसे लोगोंको साँपकी केंचुल अथवा नीमकी पत्तियोंको भी इन कीड़ोंको दूर रखनेके लिए उपयोगमें लाते देखा है, परन्तु निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि यह वस्तुएँ इस कार्यमें कहाँ तक सफल होती हैं। भरतवर्षमें इन कीड़ोंसे बचनेका सबसे अच्छा एवं प्रचलित उपाय अपने कपड़ोंको कड़ी धूपमें फैलाना ही है। यदि गर्मी और बरसातके दिनोंमें केवल दो तीन बारही बकस और कपड़े धूपमें फैलाकर झाड़ डाले जायँ तो उनमें इन कीड़ोंके लगनेकी संभावना बिलकुल नहीं रहती। हाँ, इङ्गलैण्ड जैसे प्रदेशमें जहाँ सूर्यके दर्शन तक दुर्लभ रहते हैं यह उपाय प्रयोगमें नहीं लाया जा सकता। वहाँ इस भारतीय उपायके विपरीत वस्त्रोंको कड़ी ठंडक रखकर उनकी रक्षा करते हैं।

दशम अध्याय

वृत्त

[ले० "गणितज्ञ"]

९४–परिभाषा—वृत्त वह बिन्दु पथ है जो किसी बिन्दु द्वारा इस प्रकार खींचा गया है कि किसी निश्चित बिन्दुसे जो केन्द्र कहलाता है इसकी दूरी सदा एकही रहे। इस दूरीको वृत्तका व्यासार्ध कहते हैं।

९५–उस वृत्तका समीकरण निकालना जिसके केन्द्रसे युग्मांक परस्परमें लम्बरूप खींचे गये हों—

कल्पना करो कि वृत्तका केन्द्र म है और इसका व्यासार्ध क है। य म और र म युग्मांक हैं।
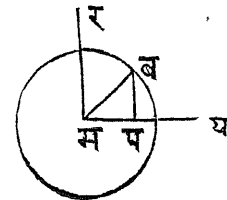
चित्र ३६

वृत्तकी परिधि पर कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक (य, र) हैं। ब प एक लम्ब म य पर खींचो और ब को म से संयुक्त कर दो।

अतः $बप^2 + मप^2 = मब^2$

$\therefore र^2 + य^2 = क^2$

ब बिन्दु कहीं पर क्यों न हो यह परिणाम इसी प्रकार रहेगा अतः वृत्तका समीकरण यह है:—

$य^2 + र^2 = क^2$

९६—किन्हीं आयताक्षोंकी अपेक्षासे वृत्तका समीकरण निकालना ।

कल्पना करो कि य म और म र आयताक्ष हैं और स एक वृत्तका केन्द्र है जिसका व्यासार्ध क है, कोई बिन्दु ब वृत्तकी परिधि पर लो। कल्पना करो कि इसके युग्मांक (य, र) हैं। ब को स से संयुक्त करदो तथा बथ एक लम्ब य-अक्ष पर खींचो। स से एक स द रेखा म य-अक्षके समानान्तर ब थ को द पर काटती हुई खींचो।
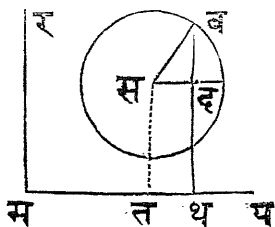
चित्र ३७

कल्पना करो कि केन्द्र स के युग्मांक (ट, ठ) हैं।

अतः स द = त थ = म थ − म त = य − ट

तथा ब द = ब थ − द थ

= ब थ − स त = र − ठ

∴ स द² + ब द² = ब स²

$$\therefore (य - ट)^2 + (र - ठ)^2 = क^2 \ldots\ldots(1)$$

यह वृत्तका ऐच्छित समीकरण है क्योंकि ब कहीं भी वृत्तकी परिधि पर क्यों न हो, यह परिणाम इसी रूपमें रहेगा।

उपसिद्धान्त १—यदि मूल बिन्दु म वृत्तकी परिधि पर हो तो

$$य त^2 + स त^2 = क^2$$

$$\therefore ट^2 + ठ^2 = क^2$$

∴ समीकरण (१) इस रूपमें परिवर्त्तित हो जाता है—

$$(य - ट^2) + (र - ठ^2) = ट^2 + ठ^2$$

अर्थात् $= य^2 + र^2 - २ य ट - २ र ठ = 0$

उपसिद्धान्त २—यदि मूलबिन्दु तो परिधि पर न हो पर केन्द्र य—अक्ष पर हो तो ठ = ०

∴ समीकरण यह होगाः—

$$(य - ट)^2 + र^2 = क^2$$

उपसिद्धान्त ३—यदि मूल बिन्दु परिधि पर हो और य—अक्ष वृत्त का व्यास हो तो ठ=०, और ट=क

∴ वृत्त का समीकरण यह होगा—

$$(य - क)^2 + र^2 = क^2$$

$$\therefore य^2 - २ य क + र^2 = 0$$

उपसिद्धान्त ४—यदि मूल बिन्दु केन्द्र पर हो तो गत सूक्त के समान वृत्त का समीकरण $य^2 + र^2 = क^2$ होगा।

९७—सिद्ध करना कि समीकरण

$$य^2 + र^2 + २ छय + २ चर + ग = 0 \cdots (1)$$

सदा एक वृत्तका सूचक होगा। इस वृत्तका केन्द्र और व्यासार्ध निकालना।

इस समीकरणको इस प्रकार भी लिख सकते हैं:—

$$(य^2 + २ छय + छ^2) + (र^2 + २ चर + च^2) = छ^2 + च^2 - ग$$

$$\therefore (य + छ)^2 + (र + च)^2 = [\sqrt{(छ^2 + च^2 - ग)}]^2$$

इस समीकरणकी गत सूक्त ९६ के समीकरण (१) से तुलना करने परः—

$ट = -छ, ठ = -च$ और $क = \sqrt{(छ^2 + च^2 - ग)}$

अतः यह समीकरण (१) उस वृत्तका सूचक है, जिसका केन्द्र (−छ, −च) है तथा व्यासार्ध $\sqrt{(छ^2 + च^2 - ग)}$ है।

यदि $छ^2 + च^2 > ग$, तो वृत्तका व्यासार्ध वास्तविक है, और यदि $छ^2 + च^2 = ग$, तो व्यासार्ध शून्यके बराबर होगा अर्थात् वृत्त एक बिन्दु (−छ, −च) हो जायगा। परन्तु यदि $छ^2 + च^2 < ग$ तो वृत्तका व्यासार्ध काल्पनिक होगा, यद्यपि केन्द्र अब भी वास्तविक है।

अभ्यास—$य^2+र^2+८ य+६ र=०$ समीकरण एक वृत्तका सूचक है।

क्योंकि $(य^2+८ य+१६)+(र^2+६ र+९)=२५$

$(य+४)^2+(र+३)^2=५^2$

अतः इसका केन्द्र $(-४, -३)$ होगा और व्यासार्ध ५ होगा।

९८—हमने यह देखा कि वृत्तका सामान्य समीकरण यह है :—

$$य^2+र^2+२ छ य+२ च र+ग=०$$

इस समीकरणमें तीन स्थिर मात्रायें छ, च और ग हैं अतः इनको ज्ञात करनेके लिये तीन समीकरणोंकी आवश्यकता होगी। अर्थात् किसी भी वृत्तको निश्चित करनेके लिये तीन बिन्दुओं की आवश्यकता होती है।

अभ्यास—उस वृत्तका समीकरण निकालो जो $(१, ०)$ $(२, १)$ और $(१, १)$ बिन्दुसे होकर जाता है।

वृत्तका सामान्य समीकरण यह है :—

$$य^2+र^2+२ छ य+२ च र+ग=०$$

इसमें तीनों बिन्दुओंके युग्मांक स्थापित करने पर निम्न तीन समीकरण मिलेंगे।

$$१+२ छ+ग=० \cdots (१)$$

$$४+१+४ छ+२ च+ग=० \ldots (२)$$

$$१+१+२ छ+२ च+ग=० \ldots (३)$$

अर्थात् $२ छ+ग=-१$

$$४ छ+२ च+ग=-५$$

$$२ छ+२ च+ग=-२$$

इन तीनों समीकरणोंका हल करनेसे—

$छ=-\frac{३}{२}$, $च=-\frac{३}{२}$ और $ग=४$

अतः वृत्तका समीकरण यह हुआ:—

$$य^2+र^2-३ य-३ र+४=०$$

९९—वृत्तका समीकरण निकालना जब अक्षोंके बीच का कोण $ल^\circ$ हो

सूत्र २० के समीकरण (१) अनुसार $(य, र)$ और $(घ, च)$ बिन्दुओंकी दूरीका वर्ग

$$=(य-घ)^2+(र-च)^2+२(य-घ)(र-च) \text{ कोज्या } ल$$

अतः उस वृत्तका समीकरण जिसके केन्द्रके युग्मांक $(घ, च)$ हों और व्यासार्धकी लम्बाई क हो, यह होगा :—

$$(य-घ)^2+(र-च)^2+२(य-घ)(र-च) \text{ कोज्या } ल=क^2 \ldots (१)$$

$$\therefore य^2+र^2+२ य र \text{ कोज्या } ल-२ य(घ+च \text{ कोज्या } ल)-२ र(च+घ \text{ कोज्या } ल)+घ^2+च^2+२ घ च \text{ कोज्या } ल-च^2=० \ldots (२)$$

अतः तिर्यकक्षोंकी अपेक्षासे किसी वृत्तका समीकरण इस रूपका है :—

$$य^2+र^2+२ य र \text{ कोज्या } ल+२ ज य+२ छ र+ग=० \ldots (३)$$

जिसमें ज, छ और ग किसी एक वृत्त के लिये तो स्थिर मात्रायें हैं पर भिन्न भिन्न वृत्तोंके लिये इनका मान भिन्न भिन्न होगा।

समीकरण (३) को किसी स्थिर मात्रा 'का' से गुणा करने पर समीकरणमें कोई भेद न पड़ेगा। अतः

$$का\ य^2+२ का \text{ कोज्याल}.\ य\ र+का\ र^2+२ जा\ य+२ छा\ र+गा=० \quad \cdots\cdots (४)$$

इसमें जा, छा, और गा दूसरी स्थिर मात्रायें हैं जो स्थिर मात्रा काज, काछ और का ग के स्थानमें रखी गई हैं।

अतः वृत्तका समीकरण तिर्यकक्षोंकी अपेक्षासे भी दो घातोंका है जिसमें य और र के गुणक समान हैं और य र तथा $य^2$ के गुणकोंमें २ कोज्याल की निष्पत्ति है।

१००—स्पर्श रेखा—रेखागणितमें वृत्तके किसी बिन्दु पर स्पर्श रेखाको उस व्यासार्धके लम्ब रूप बताया गया है जो केन्द्रको उस बिन्दुसे संयुक्त कर देने पर बना है। इसका ध्यान रखते

हुए स्पर्श रेखाका समीकरण निकाला जा सकता है।

कल्पना करो कि $य^2+र^2=क^2$ वृत्त पर कोई ब बिन्दु (या, रा) है।
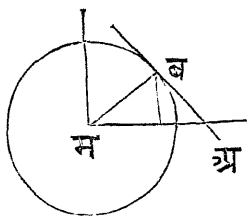
चित्र नं० ३८

सूक्त ५९ के अनुसार कोई रेखा जो इस बिन्दु से होकर जाती है निम्न समीकरण द्वारा सूचित की जा सकती है :—

र−रा=त (य−या) ..... (१)

तथा म ब लम्ब का समीकरण सूक्त ६० के अनुसार म और ब के युग्मांक (०, ०) और (या, रा) संयुक्त करने से

$$र=\frac{रा}{या}य \text{ है... ...(२)}$$

समीकरण (१) और (२) से सूचितकी गई रेखायें परस्परमें लम्ब रूप तब होंगी जब सूक्त ६७ के अनुसार

$$त\times\frac{रा}{या}=-१$$

$$\text{अर्थात्}\ त=-\frac{या}{रा}$$

अतः समीकरण (१) में त का यह मान स्थापित करनेसे स्पर्श रेखा ब अ का समीकरण निम्न निकलता है :—

$$र-रा=-\frac{या}{रा}(य-या)$$

अर्थात् $यया+ररा=य^2+र^2$

पर (या, रा) बिन्दु वृत्त पर है अतः $य^2+र^2=क^2$

अतः स्पर्श रेखाका समीकरण यह हुआ

$$यया+ररा=क^2$$

१०१—गत सूक्तमें दी गई स्पर्श रेखाकी परिभाषा कुछ अच्छी नहीं है। कई प्रकारके वक्रोंमें यह परिभाषा उपयुक्त भी नहीं हो सकती है। अतः दूसरी परिभाषा यहाँ दी जायगी जो सब प्रकारके वक्रोंके लिये समान होगी।
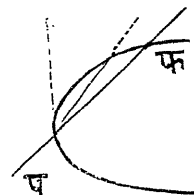
चित्र सं० ३९

कल्पना करो कि किसी वक्र पर प और फ दो बिन्दु दिये हुए हैं। प को फ से संयुक्त कर देनेसे एक छेदन रेखा प फ मिल जाती है। फ को प के ज्यों ज्यों निकट लाते जावेंगे, छेदन रेखाकी लम्बाई कम होती जावेगी और इसकी दिशा भी परिवर्तित हो जायगी। जब फ बिन्दु प के बिलकुल निकट आ जायगा और प पर पराच्छादित हो जायगा तो प फ वक्रकी स्पर्श रेखा कही जायगी।

१०२—किसी वृत्त $य^2+र^2=क^2$ के बिन्दु (या, रा) परकी स्पर्श रेखाका समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि ब बिन्दु के युग्मांक (या, रा) दिए हुए हैं। एक दूसरा बिन्दु भ जिसके युग्मांक (यि, रि) हैं इसी वृत्तकी परिधि पर लो।

ब और भ को संयुक्त करनेवाली रेखाका समीकरणसूक्त ६० के अनुसार यह होगा :—

$$र-रा=\frac{रि-रा}{यि-या}(य-या) \text{ ... (१)}$$

ये दोनों बिन्दु वृत्त $य^2+र^2=क^2$ पर हैं अतः

$या^2+रा^2=क^2$ .... (२)

$यि^2+रि^2=क^2$ ...... (३)

समीकरण (३) मेंसे समीकरण (२) को घटाने से :—

$$\text{यि}^2 - \text{या}^2 + \text{रि}^2 - \text{रा}^2 = \text{०}$$

$$\therefore (\text{यि} + \text{या})(\text{यि} - \text{या}) = -(\text{रि} + \text{रा})(\text{रि} - \text{रा})$$

$$\therefore \frac{\text{रि} - \text{रा}}{\text{यि} - \text{या}} = -\frac{\text{यि} + \text{या}}{\text{रि} + \text{रा}} \ldots\ldots\ldots (\text{४})$$

समीकरण (१) में समीकरण (४) को उपयुक्त करनेसे ब भ का समीकरण यह होगा :—

$$\text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{यि} + \text{या}}{\text{रा} + \text{रा}} (\text{य} - \text{या})$$

अब, यदि ब बिन्दु भ बिन्दुके बहुत ही निकट है तो या = यि और रा = रि

$$\therefore \text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{या} + \text{या}}{\text{रा} + \text{रा}} (\text{य} - \text{या})$$

$$\therefore \text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{या}}{\text{रा}} (\text{य} - \text{या})$$

$$\therefore \text{य या} + \text{र रा} = \text{या}^2 + \text{रा}^2 = \text{क}^2$$

∴ स्पर्श रेखाका समीकरण यह हुआ—

$$\text{य या} + \text{र रा} = \text{क}^2$$

यही समीकरण सूक्त १०० में भी उपलब्ध हुआ था—

१०३—वृत्त $\text{य}^2 + \text{र}^2 + \text{२ छ य} + \text{२ च र} + \text{ग} = \text{०}$ के बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्श रेखाका समीकरण निकालना :—

कल्पना करो कि ब बिन्दुके युग्मांक (या, रा) हैं। इसी परिधि पर एक दूसरा बिन्दु भ लो जिसके युग्मांक (यि, रि) हों। अतः ब भ रेखाका समीकरण यह हुआ :—

$$\text{र} - \text{रा} = \frac{\text{रि} - \text{या}}{\text{यि} - \text{या}} (\text{य} - \text{या}) \ldots\ldots\ldots (\text{१})$$

ब और भ दोनों बिन्दु वृत्त पर हैं अतः

$$\text{या}^2 + \text{रा}^2 + \text{२ छ या} + \text{२ च रा} + \text{ग} = \text{०} \ldots (\text{२})$$

$$\text{यि}^2 + \text{रि}^2 + \text{२ छ यि} + \text{२ च रि} + \text{ग} = \text{०} \ldots (\text{३})$$

समीकरण (३) मेंसे समीकरण (२) को घटाने से—

$$(\text{यि}^2 - \text{या}^2) + (\text{रि}^2 - \text{रा}^2) + \text{२ छ} (\text{यि} - \text{या}) + \text{२ च} (\text{रि} - \text{रा}) = \text{०}$$

$$\therefore (\text{यि} + \text{या})(\text{यि} - \text{या}) + (\text{रि} + \text{रा}) \times (\text{रि} - \text{रा}) + \text{२ छ} (\text{यि} - \text{या}) + \text{२ च} (\text{रि} - \text{रा}) = \text{०}$$

$$\therefore (\text{यि} + \text{या} + \text{२ छ})(\text{यि} - \text{या}) + (\text{रि} + \text{रा} + \text{२ च})(\text{रि} - \text{रा}) = \text{०}$$

$$\frac{\text{रि} - \text{रा}}{\text{यि} - \text{या}} = -\frac{\text{यि} + \text{या} + \text{२ छ}}{\text{रि} + \text{रा} + \text{२ च}} \ldots (\text{४})$$

अतः समीकरण (१) में समीकरण (४) का उपयोग करनेसे :—

$$\text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{यि} + \text{या} + \text{२ छ}}{\text{रि} + \text{रा} + \text{२ च}} (\text{य} + \text{या})$$

और यदि ब और भ बिन्दु बहुत ही निकट हों तो यि = या, और रि = रा

अतः स्पर्श रेखाका समीकरण यह होगा :—

$$\therefore \text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{या} + \text{या} + \text{२ छ}}{\text{रा} + \text{रा} + \text{२ च}} (\text{य} - \text{या})$$

$$\therefore \text{र} - \text{रा} = -\frac{\text{या} + \text{छ}}{\text{रा} + \text{च}} (\text{य} - \text{या})$$

$$\therefore \text{र} (\text{रा} + \text{च}) - \text{रा} (\text{रा} + \text{च}) = -\text{य} (\text{या} + \text{छ}) + \text{या} (\text{या} + \text{छ})$$

$$\therefore \text{र} (\text{रा} + \text{च}) + \text{य} (\text{या} + \text{छ}) = \text{रा} (\text{रा} + \text{च}) + \text{या} (\text{या} + \text{छ})$$

$$= \text{रा}^2 + \text{या}^2 + \text{च रा} + \text{छ या}$$

परन्तु (या, रा) बिन्दु वृत्त पर होनेके कारण

$$\text{या}^2 + \text{रा}^2 + \text{२ छ या} + \text{२ च रा} + \text{ग} = \text{०}$$

$$\therefore \text{य}^2 + \text{रा}^2 + \text{छ या} + \text{च रा} = -\text{छ या} - \text{च रा} - \text{ग}$$

अतः स्पर्श रेखाका समीकरण यह हुआ :—

$$\text{र} (\text{रा} + \text{च}) + \text{य} (\text{या} + \text{छ}) = -\text{छ या} - \text{च रा} - \text{ग}$$

$$\therefore \text{य या} + \text{र रा} + \text{छ} (\text{य} + \text{या}) + \text{च} (\text{र} + \text{रा}) + \text{ग} = \text{०}$$

१०४—सूक्त १०२, और १०३ के परिणामोंकी विवेचना करनेसे ज्ञात होगा कि स्पर्श रेखाका

समीकरण वृत्तके समीकरणके $य^2$ के स्थानमें यया, $र^2$ के स्थानमें रर1, २ य के स्थान में य+या और २ र के स्थानमें र+रा उपयुक्त कर देनेसे आ जाता है।

१०५—सरल रेखा र=तय+ग और वृत्त $य^2+र^2=क^2$ के अन्तरखण्ड बिन्दुओंको निकालनाः—

सरल रेखाका समीकरण र=तय+ग...(१) है और वृत्तका समीकरण

$$य^2+र^2=क^2 ...(२)$$ है।

जिन बिन्दुओं पर सरल रेखा वृत्तको काटेगी उनके युग्मांक रेखा और वृत्त दोनोंके समीकरणोंकी पूर्ति करेंगे। अर्थात् सरल रेखा पर स्थित बिन्दु $र^2=(तया+ग)^2$ की पूर्ति करेंगे और वृत्त परके बिन्दु समीकरण $र^2=क^2-य^2$ की पूर्ति करेंगे अतः वे बिन्दु जो दोनोंमें समान हैं उनके लिये

$$(तय+ग)^2=क^2-य^2$$

$$\therefore त^2 य^2+२ त ग य+ग^2=क^2-य^2$$

$$\therefore य^2 (त^2+१)+२ तग य+ग^2-क^2=० ...(३)$$

यह वर्गात्मक समीकरण है, अतः इसके दो मूल होंगे, चाहे ये वास्तविक हों, चाहे पराच्छादित या काल्पनिक।

समीकरण (३) से य के दो मान निकाले जा सकते हैं जिनका समीकरण (१) में उपयोग करनेसे र के भी दो मान उपलब्ध हो सकते हैं। अतः प्रत्येक रेखा प्रत्येक वृत्तकोदो बिन्दुओं पर काटेगी। ये बिन्दु कभी वास्तविक, कभी पराच्छादित और कभी काल्पनिक होंगे। यद्यपि काल्पनिक बिन्दुओंको खींचकर प्रकट नहीं दिखाया जासकता है पर इनका उपयोग कभी कभी अनिवार्य्य हो जाता है अतः इनके निकालनेमें भी लाभ है।

समीकरण (३) के मूल ये होंगे।

$$य=\frac{-गत\pm\sqrt{[ग^2त^2-(त^2+१)(ग^2-क^2)]}}{त^2+१}$$

ये दोनों मूल परस्परमें बराबर तब होंगे जब

$$ग^2 त^2=(त^2+१)(ग^2-क^2)$$

$$=ग^2 त^2-त^2 क^2+ग^2-क^2$$

$$\therefore ग^2=क^2 (त^2+१) ..... (४)$$

और यदि य के दोनों मान परस्परमें बराबर होंगे तो र के भी दोनों मान बराबर होंगे। अतः वे बिन्दु जिन पर रेखा वृत्तको काटती है पराच्छादित होंगे यदि $ग=क\sqrt{(त^2+१)}$

अतः $र=तय+क\sqrt{(त^2+१)}$ रेखा वृत्त $य^2+र^2=क^2$ की सदा स्पर्श रेखा होगी, चाहें त का मान कुछ भी क्यों न हो।

यदि $ग^2 त^2 \angle (त^2+१)(ग^2-क^2)$ तो अन्तरखंड बिन्दु काल्पनिक होंगे।

१०६—यदि र=तय+ग रेखाको $य^2+र^2=क^2$ वृत्त काटे तो कटे हुए चापकर्णकी लम्बाई निकालना—

$य^2+र^2=क^2$ वृत्तका केन्द्र म है और एक रेखा प फ जिसका समीकरण र=त य+ग है इस वृत्तको प और फ बिन्दुओं पर काटती है।

चित्र सं० ४०

अतः चापकर्ण प फ की लम्बाई निकालना है।

गत सूक्तके समीकरण (३) द्वारा—

$$य^2 (त^2+१)+२ त ग य+ग^2-क^2=०$$

यदि इस वर्गात्मक समीकरणके मूल $य_1$ और $य_2$ हों तो सूक्त २ के अनुसार

$$य_1+य_2=-\frac{२ ग त}{त^2+१}$$

$$और\ य_1 य_2=\frac{ग^2-क^2}{त^2+१}$$

$\therefore$ य$_1$ − य$_2$ = $\sqrt{\{(य_1+य_2)^2 - ४य_1 य_2\}}$

$$= \frac{२}{१+त^२}\sqrt{\{त^२ ग^२ - (ग^२ - क^२)(१+त^२)\}}$$

$$= \frac{२}{१+त^२}\sqrt{[क^२ (१+त^२) - ग^२]}$$

और यदि प और फ के कोटि $र_1$ और $र_2$ हों, तो, क्योंकि ये बिन्दु रेखा र=तय+ग पर हैं,

$$र_1 - र_2 = (त य_1 - ग) - (तय_2 - ग)$$
$$= त (य_1 - य_2)$$

तथा $प फ = \sqrt{(ब फ^२ + ब प^२)}$

$$= \sqrt{[(य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2]}$$
$$= \sqrt{(१+त^२)}(य_1 - य_2)$$
$$= २\sqrt{[\frac{क^२ (१+त^२) - ग^२}{१+त^२}]}$$

१०७ अवलम्ब—परिभाषा—वक्रके किसी बिन्दु ब से खींची गई वह रेखा जो ब बिन्दु पर की स्पर्श रेखाके लम्बरूप हो, अवलम्ब कहलाती है।
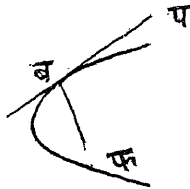
चित्र ४१

यदि कोई स्पर्श रेखा ब प वक्रके ब बिन्दु पर खींची गई है और यदि ब फ रेखा ब प पर लम्ब रूप हो तो ब फ को ब बिन्दु पर अवलम्ब कहेंगे।

१०८—वृत्त $य^२ + र^२ = क^२$ के बिन्दु (य, र) परके अवलम्बका समीकरण निकालना :—

सूक्त १०२ के अनुसार इस वृत्तके (या, रा) बिन्दु परकी स्पर्श रेखाका समीकरण यया + ररा = $क^२$ होगा।

$$\therefore ररा = क^२ - यया$$

$$र = -\frac{या}{रा} य + \frac{क^२}{रा} \quad ....(१)$$

सूक्त ५९ के अनुसार कोई रेखा (या, रा) से होकर जानेवाली यह है:—

$$र - रा = त (य - या) .....(२)$$

यदि रेखा (२) रेखा (१) पर लम्ब हो तो सूक्त ६७ के अनुसार—

$$त \times \left(-\frac{या}{रा}\right) = -१$$

$$\therefore त = \frac{रा}{या}$$

अतः समीकरण (२) में त का यह मान स्थापित करने से अवलम्ब का समीकरण यह होगा:—

$$र - रा = \frac{रा}{या}(य - या)$$

$$\therefore यार - यरा = ०$$

इसी समीकरण से स्पष्ट है कि बिन्दु (०,०) भी इसी अवलम्ब पर विद्यमान है अतः वृत्तका प्रत्येक अवलम्ब केन्द्रसे होकर जाता है।

१०९—वृत्त $य^२ + र^२ + २ छ य + २ च र + ग = ०$ के बिन्दु (या, रा) पर के अवलम्बका समीकरण निकालना—

सूक्त १०३ के अनुसार इस वृत्त परकी स्पर्श-रेखा का समीकरण यह है।

$$य या + र रा + छ (य+या) + च (र+रा) + ग = ०$$

$$\therefore र (रा+च) = -(या+छ) य - (छ या + चरा + ग)$$

$$\therefore र = -\frac{या+छ}{रा+च} य - \frac{छया+चरा+ग}{रा+च} \quad ..(१)$$

तथा (या, रा) से होकर जाने वाली किसी रेखाका समीकरण सूक्त ५६ के अनुसार यह है:—

$$र - रा = त (य - या)......(१)$$

रेखायें (१) और (२) लम्ब रूप तब होंगी जब—

$$त \times \left(- \frac{या+छ}{रा+च} \right) = -१$$

$$त = \frac{रा+च}{या+छ}$$

∴ अवलम्बका एच्छित समीकरण यह हुआः—

$$र - रा = \frac{रा+च}{या+छ} (य - या)$$

$$र(या+छ) - य(रा+च) + चया - छरा = ०$$

११०—वृत्तके समानान्तर चाप कर्णोंके मध्य बिन्दुओं का बिन्दु पथ निकालनाः—

वृत्तके केन्द्रको अक्षोंका मूल बिन्दु मानो। तथा य-अक्ष को समानान्तर-चाप कर्ण-समूहके समानान्तर लो।

अतः वृत्तका समीकरण यह हुआ।

$$य^२ + र^२ = क^२ \quad \ldots\ldots (१)$$

मानलो कि किसी समानान्तर चापकर्णका समीकरण यह है :—

$$र - ग = ० \quad \ldots\ldots\ldots (२)$$

यदि (१) और (२) परस्परमें कटती हैं तो

$$य^२ + ग^२ = क^२$$

$$य = \pm \sqrt{(क^२ - ग^२)}$$

अतः य के दो मान हैं जो बराबर है पर धनर्ण संकेतमें विरुद्ध हैं। इससे स्पष्ट है कि चापकर्णके मध्यबिन्दुका भुज शून्य है। अतः चापकर्णका मध्यबिन्दु र-अक्ष पर है। यह नियम ग के प्रत्येक मानके लिये सत्य है। यदि $ग > क$ तो य के दोनों मान काल्पनिक अवश्य होंगे पर उन दोनों मानोंका योग शून्य ही होगा। अतः प्रत्येक अवस्थामें मध्यबिन्दु र-अक्ष पर ही होगा।

अतः किसी वृत्तके समानान्तर चापकर्णोंके मध्यविन्दुओंका बिन्दुपथ वह सरल रेखा है जो वृत्तके केन्द्रसे होकर जाती है, और चापकर्ण पर लम्ब होती है।

१११—सिद्ध करना कि किसी बिन्दुसे किसी वृत्त पर दो वास्तविक, काल्पनिक या पराच्छादित स्पर्श रेखायें खींची जा सकती हैं।

कल्पना करो कि वृत्तका समीकरण $य^२ + र^२ = क^२$ है और मानलो कि दिया हुआ बिन्दु ($य_१ - र_१$) है।

अतः सूक्त १०५ के अनुसार किसी स्पर्श रेखाका समीकरण यह है :—

$$र = त\, य + क\sqrt{१ + त^२}$$

अगर यह रेखा ($य_१, र_१$) बिन्दुसे भी होकर जावे तो :—

$$र_१ = त\, य_१ + क\sqrt{(१ + त^२)} \ldots\ldots (१)$$

$$\therefore र_१ - त\, य_१ = क\sqrt{१ + त^२}$$

$$\therefore र_१^२ - २\, त\, र_१\, य_१ + त^२ य_१^२ = क^२(१ + त^२)$$

$$\therefore त^२ (य_१^२ - क^२) - २\, त\, र_१\, य_१ + र_१^२ - क^२ = ० \quad \ldots (२)$$

यह समीकरण (२) वर्गात्मक है अतः इससे त के दो मान निकलेंगे चाहें वे वास्तविक हों चाहें पराच्छादित अथवा चाहें काल्पनिक हों। इन मूलोंका वास्तविक, पराच्छादित, अथवा काल्पनिक होना इस बात पर निर्भर है कि

$$(२ र_१ य_१)^२ - ४ (र_१^२ - क^२)(य_१^२ - क^२)$$

धनात्मक है, या शून्य है या ऋणात्मक।

अर्थात्

$क^२ (-क^२ + य_१^२ + र_१^२)$ धनात्मक, शून्य अथवा ऋणात्मक है

अर्थात् यह

$$य_१^२ + र_१^२ \gtreqless क^२$$

होने पर निर्भर है।

अगर $य_१^२ + र_१^२$ का मान $क^२$ से बड़ा है तो बिन्दु ($य_१, र_१$) की दूरी वृत्तके केन्द्रसे व्यासार्धकी लम्बाईसे अधिक है अर्थात् बिन्दु वृत्तके

बाहर स्थित है। ऐसी अवस्थामें दोनों स्पर्श रेखायें वास्तविक होंगी।

यदि $य_{१}^{२}+र_{१}^{२}$ का मान $क^{२}$ के बराबर है तो बिन्दु ($य_{१}, र_{१}$) की दूरी वृत्तके केन्द्रसे व्यासार्ध की लम्बाईके बराबर होगी, अर्थात् बिन्दु वृत्तकी परिधि पर होगा। ऐसी अवस्थामें दोनों स्पर्श रेखायें पराच्छादित होंगी।

यदि $य_{१}^{२}+र_{१}^{२}$ का मान $क^{२}$ से छोटा हो तो बिन्दु ($य_{१}, र_{१}$) की दूरी वृत्तके केन्द्रसे व्यासार्ध की लम्बाईसे छोटी होगी। ऐसी अवस्थामें बिन्दु वृत्तके अन्दर स्थित होगा और दोनों स्पर्श रेखायें काल्पनिक होंगी। ये स्पर्श रेखायें खींचकर दिखाई नहीं जा सकती हैं।

११२—किसी बिन्दुसे एक वृत्त पर स्पर्श रेखायें खींची गई हैं। स्पर्श रेखायों और वृत्तके मिलन-बिन्दुओंको संयुक्त करनेवाली रेखाका समीकरण निकालो।

कल्पना करो कि जिस बिन्दुसे दोनों स्पर्श-रेखायें खींची गई हैं उसके युग्मांक ($य_{१}, र_{१}$) हैं मानलो कि वृत्तका समीकरण $य^{२}+र^{२}=क^{२}$ है। अतः सूक्त १०२ के अनुसार स्पर्श रेखायोंके समीकरण (या, रा) और (यि, रि) बिन्दुओं पर क्रमशः निम्न होंगेः—

$$यया+ररा=क^{२} \quad ...(१)$$

$$ययि+ररि=क^{२} \quad ...(२)$$

ये दोनों स्पर्श रेखायें ($य_{१}, र_{१}$) बिन्दुसे भी होकर जाती हैं अतः—

$$य_{१}\,या+र_{१}\,रा=क^{२} ...(३)$$

$$य_{१}\,यि+र_{१}\,रि=क^{२} ...(४)$$

अतः मिलन बिन्दुओंको संयुक्त करनेवाली रेखाका समीकरण यह होगा—

$$यय_{१}+रर_{१}=क^{२} \cdots(५)$$

क्योंकि समीकरण (३) के कारण (या, रा) बिन्दु और समीकरण (४) के कारण (यि, रि) बिन्दु दोनों ही इस पर स्थित हैं।

इसी प्रकार यदि वृत्तका समीकरण

$$य^{२}+र^{२}+२\,छ\,य+२\,च\,र+ग=०$$

माना जाय तो ($य_{१}, र_{१}$) बिन्दुसे खींची गई स्पर्श रेखायोंके मिलनबिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखा का समीकरण यह होगाः—

$$यय_{१}+रर_{१}+छ\,(य+य_{१})+च\,(र+र_{१})+ग=०$$

यदि ($य_{१}, र_{१}$) बिन्दु वृत्तके बाहर है तो दो वास्तविक स्पर्श रेखायें खींची जा सकती हैं अतः (या, रा) और (यि, रि) बिन्दुओंके युग्मांक भी वास्तविक होंगे। यदि ($य_{१}, र_{१}$) बिन्दु वृत्तके अन्दर हैं तो दोनों स्पर्श रेखायें काल्पनिक होनेसे (या, रा), और (यि, रि), के युग्मांक भी काल्पनिक होंगे। पर समीकरण (५) द्वारा सूचित रेखा अब भी वास्तविक ही होगी क्योंकि ($य_{१}, र_{१}$) के मान वृत्तके अन्दर होने पर भी वास्तविक होंगे। अतः दो काल्पनिक स्पर्श-रेखायों के दो काल्पनिक मिलन बिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखा वास्तविक ही है।

[टिप्पणी—सूक्त १०२ और सूक्त १०३ के उपलब्ध समीकरणोंको इस सूक्तके समीकरणोंसे मिलानेमें इतनी समानता मिलेगी कि पाठकोंको भ्रम हो सकता है। पर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सूक्त १०२ और १०३ में (या, रा) उस बिन्दुके युग्मांक थे जो वृत्त की परिधि पर सदा विद्यमान रहता है। पर इस सूक्तमें ($य_{१}, र_{१}$) उस बिन्दुके युग्मांक हैं जो वृत्तके बाहर है।]

सूर्य-सिद्धान्त

शृङ्गोन्नत्यधिकार

(विज्ञान भाग २८ संख्या ५ पृ० २४० से आगे)

[ले०—श्रीमहावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी., एल० टी०, विशारद]

दत्वार्क संज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम् ।
ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यगम् ॥१०॥
कोटि कर्ण युताद्बिन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत् ।
कर्णसूत्रेण दिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत् ॥११॥
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्ब योगादन्तर्मुखं नयेत् ।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥१२॥
तन्मध्य सूत्र संयोगाद् बिन्दुत्रिस्पृग् लिखेद्धनुः ।
प्राग्बिम्बं यादृगेव स्यात्तादृक तत्र दिने शशी ॥१३॥
कोट्यादिक्साधनात्तिर्यक् सूत्रान्ते शृङ्गमुन्नतम् ।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्यसा कृतिः ॥१४॥
कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथासितम् ।
दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमं मण्डलं विधोः ॥१५॥

अनुवाद—(१०) समतल भूमिमें सूर्यको सूचित करनेवाला विन्दु लिखकर इससे भुजकी दिशामें भुजके समान रेखा खींचकर इसके अग्र विन्दुसे पच्छिमकी ओर १२ अंगुल की कोटि रेखा खींचे और इस कोटि रेखाके अग्रविन्दु को सूर्य सूचित करनेवाले विन्दुसे मिलाकर कर्ण खींचे। (११) कोटि और कर्ण रेखाके संपात विन्दुको केन्द्र मान कर तात्कालिक चंद्रबिम्बके समान एक वृत्त बनावे। इसकी परिधि पर कर्ण रेखाके आधार पर दिशाओंके चिह्न बनावे। (१२) कर्ण रेखा और चन्द्रबिम्ब के सम्पात विन्दुसे केन्द्र की ओर कर्ण रेखापर चन्द्रमाके शुक्ल भाग का चिह्न बनावे। इस चिह्न और चन्द्रबिम्ब के उत्तर, दक्षिण विन्दुओं से दो मत्स्य बनावे। (१३) इन मत्स्योंके मध्यसे जाने वाली रेखाओं-के सम्पात विन्दुको केन्द्र मानकर एक धनु खींचे जो तीनों विन्दुओंको अर्थात् शुक्लाग्र विन्दु और उत्तर, दक्षिण विन्दुओं-को स्पर्श करे। इस धनु और चन्द्रबिम्बके पूर्व भागके बीच-में जैसा चित्र होता है वैसा ही चन्द्रमा उस दिन देख पड़ता है। (१४) अब कोटिके आधारसे चन्द्रबिम्बकी परिधि पर दिशाओंके चिह्न बनावे। कोटि रेखासे समकोण बनानेवाली और चन्द्रबिम्बके केन्द्रसे जानेवाली रेखाके ऊपर शुक्ल भाग-का जो शृङ्ग रहेगा वही उन्नत देख पड़ेगा और आकाशमें चन्द्रमाकी आकृति वैसी ही देख पड़ेगी। (१५) कृष्णपक्षमें सूर्यकी राशिमें ६ राशि जोड़नेसे जो आवे उसे चन्द्रमाके भोगांशसे घटाकर चन्द्रबिम्बके असित अर्थात् अप्रकाशित भागका साधन उसी प्रकार करना चाहिए। यहां भुजकी दिशा उलटी होती है और चन्द्रबिम्बके पच्छिम भागमें काले भागकी वृद्धि होती है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि चन्द्रमाके शुक्ल भागका परिलेख किस प्रकार बनाया जाता है। मान लो काग़ज़का पृष्ठ समतल भूमि या पट्टी है जिस पर परिलेख बनाना है और र विन्दु रविका स्थान है (देखो चित्र ११७)। यदि ६-८ श्लोकोंके अनुसार जाने हुए भुज-का मान र भ के समान हो और इसकी दिशा दक्षिण हो तो र विन्दुसे दक्षिणकी ओर और उत्तर हो तो उत्तरकी ओर र भ

के समान एक रेखा खींचो जिसका भ सिरा भुज-अग्र कहा जा सकता है। इस भुज अग्रसे पच्छिमकी ओर कोटिके समान
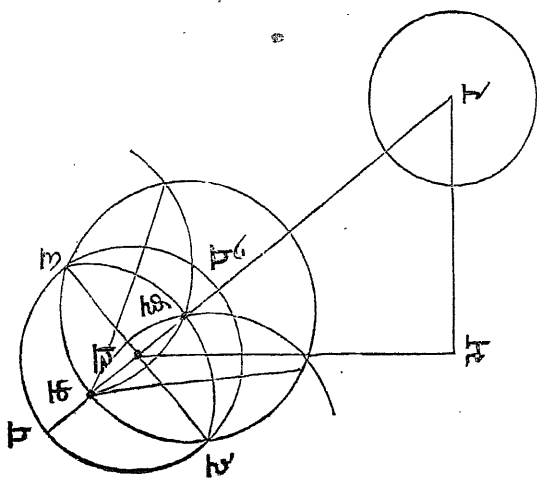
चित्र ११७

अर्थात् १२ अंगुल के समान एक रेखा च तक खींचो। इस च विन्दुको कोटि-अग्र कहते हैं और इसीको तात्कालिक चन्द्र-बिम्ब केन्द्र समझना चाहिए। र च रेखाको कर्ण कहते हैं जिसकी चर्चा ८वें श्लोकमें की गयी है। च को केन्द्र मानकर तात्कालिक चन्द्रबिम्बके व्यासार्ध च पू पर एक वृत्त खींचो जो परिलेखमें चन्द्रबिम्ब सूचित करता है। कर्ण रेखाको इतना बढ़ाओ कि वह चन्द्रबिम्बके दूसरी ओर प तक पहुंच जाय। च विन्दुसे जाती हुई एक लम्बो रेखा प पू पर खींचो जो चन्द्रबिम्बके उ, द विन्दुओं पर पहुँचे। इन उ, पू, द, प विन्दुओंको चन्द्रबिम्बकी क्रमानुसार उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पच्छिम दिशाएं समझो। ९वें श्लोकके अनुसार आये हुए चन्द्रमाके शुक्ल भागका जो परिमाण हो पू से उतनी ही दूरी पर च की ओर एक विन्दु छ रखो। उ छ द विन्दुओंसे होता हुआ जो धनु खींचा जायगा वही चन्द्रमाके शुक्ल भाग-का भीतरी किनारा है और उस दिन चन्द्रमाके शुक्ल भागकी वही आकृति होगी जो उ छ द और उ पू द धनुओंके बीचमें है। उ छ द धनु खींचनेके लिए यह रीति बतलायी गयी है कि उ को केन्द्र मानकर छ पर धनु खींचो और छ को केन्द्र मानकर उ पर धनु खींचो; इन दोनों धनुओंके योग विन्दुओं-को मिलानेवाली रेखा खींचो। इसी प्रकार द और छ विन्दुओं पर भी धनु खींच कर उनके योग विन्दुओंको मिलाने वाली रेखा खींचो। यह दोनों रेखाएं जहां चन्द्रबिम्बके भीतर काटें उसको केन्द्र मानकर छ बिन्दु पर जो धनु खींचा जायगा वह उ छ द विन्दुओंको स्पर्श करेगा और वही चन्द्रमाके शुक्ल भागका भीतरी किनारा होगा।

उ, छ, द, बिन्दुओंपर जानेवाले वृत्तका केन्द्र जाननेकी रीति रेखा गणितकी रीतिसे मिलती जुलती है। क्योंकि धनुओंके योग बिन्दुओंको मिलानेवाली रेखाएं उ छ और द छ रेखाओं-की समविभाजक लम्ब रेखाएं हैं जिनका सम्पात् बिन्दु उ छ द वृत्तका केन्द्र है। चित्रमें क विन्दु इसी रीतिसे स्थिर किया गया है। अब क को केन्द्र मानकर क छ त्रिज्या से उ छ द धनु

खींचा गया और उ छ द प क्षेत्रकी आकृति जानी गयी जो चन्द्रमाके शुक्ल भागकी आकृति है जिसमें उ द चन्द्रमाके शृङ्ग हैं।

यह जाननेके लिए कि कौन शृङ्ग उन्नत अर्थात् उठा हुआ है चन्द्र बिम्बकी दिशाओंमें दूसरी कल्पना करनेको ४१वें श्लोकमें कहा गया है। परन्तु मेरी समझमें इसकी आवश्यकता नहीं है। कोटि-अग्र च से भुज भ र के समानान्तर एक रेखा खींचो। जो शृङ्ग इस रेखाके ऊपर होता है वही उन्नत कहा जाता है। दिये हुए चित्रमें उत्तर शृङ्ग उन्नत है।

चित्रसे स्पष्ट है कि यदि भुजकी दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रमाका उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और भुजकी दिशा उत्तर हो तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत होगा। परन्तु यदि भुज शून्य हो अर्थात् न उत्तर हो, न दक्षिण तो चन्द्रमाका कोई शृङ्ग उन्नत न होगा वरन् सम होगा।

यह बतलाया जा चुका है कि शुक्ल भागकी वृद्धि जानने की जो रीति दी गयी है वह स्थूल है और उ छ द धनु भी वृत्तकी परिधिका अंश नहीं है वरन् दीर्घवृत्तकी परिधिका अंश है। इसलिए परिलेखकी यह रीति स्थूल है परन्तु काम चलानेके लिए पर्याप्त है।

कृष्ण पक्षके लिए नियममें जो संशोधन किया गया है उससे चन्द्रमाके असित भागका ज्ञान होता है। परन्तु मेरी समझमें यदि सूर्योदय कालिक सूर्यकी राशिसे चन्द्रमा की राशि घटाकर शुक्ल भागकी गणनाकी जाय और परिलेख बनाया जाय तो अधिक अच्छा है।

अब संक्षेपमें यह बतला देना उचित होगा कि शुद्ध गणितकी रीतिसे शृङ्गोन्नतिकी गणना कैसेकी जाती है :—

शृङ्गोन्नतिकी गणनाकी नवीन रीति—

सूर्य और चन्द्र बिम्बोंके केन्द्रोंसे जाने वाले महावृत्तसे चन्द्रशृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा समकोण बनाती है। ख-मध्य और चन्द्र बिम्बके केन्द्रसे जानेवाला महावृत्त अर्थात् दृढ़मण्डल पहले महावृत्तसे जो कोण बनाता है वही शृङ्गोन्नति के कोणके समान होता है इस लिए शृङ्गोन्नति जाननेके लिए इसी कोणके जाननेकी आवश्यकता होती है जो गोलीय त्रिकोणमितिके एक सूत्रके अनुसार जिसकी चर्चा त्रिप्रश्नाधिकारमें कई स्थानोंपर की गयी है सहज ही मालूम हो सकता है। यदि सूर्य और चन्द्रमाके विषुवांश और क्रांति मालूम हो तो विषुवांशसे विषुवकाल और नतकाल जाने जा सकते हैं और नतकाल, क्रान्ति तथा

चित्र ११८

अक्षांशसे पृष्ठ ४२६ के सूत्र (१) से नतांश और इससे पृष्ठ ४०४ में दिये हुए सूत्रसे दिगंश जाने जा सकते हैं। नीचेके चित्र ११८ से विदित होगा कि इनके आधार पर शृङ्गोन्नति कैसे जानी-जा सकती है :—

उ ख द = यामोत्तर वृत्त

ख = ख मध्य

ज = देखने वाले का स्थान

उ ज द = उत्तर-दक्षिण रेखा

उ प द = पश्चिम क्षितिज

च = पश्चिम गोल में चन्द्रमा का स्थान

र = अस्त हुए सूर्य का स्थान

ख च = चन्द्रमा का नतांश

ख र = सूर्य का नतांश

च र = सूर्य और चन्द्रमा के बीच का अन्तर

∠र ख च = सूर्य और चन्द्रमा के दिगंशोंका अन्तर

गोलीय त्रिकोण मितिके सूत्रके अनुसार,

कोज्या च र = कोज्या ख र × कोज्या ख च + ज्या ख र × ज्या ख च × कोज्या ∠र ख च

इस सूत्रसे जब च र आ जाय तब,

$$\text{कोज्या } \angle \text{ख च र} = \frac{\text{कोज्या ख र} - \text{कोज्या ख च} \times \text{कोज्या च र}}{\text{ज्या ख च} \times \text{ज्या च र}}$$

कोण ख च र को १८० अंशसे घटानेपर जो कोण आवेगा वही शृङ्गोन्नतिका कोण होगा क्योंकि यह < छ चर के समान है। यदि चन्द्रमासे सूर्य उत्तर होगा तो उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और दक्षिण होगा तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत रहेगा। यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके दिगंश एक होंगे तो शृङ्ग सम होगा। इतना जान लेनेपर चन्द्रमाके शृङ्गोन्नतिका परिलेख इस प्रकार खींचना चाहिए जैसा चित्र ११६ से प्रकट होता है।

चित्र ११६

च = चन्द्र बिम्ब का केन्द्र

उ च = चन्द्र केन्द्रका ऊर्ध्व वृत्त (दृङ्मण्डल)

र च = सूर्य की दिशा

क ख ग घ = चन्द्रमाका शुक्ल भाग

∠उ च र = शृङ्गोन्नति का कोण

= ∠क च प
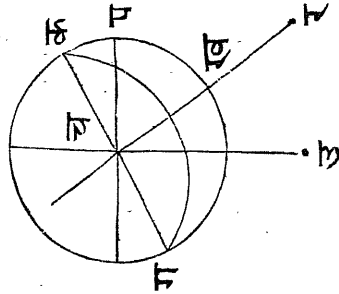
यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमाको स्पष्ट करनेसे शृङ्गोन्नतिकी गणना ठीक नहीं हो सकती क्योंकि सूर्य सिद्धान्तके ध्रुवाङ्कोंमें कुछ स्थूलता आ गयी है। इसलिए उचित है कि ग्रहोंके ध्रुवाङ्क शुद्ध वेध द्वारा फिर से स्थिर किये जायं।

इस प्रकार शृङ्गोन्नत्यधिकार नामक दसवें अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

पाताधिकार नामक ग्यारहवां अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक १-२ वैधृति और व्यतीपात पातोंकी परिभाषा। श्लोक ३-५ दोनों पातोंका स्वरूप और प्रभाव। श्लोक ६-सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करे। श्लोक ७-८ यह जानना कि पात काल बीत चुका है अथवा होने वाला है। श्लोक ९-११-सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां कब सामान होती हैं। श्लोक १२-१३ स्पष्ट क्रान्तिसे शुद्ध पातकाल जानना। श्लोक १४-१५-पातकाल का आरम्भ, मध्य और अंत कब होता है। श्लोक १६-१८ पातकाल में क्या करना चाहिये। श्लोक १९-पात दो बार कब होते हैं, और अभाव कब होता है। श्लोक २०-पंचांग संबंधी व्यतीपात योग जानना। श्लोक २१ भसंधि और गंडांत काल की परिभाषा। श्लोक २२-पात और गंडांतकाल किस लिए निषिद्ध हैं। श्लोक २३-उपसंहार।

इस अधिकारमें गणित ज्योतिष के साथ साथ फलित ज्योतिष का समावेश है। यही इसकी विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसके बाद जो तीन अध्याय आवेंगे उनका नाम 'अधिकार' नहीं है वरन् 'अध्याय' है। इस अधिकार में जिन पातों की चर्चा है उनको महापात भी कहते हैं।

वैधृति और व्यतीपात की परिभाषा—

एकायन गतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥१॥
विपरीतायन गतौ चन्द्रार्कौ क्रान्ति लिप्तिकाः।
समास्तद्वा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतिः ॥२॥

अनुवाद-(१) जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में होते हैं और जब इनके भोगांशोंका योग १२ राशिके समान होता है तब दोनोंकी क्रान्तियां समान होनेसे वैधृति नामक पात होता है। (२) जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनोंमें होते हैं और जब इनके भोगांशोंका योग ६ राशि के समान होता है तब इनकी क्रान्तियां समान होनेसे व्यतीपात नामक पात होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियां समान होती हैं तभी वैधृति और व्यतीपात नामक पात होते हैं अर्थात् जब विषुद्वृत्त से सूर्य और चन्द्रमाकी दूरियां समान होती हैं तभी वैधृत और व्यतीपात होते हैं। परंतु सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां समान होते हुए भी दोनों उत्तर हो सकती हैं। या दोनों दक्षिण अथवा एक उत्तर और दूसरी दक्षिण। अब यह देखना है कि यह दशा कब होती है। जब सूर्य विषुवद् वृत्त पर होता है तब इसकी क्रान्ति शून्य होती है यह घटना वर्षमें दो बार होती है—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तिके दिन। सायन मेषसे सायन कर्क तक सूर्यकी उत्तर क्रान्ति शून्यसे बढ़ते बढ़ते आजकल २३ अंश २७ कला तक हो जाती है। सायन कर्क से घटने लगती है और सायन तुला तक घट कर शून्य फिर हो जाती है। सायन तुलासे क्रान्ति दक्षिण हो कर सायन मकर तक बढ़कर २३ अंश २७ कला हो जाती है। सायन मकरसे सायन मेषतक घटते घटते शून्य हो जाती है। जब सूर्य सायन

मकरसे आगे बढ़ता तब यह उदय या अस्त होनेके समय क्षितिज पर उत्तर की ओर खसकता हुआ देख पड़ता है और यह गति सायनकर्क तक देखी जाती है इसी लिए सायन मकर संक्रान्ति-से सायनकर्क संक्रान्ति तकके समयको उत्तरायण कहते हैं। परन्तु सायनकर्क संक्रान्तिके उपरान्त सूर्य क्षितिजपर दक्षिण की ओर खसकता हुआ देख पड़ता है इसी लिए सायनकर्क संक्रान्तिसे सायन मकर संक्रान्ति तकके समयको दक्षिणा-यन कहते हैं। चन्द्रमा भी सूर्यकी तरह अपने लगभग एक मास के चक्करमें आधे मास तक उत्तरायण और आधे मास तक दक्षिणायन रहता है परन्तु इसकी कक्षा क्रान्ति वृत्तसे कुछ भिन्न होनेके कारण तथा इसकी कक्षा और क्रान्ति वृत्तके सम्पात स्थानमें राहु और केतु स्वयम् वक्री होनेके कारण इसके उत्तरायण और दक्षिणायनका समय स्थिर करना कुछ कठिन है। परन्तु मोटे हिसाबसे यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं है कि जब चन्द्रमा सायन मकर राशिके निकट आता है तब यह उत्तरायण होता है और जब सायनकर्क राशिके निकट आता

चित्र १२०

है तब दक्षिणायन होता है क्योंकि चन्द्र कक्षा और क्रान्तिवृत्त-के बीचका कोण अर्थात् चन्द्रमाका परमशर केवल ५°९′ के लगभग है। दिये हुए चित्र १२० से यह बात स्पष्ट हो जाती है:—

मान लो दिया हुआ दीर्घवृत्त क्रान्तिवृत्त है और इसके व और श विन्दु क्रमसे वसन्त और शरद् सम्पात हैं जहाँ विषुवद्वृत्त क्रान्तिवृत्तसे मिलता है। सरलताके लिए विषुवद् वृत्त नहीं दिखलाया गया है। यदि मान लिया जाय कि चन्द्रमाकी कक्षा क्रान्ति वृत्त ही है तो यह स्पष्ट है कि जब सूर्य और चन्द्रमा व और श विन्दुओंसे समान दूरी पर होंगे तभी दोनोंकी क्रान्तियां समान होंगी। अब देखना है कि चन्द्रमा के एक फेरेमें यह घटना कितनी बार हो सकती है। मान लो र सूर्य का स्थान वसंत सम्पात व और दक्षिणा-यन विन्दु द के बीचमें किसी जगह है। जब चन्द्रमा भी र पर रहेगा अर्थात् अमावास्याके दिन, तब दोनोंकी क्रान्तियां एक ही रहेंगी। जब चन्द्रमा च, चा और चि पर रहेगा तब भी दोनोंकी क्रान्ति समान रहेंगी यदि वर=चश=शचा=चिव। परन्तु जब चन्द्रमा चा विन्दु पर रहेगा तब पूर्णिमा होगी। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार पातकालिक क्रान्ति साम्यके लिए अमावस्या और पूर्णिमाके दिनका विचार नहीं किया जाता इसलिए जब चन्द्रमा च और चि पर रहेगा तभी क्रान्ति साम्यका योग आवेगा।

पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग ३६० अंश हो तब वैधृति नामक

पात होता है। यह दशा तभी हो सकती है जब सूर्य र, च, चा या चि पर हो तो चन्द्रमा क्रमसे चि, चा, च या र पर हो वसंत सम्पात व से सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग ३६० अंश हो सकता है। चित्रसे स्पष्ट है कि र और चि स्थान उत्तरायण विन्दु उ, वसंत सम्पात व और दक्षिणायन बिन्दु द के बीच में है इस लिए र और चि दोनों उत्तरायण इसी प्रकार च, चा दोनों दक्षिणायन हैं। इसी लिए १ले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयनमें हों और दोनों के (सायन) भोगांशोंका योग ३६० अंश हो तभी वैधृति पात होता है। इसके प्रतिकूल जब दोनों भिन्न अयनमें हों और भोगांशोंका योग १८० अंश हो तब व्यतीपात होता है। चित्रमें यदि सूर्य और चन्द्रमा र, च पर हों तो दोनोंके भोगांशोंका योग १८०° होगा और चा, चि पर हों तो भी दोनों के भोगांशों का योग ३६० + १८० अंश अथवा १८० अंश होगा। परन्तु र और च अथवा चा और चि स्थान भिन्न अयनोंमें है, इस लिए व्यतीतपात नामक क्रान्ति साम्य योग तभी होता है जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनोंमें हों और सूर्य वसंत सम्पातसे जितना आगे या पीछे हो उतना ही चन्द्रमा शरद सम्पात से पीछेय ा आगे हो।

दोनों पातोंका स्वरूप और स्वभाव—

तुल्यांशुजालसम्पर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतः* ।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥ ३ ॥

विनाशयति पातोऽस्मिल्लोकानामसकृद्यतः ।
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतिः ॥४॥
सकृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः ।
सर्व्वानिष्टकरो रौद्रो भूयोभूयः प्रजायते ॥५॥

अनुवाद—(३) क्रान्ति साम्य कालिक सूर्य और चन्द्रमा-की समान किरणोंके मिलनेसे और उनकी दृष्टि रूपी क्रोधसे उत्पन्न अग्नि प्रवह वायु से प्रज्वलित होकर संसारके लिए अशुभ फल उत्पन्न करती है। (४) जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां समान होती हैं तब यह पात संसार को बारंबार नाश करता है। इसे व्यतीपात और वैधृति कहते हैं। (५) यह पात रंग में काला, कठिन शरीरवाला, लाल नेत्रवाला, बड़ा पेटवाला, और भयंकर है और बार बार उत्पन्न होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकोंमें दोनों पातोंका बड़ा भयंकर चित्र खींचा गया है परंतु तो भी काशीके अच्छे अच्छे पंचांगोंमें भी इनकी चर्चा बहुत कम रहती है। बम्बई प्रान्तके भी पंचांगोंमें इनकी चर्चा नहीं देख पड़ती। हां, गुजरातीके 'प्रत्यक्ष पंचांग' में इसका विचार अवश्य रहता है। इससे जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धांत के इन महापातोंका विचार फलित ज्योतिषी लोग बहुत कम करते हैं।

व्यतीपात और वैधृति नाम के योग भी होते हैं। पहले की क्रम संख्या १७ और दूसरे की २७ है। व्यतीपात नामक योगका सम्बन्ध व्यतीपात नामक पातसे कुछ भी नहीं है परन्तु वैधृत योगका सम्बन्ध इस नामके पातसे उस समय अवश्य रहा होगा जब वसंत सम्पात अश्विनी नक्षत्रके आदि स्थान में था।

[क्रमशः]

*वेंकटेश्वर प्रेसवाले और बंगला संस्करणमें प्रवहावृतः पाठ है।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ३१ } कर्क, सिंह संवत् १९८७ { संख्या ४-५

यक्ष्मा

[ले० डा० कमलाप्रसाद जी एम. बी.]

१ शरीर-रचना

मनुष्य-शरीर भिन्न भिन्न भागोंमें बटा हुआ है। इन भागोंके भिन्न भिन्न कार्य्य भी हैं। इन भागोंको हम अवयव (organ) कह सकते हैं। प्रत्येक अवयव केवल अपना ही कार्य्य नहीं करता बल्कि अन्य अवयवोंके साथ मिल कर सारे शरीर का एक रूपसे कार्य्य सम्पादन करता है। जो जो अवयव एक साथ मिल कर कार्य्य करते हैं उन्हें एक संस्थान वा समूहके अन्तर्गत रख सकते हैं जैसेः—

रक्त-सञ्चार संस्थान (Circulatory System) इसके अन्तर्गत हृत्पिण्ड धमनियां शिराय इत्यादि हैं जिनका काम है रक्त संचालन।

श्वासोच्छ्वास संस्थान (Respiratory System)—इसके अन्तर्गत हैं फुफ्फुस श्वासनल टेंटुवा इत्यादि, जिनका काम है श्वास लेना और बाहर फेंकना।

पाचक संस्थान (Digestive System)—जिसके अन्तर्गत हैं पाकस्थली अन्त्र इत्यादि और जिसके द्वारा शरीर की पाचन क्रियायें होती हैं।

माँस संस्थान (Muscular System)—इसके अन्तर्गत हैं मांस पेशियां जिनसे शरीरके संचालनका काम होता है।

अस्थि संस्थान (Skeletal System) जिसका कार्य्य है शरीरके मुलायम अंशोंको सम्भालना।

मल-बहिष्कार संस्थान (Excretory System) जिसका कार्य्य है शरीरके विकारोंको बाहर निकाल देना।

वात संस्थान वा ज्ञान मण्डल (Nervous System)—जो सभी संस्थानों में श्रेष्ठ है और जिसके अन्तर्गत हैं मस्तिष्क, सुषुम्ना नाड़ियां इत्यादि। इस संस्थान का काम है दूसरे संस्थानोंको संचालित करना एवं उन पर प्रभुत्व रखना।

यदि किसी अवयव को लेकर उसका विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि यह बहुतसे धागों (textures) का बना हुआ है जिन्हें प्राथमिक तन्तु (Primary Tissue) कहते हैं। इन तन्तुओं के चार विभाग हैं। यथा:—

ऐपिथेलियल तन्तु (Epithelial Tissue)
संयोजक तन्तु (Connective Tissue).
मांसीय जंतु (Muscular tissue)
वात तंतु (Nervous tissue)

इनका पुनर्विभाग किया जा सकता है। कपड़ेका एक टुकड़ा बहुतसे सूतोंका बना रहता है। मकानकी एक दीवार बहुतसी छोटी छोटी ईंटोंकी बनी रहती है जिनके जोड़नेके लिए बीच बीचमें मसाले दिये जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक तन्तु सूतों (fibres) और कोषों (cells) के बने रहते हैं जो आपसमें एक दूसरेसे एक प्रकारके मसालेसे जुड़े रहते हैं। इस कोष शब्दका व्यवहार प्रथमतः उद्भिद्-शास्त्रज्ञोंने किया था। इसका अर्थ है कोठली और वास्तवमें उद्भिदोंके कोष एक प्रकारकी कोठरी के समान होते हैं, जिनके सब ओर दीवारें रहती हैं और बीचमें कललरस या जीवन मूल (Protoplasm) नामकी एक वस्तु रहती है। किन्तु पशु-संसारके कोषोंके लिए दीवारोंका होना कुछ आवश्यक नहीं है।

कोषकी परिभाषा है जीवनमूलका एक ढेर जिसमें एक शक्ति-केन्द्र (Nucleus) हो। मनुष्य शरीरके प्रत्येक कोषका व्यास लगभग एक इञ्चके $\frac{१}{३००}$ से $\frac{१}{३०००}$ तक होता है। इसमें निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं।

(१) प्रोटोप्लाज़्म या जीवनमूल या कललरस। सारा कोष प्रायः इसीका बना रहता है। यह मकड़ीके जालकी भांति झागेदार पदार्थ होता है जिसके झागोंमें एक प्रकारका द्रव (fluid) भी रहता है। इसके झागेको रेटिकुलम् (Reticulum) और द्रव को एम्काइलेम्मा (Inchyluma) कहते हैं। जीवनमूलके रासायनिक विश्लेषण करने पर उसमें निम्नलिखित पदार्थ मिलते हैं।

(क) जल।

(ख) मांसीय पदार्थ (Proteins)—जो कर्बन उदजन, नोषजन, ओषजन, गंधक, और स्फुर का बना रहता है। (इसका एक अच्छा उदाहरण है अंडेका श्वेतांश।)

(ग) कुछ चर्बी के से पदार्थ (Lipoids) जिनमें लेसिथिन (Lecithin) एक स्फुर युक्त चर्बी और कौलेष्टिन (Cholestin एक प्रकारका मद्यसार) है।

(घ) कुछ लवण जिनमें खटिकम्, सैन्धकम् और पांशुजम्के हरिद (chloride) मुख्य हैं।

वास्तवमें प्रत्येक कोषकी प्रधान वस्तु यही जीवन-मूल है। वह कौनसा पदार्थ है जिसे हम जीवन कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है किन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक कोषका जीवन इसी जीवनमूलकी-निरोग अवस्था पर निर्भर है, और इसीकी मृत्युके साथ साथ कोषकी भी मृत्यु हो जाती है।

इसके जीवित रहनेके निम्न लिखित चिह्न हैं :—

(क) उत्तेज्य शक्ति (Power cf Instatility) यदि किसी बाहरी पदार्थका प्रभाव इसपर डाला जाय तो इसके उत्तरमें जीवन-मूलमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन अवश्य लक्षित होगा। इन बाहरी पदार्थोंमें हैं कोई भी रासायनिक वस्तु, भौतिक शक्ति इत्यादि।

(ख) अपनेमें मिला लेनेकी शक्ति, अर्थात् जो आहार इसे दिया जाता है उसे अपने रूप रंगमें परिणत कर लेनेकी शक्ति।

(ग) वृद्धिकी शक्ति।
(घ) पुनरुत्पादन शक्ति।
(च) मलबहिष्कारक शक्ति।
(२) शक्ति केन्द्र। यह गोल या अंडाकार एक क्षुद्रकोषका सा कोषके बीचमें पाया जाता है। इसका काम है कोषकी पुष्टिकरण और पुनरुत्पादन शक्तियोंका संचालन करना एवं उसकी रक्षा करना। यदि कोषके किसी अंशको शक्ति केन्द्रसे पृथक् कर दें तो वह अंश नष्ट हो जायगा।

(३) आकर्षण मण्डल (Centrosome) यह जीवनमूलमें शक्ति केन्द्रके निकटस्थ रहता है और उस समय विशेष रूपसे प्रकट होता है जब कोषका वृद्धि-जनक विभाग होता हो। इसमें निकटवर्त्ती दानोंको आकर्षित करनेकी शक्ति होती है।

कोष
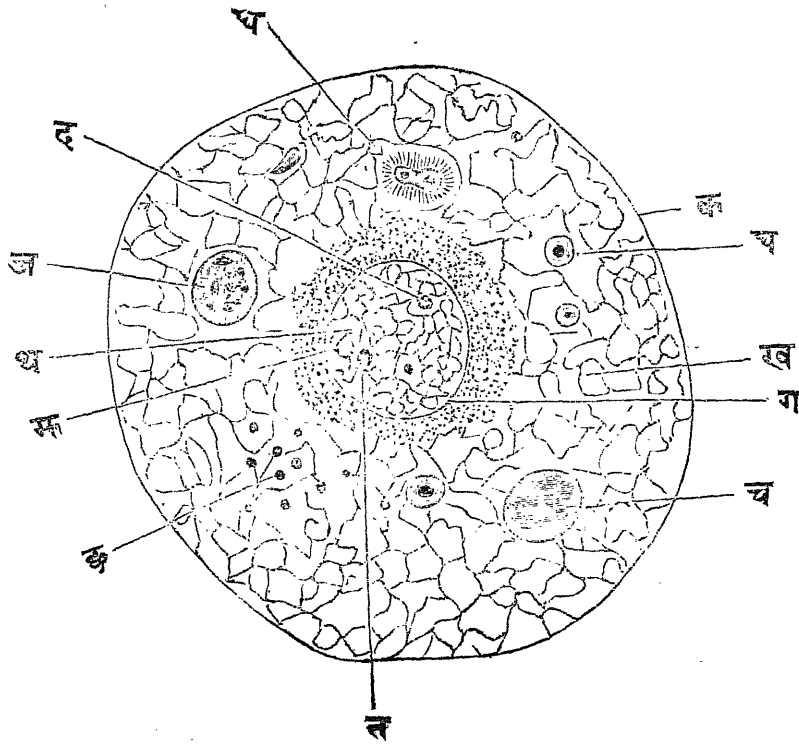
चित्र नं० १

क=कोष की दीवार।
ख=स्पंजियोप्लाज्म, ग=एण्डोप्लाज्म, घ=प्लैस्टिड } प्रोटोप्लाज्म वा जीवन मूल।
च=शून्य स्थान।
छ=रंजक पदार्थ भोज्य पदार्थ इत्यादि।
ञ=पाचक-स्थान।
झ=शक्ति-केन्द्र की दीवार।
त=जाल गिरह।
थ=शक्ति केन्द्र जाल।
द=शक्ति केन्द्राणु।
ध=आकर्षण मण्डल।

कोषकी वृद्धि। कोषकी संख्या-वृद्धि एक साधारण क्रिया है। इसका अर्थ है उत्पादन। प्रत्येक कोष दो कोषोंमें विभक्त हो जाता है। ये उत्पन्न कोष कुछ समय तक तो केवल आकारमें ही बढ़ते जाते हैं किन्तु अन्तमें इनका भी पुनर्विभाग होता है और दो से चार कोष उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार संख्या-वृद्धिका क्रम प्रत्येक प्राणीके शरीरमे अहर्निश होता रहता है। कोष-विभागकी दो रीतियां हैं।

(१) साधारण विभाग। इस रीतिसे एक कोष दो बराबर भागोंमें शीघ्र विभक्त हो जाता है, और विभक्त होनेके पूर्व जिस स्थान पर विभक्त होता है वह वहां पर कुछ सिकुड़ जाता है।

(२) असाधारण विभाग। इसमें विभागके पूर्व बड़ी बड़ी तैय्यारियां होती हैं। शक्ति केन्द्रके भागोंमें बहुत कुछ परिवर्त्तन होता है। आकर्षण मंडल (सेन्टोसोम) बहुत प्रत्यक्ष हो जाता है। पहले शक्ति केन्द्रका समद्विभाग होता है और अन्तमेंकोष विभक्त होता है।

एपिथेलियम् तंतु

(Epithelial tissue)

परिभाषा—एपिथेलियम् उस तंतुको कहते हैं जिसका सर्वांश कोषोंका ही बना रहता है और जिसमें जोड़नेवाला पदार्थ बहुत ही कम रहता है। यह तंतु झिल्लीके रूप में फैला रहता है, किसी तलको ढँके रहता है अथवा किसी खोखले अवयवके गर्त्तको चिकना बनाए रहता है।

इस तंतुके निम्नलिखित भेद माने जाते हैं :—

(१) साधारण एपिथेलियम् अर्थात् कोषों की केवल एक तहके बने तंतु।

(क) फर्शी एपिथेलियम् (Parement Epithelium)। इसमें छोटे छोटे कोष इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि देखने में ज्ञात होता है मानों ईंटों का एक फर्श तैयार कर दिया गया हो। उदाहरणार्थ फुफ्फुसके तंतु। (चित्र सं० २)
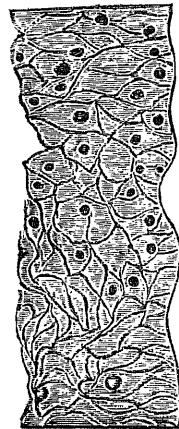
पर्त्त एपिथेलियम। Stratified Epithelium

चित्र २

(ख) घनाकृति और स्तंभाकृति एपिथेलियम्। (चित्र ३)
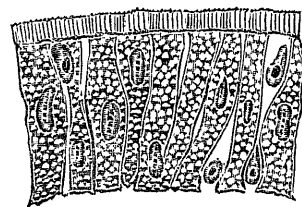
स्तंभाकृति एपिथेलियम। (Columnar Epithelium)

चित्र ३

(ग) कोषाङ्कुर-युक्त एपिथेलियम् (citiated Epithelium) इसके कोषोंमें रोमकेसे पतले पुच्छ नज़र आते हैं।

(२) मिश्र एपिथेलियम्। इस प्रकारके तंतुके कोषोंकी दो तहें होती हैं।

(क) अवस्थान्तरित एपिथेलियम्। यह तन्तु वस्ति और मूत्रप्रणालीमें मिलता है।

(ख) पर्त्त एपिथेलियम्। इसमें कोषोंके कई पर्त्त रहते हैं।

संयोजक तंतु

इसके निम्न लिखित भेद माने जाते हैं।

१—जाली तन्तु (Arealar tissue)

२—सौत्रिक तन्तु (Fibrous tissue)

सौत्रिक तन्तु
चित्र ४
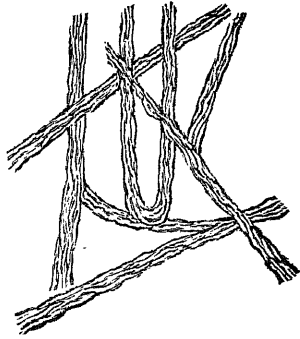
३—स्थिति स्थापक तन्तु (Elastic tissue)

४—वसा तन्तु (Adipose tissue)

५—झागेदार और लसीका तन्तु (Retiform and Symphoed tissue)

६—लुआवकासा तन्तु (Jelly like tissue)

७—कारटिलेज (Cartilage)

८—अस्थि और दन्त तन्तु (Bone and Dentine)

९—रक्त

जाली तंतु

अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर उससे निम्न लिखित ४ चीजें पायी जाती हैं।

(१) कोष वा संयोजक तंत्वाणु (Connective tissue corpuscles)

(२) एक सूक्ष्म जाल (Matrix)

(३) श्वेत सूत (White fibres)

(४) पीत सूत (yellow fibres)

यह तंतु शरीरमें जहाँ तहाँ गद्देका काम करता है।

सौत्रिक तंतु

यह एक ऐसा तंतु है जिसमें श्वेत सूतोंकी अधिकता होती है।

स्थिति स्थापक तंतु

इसमें पीत (वा स्थापक) सूतोंकी अधिकता रहती है। ये सूत बहुत लम्बे होते हैं और एक एक बंडलमें बंधे रहते हैं। यह तंतु फुफ्फुस और टेंटुएमें पाया जाता है।

रक्त

यह एक प्रकारका द्रव है जिसमें बहुतसे ठोस कण जिन्हें अणु (Corpuscles) कहते हैं पाये जाते हैं। इसके द्रवको प्लाज्मा वा रक्त वारि कहते हैं। इसमें अणुसितकी अधिकता रहती है और इसके एक विशेष मांसीय पदार्थको फाइब्रिनोजन (Fibrinogen) कहते हैं।

रक्त जब रक्त-नलिकाओंसे बाहर निकल आता है तो धीरे धीरे जमने लगता है, और जब एकदम जम जाता है तब इससे एक प्रकारका द्रव निर्गत होता है जिसे रक्त-रस (Blood serum) कहते हैं और जमें हुए अंशको छिछड़ा कहते हैं। फाइब्रिनोजन से फाइब्रिन तैयार होता है। यह धागेका सा होता है और अणुओंके साथ मिलकर जम जाता है जिससे छिछड़ा तैयार होता है। अर्थात्—

(५)
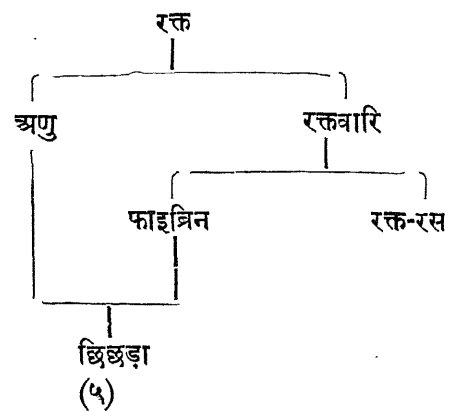
रक्तके अणु दो प्रकारके होते है, रक्ताणु (Red Blood corpuscles) और श्वेताणु (White Blood corpuscles)
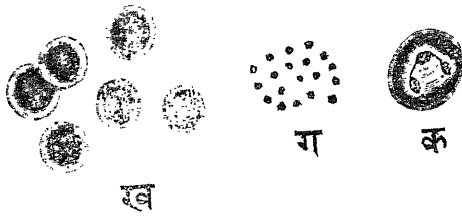
क—श्वेताणु
ख—रक्ताणु
ग—रक्त-चक्रिकायें
चित्र ४

श्वेताणु एक सम्पूर्ण कोषका सा होता है जिसमें चलनेकी शक्ति भी होती है।

रक्ताणुओंकी संख्या श्वेताणुओंसे अधिक होती है। प्रत्येक घन सहस्रांशमीटर रक्तमें ५,०००,००० रक्ताणु और ५,००० श्वेताणु पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त एक और वस्तु मिलती है जिसे रक्तचक्रिका (Blood platelets) कहते हैं, जो प्रत्येक घन सहस्रांशमीटर रक्तमें ३,००,००० मिलती हैं। रक्ताणुओं के कारण ही रक्तका रंग लाल दिखाई देता है। ये दोनों ओर नतोदर गोल पहिएकेसे होते हैं और इनमें शक्ति केन्द्र नहीं होता। इनका व्यास $\frac{१}{३२००}$ इञ्च होता है। रक्ताणुकी एक प्रधान वस्तु है हीमोग्लोबिन (लोहका एक मिश्रित पदार्थ) जिसका काम है फुफ्फुससे ओषजन ग्रहण करना और उसे सारे शरीरके तन्तुओं को दे देना।

श्वेताणुमें शक्ति केन्द्र पाया जाता है और यह कई प्रकारका होता है जैसे :—

(१) लसीकाणु—इनमें दानेदार पदार्थ नहीं पाया जाता और इनमें गति-शक्ति भी नहीं होती।

(क) क्षुद्र लसीकाणु—ये आकारमें रक्ताणुओं के बराबर होते हैं। इनका शक्ति-केन्द्र इतना बड़ा होता है कि प्रायः सारे अणुमें छाये रहता है। संख्या में ये सारे श्वेताणुओंके २० से २५ प्रति शत होते हैं।

(ख) बृहद् लसीकाणु—ये आकारमें क्षुद्र लसीकाणुके दूने बड़े होते हैं। इनका शक्ति-केन्द्र छोटा है और एक किनारे पड़ा रहता है। संख्या—१ प्रतिशत।

(२) श्वेताणु (leucocytes)—इनमें एक प्रकारका दानेदार पदार्थ मिलता है और इनमें गति-शक्ति होती है।

(क) अवस्थान्तरित श्वेताणु—इनमें एक बड़ा शक्ति-केन्द्र पाया जाता है। इनकी संख्या है २ से १० प्रतिशत तक।

(ख) बहु शक्ति केन्द्र श्वेताणु—इनका शक्ति-केन्द्र बहुत बड़ा होता है और ऐसा जान पड़ता है मानो बीच बीचमें कट कर कई भागोंमें विभक्त हो गया हो। इनकी संख्या है ६० से ७५ प्रतिशत।

अम्ल-रंजक श्वेताणु—ये उपर्युक्त श्वेताणुओंके से होते हैं, अन्तर इतना ही है कि अम्ल रंगों (Acid-dyes) से आरंजित रहते हैं।

(ग) क्षार-रंजक श्वेताणु—ये भी उपर्युक्त श्वेताणुकेसे होते हैं किन्तु क्षार-रंगों (basic dyes) से आरंजित होते हैं।

श्वेताणुओंके कार्य्य—

(१) ये आक्रमणकारी कीटाणुओंसे शरीरकी रक्षा करते हैं। इनमें कुछ ऐसे श्वेताणु होते हैं जो कीटाणुओंका भक्षण कर डालते हैं। ऐसे श्वेताणुओंको कीटाणु-भक्षक श्वेताणु (Phagocyte) कहते हैं।

(२) ये भोजनके उपरान्त अन्त्रसे चर्बीवाले पदार्थ ग्रहण कर उन्हें यथास्थान पहुँचा देते हैं।

(३) ये भोजनसे पेप्टोन नामक पदार्थ (Peptone) भी ग्रहण कर उन्हें यथास्थान पहुँचा देते हैं।

(४) रक्तके जमनेमें सहायता करते हैं।

(५) रक्तके मांसीय पदार्थके परिमाणको बनाये रखने में सहायता करते हैं।

मनुष्य की जीवितावस्था में रक्त सदा एक स्थान से दूसरेको दौड़ता रहता है। यह प्रत्येक क्षण हृत्पिण्डसे धमनियों द्वारा चलता है और शिराओं द्वारा पुनः इसमें लौट आता है। जहाँ धमनियां समाप्त हो जाती हैं और शिरायें आरम्भ होती हैं वहाँ एक सूक्ष्म नलिका इन दोनोंको आपसमें मिला देती है। इस नलिकाकी दीवार इतनी पतली होती है कि वह प्रायः झिल्ली सी जान पड़ती है। अस्तु, इस से कुछ रक्त-वारि निकल आता है। इस द्रव द्वारा शरीरके सभी तन्तुओंको खाद्य पदार्थ मिलता है और उनका मल इसीसे गिर जाता है। पुनः यह द्रव जिसे लसीका (Lymph) कहते हैं छोटी छोटी नलिकाओंमें एकत्रित होकर महालसीका वाहिनी (Thoracic Duct) नामक एक बड़ी नलिकामें प्राप्त होता है और एक बृहत् शिराके मार्ग से रक्तमें मिल जाता है।

रक्तका एक और प्रधान काम है ओषजन ढोना। रक्ताणुओंमें हीमोग्लोबिन नामका एक पदार्थ पाया जाता है। यह हीमोग्लोबिन फुफ्फुससे ओषजन (जो श्वास लेने पर फुफ्फुसमें प्रवेश करता है) ग्रहण करता है और उन्हें शरीरके तन्तुओंमें पहुँचा देता है। इन तन्तुओंसे कार्बनिकाम्ल गैस (Carbonic acid gas) निकलता है जो रक्त धारामें मिलकर फुफ्फुसमें पहुँच जाता है और वहाँ से बहिश्र्वास के समय बाहर निकाल दिया जाता है।

[अन्य तन्तुओंमें से कुछ का वर्णन तो यथा स्थान कर दिया गया है किन्तु शेषका अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया जाता है।]

२ रुग्न कोष

पूर्व कथनानुसार किसी कोषके तीन मुख्य कार्य हैं—(१) वृद्धि और पुष्टि। (२) पुनरुत्पत्ति (३) विशिष्ट कार्य। कोषकी रुग्नावस्थामें इन तीन में से एक, दो वा तीनों कार्य्य कुछ कालके लिए अथवा सदैवके लिए स्थगित रह सकते हैं। सर्व प्रधान क्षति किसी कोषको तब पहुँचती है जब इसके पौष्टिक (वा खाद्य) पदार्थोंके गुण वा परिमाणमें परिवर्त्तन हो जाता है। इसके रुग्न होनेके अन्य कारणोंमें अत्यन्त शीत वा ताप, चाप, विद्युत् वा रासायनिक पदार्थ (जैसे साधारण विष वा कीटाणु जनित विष) हैं। यह एक निर्धारित सिद्धान्त है कि यदि कोष की बनावटमें कोई अन्तर पड़ जाय तो उसके कार्य्योंमें भी तदनुरूप परिवर्त्तन हो जायगा। अस्तु, हम किसी कोषकी बनावटके अन्तर को देखकर उसके कार्यमें क्या अन्तर हुआ होगा तथा जीवितावस्थामें उसके कार्य्यके अन्तर को देखकर उसकी बनावटमें क्या अन्तर हो गया है बहुत कुछ समझ सकते हैं।

किसी कोषका क्षीण उत्तेजनसे लेकर मृत्यु वा पूर्ण विनाश तक एक ही क्षतिकारक कारण द्वारा सम्भव हो सकता है। परिवर्त्तनकी ये मात्रायें उक्त कारणके परिमाण, शक्ति एवं समय और कोष की अवरोधिनी शक्तिके ऊपर निर्भरहैं। उदाहरणार्थ यदि किसी विष को यथेष्ट पतला कर दें, जिससे विषकी शक्ति क्षीण होजाय, तो उसके सम्पर्कसे कोषका उत्तेजन मात्र हो सकेगा। पुनः वही विष जितनाही गाढ़ा होता जायगा कोषके लिए उतनाही नाशकारी प्रतीत होगा। और भी, वही विष कभी कभी अपनी प्रकृतिवश वा किसी विशेष रीतिसे कोषके साथ सम्पर्क कराये जानेके कारण कोषके लिये इतना शीघ्र घातक हो जाता है कि मृत्युके पश्चात् उसमें कोई विशेष परिवर्त्तन तक नहीं लक्षित होता। उदाहरणके लिए हरतालको लीजिये। बहुत क्षुद्र मात्रामें यह कोष को (पुनरुत्पादन एवं

अन्य कार्य्योंमें) उत्तेजित करता है। अधिक परिमाणमें कोषमें विषाक्त परिवर्त्तन उपस्थित करता है—जैसे तीव्र प्रदाह वा पूर्ण विनाश इत्यादि। इससे भी अधिक परिमाणमें कोषके साथ सम्पर्क करते ही कोषकी सहसा मृत्यु हो जाती है किन्तु उसकी बनावटमें कोई अन्तर नहीं पाया जाता। किसी-किसी कोषके जीवनमूलमें परिवर्त्तन होता है, किसी-किसी कोषके शक्तिकेन्द्रमें। किन्तु यह निश्चित है कि कोषके दोनों अंशोंमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन अवश्य होता है।

जीवनमूलमें क्या परिवर्त्तन होता है ?

जीवनमूलकी बनावटमें एक साधारण परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है, जिसे सान्द्र सूजन (Cloudy swelling) कहते हैं—अर्थात् कोष फूल जाता है। सम्भवतः निकटवर्ती लसीकाके खिंचकर कोषके भीतर आ जानेके कारण कोष जालका ऐसा परिवर्त्तन हो जाता है कि वह मोटा और छिन्न भिन्न प्रतीत होता है। तदुपरान्त कोषमें गर्त दीख पड़ते हैं और धीरे धीरे ये गर्त्त इतने बृहदाकार हो जाते हैं कि सारा कोष केवल एक क्षीण परिधि सा जान पड़ता है। अन्तमें यह परिधि भी छिन्न भिन्न हो कर विलीन हो जाती है।

शक्ति-केन्द्रमें क्या परिवर्त्तन होता है ?

सर्व प्रथम तो इसकी रंजक शक्ति बढ़ जाती है। तदुपरान्त इसके रंग ग्रहण करने-वाले पदार्थ एकदम घुल जाते हैं और अन्तमें शक्ति-केन्द्र छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाता है।

३ कीटाणु-तत्व

कीटाणु एक प्रकारके पौधे हैं जो साधारणतः नग्न दृष्टिसे नहीं दिखाई देते। ये इतने सूक्ष्म हैं कि इन्हें देखनेके लिए एक अणुवीक्षण यन्त्रकी आवश्यकता होती है। कभी कभी इस यन्त्रसे भी ये नहीं दिखाई पड़ते, ऐसी अवस्थामें एक वा दूसरे उपायोंसे इन्हें रँगना पड़ता है। रंग चढ़ानेकी ऐसी चेष्टाकी जाती है कि केवल कीटाणु ही रंग ग्रहण करें और अन्य पदार्थ या तो रंग ग्रहण ही न करें या करें भी तो भिन्न प्रकारके रंग। कीटाणुओंकी संख्या हजारोंकी है किन्तु चिकित्साशास्त्रसे जिनको सम्बन्ध है उनकी संख्या बहुत कम है। ये एक-कोष निर्म्मित पौधे हैं जिनकी पुनरुत्पत्ति समद्विभागसे अथवा गुठलियों (Spores) द्वारा होती है। ये गुठलियां एक कीटाणुमें एकसे अधिक नहीं होतीं और बहुतसे कीटाणुओंमें नहीं रहती हैं। कीटाणुओंके और कोई अंग नहीं होते, पर किसी किसीमें एक पुच्छ (Flagella) होती है। इनमें पर्णहरिन् पदार्थ (Chlorophyll) जिनसे वृक्षोंकी पत्तियां या शाखायें हरे रंगकी दीखती हैं—नहीं पाया जाता। इनकी बनावट बहुत सीधी रहती है। इनके भीतर कुछ जीवनमूल रहता है, कुछ शून्य स्थान (Vacuoles) रहते हैं और कुछ दानेदार पदार्थ जिनकी प्रकृति अज्ञात है, मिलते हैं। कोष-परिधिके बाहर कभी कभी जिलेटिनकी बनी एक कटोरी (Capsule) भी पायी जाती है, जो इनको एक दूसरेसे संलग्न होनेमें सहायता करती है। जब कभी इन कटोरियोंकी प्रधानता हो जाती है तो बहुत से कीटाणु एक साथ इकट्ठे हो जाते हैं और इनके समूहको कीटाणु जाल (Zooglea) कहते हैं। फुफ्फुस प्रदाह-कीटाणु (Pneumococcus) में यह कटोरी विशेष रूपसे प्रदर्शित होती है। कीटाणुओंकी आकृति भिन्न भिन्न भांतिकी होती है। कोई कोई गोल होते हैं और बिंदुकेसे दिखायी पड़ते हैं, कोई सीधी रेखाकेसे होते हैं, हैजेका कीटाणु कौमाके रूपका होता है और फिरंग रोगका कीटाणु ऐंठे हुए तारका सा जान पड़ता है। इनके रहन सहनमें भी कई भेद हैं। कोई तो अकेला रहना पसन्द करते हैं और कोई कोई दल बाँध कर रहते हैं। कभी कभी दो कीटाणु एक दूसरेसे इतने जुड़े रहते हैं कि यही इनकी पहिचानका चिह्न माना जाता है। इनके भोजनकी सामग्रियां भिन्न भिन्न होती हैं। कोई केवल अगर-अगर (Agar agar एक प्रकारकी चीनी घास) की कांजी और जिलेटिन पर निर्वाह

करते हैं, कोई आलूकी गुद्दियां खाकर रहते हैं और किसी किसीके लिए रक्तरसकी आवश्यकता होती है। कुछ कीटाणु पीव पैदा करते हैं, कुछ नहीं करते।

कीटाणुओंके पुच्छ—ये जीवन मूलकी सूतकी सी वृद्धियां हैं जिनमें स्वेच्छापूर्वक हिलने डुलनेकी शक्ति रहती है। कभी कभी वे बहुत बड़े होते हैं किन्तु सदैव सूक्ष्म ही रहते हैं। किसी एक प्रकारके कीटाणुमें इनकी संख्या निर्धारित रहती है जिससे उनके पहचाने जानेमें सहायता मिलती है।

कीटाणुओंकी जीवन-यात्रा—अन्य पर्णहरिन्‌हीन पौधोंकी भाँति ये कीटाणु भी सूर्य्यके प्रकाशमें साधारण तत्वों (Simple elements) से प्रोटीड (Proteid—पौधोंका मांसीय पदार्थ) बनानेमें असमर्थ होते हैं। अस्तु, इन्हें इस नोषजन-मिश्रित पदार्थके लिए अन्य पौधों वा प्राणियों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार ये दो भागोंमें बांटे जा सकते हैं—एक परोपजीवी (Parasite) जो अपना आहार किसी जीवित प्राणी वा पौधेसे ग्रहण करते हैं, दूसरे मृतोपजीवी (Saprophytes) जो अपना आहार किसी मृत प्राणी वा पौधेसे ग्रहण करते हैं। कुछ ऐसे भी कीटाणु हैं जो मृत पदार्थों पर अपना निर्वाह कर सकते हैं, पर जिन्हें जीवित पदार्थों से ही रस ग्रहण करना अच्छा लगता है। दूसरे पक्षमें कुछ ऐसे भी कीटाणु मिलते हैं जो जीवित शरीर पर किसी प्रकार अपना निवास बना सकते हैं किन्तु जिन्हें अच्छा लगता है मृतक शरीर ही।

कीटाणुओंकी वृद्धि के लिए भोजनके अतिरिक्त कुछ जल, लवण और उपयुक्त तापकी आवश्यकता होती है। साधारणतः ३७° शतांशकी उष्णता इनके लिए बहुत लाभदायक होती है। यही उष्णता-माप साधारणतया मनुष्य शरीरकी भी होती है। इससे कम अंशकी उष्णता इनकी वृद्धिको रोक दे सकती है और बहुत देर तक इस अवस्थामें रहने पर इनकी मृत्यु भी हो जाती है। दूसरी ओर ४२° शतांश उष्णताको वे आसानीसे सह लेते हैं किन्तु इससे अधिक ताप पर इनकी हालत अच्छी नहीं रहती और प्रायः सभी कीटाणु १००° शतांश ताप (जिस तापसे जल उबल कर भाप बनता है) पर मर जाते हैं। अधिक प्रकाशसे भी सभी कीटाणुओं-को क्षति पहुँचती है। उदाहरणार्थ, काँचमें रक्खा हुआ यक्ष्मा-कीटाणु सूर्य्यके प्रकाशमें थोड़ेही समयमें मर जाता है, किन्तु यदि उसे दिनके समय घरकी धुंधली रोशनीमें रक्खा जाय तो इसके मरनेमें बहुत देर लगेगी।

बहुतसे कीटाणु ऐसे होते हैं जिनकी वृद्धिके लिए ओषजनकी नितान्त आवश्यकता होती है। किन्तु कुछ ऐसे भी मिलते हैं जिनकी वृद्धिके लिए ओषजन अनावश्यक ही नहीं, अवरोधक भी प्रतीत होता है (जैसे टिटैनस कीटाणु)। कुछ ऐसे कीटाणु भी हैं जिन्हें ओषजन (वायु) की आवश्यकता तो है पर वे बिना ओषजनके भी बढ़ते जाते हैं और कुछ ठीक इनकी उल्टी प्रवृत्तिके होते हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मानव शरीरकी रचना ऐसी है कि इसमें दोनों प्रकारके कीटाणु सुगमतासे जीवन-यापन कर सकते हैं।

कीटाणु अपनी जीवन-यात्रामें कई प्रकारके पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनमें प्रधान हैं—

अम्ल—जैसे दुग्धिक, सिरकिक और नवनीतिक अम्ल।

क्षार।

गैस—जैसे उदजन गन्धिद (Sulphuretted Hydrogen) मार्श गैस इत्यादि।

कुछ रंजक पदार्थ।

कुछ गंध करनेवाले पदार्थ—जैसे इन्डोल (indol) दिव्योल (Phenol) टाइरोसिन (Tyrosin)

खमीर (Ferments)।

मद्यसार (alcohol)

कुछ दानेदार रासायनिक पदार्थ जो विषाक्त भी होते हैं।

कीटाणु-विष (Toxin)—जिनका रासायनिक विश्लेषण वास्तवमें नहीं होता है। ये विष

रक्तमें मिलकर शरीरके तन्तुओंका शीघ्र नाश करते हैं, किन्तु कुछ इस प्रकारके विष भी उत्पन्न होते हैं जिनको खा लेनेसे शरीरको कोई क्षति नहीं पहुँचती। ये विष अधिक ताप पानेसे नष्ट हो जाते हैं। मानव-शरीरमें इन विषोंकी क्रियायें भिन्न भिन्न रूपसे देखी जाती हैं, परन्तु शरीरमें प्रवेश करने पर ज्वर अवश्य आता है। विषोंकी नाशकारी क्रियायें इनकी शक्ति पर निर्भर रहती हैं। पीव की उत्पत्ति भी इन्हीं विषोंके कारण होती है।

कीटाणुओंका वर्गीकरण—आवृत्ति भेदसे कीटाणु तीन प्रकारके होते हैं जैसे—

(१) विंद्वाकार कीटाणु (cocci)—ये कीटाणु गोल विंदुके समानके होते हैं, इनमें न तो पुच्छ होते हैं न गुठलियां ही होती हैं।

(२) शलाकाकार कीटाणु (Bacilli)—ये सीधी रेखाओंके समान होते हैं। इस प्रकारके बहुतसे कीटाणुओंमें पुच्छ एवं गुठलियां होती हैं। यक्ष्मा कीटाणु इसी प्रकारका का कीटाणु है।

(३) चक्राकार कीटाणु (Spirilla)—ये पेंच-की तरह ऐंठे हुए रहते हैं। (उदाहरण-फिरंग रोग का कीटाणु)

कीटाणुओंका विस्तार

प्रकृतिमें कीटाणुओंका बहुत बड़ा विस्तार है।

वायुमें :—अवस्थानुसार वायुमें इनकी संख्या कम वा अधिक रहती है। पर्वतकी चोटियों पर वा सागरके बीचकी वायुमें कीटाणु नहीं मिलते। इसके विपरीत शहरोंकी वायुमें इनकी संख्याका अन्दाज़ा लगाना कठिन है। किसी तरल पदार्थमें मिश्रित हो जाने पर ये उसके तलसे हवामें नहीं उड़ने पाते, परन्तु जल-कण वा धूलके साथ मिलकर वायुमें उड़ते फिरते हैं। वायुमें आर्द्र ऋतुओंकी अपेक्षा शुष्क ऋतुओं (जाड़ा गर्मी) में अधिक पाये जाते हैं, एवं खुले स्थानोंकी अपेक्षा वासस्थानोंमें अधिक पाये जाते हैं। जब किसी कमरेकी वायु एक दम स्थगित रक्खी जाती है तब धूलिकण धीरे धीरे नीचे बैठ जाते हैं, अतएव वहांकी वायु एकदम कीटाणु-विहीन हो जाती है। किसी पाठशालाके एक कमरेकी वायुमें जब छात्र चुपचाप बैठे रहते हैं बहुत कम कीटाणु मिलते हैं, किन्तु जब वे (छात्र) इधर उधर चलने फिरने लगते हैं तब कीटाणुओंकी संख्या बढ़ जाती है। श्वास-निर्गत वायु कीटाणु-विहीन होती है किन्तु खांसते समय वा बोलते समय फुफ्फुस-से द्रवकण निकलते हैं, जिनमें असंख्य कीटाणु भरे रहते हैं। यक्ष्मा-रोगियोंकी सेवा करते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए।

जलमें—इसमें भी कीटाणुओंकी संख्या बढ़ती घटती रहती है।

भूमिमें—इसमें बहुसंख्यक कीटाणु भरे पड़े रहते हैं विशेषकर ऐसी भूमिमें जहाँ कृत्रिम खाद डाला गया हो।

मानव शरीरमें—त्वचा पर जमे हुए असंख्य कीटाणु पाये जाते हैं जो बाहरसे आ आकर बैठते हैं। इनमें से बहुतसे कीटाणु धुल जाते हैं किन्तु कुछ साधारणतः अपना निवास इसी पर बनाये रहते हैं। इसी प्रकार पाचक-प्रणालीमें मुखसे लेकर मलाशय तक असंख्य कीटाणु भरे पड़े रहते हैं। अन्य प्राकृतिक गर्त्तोंके बाहरी भागमें बहुतसे कीटाणु मिलते हैं। किन्तु निरोग अवस्थामें त्वचाके भीतर वा रक्त-धारा-में एक भी कीटाणु नहीं रहते। ऐसी अवस्थामें एकाध कीटाणु किसी प्रकार इन स्थानोंमें प्रवेश भी कर गये तो इनका शीघ्र नाश हो जाता है। किन्तु जब शरीरकी अवरोधिनी शक्ति (Resisting power) नष्ट हो जाती हैं वा कम हो जाती है तब कीटाणु शरीरमें जहाँ तहाँ अपना पैर जमा लेते हैं और क्रमशः फैलने लगते हैं। शरीरमें ये बहुत दिनों तक मूक बन कर गुप्त रूपसे भी रह सकते और अवकाश पाते ही अपना कार्य्य दिखाने लगते हैं। किसी पुराने घावके भरते समय कुछ कीटाणु उनमें सम्भवतः बन्द हो जाते हैं और बहुत दिनों तक चुप लगाये रहते हैं। किन्तु ज्योंहीं किसी दूसरे स्थानमें एक क्षत आरम्भ हुआ कि ये अपना विकराल रूप दिखा

देते हैं। यक्ष्मा कीटाणु इस काम में बड़े कुशल हैं। ये वर्षों तक किसी स्थानमें गुप्त रूपसे पड़े रहते हैं और अनुकूल समय पाकर पुनः प्रकट हो जाते हैं।

यक्ष्मा-कीटाणु

ये पतली रेखाकी भांति लम्बाई से २ से ५ माइक्रौन* तक मध्यमें कुछ वृत्ताकार होते हैं। इनमें गुठलियां नहीं होतीं, न पुच्छ ही होती है। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा दो कीटाणु एक दूसरे को छूते हुए एक कोणके रूपमें देख पड़ते हैं। इनकी पुनरुत्पत्ति एक कीटाणुके समद्विभाग होनेसे होती है।

खाद्य—साधारण खाद्य इन्हें नापसन्द होता है। रक्त-रस इनकी बड़ी प्रिय वस्तु है किन्तु दूसरी बार उपजाने पर ये जिलेटिन-अगर ×(Gelatin-agar) माध्यम से भी उपज आते हैं। अण्डा इनका सर्वोत्तम खाद्य है।

रंग—ये साधारण रंग जिससे अन्य बहुतसे कीटाणु रंग जाते हैं नहीं ग्रहण करते। इनके रंगनेकी एक विशेष रीति है। जिस खखार (बलगम) में इनके पाये जानेकी सम्भावना रहती है उसका एक वा दो बूंद कांचके एक चौकोर समतल टुकड़े स्लाइड (Slide) पर लेकर दूसरे टुकड़े वा स्लाइड से रगड़ते हैं जिससे खखार यहाँ वहाँ काँच पर फैल जाता है और एक पतले जाल का सा हो जाता है। तब इसे सुखा देते हैं और लोहेको तिपाई पर रखकर ऊपरसे कार्बल-फुचसिन नामक (Carbol Fuchsin) रंग ढाल देते हैं। तदुपरान्त तिपाईके नीचेसे गैसदग्धक द्वारा इतनी आंच पहुँचाते हैं कि कांच पर पड़ा हुआ रंग कुछ कुछ भाप बनने लगता है। इससे अधिक
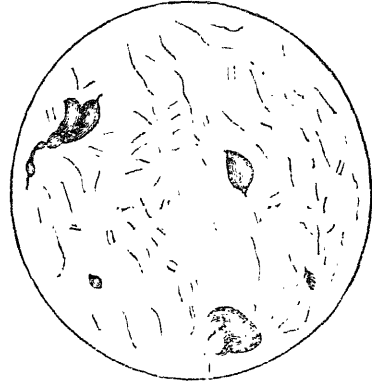
चित्र ६

तापकी आवश्यकता नहीं होती। अस्तु, ज्योंही भाप बनना आरम्भ होता है दग्धक को हटा लिया जाता है, और कांचको ठंडा होने दिया जाता है। तब कांचको साफ जलसे धोया जाता है और पुनः उसे (लगभग ५ मिनटके) ऐसे जलमें धोते हैं जिसमे $\frac{1}{4}$ अंश गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) मिला रहता है। कांच तब तक बार बार धोया जाता है एवं गन्धकाम्ल निश्रित जलमें डुबाया जाता है जब तक उससे लाल रंग निकलना बन्द नहीं होता। अन्तमें उसे साफ जलसे धोकर सुखा लेते हैं। तब उसपर मेथिलिननील (Methylene Blue) नामका रंग डालते हैं और कांचको ४।५ मिनट तक छोड़ देते हैं। अब सारा कांच नीले रंगसे रंग जाता है। उसे पुनः धोकर सुखा लेते हैं। अन्तमें कांच पर एक वा दो बूंद सेडर तैल (Cedar oil) देकर अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा उसकी परीक्षा करते हैं। इस यन्त्र द्वारा देखने पर सारा कांच काले रंगका दिखाई पड़ता है। केवल दो एक स्थानोंमें (संख्याके अनुसार) शलाकाकार यक्ष्माकीटाणु लाल रंगसे रंगे नजर आते हैं। वास्तवमें गंधकाम्लमें पड़ कर इन कीटाणुओंको छोड़ अन्य सभी पदार्थोंके रंग धुल

---

* एक माइक्रौन = $\frac{१}{१००००००}$ मीटर के।

× पशुओंके खुर सींग इत्यादिको उबाल कर खानेसे उनमेंसे लेईकी सी एक वस्तु निकलती है उसे जिलेटिन कहते हैं।

जाते हैं। अस्तु, इन्हें अम्लग्राही (Acid fast) कीटाणु कहते हैं। इस प्रकारके अम्लग्राही कीटाणु दो और हैं। एक है कुष्ठ रोगका कीटाणु, यह यक्ष्मा-कीटाणुसे बहुत कुछ मिलता जुलता है, भेद इतनाही है कि यह कुछ मोटा होता है और रंग बहुत जल्द पकड़ता है। दूसरा कीटाणु है शिश्नगूथ कीटाणु (Sinegma bacillus)। यह मूत्र मार्गके निम्नतम अंशमें रहता है और इस प्रकार वस्ति (Bladder) में स्थित यक्ष्मा कीटाणु और इसमें धोखा हो सकता है। इसके पृथक् करनेका एक दूसरा उपाय है। स्लाइड पर कुछ मद्यसार (Alcohol) ढाल देनेसे शिश्नगूथ कीटाणुका रंग उड़ जाता है किन्तु यक्ष्मा-कीटाणुका रंग ज्योंका त्यों बना रहता है।

अवरोधिनी शक्ति—यक्ष्मा कीटाणुओंकी अवरोधिनी शक्ति बहुत प्रबल होती है। सूखे थूकमें प्रायः दो महीनेके उपरान्त भी ये पूर्ण-शक्ति-युक्त पाये जाते हैं। १००° शतांश ताप पर किसी तरल पदार्थमें उबलने पर ऐसा मालूम होता है मानो ये कीटाणु मर गये किन्तु यदि इन्हें उससे निकाल कर पुनः सुखा दिया जाय तो एकाध घण्टेमें ये अपनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

शरीरमें इनका निवास :—

नूतन क्षत (Acute Lesions) में-विशेषकर जिसमें अधःक्षेपण क्रिया (Caseation) होती रहती है—असंख्य कीटाणु पाये जाते हैं। नूतन यक्ष्मा (विशेष कर बच्चोंकी) में प्लीहामें भी ये कीटाणु पाये जाते हैं। मूत्रमें, मलमें और वात-प्रवाही द्रव (Cerebrospinal fluid) में ये मिलते हैं। कभी कभी ये पीवसे भी प्राप्त होते हैं नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा (Acute milliary tuberculosis) में ये प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं।

जीर्णक्षत (chronic lesions) में ये बहुत कम मिलते हैं, किन्तु तो भी फुफुसावरणसे निर्गत द्रवमें, अधःक्षेपित पदार्थ (caseous matters) में और लसीका ग्रन्थियोंमें बहुधा मिलते हैं। कभी कभी ये रहते भी हैं तो इनकी संख्या इतनी कम होती है कि अणुवीक्षण यन्त्रसे भी इनका पता नहीं लगता। ऐसी अवस्थामें उन वस्तुओं को जिनमें इनके पाये जाने की सम्भावना हो सकती है (जैसे खखार इत्यादि। छोटे जन्तुओं (खरहे, विलायती चूहे इत्यादि। में प्रवेश कराते हैं और यदि उनमें कीटाणु वर्त्तमान रहे तो उन जन्तुओंमें यक्ष्माके लक्षण दिखाई देते हैं। कीटाणु बहुधा कोषोंके बाहर ही रहते हैं किन्तु कभी कभी दानव कोषोंमें और श्वेताणुओंमे भी रहते हैं।

रक्तधारामें। रोजेन्यूने इन्हें रक्तमे कई बार पाया है किन्तु अन्य वैज्ञानिकोंको इसका पता नहीं लगा है।

शरीरके बाहर कीटाणुओंका निवास। ये दूधमें, सड़कोंकी धूल और अन्य अस्वच्छ पदार्थोंमें पाये जाते हैं, किन्तु आश्चर्य इस बातका है कि यक्ष्मा स्वास्थ्यालयोंमें ये नहीं मिलते।

यक्ष्मा-कीटाणु चार प्रकारके होते हैं। जैसे

(१) मानुषिक
(२) पाशविक
(३) पक्षियोंमें पाये जानेवाले
(४) जलचरोंमे पाये जाने वाले

इनमें प्रथम दो प्रकारके कीटाणु अधिक पाये जाते हैं, अथवा यही दो मानव शरीर पर आक्रमण भी करते हैं। इन दोनों में निम्न लिखित भेद है।

मानुषिक	पाशविक
१ बनावट। कीटाणु कुछ लम्बे और पतले होते हैं।	१ कीटाणु कुछ छोटे और मोटे होते हैं।
२ पुनरुत्पत्ति। बहुत होती है, और जिन माध्यमों पर ये उपजाये जाते हैं वे देखने से शुष्क, छिलके के से, और पोले रंगके होते हैं।	२ बहुत कम होती है, और जिस माध्यमों पर ये उपजाये जाते हैं वे देखनेमें द्रवयुक्त, चिकने और श्वेत रंगके होते हैं।

मानुषिक	पाशविक
३ नाशकारी शक्ति। ये मानव फुफ्फुस पर अपनी शक्ति विशेष रूप से दिखाते हैं। (पाशविक प्रकारके कीटाणु मानव शरीरमें प्रवेश करवाने परभी परिमित स्थानमें क्षत उत्पन्न करते हैं)। खरहों पर इनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।	३ ये पशुओंमें अपनी शक्ति विशेष रूपसे दिखाते हैं। इनके शरीरमें यदि ये कीटाणु प्रवेश कराये जायँ तो सर्वांग-यक्ष्मा होने की शीघ्र सम्भावना रहती है। इनसे खरहोंकी मृत्यु तक हो सकती है।
बिलायती चूहोंके लिए	दोनों ही भयङ्कर हैं।
४ विवरण। मानव फुफ्फुसमें सदैव इन्हींका आक्रमण होता है। किन्तु अस्थियों, संधियों और प्राथमिक उदर-यक्ष्मामें सैकड़े ५० रोगियोंमें पाशविक कीटाणु मिलते हैं।	४ पशुओंमें सदैव इसी प्रकारके कीटाणु पाये जाते हैं।

विल्हेल्म कोन्राड रौञ्जन

१८४६ से १९२३ तक

[ले० श्री जनार्दन प्रसाद शुक्ल]

यदि किसी घटके अन्दर एक घण्टी रक्खी जाय और उससे आवाजकी जाय तो वह सुनाई देती है पर जब उसके अन्दरकी वायु किसी पम्प द्वारा निकाल जाय तो जैसे जैसे वह कम होती जाती है वैसे ही आवाज़ भी धीमी होती जाती है। यानी वायु ही आवाज़के चलनेका माध्यम है और घण्टी द्वारा सञ्चालित लहरें घटके अन्दर वायुमें चल कर उसकी दीवारोंमें भी वही लहरें उत्तेजित करती हैं पर वायु कितनी ही निकालने पर भी घण्टीका दिखाई देना बन्द नहीं होता। यानी पम्प प्रकाशके माध्यम को नहीं निकाल सका। सच तो यह है कि कितनी ही वायु निकालने पर भी उसका दिखाई देना बन्द नहीं होगा।

वैज्ञानिकों ने प्रकाशके माध्यमको शून्य या ईथर माना है। पर इसके बारे में और कोई गुण नहीं मालूम है। किन्तु इतना अवश्य है कि वह लहरोंके सञ्चालन करनेमें पूरासमर्थ है, चाहें वह लहरें प्रकाशकी हों, विद्युत की हों, ताप की हों, या और कोई। अन्तर इतना है कि लहर लम्बाई नाप छोटी या बड़ी होने पर ही ताप या प्रकाश आदिकी लहरोंमें परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार एक इञ्चके चालीस हजारवें हिस्से के बराबर छोटी लहर-लम्बाई की लहरें एक सेकण्ड में ५०००००००००००० बार जब आँख में आती हैं तो हम लाल रङ्ग देखते हैं और जब एक इञ्च के अस्सी हजारवें हिस्से के बराबर छोटी लहरें १००००००००००००० आती हैं तो नीला रंग। इसीके बीचमें सब रंग आ जाते हैं। पर इससे भी छोटी और बड़ी लहरें हैं जो हम नेत्रों से नहीं देख सकते। उनसे यन्त्र द्वारा काम अवश्य ले सकते हैं। और अगर हम आतशी शीशेसे प्रकाश एक स्थान पर इकट्ठा करें तो जो ऊपर कही हुई लहरोंसे बड़ी हैं वह ताप देती हैं और रुई जल उठती है। इन लहरों से भी बड़ी लहरें विद्युत् की हैं जिनकी लहर लम्बाई एक इञ्च से बीस हजार गज

तक हो सकती है और यही बखेरी हुई लहरें हैं जो दूर दूर से हमको मिलती हैं और गाना सुनाती हैं। अब छोटी लहरों की ओर चलिए। जो लहरें ऊपर कहे हुए नीले प्रकाश से भी छोटी हैं वह कोई रङ्ग नहीं देती है पर उनका असर चित्र पट पर होता है।

अब यह जानना आवश्यक है कि जो यह बड़ी या छोटी लहरें भांति भांति के प्रकाश आदि हमको देती हैं वह एक ही प्रकार की छोटी या बड़ी शून्य की लहरें हैं, दूसरी किसी वस्तु की नहीं। यह ऐसाही है क्योंकि विद्युत् और प्रकाश दोनों ही की गति एक सेकेंड में १८५ हज़ार मील है और दोनों ही एक ही प्रकार परावर्तित या परावर्जित हो सकते हैं। एकही प्रकार एक केन्द्र पर इकट्ठा भी की जा सकती है।

इस संसार में हर एक वस्तु छोटे छोटे कणों की बनी हुई है। इन कणों को वैज्ञानिक परमाणु कहते हैं ये एक सूर्य्यमण्डलके समान है किनके केन्द्रमें धन विद्युत् और चारों ओर ऋण विद्युत् है। ये ऋणाणु अपने पथ पर असंख्य चक्कर लगाया करते हैं। इन पथों के बीच में भी आकाश के समान वैज्ञानिकों ने शून्य या ईथर की स्थिति मानी है। इस प्रकार छोटी प्रकाश लहरें जो शून्य में संचालित होती हैं कुछ वस्तुओं के नीचे से होकर निकल जाती हैं और ऐसी वस्तुएँ पारदर्शक कहलाती हैं। उक्त घट में भी शीशा उन्हीं वस्तुओं में से हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि कैसा ही पम्प उसको खाली करने में लगाया जाय घण्टी हमेशा दिखाई देगी।

पर अब यह जानना है कि सभी वस्तुओंके बीचसे लहरें क्यों नहीं निकल जाती हैं यानी सभी क्यों पार नहीं जाती है। यह एक बड़ी समस्या है। अभी इससे अलग रहना ही उचित होगा। अगर हम एक टीनका पत्र एक भट्टीके सामने रक्खें तो उसका प्रकाश आना तो बन्द होजाता है पर उसकी उस सतह पर जो हमारी ओर है मोम रखनेसे पिघलने लगता है। इससे यह विदित हुआ कि पत्र तापकी लहरों को निकल जाने देता है पर प्रकाश की लहरों को नहीं। यानी यह जो वस्तुओंमें भेद है कि एक पारदर्शक है दूसरी नहीं एक उनके कणोंपर लागू हुआ जिसपर कि बड़ी या छोटी लहरोंके अलग अलग असर हुए। अब इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ऐसी लहरें भी बनाई जा सकें जो इतनी छोटी हों कि कहीं जानेमें उन्हें रुकावट न हो। कुछ ही समय हुआ, ऐसी लहरोंका आविष्कार हुआ। ये कुछ वस्तुओंसे वेगके साथ और कुछसे कठिनाईके साथ पर लगभग सब वस्तुओंसे होकर निकल जा सकती हैं। इनकी लहर लम्बाई जैसा कि सोचा गया था बहुत छोटी निकली।

इन छोटी और महान लहरों का ढूँढ़ने वाला "विल्हेलम कोन्राड रौञ्जन (Wilhelm kenrad Rontgen) था।" उसने इनका नाम एक्स किरण रक्खा। इन किरणों द्वारा मनुष्य मात्र को जो लाभ हुए हैं या हो रहे हैं उसकी व्याख्या भी बड़ी लंबी है। इनसे शरीर की टूटी हुई हड्डीका पता लगाना, उसमें गोलीकी स्थितिका पता लगाना और अनेक बीमारियोंको अच्छा करना आदि बहुत ही सरल हो गया है।

एक ऐसे मनुष्यका नाम इस संसारमें अमर रहेगा। पाठक-गण उक्त रौञ्जनके जीवन और उनकी उस शिक्षाकी रीतिके बारेमें जिसने उसे इतना बड़ा काम करनेमें समर्थ किया अवश्य उत्सुक होंगे। आपका जन्म २३ वीं मार्च सन् १८४६ ई० में प्रशिया देशके लेनेप (Lennep) नामक नगरमें हुआ। उनका देश विज्ञानकी कठिन तपस्या और धैर्यमें प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि जर्मनीका हर एक विद्यार्थी और देशोंके विद्यार्थियोंसे बिल-कुल भिन्न होता है। जब आपकी आरंभिक शिक्षा समाप्त हुई तो आप होलेंडके उट्रेक्ट (Utrecht) नामक प्रसिद्ध विश्वविद्यालयमें भेजे गये। यहाँ हर प्रकारकी शिक्षाका केन्द्र था। और न किन्तु इतना ही पर उनकी जन्मभूमिसे निकली हुई नदी भी उट्रेक्ट के बीचसे निकलती है और अनेक पुलों द्वारा सुसज्जित नगर अति सुन्दर प्रतीत होता है। ऐसे नामी स्थान पर रौञ्जनको शिक्षा मिली जहाँ

बड़े बड़े वैज्ञानिक और इतिहासिक विद्वानोंने अपनी तपस्या द्वारा अनेक बड़े काम किये। उट्रेक्ट (Utrecht) नगर सुन्दर ही नहीं पर एक व्यापारिक केन्द्र भी है। वहाँ ऊनी कपड़े, दरी मखमल, तम्बाकू आदिसे लेकर ताँबा, चाँदी, लोहा आदि सब अच्छे बनते हैं। ऐसे स्थानके विश्वविद्यालयमें ८०० छात्र-गण संसारके कठिन संग्रामके लिये शिक्षा पाते थे; उनमेंसे रौञ्जन भी एक था। पर इस विश्वविद्यालयका अध्ययन उसकेलिए काफी न था और वह ज्यूरिच (Zurich) भेज दिया गया। यहाँ पर उसने सन् १८६९ ई० तक शिक्षा पाकर विज्ञानकी डाक्टरी की उपाधि प्राप्त की।

अपने विद्याध्ययनके समयमें इनको भौतिक और विद्युत् सम्बन्धी बातोंसे अधिक प्रेम था और उन्होंने इसमें अनेक आविष्कार किये। पर इनका नाम एक्स किरण (X-rays) के संबंधमें ही बहुत प्रसिद्ध है। जब ये ज्यूरिचमें (Zurich) थे तो किसको यह मालूम था कि यह विचारवान लंबा पुरुष आगे चलकर इतना बड़ा काम करेगा कि जो उनके लिये भी गर्व को बात होगी। आपके साथ कुछ देर तक वार्तालाप करने पर यह स्पष्ट होजाता था कि आपकी विचारधारा अन्य पुरुषोंसे कहीं अधिक द्रुतिगामी और निर्मल है। जूरिच नगरके छोड़नेके बाद आपने अपना अधिक समय प्रयोग करनेमें बिताया। कुछ अवसर तक वुर्जबर्ग (Wurzburg) और स्टैसबर्ग (Strasburg) में भौतिक पढ़ाने के बाद आप सन् १८७५ ई० में होबनहिम (Hobenhim) के कृषि विभाग में अध्यापक हो गये। आपने पास्टयूर के स्थान पर पदार्पण करके उनसे बड़ा ही काम किया। तीन वर्ष तक वहाँ हैसे (Hesse-Darmstadt) रहने के बाद आप डार्म्सटेट नामक प्रान्तके गीसेन (Giessen) नगर भौतिकशालाके अध्यक्ष और अध्यापक हो गये। और ऐसे स्थान पर जहाँ लीबिग (Liebig) जैसे रसायनिकोंने काम किया था पहुँच गए। आपने इस समय तक अच्छा नाम कमा लिया था पर तब तक भी वह आविष्कार न कर पाए जिसके लिए वह इतने प्रसिद्ध हैं। सन् १८९५ ई० को उनके कठिन श्रम का फल मिला।

इस आविष्कार के समझनेके लिये हमें पीछे की कहानी फिर पढ़नी पढ़ेगी। आपने हर्ट्ज और क्रूक्स (Hertz & Crookes) आदि वैज्ञानिकों के श्रम पर उन्नति की और शून्यनली और खाली करते गये। जब तक उन्हें लेनार्ड नामक किरणें मिलीं। उस पर उन्होंने कमरा बन्द कर जब यह मालूम किया कि इन किरणों में क्या सामर्थ्य है तो उन्हें भी यह विश्वास न था कि उन्होंने कितना बड़ा काम कर डाला। ये किरणें किसी ठोस पदार्थ में आसानी से जा सकती हैं। पर जब उन्होंने औरों से कारण पूछा तब उन्हें अपने परिश्रम के पूरे महत्वका ज्ञान हुआ। तब क्या था, जहाँ देखो, वहीं रौञ्जन किरणों पर प्रयोग होने लगे।

एक ऐसी तरकीब जो टूटी हुई हड्डी, घुसी हुई गोली इत्यादिकी ठीक स्थिति बिना किसी कष्ट के बता दे उसका कहना ही क्या। हाथ की सुई आदि की स्थितिके लिये उसे चमक-सूचक (fluoroscope) और क्रूक्स नलोंके बीच में रख कर बाहरसे देखना ही कुल समस्या है। यही नहीं, अब तो इससे केन्सरके समान घातक रोगोंका नष्ट होना देखा गया है। एक सच्चे और झूठे हीरे की पहचान आदि अनगिनती लाभ इन्हीं द्वारा हो रहे हैं। पश्चिम की रमणियाँ तो बिना रौञ्जन किरण के जूती पहनना भी कमकदरी समझती हैं।

अभाग्य हमारी मातृभूमिका कि इस समय भी इने गिनेही रौञ्जनरश्मियंत्र यहाँ दिखाई देते हैं। एक ऐसी वस्तु जो विलायतमें एक एक चमार के पास पाई जासकती हैं भारतवर्ष के सिबिलसार्जन साहब को नसीब नहीं। यह इस देश का दुर्भाग्य नहीं तो क्या।

त्रपिन एवम् कर्पूर

[ले० श्री व्रज बिहारीलाल दीक्षित एम० एस-सी०]

असम्पृक्त त्रपिन एवम् कर्पूर

यों तो त्रपिनकी सारी समस्या ही बहुत कुछ नई है तथापि यह इस नए लगे हुए वृक्षकी और भी नई ही प्रशाखा है। थोड़े ही दिन हुए होंगे कि टीमन तथा सेमलर साहेबने ऐसे सब व्यक्तिगत यौगिकोंको जिनका कि संगठन $क_5 उ_8$ या इसीके किसी गुणकसे दर्शाया जा सके परन्तु जो कोई चक्र न होने कारण त्रपिनोंमें सम्मिलित नहीं किए जा सकते, भली भांति पढ़ा और उन पर विचार करके उन सबको एक अन्य ही समुदायमें रक्खा और उनका एक संगठित चित्र वैज्ञानिक जगतीके सन्मुख उपस्थित किया। इस नए समुदायका नाम उन्हीं लोगोंने असम्पृक्त त्रपिन एवम् कर्पूर रक्खा था क्योंकि यह सब खुली शृंखलाके यौगिक थे। इनके गुण एक ओर इसी नामके उदकर्बनोंसे बहुत कुछ समानता रखते हैं और दूसरी ओर वास्तविक त्रपिनों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। संगठनकी समानताके अतिरिक्त उनका रासायनिक व्यवसाय भी बहुत कुछ वास्तविक त्रपिनों हीका सा होता है। इसके अतिरिक्त यह बात भी अब सर्वसिद्ध हो गई है कि जिन जिन पुष्पोंमें ऐसे यौगिकोंकी विद्यमानता होती है उनकी भीनी तीव्र हृदयाकर्षक सुगन्धोंके वास्तविक कारण यही होते हैं। नारंगीकी कलियों में, गुलाबके फूलोंमें, लेवेण्डरमें, सभीमें इसी समुदाय का कोई न कोई व्यक्ति होता है चाहे वह कितनी भी न्यूनतम मात्रामें क्यों न हो। सभीमें रूप गुण एवम् संगठनकी समानता होती है और साथ ही साथ त्रपिन एवम् कर्पूरोंसे भी निस्संकोच रूपमें घनिष्ट सम्बन्ध दिखलाते हैं। प्रत्येकमें दस कर्बन परमाणु होते हैं जो इस प्रकारसे प्रबंधित रहते है कि छः तो एक सीधी रेखामें रहते हैं, तीन असम्पृक्त सम अग्रोलकी पार्श्वश्रेणीके रूपमें एक सिरे पर और दसवां कर्बन परमाणु उसी सिरे परसे चौथे कर्बनमें दारील मूलके रूपमें लगा रहता है। दूसरे शब्दोंमें, सारा संगठन ऐसा होता है मानो किसी एक चक्रिक त्रपिन या कर्पूरका चक्र खोल कर फैला दिया गया हो। इस समुदायके पूर्ण परिचित यौगिकोंके रूप प्रायः निम्न रूपसे दर्शाये जा सकते हैं—

गुलवियोल (Geranid) तथा नीरोल (Nerol)
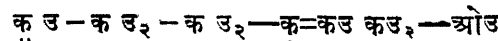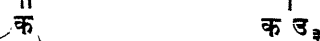
$क उ - क उ_2 - क उ_2 — क{=}क उ\ क उ_2 — ओ उ$
(पहले क उ पर द्विबन्ध से क, जिस पर $क उ_3$ तथा $क उ_3$; क=क पर $क उ_3$)

(निलम्बु Citral) तथा नीरल (Neral)

$क उ - क उ_2 - क उ_2 — क{=}क उ - क उ_2\ ओ उ$
(पहले क उ पर द्विबन्ध से क, जिस पर $क उ_3$ तथा $क उ_3$; क=क पर $क उ_3$)

लैवेन्द्रोल (Linalol)

$क उ - क उ_2 — क उ_2 — क — क उ{=}क उ_2$
(क पर ओ उ तथा $क उ_3$; पहले क उ पर द्विबन्ध से क, जिस पर $क उ_3$ तथा $क उ_3$)

रोदिन्योल (Rhodinol)

$क उ\ \ क उ_2 — क उ_2 — क उ — क उ_2 - क उ_2 - ओ उ$
(पहले क उ पर द्विबन्ध से $क उ_3 — क — क उ_3$; क उ पर $क उ_3$)

रोदीनल (Rhodinal) क उ – क उ₂ – क उ₂ – क उ – क उ₂ – क उ ओ
```
                    ||                     |
                    क                     क उ₃
               /        \
          क उ₃           क उ₃
```

निम्बुन्योल (Citronellote) क उ₂ – क उ₂ – क उ₂ – क उ – क उ₂ – क उ₂ – ओ उ
```
                              |                    |
                        क उ₃   क = क उ₃              क उ₃
```

निम्बुनल (Citronellal) क उ₂ – क उ₂ – क उ₂ – क उ – क उ₂ – क उ ओ
```
                          |                    |
                  क उ₃ – क = क उ₃               क उ₃
```
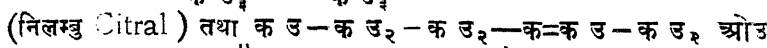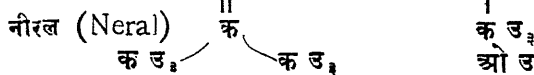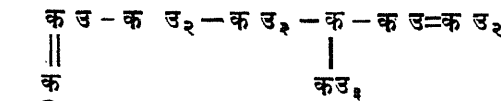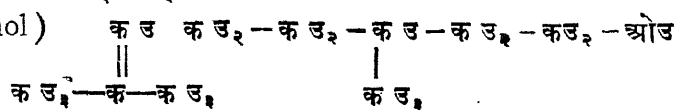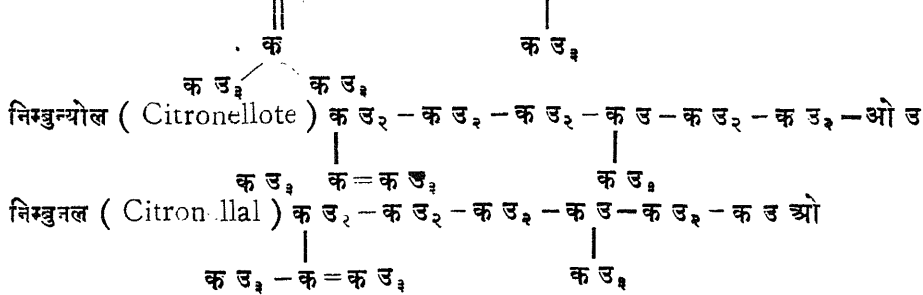
इनका ऐसा स्वरूप और उनका एक चक्रिक त्रपिनोंकी चक्रिक श्रंखलाके खुलनेसे बना होना केवल रसायनज्ञकी अनुमान शक्तिका दिग्दर्शन ही नहीं है। वास्तवमें इनका यही स्वरूप होता है, यही इस अध्यायमें दिखलाया जावेगा। दूसरी बातके विषयमें इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि चक्रिक त्रपिन ऐसे त्रपिनसे बड़ी ही सरल रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं और उसी प्रकार चक्रिक त्रपिनोंसे उन्हीं क्रियाओंको उलट देनेसे खुली श्रृङ्खलाके त्रपिन प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार निम्बुनल मिरकमद्यानार्द्रके साथ गरम किए जाने पर समपुलीगोलमें और यह ओषदीकरणसे समपुली गोनमें परिवर्तित हो जाता है। अन्तिम यौगिक भार उदौषिद्के संसर्गसे पुलीगोनमें बदल जाता है।

निम्बुनल　　　　　　समपुलीगोल

```
        क उ₃                        क उ₃
         |                           |
क उ₂—क उ—क उ₂             क उ₂—क उ—क उ₂
 |             |             |            |
क उ₂—क उ—क ओ              क उ₂—क      —क ओ
        |                          ||
क उ₃—क  = क उ₃             क उ₃—क—क उ₃
```
समपुलीगोन　　　　　　पुलीगोन
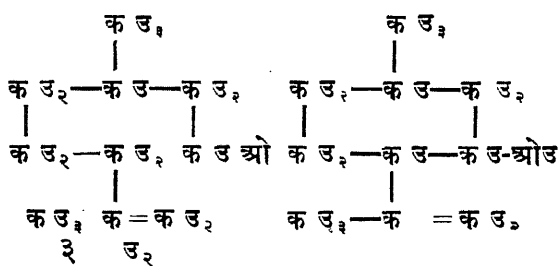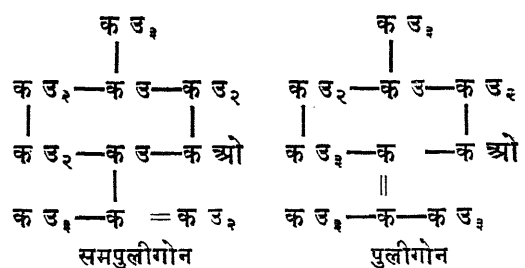
इसी प्रकार रोदीनोन पुदीनोल (menthone) में परित्रर्तित हो जाता है। पिपीलिकाम्ल की विद्यमानता में लैवेन्द्रोल द्विप्रीन एवम् त्रपिनीनके मिश्रणमें परिवर्तित हो जाता है।

चाक्रिक त्रपिनोंसे असम्पृक्त त्रपिन प्राप्त करनेका एक साधारण उदाहरण पुदीनोनसे है। यह कीतोन प्रथम ओषिममें परिवर्तित कर लिया जाता है और उसको अनार्द्रित कर देनेसे पुदीनोन नोषिल प्राप्त हो जाता है। इसका साधारण तापपर अवकरण करनेके अमीन प्राप्त होता है जो नोषसाम्ल द्वारा विभाजित कर दिया जाता है और इस प्रकारसे प्राप्त मद्यका ओषदीकरण करनेसे मद्यानार्द्र प्राप्त होता है जो निस्संकोच एक खुली श्रृङ्खलाका व्यक्ति है। यह निम्बुनल का समरूपक होता है और जिसकी गन्ध गुलाबकी गन्धसे बहुत कुछ मिलती है।

समप्रीन (isoprene) इस समुदायकी सबसे ही सरल वस्तु है। इसका सूत्र केवल $क_5 उ_8$ है और स्पष्टतः इसमें दो कर्बन द्विबन्ध होते हैं। व्यापारिक प्रसिद्धिके कारण (क्योंकि इसीसे आजकल रबर बनाई

जाती है) और अपने समुदाय के सम्बन्धी जनोंके लिए एक प्राथमिक वस्तु होनेके कारण लोग ने इसकी ओर बहुत ही ध्यान दिया और इसका पठन-पाठन बड़ी ही गम्भीरतासे किया। इसका सन्श्लेषण भी अनेक प्रकारसे किया जिसमेंसे दो रीतियां तो जगत्प्रसिद्ध हैं। पहिली तो सन् १८९८ में युलर साहेब की दारिल प्रभुलिदिन (pyrrolidine) द्वारा और दूसरी उससे एक वर्ष पहिलेकी इपैट्यूकी द्विदारील एलीन—द्वारा है। दारील-प्रभुलिदिन को प्रथम दारील नैलिदसे प्रतिकृत करते हैं और इस प्रकार प्राप्त द्वि-दारील-दारील प्रभुलिदिनम् नैलिदको पांशुज ओषिद द्वारा विभाजित करते हैं। इस प्रकार प्रभुलिदिन का चक्र खंडित हो जाता है और द्वि-दारील-दारील-प्रभुलिदीन प्राप्त हो जाता है। एक बार फिर इसी दारील नैलिदको योग करके प्राप्त पदार्थको पांशुज-ओषिद द्वारा विभाजित करनेसे त्रिदारील अमीन और समप्रीन प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार—

```
क उ३ – क उ – क उ२          क उ३ – क उ – क उ२
   |       |     क उ३ नै       |         |
  क उ२   क उ२ ————————>      क उ२     क उ२
     \   /                       \   /
      नो उ                   क उ३ – नो – नै
  दारील प्रभुलिदिन                   |
                                    क उ३

                 क उ३ – क उ   क उ२
 ————>                 |      ||
 पां ओ उ              क उ२   क उ२
                        |
                 क उ३ — नो — क उ३
                 क उ३ – क उ – क उ
 ————>                  |      ||
 क उ३ नै               क उ२   क उ२
                        |
              (क उ३)३ – नो – नै
                     ↓   पां ओ उ
क उ३ – क – क उ  + नै (क उ३)३ + उ नै
      ||     ||
     क उ२  क उ२
         समप्रीन
```
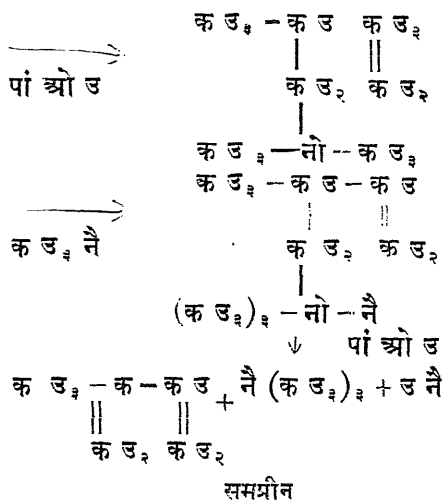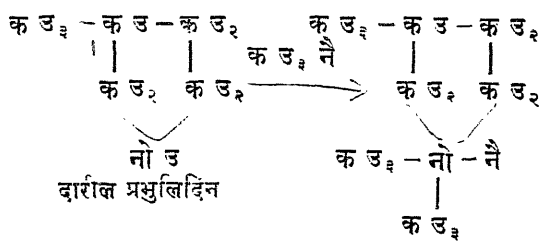
द्विदारील एलीन द्वारा संश्लेषण इससे अत्यन्त ही सरल है। उसमें दो कर्बन द्वि-बन्ध होते ही हैं। उन्हीं पर उदअरुणिकाम्लके दो अणु योग कर दिए जाते हैं और पुनः मोद्यजपांशुजओषिद द्वारा यही दोनों अणु उपरि प्राप्त २-दारील २, ४-द्विअरुण नवनीतेनमें से पृथक् कर दिए जाते हैं। इस भांति—

```
क उ३ \
      > क = क = क उ२    ————>
क उ३ /
     द्विदारील एलीन
           रु          रु
           |           |
(क उ३)२ क    क उ२    कउ२   ->
  क उ२ == क – क उ२ = क उ२
          |
         क उ३
        समप्रीन
```
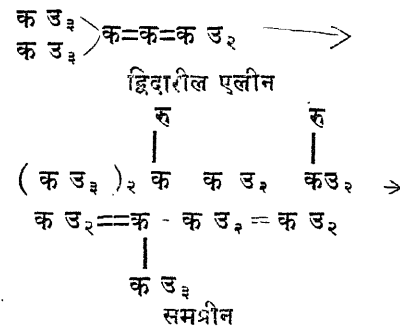
सिरकोनसे भी एक अत्यन्त ही सुन्दर सन्श्लेषण समप्रीन का अभी हाल ही में निकला है। सिरकोन को सैन्धामिदसे प्रतिकृत करने पर एक सैन्धक यौगिक बनता है जो सिरकोनको योग करके २ सूत्र का यौगिक बनाता है। उसके अवकरणसे ३ सूत्र वाली वस्तु मिलती है जिसमेंसे केवल जल का एक अणु निकाल लेनेसे समप्रीन आ जाती है। इस प्रकार—

```
(क उ३)२ क ओ ————> क उ२ = क – ओ सै
           सैन्धामिद         |
   सिरकोन                  क उ३
              ओ सै          (२)
               |
 ————> (क उ३)२क – क ≡ क उ
 सिरकोन          ओउ
                  |
 ————> (क उ३)२क – क उ = क उ२ (३)
               | उ२ ओ
               ↓
   क उ२ = क – क उ = क उ२
          |
         क उ३
        समप्रीन
```
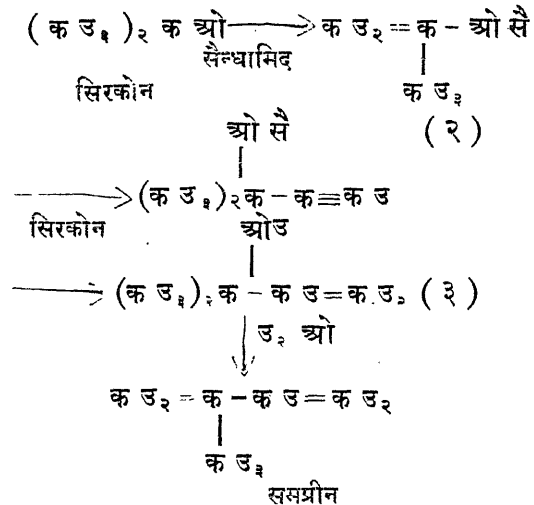
इन सब संश्लेषणोंके अतिरिक्त समप्रीन भारतीय रबरसे शुष्क स्रवण द्वारा भी उत्पन्न होती है और तारपीनके तैल को रक्त-ताप पर विभाजित करनेसे भी। सम्पृक्त उदहरिकाम्लके संसर्गसे यह स्वयं भी एक ऐसे बहुरूपकमें परिवर्तित हो जाती है जो भारतीय रबरसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। बहुत समय तक किसी शोशी में बन्द रहनेसे अथवा सूर्य्य के प्रकाशमें अम्लोंके लेशसे भी यह परिवर्त्तन हो सकता है। ३००° श तक तप्त किये जाने पर समप्रीन द्विसमप्रीनमें बदल जाती है जो द्विप्रीन ही प्रतीत होती है—

क उ$_3$
|
क उ$_2$ = क — क उ
‖
क उ$_2$
क उ$_2$ = क उ
|
क उ$_3$ — क = क उ$_2$

क उ$_3$
|
क उ$_2$ — क = क उ
| |
क उ$_2$ — क उ — क उ$_2$
|
क उ$_3$ — क = क उ$_2$
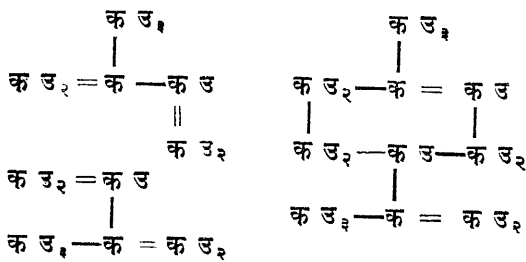
इसी प्रकार यह भी सरलतासे हो ग्रहण किया जा सकता है कि इसके तोन अणु मिल जानेसे एक त्र्यर्ध त्रपिन मिलेगा जिसका सूत्र क$_{15}$ उ$_{24}$ होगा परन्तु उसमें भी और स्पष्टतः प्रत्येक अणु के योग हो जाने पर एक कर्बन द्विबन्ध युक्त शृंखला जैसी की तैसी ही रहेगी और सदा ही एक नए अणुके योग का स्थान बना ही रहेगा। इसी का फल यह है कि इससे ऐसी वस्तु तक प्राप्त हो चुकी हैं जो भारतीय रबरसे अनेक रूपोंमें समानता रखती हैं। वास्तवमें व्यापारिक मात्रामें आजकल रबर बनती भी इसीके द्वारा है।

समप्रीनसे आगे अब हम अपना विचार निम्बुनल की ओर प्रस्तुत करते हैं जिसका इससे कुछ अधिक जटिलरूप होता है। इसको सर्व प्रथम निम्बूके तैल में से डाज साहेब ने सन् १८८९ में निकाला था। जब इसका अवकरण करते हैं तो इससे एक मद्य समुदाय का पदार्थ प्राप्त होता है जिसको निम्बून्योल कहते हैं। ओषदीकरण से इससे अम्ल प्राप्त होता है जिसको निम्बुनलिकाम्ल कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि यह पदार्थ कोई मद्यानार्द्र है। यह प्रकाश भ्रामक भी है जिससे यह सिद्ध होता है कि इसमें कोई न कोई असमसंग.तक कर्बन परमाणु अवश्य होगा। कौनसा मद्यानार्द्र है यह जाननेके लिए इसको जलीय घोलमें ओषदीकृत करते हैं। इस प्रकार सिरकोन एवम् व दारील अम्ल प्राप्त होता है और यह अनुमान किया जा सकता है कि हो न हो इसका संगठन इस प्रकार होगा—

क उ$_3$
क उ$_3$ > क = क उ - क उ$_2$ - क उ$_2$ - क उ — क उ$_2$ - क उ ओ
| |
↓ क उ$_3$

क उ$_2$
क उ$_3$) क=ओ + क ओ ओ उ क ओ ओ उ
सिरकोन |
क उ$_2$ - क उ$_2$ - क उ - क उ$_2$
|
क उ$_3$

ख-दारील पीनिकाम्ल

परन्तु यदि इसी प्रतिक्रिया को कुछ भिन्नरूप से करें तो इसके विपरीत ही प्रतीत होता है। हैरिस एवम् शावेकर साहब ने निम्बुनल ही को ओषदीकृत करनेके स्थानमें उसका द्विदारील सिरकल लिया और जलीय घोलके स्थानमें सिरकोन घोल का प्रयोग किया। इस प्रकार पांशुज परमांगनेतसे ओषदीकरण करनेसे द्वि उदौष द्विउद-निम्बुनल का सिरकल प्राप्त हुआ और इसको आगे ओषदीकृत करनेसे (रागिक अम्लसे) वह एक कीतो-मद्यानार्द्रमें परिवर्त्तित हो जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि द्विबन्ध उपर्युक्त स्थानमें नहीं है परन्तु कर्बन श्रेणीके अन्तिम भागमें है। इस प्रकार—

```
क उ२=क—क उ३—क उ२—क उ२ –क उ—क उ२ —क उ ओ
      |                    |
    क उ३                 क उ३

          ओ उ                  क उ३
           |                    |
ओ उ क उ२ — क—क उ२—क उ३ –क उ२क उ—क उ२ क उ ओ
           |
          क उ३
    द्विउदौष द्विउदनिम्बुनल
क उ३ –क—क उ२— क उ२ –क उ२ –क उ—क उ२ – क उ ओ
    ||                     |
    ओ                    क उ३

            कीतो-मद्यानार्द्र
```

इस प्रकार इस वस्तुके रासायनिक संगठनमें कुछ विवाद प्रतीत होता है। वास्तवमें बाद वाली बात अधिक विचार संगत और सिद्ध प्रतीत होती है क्योंकि इसमें सिरकल बन जानेके कारण मद्यानार्द्र मूल की जगह भली भांति स्थिर हो गई और द्विबन्ध के भी स्थिर होने का कोई कारण नहीं है इसके विपरीत जलीय घोलमें संगठनके परिवर्त्तन अनेक होते रहते हैं और प्रायः कर्बन द्विबन्ध अन्तिम स्थान से हटकर उप-अन्तिम स्थान पर आ गया होगा।

इतना तो रहा मद्यानार्द्र मूल और कर्बन द्विबन्ध के सम्बन्धमें, अब दारीलमूलके विषयमें भी कुछ विचार कर लिया जावे। जब यह स्वयम् बन्द बोतलमें अधिक समय तक रक्खा रहता है तो यह अपने एक समरूपक समपुलीगोलमें परिवर्त्तित हो जाता है। यही परिवर्त्तन सिरकिक अनार्द्रिदके साथ १८०° श तक तप्त करनेसे और भी शीघ्र हो जाता है। समपुलीगोल एक मद्य है और ओषदीकृत करने पर एक कीतोन समपुलीगोनमें परिवर्त्तित होजाता है जिससे कि समरूपक परिवर्त्तन द्वारा केवल कर्बन द्विबन्धके स्थान बदलनेसे पुलीगोन प्राप्त होजाता है। पुलीगोनमें यह सर्वसिद्ध ही है (और आगे दिखलाया जावेगा) कि दारील मूल और सम अम्रील मूल १:४ के स्थानमें हैं और यदि दारील मूलको यह स्थान न देकर अन्य कोई स्थान दिया जावे तो वह पुलीगोन १:४ के स्थानमें नहींआ सकता। इस प्रकार पुलीगोनके सम्बन्धसे और इससे स्वयम् ख-दारील पीनिकाम्ल बननेके आधार पर दारील-मूलको वही स्थान दिया जा सकता है जो कि निम्न सूत्रमें चित्रित किया गया है, जिसके अनुसार समस्त क्रियाएँ निम्नरूपसे होंगी—

+

क उ३ क ओ ओ उ

अब इसके आगे जिस समुदायका पठन पाठन है वह कुछ एक व्यक्तिका नहीं है। इसमें अनेक वस्तुएँ साथ साथ ही ले चलनेसे सुविधा रहेगी। परन्तु उन सब वस्तुओंका केन्द्र दारील सप्तनोन (Methyl heptanone) है। यह एक कीतोन है और प्रायः आगे वाली सभी वस्तुएं इससे सम्बन्ध रखती हैं। इस कारण यही विचार-संगत होगा कि पहले इसीका संगठन अच्छी तरह समझ लिया जावे जिससे आगेको सुविधा रहे।

यों तो इसके अनेक संश्लेषण हो चुके हैं परन्तु सबसे सुलभ और इसके संगठनसे परिचय कराने वाला ही यहां दे देना पर्य्याप्त होगा। इसमें संश्लेषण २-दारील २-४ द्विअरुणो नवनीतेनसे प्रारम्भ करते हैं। इसको सिरकील सिरकोनके सैन्धक यौगिकसे लिप्त करनेसे एक असम्पृक्त द्विकीतोन (२) प्राप्त होता है जिसपर किसी भी क्षारका प्रभाव डालनेसे वह सिरकाम्ल एवम् दारील-सप्तनोनमें विभाजित हो जाता है। इस प्रकार—
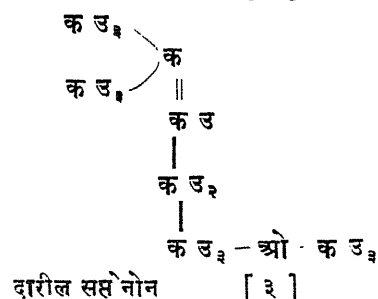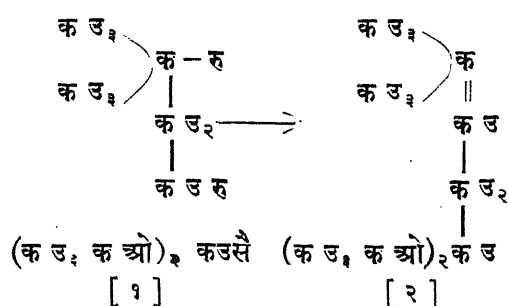
दारील सप्तनोनके रसायनिक संगठनके विषयमें इतना ज्ञान काफी होना चाहिए क्योंकि दोनोंही प्रारम्भिक पदार्थ पूर्ण परिचित पदार्थ हैं। उनके रसायनिक व्यवसायमें किसीको शंका नहीं हो सकती। परन्तु यदि और भी प्रमाणकी आवश्यकता हो तो वह इस सप्तनोनको ओषदीकरणसे प्राप्त किया जा सकता है। पहिले तो यह एक द्विउदौष कीतोनमें परिवर्त्तित हो जाता है जो फिर सिरकोन तथा उत्तरि काम्लमें विभाजित हो जाता है। इसके ओषदी-करणसे यह पदार्थ तभी मिल सकते हैं जब कि इस का रूप ऊपर कहे हुए अनुसार ही हो। इस प्रकार—

क उ३
　　〉क
क उ३　‖
　　　क उ
　　　|
　　　क उ२ — क उ२
　　　　　　　　〉क ओ
　　　　　　क उ३
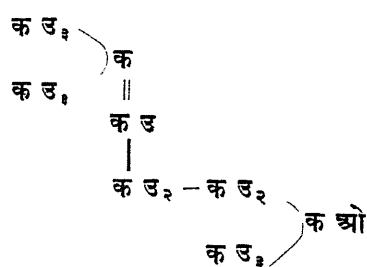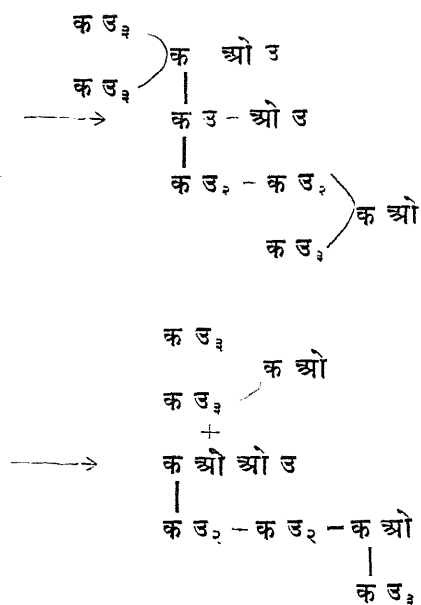
दारील सप्तेनोनका संश्लेषण हो जानेके पश्चात् गुल-विकाम्ल ([illegible]) का संश्लेषण भी बड़ी ही सरल बात थी। यह इससे कुछ सरल रसायनिक प्रतिक्रियाओंसे प्राप्त हो जाता है, उसको दस्तचूर्ण और नैलोसिरकिक सम्मेलके सम्पर्कमें लानेसे एक उदोष-अम्ल प्राप्त होजाता है जिसको सिरकिक अनार्द्रिदके साथ उबालने से गुलविकाम्ल प्राप्त होजाता है। सूत्रों में यह क्रियाएं इस प्रकार चित्रितकी जा सकती है—

दारील सप्तेनोन

उदौष द्विउदगुलविकाम्ल
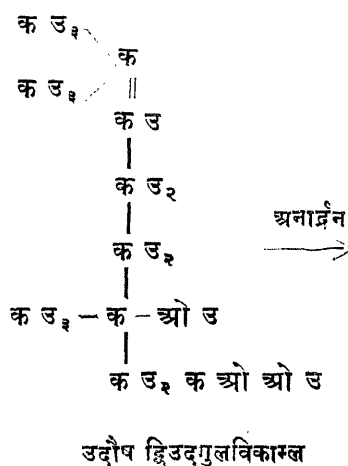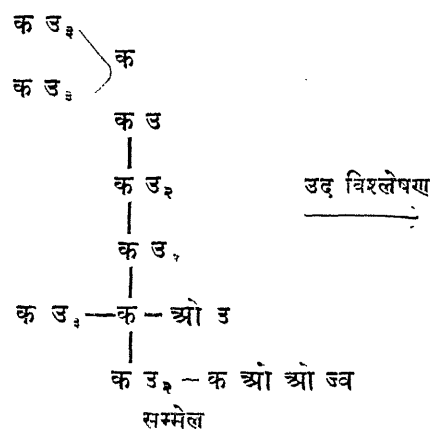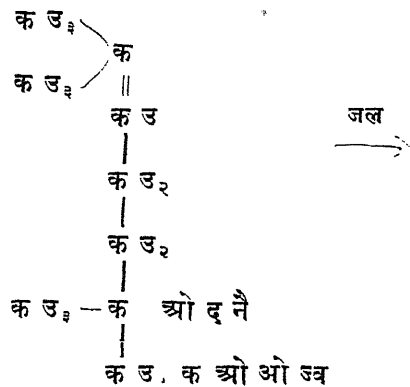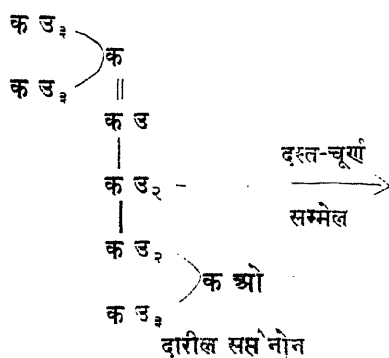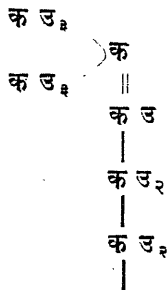
गुलविकाम्ल

गुलविकाम्ल कोई अधिक महत्व पूर्ण पदार्थ नहीं है परन्तु जिस प्रकार दारील सप्तनोन ७५% ान्धकाम्ल से अनार्द्रित किए जाने पर चक्रिक रूप ारण करके द्वि उदमध्य बनीन उत्पन्न करता है सी प्रकार यह भी उसी रसके संसर्गसे क-चक्रिक ुलविकाम्ल उत्पन्न करता है। इसका यह परि- र्त्तन भली भांति समझनेके लिए यह आवश्यक ोगा कि यह अनुमान कर लिया जावे कि गुल- वेकाम्ल एक ऐसा रूप धारण कर लेता है जो कि भी स्थित नहीं किया जा सका है। उसके अनुसार ारिवर्त्तन इस प्रकार होगा:—

गुलविकाम्ल

अनुमानित रूप

क-चक्रिक गुलविकाम्ल
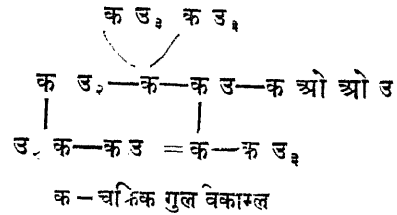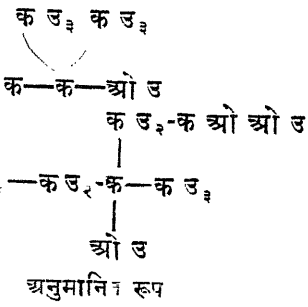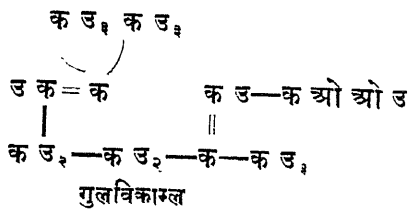
इस गुलविकाम्लका यदि सैन्धकम् और केलील मद्य द्वारा अवकरण करें तो यह रोदिनिकाम्लमें परिवर्त्तित हो जाता है। इसके दिग्प्रधान शक्ति वाला अम्ल—उत्तर भ्रामक रूप दिग्प्रधान शक्ति वाले मद्य रोदीनोलसे प्राप्त किया जाता है। यह दोनों ही अम्ल निम्बुनलिकाम्लके सम रूपक हैं जो कि निम्बु- नल मद्यानार्द्रके ओषदीकरणसे प्राप्त होता है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह निम्बुनलिकाम्ल का केवल दक्षिण भ्रामक रूप है। इसके विपरीत यह भी समझा जा सकता है कि निम्बुनल के संगठन के आधार पर निम्बुनलिकाम्ल का रूप निम्न सूत्रमें १ जैसा और गुलविकाम्लके संगठनके आधार पर रोदिनिकाम्ल का २ जैसा होगा—

क उ₂ = क - क उ₂ - क उ₂ - क उ₂ = क उ — क उ₂ - क ओ ओ उ
　　　|　　　　　　　　　　　　　　|
　　क उ₃　　　　　　　　　　　　क उ₃　　　　(१)

(क उ₃)₂ क = क उ - क उ₂ क उ₂ - क उ — क उ₂—क ओ ओ उ
　　　　　　　　　　|
　　　　　　　　　क उ₃　　　　　　　　(२)
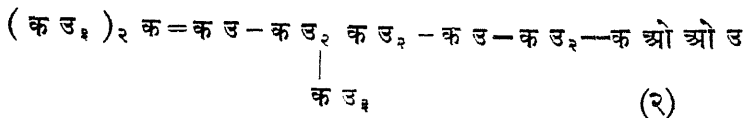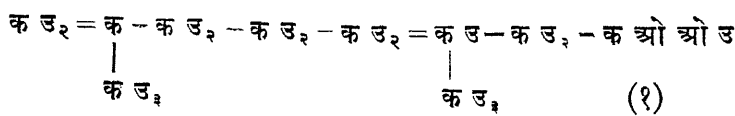
रोदिनिकाम्लके सम्मेलको जब सैन्धकम् और शुद्ध मद्यसे अवकृत करते हैं तो इससे एक मद्य प्राप्त होता है। इसे रोदीनोल कहते हैं और यह निम्बुनोल का समरूपक है परन्तु यह बात निर्विवाद रूपसे नहीं कही जा सकती कि दोनों ही यौगिक प्रकाशसम रूपक हैं कि संगठन समरूपक है। इनके रूप भी उपर्युक्त अम्लोंके ही समानान्तर है। रोदीनोल गुलाब एवम् जिरानियम के तैलमें होता और इसकी गन्ध भी बहुत कुछ ऐसी ही होती है। इसमें यह उत्तर भ्रामक रूपमें होता है।

रोदीनोल मद्य का अनुसारिक मद्यानार्द्र—रोदीनल—प्राप्त करनेके लिए रोदिनिकाम्ल एवम् पिपीलिकाम्लके खटिक लवणों को स्रवित करना पड़ता है। यह निम्बुनल का समरूपक है परन्तु निम्बुनल सिरकिक अनार्द्रिदके प्रभावसे समपुलीगोल में परिवर्त्तित हो जाता है और यह उसी दशामें पुदीगोन उत्पन्न करता है। यही कारण है कि इसका रूप निम्न सूत्रके अनुसार दर्शाया जाता है और इसीके आधार पर यह भी अनुमान किया जाता है कि इसके मद्य और अम्लके रूप भी इसीके समानान्तर ही होंगे—

```
      क उ₃                          क उ₃
       |                             |
क उ₂—क उ—क उ₂          क उ₂—क उ—क उ₂
 |            |            |            |
क उ₂—क उ   क उ ओ      क उ₂—क उ—क ओ
       ||                            |
क उ₃—क—क उ₃            क उ₃—क उ—क उ₃
     रोदीनल                    पुदीनोन
```
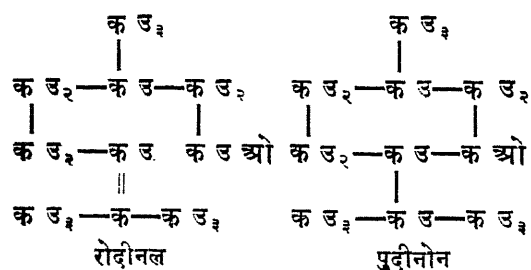
इसी भांति यदि गुलविकाम्ल और पिपीलिकाम्ल के खटिक लवणों को एक साथ स्रवित करें तो एक और ही मद्यानार्द्र प्राप्त होगा जो निम्बुल (citral) कहलाता है। बहुधा यह सभी उद्वायी तैलोंमें होता है और निम्बुके तैलकी सुगन्धका तो यह विशिष्ट कारण है। यह निम्बुघास तैलमें भी अधिक मात्रामें कभी कभी ७०—८०% तक होता है और इसकी कुछ न कुछ मात्रा नारंगीके तैलमें, मदारिनके तैलमें (Mandarin), निम्बेत (Limette) एवम् युकेलिप्टस के भी तैलोंमें अवश्य होती है। यह द्विकर्बन द्विबन्ध युक्त मद्यानार्द्र है क्योंकि यह अरुणिन्के दो अणुओं से योग करता है और ओषदीकरणसे गुलविकाम्ल में परिवर्त्तित हो जाता है।

इसके संगठनका अनुमान अधिकांश तो इसकी ऊपरदी हुई उत्पादन क्रियासे ही लगायाजा सकता है क्योंकि यह एक साधारण सर्वसिद्ध प्रति क्रिया है। इस प्रकार—

```
( क उ₃ )₂ क = क उ - क उ₂
                     |
                    क उ₂
                     |
                    क ( क उ₃ )
                     ||
                    क उ—क ओ  ओ ख
        +          उ  क ओ  ओ ख'
                 ↓
( क उ₃ )₂ - क = क उ - क उ₂
                      |
                     क उ₃
                      |
                     क ( क उ₃ )
                      ||
        +            क उ - क उ ओ
   ख क ओ₃
```
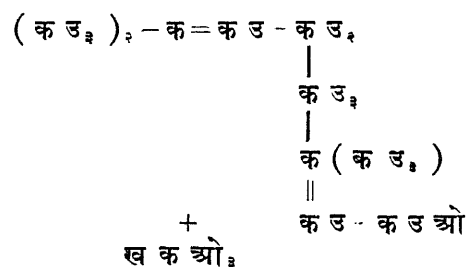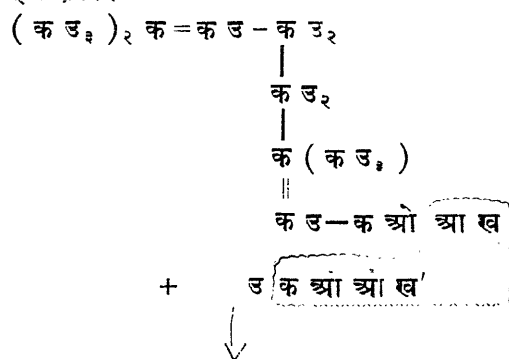
इसके अतिरिक्त पांशुज द्विरागेतसे इस मद्यानार्द्रको ओषदीकृत करनेसे अथवा इसको सैन्धक कर्बनेतके घोलके सम्पर्कमें तपानेसे भी यही सिद्ध होता है। प्रथम प्रतिक्रियामें सिरकोन और उत्तरिकाम्लमें विभाजित हो जाता है और अन्तिममें दारील सप्तेनोन और सिरकमद्यानार्द्र प्राप्त होता है। इस प्रकार निम्बुल का संगठन निम्बुनल अथवा रोदीनल जैसा ही होगा जिसमेंसे उदजनके दो परमाणु निकाल लिए गए हैं। और इसमें उपसमसंगतिक कर्बन परमाणु भी नहीं होता है। परन्तु यद्यपि इस प्रकारसे इसमें

प्रकाशसमरूपता की सम्भावना नहीं रही तथापि एक और ही प्रकार की समरूपता की सम्भावना उत्पन्न हो गई और वह चित्र-समरूपता है। निम्बुल इस प्रकार निम्नरूपसे दो रूपोंमें पाया जाता है।

उ - क - क उ ओ
‖
$(कउ_3)_2क = कउ.\ कउ_2\ कउ_2 - क - कउ_3$

निम्बुल-क

क उ ओ - क - उ
‖
$(कउ_3)_2\ क = कउ.\ कउ_2\ कउ_2 - क - कउ_3$

निम्बुल-ख

इस समुदाय की सभी त्रपिनों की ही भांति निम्बुल भी चक्रिक रूप अति शीघ्र धारण कर लेता है। जब यह शुद्ध सिरकाम्लके संसर्गमें अधिक समय तक उबाला जाता है तो यह श्यामीनमें परिवर्त्तित हो जाता है। सूत्ररूप इस भांति—

इन सब सूत्रों को देखनेसे यह प्रतीत होगा कि शृंखला को बन्द करनेके लिये अनार्द्र मूल प्रयोगमें आजाता है और यह विचार किया जा सकता है कि यदि इस मूल को किसी प्राथमिक अमिन द्वारा लिप्त करके अथवा सिरकल रूपमें परिवर्त्तित करके स्थगित कर दिया जावे तो यह चक्रिक उत्पादन भी न हो। परन्तु यह बात नहीं है। उस दशामें भी केवल द्विबन्ध-भ्रमण एवम् चक्रोत्पादनसे ही चाक्रिकनिम्बुल प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार—

निम्बुल को अमिनके स्थानमें श्याम सिरकाम्ल से लिप्त करनेसे भी यही फल प्राप्त हो सकता है और प्रत्येक दशामें इस लिप्त-मूल को हटा कर इसके स्थान में मद्यानार्द्र मूल पुनःस्थापित किया जा सकता है। ऊपर के सूत्रोंसे यह ज्ञात होता है कि चक्रोत्पादनमें प्रथम जल योग हो जाता है और फिर यही जल निकल जाता है, इस प्रकार कि शृंखला बन्द होजावे। यह जल का निकलना उपरि-सूत्रानुसार दो भिन्न भिन्न रीतियोंसे हो सकता है और उन्हींके अनुसार चाक्रिक निम्बुलके दो रूप हो सकते हैं—

क-चक्रिक निम्बुल

ख-चक्रिक निम्बुल
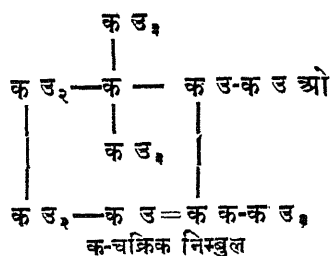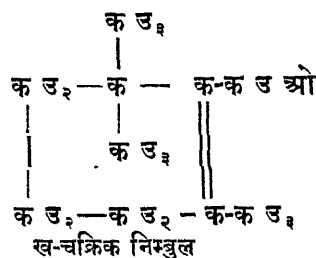
यह क्रिया केवल रसायनिक-विचार-शक्ति का ही प्रमाण नहीं है। औद्योगिक रसायनमें भी यह बड़ी प्रभावशाली क्रिया है। निम्बुलके मद्यानार्द्र मूल को प्रथम सिरकोनसे लिप्त कर देते हैं और फिर चक्रोत्पादन कर देते हैं जिससे एक मिस-इत्रोन (pseudo ionone) प्राप्त होता है। यह मिस-इत्रोन गन्धकाम्लके प्रभावसे इत्रोन (ionone) में परिवर्त्तित हो जाता है। यह एक बड़ा ही सुन्दर इत्र होता है। पाश्चत्य देशोंमें होनेवाले एक अत्यन्त ही सुन्दर सुगन्ध वाले इत्रसे यह प्रायः सभी बातों में—भौतिक तथा रसायन—समानता रखता है। इस प्रकार—

मिस इत्रोन

मिस इत्रोन जलयौगिक
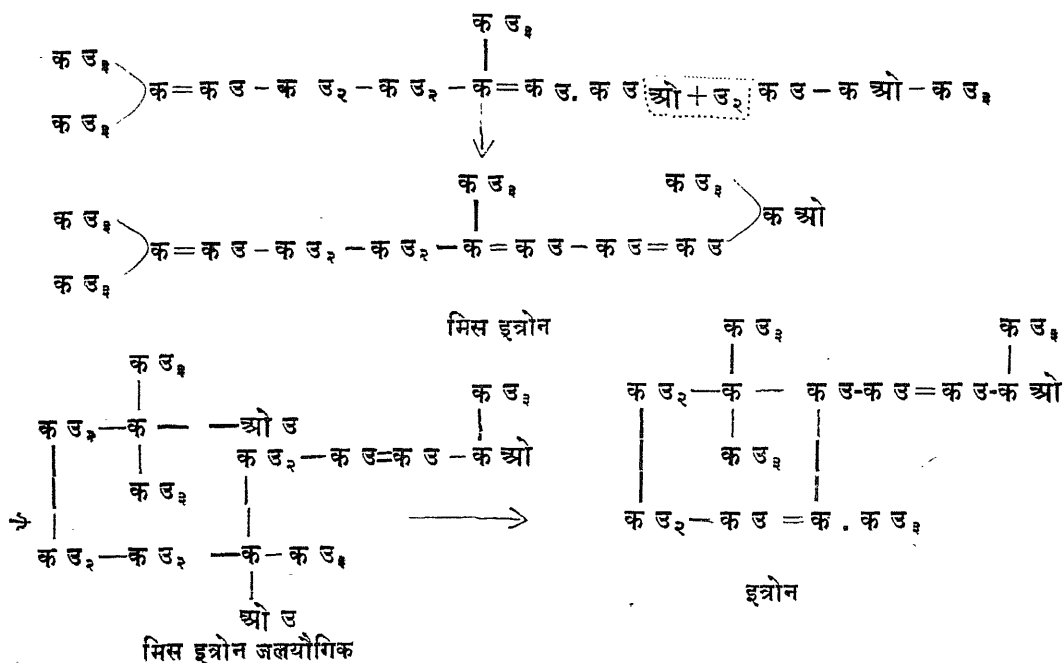
इत्रोन

वास्तवमें उन पुष्पोंके प्राकृतिक इत्रकी सुगन्ध भी एक ऐसे ही रसायनिक यौगिकके कारण होती है जो इस इत्रोनसे केवल एक द्विबन्धके स्थानमें ही भिन्न होता है। उसे इरोन कहते हैं और इरोन नहींतो इस प्रकार इरोनके भ्रातृवर इत्रोनके संश्लेषणसे रसायनिक व्यापार और विशेषकर इत्र व्यापारको बड़ा ही लाभ हुआ है। स्वयम् इरोनके संश्लेषणकी कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

निम्बुलके पश्चात् गुलवियोलकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। भारतीय गुलाबके तैलमेंसे निकाल करके सर्व प्रथम जैकबसनने इसका पठन पाठन सन् १८७१ में किया था। उन्होंने तेल को खटिक हरिदसे प्रतिकृत किया और इस प्रकार जो ठोस यौगिक इस लवणका बन गया उसे पृथक कर लिया। इसको विभाजित करनेसे उन्होंने एक तैल प्राप्त किया जिसका सूत्र क$_{१०}$ उ$_{१८}$ ओ उन्होंने निर्धारित किया और जो उनके मतानुसार एक चाक्रिक यौगिक था। इसके पश्चात् सन् १८९० में सेमलरने इसी मद्यके ऊपर कार्य्य किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि यह चाक्रिक यौगिक नहीं है। अरुणिन्के दो अणुओंसे योग होनेके कारण, और इसकी आवर्जन संख्याके आधार पर इसमें द्विकर्बन द्विबन्ध होने आवश्यक हैं और यह एक खुली शृंखला का यौगिक होना चाहिए। प्रकृतिमें इस वस्तुका उद्गम बड़ा ही विस्तृत है। जर्मनी एवम् तुर्कीके गुलाबके तैलोंका अधिकांश भाग, निम्बूके तैल, निम्बुघासके तैलका न्यूनाधिक अंश और लवेंडर एवम् अन्य सभी उद्वायी तैलोंका कुछ न कुछ अंश यही गुलवियोल होता है। इसको रागिकाम्लके द्वारा बड़ी ही कुशलतासे ओषदीकृत करनेसे यह मद्य भी मद्यानार्द्र निम्बुलमें परिवर्तित हो जाता है और निम्बुलसे अवकरण करके इसको पुनर्प्राप्त कर कर सकते हैं। निम्बुलका संश्लेषण दियाजा चुका है और इसी कारण यह गुलवियोल भी संश्लेषित पदार्थ समझना कोई भूल न होगी। इसके अतिरिक्त यह लैवेंद्रोलसे भी प्राप्त होता है जो कि सिरक मद्यानार्द्रके साथ तपानेसे एक समरूपक परिवर्त्तन द्वारा इसे उत्पन्न करता है। यह स्वयम् भी जल के साथ २००° श तक तपाए जानेसे लैवेंद्रोलमें परिवर्त्तित हो जाता है। अनार्द्रक रसोंसे एक जलाणुके निघटनसे यह एक त्रपीन—गुलविनीन क$_{१०}$ उ$_{१६}$ में परिवर्त्तित हो जाता है। पिपीलिकाम्लके प्रभावसे यह द्विप्रीन एवम् त्रपिनीनमें परिवर्त्तित हो जाता है और गन्धकाम्ल एवम् सिरकाम्लके मिश्रणके प्रभावसे इसीसे त्रपिन्योल भी उत्पन्न होता है।

ऊपर यह कहा गया है कि निम्बुलको सैन्धकम् और मद्यघोल द्वारा जिसमें १-२% सिरकाम्ल भी मिला हो अवकृत करें तो गुलवियोल प्राप्त होता है। गुलवियोलके साथ ही साथ इसी प्रतिक्रियामें एक और भी मद्य, नीरोल, प्राप्त होता है। और इन दोनों के ही ओषदीकरणसे भी वही निम्बुल प्राप्त होता है। इसीकी धारणासे और अन्य भी रसायनिक व्यवसायोंसे जो कि गुलवियोल व नीरोलके समान ही होते हैं यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनोंका रसायनिक संगठन एकसा ही है वरन् दोनों चित्र—समरूपक (geometric isomers) हैं। इन दोनोंका सूत्र यह हो सकता है।

```
                                   क उ₃
                                    |
(कउ₃)₂क = कउ – कउ₂ -- कउ₂ – क=कउ – कउ₂
                                            ओउ
```

इस सूत्रके प्रमाणमें और भी अनेक बातें कही जा सकती हैं जैसे कि जलके संसर्गमें १५०° श तक तपाए जानेसे गुलवियोलका ज्वलीलमद्य और दारील सप्तेनोनमें परिवर्त्तन, अतः ओषदीकरणसे इससे सिरकोन, काष्ठिकाम्ल और उत्तरिकाम्लका प्राप्त होना। दोनों ही मद्य, गुलवियोल तथा नीरोल, सिरकाम्लके संसर्गसे जिसमें १-२% गन्धकाम्ल मिश्रित कर दिया गया हो त्रपिनोलमें परिवर्त्तित हो जाते हैं। यह परिवर्त्तन गुलवियोलकी अपेक्षा नीरोलके साथ नौगुणा शीघ्र होता है जिससे स्पष्ट ही

है कि जो मूल मिलकर इस चक्रोत्पादन क्रियाको करते हैं वह नीरोलमें अधिक निकट होंगे और गुलवियोलमें उतने निकट नहीं। इसीके आधार पर इन दोनोंके रासायनिक सूत्र इस प्रकार हो सकते हैं—

```
(कउ३)२क: कउ. कउ२. कउ२    क – कउ३
                          ‖
                    उ – क – कउ२ ओ उ
```

गुलवियोल

```
(क उ३)२क = क उ - क उ३ क उ२.क कउ३
                              ‖
                  ओ उ क उ२ - क – उ
```

नीरोल
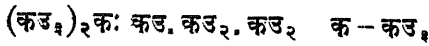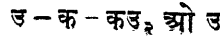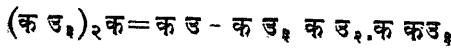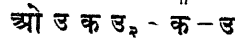
इनसे चाक्रिक परिवर्त्तन एक अनुमानिक जल-यौगिकके द्वारा इस प्रकार होगा—

```
       क उ३                           क उ३
        |                              |
क उ२—क=क उ                     क उ२—क=क उ
|        |                      |        |
क उ२—क उ२ क उ२-ओ उ            क उ२—क उ-क उ२
      |                                |
क उ३—क—क उ३                   क उ३—क—क उ३
      |                                |
     ओ उ                              ओ उ
  अनुमानित उदेत                     त्रपिनोल
```
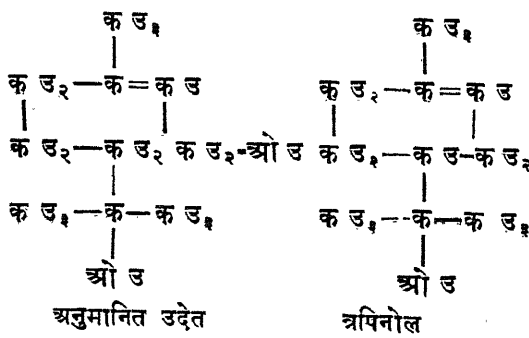
अब फिर निम्बुलकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। निम्बुलके विषयमें यह कहा गया था कि यह दो रूपोंमें प्राप्त हाता है—अब उन रूपोंको कुछ भली भांति समझनेका प्रयत्न करेंगे। गुलवियोलके ओषदीकरणसे दोनों ही निम्बुल-क तथा निम्बुल-ख-का मिश्रण प्राप्त होता है परन्तु निम्बुल-क अधिक मात्रामें होता है। नीरोलके ओषदीकरणसे भी इन दोनों ही निम्बुलोंका मिश्रण प्राप्त होता है परन्तु उसमें अधिक मात्रा निम्बुल-ख की होती है। इस प्रतिक्रियाके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निम्बुल-क के परमाणु उसी भांति प्रबन्धित होंगे जैसे कि गुलवियोलमें हैं और निम्बुलके उस प्रकारसे जैसे कि नीरोलमें हैं। यद्यपि ओषदीकरणमें परमाणु उसी भांति स्थित नहीं रहते जैसे कि गुलवियोल तथा नीरोलमें होते हैं और समरूपक परिवर्त्तन अवश्य होता है परन्तु चूंकि एकमें एककी अधिक मात्रा होती है और दूसरेमें दूसरेकी और सदा ही ऐसा होता है इस कारणसे उनके रूपोंमें भी एक समानान्तरताका अनुमान किया जा सकता है। अतः यह दोनों रूप अवकाशमें निम्नरूपसे दर्शाए जायेंगे—
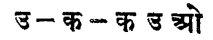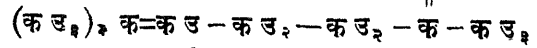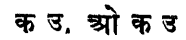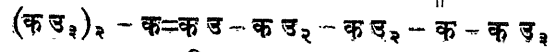
```
                          उ – क – क उ ओ
                                  ‖
(क उ३)२ क=क उ – क उ२—क उ२ – क – क उ३
           निम्बुल-क   ( गुलवियल )
                           क उ. ओ क उ
                                  ‖
(क उ३)२ – क=क उ – क उ२ – क उ२ – क – क उ३
           निम्बुलव    ( नीरल )
```

गुलवियोल तथा नीरोल दोनों ही प्रकृतिमें अशक्त रूपमें पाए जाते हैं और उनमें कोई दिग्प्रधान शक्ति नहीं होती है। यह भी उन्हीं संगठन सूत्रोंके अनुसार है जो कि उन्हें ऊपर दिये किए गए हैं। उनका समरूपक लैवन्ड्रोल अवश्य ही दोनों ही दिग-प्रधान रूपोंमें प्राप्त होता है इसलिए उसमें एक असमसंगतिक कर्बन परमाणु अवश्य होगा।

लैवेन्ड्रोल भी बड़े ही विस्तृत रूपसे पाया जाता है। कोरिन्द्र तैल (Coriander) में तो यह दक्षिण-भ्रामक है परन्तु और किसी भी तैल में दक्षिण-भ्रामक नहीं होता है। वाम भ्रामक रूपमें किसी किसी में मुक्त रूपमें और किसी किसीमें लैवेन्द्रिक सिरकेतके रूपमें विद्यमान होता है। अम्लोंके संसर्गसे यह शीघ्रातिशीघ्र समरूप धारण कर लेता है। कार्बनिक अम्लोंसे तो गुलवियोल परन्तु गन्धकाम्लकी किञ्चिद् मात्रासे भी त्रपिनोलमें परिवर्त्तित हो जाता है। ५% गन्धकाम्लके सम्पर्कमें कुछ देर तक रखनेसे यही यौगिक त्रपिन उदेतमें परिवर्त्तित हो जाता है। ८० श पर पिपीलिकाम्लके संसर्गसे यह

द्विप्रीन एवम् त्रपिनीनके मिश्रणमें परिवर्त्तित हो जाता है। इस परिवर्त्तनमें अवश्य ही सर्व प्रथम लैवेन्ड्रोल गुलवियोलमें परिवर्त्तित हो जाता है और यह फिर इस रूप द्वारा जलके अणुओंके निघटन एवम् पुनर्योगसे चक्रोत्पादन हो जाता है और त्रपिन बन जाता है। यह त्रपिन फिर द्विप्रीन तथा त्रपिनीनीनका रूप धारण कर लेता है।

लैवेन्ड्रोलका संश्लेषण भी कोई अधिक क्लिष्ट बात नहीं है। दारील सप्तेनोनके ज्वलक घोलमें सैन्धामिद डाल देते हैं और फिर उसमें सिरकीलिन प्रवाहित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त पदार्थको जब सैन्धकम् तथा जल विन्दुओं द्वारा अवकृत कर देते हैं तो अशक्त लैवेन्ड्रोल प्राप्त हो जाता है। इस संश्लेषणसे लैवेन्ड्रोल का संगठन भी भली प्रकार सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार—

दारीलसप्तेनोन

लैवेन्ड्रोल
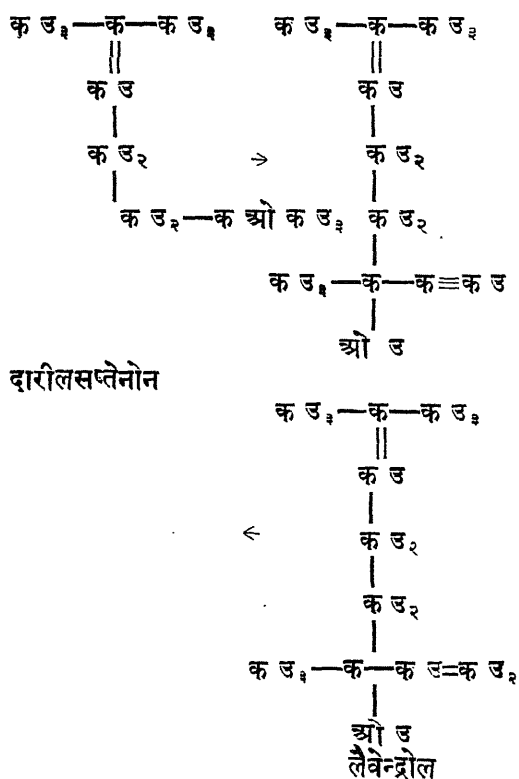
इस प्रकार संश्लेषित लैवेन्ड्रोलमें काश-भ्रामक शक्ति नहीं होती है परन्तु सिरकिकआनाद्रिदके प्रभावसे गुलवियोल तथा नीरोलमें बड़ी ही शीघ्रतासे परिवर्त्तित हो जाता है। इन सब यौगिकोंके उपर्युक्त सूत्रोंकी परीक्षा करनेसे यह ज्ञात होगा कि सभीमें जलके एक अणुके योगसे सभी एक समान रूप का मधुओल मिलता और इसी समान रूपके मधुओल द्वारा ही यह सब रूप काया पलट होता है और सरलतासे समझमें भी आ जाता है। मधुओल का रूप यह होगा—

क $उ_3$　　　　　　क $उ_3$
|　　　　　　　　|
क=क उ—क $उ_2$—क $उ_2$—क—क$उ_2$—क$उ_2$ओउ
|　　　　　　　　|
क $उ_3$　　　　　　ओ उ
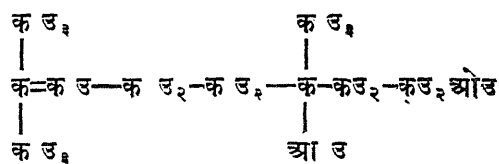
इसके अतिरिक्त लैवेन्ड्रोलके विषयमें एक विचित्रता और भी है। जब वाम-भ्रामक लैवेन्ड्रोलको सिरकिकआनाद्रिदसे प्रभावित करते हैं तो नीरोल एवम् गुलवियोलके साथ ही सरल त्रपिनोल भी उत्पादित होता है परन्तु यह वाम भ्रामक न होकर दक्षिण भ्रामक होता है। साधारणतः यही अनुमान किया जाता है कि जो कर्बन परमाणु लैवेन्ड्रोलमें असमसंगतिक है वही त्रपिनोल में भी होगा और फिर यह विचित्रता कैसी परन्तु वास्तवमें लैवेन्ड्रोल वाला असमसंगतिक कर्बन परमाणु परिवर्त्तन क्रियाओंमें विलिप्त हो जाता है और एक नया ही असमसंगतिक कर्बन परमाणु उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार—इन सूत्रोंमें असमसंगतिक कर्बन चक्र के अन्तर्गत दर्शाया है।

क $उ_3$—क-क $उ_3$
　　||
क $उ_2$-क उ　क $उ_2$
|　　ओ उ　　||
|　　|　　||
क $उ_2$—क—क उ
　　|
　　क $उ_3$

वाम लैवेन्ड्रोल
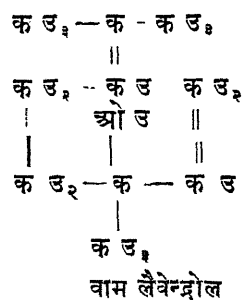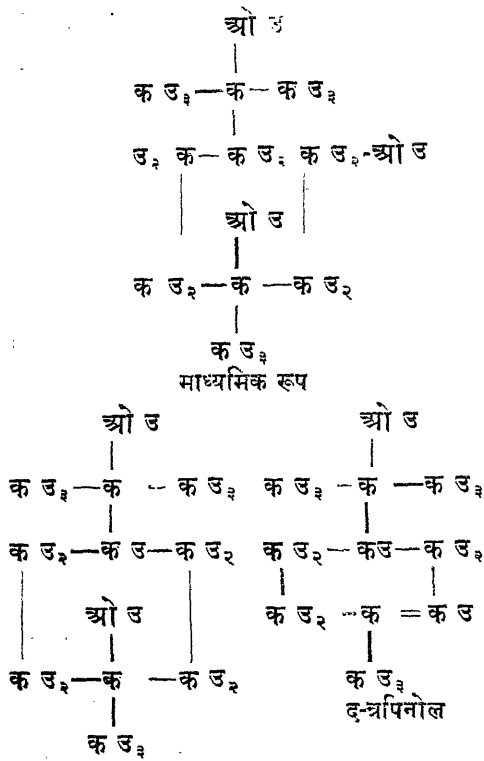
परन्तु इस विचार शैलीमें एक विचित्रता यह रह जाती है कि जब किसी भी रासायनिक प्रतिक्रिया में कोई नया असमसंगतिक कर्बन परमाणु उत्पन्न होता है तो उसमें दक्षिण भ्रामक एवम् वाम भ्रामक दोनों ही प्रकार की मात्राएं समान होती हैं और इस प्रकार उत्पन्न यौगिकमें दिग्प्रधान शक्ति नहीं होनी चाहिए। निश्चय ही यह संश्लेषण असमसंगतिक संश्लेषणका एक उदाहरण है परन्तु इसमें कौन कौन से कारण इस प्रधान शक्तिके मामले को प्रभावित करते है स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता।

किसानोंकी साखवाली सभाएं

[ले० श्री० शंकरराव जोशी, डिप्-एजी०, एफ० आर० एच० एस०]

भारतमें सहकारिताका प्रचार होता जा रहा है। पश्चिमी देशोंने सहकारितामें गजबकी उन्नति की है। सहकारी-संस्थाओंकी बदौलत ही विदेशोंमें काश्तकारोंकी माली हालत सुधर गई है। विशेषज्ञोंका कहना है कि देशमें सहकारी-संस्थाओं-का जाल-सा फैला देनेसे किसानोंकी आर्थिक अवस्था अच्छी हो सकती है।

सहकारी सभाएं दो प्रकारकी होती हैं। १ प्राथमिक, २ मध्यवर्ती। इन दोनों ही प्रकारकी सभाओंके दो दो भेद हैः—साखवाली और बिना साखवाली। ये फिर दो दो उपभेदों में विभक्त हैं· १ किसानोंकी और २ अन्य लोगों की सभाएं।

किसानोंका कर्ज़का बोझा हलका करनेके लिए ही भारतमें सहकारकी नींव डाली गई है। अतएव किसानोंके लिए कायमकी गई सभाओं को ही अग्रस्थान प्राप्त है। किसानोंकी साखवाली सभाएं जिन तत्वोंपर कायम की गईं हैं। वही तत्व अधिकांशमें सभी प्रकारकी सभाओंमें लागू होते हैं। अतएव यहाँ इन्हीं तत्वों पर विचार किया जायगा और जहाँ कहीं किसी खास तरहकी सभायें कहने योग्य भेद होगा, वह भी बतला दिया जायगा।

किसानोंकी साखवाली सभाओंको सफलता पूर्वक चलानेके लिए आगे दी हुई बातोंपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

१—मितव्यय और किसानोंकी साख बढ़ाना।

२—सभासदोंकी जिम्मेदारी संयुक्त और अमर्यादित होती है इसलिए हरएक सभ्यको सभाका काम दिलचस्पीसे करना चाहिए।

३—वही व्यक्ति सभासद बनाया जाना चाहिए जो सच्चरित्र और जान पहचान का हो।
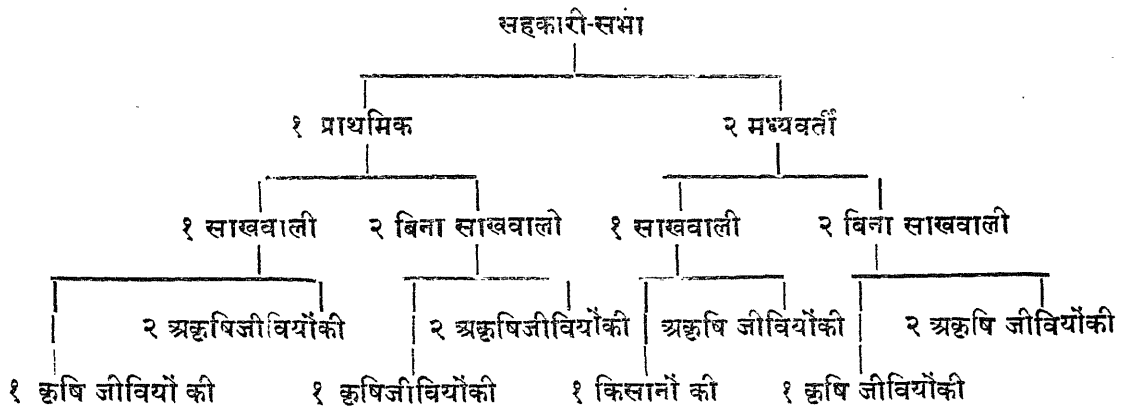
४—जिस कामके लिए कर्ज़ दिया जाय, उसी काममें द्रव्य लगाए जानेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

५—कर्ज़ दी हुई रकम ठहराई हुई शर्तोंके मुताबिक किसानोंमें वापस करदी जानी चाहिए। इस बात पर खयाल रखना चाहिए कि जहाँ तक हो सके किस्तोंकी मुकर्ररा तारीख चूकने न पावे।

६—नौकरोंके काम और सभाके हिसाब किताब पर कड़ी नज़र रखना चाहिए।

७—प्रबन्धक समितिको अपना कर्तव्य पालन करनेमें ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

८—सभाको स्थायी बनानेके लिए कुछ सालों तक कुल मुनाफ़ा स्थायी कोषमें जमा करते रहना चाहिए।

किसानोंकी साखवाली सभाओंकी सफलताके लिए सभ्योंको ऊपर लिखी हुई बातोंको अच्छी तरहसे समझकर उनपर अमल करते रहना चाहिये। शिक्षाके अभावके कारण सभासद इन बातोंपर उतना ध्यान नहीं देते हैं। शिक्षाका अभाव सहकारके मार्गमें एक जबरदस्त रोड़ा है। अतएव शिक्षा प्रचारके लिए प्रयत्न किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

पैसा बचाने, साख बढ़ाने, मितव्यय और आर्थिक और नैतिक अवस्थाके सुधारके उद्देशको सामने रखकर ही १० या इससे अधिक व्यक्ति मिलकर एक सभा कायम करते हैं, और इन्हींकी दरखास्त पर खूब जाँच पड़तालके बाद सभा रजिस्टर करली जाती है।

रुपया उधार देनेके लिए कायमकी गई सभाओंके सभासद कम पूंजीवाले लोगही होते हैं। इन सभाओंकी जिम्मेदारी अमर्यादित (un-limited) रक्खी गई है। जनता ने इसे सहर्ष स्वीकार भी कर लिया है। अमर्यादित जिम्मेदारीके कारण ही जनताको सहकारके नैतिक और आर्थिक लाभ प्राप्तहुए हैं। अमर्यादित जिम्मेदारीके कारण ही मध्यवर्ती संस्थाएं प्राथमिक सभाओंको कर्ज़ देनेमें नहीं हिचकती हैं। हरएक सभासद सभाके कर्ज़का ज़िम्मेदार रहता है; और सभासे अलग हो जानेकी तारीखसे दो वर्ष बाद तक सभाकी जायदाद सभाके कर्ज़से बरी नहीं हो सकती है। सभाके मर जाने पर उसकी मृत्युसे एक वर्ष बाद तक उसकी जायदाद पर सभाके कर्ज़का बोझ रहता है।

किसी गाँव या गाँवके समूहके १८ या इससे अधिक उम्रके १० या १० से अधिक व्यक्ति मिलकर सभा कायम कर सकते और उसे रजिस्टर करा सकते हैं। सभाके सभ्योंका एक दूसरेसे परिचित होना अनिवार्य्य है। अतएव सभाका कार्य-क्षेत्र संकुचितही होना चाहिए। इससे सभासदों पर एक दूसरेका अँकुश रह सकेगा। हरएक सभामें

अधिकसे अधिक सौ सभासद होने चाहिए। यदि सभासदोंकी संख्या इससे अधिक होगी। तो सहकारके सिद्धान्तोंके अनुसार काम नहीं चलाया जा सकेगा।

सहकारी-सभा एक लोक-नियुक्त-संस्था है। सभा के कारोबारको चलानेके लिये उचित प्रबंध करनेका अधिकार सभी सभासदोंको प्राप्त है। हर एक सभासद एक मत दे सकता है। सभाकी वार्षिक रिपोर्ट साधारण-सभा को (General Body) प्रतिवर्ष पेश की जाती है। साधारण सभा ही अपनेमेंसे प्रबंधक-समितिका चुनाव करती है और अध्यक्ष, मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि कर्मचारियोंको चुननेका अधिकार भी उसे ही प्राप्त है।

प्रबंधक समितिमें ५ से ९ तक सभासद रहते हैं। इनको वेतन नहीं दिया जाता है। नए सभासदों को शामिल करना, कर्ज़के लिये आई हुई दरख्वास्तें मंजूर या नामंजूर करना, कर्ज दी हुई रकमकी वसूलीका इन्तजाम करना, सभाके लिए कर्ज़ लेना, हिसाबकी जाँच करना, सभाके कोषमें संचित रुपयोंका उचित प्रबंध करना आदि काम प्रबंधक-समितिके ही जिम्मे रहते हैं। सारांशमें, साधारण सभा द्वारा निर्धारित नीतिके अनुसार सभाका काम चलानेकी कुल जिम्मेदारी प्रबंधक समिति पर ही रहती है।

प्रबंधक समितिके सभासदोंका यह फर्ज है कि वे हिलमिल कर काम करें। कुछ उत्साही सभ्यों पर ही सब काम छोड़ देना उचित नहीं है। ऐसा करना हानिकारक है। इससे सभाके काममें गड़बड़ी पैदा हो जाती है और सभाका दीवाला निकलनेतक की नौबत आ जाती है।

जहांतक मुमकिन हो सभाके सभासदको ही मंत्री नियुक्त करना चाहिए। यदि ऐसा न किया जा सकता हो तो मंत्री वही आदमी मुक़र्रर किया जाना चाहिये जो उसी गांवका रहनेवाला हो। देहातोंमें शिक्षा-अभाव है। अतएव ज़्यादातर स्कूल मास्टर या पटवारी ही मंत्री (सेक्रेटरी) मुक़र्रर नियुक्त किए जाते हैं। कभी कभी एक ही आदमीसे तीन चार सभाओंका काम लिया जाता है। पटवारीको सेक्रेटरी मुकर्रर करना, हमारे ख्याल से, उचित नहीं है। यदि किसी कारणसे पटवारीको सेक्रेटरी बनाना ज़रूरी ही हो, तो उसके जिम्मे लिखने पढ़नेका काम ही दिया जाना चाहिए। यदि सभाके दूसरे काम भी उसके जिम्मे रहेंगे तो वह जरूरतसे ज्यादा अख्त्यार हाथमें ले लेगा। देहातोंमें पटवारी की एक खास-पोज़िशन होती है। अतएव बहुत कम मेम्बरों को उसके खिलाफ जानेकी हिम्मत होगी और ऐसा होना सहकार के सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है।

सभाके लिये पूंजी जुदे जुदे तरीकोंसे जमाकी जाती है। पाँच, दस, बीस या सौ रुपया कीमत-के हिस्से बेचे जाते हैं। हर एक सभासदोंको हिस्से खरीदने पड़ते हैं। सभासदों या अन्य लोगों-की रक़में अमानत रखकर या कर्ज़ लेकर भी पूंजी जमा की जाती है, देहातोंमें हिस्सेकी कीमत कम रक्खी जाती है। और वह छोटी छोटी किश्तों-में दो तीन सालमें वसूलकी जाती है। आठ दस वर्ष तक मुनाफेकी रकम स्थायी कोषमें जमाकी जाती है और उसके बाद सभाकी नींव मज़बूत हो जाने पर मुनाफा बाटा जाता है। कुछ प्रान्तोंमें सभासद के हिस्सेकी मुनाफेकी रक़म उसके हिस्सेमें मिला दी जाती है। सभासदको यह रक़म वापस नहीं दी जाती है। उसे उस रक़मपर मुनाफा दिया जाता है। एक हद तक यह तरीका अच्छा नहीं है। इस तरीके पर अमल करनेसे अगर सभा मुनाफा कमानेवाली जमा-अत न बन बैठे और ग़रीब मेम्बरोंको हानि पहुँचने-की आशंका न हो, तो ऐसा करना बुरा भी नहीं है। सभाके हिस्से न्यायालयोंकी पहुँचसे बाहर रहते हैं अर्थात् वे किसी-न्यायलयके हुक्मसे ज़ब्त या नीलाम नहीं किए जा सकते हैं

सभाको इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि सभासद किफायतसारी (कम खर्च करना) सीखें। देहाती सभाओंमें डाकखानेके सेविंग्ज़ बैंक-के ढंग पर छोटी छोटी रकमें जमा करने और जरूरत-के वक्त वापस देनेका सुबीता कर दिया जाय, तो सभासदोंमें पैसा बचानेकी आदत जड़ पकड़ती जायगी। इससे सभ्योंको और सभाको भी लाभ होगा। सभाके कोषमें जितनी भी रक़में अमानत रक्खी जायँ, वे एक सालसे कम मियादके लिये कदापि नहीं रक्खी जानी चाहिए। सहकारके अनुभवी कार्यकर्त्ताओंका मत है कि देहाती सभाओंमें चलतू खाते (current account) खोलना निरुपयोगी है।

किसानोंकी साखवाली सभाओंका मुख्य उद्देश सभासदोंको ही कम सूदपर रुपया उधार देना है। किन्तु खूब जाँच पड़तालके बादही रुपया उधार दिया जाना चाहिए। अकसर देखा जाता है कि इस ओर बिलकुल ध्यानही नहीं दिया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि प्रबंधक समितिके सभासद अपने निजके नाम पर या अपने मित्रों और रिश्तेदारोंके नाम पर बहुत ज़्यादा रुपया उधार देना मंजूर कर लेते हैं। इसलिए साधारण सभाको यह ठहरा देना चाहिए कि हरएक सभासदको एक सालमें ज्यादासे ज्यादा कितना रुपया कर्ज़ दिया जाना चाहिए। कर्ज़ दी जानेवाली रकमकी हद क़ायम करते वक्त सभासदकी साम्पत्तिक-अवस्था (हैसियत), उसकी आमदनी, कमाईका ज़रिया आदि पर ज़रूर ही खयाल करना चाहिए। साला-ना कर्ज़की हद क़ायम कर देने पर भी सभासद-को हरबार कर्ज मिलनेके लिए दरखास्त करनी चाहिये। कर्ज़ देना मंजूर करते वक्त प्रबंधक-समितिको देख लेना चाहिए कि उस सभासदको दर असलमें रुपयोंकी ज़रुरत है; जिस कामके लिए रुपया मांगा जा रहा है वह वास्तवमें बिना रुपयोंके पूरा नहीं हो सकता है; और किसी झूठे बहानेसे ज़रूरतसे ज्यादा रुपया तो नहीं मांगा जा रहा है।

किसानोंकी साखवाली सभाएं मुख्यतः उत्पादक कामके लिये ही कर्ज़ देती हैं। किन्तु भारतीय किसानोंकी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाको देखते हुए कभी कभी अनुत्पादक कामोंके लिए भी कर्ज़ देना पड़ता है। भारतीय किसान कर्जके बोझके नीचे दबे जाते हैं। सूदकी दर ज्यादा होनेसे ब्याज भी मुशकिलसे अदा हो पाता है। मूलमें तो एक पाई भी जमा नहीं कराई जा सकती है। इसलिए सहकारी सभाओंको किसानोंको कर्ज़के कीचड़से बाहर निकालनेके लिए हाथ बढ़ाना चाहिए, और इस उद्देशकी पूर्तिके लिए सबसे पहले किसानका वह कर्ज़ चुका दिया जाय जिस पर उसे ज़्यादा सूद देना पड़ता है और तब धीरे धीरे मकान ज़मीन, ज़ेवर आदिको रहन रखकर लिया हुआ कर्ज चुकाया जाना चाहिए।

साधारण तौरसे कर्ज़ दी हुई रकम तीन साल-में जमा करा देना चाहिए। हर एक सभासदके लिए कर्ज़ लिआ हुआ रुपया—वापस जमा करा देने की मियाद ठहराते वक्त इस बात पर ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि जिस उत्पादक कामके लिए कर्ज़ दिया जा रहा है उसीकी आमदनीमेंसे कर्ज़ चुकाया जा सके और कर्ज ली हुई रक़मसे सभासदकी जितनी आमदनी बढ़े उतनी ही रक़मकी किश्त मुकर्रर करना चाहिए। अनुत्पादक कार्यके लिए दिये हुए कर्ज़ की किश्तें इस ढंगसे ठहराई जानी चाहिए कि सभासद अपने खर्चको कम करके किश्तें चुकाता रहे। बीज, खाद आदि खेतीके कामोंके लिए दिया हुआ कर्ज़ उसी फसलकी—पैदावारसे वसूल किया जाना चाहिए, जिसके लिए रुपया दिया गया हो। चरस (मोट) गाड़ी, मकान, हाल-बखर आदि खरीदने या बनवानेके लिए दिया हुआ

क़र्ज़ तीन सालमें और जमीन खरीदने, कुआँ खुदवाने आदि सम्बन्धी कर्ज़ चार पाँच सालमें किश्तोंसे वसूल किया जाना चाहिए। कर्जका रुपया कितने सालोंमें वसूल किया जाना चाहिए, यह बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती है। कारण कि क़र्ज लेनेवाले की साम्पत्तिक अवस्था, पैदावार, फसलकी हालत, आदि पर पूरा विचार करके ही यह मियाद मुकर्रर की जा सकती है। किश्तोंका रुपया निश्चित तिथि पर नक़द जमा किये जानेपर विशेष ध्यान रक्खा जाना चाहिए। सभाकी सफलता और उद्देशकी पूर्णता इसी बातपर निर्भर करती है।

साखवाली सहकारी सभाएं व्यक्तिकी निजकी प्रामाणिकताके कारण पर ही रुपया उधार देती हैं। और यही कारण है कि सभी सभासदोंकी संयुक्त जिम्मेदारीपर बिना किसी अन्य प्रकारके कारणके सभाओंको काफी रुपया उधार मिल जाता है।

हमारा निजका ख्याल है कि अगर कर्ज़की रक़मके लिए ज़मानत ली जाया करे, तो कोई हर्ज़ ही नहीं है। इससे सहकार के सिद्धान्तको किसी प्रकारका धक्का नहीं लगता है और न उसकी अवहेला ही होती है। स्थावर-जंगम मालियतके भरोसे पर सभाएं कर्ज़ नहीं देती हैं। मगर ऐसा किया जानेमें हमें कोई हानि नहीं नज़र आती है प्रत्युत् लाभ ही है। संभव है, सभासद अपनी इस जायदादको किसी दूसरेके यहां रहन रखकर क़र्ज़ ले ले। अगर सभा इनको रहन रख लेगी, तो सभासद किसी दूसरी जगहसे कर्ज न ला सकेगा। किन्तु स्थावर जंगम जायदादके तारण पर क़र्ज तभी दिया जाना चाहिए जब कि सभाके पास लम्बी मियादके लिए क़र्ज देने को काफी गुंजाइश हो।

सहकारी-सभा-कानून की रूहसे सभासे उधार लिए हुए रुपयोंसे खरीदे हुए बैल, खाद, औजार, बीज आदि पर या इनसे पैदा हुई फसल पर सभाका ही पहला हक माना गया है। कुछ हाइ-कोर्टों ने सभाके इस हक़को नहीं माना है।

सूदकी दर मुक़र्रर करते समय नीचे लिखी हुई बातों पर अवश्य ही पूर्ण विचार किया जाना चाहिए।

(१) सूदकी दर इतनी ज्यादा न हो कि लोग दूसरी जगह से कम सूदपर कर्ज ले आवें और सभामें शामिल होनेसे बाज़ रहें।

(२) सूदकी दर इतनी कम भी न रक्खी जावे कि सभासद लोग सभासे कर्ज़ लेकर दूसरे लोगों को ज्यादा दर पर रुपया उधार देकर लाभ उठावें।

(३) जिस प्रान्त या गाँवमें सभा क़ायम की जाय, वहां की प्रचलित दर से कुछ कम दर से ही रुपया उधार दिया जाया करे। साथही सूदकी दर इतनी ऊँची अवश्य ही हो, जिससे सभाको मुनाफा होता रहे।

(४) कम से कम सूद लेकर ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कमाना ही सहकारी-सभाका उद्देश होना चाहिए।

सहकारी सभाओंको मुनाफेका चौथा हिस्सा स्थायी कोषमें जमा करना पड़ता है और प्रथम कुछ वर्षोंतक तो सबका सब मुनाफा स्थायी कोष बढ़ानेके लिए ही संचित किया जाता है। स्थायी-कोषमें काफी पूंजी जमा हो जानेपर सभा की जड़ मज़बूत जम जाती है। उसे अपना कारोबार चलानेके लिए क़र्ज़ लेनेकी जरूरत नहीं रहती है, और तब सभा सूदकी दर और भी कम कर सकती है।

सभाओं और सभ्योंके पारस्परिक लेनदेनके झगड़े रजिस्ट्रार की अदालतमें या पंचायत कोर्टों में चलाए-जाते हैं। रजिस्ट्रार का हुक्म कतई

होता है और उसके-हुक्म नामोंकी बराबरी दीवानी कोर्टोंके हुक्मनामोंके मानिन्द हो सकती है।

रजिस्ट्रारको सभाका हिसाब-किताब स्वयं जाँचने का या दूसरों द्वारा जँचवानेका अख्त्यार हासिल है। किसी सभाको तोड़ना मुनासिब जान पड़ने पर रजिस्ट्रार सभाकी रजिस्टरी रद्द कर सकता है। रजिस्ट्रार के इस हुक्म की अपील प्रान्तीय सरकारके इजलास में हो सकती है। सभा तोड़ दी जाने पर एक लिकवीडेटर मुकर्रर किया जाता है, जो सभाके लेहने पावने का तसफिया करके सफाई करता है।

अकृषि जीवियोंकी साखवाली सभाएं

[ले० श्री पं० शंकर रावजोशी, डिप्. ए. जी., एफ. आर. एच-एस]

इस प्रकारकी सभाओंके संगठन और कार्य-संचालनमें समानता नहीं है। इन सभाओं की जिम्मेदारी मर्यादित (limited) और अमर्यादित (unlimited) दोनों ही प्रकार होती है। इनका कार्यक्षेत्र विशाल होता है और कभी कभी सारा प्रान्त एक ही सभाका कार्य क्षेत्र बन जाता है। इन सभाओंके सभासद अधिकतर गरीब और मध्यमवित्त वाले लोग ही होते हैं। ये सभाएं दो प्रकार की होती हैं:—१. ग्राम्य और २. नागरिक।

अकृषि-जीवियोंकी साखवाली सभाएं निम्न लिखित वर्गकी होती हैं:—

१. गाँव या शहरके पीपल्स बैंक।

२. जाति सभाएं।

३. बड़े बड़े फर्म, कारखाने और सहकारी विभागके वैतनिक कर्मचारियों को सभाएं।

४. कारीगरों की सभाएं।

५. मिल, फैक्टरी आदि में काम करने वाले मज़दूरों की सभाएं।

६. अन्य प्रकार के मज़दूरों की सभाएं।

हिस्से बेंचकर, कर्ज लेकर और अमानत रकमें जमा करके सभाके लिए पूंजी इकट्ठी की जाती है। यदि सभासदोंकी आर्थिक अवस्था साधारणतः ठीक हो, वे एक दूसरे से भले प्रकार परिचित हों और सभाके कारोबारको चलानेके लिए काफी पूंजी इकट्ठीकी जा सके, तो मर्यादित जिम्मदारी अंगीकार करके ही इस प्रकारकी सहकारी सभाएं कायम की जानी चाहिए अन्यथा जिम्मेदारी अमर्यादित रखना ही श्रेयस्कर है।

ऊपर इन सभाओंके छः वर्ग बतलाए गए हैं। इनमेंसे प्रथम तीन वर्ग की सभाएं अधिकतर बड़े बड़े गाँवों और शहरोंमें ही क़ायम की जाती हैं, सभासद एक दूसरेसे अपरिचित रहते हैं और पासपास भी नहीं रहते है। सभासदोंमें पारस्परिक परिचय और एकता का अभाव होता है। शेअर (हिस्से) बेंच कर ही पूंजी इकट्ठी की जाती है और शेअर की कीमतके मान से मुनाफा तकसीम किया जाता है। सहकारी सभाके कानून के मुताबिक मुनाफे का चौथा भाग स्थायी कोषमें जमा किया जाता है। बाकी बचे हुए मुनाफे का कुछ अंश किसी सार्वजनिक हितके कामके लिये अलग रखकर शेष अंश सभासदोंमें बाँट दिया जाता है। मर्यादित जिम्मेदारीवाली सभाके सभ्यको एकसे अधिक मत देनेका अधिकार प्राप्त है और जितने शेअर वह खरीदता है, उतने ही मत वह दे सकता है। यह प्रथा सहकारके सिद्धान्तके खिलाफ है। जिन सभाओंमें यह नियम बरता जाता है वे पूंजी वालोंके हाथकी कठपुतली बन जाती हैं।

दससे सौ रुपया तक हिस्सेकी कीमत रक्खी जाती है। यह रुपया एक मुश्त या माहवारी किश्तोंमें वसूल किया जाता है। जितनी पूंजी एकत्रित करनेके लिए हिस्से बेचे जाते हैं, उसके पंचमांश कीमतके हिस्से या ज्यादासे ज्यादा एक हजार रुपयासे ज्यादा कीमतके हिस्से एक सभासद नहीं खरीद सकता है। हर एक सभासद जितने रुपयोंके हिस्से वह खरीदता है, उतनी ही रकमके लिए जिम्मेदार माना जाता है। दूसरे लोगोंका रुपया अमानत रखा जाता है। जहाँ तक संभव होता है, मध्यवर्ती बैंकों या सभाओंसे रुपया उधार नहीं लिया जाता है।

प्रथम तीन वर्गकी सभाएं फिजूलखर्ची रोकनेके लिए ही कायम की जाती हैं। कुछ सभाओंमें हर एक सभासदको प्रति मास या प्रति तीसरे मास एक निश्चित रकम अमानतके तौर पर सभाके कोष में रखनी होती है। कई सुसंगठित सभाएं सभ्यों से 'प्राविडंट फंड' की तरह रुपया जमा कराती हैं। इन नियमों की पाबंदी कुछ सख्तीसे कराई जाती है। उत्पादक और अनुत्पादक दोनों ही कर्मों के लिए रुपया उधार दिया जाता है। कर्ज देना मंजूर करते वक्त प्रबंधक-समिति को इतिमीनान कर लेना चाहिये कि सभासद को दर असलमें रुपयों की ज़रूरत है और वह ज़रूरतसे ज्यादा रुपया तो नहीं माँग रहा है। ज़रूरतसे ज्यादा रक़म देना कदापि स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। सभासद की साम्पत्तिक अवस्था को देखकर ही कर्ज की रकम मंजूर की जानी चाहिये। सभासद की व्यक्तिशः जिम्मेदारी या खरीदे हुए हिस्सोंके तारण पर ही कर्ज दिया जाना चाहिये।

रजिस्ट्रारसे इज़ाज़त हासिल करके एक सभा दूसरी सभाको कर्ज़ दे सकती है। किन्तु मध्यवर्ती बैंकों और संघोंकी स्थापना हो जानेसे अब इसकी जरूरत नहीं रही है। हमारे ख़यालसे ऐसा करना जोखिमसे खाली भी नहीं है। हर एक प्राथमिक सभा अपनी जरूरतसे ज्यादा पूंजीको मध्यवर्ती बैंक या संस्थामें जमा कर सकती है। और ये संस्थाएं इस रकमको ब्याज पर उठा देने का प्रबंध कर देती हैं।

अकृषि जीवियोंकी साखवाली सभाओंने सहकारके सिद्धान्तोंका निरादार कर मुनाफा तकसीम करना शुरू कर दिया है। और मुनाफेके जालमें फँसकर नये मेम्बरोंकी भरती बंद कर दी है। ज़्यादा मुनाफा पानेके हेतु ही ऐसा किया जाता है। इस प्रवृत्तिको रोकना बहुत ज़रूरी है।

बड़ी बड़ी सभाओंमें वैतनिक कर्मचारी रक्खे जाते हैं। इन सभाओंके अधिकांश सभ्य शिक्षित और समझदार होते हैं। वे व्यापारी तत्व पर कारोबार चला सकते हैं। इसलिये इनके कार्य-संचालन पर बड़ी देख-रेख रखनेकी ज़रूरत नहीं है। यदि कार्य-क्षेत्र बहुत ही विशाल हो, तो साधारण सभा (General body) को चाहिये कि अपनेमें से एक 'निरीक्षक-मंडल' चुने। यह मंडल प्रबंधक समितिके कार्यकी जांच करता रहेगा।

ऊपर बड़ी बड़ी सभाओंसे ताल्लुक रखनेवाली सामान्य बातों पर विचार कर आये हैं। अब जाति सभाएं, कारीगरोंकी सभाएं आदि छोटी छोटी सभाओंके संबन्धमें साधारण बातें बतलाई जायंगी।

ज़िमींदार, किसान, मज़दूर, व्यापारी, कारीगर आदि हर एक आदमी जो एक ही गाँव या मुहल्लेका रहनेवाला हो 'पीपलस बैंक' का सभासद हो सकता है। सभासदोंको मुनासिब शर्तों पर रुपया उधार दिया जाता है और उनकी रक़में अमानत रक्खी जाती हैं, किसी जाति या उपजातिके गरीब और मध्यम-वित्तके लोग मिलकर ही जाति सभाएं कायम करते हैं। भिन्न भिन्न जातिके लोग

एक ही सभाके सभासद नहीं हो सकते हैं। सभी सभासद एक दूसरेकी पहचानके और रिश्तेदार होते हैं। लेखकके मतसे जाति सभाओंकी स्थापना-को उत्तेजन देना हानिकारक है। और खासकर ऐसे ज़मानेमें जब कि भिन्न भिन्न जातियोंमें विरोध की आग बढ़ती जा रही है। हमारे ख़यालसे इन सभाओंके कारण वैमनस्य और भी बढ़ जायगा।

बड़े बड़े आफिसों, कोठियों और कम्पनियोंके वैतनिक कर्मचारियोंकी सहकारी सभाएं कायम की गई हैं। रेलवेके नौकरोंने भी अपनी सभाएं खोली हैं। रेलवेके औडीटर—हिसाब जाँचनेवाले ही, इन सभाओंके हिसाबकी भी जाँच करते हैं। टेलीग्राफ, पोस्ट, पुलिस, शिक्षाविभाग, आदि महकमोंके नौकरोंकी भी जुदी जुदी सभाएं हैं। कई प्रान्तोंमें इन सभाओंका काम ठीक तरहसे चल रहा है। सभासदोंको कम सूद पर रुपया उधार देना ही इन सभाओंका एक मात्र उद्देश है।

हर एक सभासद को हर महीने अपनी तनख़्वाहमेंसे कुछ रक़म सभाके कोषमें जमा करनी पड़ती है। इससे हिस्सोंकी रकम चुका दी जाती है। तार, पोस्ट आदि महकमोंके कर्मचारियोंके तबादले होते रहते हैं और कभी कभी वे दूसरे प्रान्तोंमें बदल जाते हैं। इससे सभाके कार्यमें झंझटें पैदा होती हैं और कार्य संचालनमें दिक्कतें पेश आती हैं। इसके अलावा ऑफीसर, क्लर्क, चपरासी आदि सभी दरजेके नौकर एक ही सभाके सभ्य होते हैं। अफसरोंका मातहतों पर दबाव पड़ता है, और हर बातमें वे अफसरोंका लिहाज़ रखकर काम करते हैं, जिससे सहकारके सिद्धान्तोंकी अवहेला होती है। अतएव अफसरोंको चाहिये कि सभाके भीतरी मामलोंमें दखल न दें। कभी कभी अफसर लोग अपने प्रभावके कारण अपने निजके लिये या अपने मित्रों या रिश्तेदारोंके लिये ज़्यादा कर्ज मंजूर करा लेते हैं, और किश्तोंकी अदायगी भी वक्त पर नहीं होती है। प्रबंधक समितिके अधिकांश सभ्य मातहत लोग होते हैं, अतएव वे अफसरके खिलाफ जा नहीं सकते हैं। यदि प्रबंधक-समितिमें सभी दरजे़के नौकरोंके प्रतिनिधि रहा करें, तो ये झंझटें और दिक्कतें रफा-की जा सकती हैं। सभाके कामकी जाँचके लिये 'निरीक्षक मंडल' नियुक्त कर दिया जाय और हर माह तनख्वाहमेंसे कर्ज़की वसूली सख्तीसे की जाती रहे तो ये सभायें सफलता पूर्वक चल सकती हैं।

कारीगरों और गृह-शिल्पियोंकी सभाओंका कार्य-क्षेत्र एक गाँव की सीमासे अधिक नहीं होता है। एक विशेष धंधा करनेवाले सभी व्यक्ति सभासद हो सकते हैं। मध्यवर्ती संस्थाओंसे कर्ज लेकर या लोगोंकी अमानत रकमें जमा करके पूंजी इकट्ठी-की जाती है। इन सभाओंकी जिम्मेदारी मर्यादित रखना निहायत ज़रूरी है। कारण कि इसके बिना पूंजी इकट्ठी नहीं की जा सकेगी। सभासद लोग गरीब होते हैं। उनके पास जायदाद भी कम होती है। अतएव काफी पूंजी इकट्ठी करके इन सभाओं-का काम चलाना बहुत मुशकिल है। ये लोग कर्ज-के भारी बोझसे दबे रहते हैं और अशिक्षित भी होते हैं। इन्हीं सब कारणोंको सोच समझकर सावधानी-से कार्य संचालन किया जाना चाहिये। सबसे पहले इनके व्यवसाय को प्रति-स्पर्धासे बचानेकी कोशिश करनी चाहिये।

साहूकार लोग इनसे बहुत ज़्यादा सूद लेते हैं। और यही कारण है कि अत्यन्त कुशल और परिश्रमी कारीगर भी अपना गुजारा मुशकिलसे चलाता है। इसीसे वे लोग मज़दूरी करनेके लिये शहरोंमें जा बसते हैं। भारतके गृह-शिल्पके नाश-के ये ही कारण हैं। बेचारे कारीगरोंको पूंजीपतियों-की थैली भरनेके लिये रात दिन मज़दूरी करनी पड़ती है। सहकारी-सभाओं द्वारा कम सूद पर काफी पूंजी दिलवानेका प्रबंध कर दिया जावे और नवीन ढंगसे काम करना सिखाया जाय, तो इन लोगोंकी हालत बहुत कुछ सुधर सकती है।

कई प्रान्तोंमें भङ्गी, चमार, मोची, आदि की आर्थिक अवस्था सुधारनेके लिए भी सभायें कायम की गई हैं। इन सभाओंको एक हद तक सफलता भी मिली है। इन सभाओंका कार्य-संचालन करना ज़रा कठिन है। और इसके लिए विशेष अनुभवकी जरूरत होती है। स्थानाभावके कारण इन सभाओंकी कार्य-पद्धति पर विशेष प्रकाश नहीं डाला है।

रसायन और जंगल की पैदावार

लाखका व्यवसाय

[ले० श्री राय परमात्माप्रसाद माथुर, एम० एस-सी०]

लाख कई प्रकारके वृक्षों पर एक बहुत छोटेसे कीड़े (Tachardia lacca-family coccidae) की पैदा की हुई गोंदके समान एक प्रकारकी वस्तु है। केवल अन्तर इतना है कि लाख का रंग कुछ कुछ लाल सा होता है। यह रंग वास्तवमें नीलिन् रंगके प्रचारके पूर्व लाखके रंगके नामसे काममें भी लाया जाता था। इस गोंद जैसी वस्तुको शुद्ध करके शेलाक भी बनता है जिसके अनेकों प्रयोग होते हैं। विशेषकर इससे वार्निश, चिपकानेकी लाख, ग्रामोफ़ोन रिकार्ड इत्यादि बनाये जाते हैं। लाखका कीड़ा कई प्रकारके वृक्षोंके कोमल डंठलों पर जीवित रहता है। इन वृक्षोंमें सीताफल, ढाक, कोकर घोट इत्यादि सबसे उत्तम श्रेणीकी लाख उत्पन्न करते हैं।

परन्तु साथ साथ लाखके कीड़ेके बहुतसे शत्रु भी होते हैं जो लाखके कीड़ेको मारडालने और लाखकी उपजको नष्ट करनेके लिए अवसर जोहते रहते हैं। लाखके कीड़ेका रस चूसनेके लिये चींटी लाखके ऊपरकी झिल्लीको तोड़ डालती है और उसके अन्दर रहनेवाले कीड़ेको मार डालती है। इसी प्रकार कई जाति की तितलियां भी लाखको हानि पहुचाती हैं। परन्तु सबसे भीषण लाखके शत्रु बन्दर और कई प्रकारके पक्षी हैं। मध्य प्रदेश और बिहार जहांके वनोंमें लाखका पैदा करना एक बहुत लाभदायक व्यवसाय है, सरकारकी ओरसे विशेष रखवाले बन्दरों और पक्षियोंको लाखसे हकारनेके लिये रखे जाते हैं।

प्रकृतिके प्रकोपसे भारी वर्षा होनेसे भी लाख-को प्रायः भारी हानि पहुँचती है। लाखका कीड़ा बह जाता है और विशेषकर कीड़ेके चलनेके समय में। इस विषयमें हम आगे लिखेंगे यह कहना वृथा है कि अग्नि प्रकोपसे भी जो जंगलोंमें प्रायः ग्रीष्म ऋतुमें मामूली तौरसे लग जाती है, कीड़ा मर जाता है और लाखको बहुत हानि पहुँचती है।

कीड़ेका जीवन

प्रत्येक वर्ष दो ऋतुओंमें लाखके कीड़ेका जन्म होता है। इसको कीड़ेके चलनेका समय कहते हैं। कीड़े एक तो सावनमें वर्षा होने पर चलता है और दुबारा कातिकमें। परन्तु कहीं कीड़ा जल्दी भी चलने लगता है। प्रायः एक माह तक इसी तरहसे कीड़ा रह रह कर चलता है और वृक्षोंकी कोमल डंडियां इन कीड़ोंसे लाल हो जाती हैं। जिस प्रकार कितनी ही जातिकी तितलिया अंडा देते ही मर जाती हैं, लाखके कीड़ेकी मादा भी अण्डेसे बच्चा निकलते ही मर जाती है। यह अण्डे बच्चा निकलनेके पूर्व लाख के, जो कि हम कह आये हैं कि गोंद की तरह डालियों पर उपज आती है, भीतर ही रहते हैं। बच्चा निकलने पर यह कीड़े (अर्थात् बच्चे) लाख तोड़ कर बाहर डालियों पर निकल कर जमा हो जाते हैं और कोमल डालियों का रस पी कर बढ़ने लगते हैं, और साथ ही साथ उनके ऊपर और चारों ओर लाख का परत जमने लगता है। नर बड़ा होने पर निकल आता है और इसी समय मादा और नर मिलते हैं। मादा

लाख के अन्दर तब तक रहती है जब तक बच्चे नहीं हो जाते और बच्चे होने पर मर जाती है। और नर का प्राणान्त मादा से मिलनेके बाद ही हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक ऋतु पर नये कीड़े पैदा होते हैं और पुराने मर जाते हैं। नर प्रायः कीड़ा चलनेके ढाई माह बाद निकलता है अर्थात् फागुन और भादों के अन्तिम भाग में। पहली ऋतु के नर बिना पर वाले और दूसरों के लम्बे परदार होते हैं। किसी किसी स्थान पर एक वर्षमें तीन बार कीड़े चलते हैं। इसी से निश्चय है कि लाखका कीड़ा कई प्रकार का होता है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि सावन और कातिक यह दो माह हैं जब लाख का कीड़ा चलता है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि प्रत्येक वृक्षके कीड़ेके लिये जिस पर वह बैठाया जाता है, कीड़ा चलनेका एक ही समय होता है। कुछ दिवसोंका अन्तर पृथक् पृथक् वृक्षोंके कीड़ेके चलनेमें पड़ जाता है, उदाहरणतः कुसुमका कीड़ा घोटके कीड़ेसे पूर्व और घोट का कीड़ा पलासके कीड़ेके पूर्व ही चल जाता है। वास्तवमें हम लोग इस कीड़े की रहन सहनके विषयमें बहुत ही थोड़ा सा ज्ञान रखते हैं, हालांकि लाखका पैदा करना प्रतिदिन वैज्ञानिक पुरुषोंके हाथोंमें पहुँचता जा रहा है। अभी तक कुछ ज्ञात नहीं कि ऋतुका वृक्षों पर कीड़ा चलने पर और उस पर लाख जमनेका क्या प्रभाव पड़ता है। न कुछ इसी बारेमें मालूम है कि कीड़ा किस प्रकार चलता है और उस पर लाख क्यों कर जमती है। कीड़े के चलनेके विषयमें यह कह देना भी आवश्यक है कि उसके चलनेके समय में अन्तर भी डाला जा सकता है। एक डंडी जिसमें कीड़ा चलना अभी अधिक आरम्भ नहीं हुआ था एक डिब्बेमें रख दी गई। इस डंडी को केवल रातमें थोड़े समयके लिये खोल दिया जाता था। यह देखा गया कि प्रायः एक माह तक कीड़ा नहीं चला और जो कुछ निकला भी था अधमरा सा एक कोने पर एकत्रित हो गया इसी बीचमें उस वृक्षमें जिसमेंसे वह डाली ली गई थी कीड़ा अच्छी तरह निकल चला था। इसके पश्चात् वह लकड़ी हवामें रख दी गई और यह देखा गया कि कीड़ा प्रायः एक दिनमें ही शीघ्रतासे निकल आया। वास्तवमें इस कीड़े-का चलना उस कीड़ेसे जो प्रायः साधारणतः अपनी जगह पर ही वृक्ष पर छोड़ दिया गया था बहुत शीघ्रतासे हुआ। संभव है हमारे प्रकाश-रसायनज्ञ इसका कुछ कारण बतलावें परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि किरणों की अपेक्षा वायुके चलने पर अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु अभी तक कुछ निश्चय नहीं हो पाया है। इस कीड़ेके फैलने-की रफ़ार भी बहुत अधिक होती है। एक कमरे-में कुछ लाख जिसमें जीवित कीड़े थे रख दी गई। कुछ दिवस बाद दो कमरे छोड़ कर तीसरे कमरे की दीवारों और कपड़ों पर कीड़े फैल गये।

लाखका फैलाना

लाखके फैलानेके लिये छोटी छोटी लकड़ी जिनमें कीड़ा होता है काट ली जाती हैं। इन लकड़ियों की लम्बाई ६ इञ्चसे १२ इंच तक होती है। यह ऐसे समय काटी जाती हैं जब कीड़ा चलना बहुत थोड़ा आरम्भ हुआ हो। यदि कीड़ा चलने, से पहले काट ली जायँ तो डालियोंमें रस की कमी होनेके कारण मादा मर जाती है और कीड़ा नहीं चलने पाता। यह डंडियाँ फिर जिस वृक्ष पर लाख फैलानी होती है उसकी कोमल डालियोंसे बाँध दी जाती हैं। और साथ ही इन डंडियोंको घाससे ढांक दिया जाता है जिससे वर्षासे कीड़े न बह जावें। इस बातका विशेष ध्यान दिया है कि नये वृक्ष की डंडियां जिससे लाख बांधी जाती है अधिक कड़ी न हों जिससे छोटे कीड़ों को रस चूसनेमें असुविधा हो। फिर इस वृक्ष पर नये सिरेसे लाख लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि लाख एकत्रित करते समय कुछ डालियों को कीड़ा फैलानेके लिये छोड़ दिया जाता

है। और यही आगामी ऋतुकी उपजके लिये काफी है।

इस अवसर पर कुछ वर्णन वृक्ष का कर देना भी नितान्त आवश्यक है। कुसुम की लाख सबसे उत्तम श्रेणीकी गिनी जाती है। कारण, इसमें रंग बहुत ही कम होता है। और इसके शुद्ध करनेकी भी बहुत कम आवश्यकता होती है। घोट और पलास की लाखमें रंग अधिक होता है। और इसी कारण वह इतनो उत्तम नहीं गिनी जाती। वास्तवमें नीलिन्के रंगके प्रचारके पूर्व कुछ उलटी ही बात थी क्योंकि लाखका रंग भी काम आता था और इसी कारण पलास और घोट की लाख उत्तम समझी जाती थी। परन्तु अब लाखका रंग काम नहीं आता। इस कारण लाखमें रंग होना एक प्रकारसे अवगुण ही समझा जाता है। हाल ही में सीताफल पर भी कीड़ा चलाया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि इस वृक्ष पर लाख तो अधिक मोटी होती है परन्तु उसमें रंग की मात्रा भी अधिक होती है। साथ ही ऐसा भी प्रतीत होता है कि उसका कीड़ा शीघ्र ही मर जाता है। इस विषयमें कुछ काम इण्डियन लाख रिसर्च इन्स्टीट्यूट, राँचीमें हो रहा है जिसका ब्योरा वहांके अध्यक्षने नतीजा मिलने पर देनेका वचन दिया-है। इसके अतिरिक्त एक अपूर्व बात यह है कि कुसुम का कीड़ा घोट, पलास, सीताफल या और वृक्षों पर जिनपर लाख होती है चलाया जा सकता है। परन्तु घोट या पलास का कीड़ा कुसुम पर नहीं चलाया जा सकता और बिना लाख पैदा किये शीघ्र ही मर जाता है। वास्तवमें इस कीड़े की पृथक् पृथक् वृक्षों पर चलाने की श्रेणी भी वही है जो इनसे बनाई हुई लाख की उत्तमता है और यह कहना अति कठिन है कि किस प्रकारसे वृक्ष लाख की उत्तमता पर प्रभाव डालता है और यह क्यों होता है कि बुरी लाख की श्रेणी का कीड़ा उत्तम लाखकी श्रेणीके कीड़ेके वृक्षा पर नहीं चलाया जा सकता। प्रत्यक्ष है कि लाखकी उत्तमता का विभाग केवल एक मात्र रंगके होने या न होने पर ही निर्भर नहीं परन्तु इसका कुछ प्राकृतिक कारण भी है।

लाख एकत्रित करना

प्रायः लाख का एकत्रित करना भी कीड़ा चलने के बाद ही आरम्भ कर दिया जाता है। विशेषतया ऐसा उन स्थानोंमें किया जाता है जहां लाखकी बहुतायत हो और वह मोटी भी हो जिससे लाखके गिरने और नष्ट होनेके पूर्व उनके एकत्रित करने का पूर्ण समय मिल जाय। आरम्भमें तो मोटी डंडियों पर जमी हुई लाख ही एकत्रित की जाती है परन्तु अन्तमें पृथ्वी पर पड़ी हुई लाख भी जमा कर ली जाती है। इसे कटवा लाख कहते हैं। तत्पश्चात् जो लाख शुद्ध नहीं होती जैसे घोट की लाख वह शुद्धकी जाती है। लाखके शुद्ध करनेके लिये सर्व प्रथम फटकी जाती है। फटकनेके लिये पहले कटवा लाख प्रयोगमें लाई जाती है। कारण, इसके ख़राब होने का ही अधिक डर रहता है। लकड़ी पर जमी लाख सबसे बादमें शुद्ध की जाती है। यदि लाखका रंग निकालना हो तो वह नीचे दी हुई विधिके अनुसार काममें लाई जाती है। जो लाख कीड़ा चलनेके बाद एकत्रित की जाती है उससे रंग नहीं निकाला जा सकता और यदि निकाला जा सकता भी है तो कम। इसी कारण यदि रंग पानेकी इच्छा हो तो लाख कीड़ा चलनेके पहले काट ली जाती है। पर आजकल रंग की ओर कम ध्यान दिया जाता है और लाख कीड़ा चलने के बाद काटी जाती है जिससे कीड़े का बदन प्राकृतिक हो और लाखसे शेलाक बननेमें सुभीता हो।

लाख का रंग

ऊपरकी शुद्धकी हुई लाख एक बड़ी नाँद में डाल दी जाती है और प्रायः २४ घंटे तक पानीमें भिगोई जाती है। तत्पश्चात् यह ख़ूब मसली जाती है जिससे पानीमें रंग आ जाता है। इसी

प्रकार कई बार पानी बदल कर सारा रंग निकाल लिया जाता है। यह पानी फिर एक बर्तनमें जमा करके छोड़ दिया जाता है। कुछ तो आप ही और कुछ चूना और फिटकरी डालनेसे रंग कुछ समयमें नीचे बैठ जाता है। पानी ऊपरसे निथार लिया जाता है।

लाखसे शैलाक बनाना

शुद्ध लाख कपड़े के लम्बे थैलोंमें बदली जाती है और उस थैलेको एक कोयलेकी भट्टीके सामने दो आदमी दोनों सिरे पकड़ कर एक दूसरेके उलटी ओर घुमाते हैं। लाख जो अग्निकी तपशसे द्रवित हो जाती है नीचे स्वच्छ चबूतरे पर गिर जाती है। पतली जमी हुई लाख बनानेके लिये द्रवित लाख एक चीनी (Porcelain) की नलीमें जिसमें पानी भरा रहता है निकाली जाती है। इस लाखके किनारे काट कर ठीक किये जाते हैं, और यह अग्निके निकट खींचकर लम्बाई और चौड़ाईमें बड़ी बना दी जाती है। यह फिर ठंडी कर ली जाती है और इसीको शैलाक कहते हैं।

कई प्रकार की शैलाकके साथ संक्षीण ओषिद (Yellow Arsenic) या बैरोज़ा या आवश्यकता होने पर दोनों मिला दिये जाते हैं। संक्षीण ओषिद मिलानेसे रंग हलका पीला हो जाता है और अच्छी शैलाक (Shellac) की यह पहचान है। बैरोज़ा मिलानेसे द्रवण तापक्रम का अवकर्ष हो जाता है और यह इस कारण कई व्यवसायों में काममें लाई जाती है। परन्तु बैरोज़ा २ से ५ प्रतिशत तक होना चाहिये, अधिक नहीं।

नीरङ्गीकरण।

कभी कितने ही कामोंके लिये बिना रंग की लाखकी आवश्यकता होती है. बेरंगी लाख दो प्रकार से बनाई जाती है। भौतिक विधि में या तो सूर्य की किरणों द्वारा या हड्डीका कोयला डालकर लाखके मद्यिक घोलका रंग दूर किया जाता है। परन्तु रासायनिक विधिमें जो सबसे उत्तम है, हरिन् या उपहरसाम्ल (Hypochlorous acid) प्रयोगमें लाये जाते हैं। यह क्रिया तो ओषदीकरण (Oxidation) है। वास्तवमें वही विधि सब से उत्तम मानी जाती है जिससे लाख सबसे अधिक श्वेत हो जावे परन्तु साथ ही साथ लाखके कड़ेपन और उसकी घुलनशीलता में अन्तर न पड़े। इसी कारणवश भौतिक विधि अपूर्ण है क्योंकि हड्डीके कोयलेसे तो लाखका रंग एक प्रकारका मटियाला सा हो जाता है, और सूर्यकी किरणों से समय बहुत लगता है।

परन्तु रासायनिक विधि भी इतनी सरल नहीं कि जितना ज्ञात होता है, यद्यपि यह उत्तम निरंगी लाखके बनानेमें सर्व-श्रेष्ठ है।

इस विधिमें भी बहुतसी क्रियायें हैं और वह भी सब आवश्यक उत्तम परिणाम पाने के लिये इन क्रियाओंकी ओर विशेष ध्यान और सावधानी की आवश्यकता है। कार्य्य विधि इस प्रकार है, (१) शुद्ध लाखका चूर्ण करना जिससे वह शीघ्रतासे घुल सके (२) इसको उपयुक्त घोलक में घोलना, (३) उपयुक्त नीरङ्गीकरण तत्त्व का बनाना और लाख के घोलको उसमें मिलाना, (४) निरंगी-लाखको जमा करना और उसे सुखा कर बिकने योग्य बनाना।

लाख घोलनेके वास्ते २.५ °/॰ सैन्धक अर्ध कर्बनेत (Sodium bicarbonate) घोल प्रायः ६०से ७०° तापक्रम पर प्रयोगमें लाया जाता है। इससे कम शक्तिके घोलमें लाखकी घुलन-शक्ति कम हो जाती है और घोलकी इससे अधिक शक्ति होने पर लाखकी बैरोज़ेके प्रकारकी एक चिपकनी वस्तु बन जाती है। लाख घोलकमें डाल कर छान ली जाती है और इसके उपरान्त इस घोलमें लाख की मात्रा मालूम कर ली जाती है। इसी मात्राके अनुसार

उसमें नीरङ्गीकरण घोल डाल दिया जाता है। परन्तु इसके पूर्व लाख वाले घोलमें यदि क्षार की मात्रा कुछ अधिक हो तो उसे शिथिल करना भी अति आवश्यक है।

नीरङ्गी लाखमें थोड़ा गन्धकाम्ल (१:२०) बूंद बूंद करके डालनेसे लाख अलग होजाती है और फिर बुकनर कुप्पीमें छान कर सुखाली जाती है। नीरंगीकरण तत्त्व के बनाने के लिये प्रायः एक उपयुक्त शक्ति का सैन्धक उपहरित (Sodium Hypochlorite) घोल प्रयोग में लाया जाता है।

रासायनिक अन्वेषण की आवश्यकता

मैं इस निबन्ध द्वारा रसायन विशारदोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकता। इस ओर ध्यान देते हुए कि एक प्रकार की कृत्रिम शैलाक बननेपर भी भारतमें लाखका व्यवसाय बहुत ही लाभदायक है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि अनेको विषयों में जिनका व्योरा मैं दे आया हूँ खोज की जावे। इसमें हमारे देशमें लाखकी उपज और उसके व्यवसाय को बहुत लाभ पहुंचने की संभावना है और साथ साथ यह भी सम्भव है कि इससे लगी हुई और बहुत सी समस्यायें भी हल होजावें जैसे कि वृत्तमें कीड़ा क्यों लगता है अथवा उसके रोकने का क्या उपाय हो सकता है इत्यादि। साथ ही नीरङ्गी-लाख बनाने की विधि भी अभी तक उतनी श्रेष्ठ नहीं जितनी समयानुसार होनी चाहिये।

इस विषय में कुछ काम इण्डियन लाख रिसर्च इन्स्टीट्यूट रांचीमें हो रहा है जिसकी अध्यक्षा एक महिला हैं। लेकिन अकेले अलग अलग उद्योगोंका होना भी बहुत लाभदायक होसकता है।

नोबेल पुरस्कार और भौतिक शास्त्र के महर्षि

[ले० श्री श्यामनारायण शिवपुरी, बी० एस-सी० (आनर्स), तथा श्री हीरालाल दुबे, एम० एस-सी०]

यद्यपि भारत में सरस्वती देवी का पूजन होता है परन्तु वास्तवमें केवल पाश्चात्य देशोंमें ही सरस्वती देवी पूजी जाती हैं यद्यपि ईसाके उपासकों के लिए ऐसी कोई देवी नहीं है। हमारे देशमें यदि किसी धनवान् पुरुष ने देह-त्याग किया तो उसका द्रव्य उसके लड़के मुकदमेंबाजीमें ही उड़ा देते हैं और यदि कुछ बचा तो वह भोग-विलासमें समाप्त हो जाता है। हमारे देशके राजा महाराजा तो सरस्वती-पूजक होते ही नहीं। बहुत से ऐसे ही राजा होंगे जिन्हें पुस्तकोंके प्रति कुछ भी सम्मान नहीं है। परन्तु अब ईश्वर की कृपासे उन्हें भी सद्-बुद्धि आ रही है और वे अपना द्रव्य सैकड़ों कुत्ते रखने व बड़ी बड़ी दावतें देने ही में खर्च नहीं करते वरन् विद्या देवीका भी हिस्सा रखते हैं। आज हमारे देशमें ऐसा एक विश्वविद्यालय है जो कि राजा महाराजाओंके दानसे व बड़े बड़े सेठ साहू-कारोंकी कृपासे अपना कार्य किसी तरहसे चला रहा है। परन्तु जब आप पाश्चात्य देशोंकी ओर देखेंगे तो आपको मालूम हो जावेगा कि वहांके पुरुष कितने विद्योपासक होते हैं। जब किसी धनी पुरुष का देहान्त हुआ तो वह हज़ारों पाउण्ड और डालर किसी खास विषय के लिए या किसी स्कूल या विश्वविद्यालयके लिए छोड़ जाता है। वह समझता है कि इस प्रकार उसका धन देशके लिए अधिक लाभदायक होगा, बनिस्बत इसके कि उसके लड़के उसे भोग विलासमें उड़ा दें। भारतको पाश्चात्य से इस विषयमें बहुत सीखना है।

सन् १८९५ की २७वीं नवम्बर के दिन ऐसे ही एक धनी पुरुष का, जिनका शुभ नाम डाक्टर

एलफ्रेड बनहार्ड नोबेल था और जिनका पेशा इंजीनियरिंगका था, वसीयत नामा लिखा गया। नोबेल की इस अन्तिम वसीयतको सुनकर संसार चौंक पड़ा। वह इस प्रकार है—

"+ + + मेरी बची हुई जायदादको बेंचकर जो द्रव्य मिले उसे कहीं जमा कर दिया जावे और उसके व्याजको हर वर्ष पुरस्कार-रूपमें बांटा जावे। उसका एक भाग उस मनुष्यको दिया जावे जो भौतिक शास्त्रमें मार्केका अविष्कार करे, दूसरा भाग उसे जो रसायन शास्त्रमें महारथी होवे। तीसरा उसे जो चिकित्सा-शास्त्रमें महर्षि हो। चौथा उसे जो साहित्यिक आदर्शोंको गौरवान्वित करे और पांचवां भाग उसे जो संसारमें शान्ति एकता भ्रातृ-स्नेह पैदा करे"। हर एक विषयका आठ हज़ार पौंड अर्थात् १ लाख रुपएसे कुछ अधिक पुरस्कार होता है। नोबेल बड़ा ही उदार हृदयका था उसे स्वार्थ छू, भी नहीं गया था, यह उसकी आगेकी वसीयतसे स्पष्ट हो जावेगा। वह कहता है, "यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुरस्कार देते समय राष्ट्रीयता (Nationality) का कुछ भी ध्यान न दिया जावे। कहने का तात्पर्य यह है कि पुरस्कार योग्य पुरुषको ही दिया जावे चाहे वह स्केंडिनेवियन हो या और किसी भी देशका।"

डाक्टर नोबेलके समान दानी पुरुष दुनियामें बहुत ही थोड़े होते हैं। वह उन मनुष्योंमें से थे जिन्होंने दुनियाके झंझटों को छोड़ कर अपने लिए ऐसी कीर्त्ति कमाई जो आज भी चमक रही है और जो अपनी सन्तानके लिए उचित और उत्तम उदाहरण रख कर मृत्युलोकमें भी अमर हो गए। यद्यपि डाक्टर नोबेल साधारण वैज्ञानिक थे, तिस पर भी उनकी कीर्त्ति आज साहित्य और विज्ञानमें एक सी फैल रही है।

एलफ्रेड बनहार्ड नोबेलका जन्म सन् १८३३ की २१ वीं अक्टूबर को स्टाकहालममें हुआ था। उसने अपने पिता इमेनुअल नोबेलसे रासायनिक आविष्कारमें प्रेम और रुचि ग्रहणकी थी। उसकी माता का नाम केरोलीन हेनरिएट था। वह बड़ी कुलीन और सद्विचारों वाली महिला थी और एक ऐसे पुरुषके चरित्र संगठनके लिए आदर्श माता थी जिसका अभिमान उसके देश व माता पिताको है। कुछ समय पश्चात् वह चतुर कारीगर अपने परिवार व छोटे बालकके साथ सेण्टपीटर्सवर्गको चला गया और वहाँ पर पनडुब्बियों या टारपिडो को बना कर उनका व्यापार करने लगा। इस प्रकार बालक एलफ्रेड छुटपनहीसे गोला बारूद और युद्धके हथियारोंके विचारोंमें डूबा रहता था। उसे जहाज़ बनानेकी विद्या सीखनेके लिए अमेरिका भेजा गया था और वहाँ पर उसने रसायनके उस भागका अध्ययन किया जो मानव जातिको नष्ट करनेके काममें आता है। उसका पूरा जीवन दुर्घटनाओंसे भरा हुआ था। उसकी प्रथम दुर्घटनासे उसे डाइनेमाइट मिला। कुछ नोषमधुरिन (Nitroglycerine) वह वस्तु जो कि नोबलके पिता ने आविष्कार की थी, अपने बर्तनमेंसे निकल कर उस रेतीमें मिल गयी जिसमें कि वह बर्तन रक्खा हुआ था और इस घटनासे उसे डाइनेमाइट मिला। दूसरी घटनासे उसे जिलेटिन-विस्फुटक (Blasting gelatine) मिला। वह इस प्रकार है कि एक दिन वह एक घावमें और कलोदियन (collodion) लगा रहा था और बचे हुए कलोदियनको उसने थोड़ेसे नोष-मधुरिन में डाल दिया। इससे जो पदार्थ मिला उससे कई प्रयोग किए गए और अन्त में वह पदार्थ मिला जो जिलेटिन-विस्फुटकके नामसे प्रसिद्ध है। गन-कौटनको ज्वलक (Ether) में घोलनेसे कलोदियन मिलता है। नोबेलने ऐसी बारूद बनाई जिससे धुआँ नहीं निकलता और बंदूकके बनानेमें भी कई सुधार किए। उसने अपने आविष्कारोंसे २० लाख पौंडसे भी अधिक धन एकत्रित कर लिया।

परन्तु आदि ही से उसके यह विचार थे कि धनसे समाजकी आत्मोन्नति नहीं हो सकती और उसके समयका नास्तिक यूरोप विज्ञानके मायावाद का आवाहन कर रहा था। उसने बहुधा अपने मित्रोंसे भी यह इच्छा प्रगटकी कि वह किसी प्रकार दुनियांके कुछ दुःख कम कर सके और ये ही पवित्र और उच्च विचार उसकी मृत्यु-समयकी वसीयतमें पाए जाते हैं।

सन १८८४ से वह रायल स्वेडिश एकेडेमी आफ साइन्सका मेम्बर था और रायल सोसाइटी आफ लंडन और पेरिसका भी मेम्बर था। १८८० से वह नाईट आफ दी आर्डर आफ दी पोलर स्टार था। १८९३ में उपसला विश्वविद्यालयने उसे डाक्टर आफ फिलासफीकी उपाधि दी।

अभाग्यवश नोबेलकी पवित्र आत्मा सन् १८९६ की १० वीं दिसम्बरको सेनरिमोहेली नामक स्थान से स्वर्गलोकको प्रस्थान कर गई। उस समय उसकी उम्र केवल ६३ वर्षकी थी।

आरथर-मी पोपुलर साइन्स (Popular Science) में लिखते हैं कि नोबेलके "वसीयत" पत्रमें वही भावना है जो नेपियर (Napier) में थी। नेपियर फ्रांसका बड़ा भारी जनरल था। उसने एक ऐसी तोप बनाई थी जिससे कि सैकड़ों सिपाहियों की मृत्यु क्षण भरमें हो जाती थी। जब उसकी मृत्यु होने लगी उस समय उसके कुछ मित्रोंने उससे पूछा कि वह हथियार आपने किस प्रकार बनाया है, यह हम लोगोंको बतला दीजिए। इस पर उसने उत्तर दिया कि वह हथियार सैकड़ों निर्दोष और सुन्दर सिपाहियोंकी जानले चुका है और अब मैं नहीं चाहता कि पृथ्वी पर ऐसा पाप और हो। नोबेलकी पृथ्वी पर शान्ति स्थापना करनेकी इच्छा केवल इस धन देने हीसे अन्त नहीं हो गई परन्तु उसके आविष्कारोंसे सभ्यतामें भी बहुत उन्नति हुई, यद्यपि उसके जीवनका अधिकांश भाग युद्धकी सामग्रियोंको बढ़ाने हीमें व्यतीत हुआ।

नोबेलकी जायदादसे जो धन मिला उसके पांच भाग किए गए। हर एक भागका एक पुरस्कार हुआ और उन सबके लिए नियम बना दिया गया जिनके अनुसार वे वितरित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार हर एक संस्थाका कर्तव्य पुरस्कार का वितरण करना है। हरएक संस्था एक समिति बनाती है जिसे "नोबेल कमेटी" कहते हैं। इसमें ३, ४ या ५ मेम्बर होते हैं जो पुरस्कारके वितरण में अपनी सलाह देते हैं। शान्तिके पुरस्कारके वितरणकी सलाह नारवे पारलामेण्ट (Norway strothing) की कमेटी देती है।

विज्ञानमें नोबल पुरस्कार वितरण करनेमें नीचे लिखे हुए नियमोंका पालन किया जाता है:—

(१) ऐसे आविष्कार व कार्योंका विचार किया जावेगा जो पिछले वर्ष किए गये हों और वे आविष्कार जो कुछ पुराने हो गए हों उनका विचार उसी समय किया जावेगा जब कि उनका महत्व पहले न दिखाया गया हो।

(२) पुरस्कार पानेके लिए यह आवश्यक है कि जिस कार्य व आविष्कारमें पुरस्कार मिल रहा हो वह पहले छप चुका हो।

(३) यदि दो मनुष्य एक ही विषयमें ऐसा काम करें कि कमेटी उन दोनोंको पुरस्कारके लिए योग्य समझे तो उस विषय का पुरस्कार उन दोनों में बराबर बराबर बाँट दिया जावे।

यदि दो या अधिक व्यक्तिओंने मिलकर किसी कार्यको किया हो और इस कार्यमें पुरस्कार दिया जावे तो वह पुरस्कार उन सबको एक ही साथ दिया जावेगा।

पुरस्कारके लिए उस मनुष्यका कार्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जिसकी मृत्यु हो गई हो। यदि पुरस्कृत मनुष्यकी मृत्यु, कमेटीके निर्णय के पश्चात् हुई हो तो उसे पुरस्कार दिया जा सकता है।

(४) आविष्कारमें पुरस्कार उसी समय मिलेगा जब कि अनुभवसे या उस विषयके दिग्गज यह बतला दें कि उसमें ख़ास कोई मार्केकी बात है जैसी कि नोबेलके "वसीयत नामे" में लिखा है।

(५) यदि उस उच्च कोटिका आविष्कार न हुआ हो जिसमें कि पुरस्कार दिया जासके तो उस वर्षका पुरस्कार किसीको भी नहीं दिया जावेगा।

(६) यह आवश्यक है कि पुरस्कारके हर एक इच्छुकका नाम 'वसीयत' पत्रके अनुसार किसी उचित मनुष्य द्वारा पत्र रूपमें प्रस्तावित किया जावे। पुरस्कारके लिए किसी मनुष्यका प्रार्थना पत्र स्वीकार नहीं किया जावेगा।

विज्ञानकी स्वेडिश एकेडेमी (Swedish Academy of Science) जो भौतिक व रसायन शास्त्रोंमें पुरस्कार वितरण करती है एक कमेटी पांच मेम्बरों की बनाती है जो पुरस्कार देनेमें सलाह देती है। उन सदस्यों को यह अधिकार है कि यदि वे आवश्यकता समझें तो उस विषयके किसी भी आलिमको कमेटीमें मिलालें। वह कमेटी "नोबल कमेटी" कहलाती है और उसका मेम्बर केवल स्वेडिश ही हो सकता है।

भौतिक व रसायन पुरस्कारके उम्मीदवारोंका नाम नीचे लिखे हुए ही मनुष्य दे सकते हैं।

(१) स्टाकहालेमकी विज्ञानकी रायल एकाडेमीके देशी और विदेशी मेम्बर।

(२) भौतिक और रसायन भागोंकी नोबेल कमेटीके मेम्बर।

(३) वैज्ञानिक जिसे नोबेल पुरस्कार मिल चुका हो।

(४) उपसला, लेंड, क्रिसचाईना, कोपेनहेगन और हेलसिंग्स फारस, विश्वविद्यालयों के व रायल टेकनिकल कालेज स्टाकहालेमके भौतिक और रसायन शास्त्रोंके प्रोफेसर और उन्हीं विषयों के अध्यापक भी जो स्टाकहालेम विश्वविद्यालय कालेजके स्थायी कर्मचारियोंमें हों।

(५) स्वेडन विश्वविद्यालयके दूसरे कालेजों के कमसे कम छः अध्यापक जिन्हें विज्ञानकी एकेडेमी चुनती है।

(६) वे दूसरे वैज्ञानिक जिन्हें विज्ञानकी एकेडेमी चुने।

नोबेल कमेटी प्रति वर्ष सितम्बर मासमें ऊपर लिखे हुए मनुष्योंको पुरस्कारके उम्मीदवारोंके नाम भेजनेके लिये सूचित करती है। ये नाम कमेटीके पास अगले वर्षकी फरवरीकी पहली तारीख तक पहुँच जाने चाहिये। इसी सालके सितम्बरके अन्त तक नोबेल कमेटी एकेडेमीको पुरस्कार-वितरणके बारेमें अपनी सलाह तथा विचार भेज देती है। एकेडेमी आधे नवम्बर तक बिलकुल तय कर लेती है कि किसको पुरस्कार दिया जावे और दिसम्बरकी १०वीं तारीखको, जो डाक्टर नोबेलका मृत्यु दिवस है, एकेडेमी पुरस्कार-विजेता को एक चेक (एक लाख रुपयेसे कुछ अधिक) और साथ हीमें उपाधिपत्र और एक सोनेका पदक जिसमें नोबेलका चिह्न रहता है देती है। विजेता का यह कर्तव्य है कि वह उस विषय पर एक व्याख्यान देवे जिसमें कि उसे नोबेल पुरस्कार मिला है।

भौतिक शास्त्रमें १६०१ से १६२६ तक सब मिलाकर ३५ महर्षियोंको इस पुरस्कारसे सम्मानित किया गया है और वे ६ राष्ट्रोंके हैं। केवल १६१६ में किसीको यह पुरस्कार नहीं दिया गया। छः समय यह पुरस्कार दो या दोसे अधिक मनुष्यों के बीचमें बांट दिया गया है। जर्मनीको अभी तक सबसे अधिक पुरस्कार मिले हैं। उनका नम्बर ११ है। इङ्गलैंड को ७ पुरस्कार मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि पुरस्कार वितरणमें राष्ट्रीयताका कोई ध्यान नहीं दिया जाता जैसा कि नोबेलके वसीयत-पत्रमें प्रगट किया गया है।

अब भी ऐसे कई देश हैं जहांके विद्वानोंको इस पुरस्कारसे सम्मानित नहीं किया जा सका जैसे रशिया, स्पेन और भारत। यद्यपि भौतिक शास्त्रमें भारत अभी इस सम्मान को नहीं पा सका है परन्तु १७ वर्ष पहले सन् १९१३ में विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर साहित्यके लिए नोबेल पुरस्कार पा चुके हैं। अब हम उस पवित्र तथा स्मरणीय दिवसकी बाट जोह रहे हैं, जब भारतके दिग्गज सर सी. वी. रमन तथा हमारे पूज्य गुरु मेघनाद शहा जिनकी धाक सारी दुनिया मान गई है वैज्ञानिकोंका अन्तिम तथा सबसे अधिक सम्मान करनेवाले पुरस्कारसे शोभित होवेंगे। इस समय हम सर जगदीश चन्द्र बोसका नाम लिए बिना नहीं रह सकते। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि वनस्पति शास्त्रमें भो पुरस्कार होता तो सर बोस इससे कभी वंचित न रहते।

अन्तमें भारतके करोड़पतियों तथा राजा महाराजाओंसे हमारी यह नम्र विनती है कि यदि वे भी केवल भारतके ही लिए पूज्य नोबेलका अनुसरण करें तो यह देश भी किसी देशसे साहित्य, विज्ञान, कलाकौशल आदिमें पीछे न रहेगा। हम केवल भारतके लिए इस कारण कहते हैं कि और दूसरे देशोंमें वहांकी सरकारसे काफी सहायता मिल जाती है परन्तु यहां पर सरकारसे काफी उत्तेजना व मदद नहीं मिलती। इस प्रकार वे अपने देश ही का नहीं वरन् अपने लिए भी नाम पैदा कर अमर हो जावेंगे और भारतकी आगामी उनका सन्तान सम्मान करेगी और धन्य धन्य कहेगी।

× × × ×

रौञ्जन (१८४५-१९२३)

सबसे पहले १९०१ में भौतिक शास्त्रका पुरस्कार जर्मनीके प्रसिद्ध विलहेल्म कोनार्ड रौञ्जन (Wilhelm Conard Rontgen) को मिला जिसने एक्स-किरण (X–rays) आविष्कार की थीं। उसका जन्म सन् १८४५ में २७ वीं मार्चको लीनेपमें हुआ था। उसने हालेण्ड और ज़ूरिचमें विद्याध्ययन किया। उसे ज़ूरिचमें जो स्विट्ज़रलेण्डके बड़े बड़े हिमालयोंके बीचमें है डाक्टरकी उपाधि सन् १८६९ में मिली। उसके बाद वह बुर्ज़वर्ग और स्ट्रेसबर्गमें प्रोफेसर कुंट (Kundt) का सहायक नियुक्त हुआ। यहाँ पर इस पूजनीय गुरुकी शरणमें यह नवयुवक विज्ञान देवी की सेवा करने लगा। इसके बाद वह होहेनहीम के कृषि एकेडेमी (Agricultural Academy) में गणित और भौतिक शास्त्रोंका अध्यापक नियुक्त हुआ। १८७९ में वह ग्रीसन (Grissen) में भौतिक शास्त्रका प्रोफेसर और भौतिक विद्यालयोंका डाइरेक्टर नियुक्त हुआ। १८८५ में रौञ्जन बुर्ज़बर्ग लौट कर डाइरेक्टर और प्रोफेसर का पद शोभित करता रहा और यहीं पर सन् १८९५ में उसने रौञ्जन किरण (Rontgen Rays) का आविष्कार किया। इस महानात्माका स्वर्गवास सन् १९२३ की १० वीं फरवरी को हुआ। इस आविष्कारकी कहानी भी उसी प्रकारकी दैव यौगिकघटनाओं और परिश्रमसे भरी है जैसी कि डाक्टर नोबेलके जीवनमें हुई थी। रौञ्जन ने सन् १८९२ में काँचका ग्लोब (globe) बनाया जिससे कि पंप द्वारा सब वायु निकाल ली गई थी और वह यह देखना चाहता था कि यदि इस ग्लोबसे विद्युत्प्रवाह किया जावे तो ग्लोबके मोड़ों पर रगड़ होती है या नहीं। उसका विश्वास था कि किरणें जो आंखसे दिखाई देती हैं वे ऐसे कणोंके झुण्ड हैं जो विद्युत्से संचारित हैं और उनके प्रवाहसे रगड़ होगी जो उष्णताके रूपमें पैदा होगी। परन्तु उसका यह प्रयोग सफल न हुआ। उसने यह प्रयोग फिरसे मेज़के ऊपर किया जिस पर एक पुस्तक रक्खी हुई थी और उस पुस्तकमें एक चाबी भी रक्खी हुई थी। उस पुस्तकके नीचे चित्रपट भी रक्खा हुआ था, रौञ्जनने उस चित्रपट पर एक

चित्र लिया और जब उसे उभारा (develop) तो उसे चाबीका भी चित्र दिखाई दिया। इससे उसे बहुत आश्चर्य हुआ और उसने फिरसे यह प्रयोग दुहराया और उसे चाबीका चित्र फिरसे मिला। इस विषयमें उसे रुचि पैदा हो गई और उसने परिश्रम तथा सन्तोषसे कई प्रयोग किए और इनका परिणाम रूप एक्स किरण (X—rays) निकला। एक्स किरणको यदि हम रौञ्जन किरण कहें तो अधिक अच्छा होगा।

इस आविष्कारके लिए सन् १८९६ में रौञ्जन को इंगलेण्डकी रायल सोसाइटीसे पुरस्कार रूप रमफोर्ड पदक मिला और जब १९०१ में नोबेल पुरस्कारकी स्थापना हुई तब सर्व प्रथम रौञ्जन ही को इस सम्मानसे सुशोभित किया गया।

सन् १९०२ का पुरस्कार दो भौतिक शास्त्रके महर्षियोंके बीच बांटा गया। हालेण्ड सरीखे छोटे देशका भाग्य धन्य है जहां पर ज़ीमन और लोरां सरीखे सपूत पैदा हुये।

लोरां (१८५३-१९१८)

हेनरी आनतूने लोरां (Henry Antoone Lorentz) का जन्म सन १८५३ में १८ वीं जूलाईको हालेण्डमें आरचोम (Arechem) में हुआ था, वह एक शालामें अध्यापक था जिसमें केवल संध्या समय पढ़ाई होती थी। यहां पर उसने प्रयोग तथा पढ़ाई की। उसे कोई दूसरा वैज्ञानिक सहायता देनेके लिए नहीं था। यहां पर उसने परिश्रम करके २२ वर्षको कम ही उम्रमें लेडेन (Leyden) विश्वविद्यालयसे डाक्टरकी उपाधि ग्रहणकी। उसका आविष्कार प्रकाशके परावर्तन और आवर्जनके सिद्धान्त पर था। मेक्सवेल ने प्रकाशके विद्युत और चुम्बकीय सिद्धान्तको सिद्ध किया था पर वह प्रकाशके परावर्तन और आवर्जनके सिद्धान्तकी समस्या दूसरों के लिये छोड़ गया। लोरां ने उस विषयको बड़ी विद्वत्ता पूर्वक सिद्ध कर दिया जो उन दिनों बड़े बड़े वैज्ञानिकोंके दांत खट्टे कर रहा था। इस कार्यका महत्व तथा परिश्रम छिपा न रहा और दो वर्ष बाद ही लेडेन विश्वविद्यालयमें लोरां भौतिक शास्त्रका मुख्य अध्यापक नियुक्त हुआ। इस मानको २४ वर्षकी ही उम्रमें पाना क्या आश्चर्यजनक नहीं है?

सन् १८९२ में लोरांने ऋणाणुके सिद्धान्त पर कुछ लिखा जिसका असर वर्त्तमान भौतिक शास्त्र की उन्नति पर अधिक हुआ। उसका दूसरा महत्व का कार्य 'लोरां फील्ड ईक्वेशन' (Lorentz field-equation) के नामसे प्रसिद्ध है।

उसने विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रकी झूलन संख्या (frequeney) का और उसकी आवर्जन संख्या की मात्रा या माध्यमिक संख्याका सम्बन्ध दिखलाया। बादमें इस कार्यकी सत्यताको ब्लाउटलाट (Bloidlot) और एच० ए० विलसन (H. A. Wilson) ने पुनः प्रमाणित किया।

माइकलसन-मोरले ने प्रयोगोंसे यह सिद्ध किया कि जब पृथ्वी घूमती है तो उसके साथ ईथर (ether) नहीं घूमता परन्तु वह स्थिर रहता है। सन १८९२ में लोरां ने भी यह स्पष्ट किया कि ईथर पृथ्वीके साथ नहीं घूमता। उसने यह भी दिखलाया कि चलायमान वस्तुएं अपनी गतिकी दिशामें अपनी मात्रामें कम हो जाती हैं। वे इस सम्बन्ध में कम होती हैं:—$\left(1-\frac{व^2}{प^2}\right)^{\frac{1}{2}}$: १ जहां पर 'व' वस्तुके चलनेका वेग है और 'प'—प्रकाशके चलने का वेग है। आइन्सटाइन (Einstein) के सापेक्षवाद (Relativity) के सिद्धान्तको निर्धारित करनेके लिए यह पहली सीढ़ी थी।

सन् १८९७ में लोरां ने ज़ीमेन फल (Zeeman effect) को स्पष्ट कर दिया। उसने कई और नवीन विषयोंका भी अन्वेषण किया जो भौतिक शास्त्रसे सम्बन्ध रखते हैं। लारमोर (Larmor) ने सत्य कहा है—लोरांके जीवनकालका कार्य यदि

कोई पढ़ लेवे तो उसे पिछली अर्ध शताब्दीके भौतिक शास्त्रका बहुत कुछ ज्ञान हो जावेगा।

इस दिग्गज पंडितका नाम देश देशोंमें फैल गया था। सन १८२६ में लेडेन विश्वविद्यालयने उसे मान देनेके लिए चिकित्सामें डाक्टरकी उपाधि दी। सन १६०५ में रायल सोसाइटी लंडनने उसे अपने यहांका विदेशी मेम्बर चुना और १६०८ में उसे रमफोर्ड पदक प्रदान किया तथा १६१८ में कोपले (Copley) पदकसे सुशोभित किया। यह सब उसकी भौतिक शास्त्रकी सेवाके उपहारमें था। रायल सोसाइटीके सभापति सर जे० जे० टामसनने लोरांको पदक देते समय उसके अन्वेषणों का निरीक्षण किया और कहा कि लोरां अपने समयका एक ही भौतिकज्ञ तथा गणितज्ञ है।

उसके बारेमें नोबेल पुरस्कार विजेता रिचर्डसन लिखता है "लोरांके लेखोंसे यह स्पष्ट है कि वह बहुत ही बुद्धिमान था। उसमें चित्ताकर्षक शक्ति तथा विनय भरा हुआ था जिससे मनुष्य आपही आप आकर्षक हो जाते थे। अपने शिष्योंके लिए वह बहुत ही दयालु था और प्रेमके साथ सबको उत्साहित करता था।"

लोरां केवल प्रतिष्ठित भौतिकज्ञ ही नहीं था परन्तु साहित्यसे भी उसे अधिक प्रेम था। उसे कई भाषाएं आती थीं। वह जर्मन, फ्रेंच, इंगलिश और डच भाषाओंको अच्छी तरह समझ सकता था तथा उन भाषाओंमें स्पष्ट रूपसे व्याख्यान दे सकता था।

अभाग्यवश ऐसी महानात्मा सन १६२८ की ५वीं फरवरीको इस लोकसे सिधार गई।

ज़ीमेन (१८६५—जीवित)

लोरांका दूसरा साथी जिसे सन् १६०२ का आधा पुरस्कार मिला था वह भी लोरां हीका देशवासी है। इस डच अध्यापकका शुभनाम पीटर ज़ीमेन (Pieter Zeeman) है। उसका जन्म सन् १८६५ में हुआ था। यह डच अपने एक अन्वेषणके लिए प्रसिद्ध है जो कि उसीके हो नामसे प्रख्यात है। जिस कार्यमें माइकेल फेरेडे (Michael Faraday) सरीखे महापुरुषोंको हार माननी पड़ी वहाँ पर अध्यापक ज़ीमेनको विजय-प्राप्ति हुई। सन् १८६५ में ज़ीमेन ने यह सिद्ध किया कि चुम्बक क्षेत्रमें किरण-चित्रकी रेखाएं अपने अवयवमें विभाजित हो जाती हैं। लोरांने इस प्रयोगके सिद्धान्तको बतलाया।

ज़ीमेन एक वैज्ञानिक पत्रिकामें किरण-चित्र की रेखाओंके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखते हैं।

"हर एक परमाणुमें एक विद्युत् संचरित-कण कम्पित हुआ करता है जिसे ऋणाणु कहते हैं। इसीके कारण प्रकाश निकलता है। यह प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया है कि ये कम्पित कण ऋणात्मक विद्युत् शक्तिसे संचारित हैं और कणके संचार और मात्रा (mass) में क्या सम्बन्ध है ज्ञात हो सकता है।

लण्डनकी रायल सोसाइटीके सभापति महोदय ने ज़ीमेनको रमफोर्ड पदक देते समय कहा था कि अध्यापक ज़ीमेनका अन्वेषण कि चुम्बक क्षेत्रमें किरण-चित्रकी रेखाएं विभाजित हो जाती हैं केवल सिद्धान्त (theory) ही में महत्वका नहीं है परन्तु वह आकाशी भौतिक शास्त्र (Astro-Physics) में भी काम आता है। इससे ज्योतिषी सूर्यकी सतह पर चुम्बकका प्रभाव जान सकते हैं। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि आप दीर्घ आयु होवें।

× × ×

सन् १६०२ का पुरस्कार तीन वैज्ञानिकोंके बीच बाटा गया। हमें यह लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि उनमेंसे एक पूजनीय देवी भी थीं। इस महिला रत्नने इसी समय नहीं वरन् आगे चल कर इस पुरस्कारको फिरसे ग्रहण कर नोबेलकी आत्माको शान्ति पहुँचाई। इस विदुषीने रश्मिम्

(रेडियम)की खोज कर बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ताओंके दाँत खट्टे कर दिए और बतला दिया कि कोमलाङ्गिनी भी दुनिया में कुछ कर सकती हैं और किसी तरहसे मनुष्योंसे कम नहीं हैं। इनका नाम श्रीमती क्यूरी है। दूसरे पुरस्कार विजेता पीरी क्यूरी (Piere Curie) थे जो श्रीमती क्यूरीके पूज्य पतिदेव थे। तीसरे महात्मा बेक्वेरल (Becquerel) थे।

बेक्वेरल (१८५२-१९०८)

बेक्वेरलके पिता का नाम एलेकज़ेण्डर एडमण्ड बेक्वेरल (Alexandre Edmond Becquerel) था। उसका जन्म पेरिसमें सन् १८५२ की १५ वीं दिसम्बरको हुआ था। उसका विद्याध्ययन पेरिस में ईकोल पालीटेकनीक (Ecole Polytechnique) में हुआ था। सन् १८०२ में वह ईकोलमें अध्यापक नियुक्त हुआ। वह रौञ्जन किरणों और चमक (fluorescence) के बीच क्या संबंध है इसकी खोज कर रहा था। उस समय उसने चमकदार वस्तुओंका अध्ययन किया। सन् १८९६ में उसने फ्रेंच एकेडेमीको अपने नये अन्वेषणका समाचार दिया कि पिनाकम् (Uranium) तथा उसके यौगिकोंसे एक नये प्रकारका विकिरण निकलता है। यह विकिरण बेक्वेरल-किरणोंके नाम से प्रसिद्ध है। ये किरणें चमकदार होती हैं और चित्रपट पर भी असर करती हैं। मोटे काले कागज को ये किरणें पार कर सकती हैं। वे जिस गैस से गुजरती है उसका थापन कर देती हैं। उसने चुम्बकत्व, दिग् प्रधानता और दमकमें भी अन्वेषण किया था। उसकी मृत्यु क्रायसी (Croisie) में २५वीं अगस्त सन् १८०८ में हुई।

आरथर-मी लिखते हैं—"बेक्वेरल आजकलकी कीमियांगरीके जन्मदाता कहे जा सकते हैं।"

पीरी क्यूरी (१८५९-१९०६)

पीरी क्यूरी (Piere Curie) फ्रेंच भौतिकज्ञ था और सन् १८५९ की १५वीं मईको पेरिसमें पैदा हुआ था। उसका विद्याध्ययन सारबोनमें हुआ था जहां पर बादमें वह भौतिक शास्त्रका अध्यापक नियुक्त हुआ। उसने कई वस्तुओंकी चुम्बकीय विशेषताएं कई तापक्रमों पर निकालीं। सन् १८९६ में बेक्वेरलने पिनाकम्में रश्मिशक्तित्वका आविष्कार किया। इसके बाद यह देखा गया कि पिनाकम्की कुछ धातुएं जैसे पिच-ब्लेंड (Pitch blende) आदिमें पिनाकम्की अपेक्षा रश्मिशक्तित्वकी अधिक मात्रा है और इससे यह ज्ञात हुआ कि इन धातुओंमें कोई ऐसी वस्तु या वस्तुएं हैं जिनका रश्मिशक्तित्व बहुत ही अधिक है। इस ध्येयको सम्मुख रखते हुए पीरी क्यूरी तथा उसकी पूज्य पत्नी मेडम क्यूरीने कई मन पिच ब्लेंडका आंशिक स्फटिकीकरण (fractional crystallisaiton) किया और सन् १८९८ में इससे उन्होंने पोलोनियम (Polonium) तत्वका अन्वेषण किया और उसी वर्ष रश्मिम् (रेडियम) तत्वको भी ढूँढ़ निकाला। सन् १९०३ में पीरी क्यूरीको रायल सोसाइटीने डेवी पदकसे सम्मानित किया। सन् १९०२ में वह विज्ञानकी एकेडेमीका सभासद चुना गया। अभाग्यवश इस पूजनीय वैज्ञानिकने सन् १९०६ की १९वीं अप्रेलको दुर्घटना-वश शरीर त्याग किया।

श्रीमती क्यूरी (१८६७—जीवित)

श्रीमती क्यूरी (Madam Curie) का जन्म सन् १८६७की ७वीं नवम्बरको वारसा (Warsaw) में हुआ था। इनके पिताका नाम स्क्लोडोस्की (Sklodowsky) था। वे अध्यापक थे तथा गरीब भी थे। छुटपन ही से क्यूरीको अपने पिता की प्रयोगशालासे अधिक प्रेम था। उसे उसके पिताके शिष्यगण "नन्हा सा अध्यापक" (The little Professor) कहा करते थे। वह इम्तहानों में ऊंचे नम्बरसे पास होती थी। वहां पर पढ़ाई समाप्त कर वह सारबोनमें पीरी क्यूरीके पास काम करनेके लिये आई। कुछ वर्षोंके बाद ये गुरु शिष्या

पति पत्नी हो गए। ये बहुत ही गरीब थे और एक लेखकने लिखा है, "क्यूरी बहुत ही निर्धन थे। उनकी प्रयोगशाला बहुत टूटी फूटी थी। उसने प्रयोगशालाके छेद तथा दरारोंको फटे पुराने मोज़े आदि घुसेड़ कर बंद कर दिया था। और गंदे पड़ोसमें उनकी छोटीसी झोपड़ी थी जिसमें वे रहा करते थे।"

नोवेल पुरस्कार मिल जानेके बाद ये निर्धन आविष्कारक एक दमसे प्रसिद्ध हो गए। श्रीमती क्यूरीको सारबोन विश्वविद्यालयमें अध्यापकका पद दिया गया जहां पर वे इतने दिनोंसे परिश्रमके साथ काम करती रहीं और अब भी कर रही हैं।

लार्ड रेले (१८४२-१९१९)

सन् १९०४ में पहले पहल इंगलैण्डको नोबेल पुरस्कार मिला। इस समय लार्ड रेले (Lord Rayleigh) इस सम्मानसे सम्मानित हुए। ये जॉन जेम्स रेलेके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म सन् १८४२ की १२वीं नवम्बरको हुआ था। प्राइमरी शिक्षाके लिए इन्हें सब प्रकारकी सुविधायें थीं और सन् १८६७ में केमब्रिज विश्वविद्यालयमें भरती हुए। सन् १८६५ में इन्हें सीनियर रेंगलर (Senior Wrangler) की उपाधि मिली। सन् १८७१ में इनका पाणिग्रहण लार्ड बेलफोरकी बहिनसे हुआ।

सन् १८७९ में मेक्सवेल (Maxwell) की मृत्युके पश्चात् रेले केविंडिश प्रयोगशालाका प्रधान चुना गया जहां पर वह सन् १८८४ के अन्त तक रहा। सन् १८८९ की नवम्बरमें सर जार्ज स्टोक्सने रायल सोसाइटीके सेक्रेटरीका पद त्याग दिया और रेले ने इस पद को ग्रहण किया और इस पद पर सन् १८९६ तक रहा। टिंडल (Tyndall) के बाद वह सन् १८८७ में रायल इन्स्टीट्यूट में विज्ञानका अध्यापक हुआ जहां पर वह १८९६ तकरहा। इसके पश्चात् वह ट्रीनिटी हाऊस में वैज्ञानिक सलाहकार हुआ। सन् १९०२में सरकारने उसे आर्डर आफ़ मेरिट (Order of Merit) की उपाधि दी और १९०५ में वह प्रिवी कौंसिल का सदस्य चुना गया। सन् १९०८ में वह केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का चैंसलर हुआ और उसने नोबेल-पुरस्कारका पूरा धन विश्व-विद्यालयको बढ़ानेके लिए दे दिया। हर एक बड़ी शाला तथा सभाने उसकी वैज्ञानिक बुद्धिको समझ लिया था और उनसे जितना सम्मान हो सकता था उससे उसे सम्मानित किया। लार्ड रेले ७७ वर्ष की दीर्घ आयुमें सन् १९१९ की १ली जूलाई को इस संसारसे चल बसे। एक लेखक लिखता है :—

"लार्ड रेलेमें यह शक्ति बहुत ऊंचे दरजे की थी कि वह किसी प्रश्नके मूल तत्व तक पहुंच जाते थे चाहे वह प्रश्न सिद्धान्त रूपमें हो या प्रयोग सम्बन्धी हो। वैज्ञानिक विषयोंमें उनके निर्णयकी बराबरी करना कठिन था। ऐसा कोई विषय न था जिसकी कठिनाइयां वे सुलझा न देते हों और अपने विचारोंसे उसे परिपुष्ट न कर देते हों।"

सन् १८७० में जब रेले छोटी ही उम्र का था उसने शब्द (Sound) के करीब करीब सब भागोंमें प्रयोग करना आरम्भ किया और उन अन्वेषणोंको पुस्तकके रूपमें छपाया। उस पुस्तकका नाम 'शब्द पर एक लेख' रक्खा। लार्ड रेले की नज़रोंसे शब्द का कोई भी भाग बाकी न रहा जिस पर उसने प्रयोग न किया हो। यह किताब अपने विषयमें मुख्य मानी जाती है। हेलमहोल्ट्ज़ (Helmholtz) ने इस पुस्तकको देखकर कहा था कि लेखकने शब्द के कठिन विषयोंको भी इस सरलतासे लिखा है कि पाठक शीघ्र ही समझ सकते हैं जो कि पहले बहुत कठिन था।

सन् १८७२ से १८७४ तक वह ग्रेटिंग (Gratings) के सिद्धान्तकी खोज करता रहा और उसने यह दिखलाया कि ग्रेटिंगकी विश्लेषण शक्ति (resolving power) ग्रेटिंग की सतह पर की सब लाइनोंकी संख्याको किरण चित्र (spectrum) के क्रम (order) से गुणा करके जो संख्या होगी उसके बराबर होती है।

सन् १८७६ से वह श्रीमती सिजविक (Sidgwick) के साथ एम्पीयर, वोल्ट और ओह्म (ohm) की निरपेक्ष संख्याओंको फिरसे निश्चय करने लगा।

सन् १८८७ में उसने ऐसी विधि सुझाई जिसमें रंगदार फोटोग्राफी (colour photography) शायद हो सकती है। लिपमेन (Lippmann) ने इस विचारको आगे बढ़ाया और प्रयोगसे साबित कर दिखाया।

इसके बाद वह अन्वेषण किया जिसमें उसका नाम हो गया। कुछ समय उसने गैसोंके घनत्व पर भी काम किया था। सन् १८९२ में उसे प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि वायुसे ओषजन निकाल लेने पर जो नोषजन बाकी रह जाता है वह उस नोषजनकी अपेक्षा अधिक वज़नी होता है जो किसी नोषजन यौगिकके रासायनिक विभाजनसे पाया जाता है। वह इस ओर अन्वेषण करता गया और सन् १८९५ की ३१ वीं जनवरीको सर विलियम रैमज़ेके साथ उसने एक नई निष्क्रिय गैसकी समुपस्थिति वायुमें दिखलाई। उन्होंने प्रयोग द्वारा यह दिखलाया कि यह गैस एक तत्व है और इसका नाम आलसोम् (argon) रक्खा।

सन् १६०० में उसने गरम पदार्थोंमें से जो विकिरण निकलता है उसकी विविध लहर लंबाइयोंमें किस प्रकार शक्ति बँटी रहती है इसका नियम बनाया। रुबेन्स और कर्लबौम (Rubens and Kurlbaum) ने इस नियमको लम्बी लहरोंके लिए ठीक पाया और छोटी लहरोंके लिये ग़लती।

सन् १६०६ में उसने यह दिखलाया कि शब्द की लहरोंमें कलान्तर (Phare difference) होने के कारण जब हम दोनों कानोंसे सुनते हैं तो हम कह सकते हैं कि शब्द किस ओरसे आ रहा है। यदि मनुष्य के एक ही कान हो तो वह यह नहीं मालूम कर सकता है कि शब्द किस ओरसे आ रहा है।

लार्ड रेले का जन्म प्रयोगिक अन्वेषणोंसे लिप्त था और ४८ वर्षके उद्योगिक जीवनमें उसने करीब ४५० लेख अपने अन्वेषणों पर लिखे और उनमेंसे एक भी साधारण नहीं था।

लेनार्ड (१८६२—जीवित)

सन् १६०५ में जर्मनी को फिरसे नोबेल पुरस्कार मिला। इस समय लेनार्ड (Lenard) इससे सम्मानित किया गया। उसका जन्म सन् १८६२ में हुआ था। वह परमाणुओं पर अन्वेषण करता रहा। सन् १८९४ में उसने यह दिखलाया कि ऋणोद किरणें स्फटम्के पतले पत्रको पार कर वायुमें आ सकती हैं। उसने यह भी दिखलाया कि बहुत ही वेगवाली ऋणोद किरणें (cathode rays) जो ऋणाणु (electron) होती हैं ऐसी वस्तु से पार हो सकती हैं जिसमें कि हज़ारों परमाणु हों। इससे यह ज्ञान होता है कि परमाणु का कुछ भाग ख़ाली होता है, कमसे कम इतना कि ऋणाणु पार हो सके। लेनार्डने प्रयोगों द्वारा यह देखा कि जब ऋणाणु किसी वस्तुसे पार होते हैं तो उनकी संख्या और वेग दोनों कम हो जाते हैं। उसने अच्छी तरह अध्ययन करके यह मालूम किया कि किरणों से ऋणाणु का एक दमसे अलग हो जानेके कारण ऋणाणुकी सामर्थ्यमें कमी हो जाती है। ऋणाणु की सामर्थ्यमें कमी होनेका मुख्य कारण यही है परंतु वेगके धीरे धीरे कम होनेके कारण भी सामर्थ्यमें कुछ कमी हो जाती है। उसने शोषण-गुणक (Absorption coefficient) निकालनेके लिए एक सूत्र बनाया। वह सूत्र उसने बेकर (Becker) के साथ प्रयोगों द्वारा प्रमाणित कर दिया। लेनार्ड ने प्रयोगोंसे दिखलाया कि शोषण वस्तुके घनत्वके लगभग समानुपाती (Proportional) होता है और यह लेनार्डके "परिमाण शोषण नियम" (Mass absorption law) के नामसे प्रसिद्ध

है। इस नियमको उसने वायु और स्फटम्के विषय में प्रमाणित किया।

लेनार्डने ऋणाणुओंका वस्तुसे पार हो जाना और वस्तुकी घनता बढ़ने पर उनकी संख्या कम होजानेको समझानेके लिये यह मान लिया कि हर एक परमाणु "डायनामिड्स" (Dynamids) का बना हुआ है। डायनामिड्ससे उसका अभिप्राय धनात्मक ऋणात्मक ऋणाणुके एक जोड़ेसे था। ये जोड़े शक्तिके क्षेत्रसे घिरे हुए होते हैं जो कम वेग वाले ऋणाणुओंको ग्रहण कर लेते हैं और अधिक वेग वाले ऋणाणु सरलतासे पार होजाते हैं। लेनार्डने अधिक वेगवाले ऋणाणुओंके शोषण से परमाणुके उस भागके परिच्छेद (Cross-section) की गणनाकी जिससे ऋणाणु पार नहीं हो सकते। उसने गणनासे यह मालूम किया कि डायनामिडके परिछेच्द और परमाणुके परिच्छेद की निष्पत्ति (Ratio) ४३×१०^{-८} के बराबर है। यद्यपि लेनार्डने परमाणुकी जो बनावट मानी है वह आजकल नहीं मानी जाती तिस पर भी उसने बहुत ही नवीन और लाभदायक रूप दिया है। रदरफोर्ड (Rutherford) को बाद-में इससे अपने परमाणुका ढांचा खींचनेमें बड़ी सहायता मिली। दोनों ढांचोंमें परमाणुका अधिक भाग प्रवेशनीय है और शून्य है। लेनार्डके अप्रवेशनीय डायनामिड्सके आकारमें रदरफोर्डके अप्रवेशनीय केन्द्र (Nucleus) से अधिक अन्तर नहीं है। लेनार्डने परमाणुका ढांचा ठोस वस्तुसे ऋणोद किरणोंके पार होनेके कारण माना और रदरफोर्ड ने ठोस वस्तुसे एलफाकणोंके पार होनेके कारण परमाणुका ढांचा दिया।

सन् १९०८ में लिनार्डने दिखलाया कि ऋणाणु-में सामर्थ्यकी कमसे कम एक मात्रा होनी चाहिये। तभी वह गैसमें यापन पैदा कर सकता है, अन्यथा नहीं, और तीन गैसें वायु, उदजन और कर्बन द्विओषिद (Carbon dioxide) जिनसे उसने प्रयोग किए थे उनका वेग उसने लगभग ११ वोल्टके बतलाया। लेनार्ड इस कार्य का अगुआ है जिसमें दूसरे वैज्ञानिकोंने उन्नति तथा सुधार किए। यह बूढ़ा जर्मन अध्यापक ६८ वर्षकी उम्रमें भी बड़े धैर्य के साथ अन्वेषण किये जा रहा है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह दीर्घजीवी हो और कई सालों तक अन्वेषण करता रहे।

एकादश अध्याय

वृत्त (उत्तरार्ध)

(ले० —'गणितज्ञ')

ध्रुव और ध्रुवीय

११३—परिभाषा—यदि किसी बिन्दु ब से जो वृत्तके चाहे अन्दर हो या बाहर, कोई ऐसी सरल-रेखा खींची जाय जो वृत्त को प और फ पर काटे तो प और फ की स्पर्श रेखाओंके अन्तरखण्ड बिन्दु के बिन्दु-पथ को ब का ध्रुवीय कहते हैं तथा ब इस ध्रुवीय का ध्रुव कहलाता है। आगे पता चलेगा कि यह ध्रुवीय एक सरल रेखा है।

११४—वृत्त $य^२+र^२=क^२$ की अपेक्षासे बिन्दु ($य_१$, $र_१$) के ध्रुवीय का समीकरण निकालना—

चित्र नं० ४२   चित्र नं० ४३

कल्पना करो कि ब कोई बिन्दु ($य_१$, $र_१$) है इससे ब प फ और ब पा फा रेखायें खींचो। प फ और पा फा दो चापकर्ण हैं। प और फ की स्पर्श रेखायें भ पर और पा तथा फा की स्पर्श रेखायें

भा पर मिलती हैं। भ भा एच्छित ध्रुवीय है। कल्पना करो कि भ के युग्मांक (च, छ) हैं।

यह स्पष्ट है कि प फ मिलन-चापकर्ण है जो भ से खींची गई स्पर्श रेखाओंके मिलन विन्दुओंको संयुक्त करनेसे बनता है। अतः सूक्त ११२ के अनुसार इसका समीकरण

$य_1 च + र_1 छ = क^2$ ...(१)

क्योंकि परिणाम (१) (च, छ) बिन्दुके लिये उपयुक्त है अतः यह अन्य बिन्दुओंके लिये भी उपयुक्त होगा अतः यह बिन्दु एक सरल रेखा पर विद्यमान है जिसका समीकरण यह होगा :—

$य_1 य + र_1 र = क^2$ ...(२)

अतः यह समीकरण ($य_1$, $र_1$) का ध्रुवीय सूचित करता है।

इसी प्रकार यदि वृत्त का समीकरण—

$य^2 + र^2 + २ छ य + २ च र + ग = ०$

हो तो ध्रुवीय का समीकरण निम्न होगा—

$य य_1 + र र_1 + छ (य + य_1) + च (र + र_1) + ग = ०$

[टिप्पणी—सूक्त ११२ के परिणाम इस सूक्तके परिणामोंसे मिलते हैं अतः यदि ($य_1$, $र_1$) बिन्दु वृत्तके बाहर हो तो ध्रुवीय और मिलनचापकर्ण एक ही हो जावेंगे, और यदि ($य_1$, $र_1$) बिन्दु वृत्त की परिधि पर हो तो ध्रुवीय और स्पर्श रेखा पराच्छादित हो जावेंगी। और यदि ($य_1$, $र_1$) वृत्तके अन्दर हो तो यह समीकरण (२) काल्पनिक बिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखाका सूचक होगा।]

११५—किसी वृत्त की अपेक्षासे किसी बिन्दुके ध्रुवीय खींचने की विधि :—

कल्पना करो कि वृत्त का समीकरण $य^2 + र^2 = क^2$ है और ब एक बिन्दु है जिसके युग्मांक (या, रा) हैं। ब के ध्रुवीयका समीकरण वृत्त की अपेक्षासे :—

$य या + र रा - क^2 = ०$ ...(१)

होगा। ब को स से संयुक्त करनेवाली रेखाका समीकरण

$$\frac{य}{या} - \frac{र}{रा} = ० \text{...(२)}$$

होगा।
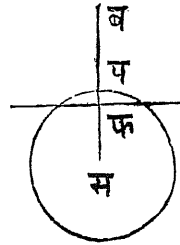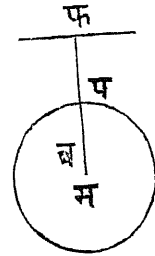
चित्र ४४ चित्र ४५

समीकरण (१) और (२) से स्पष्ट है कि वृत्त की अपेक्षा किसी बिन्दुका ध्रुवीय उस रेखाके लम्ब रूप है जो उस बिन्दुको केन्द्रके संयुक्त करती है।

यदि ध्रुवीय पर म से म फ लम्ब है तो

$$म\ फ = \frac{क^2}{\sqrt{(या^2 + रा^2)}}$$

तथा $म\ ब = \sqrt{(या^2 + रा^2)}$

$\therefore म\ फ.\ म\ ब = क^2$

अतः ध्रुवीय खींचनेकी विधि यह है कि:— म ब को संयुक्त कर दो। मान लो कि यह वृत्त को प पर काटता है। म ब रेखा पर फ बिन्दु इस प्रकार लो कि म ब : म प : : म प : म फ और फ से म ब के लम्ब रूप एक रेखा खींच दो। यही ऐच्छित ध्रुवीय है।
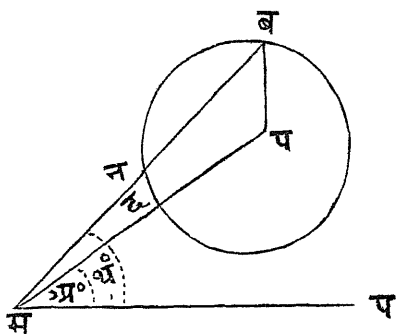
११६-किसी वृत्त का ध्रुवीय समीकरण निकालना:-

चित्र नं० ४६

कल्पना करो कि वृत्त का केन्द्र प है जिसके ध्रुवीय युग्मांक च, अ° हैं। इस वृत्तके व्यासार्ध की लम्बाई क है।

मान लो कि ब बिन्दु के युग्मांक (न, थ°) हैं।

$\therefore$ प ब^2=म प^2+म ब^2−२ म प. म ब कोज्या <प म ब

परन्तु प ब=क, प म=च, ब म=न

तथा <प म ब=<ब म य−<प म य =थ°− अ

अतः

क^2=च^2+न^2−२च. न. कोज्या (थ − अ) यही पच्छित समीकरण है। ……(१)

उपसिद्धान्त १—यदि मूल बिन्दु म वृत्त पर हो तो च=क अतः (१) से—

क^2=क^2+न^2−२ क न कोज्या (थ − अ)

$\therefore$ न^2=२ क न कोज्या (थ − अ)

न=२ क कोज्या थ − अ)……(२)

उपसिद्धान्त २—यदि उपसिद्धान्त (१) में स्थिर रेखा म य केन्द्र प से होकर जावे तो अ° शून्यके बराबर होगा अतः समीकरण (२) का रूप निम्न हो जावेगा :-

न=२ क कोज्या थ...(३)

उपसिद्धान्त ३—यदि किसी कोण थ° के लिये न के दो मान न$_1$ और न$_2$ हों तो जैसा कि समीकरण (१) से स्पष्ट है कि—

न$_1$ न$_2$=च^2 − क^2……(४)

इस प्रकार न$_1$ न$_2$ कोण थ° पर आश्रित नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि यदि किसी एक स्थिर बिन्दुसे एक रेखा वृत्त को काटती हुई खींची जाय तो अवधाओं (Segment) से निर्मित आयत स्थिर होगा।

समीकरण (४) से यह भी स्पष्ट है कि यदि मूलबिन्दु वृत्तके अन्दर हो तो च < क अतः न$_1$ और न$_2$ भिन्न धनार्ण संकेत होंगे। अतः वे भिन्न दिशाओंमें खींचे जावेंगे।

११७—उस स्पर्श रेखा की लम्बाई निकालना जो बिन्दु (य$_1$, र$_1$) से वृत्त य^2+र^2=क^2 पर खींचा गया है।

यदि वृत्तसे बाहर कोई बिन्दु हो जिसके युग्मांक (य$_1$, र$_1$) हों तथा भ प कोई स्पर्श रेखा उस वृत्त पर हो जिसका केन्द्र म है, तो ∠ म प भ एक समकोण है।
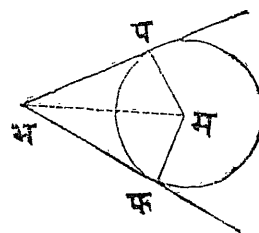
चित्र ४७

$\therefore$ भ प^2=भ म^2 − प म^2

यदि वृत्त का समीकरण य^2+र^2=क^2 है और मूल बिन्दु म पर है तो

भ प^2=य$_1^2$+र$_1^2$

तथा प म^2=क^2

$\therefore$ भ प^2=य$_1^2$+र$_1^2$ − क^2

अतः स्पर्श रेखाकी लम्बाई=$\sqrt{य_1^2+र_1^2-क^2}$

११८—उस स्पर्श रेखाकी लम्बाई निकालना जो बिन्दु ($य_1, र_1$) से वृत्त $य^2 + र^2 + २छय + २ चर + ग = ०$ पर खींचा गया है।

वृत्त का समीकरण यह है :—

$$य^2 + र^2 + २ छ य + २ च र + ग = ०$$

$$\therefore (य + छ)^2 + (र + च)^2 = च^2 + छ^2 - ग$$

अतः इस अवस्थामें केन्द्र म के युग्मांक ($-छ, -च$) हैं और व्यासार्ध म प की लम्बाई $\sqrt{(च^2 + छ^2 - ग)}$ है। भ के युग्मांक ($य_1, र_1$) हैं।

$$\therefore भ म^2 = (य_1 + छ)^2 + (र_1 + च)_2$$

[सूक्त १९ के अनुसार]

$$\therefore भ प^2 = भ म^2 - म प^2$$

$$= (य_1 + छ)^2 + (र_1 + च)^2 - (च^2 + छ^2 - ग)$$

$$= य_1^2 + र_1^2 + २ य_1 छ + २ र_1 च + ग$$

$$\therefore भ प = \sqrt{(य_1^2 + र_1^2 + २ य_1 छ + २ र_1 च + ग)}$$

इस सूक्त और गत सूक्तके परिणामोंसे पता चलता है कि यदि वृत्तों का समीकरण इस प्रकार लिखा जाय कि $य^2 + र^2$ के गुणक इकाई हों और दाहिनी ओरके पद शून्य हों तो ($य_1, र_1$) बिन्दु से वृत्त पर खींची गई स्पर्श-रेखाकी लम्बाईका वर्ग समीकरण के बाईं ओरके पदोंमें य और र के स्थानोंमें $य_1$ और $र_1$ स्थापित कर देनेसे मिल सकता है।

११९—उन दोनों स्पर्श रेखाओं का समीकरण निकालना जो बिन्दु ($य_1, र_1$) से वृत्त $य^2 + र^2 = क^2$ पर खींची गई है।

कल्पना करो कि किसी स्पर्शरेखा पर (च, छ) कोई बिन्दु है। कोई भी रेखा वृत्त का स्पर्श तब करेगी जब इस पर वृत्त के केन्द्रसे खींचा गया लम्ब वृत्त के व्यासार्ध के बराबर होगा। अतः मूल बिन्दुसे उस रेखा पर खींचा गया लम्ब जो ($य_1, र_1$) और (च, छ) बिन्दुओं को संयुक्त करती है वृत्त के व्यासार्ध क के बराबर होगा। इन दोनों बिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखाका समीकरण यह है :—

$$र - र_1 = \frac{छ - र_1}{च - य_1}(य - य_1)$$

$$\therefore र(च - य_1) - य(छ - र_1) + छ य_1 - च र_1 = ०$$

इस रेखा पर मूल बिन्दु (०, ०) से खींचे गये लम्बकी लम्बाई (सूक्त ७० के अनुसार) क के बराबर होनी चाहिये।

$$\therefore \frac{छ य_1 - च र_1}{\sqrt{[(च - य_1)^2 + (छ - र_1)^2]}} = क$$

अतः

$$(छ य_1 - च र_1)^2 = क^2 [(च - य_1)^2 + (छ - र_1)^2]$$

अतः (च, छ) बिन्दु निम्न बिन्दुपथ पर सदा रहेगाः—

$$(य_1 र - र_1 य)^2 = क^2 [(य - य_1)^2 + (र - र_1)^2] \ldots (१)$$

यह पच्छित समीकरण है। इसको इस रूप में भी लिख सकते हैं :—

$$य_1^2 र^2 + र_1^2 य^2 - २ य य_1 र र_1$$

$$= क^2 य^2 + क^2 य_1^2 - २ क^2 य य_1 + क^2 र^2 + क^2 र_1^2 - २ क^2 र र_1$$

$$\therefore य^2 (र_1^2 - क^2) + र^2 (य_1^2 - क^2)^2 - क^2 (य_1^2 + र_1^2)$$

$$= २ य य_1 र र_1 - २ क^2 य य_1 - २ क^2 र र_1$$

$$\therefore (य^2 + र^2 - क^2)(य_1^2 + र_1^2 - क^2)$$

$$= य^2 य_1^2 + र^2 र_1^2 + क^4 + २ य र य_1 र_1 - २ क^2 य य_1 - २ क^2 र र_1$$

$$= (य य_1 + र र_1 - क^2)^2$$

$\therefore$ (य^2+र^2 − क^2) (य$_1^2$+र$_1^2$ − क^2)
= (य य$_1$ + र र$_1$ − क^2)^2...(२)

१२०—यदि किसी एक वृत्ताका समीकरण

य^2+र^2+२छ य+२ च र+ग=०...(१)

हो और दूसरे वृत्ताका समीकरण

य^2+र^2 +२ छाय+२ चार+गा=०...(२)

हो तो :—

य^2+र^2+२ छ य+२ च र+ग
= य^2+र^2+२ छाय+२ चार+
गा .....(३)

इस समीकरणमें वे सब बिन्दु उपयुक्त हो सकते हैं जो वृत्त (१) और वृत्त (२) दोनों पर हैं। अतः समीकरण (३) उन बिन्दुओंका बिन्दु पथ है जहाँ वृत्त (१) और वृत्त (२) परस्परमें कटते हैं। समीकरण (३) इस रूपमें भी लिखा जा सकता है :—

२ (छ−छा) य+२ (च−चा) र+ग−
गा=०......(४)

यह एक घातका समीकरण है अतः यह एक सरल रेखाका सूचक है। चाहे वृत्त (१) और (२) वास्तविक बिन्दुओं पर न भी कटें, पर रेखा (४) सदा ही वास्तविक होगी जब तक च, चा, छ, छा, ग और गा वास्तविक रहेंगे। अतः यहाँ हमें एक ऐसी वास्तविक सरल रेखा उपलब्ध होती है जो वृत्तोंके काल्पनिक अन्तरखण्ड बिन्दुओंसे होकर जाती है।

उदाहरणमाला ९

[१]

(१) उस वृत्तका समीकरण बताओ जो (०, १); (१, ०); और (२, १) बिन्दुओंसे होकर जाता है।

[उत्तर य^2+र^2 −२ य −२ र+१=०

(२) उस वृत्तका समीकरण निकालो जिसका केन्द्र (−४, −३) और व्यासार्ध ५ हो।

[उत्तर य^2 + र^2 + ८ य + ६ र = ०

(३) निम्न समीकरण द्वारा सूचित वृत्तका केन्द्र और व्यासार्ध निकालोः—

५य^2 +५ र^2 +४ य −८ र − १६=०

[उत्तर केन्द्र ($-\frac{2}{5}$, $\frac{4}{5}$); व्यासार्ध २

(४) उस वृत्तका क्या समीकरण होगा जो निम्न बिन्दुओंसे होकर जाता है :— (०,०); (क,०) और (०,ख)

[उत्तर य^2 + र^2 − कय − खर=०

(५) कखगघ एक वर्ग है जिसकी प्रत्येक भुजा अ है। क ख और क घ को अक्ष मान कर यह सिद्ध करो कि इस वर्ग के परिगतवृत्त (वह जो वर्ग को चारो ओर घेरता है) का समीकरण

य^2 + र^2 = अ (क + ख)

होगा।

(६) उस वृत्तका समीकरण बताओ जो

(अ) प्रत्येक अक्ष को मूल बिन्दुसे ५ की दूरी पर स्पर्श करता है।

[उत्तर य^2 + र^2 = १० य − १० र + २५=०

(आ) प्रत्येक अक्षको स्पर्श करता है और जिसका व्यासार्ध च है।

[उत्तर य^2 +र^2±२ चय±२ चर+च^2 =०

[२]

(७) सिद्ध करो कि य^2+र^2=२५ वृत्तके (३, ४) विन्दु परकी स्पर्श रेखाका समीकरण ३ य+४ र=२५ होगा।

(८) य^2+र^2 − ६ य − ३ र − =० २ वृत्तके (२, −२) बिन्दु की स्पर्श रेखाका समीकरण निकालो।

[उत्तर २ य+७ र+१०=०

(९) य^2+र^2 −४ य −४ र + +४=० के (४, २) और (२, ४) बिन्दुओं पर की स्पर्श रेखाओंके समीकरण क्या होंगे।

[उत्तर, य=४, और र=४

(१०) सिद्ध करो कि य=७ और र=८ रेखायें

$य^2 + र^2 - ४ य - ६ र - १२ = ०$

वृत्तका स्पर्श करती हैं। मिलन बिन्दुओंको भी निकालो।

[उत्तर (७,३) ; (२,८)

(११) ३ य+४ र+७=० द्वारा सूचित रेखा निम्न वृत्तको कहाँ काटती है ?

$य^2 + र^2 - ४ य - ६ र - १२ = ०$

[उत्तर (−१, −१) पर स्पर्श करती है।

(१२) सिद्ध करो कि $य^2 + र^2 - २ च य - २ च र + च^2 = ०$ वृत्त य-अक्ष और र-अक्ष का स्पर्श करता है।

(१३) वृत्त $य^2 + र^2 = ३$ की उन दो स्पर्श रेखाओंके समीकरण निकालो जो य-अक्षसे ६०° का कोण बनाते हैं।

[उत्तर $र = \sqrt{३} (य \pm २)$

(१४) निम्न भुजाओंसे बने हुए त्रिकोण-के अन्तर्गत-वृत्तका समीकरण निकालो :—

य=१, २ र=५, और ३ य−४ र=५

[उत्तर $(य - २)^2 + (र - \frac{३}{२})^2 = १$

(१५) उन वृत्तोंका समीकरण निकालो जो मूलबिन्दुसे होकर जाते हैं और र=य और र=−य रेखाओंमेंसे च लम्बाईके बराबर चापकर्ण काटते हैं।

[उत्तर $य^2 + र^2 \pm \sqrt{२} चय = ०$

$य^2 + र^2 \pm \sqrt{२} च र = ०$

(१६) उस वृत्तका समीकरण निकालो जिसका केन्द्र (च, छ) हो और जो मूलबिन्दुसे होकर जाता हो। सिद्ध करो कि मूलबिन्दु परकी स्पर्श रेखाका समीकरण च य+छ र=० है।

[उत्तर $य^2 + र^2 - २ च य - २ छ र = ०$

[३]

(१७) $य^2 + र^2 = ४$ वृत्तकी अपेक्षासे निम्न बिन्दुओंके ध्रुवीय निकालो :—

(२, ३) ; (३, −१) ; (१, −१)

(१८) $य^2 + र^2 = ५$ की अपेक्षासे २ य+३ र=६ रेखाका ध्रुव क्या होगा ?

[उत्तर ($\frac{५}{३}, \frac{५}{२}$)

(१९) $य^2 + र^2 - ४य - ६ र + ५ = ०$ वृत्तकी अपेक्षासे (−२, ३) बिन्दुका ध्रुवीय निकालो।

[उत्तर य=०

(२०) २ य−र=६ रेखा का वृत्त $५ य^2 + ५ र^2 = ९$ की अपेक्षा से ध्रुव निकालो।

[उत्तर $\frac{३}{५}, -\frac{३}{१०}$.

(२१) सिद्ध करो कि बिन्दु (१, −२) के ध्रुवीय निम्न समीकरणों द्वारा सूचित वृत्तोंकी अपेक्षासे एकही हैं—

$य^2 + र^2 + ६ र + ५ = ०$

$य^2 + र^2 + २ य + ८ र + ५ = ०$

यह भी सिद्ध करो कि एक ऐसा और भी बिन्दु है जिसके ध्रुवीय इन दोनों वृत्तों की अपेक्षासे एकही होंगे। उस बिन्दुके युग्मांक निकालो।

[उत्तर (२, −१)

(२२) (अ) (−२, ३) बिन्दुसे $२ य^2 + २ र^2 = ३$ वृत्त पर खींची गई स्पर्श रेखाओंकी लम्बाई क्या होगी ?

[उत्तर $\frac{१}{२}\sqrt{४६}$

(आ) (६, −७) बिन्दुसे $३ य^2 + ३ र^2 - ७ य - ६ र = १२$ वृत्त पर खींची गई स्पर्श रेखाओंकी लम्बाई निकालो।

[उत्तर ९

(२३) (त, थ) बिन्दुसे $य^2 + र^2 = क^2$ वृत्त पर स्पर्श रेखायें खींची गई हैं। सिद्ध करो कि उन दोनों स्पर्श रेखाओं तथा उनके मिलन बिन्दुओंको संयुक्त करनेवाली रेखासे बने हुए त्रिभुजका क्षेत्रफलः—

$$\frac{क (त^2 + थ^2 - क^2)^{\frac{३}{२}}}{त^2 + थ^2}$$ होगा।

द्वादश अध्याय

सम-चतुरस्त्रिक वृत्त तथा करणयात्मक अक्ष

[Orthogonal Circles and Radical Axis]

१२१—समचातुरस्त्रिक वृत्त—परिभाषा—दो वृत्त परस्परमें समचातुरस्त्रिक रूपमें तब कटते हुए कहे जाते हैं, जब उनके अन्तर खंड बन्दुओं परकी स्पर्श रेखायें परस्परमें लम्ब रूप हों।

कल्पना करो कि दो वृत्त जिनके केन्द्र $म_1$ और $म_2$ हैं और व्यासार्ध क्रमानुसार $म_1$ प और $म_2$ प हैं, परस्पर में प बिन्दु पर इस प्रकार कटते हैं कि $म_1$ केन्द्र वाले वृत्त के प बिन्दु पर खींची हुई स्पर्श रेखा $पम_2$ उस स्पर्श रेखा $पम_1$ पर लम्ब-रूप है जो $म_2$ केन्द्र वाले वृत्त का प बिन्दु पर स्पर्श करती है।
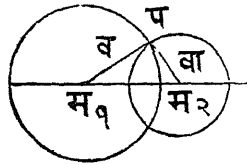
चित्र ४८

$$\therefore म_1म_2^2 = म_1प^2 + म_2प^2$$

अर्थात् (१) दोनों वृत्तोंके केन्द्रोंकी दूरीका वर्ग व्यासार्धोंके वर्गोंके योगके बराबर होता है। (२) यह भी स्पष्ट है कि यदि दो वृत्त समचातुरस्त्रिक हों तो एक वृत्तके केन्द्रसे दूसरे वृत्त पर खींची गई स्पर्श-रेखाकी लम्बाई पहले वृत्तके व्यासार्धके बराबर होगी। ये दोनों अवस्थायें वृत्तोंकी समचातुरस्त्रिक अवस्थाके पहचाननेके लिये समुचित हैं।

१२२—यदि दो वृत्तोंके समीकरण ये हों—

$$य^2 + र^2 + २छय + २चर + ग = 0$$

$$\text{और } य^2 + र^2 + २ छाय + २ चार + गा = 0$$

तो उनके केन्द्रोंके युग्मांक (—छ,—च) और (—छा,—चा) होंगे। तथा उनके व्यासार्धोंके वर्ग ($छ^2 + च^2 — ग$) और ($छा^2 + चा^2 - गा$) होंगे।

ये दोनों वृत्त समचातुरस्त्रिक तब होंगे जब गत सूक्त की अवस्था (१) के अनुसार

$$(—छ + छा)^2 + (—च + चा)^2 = छ^2 + च^2 — ग + छा^2 + चा^2 — गा$$

$$\therefore २ छछा + २ चचा = ग + गा$$

१२३—करण्यात्मक अक्ष—दो वृत्तोंका करणयात्मक अक्ष उस बिन्दुका बिन्दु पथ है जो इस प्रकार परिभ्रमण करता है कि इससे दोनों वृत्तों पर जो स्पर्श रेखायें खींची जायं, वे परस्परमें बराबर हों।

कल्पना करो कि दोनों वृत्तों के समीकरण ये हैं :—

$$य^2 + र^2 + २ छय + २ चर + ग = 0$$

$$य^2 + र^2 + २ छ_1य + २च_1र + ग_1 = 0$$

मान लो कि ($य_1$, $र_1$) कोई ऐसा बिन्दु है जिससे यदि इन वृत्तों पर स्पर्श रेखायें खींची जायं तो वे बराबर हों। अतः सूक्त ११८ के अनुसार

$$य_1^2 + र_1^2 + २ छय_1 + २ चर_1 + ग$$

$$= य_1^2 + र_1^2 + २ छ_1य_1 + २ च_1र_1 + ग_1$$

$$\therefore २ \; य_1(छ - छ_1) + २ \; र_1 (च - च_1) + ग — ग_1 = 0 \cdots (१)$$

अतः समीकरण (१) करणयात्मक अक्षका समीकरण है। यह स्पष्ट है कि यह एक सरल रेखा का सूचक है।

दोनों वृत्तोंके केन्द्र (—छ,-च) और (—$छ_1$,—$च_1$) है अतः इन दोनों को संयुक्त करने वाली रेखा का समीकरण यह है :—

$$(र+च) = \frac{-च_1+च}{-छ_1+छ}(य+छ)$$

$$\therefore र = \frac{-च_1+च}{-छ_1+छ}य + \frac{(-च_1+च)छ}{-छ_1+छ} - च$$

अतः इस समीकरण का "त" $= \frac{-च_1+च}{-छ_1+छ}$

और समीकरण (१) का "त" $= \frac{-छ-छ_1}{-च-च_1}$ अतः दोनों "त" ओं का गुणनफल —१ है। इससे सिद्ध हुआ कि करणयात्मक अक्ष और केन्द्रोंको संयुक्त करने वाली रेखा परस्पर में लम्ब रूप हैं।
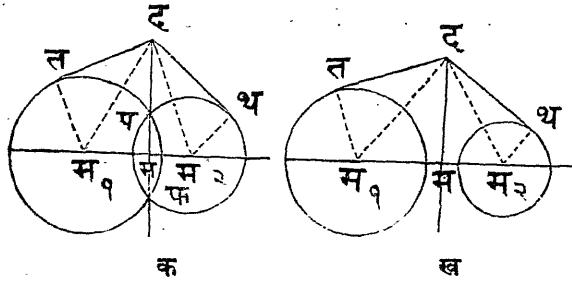
चित्र ४६

१२४—करण्यात्मक अक्ष खींचने की विधि—

इसके खींचनेमें दो अवस्थाओंका ध्यान रखना होता है।

(१) एक तो तब जब दोनों वृत्त एक दूसरे को वास्तविक बिन्दु पर काटें (चित्र ४६ क)

(२) दूसरे तब जब दोनों वृत्त काल्पनिक बिन्दुओं पर करें (चित्र ४६ ख)

(१) कल्पना करो कि वृत्त वास्तविक बिन्दु प और फ पर कट रहे हैं। अतः यह स्पष्ट है कि करणयात्मक अक्ष पफ रेखा होगी, क्योंकि इस पर कोई भी बिन्दु द लो और इस बिन्दुसे दोनों वृत्तों पर दत और दथ स्पर्श रेखायें खींचो। अतः रेखा-गणित के अनुसार :—

$दत^2 = दप.\ दफ$ (बायीं ओर के वृत्त से)

तथा $दथ^2 = दप.\ दफ$ (दाहिनी ओर के वृत्त से)

$\therefore दत^2 = दथ^2$

$\therefore$ द प फ करणयात्मक अक्ष है।

(२) चित्रके अनुसार वृत्त यदि वास्तविक बिन्दुओं पर न कटे तो कल्पना करो कि उनके व्यासार्ध $क_1$ और $क_2$ हैं। मान लो कि द कोई ऐसा बिन्दु है जिससे इन वृत्तों पर खींची गई स्पर्श रेखायें परस्पर में बराबर हैं।

$म_1म_2$ पर दम एक लम्ब खींचो।

अतः $दत^2 = दथ^2$

$\therefore (दम_1^2 - म_1त^2) = (दम_2^2 - म_1थ^2)$ ...(१)

परन्तु $दम_1^2 = मम_1^2 + दम^2$

और $दम_2^2 = मम_2^2 + दम^2$

तथा $म_1त = क_1$ और $म_2थ = क_2$

$\therefore$ समीकरण (१) इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$मम_1^2 + दम^2 - क_1^2 = मम_2^2 + दम^2 - क_2^2$$

$$\therefore मम_1^2 - २\ मम_2^2 = क_1^2 - क_2^2$$

$$\therefore (मम_1 + मम_2)(मम_1 - मम_2) = क_1^2 - क_2^2$$

$$म_1 म_2 (मम_1 - मम_2) = क_1^2 - क_2^2$$

$$मम_1 - मम_2 = \frac{क_1^2 - क_2^2}{म_1 म_2} = \text{स्थिर मात्रा}$$

अतः म एक निश्चित बिन्दु है क्योंकि यह निश्चित रेखा $म_1 म_2$ को ऐसे दो भागोंमें विभाजित करता है जिनका अन्तर एक स्थिर मात्रा है।

अतः क्योंकि $\angle म_1$ मद एक समकोण है, द का बिन्दुपथ अर्थात् करणयात्मक अक्ष वह निश्चित् सरल रेखा है जो केन्द्रोंको संयुक्त करनेवाली रेखा पर लम्ब रूप है।

१२५—सूक्त १२३ के वृत्तोंके समीकरणों को स=० और सा=० से सूचित करें अर्थात् $य^2 + र^2 + २$ छ य + २ चर + ग को स से और $य^2 + र^2 + २$ छाय + २ चार + गा को सा से सूचित करें तो करणयात्मक अक्ष का समीकरण [सूक्त १२३ (१)] स − सा = ० से सूचित किया जा सकता है जिससे स्पष्ट है कि करणयात्मक अक्ष उन वास्तविक अथवा कालपनिक विन्दुओंसे होकर जाता है जहाँ पर दोनों वृत्त परस्पर में कटते हैं।

१२६—सिद्ध करना कि तीन वृत्तों के करणयात्मक अक्ष जो दो दो वृत्तों को एक एक साथ लेकर खींचे गये हैं एक ही विन्दु पर मिलते हैं।

कल्पना करो कि तीन वृत्तों के समीकरण ये हैं :—

स = ० ... ... (१)

सा = ० ... ... (२)

सि = ० ... ... (३)

सूक्त १२३ और १२५ के अनुसार (१) और (२) वृत्तों का करणयात्मक अक्ष निम्न सरल रेखा है :—

स − सा = ० ... (४)

तथा (२) और (३) वृत्तोंका करणयात्मक अक्ष यह है :—

सा − सि = ० ...(५)

समीकरण (४) में समीकरण (५) को जोड़नेसे वह सरल रेखा आ जायगी जो उनके अन्तर खण्ड बिन्दुओं को संयुक्त करती है :—

अतः स − सि = ०... (६)

वह रेखा है जो (४) और (५) रेखाओंके अन्तरखण्ड बिन्दुओं से होकर जाती है। पर समीकरण (६) वृत्त (१) और (३) के करणयात्मक अक्षका भी सूचक है।

अतः तीनों वृत्तों के तीनों करणयात्मक अक्ष जो दो-दो वृत्तों को एक साथ लेकर खींचे गये हैं, एकही बिन्दु पर मिलते हैं, जिस बिन्दु पर ये मिलते हैं उसे **करणयात्मक केन्द्र** कहते हैं।

१२७—यदि स=० और सा=० दो वृत्तोंके समीकरण हों तो स—दसा=० उन सब वृत्तों का सूचक [द को भिन्न भिन्न मान देने पर] होगा जो स=० और सा=० के अन्तरखण्डोंसे होकर जावेंगे।

यदि स = ० और सा = ०

तो $य^2 + र^2 + २$ छय + २ चर + ग = ० ...(१)

और $य^2 + र^2 + २$ छाय + चार + गा = ० ...(२)

अतः स—दसा = ० को इस रूपमें लिखा जावेगा :—

$य^2 + र^2 + २$ छय + २ चर + ग

—द ($य^2 + र^2$ + छाय + २ चार + गा) = ० = (३)

समीकरण (३) से स्पष्ट है कि द का चाहे कोई भी मान क्यों न हो यह किसी न किसी वृत्त का सूचक अवश्य होगा। यदि किसी बिन्दुके युग्मांक समीकरण (१) और (२) दोनों में उपयुक्त होते हैं तो वे समीकरण (३) की भी पूर्ति करेंगे। अतः समीकरण (३) द्वारा सूचित वृत्त पूर्व दो वृत्तोंके अन्तर खण्ड बिन्दुओंसे होकर जाता है।

इसी भाव को रेखा-गणित के शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—"उस बिन्दु का बिन्दु-पथ, जो इस प्रकार भ्रमण करे कि इससे दो वृत्तों पर खींची गई स्पर्श रेखाओं की लम्बाइयों में एक निश्चित् अनुपात रहे, एक तीसरा वृत्त होता है तो पूर्व दो वृत्तों के अन्तर-खण्ड बिन्दुओं से होकर जाता है।"

१२८—एकाक्षक वृत्त—(Coaxal circles)—कोई भी वृत्त-समूह तब एकाक्षक कहलाता है जब उन सब वृत्तों का एक ही करणयात्मक अक्ष हो।

१२९—एकाक्षक वृत्त-समूहका समीकरण निकालना:—

सूक्त १२३ के अनुसार किन्हीं दो वृत्तोंका करणयात्मक अक्ष उसरेखा के लम्बरूप होता है जो दोनों वृत्तोंके केन्द्रोंको संयुक्त करती है। अतः यह स्पष्ट है कि सब एकाक्षक वृत्तोंके केन्द्र एक सरल रेखामें होंगे और यह रेखा करणयात्मक अक्ष के लम्बरूप होगी।

कल्पना करो कि करणयात्मक अक्ष र-अक्ष है और केन्द्रोंको संयुक्त करने वाली रेखा य-अक्ष है। जहां पर ये दोनों अक्ष कटें वहाँ मूल बिन्दु मानों।

उस वृत्त का समीकरण जिसका केन्द्र य-अक्ष पर है यह होगा :—

$$य^2 + र^2 - छय + ग = 0 \cdots (१)$$

करणयात्मक अक्ष परके किसी बिन्दुका युग्मांक (०, $र_1$) मानलो। इन बिन्दुसे वृत्त (१) परकी स्पर्श रेखा का वर्ग सूक्त ११८ के अनुसार $र_1^2 + ग$ होगा। यह मात्रा सब वृत्त समूहों के लिये एकसी है अतः सब वृत्तों के लिये ग का मान एक ही होगा। अतः भिन्न भिन्न वृत्त समीकरण (१) में छ को भिन्न भिन्न मान देने से उपलब्ध हो सकते हैं।

अतः समीकरण (१) और करणयात्मक अक्षके अन्तरखण्ड बिन्दु समीकरण (१) में य=० रखनेसे प्राप्त हो सकते हैं अतः—

$$र = \pm\sqrt{-ग}$$

यदि ग ऋणात्मक हो तो हमें दो वास्तविक अन्तरखण्ड बिन्दु प्राप्त हो सकते हैं और यदि ग धनात्मक हो तो दोनों अन्तरखण्ड काल्पनिक होंगे।

१३०—गत सूक्त का समीकरण (१) इस प्रकार भी लिखा जा सकता है :—

$$(य - छ)^2 + र^2 = छ^2 - ग$$
$$= [\sqrt{(छ^2 - ग)}]^2$$

अतः यह उस वृत्त का सूचक है जिसका केन्द्र (छ, ०) है और जिसके व्यासार्ध की लम्बाई $\sqrt{(छ^2 - ग)}$ है।

अतः व्यासार्ध तब शून्य हो जायगा अर्थात् वृत्त एक बिन्दुमें परिणत तब हो जावेगा जब $छ^2 = ग$, या $छ = \pm\sqrt{ग}$

अतः कुछ विशेष बिन्दुओं ($\pm\sqrt{ग}$, ०) की अपेक्षासे हमें बिन्दु-वृत्त मिलेंगे। इन बिन्दु-वृत्त को समूहके 'अन्तिम बिन्दु' कहते हैं।

यदि ग ऋणात्मक हो तो ये बिन्दु काल्पनिक होंगे। गत सूक्त में कहा गया था कि यदि ग ऋणात्मक हो तो वृत्त वास्तविक बिन्दु पर कटेंगे। यदि ग धनात्मक हो तो 'अन्तिम बिन्दु' वास्तविक होंगे अतः वृत्त काल्पनिक बिन्दु पर कटेंगे।

१३१—एकाक्षक समूहके समचातुरस्रिक वृत्त—कल्पना करो कि एकाक्षक वृत्त-समूहके सामान्य करणयात्मक अक्ष पर द कोई बिन्दु है और किसी भी वृत्त पर द त एक स्पर्श रेखा खींची गई है। अतः कोई भी वृत्त जिसका केन्द्र द हो और जिसका व्यासार्ध दत हो इस एकाक्षक समूहके प्रत्येक वृत्त को समचातुस्रिकतः काटेगा। क्योंकि इस वृत्त का व्यासार्ध म, त के लम्बरूप है और इसी प्रकार अन्य किसी भी वृत्तके लिये ऐसा ही होगा। अतः 'अन्तिम-बिन्दु' भी इसी समचातुरस्रिक वृत्त पर होंगे।

अतः केन्द्रोंको संयुक्त करने वाली रेखा और कोई भी वृत्त जिसका केन्द्र सामान्य करणयात्मक अक्ष पर है और जिसका व्यासार्ध इस बिन्दुसे किसी भी वृत्त पर खींची गई स्पर्श रेखा के बराबर है—जिन बिन्दुओं पर कटते हैं उन अन्तर खण्डोंको 'अन्तिम बिन्दु' कहते हैं।
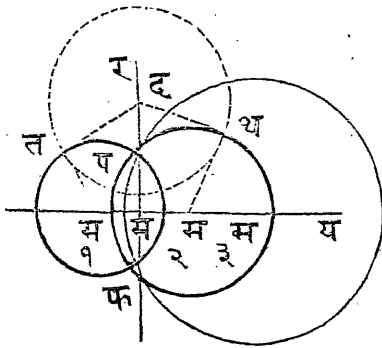
चित्र ५०
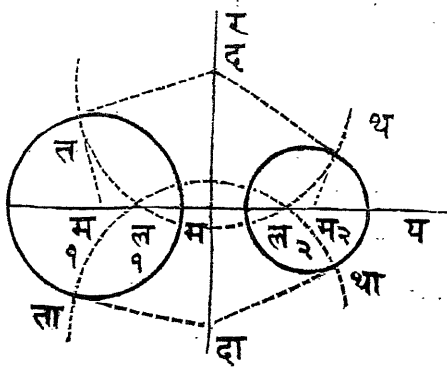
चित्र ५१

चित्र (५०) में अन्तिम बिन्दु काल्पनिक हैं। ये समचातुरस्त्रिक वृत्त केन्द्रोंको संयुक्त करने वाली रेखासे किसी भी वास्तविक बिन्दु पर नहीं मिलते हैं।

चित्र (५१) में समचातुरस्त्रिक वृत्त अन्तिम बिन्दु $ल_१$ और $ल_२$ से होकर जाते हैं।

चित्र (५०) के समान यदि पूर्व वृत्त वास्तविक बिन्दुओं में कटते हैं तो समचातुरस्त्रिक वृत्त काल्पनिक बिन्दुओं में कटेंगे और चित्र (५१) के समान यदि पूर्व वृत्त काल्पनिक बिन्दुओंमें कटते हैं तो समचातुरस्त्रिक वृत्त वास्तविक बिन्दुओंमें कटेंगे।

अतः सिद्धान्त यह निकला कि :—

'एकाक्षक वृत्तों का एक समूह दूसरे एकाक्षक वृत्तों के समूह से समचातुरस्त्रिकतः कट सकता है यदि प्रत्येक समूह के वृत्तोंके केन्द्र दूसरे समूह के करण्यात्मक अक्ष पर विद्यमान हों। तथा एक समूह 'अन्तिम बिन्दु' जाति का होगा और दूसरा समूह दूसरी जाति का।'

१३२—उस वृत्त का समीकरण निकालना जो दो दिये हुए वृत्तों को समचातुरस्त्रिकतः काटता है।

दोनों वृत्तों के करणयात्मक अक्ष को र-अक्ष मानो अतः इन वृत्तोंका समीकरण यह है :—

$$य^२ + र^२ - २ छ य + ग = ० \cdots (१)$$

$$य^२ + र^२ — २ छ_१ य + ग = ० \quad (२)$$

इन दोनोंमें ग का मान एक ही होगा।

कल्पना करो कि उस वृत्तका समीकरण जो इन दोनों को चातुरस्त्रिकतः काटता है यह है:—

$$(य — क)^२ + (र — ख)^२ = द^२ \ldots (३)$$

समीकरण (१) इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$(य — छ)^२ + र^२ = [\sqrt{(छ^२ - ग)}]^२ \cdots (४)$$

वृत्त (३) और (४) परस्पर में चातुरस्त्रिकतः कटेंगे यदि उन दोनों वृत्तोंके केन्द्रोंकी दूरी का वर्ग उन दोनों के व्यासार्धों के वर्गों के योग के बराबर हो। अर्थात् यदि—

$$(क — छ)^२ + ख^२ = द^२ + [\sqrt{(छ^२ - ग)}]^२$$

$$\text{अर्थात्}\ क^२ + ख^२ — २\ कछ = द^२ — ग \cdots (५)$$

इसी प्रकार वृत्त (३) और (२) समचातुरस्त्रिकतः तब कटेंगे जब

$$क^2 + ख^2 - २ क छ_1 = द^2 - ग \cdots (६)$$

समीकरण (६) को (५) में से घटाने पर

$$क (छ - छ_1) = ०$$

अतः क = ०, और $द^2 = ख^2 + ग$

इन मानोंका समीकरण (३) में उपयोग करनेसे समचातुरस्रिक वृत्ताका पच्छित समीकरण यह होगा—

$$य^2 + र^2 - २ खर - ग = ० \cdots (७)$$

इसमें ख कोई भी मात्रा है।

ख का कोई भी मान क्यों न हो, समीकरण (७) उस वृत्तका सूचक रहेगा जिसका केन्द्र र-अक्ष पर है और जो ($\pm\sqrt{ग}$,०) बिन्दुओं से होकर जाता है।

पर ये बिन्दु सूक्त १३ के अनुसार उस एकाक्षक समूहके अन्तिम बिन्दु हैं जिससे ये दोनों वृत्त सम्बन्धित हैं।

अतः किसी एकाक्षक समूहसे सम्बन्धित कोई दो वृत्त दूसरे एकाक्षक समूहके किसी भी वृत्तासे समकोण पर काटे जाते हैं, तथा परावर्ती समूहके वृत्तोंके केन्द्र पूर्ववर्ती समूहके सामान्य कणयात्मक अक्ष पर विद्यमान रहते हैं। परावर्ती समूहके सब वृत्त पूर्ववर्ती समूहके वास्तविक अथवा काल्पनिक 'अन्तिम—बिन्दु' से होकर जाते हैं।

समीकरण (७) द्वारा सूचित वृत्ताका केन्द्र (०, ख) हैं और इसका व्यासार्ध $\sqrt{(ख^2 + ग)}$ है,

(०, ख) बिन्दुसे वृत्त (१) पर खींची गई स्पर्श रेखाका वर्ग सूक्त ११८ के अनुसार $\sqrt{(ख^2 + ग)}$ है।

अतः द्वितीय समूहके किसी भी वृत्तका व्यासार्ध उस स्पर्श रेखाकी लम्बाईके बराबर होगा जो इस वृत्तके केन्द्रसे प्रथम समूह के किसी वृत्त पर खींची गई है।

उदाहरणमाला १०

(१) $य^2 + र^2 + २ य + ३ र - ७ = ०$ और $य^2 + र^2 - २ य - र + १ = ०$ वृत्तोंके करणयात्मक अक्ष का समीकरण निकालो।

[उत्तर $य + र = २$

(२) $य^2 + र^2 + क य + खर + ग = ०$ और $य^2 + र^2 + खय + कर + ग = ०$ वृत्ताका करणयात्मक अक्ष तथा दोनों वृत्तोंके परस्पर-चापकर्ण का समीकरण निकालो।

[उत्तर $य - र = ०$; $[\frac{1}{2} (क + ख)^2 - ४ ग]^{\frac{1}{2}}$

(३) निम्न तीन वृत्तों का करणयात्मक केन्द्र निकालो—

$$य^2 + र^2 + ४ य + ७ = ०$$
$$२ य^2 + २ र^2 + ३ य + ५ र + ६ = ०$$
$$य^2 + र^2 + र = ०$$

[उत्तर (−२, −१)

(४) सिद्ध करो कि निम्न युगल वृत्त समचातुरस्रतः कटते हैं :—

(अ) $य^2 + र^2 - २ कय + ग = ०$ और
$य^2 + र^2 - २ खर - ग = ०$

(आ) $य^2 + र^2 - २ कय + २ खर + ग = ०$ और $य^2 + र^2 + २ खय + २ कर - ग = ०$

(५) सिद्ध करो कि वे दो वृत्त जो (०, क) और (०, −क) बिन्दुओंसे होकर जाते हैं तथा र = तय + ग रेखा का स्पर्श करते हैं समचतुरस्रतः कटेंगे यदि—

$$ग^2 = क^2 (२ + त^2)$$

(६) उस वृत्तके केन्द्रका बिन्दु-पथ निकालो जो दो दिये हुए वृत्तोंको समचतुरस्रतः काटता है :—

(७) वृत्तका समीकरण निकालो जो निम्न प्रत्येकवृत्तको समचतुरस्रतः काटता है।

$$य^2+र^2+2 य+17 र+4=0 \quad (1)$$
$$य^2+र^2+7 य+6 र+11=0 \quad (2)$$
$$य^2+र^2-य+22 र+3=0 \quad (3)$$

[(१) और (२) का करणयात्मक अक्ष यह है: -

$$5 य-11 र+7=0$$

(२) और (३) का करणयात्मक अक्ष यह है:—

$$8 य-16 र+8=0$$

ये दोनों रेखायें (३, २) बिन्दु पर मिलती हैं। अतः (३, २) करणयात्मक केन्द्र हुआ। इस बिन्दुसे प्रत्येक वृत्त पर खींची गई स्पर्श रेखा का वर्ग=५७; अतः पच्छिुत समीकरण यह हुआ :—

$$(य-3)^2+(र-2)^2=57$$

अर्थात् $य^2+र^2-6 य-4 र-44=0$

समालोचना

भूगोलका टर्की अंक—सम्पादक श्री रामनारायण मिश्र बी० ए०। पृ० सं० ६०, छपाई कागज़ अत्युत्तम। मूल्य १)। इविंग क्रिश्चियन कालेज प्रयाग की संरक्षणता में प्रकाशित।

हमारे पाठकोंको याद होगा कि गत वर्ष श्री रामनारायण मिश्र जी ने भूगोलका अफ़ग़ानिस्तान अंक निकाला था। इस वर्ष आपने अत्यन्त परिश्रमसे टर्की अंक प्रकाशित किया है। यह सुन्दर कागज़ पर सुन्दर छपाईमें अनेक भव्य चित्रोंसे सुसज्जित है। इसमें टर्की की भौगोलिक परिस्थिति (जल, वायु, नदियां, उपज, आदि) के अतिरिक्त टर्कीका सूक्ष्म इतिहास और विशेषतः आधुनिक क्रन्तिकारी विवरण बहुत ही मनोरंजकतासे दिया गया है। इसमें टर्की की सामाजिक स्थिति, रीति रिवाज, धर्म और अन्य आवश्यक बातों का भी रुचिपूर्ण समावेश है। हम आपको ऐसे अंक निकालनेके लिये बधाई देते हैं और हमें पूर्णाशा है कि हिन्दी जगत् ऐसे अंकोंके वास्तविक महत्वका अनुभव करेगा और मिश्र जीको अन्य देशों के विषयमें भी ऐसे ही अंक प्रकाशित करने के लिये प्रोत्साहित करेगा।

स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी

अत्यन्त शोक है कि हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला भगवानदीन जीका काशीमें एक महीनेकी बीमारी झेलकर २८ जुलाई १६३० को देहावसान हो गया। आप प्राचीन हिन्दी कविताके बड़े मर्मज्ञ थे। 'लक्ष्मी' मासिक पत्रिकाके सम्पादक और निर्भीक समालोचक थे। हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दीके प्रोफेसर थे। हिन्दी शब्दसागरके पाँच मुख्य उपसम्पादकोंमेंसे यह भी एक थे। आप कविता ऊँचे दर्जेकी करते थे। मुझे उनकी बनाई कविता-पुस्तकोंमें वीरपंचरत्न बहुत ही पसन्द है। आपने रामचन्द्रिका, विनयपत्रिका कविप्रिया, रसिकप्रिया, बिहारीसतसई आदि प्राचीन हिन्दी कविताकी पुस्तकोंकी खूब अच्छी टीका की है। आप उर्दू व फारसीके भी अच्छे ज्ञाता थे। आपने कई उत्तम पुस्तकोंकी रचनाकी है। अलंकार मंजूषा रचकर विद्यार्थियोंका बड़ा भारी उपकार किया है। यह व्रजभाषाके बड़े ज्ञाता और प्रशंसक थे और भक्तिके बड़े पक्षपाती थे।

आप सरल प्रकृतिके और स्पष्टवक्ता थे। उनके मनमें छल-कपटका लेश भी नहीं था। इनकी स्पष्टवादितासे बाजे सज्जन अप्रसन्न हो जाते थे परन्तु लाला जीके मनमें किसीके प्रति द्वेषका लेश भी न था। आपने काशीमें एक हिन्दी-साहित्य विद्यालय स्थापित किया था जिसमें वह नित्य बिला नागा जाकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। उनको पढ़ाने का कार्य अत्यन्त प्रिय था। इसलिये गीताके अनुसार उनका कार्य ब्राह्मणत्व का कार्य समझा जायगा। हिन्दी-साहित्यमें उनका नाम अमर रहेगा।

—कृष्णानन्द

८

सूर्य-सिद्धांत

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी एल० टी विशारद]

गतांक से आगे

सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करनी चाहिए—

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधि संस्थयोः ।
दृक्तुल्यसाधितांशादि युक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥६॥

अनुवाद—(६) त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीतिसे छाया सूर्य का भोगांश जानकर इससे स्पष्टाधिकारकी रीतिसे जाने हुए स्पष्ट सूर्यको घटाकर अयनांश निकाले और यह अयनांश स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों में जोड़े। अयनांश-संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् सायन सूर्य और सायन चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ जब १२ राशि या ६ राशि हो तब इन दोनों की स्पष्ट क्रान्ति निश्चय करनी चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—यह जानने के लिए कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब समान होती है, सायन सूर्य और सायन चन्द्रमाके भोगांश जानने की आवश्यकता है इसी लिए स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमामें अयनांश जोड़ने की विधि बतलायी गयी है। इस रीतिसे क्रान्ति-साम्य का जो समय आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्तसे भिन्न है। इस विषयकी और बातें चित्र १२० के साथ ही बतला दी गयी हैं।

यह जानना कि पात-काल बीत गया है या आनेवाला है—

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेप संस्कृता ।
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥७॥

ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुध्यति ॥८॥

अनुवाद—(७) सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानने के बाद यह देखना चाहिये कि चन्द्रमा वसंत संपातसे विषम पदमें है या सम पदमें। यदि चंद्रमा विषम पदमें हो और इसकी विक्षेप-संस्कृत क्रान्ति अर्थात् स्पष्ट क्रान्ति सूर्यकी स्पष्ट क्रान्तिसे अधिक हो तो समझना चाहिये कि पातकाल बीत गया है, (८) और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि पातकाल आनेवाला है। परन्तु यदि चंद्रमा समपदमें हो तो इसका उलटा समझना चाहिये अर्थात् समपदमें चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्तिसे अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल आनेवाला है और कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल बीत गया है। यदि चंद्रमाके विक्षेप या शरसे इसकी क्रान्ति कम हो और घटाना पड़े तो ऊपरके नियममें विषमपदके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह समपदके बारेमें समझना चाहिये और समपदके बारेमें जो कहा गया है वह विषमपदके बारेमें समझना चाहिए।

विज्ञानभाष्य—ओज और युग्मपद अथवा विषम और समपद की चर्चा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १८६—८७ में अच्छी तरह हुई है। यहां वसंत-संपात बिन्दुसे सायनकर्क बिन्दु या दक्षिणायन बिन्दु तक प्रथम पद, दक्षिणायन बिन्दुसे शरद सम्पात बिन्दु तक द्वितीय पद, शरद सम्पातसे सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु तक तृतीय पद और उत्तरायण बिन्दुसे बसंत सम्पात तक चतुर्थ पद है। प्रथम और तृतीय पदों को

विषम या ओज पद और द्वितीय तथा चतुर्थ पद को सम पद युग्म पद कहा गया है।

चित्र १२० से स्पष्ट है कि जब चन्द्रमा विषमपद अर्थात् व द या श उ में कहीं रहेगा तब व्यतीपात या वैधृति के लिए सूर्यको क्रमानुसार द श या उ व में होना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि सूर्य या चन्द्रमाकी क्रान्ति विषम पदमें बढ़ती रहती है और समपदमें घटती रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषम पदमें और सूर्य सम पदमें होता है तब चन्द्रमाकी क्रान्ति बढ़ती रहती है और सूर्यकी घटती रहती है। इसलिए ६ठें श्लोकसे पातकालका जो स्थूल समय निकाला जाता है उस समय यदि चन्द्रमाकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिसे अधिक है तो चन्द्रमाकी क्रान्ति और बढ़ती जायगी और सूर्यकी क्रान्ति घटती जायगी। इसलिए दोनोंकी क्रान्ति इस समयसे पहले ही समान हो चुकी है और पातकाल बीत गया है। इसके विरुद्ध यदि चन्द्रमाकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिसे कम हो तो चंद्रमाकी क्रान्ति बढ़ती रहनेके कारण वह समय आनेवाला है जब दोनोंकी क्रान्ति समान होगी और तभी पातकाल होगा। इसी तरह जब चंद्रमा समपदोंमें होगा तब सूर्य विषम पदोंमें होगा। ऐसी दशामें चंद्रमाकी क्रान्ति घटती और सूर्यकी बढ़ती रहेगी। इसलिए यदि चन्द्रक्रान्ति अधिक है तो घटते घटते सूर्यकी क्रान्तिके बराबर हो जायगी और पातकाल श्लोक ६ से निकाले हुए समयके बाद आवेगा। परन्तु यदि चन्द्र-क्रान्ति कम हो तो पातकाल बीता हुआ समझना चाहिए।

८वें श्लोकके उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि यदि विक्षेपसे मध्यक्रान्ति घटाकर स्पष्ट क्रांति आती हो तो ऊपर बतलाए हुए नियमसे भिन्न नियम काममें लाना होगा क्योंकि यदि मध्य क्रांति और शरकी दिशा भिन्न है तो सीधे ही यह नहीं बतलाया जा सकता कि चंद्रक्रांति बढ़ रही है या घट रही है। ऐसी दशामें १ दिन आगे और पीछेकी क्रांति जानने से ही काम चलेगा।

असकृत्कर्मसे तुल्य क्रांतियोंका स्थान निश्चय करना—

क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते।
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥ ९ ॥
शोध्यं चन्द्रागद्गते पाते तत्सूर्यगति ताडितम्।
चन्द्राभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥१०॥
तद्वच्छशाङ्क पातस्य फलं देयं विपर्ययात्।
कर्मैतदसकृत्तावद्यावत्क्रान्ती समेतयोः ॥ ११ ॥

अनुवाद—(९) सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके परम क्रान्तिज्यासे भाग देना चाहिये। लब्धियोंके धनु बनाकर उनका अन्तर निकाले। इस अन्तरको या इसके आधेको चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ दे यदि पातकाल आनेवाला हो और (१०) यदि पातकाल बीत चुका हो तो उस अन्तर या उसके आधेको चन्द्रमाके भोगांशसे घटा दे। इस अन्तर या इसके आधे को जिसको जोड़ा या घटाया जाय उस दिनकी सूर्यकी गतिसे गुणा करके उस दिनकी चन्द्रगतिसे भाग देना चाहिए। जो लब्धि आवे उसे सूर्यके भोगांशमें उसी तरह जोड़ना या घटाना चाहिए जैसे चन्द्रमामें जोड़ा या घटाया है। (११) इसी प्रकार उस अन्तर या उसके आधेको चन्द्र-पात अर्थात् राहुकी गतिसे गुणा करके चन्द्र गतिसे भाग देकर

जो लब्धि आवे उसे राहुके भोगांशमें उलटे क्रमसे संस्कारदे अर्थात् यदि चन्द्रमामें अन्तर जोड़ा हो तो राहुमें घटाना चाहिए और घटाया है तो जोड़ना चाहिए। इन संस्कारोंके बाद सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति फिर जाननी चाहिए। यदि दोनों समान न हों तो फिर ९-१० श्लोकोंमें बतलायी गयी क्रिया करनी चाहिए। यह असकृत्कर्म (Method of approximation) तब तक करना चाहिए जब तक सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्ति समान न हो जायँ।

विज्ञान-भाष्य—९वें श्लोकके पूर्वार्धमें जो नियम बतलाया गया है वह स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकमें बतलाये गये नियमका विलोम है (पृष्ठ १८०-१८२)। यहाँ क्रान्तिज्या, त्रिज्या और परम क्रान्तिज्यासे भोगांश जाननेकी रीति है। इस रीतिसे जो भोगांश आवेगा वह ९० अंशसे कम होगा। इससे अधिक जाननेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि हमको तो यही देखना है कि वसंत या शरद सम्पातसे सूर्य और चन्द्रमा कितनी दूर हैं। स्पष्ट क्रान्ति भिन्न होनेसे यह भोगांश भी भिन्न होंगे परन्तु एक दूसरेके निकट अवश्य होंगे। इन भोगांशों का जो अन्तर होगा उतना ही चन्द्रमा पातकालसे आगे या पीछे होगा। यदि पातकाल आनेवाला है तो यह अन्तर चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ना चाहिए क्योंकि उस समय तक चन्द्रमा इतना ही आगे बढ़ जायगा और यदि पातकाल बीत चुका है तो यह अन्तर चन्द्रमाके भोगांशसे घटाना चाहिए क्योंकि बीते हुए पातकालके समय चन्द्रमा इतना ही पीछे रहेगा। परन्तु सूर्य भी इतने समयमें कुछ न कुछ स्थान छोड़ेगा। इसलिए पातकाल का सूर्य का स्थान भी स्पष्ट करना आवश्यक है। इसके लिए अनुपातसे काम लेना चाहिए कि जब चन्द्रमाकी दैनिक गति इतनी है तो सूर्यकी दैनिक इतनी है इसलिए जब चन्द्रमाकी गति उस अन्तरके समान होगी तब सूर्यकी गति क्या होगी अर्थात् चन्द्रदैनिक गति : चन्द्र अन्तर :: सूर्यकी दैनिक : सूर्य अन्तर। इस प्रकार जो अंतर आवे उसे सूर्यके भोगांशमें जोड़ना चाहिए यदि चंद्रमाका अंतर जोड़ा गया हो, नहीं तो घटाना चाहिए। इस प्रकार पात-कालमें सूर्य और चंद्रमाके स्पष्ट भोगांश मालूम हो जायंगे। इससे फिर सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट क्रांति जाननी चाहिये। परन्तु चंद्रमा की स्पष्ट क्रांति जाननेके लिए चंद्रमाका शर जानना आवश्यक है जो चंद्रमाके पात राहु या केतु पर अवलम्बित है और इतनी देरमें चंद्रपात भी वक्रीगतिसे अपना स्थान बदल देगा इस लिए उसी प्रकार अनुपातसे राहुका भी परिवर्तन जान लेना चाहिये। परन्तु इस परिवर्तनका संस्कार राहुमें विलोम रीतिसे करना चाहिए अर्थात् जब चंद्रमा और सूर्यमें जोड़ना हो तो इसमें घटाना चाहिये और घटाना हो तो जोड़ना चाहिये क्योंकि राहु की गति उलटी होती है। जब चंद्र क्रांतिमें चंद्र शर का संस्कार करके स्पष्ट क्रान्ति आ जाय तब देख पड़ेगा कि सूर्य की क्रांति अब भी कुछ भिन्न है। इन क्रान्तियोंसे ९-११ श्लोकोंमें बत-लायी गयी रीति को फिर दुहरावे और तब तक दुहरावे जब तक दोनों की क्रांति समान न हो जाय। इसी को असकृत्कर्म कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे कई जगह हो चुकी है।

९-११ श्लोकोंमें बतलाये गये नियम की इतनी व्याख्या पर्याप्त है। यहाँ मुझे केवल इतना ही कहना है कि यह सब

झंझट करने पर पातकाल का ठीक ठीक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि चंद्रमा की गति इतनी सरल नहीं है जैसी सूर्य-सिद्धान्त में बतलायी गयी है। इसका शुद्ध स्थान जाननेके लिए कई संस्कार करने पड़ते हैं जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार-में अच्छी तरह की गयी है। इस लिए यदि पातकाल का ठीक ठीक निर्णय करना हो तो आधुनिक वेधोंसे ही काम लेना चाहिए जिसके लिए आधुनिक सिद्धान्तके आधार पर सारणी आदि तैयार करनी चाहिये।

९वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि सूर्य और चंद्रमाके भोगांशोंके अंतर या इस अन्तरके आधे को जोड़ना या घटाना चाहिए। टीकाकारोंने लिखा है कि आधा तब लेना चाहिए जब अन्तर अधिक हो। इससे गणनामें तो कोई भेद नहीं पड़ता, केवल कुछ सरलता आ जाती है क्योंकि उद्देश्य तो यह है कि असकृत्कर्मसे वह समय जाना जाय जिस समय दोनों की क्रान्ति समान होती है।

पातकाल अर्धरात्रिसे पहले है या पीछे—

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ।
हीनेऽर्धरात्रिकाघातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१२॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियां जब समान होती हैं तभी पातकाल होता है। ९वें श्लोकके अनुसार जाना हुआ पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमाका भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार जाने हुए उस दिन के अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमाके भोगांशसे कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रिसे पहले हो चुका है और अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रिके बाद होगा।

विज्ञान-भाष्य—चन्द्रमाका भोगांश सदैव बढ़ता रहता है इस लिए यदि पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा भोगांश अर्धरात्रि-कालिक स्पष्ट चन्द्रमा भोगांशसे कम हो तो निश्चय है कि पातकाल अर्धरात्रिसे पहले हो चुका है और अधिक है तो अर्धरात्रिके बाद होगा।

पातकाल अर्धरात्रि से कितना पहले या पीछे है—

स्थरीकृतार्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवर लिप्तिकाः।
षष्टिघ्नाश्चन्द्र भुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः॥१३॥

अनुवाद—उपर्युक्त नियमसे निश्चित किया हुआ पातकालिक चन्द्र भोगांश और उस दिन के अर्धरात्रि कालिक चन्द्रभोगांश-के अंतरको कलाओंमें लिखकर साठसे गुणा करने और गुणनफलको अर्ध रात्रिकालिक चन्द्रगतिसे भाग देनेसे जो लब्धि आवेगी उतनी ही घड़ी पहले या पीछे पातकाल हुआ है या होगा।

विज्ञान-भाष्य—पातकालिक चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चंद्रमाके भोगांशोंके अंतरसे यह मालूमहोगा कि पातकालिक चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमासे कितना पहले या पीछे था। फिर यह गणना करनी चाहिए कि अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा की दैनिकगति ६० घड़ीमें होती है तो वह अंतर कितनी घड़ी में हुआ होगा। इतना ही आगे या पीछे पातकाल होता चाहिए।

यदि सूर्य और चन्द्रकी गणना आधुनिक सिद्धान्त द्वारा बहुत सूक्ष्म की जाय तो भी इस नियमसे जो पातकाल

आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि पातकालिक गणना बहुत सूक्ष्म होती है और चन्द्रमाको दैनिक गति इतनी अधिक होती है कि यदि अर्धरात्रिकालिक गतिको पातकालिक समझ लिया जाय जैसा कि इस नियममें समझा गया है तो सूक्ष्मता नहीं आ सकती क्योंकि यदि पातकाल और अर्धरात्रिकालमें बहुत अंतर है तो दोनों समयकी चन्द्रगतियां समान नहीं होंगी इसलिए मेरी समझमें यह अच्छा होगा कि इस नियम-से जो पातकाल आवे उस समय से दो घड़ी आगे और पीछे की चन्द्रगतियों से कम लिया जाय।

पातकालके आरम्भ समाप्त होनेका समय जानना—

रवीन्दुमान योगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्ध नाडिकादि तत् ॥१४॥
पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्ध वर्जितः ।
तस्य सम्भव कालः स्यात्तत्संयुक्तोन्त्य संज्ञितः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) सूर्य और चन्द्र बिम्बोंके मानोंको जोड़कर आधा को और इसको ६० से गुणा करके दोनोंकी गतियों-के अन्तरसे भाग दे दे तो लब्धि स्थित्यर्ध घड़ी होती है। (१५) इसको स्पष्ट पातकालसे जो पातका मध्यकाल होता है घटा देनेसे जो समय आता है उसी समय पातकालका आरम्भ होता है और जोड़नेसे जो समय आता है उसी समय पातकाल-का अन्त होता है।

विज्ञान भाष्य—स्थित्यर्धकी जो परिभाषा चन्द्र ग्रहणाधिकार पृष्ठ ६६५-६६८ में दी गयी है वही यहां भी समझनी चाहिए। पृष्ठ ६६७ में $\frac{६० \times च फ}{चा—रा}$ भी सूत्र दिया गया है। यदि इसमें च फ की जगह सूर्य और चन्द्र-बिम्बोंके योगका आधा रख दिया जाय तो पातकालका स्थित्यर्ध हो जायगा जिसे जाननेका नियम १४ वें श्लोकमें बतलाया गया है। १५वें श्लोकमें स्थित्यर्धसे आरम्भ और अन्तकाल उसी तरह जाना जाता है जिस तरह ग्रहणका स्पर्श और मोक्षकाल जाना जाता है।

इसका सार यह है कि जिस समय चन्द्रमा और सूर्यके बिम्बोंके किनारोंकी क्रान्ति समान होती है उस समयसे पातकालका आरम्भ होता है और जिस समय दोनों बिम्बोंके केन्द्रोंकी क्रान्ति समान होती हैं उस समय पातका मध्यकाल होता है जिसके जाननेकी रीति १३ श्लोकों तक बतलायी गयी है और जिस समय दोनों बिम्बोंके दूसरे किनारोंकी क्रान्तियां भी समान हो जाती हैं उस समय पातकालका अन्त होता है।

पातकालका प्रभाव और उसके योग्य कर्म—

आद्यन्तकाल योर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽति दारुणः ।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्व कर्म सुगर्हितः ॥ १६ ॥
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम् ।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्व कर्म विनाशकृत् ॥ १७ ॥
स्नान दान जप श्राद्धव्रत होमादि कर्मभिः ।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्काल ज्ञानतस्तथा ॥ १८ ॥

अनुवाद—(१६) पातकालके आरंभसे अंत तकका समय बड़ा दारुण, प्रज्वलित, और अग्नि स्वरूप होता है। यह सब शुभ कार्यों के लिए निन्दित है। (१७) जब तक सूर्य बिम्बके किसी विन्दुकी क्रान्ति चन्द्रबिम्बके किसी विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है तब तक सब कर्मोंका नाश करनेवाले इस पातकी

स्थिति रहती है। (१८) इस कालमें स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होम आदि कर्मोंसे अत्यन्त पुण्य प्राप्त होता है और इस कालके ज्ञानसे भी पुण्य होता है।

विज्ञान-भाष्य—जैसे पूर्णिमा अमावास्या आदि कालोंमें स्नान, दान जप आदि काम अच्छे समझे जाते हैं वैसे ही पातकालमें भी यह कर्म अच्छे बतलाये गये हैं और जिस प्रकार मुहूर्त चिंतामणिमें बतलाये गये बहुतसे योगोंमें शुभ कर्म करना वर्जित है उसी प्रकार यहां भी। परन्तु ज्योतिषी लोग यथार्थमें इन महापातों का विचार कम करते हैं, वह शायद इसलिए कि इसकी गणना पुराने सिद्धान्तोंके आधार पर तो असम्भव ही है। इसी लिए पंचांगोंमें भी इनकी चर्चा नहींके बराबर रहती है। हिन्दू विश्वविद्यालयके विश्व पंचांग में भी दो एक दो जगह चर्चा करके छोड़ दिया जाता है तो यद्यपि इसके लेखकोंको नाविक पंचांगकी सहायतासे पातकालका जानना बड़ा सुगम होता है क्योंकि और बातोंमें तो ये नाविक पंचांगसे सहायता लेते ही हैं। १८वें श्लोककी अंतिम बात निस्सन्देह बहुत सुन्दर है। उसमें यह बतलाया गया है कि पातकालके जाननेसे भी पुण्य होता है अर्थात् पातकालका शुद्ध शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना भी पुण्य कार्य है जो तभी संभव है जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादिकी गणना ठीक ठीक दृक्तुलयतासे की जाय और ज्योतिष सिद्धान्तका पठन पाठन नवीन वैज्ञानिक रीतिसे किया जाय। केवल प्राचीन सिद्धान्तोंको ही समझना और उनमें देशकालके अनुसार संशोधन न करना तथा शुद्ध वैज्ञानिक रीतिको निंदित समझना बुद्धिमानी नहीं है और न प्राचीन ज्योतिषाचार्योंकी पद्धतिके ही अनुकूल है।

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेद्धि तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥१९॥

अनुवाद—जब विषुवद् वृत्त के निकट अर्थात् वसंत संपात या शरद संपातके पास सूर्य चन्द्रमाकी क्रान्तियां समान होती हैं तब पात दो बार होते हैं। इसके विपरीत दशामें अर्थात् सायन कर्क या सायन मकर बिन्दुके समीप पातका अभाव होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा वसंत या शरद सम्पातके पास होते हैं तब इनकी क्रान्तियोंकी गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषुवद् वृत्तके दक्षिण होता है और सूर्य उत्तर तब दोनों की क्रान्तियां समान होती हैं। इसके बाद जब चन्द्रमा शीघ्र गतिके कारण उत्तर हो जाता है तब भी इसकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिके समान हो जाती है इस प्रकार क्रान्ति साम्य दो बार एक ही दो दिनके बीचमें हो सकता है। परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों विषुवद् वृत्त से उत्तर रहेंगे तब अमावस्या का समय होगा और ऐसी दशामें पातकाल नहीं माना जाता जैसा कि पहिले और दूसरे शब्दोंसे सिद्ध होता है। इसलिए जान पड़ता है कि केवल यह विशेषता बतलानेके लिए श्लोक १९ दिया गया है कि क्रान्ति साम्य दो बार हो सकता है, दो ही एक दिन के अन्तर पर।

परन्तु यदि सूर्य सायन कर्क या सायन मकर विन्दुओंके समीप हो तो इसकी क्रान्ति परम क्रान्तिके निकट रहती है। यदि इस समय चन्द्रमा की क्रान्ति शर की दिशा भिन्न होनेके कारण कम हो तो क्रान्ति साम्य नहीं हो सकता और न वैधृति या व्यतीपातका ही संयोग घट सकता है।

तीसरे प्रकार का व्यतीपात जानने की रीति—

शशाङ्कार्कयुते लिप्ताभभोगेन विभाजिताः ।
लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातः तृतीयकः ॥२०॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों को जोड़कर कला बनावे और इसको ८०० से भाग दे दे। यदि लब्धि १७ के अन्त में हो अर्थात् १७ के निकट हो तो तीसरा व्यतीपात होता है।

विज्ञान-भाष्य—स्पष्टाधिकार के श्लोक ६५ में विष्कम्भादि ३७ योगों के जाननेकी रीति दी हुई है। इनमें १७ वां योग व्यतीपात बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३१६)। इसीके जाननेकी रीति यहां भी दुहरायी गयी है। वह इसलिए जिससे मालूम हो जाय कि इस अधिकारमें क्रान्ति साम्यसे उत्पन्न जिन महापातोंकी चर्चा है उन्हींके समकक्ष व्यतीपात नामक योग भी होता है। इसी तर्कसे कहा जा सकता है कि २७ वें योग वैधृतिको भी वैधृति नामक महापातके समान समझना चाहिए।

यहां एक बात ध्यान देनेकी है। व्यतीपात और वैधृति योगोंकी गणना सूर्य और चन्द्रमाके निरयण भोगांशोंसे की जाती है परन्तु महापातोंकी गणना सायन भोगांशोंसे की जाती है। इसलिए यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि २० वें श्लोक में जो नियम दिया गया है उसमें सायन भोगांशोंका प्रयोग करना चाहिए या निरयण। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीकामें तो अयनांश संस्कृत भोगांश अर्थात् सायन भोगांशसे ही गणना करनेको बतलाया गया है और इसीका अनुसरण पं० माधव-पुरोहित और पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी ने किया है। परन्तु स्वामी विज्ञानानन्दने अपनी बंगला टीकामें कोई चर्चा नहीं की है। मुझे जान पड़ता है कि यह व्यतीपात विष्कम्भादि योगोंका ही व्यतीपात है, उससे भिन्न नहीं है। इस लिए जिस प्रकार इन योगोंकी गणना होती है उसी प्रकार इस श्लोकमें बतलाये हुए व्यतीपातकी गणना करनी चाहिए अर्थात् निरयण भोगांशोंसे ही इसकी गणना होनी चाहिए तथा गूढ़ार्थ प्रकाशिकाके अयनांश संस्कृत भोगांशोंको न लेना चाहिए। सायन भोगांश लेनेमें एक अड़चन और है। वह यह कि इससे जो व्यतीपात या वैधृति काल आवेगा वह विष्कम्भादि योगोंके व्यतीपात और वैधृतिसे भी भिन्न होगा। इस प्रकार एक मासमें चार चार व्यतीपात और वैधृति कालोंकी कल्पना करनी पड़ेगी जो ग्रन्थकारकी तर्क शैलीसे भी अनुचित जान पड़ती है।

भसंधि और गंडान्त योग कब होता है—

सार्पेन्द्र पौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः ।
तदग्रभेष्वाद्यपादो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥ २१ ॥

अनुवाद—आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रोंके चौथे चरण नक्षत्र सन्धि हैं और इनके आगेवाले नक्षत्रों मघा, मूल, और अश्विनीके प्रथम चरण गंडांत कहलाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—मुहूर्त चिन्तामणि तथा अन्य मुहूर्त ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा विशेष प्रकारसे है। नक्षत्र संधि या गंडातमें जो संतान होती है उसके लिए साधारणतः कहा जाता है कि मूलमें हुई है। इसे अशुभ मानते हैं। बच्चा पैदा होनेके २७वें

दिन जब वही गंडांत या भसंधि काल फिर आता है तब मूल-शान्ति के लिए विशेष प्रकारकी पूजाकी जाती है। यहां गंडांत की चर्चा करनेका अर्थ यही जान पड़ता है कि जो अशुभ फल महापातोंका होता है वही गंडांतका भी होता है जैसा कि अगले श्लोकसे प्रकट है। यह भसंधियां चौथी, आठवीं, और बारहवीं राशियोंके अंतिम भाग हैं और गंडांत पांचवीं, ९वीं और १ली राशियोंके आरंभिक भाग हैं।

व्यतीपात त्रयं घोरं गण्डान्त त्रितयं तथा।
एतद्भसन्धि त्रितयं सर्वं कर्मसु वर्जयेत् ॥२२॥

अनुवाद—तीनों व्यतीपात, तीनों गंडांत और नक्षत्रसंधियां बहुत भयंकर होती हैं इस लिए ये सब शुभकामों में वर्जित हैं अर्थात् जब ये हों तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में वैधृत व्यतीपातकी चर्चा नहीं है परन्तु तर्क शैलीसे और पहलेके श्लोकोंसे जान पड़ता है कि वैधृति भी इसमें सम्मिलित है। टीकाकारोंने ऐसा ही किया भी है।

उपसंहार—

इत्येतत्परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितं।
रहस्यं महदाख्यातं किमन्यच्छ्रो तुमिच्छसि ॥२३॥

अनुवाद—मैंने यह भी परम पवित्र और अत्यन्त रहस्ययुक्त और हितकर ज्योतिविज्ञान की कथा कही, अब और क्या सुनना चाहता है?

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुषने मयासुरसे जिस ज्योति-विज्ञानकी कथा पहले अधिकारमें आरंभ की थी उसका अंत यहां हुआ। इस पर मयासुरने जो प्रश्न किये उसकी चर्चा आगे तीन अध्यायोंमें होगी। इस लिए यहां तक जो कुछ कहा गया है उसे सूर्य सिद्धान्तका पूर्वार्ध कहते हैं। इसके आगे जो तीन अध्याय हैं उन्हें उत्तरार्ध कहते हैं। अब हम यहाँ संक्षेपमें यह बतला कर कि महापातोंकी गणना कैसेकी जाती है इस पूर्वार्धको समाप्त करेंगे।

पंचांगोंसे महापातोंका स्थूलकाल निश्चय करना—विष्कम्भादि २७ योगोंकी गणना पंचांगोंमें अवश्य रहती है। इनको जाननेकी रीति स्पष्टाधिकारके ६५ वें श्लोकमें बतलायी गयी है जो यह है—सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंको जोड़ कर कला बनाओ और इसको ८०० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उससे बीते हुए योगोंकी संख्या मालूम होती है और जो शेष बचता है उससे वर्तमान योग का ज्ञान होता है।

इस नियममें सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश अश्विनी नक्षत्रके आदि विन्दुसे नापे जाते हैं और महापातोंकी गणनाके लिए भोगांशोंका नाप वसंत संताप विन्दुसे की जाती है। यदि दोनोंके लिए भोगांशोंकी नाप वसंत संपातसे होती तो महा-पातोंका समय जानना बड़ा सुगम होता क्योंकि जिस समय १४ वें योग दर्पण का आधा समय बीतता उस समय सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ १८० अंश होता और व्यतीपात नामक पातकालका मध्यकाल होता और जिस समय वैधृति योगका अंत होता उसी समय वैधृत नामक पातका मध्यकाल होता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इसलिए इसमें थोड़ा सा

संस्कार करना पड़ेगा। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार अश्विनीका आदि विन्दु आजकल जहाँ है वहाँ से वेध द्वारा सिद्ध वसंत संपात विन्दु २२ अंश ४५ कलाके लगभग पच्छिम है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। यदि यहाँसे सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लिये जायं तो दोनोंका जोड़ ४५ अंश ३० कला अधिक होता है। व्यतीपातके लिए सूर्य और चन्द्रमाके सायन भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता है इसलिए १८० अंश—४५ अंश ३० कला = १३४ अंश ३० कला = ८०७० कला। यह अश्विनी नक्षत्रके आदि विन्दुसे व्यतीपात कालिक सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ है। इसको ८०० कलासे भाग देने पर १० लब्धि और ७० कला शेष होते हैं। १० से सिद्ध होता है कि व्यतीपात कालमें गंड योग बीता रहता है और वृद्धि योग का आरम्भ हुआ रहता है। इसलिए स्थूल रूपसे व्यतीपात काल-को निश्चय करनेके लिए जिस समय वृद्धि योगका आरम्भ होता है उसी समयके सूर्य चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति जानकर व्यतीपात कालकी सूक्ष्म गणना करनी चाहिए।

वैधृति नामक पातकालका निश्चय करनेके लिए १५ अंश ३० कलाको ३६० अंशसे घटाना चाहिए। ऐसा करनेसे शेष आया ३१४ अंश ३० कला = १८८७० कला। इसको ८०० से भाग देने पर २३ लब्धि और ४७० कला शेष हुए, जिससे प्रकट होता है कि वैधृति नामक पातकाल में २३ वाँ योग शुभ वीता रहता है और २४वें योग शुक्ल का भी बीत चुका रहता है। इसलिए स्थूल रूपसे वैधृति नामक पात शुक्ल योगके आधे भाग पर होता है। इसलिए सूक्ष्म गणना करनेके लिए इसी समयके सूर्य, और चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट भोगांश, सूर्यकी क्रान्ति,चन्द्रमाकी मध्यमक्रान्ति और शर जानकर इसका संस्कार करके चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिए जिसकी रीति स्पष्टाधिकार पृ० २६१-२६५ में बतलायी गयी है। इसलिए उदाहरणमें इन सब बातोंमें बतलानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती क्योंकि इससे पुस्तकका आकार तो बढ़ जाता है परन्तु लाभ कुछ नहीं देख पड़ता। यहां केवल यह दिखलाना पर्याप्त होगा कि सूर्य सिद्धान्तके ध्रुवाङ्कोंसे महापातोंके समयकी गणना करना न तो सुगम ही है और न शुद्ध जब कि आधु-निक रीतिसे जाने हुए ध्रुवाङ्कोंसे यह बात शुद्धतापूर्वक जानी जा सकती है। मेरे पास इस समय १६२६ ई० का नाविक पंचांग मौजूद है इसलिए इसीकी सहायता से वैशाख शुक्ल १६८६ विक्रमीयके व्यतीपात नामक महापातकी गणना का जाती है।

१६८६ के वैशाख शुक्ल पक्ष में गंड योगका अंत १४ मई को ४२ घड़ी ४० पल पर होता है और इसके बाद वृद्धि योगका आरंभ होता है इसलिए १४ या १५ मई को व्यतीपात नामक महापात होगा : अब नाविक पंचांगसे यह देखना चाहिए कि इन तारीखोंमें किस समय सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्तियां समान होंगी। नाविक पंचांगके पृष्ट ५१ से जान पड़ता है कि १४ मईको सूर्यकी उत्तर क्रान्ति १८ अंश ३४ कला और ४२ विकला है तथा १५ मईको १८ अंश ४६ कला और ६ विकला है। परन्तु चन्द्रमाकी क्रान्ति १४ मईको २२ अंश से अधिक है इसलिए १४ मईको व्यतीपात काल नहीं आवेगा परन्तु १४ मईकी शामको यह घटना हो सकती है क्योंकि,

	अंश	कला	वि०
१५ मई के मध्याह्न कालमें सूर्यकी क्रान्ति	१८	४६	३.१
१६ ,, ,, ,,	१८	३	१०.६
२४ घंटे में क्रान्तिगत		१४	४.८
१५ मई के सायंकाल ६ बजे चंद्रक्रान्ति	१८	५४	११.५
,, ,, ७ ,, ,,	१८	४२	३३.४
४ घंटे में चन्द्रक्रान्ति की गति		११	३८.१

यहां सूर्य क्रान्ति बढ़ रही है और चन्द्रमा की घट रही है इसलिए चन्द्रमा की क्रान्ति

की गतिसे यह निश्चय है कि ६ बजेके आस पास ही दोनों-की क्रान्ति समान होंगी। ६ घंटेमें सूर्यकी क्रान्तिकी गति ६/२४ × (१४ कला ४'८ विकला) = ३ कला ३१'२ विकला है। इस लिए ६ बजे सायंकाल सूर्यकी क्रान्ति हुई १८ अंश ४६ कला ६'१ विकला + ३ कला ३१'२ विकला = १८ अंश ५२ कला ३७'३ विकला। यह छः बजेकी चन्द्र क्रान्तिसे कम है और चन्द्र क्रान्ति घट रही है तथा सूर्य क्रान्ति बढ़ रही है इस लिए छः बजेके बाद ही कुछ मिन्टोंमें दोनोंकी क्रान्तियां समान होंगी। यह जाननेके लिये दोनोंकी क्रान्तियोंके अंतर से भाग देना चाहिये।

	अंश	क०	वि०
६ बजे चन्द्र क्रान्ति =	१८	५४	२१'५
,, सूर्य क्रान्ति =	१८	५२	३७'३
दोनोंका अन्तर =		१	३४'२ = ९४'२ विकला

सूर्यकी १ घंटेकी क्रान्ति गति = $\frac{\text{१४ कला ४'८ वि०}}{\text{२४}}$

= ३५'२ विकला

चंद्रमाकी १ घंटेकी क्रान्ति गति = ११ कला ३७'१ विकला

दोनोंकी दिशाएं भिन्न हैं इस लिए इनका अंतर जाननेके लिए इनको जोड़ना चाहिए। इस लिए दोनोंका योग = १२ कला १३'३ विकला

= ७३३'३ विकला

जब ७३३'३ विकलाका अंतर १ घंटेमें होता है तब ९४'२ विकला का अंतर कितने समय में होगा।

७३३'३ : ९४'२ : : १ घंटा : इष्टबल

$\therefore$ इष्टकाल = $\frac{\text{९४'२} \times \text{१}}{\text{७३३'३}}$ घंटा

= $\frac{\text{९४६१'} \times \text{'} \times \text{६०}}{\text{६ ७३३}}$ मिनट

= ७ मिनट ४३ सेकंडके लगभग

इस लिए १५ मई को ६ बजकर ७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपातका मध्यकाल होगा। परन्तु यह गणना ग्रीनिचके टाइमसे की गयी है जो भारतवर्षके रेलवे टाइमसे ५ घंटा ३० मिनट पीछे है। इस लिए भारतवर्षके रेलवे टाइमके अनुसार १५ मईकी रातको ११ बजकर ३७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात कालका मध्य होगा।

अब स्थित्यर्ध काल जानकर इससे घटाया जाय तो व्यती-पातकालका प्रारंभकाल आजायगा और जोड़ा जाय तो अंतकाल आवेगा। यह १४वें श्लोकके अनुसार सुगमता पूर्वक हो सकता है इस लिए उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार पाताधिकार नामक ११ वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

भूगोलाध्याय नामक १२वाँ अध्याय

[श्लोक १-९—मयासुरके भूगोल, खगोल तथा ऋतु सम्बन्धी अनेक प्रश्न। श्लोक १०-११—सूर्यांश पुरुषका मयासुरसे उत्तर सुननेके लिए कहना। श्लोक १२-२३—वासुदेवसे लेकर पंच महाभूतों तककी उत्पत्तिका क्रम। श्लोक २४—पांच ताराग्रहोंकी उत्पत्ति। श्लोक २५—बारह राशियों और २७ नक्षत्रोंकी उत्पत्ति। श्लोक २६-३०—चराचर जगत्की उत्पत्ति। श्लोक ३०-३३—ब्रह्माण्डमें ग्रहोंकी कक्षाओंका क्रम और पृथ्वीका स्थान। श्लोक ३३-३६—भूगोलमें पाताल, सुमेरु आदिके स्थान। श्लोक ३७-४२—विषुवत्‌रेखा पर स्थित चार नगरोंके स्थान। श्लोक ४३-४५—विषुवत्‌रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवोंका सम्बन्ध। श्लोक ४६—भिन्न ऋतुओं में सूर्यकी किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं। श्लोक ४७-५०—उत्तर ध्रुव निवासियों अर्थात् देवताओं और दक्षिण ध्रुव निवासियों अर्थात् असुरोंके दिन रात का विभाग। श्लोक ५१—देवताओं और असुरोंके मध्याह्न और मध्यरात्रिका समय। श्लोक ५२-५३—भूगोल पर १८० अंशकी दूरी पर रहने वाले एक दूसरे को ऊपर नीचे क्यों समझते हैं। श्लोक ५४—भूगोल चन्द्राकार क्यों देख पड़ता है। श्लोक ५५-५८—भूतल पर दिन रातके घटने बढ़नेका कारण। श्लोक ५९—किसी समय विषुवत्‌रेखासे कितनी दूरी पर सूर्य ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६०-६१—विषुवत्‌रेखासे कितनी दूरी पर ६० घड़ीका दिन और ६० घड़ीकी रात होती है। श्लोक ६२-६० घड़ीसे भी बड़ा दिन या रात कहां होता है। श्लोक ६३-६७—दो दो महीने, चार चार और छः छः महीने का दिन या रात कहां होती है। श्लोक ६८—उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन सूर्य कहां ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६९—किसी वस्तुकी छाया कहां किस दिशामें होती है। श्लोक ७०-७१—भूतल पर जब एक जगह सूर्यका उदय होता है तब कहां मध्याह्न रहता है और कहां मध्यरात्रि अथवा अस्तकाल। श्लोक ७२—ध्रुवोंकी दिशामें जानेसे आकाशीय ध्रुवोंकी उन्नति और नक्षत्र कक्षाकी अवनति देख पड़ती है। श्लोक ७३—प्रवह वायुके द्वारा नक्षत्र-चक्र कैसे भ्रमण करता है। श्लोक ७४—देवताओं, पितरों और मनुष्योंके दिन रात का प्रमाण। श्लोक ७५-७७—ग्रहोंकी कथा क्यों और उनके भ्रमण कालोंका सम्बन्ध। श्लोक ७८-७९—वर्षपति, मासपति, दिनपति तथा होरापतियोंका सम्बन्ध। श्लोक ८०—नक्षत्र कक्षा का विस्तार। श्लोक ८१-८४—आकाश कक्षाका प्रमाण तथा इससे ग्रहकी कक्षाओं और गतियोंका सम्बन्ध। श्लोक ८५-९०—कक्षाओंका परिमाण योजनोंमें।]

इस अध्यायमें भूगोलकी उत्पत्ति, स्थिति, विस्तार आदि सभी बातोंकी निरूपण किया गया है, इसीलिए इसका नाम भूगोलाध्याय है। साथ ही साथ ग्रहों, नक्षत्रों और आकाशकी कक्षाओंके प्रमाण भी दिये गये हैं।

मयासुरके प्रश्न और सूर्यांश पुरुषके उत्तरकी भूमिका—

अथार्कांश समुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
भक्त्या परमयाभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयासुरः ॥१॥
भगवन् किम्प्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया।
किंविभागा कथं चात्र सप्तपाताल भूमयः ॥२॥
अहोरात्र व्यवस्थांच विदधाति कथं रविः।
कथं पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥३॥

देवासुराणामन्योन्य महोरात्रं विपर्ययात् ।
किमर्थं तत्कथं वा स्याद्भावोर्भगण पूरणात् ॥४॥
पित्र्यं मासेनभवति नाडी षष्ट्यातु मानुषम् ।
तदेवकिल सर्वत्र न भवेत्केन हेतुना ॥५॥
दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः ।
कथं पर्येति भगणः सग्रहोयं किमाश्रयः ॥६॥
भूमेरुपर्युपर्यूर्ध्वाः किमुत्सेधाः किमन्तराः ।
ग्रहर्क्ष कक्षाः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेणताः ॥७॥
ग्रीष्मे तीव्रकरो भानुर्न हेमन्ते तथा विधः ।
कियती तत्कर प्राप्तिर्मानानि कति किं च तैः ॥८॥
एतं मे संशयंछिन्धि भगवन् भूतभावन ।
अन्यो न त्वामृतेछेत्ता विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥९॥
इति भक्तयोदितं श्रुत्वा मयोक्तं वाक्यमस्यहि ।
रहस्यं परमध्यायं ततः प्राह पुनः सतम् ॥१०॥
श्रृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्म सञ्ज्ञितम् ।
प्रवक्ष्याम्यति भक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥११॥

अनुवाद—(१) इसके उपरान्त मयासुर ने सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड़ कर प्रणाम करके और बड़ी भक्तिसे पूजा करके यह पूछा । (२) हे भगवन्, इस पृथ्वी का परिमाण क्या है, इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है, इसके कितने विभाग हैं और इसमें सात पातालोंकी भूमि कैसे स्थित है। (३) सूर्य अहोरात्रकी व्यवस्था कैसे करते हैं और भुवनोंको प्रकाशित करते हुए पृथ्वीके चारों ओर कैसे घूमते हैं। (४) देवताओं और असुरोंके दिन-रात एक दूसरेके विपरीत क्यों होते हैं और सूर्यका एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है। (५) पितरोंका दिन रात एक मासका और मनुष्यों का ६० घड़ियोंका क्यों होता है। सब जगह एक ही प्रकारके दिन-रात क्यों नहीं होते। (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घंटा) के स्वामी एक प्रकारसे क्यों नहींकी जाती, ग्रहोंके साथ नक्षत्र मंडल कैसे घूमता है और इनका आधार क्या है। (७) ग्रहों और नक्षत्रोंकी कक्षाएँ पृथ्वीसे ऊपर कितनी कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर पर हैं, इनके मान क्या हैं और ये किस क्रमसे स्थित हैं। (८) ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी किरणें बहुत तीव्र क्यों होती हैं और हेमन्त ऋतुमें वैसी क्यों नहीं होतीं। यह किरणें कितनी दूर तक जाती हैं; सौर, चन्द्र आदि मान क्या हैं और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है। (९) हे भूतभावन भगवन्, मेरी इन शंकाओं को दूर कीजिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आपके सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शंकाओं को नहीं दूर कर सकता। (१०) भक्तिसे कहे हुए मयासुरके इन वचनों को सुनकर सूर्यांश पुरुषने उससे फिर पहलेके रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा । (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ क्योंकि भक्तों के लिये मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता ।

विज्ञान-भाष्य—मयासुरने जितने प्रश्न किये हैं उनका उत्तर जाननेकी अभिलाषा सभी तत्वज्ञानियों को होती है। इस पर सूर्यांश पुरुषने बतलाया है कि उत्तरमें जिस रहस्यका प्रतिपादन किया जायगा वह अध्यात्म ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इस पर बहुतसे लोग कह उठेंगे कि मयासुरके प्रश्नोंका उत्तर तो कोई भी ज्योतिषी और भूगोलशास्त्री दे सकता है। यह विचार कुछ दूर तक ठीक है परन्तु सूर्यांश पुरुषने इस संसारकी उत्पत्तिकी जो चर्चा की है वह तो अवश्य अध्यात्म संबंधी ही कही जा सकती है क्योंकि यह भौतिक विज्ञानसे परेकी बात है।

सृष्टिका क्रम—

वासुदेवः परब्रह्म तन्मूर्तिःपुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥१२॥

प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपिः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३॥

तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्र तमसावृतम्।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः ॥१४॥

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि सूर्य पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्प्रसूत्या सूर्य उच्यते ॥१५॥

परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च।
पर्येति भुवनान्येष भावयन्भूत भावनः ॥१६॥

प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः।
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्तिर्यजूंषिच ॥१७॥

त्रयीमयोऽयं भगवन् कालात्मा कालकृद्विभुः।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥१८॥

रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम्।
छन्दांस्यश्वाः सप्तयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥१९॥

त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत्।
सोऽहङ्कार जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥२०॥

तस्मै वेदान्वरान्दत्त्वा सर्वलोकपितामहम्।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन ॥२१॥

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माहङ्कारमूर्तिभृत्।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसांनिधिः ॥२२॥

मनसःखं ततो वायुरग्निरापोधरा क्रमात्।
गुणैक वृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

अनुवाद—(१२) परं ब्रह्म वासुदेव हैं। इसकी मूर्ति परम पुरुष है जो अव्यक्त, निर्गुण, शान्त और अव्यय और सांख्य शास्त्रके पच्चीस तत्वोंसे परे हैं। (१३) बाहर भीतर सर्व व्यापक देवता ने प्रकृतिमें प्रवेश करके संकर्षण रूपसे प्रारम्भमें जलकीसृष्टि करके उसमें बीज रखा जो सोनेका

अंडा होगया (१४) जिसके चारों ओर अंधकार था। इसमें सनातन अनिरुद्ध पहले प्रकट हुए। (१५) इन्हीं को वेदोंमें हिरण्यगर्भ भगवान् कहा गया है। पहले होनेके कारण इन्हें आदित्य और सब चराचर जीवोंको उत्पन्न करनेके कारण इन्हें सूर्य कहते हैं। (१६) परम प्रकाशमय होनेके कारण इन्हें सूर्य और अंधकारके अंतमें होनेके कारण सविता कहते हैं। यह भूतभावन अर्थात् स्थावर जंगम सृष्टिको उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले भगवान लोकोंको प्रकाशमान करते हुए भ्रमण करते हैं। (१७) इन्हें ही प्रकाशात्मा अंधकारका नाश करनेवाले और वेदोंमें महान् तत्व कहते हैं। इनका मंडल ऋग्वेद, किरण सामवेद और मूर्ति यजुर्वेद हैं। (१८) इसलिए इनको वेदत्रयात्मक कहते हैं। इनसे कालकी गणना होती है इसलिए इनको कालात्मा और कालकृत् कहते हैं। यह सबकी आत्मा, सर्वव्यापक सूक्ष्म हैं और सब सृष्टि इनमें स्थित है। (१९) संसाररूपी रथमें संवत्सर रूपी चक्र बनाकर सात छंदोंके सात घोड़ोंसे युक्त होकर यह सर्वदा भ्रमण करते हैं। (२०) इनके तीन चरण अमृत होनेसे अगम्य है और यह एक चरण प्रकट हुआ है। इसी प्रभु ने जगत्की सृष्टिके लिए अहङ्काररूपी ब्रह्माको बनाया। (२१) इसके बाद सब लोकोंके पितामह ब्रह्माको श्रेष्ठ वेदोंको देकर और इन्हें अंडेके बीचमें स्थापित करके अनिरुद्ध भगवान् स्वयम् लोकोंको प्रकाशित करते हुए भ्रमण करते हैं। (२२) इसके पश्चात् अहङ्कार मूर्तिधारी ब्रह्माजीने सृष्टिकी रचना करनेका विचार किया। ब्रह्माके मनसे चंद्रमा और नेत्रोंसे तेजपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुए। (२३) मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी पांच महाभूत क्रमसे एक एक गुणकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए।

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुरसे उपर्युक्त सृष्टि-क्रमका जो वर्णन किया है वह वेदान्त, सांख्य, श्रीमद्भागवत् आदि में बतलाये गये सृष्टि-क्रमका मिश्रण है। यह क्रम भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें भिन्न भिन्न रीतिसे बतलाया गया है इसलिए यह संभव नहीं कि उन सबकी व्याख्या यहां की जाय। इस विषय पर लोकमान्य तिलक ने अपने गीता रहस्यके ६-९ प्रकरणोंमें अच्छी तरह विचार किया है और कहीं कहीं युरोपीय विद्वानोंके मतोंकी भी तुलना की है इसलिए इसकी जानकारीके लिए पाठकोंको उसीका अध्ययन करना चाहिए। यहां उसीका सार दिया जा सकता है।

सांख्यशास्त्रके अनुसार ब्रह्मांडका वंश वृक्ष इस प्रकार है* (पृ० १७९):—

* पृष्ठोंकी संख्या सं० १९७३ के छपे हुए हिन्दी गीता रहस्यके अनुसार है।

वेदान्तका परब्रह्म इन २५ तत्वों से परे है जिसकी चर्चा सूर्य सिद्धान्तके १२वें श्लोकमें है (देखो गीता रहस्य पृ० २०३) सूर्यसिद्धान्तमें संकर्षण, अनिरूद्धकी जो चर्चा है उसकी चर्चा भागवतधर्ममें इस प्रकार आयी है 'वासुदेव रूपी परमेश्वरसे संकर्षण रूपी जीव उत्पन्न हुआ; संकर्षणसे प्रद्युम्न अथवा मन तथा प्रद्युम्न से अनिरूद्ध अर्थात् अहङ्कार हुआ; कुछ लोग इन चार व्यूहों मेंसे दो, तीन या एक हीको मानते हैं। (देखोगीता रहस्य पृ० ४२६)। सूर्यसिद्धान्तमें प्रद्युम्न की चर्चा नहीं है। यहां अहङ्कारको ही ब्रह्मा बतलाया है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीको ही पंचमहाभूत कहते हैं। आकाशमें १ गुण शब्द है; वायुमें दो गुण शब्द, स्पर्श; अग्निमें तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलमें चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीमें पांच गुण शब्द, स्पर्श रूप, रस और गंध माने गये हैं इसीलिए २२, और २३वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि एक एक गुणकी वृद्धिसे पंचमहाभूतों की उत्पत्ति क्रमसे हुई है।

पांचग्रहोंकी उत्पत्ति—

> अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः।
> तेजो भूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्चजज्ञिरे ॥२४॥

अनुवाद—अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमाकी उत्पत्तिके बाद तेज अर्थात् अग्निसे मंगल, पृथ्वीसे बुध, आकाशसे वृहस्पति, जलसे शुक्र और वायुसे शनि उत्पन्न हुए।

१२ राशियों और २७ नक्षत्रोंकी उत्पत्ति—

पुनर्द्वादशधात्मानं व्यभजद्राशि संज्ञकम् ।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥२५॥

अनुवाद—फिर जितात्मा ब्रह्मा ने मनः कल्पित वृत्तको पहले १२ राशियोंमें फिर २७ नक्षत्रोंमें बांटा।

चराचर जगत्की उत्पत्ति—

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देव पूर्वकम् ।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन् ॥२६॥
गुणकर्म विभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् ।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ॥२७॥
ग्रह नक्षत्र ताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः ।
देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथा क्रमम् ॥२८॥
ब्रह्माण्डमेतत्सुषिरं तत्रेद भूर्भुवादिकन ।
कटाह द्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः ॥२९॥

अनुवाद—(२६) इसके पश्चात् श्रेष्ठ, मध्यम और अधम स्रोतोंसे सत्व, रज और तम विभेदात्मक प्रकृतिका निर्माण करके देवता, मनुष्य, राक्षस आदि चराचर विश्व की रचना की। (२७) गुण और कर्मके अनुसार पूर्वोक्त क्रम से सृष्टि रच कर वेदोंमें बतलायी हुई रीतिके अनुसार देश कालके अनुसार इसके विभाग किये। (२८) समर्थवान् ब्रह्माने ग्रहों, नक्षत्रों, तारों, पृथ्वी, संसार, देवताओं, राक्षसों, मनुष्यों और सिद्धोंका यथाक्रम स्थापन किया, (२९) दो समान कड़ाहोंके मुँह मिला देनेसे जैसा खोखला गोला बनता है उसी प्रकारके इस ब्रह्माण्डके अवकाशमें भूर्भुवः आदि लोक स्थित हैं।

ब्रह्माण्डमें ग्रहोंकी कक्षाओंका क्रम—

ब्रह्माण्ड मध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्ततथा ॥३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य शुक्रेन्दु जेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्ध विद्याधराघनाः ॥३१॥
मध्ये समन्तान्तदण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमांशक्तिं ब्रह्मणोधारणात्मिकाम् ॥३२॥

अनुवाद—(३०) ब्रह्माण्डकी परिधिको आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं; फिर उसके नीचे क्रमानुसार (३१) शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ हैं। (३२) इस ब्रह्माण्डके बिलकुल बीचमें यह भूगोल ब्रह्माकी धारणात्मिक परम शक्तिके बल पर शून्यमें ठहरा हुआ है।

क्रमशः

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३१ } कन्या, संवत् १९८७ { संख्या ६

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

[सम्पादक—सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

लेखकों एवं पाठकोंकी सुविधाके लिये हम यहां कुछ पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह दे रहे हैं जिनका उपयोग 'विज्ञान' में किया जाता है। समय २ पर ये शब्द भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा व्यवहारमें आ चुके हैं, अतः इनकी उपयोगिता स्पष्ट ही है। हमें पूर्णाशा है कि इस शब्दावलीसे जनता समुचित सहायता लेगी और यथोचित परिवर्धन एवं संशोधनके पश्चात् इन्हें एक निश्चित रूप प्रदान करेगी।

PHYSIOLOGY

१ शरीर विज्ञान

(विज्ञान १९१९, १०, ८४; ११, १३७)

यह शब्दावली डा० त्रिलोकीनाथ वर्माके 'हमारे शरीरकी रचना' ग्रन्थके आधार पर बनाई गई है।

A

Abbreviation	संकेत
Abdomen	उदर
Abdominal	उदरस्थ
Abductor muscle	बहिर्नायनी पेशी
" of thigh	ऊरु बहिर्नायनी

Absence of sound — निःशब्दता
Absorption, coefficient of — आत्मीकरण (शोषण) का गुणक
Acetabulum — वंक्षणोलूखल
Aconite — मीठा तेलिया
Acoustic nerve — श्रावणनाड़ी
Acromion process — अंसकूट
Act of respiration — श्वास क्रिया
Adductor longus — ऊरु अन्तर्नायनी दीर्घा
,, magnus — ,, ,, गरिष्ठा
,, muscle — अन्तर्नायनी पेशी ; अन्तर्वाहिनी पेशी
Adductor of thigh — ऊरु अन्तर्नायनी
Adipose tissue — वसमया सौत्रिक तंतु ।
Afferent — केन्द्रगामी
Air — वायु
Air cell — वायु कोष्ठ
Air passage — श्वास मार्ग
Albumen — अलब्युमेन, अण्डसित
Alimentary canal — अन्नमार्ग
,, system — पोषण संस्थान
Alklaine — क्षारीय
Alveolus — दन्तोलूखल
Amoeba — अमीबा
Amoeboid — अमीबावत
Amphi-arthrodial — अल्प चेष्टावन्त
Amphibia — मंडूक श्रेणी, स्थलजलचर
Amylopsin — श्वेतसार विश्लेषक
Anaemia — रक्तहीनता
Anal canal — गुदा
Analysis — विश्लेषण
Anateomist — व्यवच्छेदक
Anatomy — व्यवच्छेदविद्या, शवच्छेद विद्या
Angle of rib — पर्शु का कोण

Animal — प्राणि
Animal kingdom — प्राणिवर्ग
Animal protein — जान्तविक प्रोटीन
Ankle — टखना, गुल्फ
Anterior fontanelle — ब्रह्मरंध्र, ब्रह्मविवर, पूर्व विवर
Antetior tibial artery — जंघापुरोगा धमनी
,, margin — सम्मुख धार
,, nares — नासापुरोद्वार
Antero-inferior spine — पुरोधः कूट
,, superior spine — पुरोर्ध्व कूट
Antibacterial serum — कीटाणुनाशक सीरम (रक्त रस)
Anti-helix — कर्णमध्याबुर्द
Anti toxic serum — विषनाशक सीरम (रक्त रस)
Anus — मलद्वार, चूति
Aorta — बृहत् धमनी, महा धमनी
Apex — शिखर
Arachnoid — मस्तिष्कका मध्यावरण
Argon — आलसीम
Arm — बाहु
Artery — धमनी
Arteriole — धमनिका
Articular capsule — सं कोष
Articular process — सन्धि प्रवर्धन
Articulation — संधि;
,, ,, — शब्दोच्चारण
Ascending — उद्गामी
,, aorta — उद्गामी बृहत् धमनी
,, colon — ,, बृहदंत्र
Assimilation — एकीकरण, समीकरण

Atrium of heart	ग्राहक कोष्ठ
Attraction sphere	आकर्षण गोला
Auditory centre	श्रावण केन्द्र
„ tube	कंठ कर्णी नली
Auricular artery	शष्कुलीया धमनी
Auricular surface of ilium	त्रिकस्थालक
Aves	पक्षीश्रेणी
Axilla	कक्षतल, कक्ष
Axillary arterey	कक्षीया धमनी
Axillary border	कक्षानुगा धारा
Axillary nerve	कक्षीया नाड़ी
Axis	अक्ष
„ cylinder	सूत्राक्ष

B

Back	पीठ
Backbone	पृष्ठवंश
Back of neck	कृकाटिका
Bacteria	कीटाणु, बकटीरिया
Base	अधोभाग
„ of skull	करोटि पीठ
Basement membrane	आधार भूत झिल्ली
Beak like process	तुण्ड
Beard	कूर्च
Biceps femoris	द्विशिरस्का औवीं
„ muscle	द्विशिरस्का पेशी
Biconcave	युगल-नतोदार
Biconvex	युगलोन्नतोदर
Blastodermic vesicle	बुदबुद
Blood	रक्त
Blood circulation	रक्तचक्र, रक्तसंचार
„ circulatorysystem	रक्त वाहक संस्थान
„ corpuscle	रक्त कण, रक्ताणु
„ plasma	रक्तवारि
„ propelling organ	रक्त संचालक यंत्र
Blood serum	रक्तरस
„ vessel	रक्तवाहिनी
Body	गात्र, पिण्ड
„ of mandible	हनु मण्डल,हनुगात्र
Bone	अस्थि
„ , head of a	मुण्ड
„ , marrow	मज्जा
„ , nasal	नासस्थि
„ , public	भगास्थि
„ , stapes	रकाब
Brachialis muscle	कूर्पर नमनी पेशी
Brain	मस्तिष्क
Bridge ofthe nose	नासा वंश
Bronchi	वायु प्रणालियाँ, वायुनल
Bronchiole	सूक्ष्म वायु प्रणाली, वायु प्रणालि, वायुनलिका
Bronchus	वायु प्रणाली

C

Calcaneus	पार्ष्णि अस्थि
Calcium	केलसियम, खटिकम्
„ carbonate	खटिक कर्बनेत
„ compound	खटिक यौगिक
„ Fluoride	खटिक प्लविद,
„ Phosphate	खटिक स्फुरेत, ।
Canal of Schlemm (चक्षु का)	चक्रवत् शिरा कुल्या
Cane sugar	इक्षोज, गन्नेकी शकर
Canine teeth	रदनक दन्त
Cannon	कैनन (एक डाक्टरका नाम)
Capillary	केशिका
Capitulum	कन्दली
Capitate	शिरोधारी
Capsule	बन्धन कोष
Capsule of kidney	वृक्क कोष
„ of lens	ताल कोष

Caput शिर
Carbohydrates कर्वोदेत
Carbon कर्वन
Cardiac centre हृदय केन्द्र
„ opening of stomach आमाशयका हृदय द्वार
„ portion of stomach आमाशय का मध्यांश
„ sound हृदयका शब्द
Coronary artery हार्दिकी धमनी
Carotid artery शिरो धीया धमनी
Carpals कूर्चास्थि
Cartilage उपास्थि, कार्टिलेज, तरुणास्थि
Caruncula शंकु आकार पिण्ड
Caseus किलाट
Casein किलाटज
Caseinogen किलाटजजनक
Cauda Equina अश्व पुच्छ
Caudate nucleus केत्वाकार पिण्ड
Cavity गर्त
Cell सेल, कोष्ठ
Cellulose सेल्युलोज, छिद्रोज
Cement सीमेंट, संघात, मसाला
Centigrade शतांश
Centimetre शतांशमीटर
Central मध्यस्थ
„ nervous system मध्यस्थ वात मंडल
„ canal of cord सुषुम्ना की नाली
„ sulcus माध्यमिक सीता
Centre केन्द्र
„ of ossifleaion अस्थि विकाशकेन्द्र
Cerebellum लघु मस्तिष्क
Cerebral fossa वृहत् मस्तिष्क खात
„ nerve मास्तिष्क नाड़ी
Cerebrum वृहत् मास्तिष्क
Cervlcal plexus ग्रैवेयी नाड़ी जाल
Cervical artery ग्रैवेयी धमनी
Cervix uteri गर्भाशय की ग्रीवा
Chain of ganglia गंड शृंखला
Chin चिबुक
Chloride हरिद्
Chorion अङ्कुर विशिष्ट आवरण (भ्रूण का)
Chloroform क्लोरोफार्म, हरोपिपील
Cheese किलाट
Chemical रासायनिक
„ composion रासायनिक संगठन
Chyme आहार रस
Ciliary bhdy उपतारानुमण्डल
Cilium सेलांकुर
Circulation of blood रक्त परिक्रमण, रक्त संचार, रक्त परिभ्रमण
„ lymph लसीका संचार
Circumvallate papilla खातवेष्टितांकुर
Citrate नीबूएट
Class श्रेणी
Clavicle , अक्षक, हंसली
Clot छिछड़ा, थक्का
Cluster कूचा
Cocci बिन्द्वाकार कीटाणु
Coccyx गुदास्थि, चंचु, चंचुअस्थि, पुच्छास्ति
Cochlea कोकला
Coition मैथुन
Colon बृहदंत्र
Columnar स्तंभाकार
Common carotid artery मूल शिरोधो वर्तिनी धमनी
„ iliac artery मूल श्रोणिगा धमनी
„ „ vein संयुक्त श्रोणिगा शिरा
Common salt नमक

Composition संगठन, संघट्टन
Compound यौगिक, मुरक्कब, संयोजित
Concave नतोदर
Concha कर्ण कुहर
Condyle of mandible हनुमुण्ड
Conical शंक्वाकार
Contraction संकोच
Connective tissue बन्धकतन्तु
Convolution चक्रांङ्ग
Cor हृदय
Convex उन्नतोदर
Coraco-acromial ligament तुंड कूटिका बंधन
Coracohumeral ligament तुण्ड प्रगंडिका बंधन
Coracoid prccess अंसतुण्ड
Cornea कनीनिका
Corniculate cartilage शंक्वाकारकार्तिलेज
Corp oraquadrigemina चतुष्पिण्ड
Coronary artery हार्दिकी धमनी
Coronoid fossa चंचुखात
,, Process चंचु प्रवर्धन
,, Process ofmandible हनुकुन्त
Corpus गात्र
Corpus callosum महा संयोजक
Corpuscle कण
Corpus albicantes श्वेतांश
Corpus cavernosum urethrae मूत्रदंडिका
Corpus cavernosum penis शिश्न दंडिका
Corpus luteum पीतांग
Corpus mammillarium वृत्त पिंड
Corpus penis शिश्न शरीर
Corpus uteri गर्भाशय का शरीर
Corrugator supercilii भ्रू संकोचनी पेशी
Cortal surface पार्श्वतल
Cortex वल्क
Corti कौरटी (नाम एक वैज्ञानिक का)
Corti's tunnel श्रोत्र सुरंग
Costal border पश्चात् धार
Costal cartilage उपपर्शुका
Covering वेष्ट
Cowper's glands शिश्न मूल ग्रन्थि
Cranium कपाल
Cranial nerve मास्तिष्क नाड़ी
Cream वालाई
Cream शर
Cribriform plate चालनी पटल
Crico thyreoid membrane मुद्रा चुल्लिका कला
Crisra galii शिखर कंटक
Crown दन्त शिखर
Crus cerebri मस्तिष्क स्तंभ, नाड़ी स्तंभ
Cubical घनाकार
Cubic millimetre घन मिलीमीटर, घन सहस्रांश मीटर
Cuboid bone घनास्थि
Cutaneous त्वगीया
Cutis vera चर्म
Cylindrical बेलनाकार
Cisterna chyli लसीका कोष

D

Decidua गर्भकला, पतनशाल गर्भकला
Decimetre दशांश मीटर
Deep cavity उलूखल
Defæcation शौच

Deglutition गिलन
Deltoid muscle अंसाच्छादनी पेशी
Dens दंत प्रवर्धन
Dentine रदिन
Dentition दन्तोद्गम
Dermis चर्म
Descending aorta अधोगामी महाधमनी
Descenating colon ,, बृहत् अंत्र
Destination इष्ट प्रदेश
Dextrose द्राक्षोज, अंगूरी शक्कर
Diaphragm वक्षोदर मध्यस्थ पेशी
Diaphragm muscle वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी
Diapragmotic swrface अधस्तल
Diarrhœa अतिसार
Diarthrodial joint चेष्टावन्त संधि
Diastole प्रसार
Differentiation of structure रचना विभेद, रचना भेद
Digestive canal आहार पथ
Digestive system पोषण संस्थान
Digital artery आंगुलीया धमनी
Diphtheria डिपथीरिया
Disc चक्री
Discus proligerus डिम्बवेष्ट
Dislocation विसंधान, संधिभंग, संधिच्युति
Division of labour श्रम विभाग, कार्य विभाग
Dorsum of hand करभ
Duct प्रणाली
,, , having a प्रणाली सहित
Ductless प्रनाली विहीन
Ductus deferens शुक्र प्रणाली
Duodenal पक्वाशयिकी
,, artery ,, धमनी
Duramater मस्तिष्क का वाह्यावरण

E

Ear कर्ण
Efferent केन्द्रत्यागी
Ejaculatory duct शुक्र स्रोत
Elastic स्थितिस्थापक, लचकीला
Elasticity स्थितिस्थापकता, लचक
Elbow कूर्पर
Elbow joint कफोणि सन्धि
Element तत्व
Eleventh nerve एकादशी नाड़ी
Ellipsoid दीर्घ गोलाभाकार
Embryo गर्भ
Embryology गर्भ विज्ञान
Emotions चित्त वृत्तियां
Emulsion इमलशन
Enamel रुचक, दन्त वेष्ट
Encephalon मस्तिष्क
Energy सामर्थ्य
Eosinophile अम्लरंगेच्छु
,, leucocyte ,, श्वेताणु
Epidermis उपचर्म
Epididymis उपांड
Epiglottis स्वरयंत्रच्छद, कागमुख
Epigastric region कौड़ी प्रदेश
Epigastrium कौड़ी
Equilibriation साम्यस्थिति
Erector penis शिश्न प्रहर्षिणीपेशी
Erythrocyte रक्ताणु
Ethmoid बहुछिद्रास्थि, झर्झरास्थि
Eustachian tube कण्ठकर्ण नाली
Excretion मलत्याग, मलोत्सर्ग, मलोत्सर्जन
Expiration प्रश्वास, बहिः श्वसन
Extensor muscle प्रसारिणी पेशी
External बहि, वाह्य
,, acoustic meatus कर्णांजलि

External auditory meatus कर्णांजली
,, carotid artery बहिः शिरोधीया धमनी
,, ear बाह्य कर्ण
,, illiac artery बाह्य श्रोणिगा धमनी
,, illiac vein ,, ,, शिरा
,, nose बहिर्नासिका
External organs of generation बाह्य जननेन्द्रियां
,, rectus of eye सरल बहिर्नेत्रचालनी
,, surface बहिः पृष्ठ
,, urinary meatus मूत्रबहिर्द्वार
Eye चक्षु, नेत्र, पद
Eye ball अक्षि, गोलक
Eyebrow भ्रू; भव
Eye lash अक्षिपक्ष्मन्, लोम, बरौनी
,, piece चक्षुताल

F

Facet स्थालक
,, for clavicle अक्षके संधिस्थालक
,, for costal cartilage उपपशुकास्थालक
Facial or External maxillary artery मौखिकी धमनी
Facial nerve मौखिकी नाड़ी
Faeces मल, विष्ठा
Fahrenheit फहरनहाइट
Falx cerebelli लघु दात्रिका
Falx cerebri बृहत् दात्रिका
Fascia मांसावरक
Fat वसा
Fatty acid मज्जिकाम्ल
Fatty Fascia वसामय झिल्ली
Female genital organs नारी जननेन्द्रियां
Female pelvis नारी वस्ति गह्वर
Femur ऊर्वास्थि, ऊरु नलक
Fenestra vestibuli कर्णकुटी द्वार
,, cochlea कोकला द्वार
Fertilisation गर्भ स्थिति, गर्भाधान
Fibrin फाइब्रिन
Fibrinogen फाइब्रिनजनक
Fibre सूत्र
Fibre like सूत्राकार
Fibro cartilage सूत्रमय कार्टिलेज
Fibrous सौत्रिक
Fibrous tissue सौत्रिक तन्तु, बन्धक तन्तु
,, ,,made up of सौत्रिक
Fibula अनु जंघास्थि, फिबुला
Filiform papillae सूत्राकारांकुर
First appearance of menstrual discharge रजोदर्शन
Flaccid condition शिथिलतावस्था
Flexed posture संकुचित स्थिति
Flexor digitorum brevis पादांगुली सङ्कोचनी मध्य पर्व्विका पेशी
,, ,, longus पादांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका पेशी
,, profundus हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका पेशी
Flexor muscle नमनी पेशी, संकोचनी पेशी
Floor of fossa गुहा भूमि; खात भूमि
Fold of nates चूतड़
Fontanelle विवर
Food इड़ा, खाद्य
Foot पद, पाद
Foramen magnum महाछिद्र
Foramen rotundum वृत्तछिद्र
Foramen spinosum कोण छिद्र
Forceps चिमटी
Fore arm अग्र बाहु, प्रकोष्ठ

Fore arm bone प्रकोष्ठास्थि, अरत्नि
Forehead मस्तक
Fossa खात
Fracture अस्थि भंग
Freely moveable joint बहु चेष्टावन्त संधि
Frontal air sinus ललाट कोटर
Frontal bone ललाटास्थि
Frcntal pole ललाट ध्रुव
,, sinus ललाट कोटर
Fundus of stomach ऊर्ध्वांश (आमाशयका)
Fundus uteri गर्भाशयका ऊर्ध्वांश
Fungiform papillae छत्रिकांकुर
Funnel फनल, कीप
Furrow परिखा

G

Gastric आमाशयिक
,, artery आमाशयिकी धमनी
Gastric juice आमाशयिक रस
,, region आमाशयिक प्रदेश
Gastric nemius जंघा पिण्डिका पेशी
Gelatine जिलेटीन
Gemelli muscles यमला पेशियां
Genio-hyoid muscle चिबुक कंठिका पेशी
Gland ग्रंथि
Glans penis मणि
Glenoid cavity of scapula अंसपीठ
,, fossa हनुसन्धिस्थालक
Glossopharyngeal nerve जिह्वा कंठनाड़ी
Glossus जिह्वा
Gluten गोधूमज
Glutens minimus नैतम्बिका लघवी
Gluteus medius नैतम्बिका मध्यस्था पेशी
Gluteus maximus नैतम्बिका महती
Gluteus muscle नैतम्बिका पेशी
Gluteal artery नैतम्बिकी धमनी
Glycerine ग्लीसरीन, मधुरिन
Glycogen शर्कराजन, शर्कराजनक, ग्लाइकोजन
Graffiian follicle डिम्बकोष, डिम्बाशय
Gracilis ऊर्वन्तः पार्श्विका पेशी
Gramme ग्राम
Grape sugar अंगूरी शक्कर
Gravitation गुरुत्वाकर्षण
Greater multangular bone वृहत् बहुकोण अस्थि
,, wing वृहत् पत्र
Great omentum अन्त्रच्छदा कला
Groin वंक्षण
Groove परिखा
Groove for nerve नाड़ी परिखा
Groove for venous sinus शिराकुल्या परिखा
Growth वृद्धि क्रम, वर्धन
Gums मसूड़े
Gustatory cell रसज्ञ सेलें या कोष्ठ
Gyrus cinguli उपसंयोजक खण्ड

H

Hair लोम
Hair cells of cochlea लोमश सेलें (कोष्ठ)
Hair follicle लोम कूप
Hæmoglobin कण रञ्जक, रक्तग्लोबिन
Hæmorrhage रक्त क्षरण
Hamate bone वक्रास्थि, फणधर
Hamular process अंकुश
Hand पाणि, हस्त, हाथ
Handle of malleus मुग्दर दंड
Hard palate कठिन तालु
Head शिर
,, of a rib पर्शुका मुण्ड

Heart हृदय
Heat उष्णता
Heel एड़ी
Helix कर्णबाह्य तीर्णिका
Hepatic artery याकृति धमनी
Hilium फुफ्फुसमूल
Hip कूल्हा, नितम्ब
Hip joint वंक्षण सन्धि
Hollow viscus आशय
Horizontal अनुप्रस्थ, समस्थ
,, section क्षितिज कोट
Humerus प्रगंडास्थि, बाहुनलक
Hyaline cartilage सूत्रविहीन कार्टिलेज
Hydrochloric acid उदहरिकाम्ल
Hydrogen उदजन
Hymen योनिच्छद, कुमारिच्छद
Hyoglossus muscle जिह्वा कंठिका पेशी
Hyoid कण्ठिकास्थि
Hypermetropia दूर दृष्टि, दूर दर्शनासामर्थ्य
Hypochondrium यकृत प्रदेश
Hypoglossal nerve जिह्वाधोवर्ती नाड़ी
Hypogastrium कुक्षि
Hypophysis cerebri हाइपोफिसिस पिंड

I

Iliac bone जघनास्थि
,, crest जघन चूड़ा
,, fossa जघन खात
Iliac region श्रोणि प्रदेश
Iliacus श्रोणि पक्षिणी पेशी
Ilium श्रोणि अस्थि
Immovable joint अचल सन्धि, स्थिर सन्धि
Immune रोगाक्षम
Immunity रोगाक्षमता
Impregnation गर्भाधान
Incisor teeth कर्त्तनक दंत, छेदक दन्त
Incus नेहाई, शूर्मिकास्थि
Index finger प्रदेशनी, तर्जनी
Inferior निम्न
,, border अधोधारा
Inferior concha अधः सीपाकृति, अधः शुक्तिका
Inferior extremity निम्नशाखा, अधोशाखा
Inferior labial artery अधोओष्ठ्या धमनी
Inferior lip निम्न ओष्ठ, अधो ओष्ठ
Inferior meatus of nose नासाधः सुरङ्गा
,, mesenteric artery अंत्राधो धमनी
,, obilque muscle of eye वक्राधो नेत्र चालनी
,, rectus of eye सरलाधो नेत्र चालनी
,, Thyreoid artery चुल्लिकाधो धमनी
Inferior mesenteric vein अंत्राधो शिरा
Inferior vena cava निम्न महाशिरा
Inflammation प्रदाह
Infra orbital nerve नेत्राधरीय नाड़ी
Infundibulum वायु मन्दिर
Inner surface अन्तस्तल
Insoluble अनघुल
Inspiration उच्छ्वास, अन्तःश्वसन
Inter-cellular अन्तर तान्तविक
Intercostal artery पर्शुकांतरिका धमनी
Intercostal nerve पर्शुकांतरिका नाड़ी
Internal आभ्यन्तर
Internal acoustic meatus कर्णांतर नाली
,, carotid artery अन्तः शिरोधीया धमनी
Internal coat of eye अन्तरीय पटल
Internal ear अन्तस्थ कर्ण

Internal generative organs अन्तरीय जननेन्द्रियां
„ iliac vein अन्तःश्रोणिगा शिरा
„ mammary artery अन्तःस्तनीया धमनी
Internal secretions of testis ओजस्
Internal oblique of abdomen मध्यउदरच्छदा पेशी
„ rectus of eye सरलांतर्नेत्र चालनी पेशी
Intertubercular plane अबुर्दांतरिक रेखा
Intestine अंत्र
Invarion आक्षेप
Invertase शर्करा परिवर्तक
Invertebrate पृष्ठवंश विहीन
Involuntary muscle अनैच्छिक मांस
Iris उपतारा
Irregular विरूप
Iodine नैलिन्
Ischial tuberosity कुकुंदर पिण्ड
Irritability उत्तेजित्व; उत्तेज्य

J

Jaw हनु
Jugular foramen मन्या विवर
„ notch कण्ठ कूप

K

Kala Azar काला आज़ार
Kidney वृक्क
Kidney shaped वृक्काकार
Knee जानु

L

Labium majus बृहत् भगोष्ठ
Labium minus क्षुद्र भगोष्ठ
Labyrinth गहन
Lacrimal artery आश्रवी धमनी
Lacrimal bone अश्रवास्थि
Lacrimal duct अश्रुस्रोत
Lacrimal gland अश्रुग्रन्थि
Lacrimal sac अश्रुकोष
Lactose दुग्ध की शकर, दुग्धोज
Lamina फलक
„ of vertebra कशेरु पत्रक
Large lymphocyte बृहत् लसीकाणु
Laryngeal ventricle स्वर यंत्र कुटी
Larynx स्वर यंत्र, स्वर नल
Lateral पार्श्विक
„ malleolus बहिर्गुल्फ
„ semi circular duct पार्श्व अर्ध चक्राकार नाली
„ rectus of eye सरल बहिर् नेत्र चालनी
„ wall बहिः प्राचीर
Latissimus dorsi कटि पार्श्व प्रच्छदा पेशी
Lattice work जाफरी
Layer स्तर
Leech जोंक
Leg जंघा
Legumen चणकज
Lens ताल
Lentiform nucleus तालूपमपिण्ड ; तालाकार पिण्ड
Lesser multangular bone क्षुद्र बहु कोण अस्थि
Lethal विनाशशील
Leucocyte श्वेत कण, श्वेताणु, विवरण कण
Levator palpebræ superioris ऊर्ध्व नेत्रच्छ दोत्थापिका पेशी
Levator ani muscle गुदोत्थापिका पेशी
Levator Veli palatini तालूत्थापिका पेशी

Lid　　नेत्रच्छद्
Life　　चैतन्यता, जीवन
Ligament　　बंधनी, संधि बंध, बंधन
Ligamentum lata uteri　　गर्भाशयका पार्श्विक बंधन
„ patellae　　जानवस्थि बन्धन
Light　　प्रकाश
Lingual artery　　रासनिकी धमनी
Liquid　　द्रव ; तरल
Little finger　　कनिष्ठा
Liver　　यकृत
Living　　सजीव, जीवित
Lobe　　पिंड
Lobery　　क्षुद्र पिंड
Lobule of ear　　कर्ण पाली, लौर
Loins　　कटी, कमर, जघन, कटिदेश
Longitudinalis linguæ Inferior　　अधो अन्वायामअध रसनिका
Longitudinalisl inguæ superior　　ऊर्ध्व अन्वायाम रसनिका
Longitudinal inferior sinus　　अधो अन्वयाम शिरा कुल्या
Longitudinal Venous sinus　　अन्वायाय शिरा कुल्या
Lower　　निम्न
Lower jaws　　निम्नहनु
Lubb-dup　　लूबडप
Lumbar　　कटिदेश
Lumbar plexus　　कटि नाड़ी जाल
Lumbar artery　　काटिकी धमनी
Lumbar region　　कटिप्रदेश, कटि, जघन, कोख
„ vertebra　　कटि कशेरुकी
Lumbrical muscle　　कृमिवत पेशी
Lunate bone　　चतुर्थी चन्द्राकार
Lung　　फुफ्फुस
Lying in woman　　प्रसूता
Lymph　　रस, लसीका, लिम्फ
„ corpuscle　　लसीका कण
„ gland　　लसीका ग्रन्थि
Lymphocyte　　लसीकाणु

M

Macula　　पीत बिन्दु
Magnesium phosphate　　मगनीस स्फुरेत
Main pulmonary artery　　मूल फुफ्फुसीया धमनी
Malar bone　　गण्डास्थि, कपोलास्थि
Malar eminence　　गंड कूट
Malarial fever　　मैलेरिया ज्वर
Male generative organs　　नर जननेन्द्रियां
Male pelvis　　नर वस्तिगह्वर
Malleolar artery　　गौल्फी धमनी
Malleus　　मुग्दरास्थि या मुग्दर
Malleolus　　गुल्फ, गट्टा
Maltose　　जौ की शकर, यवोज
Mamma　　स्तन
Mammal　　स्तनधारी
Mammary artery　　स्तनीया नाड़ी
Mammary gland　　दुग्ध ग्रन्थि, दुग्ध जनक ग्रन्थि
Mammillary body　　वृन्ताकार पिण्ड
Mammilla　　स्तन वृन्त
Mandible　　अधो हन्वस्थि,
Masseter muscle　　चर्वण पेशी
Mastication　　चर्वण
Mastoid process　　गोस्तन प्रवर्धन
Maxilla　　उर्ध्व हन्वस्थि
Maxillary artery　　हान्विकी नाड़ी

Meatus बिल, सुरंग
Meatus urinarius internus मूत्रान्तर द्वार
Meatus urinarius externus मूत्र बहिर्द्वार
Medial wall अन्तः प्राचीर
,, epicondyle अन्तरार्बुद
,, mallealus अन्तर्गुल्फ
,, surface मध्य पृष्ठ या मध्यतल
,, rectus of eye सरलान्तर नेत्र चालनी
Mediastenal septum मध्यस्थानिक पर्दा
Medulla oblongata सुषुम्ना शीर्षक
,, spinalis सुषुम्ना
Medium माध्यम
Membrane कला, झिल्ली
Membranous cochlea झिल्ली कृत कोकला
,, labyrinth झिल्लीकृत अन्तस्थकर्ण
Meninges of brain मस्तिष्कके आवरण
Menopanse रजोनिवृत्ति
Menses आर्तव, ऋतु
Menstruating female or woman रजस्वला, ऋतुमती
Mental nerve चिबुक नाड़ी
Mesentery अन्त्र धारककला
Metacarpal bone करभास्थि
Metatarsal bone प्रपादास्थि
Metatarsus प्रपाद
Metazoa बहुसेल युक्त प्राणी
Metre मीटर
Microbes जीवाणु
Microscope अणुवीक्षण, सूक्ष्मदर्शक
Microscopic अणुवीक्षणीय
Midaxillary line कक्षतल मध्यरेखा
Midbrain मध्य मस्तिष्क
Middle coat of eye मध्य पटल
Middle ear मध्य कर्ण
Middle finger or toe मध्यमा
Middle line of body मध्य रेखा
Middle meatus of nose नासा मध्य सुरंगा
,, piece of sternum or neso sternum उरोस्थि का मध्य खण्ड
Millimetre सहस्रांशमीटर
Mineral matter खनिज पदार्थ
Mixing with saliva लार मिश्रण
Mixture मिश्रण
Monster अद्भुत बालक
Modiolus कोकला स्तम्भ
Molar teeth चर्वणक दन्त
Monthly course मासिक स्राव
Morula कलल
Motionless निश्चेष्ट
Motor गति-सम्बन्धी
Motor area गतिक्षेत्र
Motor path गति पथ
Motor nerve गति नाड़ी
Moveable joint चलसंधि
Movement गति
Mucous membrane श्लैष्मिक कला
Multicellular बहुसेल युक्त
Multinucleate बहु मींगी वाली, बहु मींगी युक्त
Multipolar बहु ध्रुव
Muscle मांस, पेशी
Muscular system मांस संस्थान
Muscular tissue मांसतन्तु
Myopia दूर दर्शनासामर्थ्य
Myosin मांसज
Myelin sheath मैदस पिधान

N

Nail — नख
Nape of neck — गुद्दी, मन्या
Nasal fosa — नासा खात
,, bone — नासास्थि
Naso lacrimal duct — अश्रु प्रणाली
Navel — नाभि
Navel cord — नाल
Navicular — नौकाकृति
Neck — ग्रीवा
Neck of tooth — दन्त ग्रीवा
Nerve — नाड़ी, वातनाड़ी, वात रज्जु
Nerve cell — वातसेल, वातकोष्ठ
Nerve fibre — नाड़ी सूत्र
Nerve ganglion — नाड़ी गंड, वात गंड
Nerve plexus — नाड़ी जाल
Nervous system — नाड़ी मंडल, वात मण्डल
Nervous cutaneus colli — ग्रैवेयी त्वगीया नाड़ी
Nervous system — वात मंडल, वात संस्थान
Nervous tissue — वात तन्तु
New born — नवजात
New born baby — नवजात शिशु
Nipple — चूचुक
Nitrogen — नोषजन
Nitrogenous — नोषजनीय
Non-living — निर्जीव
Non lethal — अविनाशशील
Non nitrogenous — अनोषजनीय
Nose — नासिका
Nose, bridge of — नासा वंश, नासा सेतु
Nostrils — नासा रंध्र
Nucleated — मींगीदार
Nucleole — अणु मींगी
Nueleolus — चैतन्य केन्द्र, मींगी
Nucleus of origin — उत्पत्ति केन्द्र, उत्पत्ति स्थान

O

Objective — वस्तु ताल
Oblquus internus abdominis — उदरच्छदा (अन्तरीय)
,, externus — उदरच्छदा (बाह्य)
Obturator foramen — गवाक्ष
Occipital bone — पश्चात् अस्थि
Occipito frontalis (muscle) — शिरच्छादनी पेशी
Oculo-motor nerve — नेत्र चालनी नाड़ी
Ocular muscle — नेत्र पेशी
Odontoid — दंतवत
Œsophagus — अन्न प्रणाली
Olecranon fossa — कूर्परखात
Olecranon process — कपालिका, कूर्पर कूट
Olfactory cell — घ्राण सेल या कोष्ठ
Olfactory centre — घ्राण केन्द्र
,, hair — घ्राणांकुर
,, lobe — घ्राण खंड, घ्राण पिण्ड
Olfactory nerves — घ्राण नाड़ियां
,, organ — घ्राणेन्द्रिय
,, tract — घ्राण पथ
Omohyoid muscle — अंस कण्ठिका पेशी
Opaque — अपारदर्शक
Opening of external acoustic meatus — कर्ण बहिर्द्वार
,, internal etc — कर्णान्तरद्वार
Ophthalmic — चाक्षुष
Opthalmoscope — चक्षु दर्शक यंत्र
Optic commissure — दृष्टि नाड़ी योजिका
,, disc — चक्षु बिम्ब, चाक्षुष बिम्ब
,, foramen — दृष्टि नाड़ी छिद्र
,, groove — ,, ,, परिखा
,, nerve — दृष्टि नाड़ी

Orbicularis oculi नेत्र निमीलनी पेशी
Orbicularis oris मुख संकोचनी पेशी
Orbit अक्षि खात
Orbital plate of frontal नेत्रच्छदि फलक
Organ अंग
Organ of Corti श्रावण यंत्र
,, hearing श्रवणेन्द्रिय
Organ of touch स्पर्शेन्द्रिय
Organic जान्तव
Organic matter सजीव पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ
Os coxae नितम्बास्थि
Os externus of uterus गर्भाशयका बहिर्मुख
Os ischium कुकुन्दरास्थि
Os pubis भगास्थि
Osseous spiral lamina कोकला फलक
Ossification अस्थि विकाश
Osteology अस्थि संस्थान
Outer coat of eye (Sclera) वाह्य पटल
Oval अण्डाकार
Ovary डिम्ब ग्रन्थि
Ovarian artery डिम्बिका धमनी
Oviduct डिम्ब प्रणाली
Ovum डिम्ब, शोणित
Oxidation ओषदीकरण
Oxygen ओषजन
Oxyhæmoglobin ओषित कण रञ्जक

P

Palm करतल, हस्ततल
Palate तालु
Palatine artery तालिवकी धमनी
,, process तालु फलक
Palatine bone तालूषक, तालवस्थि
Palmar artery कारतलिकी धमनी
Pancreas क्लोम
Pancreatic juice क्लोमरस
Papilla lacrimalis अश्रु अंकुर
Papillæ of skin चर्म प्रवर्द्धन
Paralysed वातग्रस्त, पक्षाघात ग्रस्त
Paralysis पक्षाघात
Parietal bone पार्श्विकास्थि (कपालकी)
Parotid gland कर्णाग्रवर्ती लालाग्रन्थि
Parturient canal प्रसव पथ
Parturition प्रसव
Patella पाली, जान्वस्थि
Pectoralis minor muscle उरश्छादनी लघवी
Pectoralis major muscle उरश्छादनी बृहती
Pedicle चक्रमूल
Pelvic floor श्रोणि आधार
,, region वस्ति देश
Pelvis वस्ति गह्वर
Penile portion of urethra शिश्नस्थमूत्र मार्ग
Penis शिश्न, उपस्थ
Pericardial sac हृदय कोष
Pericardium हार्दिक आवरण, हृदय कोष, हृदावरण
Periosteum अस्थि वेष्ठ, अस्थ्यावरण
Peripheral प्रान्तस्थ
Peristaltic movement कृमिवत आकुंचन
Peristalsis ,, ,,
Permanent teeth स्थायी दन्त
Petrous portion अश्म कूट
Phalanges पोवें, पर्व
Pharynx मुखकंठ
Phosphates स्फुरेत

Photograph　छाया चित्र
Photographic apparatus　छाया चित्रण यंत्र
Physical phenomenon　भौतिक घटना
Physiology　इन्द्रिय व्यापार शास्त्र
Physiological cup　बिम्बनाभि
Piamater　मास्तिष्क अन्तावरण
Pinna　कर्ण शष्कुली
Piscidia　मत्स्य श्रेणी
Pisiform　मटराकार
Plague　महामारी
Plantar artery　पादतलिकी धमनी
Plasma　रक्त वारि
Pleura　फुप्फुसावरण, परिफुप्फुसीया कला
Pneumonia　फुप्फुस प्रदाह
Pollex　अंगुष्ठ
Polymorphonuclear leucocyte　बहु रूप मींगी युक्त श्वेताणु
Pomum Adami　चुल्लि कोण
Popliteal artery　जानु पश्चात् धमनी
Porta hepatis　यकृतद्वार
Position　स्थिति
Portal vein　संयुक्ता शिरा
Posterior fontanelle　अधिपति विवर, पश्चात् विवर, अधिपति रन्ध्र
Posterior nare　नासा पश्चिम द्वार
" semicircular canal　पाश्चात्य अर्ध चक्राकार नाली
Posterior tibial artery　जङ्घा पश्चिमगा धमनी
Postero lateral fontanelle　पाश्चात्य पार्श्विक विवर
Postero inferior spine　पश्चिमाधः कूट
Power of resisting disease　रोगनाशक शक्ति, रोगरोधक शक्ति
Pons　सेतु
Premolar teeth　अग्र चर्वणक दन्त
Presentation　उदय
Process　प्रवर्धन, कूट, अर्बुद
Projection　"
Prostate　प्रोस्टेट
Protein　प्रोटीन, प्रत्यमिन
Protoplasm　जीवन मूल, प्रोटोप्लाज्म, कलल रस
Pseudopodium　मिथ्यापाद
Protozoon　आदि प्राणी
Pterygoid process　जतूका चरण
Pubic region　विटप देश
Pubic symphysis　भग संधि, विटप सन्धि
Pudendal plexus　जननेन्द्रिय सम्बधी नाड़ी जाल
Pulse　नाड़ी, नब्ज़, धमनी स्पन्दन या धमनीस्फुरण
Pulmonary artery　फुप्फुसीया धमनी
Pulmonary vein　फुप्फुसीया शिरा
Pulley　घिड़री
Pulp cavity　दंत कोष्ठ
" of tooth　दंत मज्जा
Puncta lacrimalis　अश्रु छिद्र
Pupil　तारा
Pyloric portion of stomach　आमाशय का दक्षिणांश
Pyramidal　सूच्याकार
Pyramidalis abdominis　सूच्याकार उदरच्छदा पेशी
Proximate principle　मूल अवयव
Psychical areas　मानस क्षेत्र

Q

Quadratus labii superioris muscle — ऊर्ध्वोष्ठ गत चतुरस्रा पेशी
Quadratus femoris — ऊरु चतुरस्रा
Quadratus lumborum muscle — कटी चतुरस्रा पेशी
Quadratus muscle — चतुर्भुज पेशी, चतुरस्रा पेशी
Quadratus plantae muscle — पादतलस्थ चतुरस्रा पेशी

R

Race preservation — स्वजाति रक्षा
Radial artery — वहिः प्रकोष्ठिका धमनी
Rami communicantes — सम्बन्धक
Ramus of mandible — हनुकूट
Radius — वहिः प्रकोष्ठास्थि,
Raised line — तीर्णिका
Reaction — प्रतिक्रिया
Reading centre — पाठकेन्द्र
Receptaculum chyli — लसीका कोष
Rectum — मलाशय
Rectus abdominis — उदरस्थ सरल पेशी
Rectus abdominis muscle — उदरच्छादनी सरला
Rectus femoris muscle — ऊरु प्रसारणी सरला
Red blood cell — लाल रक्तकण
Reflex action — परावर्तित क्रिया, प्रत्यावर्तन
Refraction — आवर्जन
Relaxation — विसार, प्रसार
Rennet — रेनेट
Reptilia — सर्पश्रेणी, उरग
Respiratory act — श्वास कर्म
" system — श्वासोच्छ्वाससंस्थान
" centre — श्वासोच्छ्वास केन्द्र
Repoduction ; power of — उत्पादन शक्ति
Reproductivesystem — उत्पादक संस्थान
Representative — प्रतिनिधि
Rib — पर्शुका, पसली
Ring finger — अनामिका
Ring of cricoid — मुद्राचक्र
Roof of fossa — गूहाच्छदि
Root of penis — शिश्न मूल
Root of tooth — दन्तमूल
Rostrum of corpus callosum — महासंयोजक नासा
Rounded — वर्तुल

S

Sac — थैली
Saccharum lactis — दुग्धोज
Saccular — कोष्ठाकार
Sacral plexus — स्कथि नाड़ी जाल, त्रिक नाड़ी जाल
Sacral region — त्रिकदेश
Sacrum — त्रिक अस्थि
Saliva — लाला, लार
Salivary gland — लाला ग्रन्थि
Salt — लवण
Sartorius — दीर्घायामा पेशी
Scala tympani — मध्य कर्ण सम्बन्धी कुल्या
" vestibuli — कर्ण कुटी सम्बन्धी कुल्या
Scalene tubercle — पर्शुका कण्टक
Scapha — कर्ण खात (शष्कुली खात)

Scaphoid	नौकाकृति
Scalp	टटरी
Scapula	स्कंधास्थि, अंसज, अंसफलक
Scrotum	अण्डकोष, वृषण
Scapular region	खवा
Season	ऋतु
Section	पन्ना
Secundines	परिस्रव
Self-preservation	जातिरक्षा
Sense-organ	ज्ञानेन्द्रिय
Semen	शुक्र
Semi circular canals or ducts	अर्धचक्राकार नालियां
Semi lunar	अर्ध चन्द्राकार
Seminal vesicle	शुक्राशय
Semitendinosus	कण्डरा कल्पा पेशी
Sensitive coat (Retina)	साम्वेदनिक पटल
Sensory area	सम्वेदना क्षेत्र
" path	ज्ञानपथ
" nerve	साम्वेदनिक नाड़ी
Serum	रक्त रस
Serumtherapy	सीरमचिकित्सा
Sesamoid	तिलजैसी
Shell	खोल
Shoulder	स्कंध
" blade	अंसफलक,
" joint	स्कंध संधि
Skeleton	ठठरी, अस्थि पंजर, कंकाल
Skin of milk	मलाई
Skin	त्वचा
Skull	खोपड़ी, कर्पर, करोटि

Small intestine	क्षुद्रांत्र
,, lymphocyte	क्षुद्रलसीकाणु
Smegma	शिश्नगूथ
Socket	उलूखल
Sodium choride	सैन्धक हरिद
Soft palate	कोमल तालु
Sole	तला; पादतल
Soluble	घुलनशील
Sound	शब्द
Special sense organ	विशेष ज्ञानेन्द्रिय
Specifc gravity	गुरुत्व
" medicine	अमोघौषध
Spermatozoon	शुक्रकीट
Spermatic cord	अंड धारक रज्जु
,, artery	आंडिकी धमनी
Speech centre	वाणी केन्द्र
Sphenoid bone	जतूकास्थि, तितलिस्वरूपास्थि
Spherical	गोलाकार
Sphincter	संकोचनी पेशी
Sphincter ani muscle	मलद्वार संकोचनी
Sphincter muscle	संकोचनी पेशी
Sphincter vaginae	योनि संकोचनी पेशी
Spider cell	मकड़ी वतसेल
Spinal	सौषुम्न
Spinal canal	कशेरुकी नली
,, cord	सुषुम्ना
,, foramen	सुषुम्ना छिद्र
Spindle shaped	गिल्याकार, तर्काकार
Spine	पृष्ठ वंश, रीढ, कशेरु
" of scapula	अंसप्राचीरक
Spinous process of vertebra	पश्चात् प्रवर्धन, कशेरु कण्टक
Spirillum	कर्षण्याकार कीटाणु
Splanchnic nerves	इड़ा नाड़ी

Spleen प्लीहा
Sponge स्पंज
Sprain बंधन वितान, स्नायु वितान
Squama of temporal bone शंखचक्र
Squint वक्रदृष्टि,
Stapedius muscle कर्णांतरिका पेशी
Stapes रकाब
Stapes bone रकाबास्थि
Starch श्वेतसार, नशास्ता, मांडी
Stellate तारोपम
Stereognostic centra रूप, आकार केन्द्र
Sterno cleido mastoid muscle शिर चालनी पेशी
Sterno cleido mastoid उरः कर्ण मूलिका पेशी
Sternum वक्षोस्थि, उरोस्थि
Stethoscope शब्द परीक्षक यंत्र
Stimulus उत्तेजना
Stomach आमाशय
Straight सरल
Styloid process कीलाकारप्रवर्धन; शिफा प्रवर्धन
" " of radius बहिर्मणिक
Styloid process of ulna अंतर्मणिक
Stylo glossus शिफा रसनिका
Stylo hyoid शिफा कण्ठिका
Succus entricus क्षुद्रांतरीय रस
Sub arachnoid space मध्यावरणाधः प्रदेश
Subclavian artery अक्षकाधो वर्तिनी धमनी
Subdural space बहिरावरणाधः प्रदेश
Sublingual gland जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रंथि
Sub maxillary salivary gland हन्वधोवर्ती लाला ग्रंथि
Sulcus सीता
" lacrimalis अश्रुवाहिका
Sulphate गंधेत
Sulphur गंधक
Superficial temporal artery उपरितन शांखिकी धमनी
Superior ऊर्ध्व
" extremity ऊर्ध्व शाखा
" border ऊर्ध्व धारा
Superior concha शुक्तिका
Superior lip ऊर्ध्व ओष्ठ
" palpebrum ऊर्ध्व नेत्रच्छद
" meatus of nose नासा ऊर्ध्व सुरंग
" mesenteric artery अंत्रोर्ध्व धमनी
" " vein " शिरा
Superior oblique muscle of eye वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी
Superior rectus of eye सरलोर्ध्व नेत्र चालनी
Superior sagittal sinus ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या
Superior semi circular canal ऊर्ध्व अर्धचक्राकार नाली
Superior thyreoid artery चुल्लिका ऊर्ध्व धमनी
Superior vena cava ऊर्ध्व महाशिरा
Supinator muscle करोत्तानिनी पेशी
Supra clavicular nerves उपाक्षिका नाड़ी
" orbital nerve अधिभ्रू नाड़ी
" renal gland उपवृक्क
Surface तल
Suture सेवनी

Sweat	घर्म, स्वेद
Symphysis (pubic)	विटप सन्धि
Synarthrodial articulation	अचल सन्धि, अचेष्ट सन्धि
Synarthrosis	स्थिर सन्धि
Syndesmology	सन्धि संस्थान
Synovia	स्नेह
Synovial membrane	स्नैहिक कला
Syphilis	उपदंश
System	संस्थान

T

Tactile corpuscle	स्पर्श कण
Talus	गुल्फास्थि
Tarsal artery	कोर्च्चों धमनी
Tarsal bones	कूर्चास्थि
,, plate	नेत्र फलक
Taste bud	स्वाद कोष
,, centre	स्वादकेन्द्र
Tears	अश्रु
Teeth	दांत
Temple	कनपटी
Temperature	ताप परिमाण
Temporal bone	शंखक, शंखास्थि
,, lobe	शंख खण्ड
,, pole	शङ्ख ध्रुव
,, region	शङ्खदेश
Temporalis muscle	शङ्खच्छदा पेशी
Tendon	कण्डरा
Tensor veli palatini	तालूत्तांसनी
Tentorium cerebelli	मस्तिष्क वितान
Tertian fever	तैय्या
Testes	शुक्र ग्रंथि
Testicle	अण्ड
Thalamus	थैलेमस
Thermometer	तापमापक यंत्र
Thigh	ऊरु
Thoracic duct	महालसीका वाहिनी
Thoracic nerve	वालसी नाड़ी
Thorax	उरस्, उरः स्थल, वक्षस्थल
Throat	कंठ
Thumb	अंगुष्ठ
Thyreoid gland	चुल्लि ग्रन्थि
Thyreohyoid membrane	चुल्लि कंठिका कला
Thyroid cartilage	चुल्लिकार्टिलेज
,, gland	चुल्लिका ग्रंथि
Tibia	जंघास्थि
Tibialis anterior	जंघा पुरोगा पेशी
Tiny projection	अंकुर
Tissue	तन्तु
Tongue	जिह्वा, रसना, जीभ
Tooth	दांत, दन्त
Toxin	विष
Trachea	टेंटुआ
Tragus	कर्ण वाह्य तीर्थिका
Translucent	अर्ध स्वच्छ
Transparent	पारदर्शक
Transversalis abdominis	अन्तः उदरच्छदा पेशी
Transversalis abdominis	उदरच्छदा (मध्य)
Transverse colon	अनुप्रस्थ वृहत् अंत्र
,, linguæ	व्यत्यस्त रसनिका पेशी
,, process	पार्श्व प्रवर्धन
,, section	व्यत्यस्त काट
Triangularis muscle	त्रिकोण पेशी
Triceps muscle	त्रिशिरस्का पेशी
Trigeminal nerve	त्रिशाखा नाड़ी
Trochanter major	महा शिखरक

Trochanter minor	लघुशिखरक
Trochlear surface of humerus	डमरुक
Trunk	धड़
Tubercle	अर्बुद
Tubular	नल्याकार
Tuberculosis	क्षयरोग
Tunica Vaginalis	अण्डवेष्ट, पर्य्यांडिका
Tympanic membrane	कर्ण पटह
Typhoid	टायफोयड

U

Ulna	अन्तः प्रकोष्ठास्थि
Ulnar artery	अन्तः प्रकोष्ठिका धमनी
Umbilical cord	नाभि नाल
,, region	नाभि प्रदेश
,, vesical	नाभिपुट, अंत्रपुट
Umbilicus	नाभि
Umbo	पटह नाभि
Unciform	फणधर
Unicellular	एक सेल युक्त, एककोष्ठक
Upper	ऊर्ध्व
,, jaw	ऊर्ध्व हनु
,, lip	ऊर्ध्व ओष्ठ
Unit	इकाई
Urea	मूत्रिया
Ureter	मूत्र प्रणाली
Urethra	मूत्र मार्ग
Uric acid	मूत्रिकाम्ल
Urinary bladder	मूत्राशय, वस्ति
,, system	मूत्र वाहक संस्थान
Urine	मूत्र
Uterine artery	गर्भाशयिकी धमनी
Uterus	जरायु, गर्भाशय
Uvula	अलि जिह्वा, कव्वा, शुण्डिका

V

Vacuole	शून्य स्थान
Vagina	योनि
Vaginal artery	यौनी धमनी
,, fornix	योनि कोण
,, opening	योनिद्वार
,, orifice	योनि द्वार
Valve	कपाट
Vasdeferens	शुक्रप्रणाली
Vastus lateralis muscle	ऊरु प्रसारिणी बाह्य (बहिः स्था)
,, medialis muscle	ऊरु प्रसारणी अन्तस्था
Vegetable kingdom	वनस्पति वर्ग
,, protein	वानस्पतिक प्रत्यमिन
Vein	शिरा
Venous sinus	शिरा कुल्या
Ventricle of the heart	क्षेपक कोष्ठ
Venule	शिराक
Vermiform appendix	उपांत्र, अंत्र परिशिष्ट
Vertberal border	वंशानुगा धारा
Vertebra	कशेरुका, मोहरा
Vertebral artery	काशेरुकी धमनी
Vertebral column	कशेरु
,, canal	काशेरुकी नली
Vertebrate	पृष्ठवंशधारी
Vertex	शीर्ष
Vertical	ऊर्ध्व
Vertical plane	ऊर्ध्व रेखा
Vertical linguæ	लम्ब रसनिका
Vestibule of internal ear	कर्ण कुटी
Vibration	उत्कंपन
Villi	ग्राहकांकुर
Vision	दृष्टि
Visual centre	दृष्टि केन्द्र

Vocal cord	स्वररज्जु
Voice	स्वर
Volatile	उड़नशील
Voluntary	ऐच्छिक, इच्छाधीन
Voluntary movement	इच्छाधीन गति
Voluntary muscle	स्वाधीन मांस
Vomer	नासा फलकास्थि
Vulva	भग

W

Whey	तोड़
White matter	श्वेत भाग

Z

Zygomatic bone	कपोलास्थि
Zygomatic nerve	गंडनाड़ी
Zygote	गर्भ सेल

BOTONY

वनस्पति विज्ञान

(विज्ञान १६२६, २६, ५२)

श्री पं० शंकर राव जोशी ने विज्ञान में इस विषय के अनेक लेख प्रकाशित किये थे, जिनके आधार पर आपने एक शब्दावली भी 'विज्ञान' में दी थी। यहाँ हम उसे ही दे रहे हैं।

A

Achene	एक बीजक फल
Acicular	सूच्याकार
Acuminal	शुण्डाकृति
Acuminate	दीर्घ तीक्ष्ण
Acute	तीक्ष्ण शिताग्र
Adnate	नाल लग्न
Adventitious	अनियमित आगन्तुक
Aerial	वायवीय, आकाशी
Aeropetal succession	गोपुच्छाकृति
Aggregate	फल संघ
Alburnum	नवीन काष्ठ
Alternate	एकान्तर क्रम, पर्य्याय क्रम
Amplexicaul	तनासक्त
Androecium	पुंलिङ्ग चक्र, पुष्पेन्द्रिय
Angular	कोणित
Annual	वर्षायु
Anther	रेतकोष,रेतपात्र,वीर्यपात्र
Apocarpous	विषक्त योनि नलिका
Ascending axis	उदक्ष
Assimilation	पाचन क्रिया
Auricled	कर्णिक
Axillary	अक्षकोणीय
" bud	पार्श्वस्थ कलिका
Axis	अक्ष

B

Bact leaf	पुष्पत्र
Base	आधार, वृन्तपाद
Bast	अन्तरछाल
Bell shaped	घण्टिकाकार
Berry	निर्ष्टिल
Biannual	द्विवर्षायु
Bissreate	द्विदन्तुर
Bract	पुट, वृन्तपत्र
Bud	आंख, कलिका
Bulb	कन्द
Bull	पत्र कन्द

C

Caducous	पूर्वपाती
Calyx	पुटचक्र
Cambium	मज्जातन्तु
Campanulate	तुरमाकार
Capillary	केशाकार
Capitulam or head	पुष्प शेखर
Capitulate or head	शीर्षक

Capsule	डोंडा
Carpel	योनि नलिका
Catkin	लम्बित
Cell	कोश, कोष
Cell or chamber in ovary	गर्भाशय कोष्ठ
" sap	कोषरस
" wall	कोष-भित्तिका
Cellulose	तुलीन, छिद्रोज
Chlorine	हरिन्
Chlorophyll	पर्णहरिन्
Cicatrix	नालचिह्न
Ciliated	झालरदार
Climbing	आरोही
Clinging root	श्लेषीजड़
Cladodes	काण्डपत्र, पत्रीभूततना
Coleorhiza	मूलावरण
Conical root	गोपुच्छाकार मूल
Connate	सहजात पत्र
Cordate	ताम्बुलाकार, हृदयाकृति
Corm	वज्रकन्द, ससारकन्द, सगाभकन्द
Corolla	कटोरी, दलपत्र
Corymb	समशिख
Cotyledon	बीजदल, बीजपत्र
Creeping	प्रसर्पी, विसर्पी
Crenate	चापदन्तुर
Crocus	केशर
Cross pollination	परसेचन
Crusiform	चतुश्शूल
Cuuncate	टंकाकार
Cymose, definite	परिमित
Cymose umbel	परिमित छत्रक

D

Deciduous	गलित पत्र
Decurrent	अधोवलम्बी
Decussate	विसम कोणित
Dentate	त्रिदन्तुर
Dichotomus	द्विभक्त शाखाक्रम
Dicotyledon	द्विदल
Dormant bud	सुप्त कलिका
Downy or pubescent	तूलरोमश
Drupe	अस्थिल

E

Eared	कर्णिक
Elliptical	अण्डाकार, उपमण्डलाकृति
Emarginate	नताग्र, मध्यनिम्न
Embryo	गर्भ,
Embryosae	गर्भकोष
Endocarp	अन्तराच्छादन
Endosperm	गर्भ भोज्य
Ensiform	खड्गाकार
Entire blade	पूर्णधार
Epicarp	त्वचा, बाह्याच्छादन
Epiphytes	उपरिजात मूल
Evergreen	सदापत्री
Exagenous	बहिर्जात

F

Falcate	द्राक्षाकार
Falioceous	पात्राकृति
Fibrous root	झाँखरा जड़
Filament	लिंगछत्र
Filiform	सूत्राकृति
Fleshy	गुदाज़, मांसल
Floral leaf	कुसुमायित पत्र
Flower stalk	पुष्पनाल
Foliage leaf	प्रामाणिक पत्र
Follicle	एक-स्फोटी

Food material	अन्नरस
Fusiform root	मूलकाकार मूल
	G
Germ	बीजमूल
Glabrous	चिकना, मसृण
Glan	पूंगीफल
Glucose	द्राक्षशर्करा
Gynaecium	स्त्रीलिंगचक्र
	H
Hair	रोम
Hairy	रोमश
Hastate	फलाकृति
Helicoid cyme	अन्तरवक्राक्ष
Herb	ओषधि, तृण
Herbaceous plant	मृदु पौधे, हरितक पौधे
Hermaphrodite	उभयलिंगी, उभयेन्द्रिय
Hilum	काला धब्बा
Hirsute	तृण लोमश
Hisaid	कंटकित रोमश
Horizontal	दिगन्तसम
Host	पालक
	I
Inferior	अधोवर्ती
Inflorescence	पुष्प संगठन, पुष्प व्यूह, पुष्प रचना
Inherited	पुश्तैनी
Inorganic	अकार्बनिक
Internode	पर्व
Involucre	चक्रित
	L
Labiate	लम्बोष्ठ
Lamina	पत्रदल, फलक
Lanceolate	भालाकार, शल्याकृति
Latent bud	विलीन कलिका
Lateral branching	पार्श्वशाखाक्रम
Leaf blade	पत्रदल, फलक
Leaf climber	पत्रारोही
Leaflet	पत्रक
Legume	उभयस्फोटी
Ligule	पट्टाकृति, पृष्ठज
Limb	मुख
Linear	रेखाकार
Line of insertion	संयोगरेखा
Lobe	कर्ण, विच्छेद
	M
Margin	धार, बाह्यप्रान्त
Mesocarp	मध्याच्छादन
Microphyle	गर्भद्वार
Monocotyledon	एक पत्रक, एक दल
Monopodial	अपरिमित
Mucronate	कशेरुकाग्र, कुण्ठित कलम,
	N
Napiform root	शलजमाकार मूल
Negtaries	मधुकोष
Nitrate	नोषेत
Node	गांठ, ग्रन्थि
Nut	पूंगीफल
Nutritive	पोषक
	O
Obcardate	व्यस्त हृदयाकृति
Oblanceolate	व्यस्त शल्याकृति
Obliqually	तिरछी
Oblong	आयताकार
Obovate	व्यस्त लट्वाकार
Obtuse	कुण्ठित
Off-set	लघुमूलनी
Opposite leaf	अभिमुख पत्र
Organ	अवयव
Organic	जैव (कार्बनिक)
Organised food	आहार रस

Ovary	गर्भाशय
Ovate	लट्वाकार
Ovule	कलल, रजबिन्दु, रजोबिन्दु

P

Palmate	करतलाकृति
Palmati partrite	करतल कटाव
Panicle	संयुक्त सदरिडक
Parallel	समानान्तर
Parasite	परोपजीवी
Paripinnate	युग्मपत्ताकार
Pedicel	पुष्पदरिडका, पुष्प-वृन्तिका
Peduncle	पुष्पनाल, पुष्पाक्ष
Peliolate	सनालपत्र, सवृन्तपत्र
Peltate	असित्राणाकार, लघु सूक्ष्मनाल
Perennial	बहु वर्षायु
Perfoliate	परिकांड
Pericarp	छिलका
Personate	पिहित गल
Petal	दल
Petiole	यंत्रनाल, वृन्त
Phosphate	स्फुरेत
Phylotaxis	पत्रसंगठन, पत्रावलि
Pinnate	पत्ताकृति, पिच्छाकृति
Pinnatifid	पिच्छाकार कटाव
Pistil	गर्भकेसर, स्त्रीकेसर
Pith	हीर भाग
Placenta	गर्भ झिल्ली
Plumule	प्रारम्भिक तना
Pod	फली
Pome	पोम
Prefoliation	वेष्ठन
Primary bud	प्रारम्भिक कलिका
„ root	मुख्य जड़
Prostrate	विनस्र (प्र)
Protoplasm	जीवनमूल, जीवनरस, कललरस
Pubescent	तूलरोमश

R

Raceme	गोस्तनी
Racemose	अपरिमित
Rachis	कशेरुका, पुष्पदण्ड
Radicle	प्रारम्भिकमूल
Receme	सदरिडक
Receptacle	स्तंभक
Reniform	वृक्काकृति
Respiration	श्वासोच्छ्वास क्रिया
Resting bud	विरतकलिका
Reticulate venation	जाल नाड़ी क्रम, शिराजाल
Rhizome	अधोविरोही तना, मूलस्कंध
Ridged	नसदार
Root hair	मूलरोम
Rosette	पत्रगुच्छक
Rotate	चक्राकार
Runner	सम्मूलनी शाखा

S

Saccate	तुन्दिल
Sagittate	बाण मुखाकृति
Sagment	कर्ण, विच्छेद
Scale leaf	वल्कपत्र
Scally	वल्की
Scape	पुष्पपेड़ी, पुष्पध्वज
Scar	काला धब्बा
Scorpoid cyme	तिर्यगक्ष
Secondary root	गौणमूल
Selfpollination	आत्मसेचन
Sensitive	स्पर्शशील
Sensitive organ	अनुभवशील अंग
Sepal	पुटपत्र

Serrate	सदन्तुर
Sessile	विनाल
„ leaf	अवृन्त पत्र
Sheath	कोष
Shoot	प्रांकुर
Shrub	झाड़ी, स्तंब
Siliqua	बिन्दुस्फोटी
Sinuous	लहरी
Solitary	एकाकी
Spadix	विदण्डिक
Spathulate	चमसाकार
Sperm	जीवाणु
Spike	कार्णश
Spines	कांटे, शूल
Spiny	सकंटक
Stamen	पुंकेसर
Starch	मंड, मांडी, नशास्ता
Stigma	योनिछत्र, रजपात्र, रजकोष
Stimulas	उत्तेजना
Stipulate	पुंखपत्री
Stipule	पुंखपत्र, वृन्तानुबंध
Stolon	मूलनी
Stomata	पत्ररन्ध्र
Stone	गुठली
Style	योनिसूत्र
Subulate	सूचकाकार
Sucker	अधोमूलनी
Sulphate	गन्धेत
Superficial tissue	बाह्यतन्तु
Superior	उच्चवर्त्ती, उच्चस्थानीय

T

Taproot	मूसलाजड़
Tendril	प्रतान
„ climber	सूत्रारोही
Terminal bud	अन्तिम कलिका
Tertiary root	सहायक जड़
Testa	बाह्यावरण
Texture	वयन
Thalamus	स्तंभक
Throat	गला
Tomentose	ग्रथित तूल
Transpiration	वाष्पीभवन, स्वेदन क्रिया
Trichomes	रोम
Tube	नलिका
Tuber	कन्दल, ग्रन्थिकन्द
Tubular	कन्दलसम, नलिकाकार
Tunicated bulb	मांसल वल्कीकंद

U

Umbel	छत्रक दंडी
Underground stem	भौमिकतना
Unisexual	एक लिंगी

V

Vagina	सम्पुट
Venation	नाड़ी
Ventral suture	जोड़ रेखा
Vernation	वेष्ठन
Verticillate	वर्तुल

W

Whorl	घूर्ण, चक्र, विवर्तुल
Woody	कठीला
Wooly	ऊर्णायित

ELEMENTS (तत्व)

(विज्ञान १६२६, २२, १६)

श्रीरामचन्द्र भार्गव तथा सत्यप्रकाश द्वारा प्रकाशित लेखके आधार पर।

A

Aluminium	स्फटम्, स्फ
Antimony	आंजनम्, आ
Argon	आलसीम, ल
Arsenic	संक्षीणम्, क्ष

B

Barium	भारम्, भ
Berrylium	वेरीलम्, वे
Bismuth	विशदम्, वि
Boron	टंकम्, ट
Bromine	अरुणिन्, रु

C

Cadmium	सन्दस्तम्, सं
Caesium	व्योमम्
Calcium	खटिकम्, ख
Carbon	कर्वन, क
Cerium	सृजकम्, सृ
Chlorine	हरिन्, ह
Chromium	रागम्, रा
Cobalt	कोवल्टम्, को
Columbium	कौलम्बम्, कौ
Copper	ताम्रम्, ता

D

Dysprosium	दारुणम्, दा

E

Erbium	एरबम्, ए
Europium	यूरोपम्, यू

F

Fluorine	प्लविन्, प्ल

G

Gadolinium	गन्दलनम्, गं
Gallium	गालम्, गा
Germanium	जर्मनम्, ज
Gold	स्वर्णम्, स्व

H

Hafnium	हेफनम्, हे
Helium	हिमजन, हि
Holmium	उद्जन, उ
Hydrogen	हौलमम्, हौ

I

Indium	नीलम्, नी
Iodine	नैलिन्, नै
Iridium	इन्द्रम्, इ
Iron	लोहम्,

K

Krypton	गुप्तम्, गु

L

Lanthanum	लीनम्, ली
Lead	सीसम्, सी
Lithium	शोणम्, शो
Lutecium	लुटेशम्, लु

M

Magnesium	मगनीसम्, म
Manganese	मांगनीज, मां
Masurium	मैसूरम्
Mercury	पारदम्
Molybdenum	सुनागम्, सु

N

Neodymium	नौलीनम्, नौ
Neon	नूतन, नू
Nickel	नकलम्, न
Nitrogen	नोषजन, नो

O

Osmium	वासम्, वा
Oxygen	ओषजन, ओ

P

Palladium	पैलादम्, पै
Phosphorous	स्फुर, स्फु
Platinum	परौप्यम्, प
Polonium	पोलोनम्, पो
Potassium	पांशुजम्, पां
Praseodymium	पलाशलीनम्, श्ल

R

Radium	रश्मिम्, र
Rhenium	रैनम्, रै
Rhodium	ओड्रम्, ड्र
Rubidium	लालम्, ला
Ruthenium	रुथेनम्, थे

S

Samarium	सामरम्, सा
Scandium	स्कन्दम्, स्क
Selenium	शशिम्, श
Silicon	शैलम्, शै
Silver	रजतम्, र
Sodium	सैन्धकम्, सै
Strontium	स्रंशम्, स्त
Sulphur	गन्धक, ग

T

Tantalum	तन्तालम्, त
Tellurium	थलम्, थ
Terbium	टेरबम्, टे
Thallium	थैलम्, थै
Thorium	थोरम्, थो
Thulium	थूलम्, थू
Tin	वंगम्, व
Titanium	टिटेनम्, टि
Tungsten	वुल्फ्रामम्, वु

U

Uranium	पिनाकम्, पि

V

Vanadium	बलदम्, ब

X

Xenon	अन्यजन, अ

Y

Ytterbium	यित्रम्; यि
Yttrium	यीत्रवम्, यी

Z

Zinc	दस्तम्, द
Zirconium	जिरकुनम्, जि

अकार्बनिक रसायन
INORGANIC CHEMISTRY

यह शब्दावली मेरी लिखी हुई 'साधारण रसायन' नामक पुस्तकके आधार पर दी जाती है।

A

Acid	अम्ल
Acidic	आम्लिक, अम्लीय
Active valency	क्रियाशील संयोगशक्ति
Alcohol	मद्य
Alkali	क्षार
Alkaline	क्षारीय
Allotropy	बहुरूपी
Alumina	स्फटक्षार, स्फटौषिद
Aluminate	स्फटेत
Alum	फिटकरी
Ammine	अमिन
Ammonia	अमोनिया
Ammoniacal	अमोनित
Ammonium	अमोनियम
Amphoteric	द्वयरूपी
Anhydride	अनार्द्रिद
Antimonic	आञ्जनिक
Antimonious	आञ्जनस

Antimonyl	आञ्जनील
Arseni-molybdic ac-	संक्षीण-सुनागिकाम्ल
Arenious	संक्षीणस
Arsenite	संक्षीणित
Arsine	संक्षीणिन्
Atmosphere	वायुमण्डल
Atom	परमाणु
Atomic weight	परमाणुभार
Aurate	स्वर्णेत
Aurichloric	स्वर्णीहरिक
Aurichloride	स्वार्णीहरिद्
Auric	स्वार्णिक
Auricyanide	स्वर्णीश्यामिद्
Aurocyanide	स्वर्णोश्यामिद्
Aurous	स्वर्णस
Auryl	स्वर्णील
Azoimide	अजीव-इमिद्

B

Bases	क्षार
Basic	क्षारिक
Bismuthic	विशदिक
Bismuthous	विशदस
Bismuthyl	विशदील
Borate	टंकेत
Borax	सुहागा
Boric acid	टंकिकाम्ल
Bromate	अरुणेत
Bromic acid	अरुणिकाम्ल

C

Carbonate	कर्बनेत
Carbonic acid	कर्बनिकाम्ल
Carbonyl	कर्बनील
Ceric	सृजकिक
Cerous	सृजकस
Chemical change	रासायनिक परिवर्तन
Chloranhydride	हरानाद्रिद
Chlorate	हरेत
Chloraurate	हर-स्वर्णेत
Chloric	हरिक
Chloride	हरिद्
Chlorite	हरित
Chloroplatinate	हरोपररौप्येत
Chlorous	हरस
Chromate	रागेत
Chromic	रागिक
Chromous	रागस
Chromyl	रागील
Classification	विभाग
Croceo cobaltic	केशर कोबल्टिक
Cuprammonium	ताम्रामोनियम
Cupric	ताम्रिक
Cuprocyanide	ताम्रोश्यामिद्
Cuprous	ताम्रस
Cyanamide	श्यामेमिद्
Cyanide	श्यामिद्

D

Definite proportion	निश्चित अनुपात
Density	घनत्व
Di-	द्वि-
Dichromate	द्विरागेत
Dissociation	विश्लेषण
Disulphide	द्विगन्धिद्
Dithionic acid	द्विगन्धकीनिकाम्ल
Double bond	द्विगुण बन्ध
Double salts	द्विगुण लवण

E

Eka	एक
Electro—	विद्युत्-
Element	तत्व
Emanations	उत्पत्तियाँ

F

Ferrate	लोहेत
Ferric	लोहिक
Ferricyanide	लोहीश्यामिद्
Ferrite	लोहित
Ferrocyanide	लोहोश्यामिद्
Ferrous	लोहस
Fluoride	प्लविद्
Fluoroplumbate	प्लवसीसेत
Fulminating gold	विस्फुटक स्वर्ण
Fusible	गलनशील

G

Gases	वायव्य, गैस
Graphite	लेखनिक
Green vitriol	हरा कसीस
Groups	समूह

H

Halanhydride	लवणानाद्रिद
Halide	लवणिद्
Halogen	लवणजन
Heat	ताप
Hydracid	उदाम्ल
Hydrazine	उदाजीविन
Hydrazoic	उदाजीविक
Hydride	उदिद्
Hydro-	उद्-
Hydro-chloric	उदहरिकाम्ल
" fluoric	उदप्लविकाम्ल
" bromic	उद् अरुणिकाम्ल
" iodic	उदनैलिकाम्ल
Hydrolysis	उद् विश्लेषण
Hydroxide	उदौषिद्
Hydroxylamine	उदौषिलामिन
Hypo	हाइपो
Hypobromous	उप अरुणस
Hypochlorite	उपहरित
Hypochlorous	उपहरस
Hypoiodous	उपनैलस
Hyponitrite	उपनोषित
Hyponitrous	उपनोषस
Hypophosphorous	उपस्फुरस
Hypovanadic	उपवलदिक

I

Iodate	नैलेत
Iodic	नैलिक
Iodo-	नैलो-
Iodoso	नैलोसो
Ionization	यापन
Ions	यवन
Isomeric	समरूपिक
Isomorphism	समरूपता

L

Lakes	झील
Latent	गुप्त
Law	नियम, सिद्धान्त
Luteocobaltic	पीतकोबल्टिक

M

Magnetic	चुम्बकी
Malleable	घनवर्धनीय
Manganate	मांगनेत
Manganic	मांगनिक
Manganite	मांगनित
Mangano-	मांगनो-
Manganous	मांगनस
Matter	मात्रा
Mercuric	पारदिक
Mercurous	पारदस
Meta	मध्य
Metaboric	मध्यटंकिक
Metal	धातु

Metallic	धात्विक
Method	विधि
Microcosmic	माइक्रोकास्मिक
Mineral	खनिज
Mineral acid	खनिजाम्ल
Mixed	मिश्रित
Mixture	मिश्रण
Molecular	आणविक
Molecular weight	अणुभार
Molecule	अणु
Molybdate	सुनागेत
Molybdic	सुनागिक
Mono—	एक—
Monoxide	एकौषिद्
Multiple proportion	गुणक अनुपात

N

Nascent hydrogen	नवजात उद्जन
Neutral	शिथिल
Nickelic	नकलिक
Nickelous	नकलस
Nitramide	नोषामिद्
Nitrate	नोषेत
Nitric	नोषिक
Nitro-	नोषो—
Nitroprusside	नोषो प्रूशिद
Nitrosyl	नोषसील
Nitrous	नोषस
Nitryl	नोषील
Normal	सामान्य

O

Octave law	सप्तक सिद्धान्त
Ortho-acid	पूर्व-अम्ल
Ortho	पूर्व
Osmate	वासेत
Oxidation	ओषदीकरण
Oxide	ओषिद्
Oxidizing agent	ओषद्कारक रस
Oxime	ओषिम
Oxonium	ओषोनियम
Oxy—	ओषी-

P

Para—	पर—
Penta—	पंच—
Peracid	पराम्ल
Per-salt	पर-लवण
Perchromate	पर-रागेत
Periodate	परनैलेत
Periodic classification	आवर्त्तसंविभाग
Permanganate	परमांगनेत
Permanganic	परमांगनिक
Peroxide	परौषिद्
Persulphate	परगन्धेत
Phosgene	फोसजीन
Phosphate	स्फुरेत
Phosphine	स्फुरिन
Phosphonium	स्फुरोनियम
Phosphoric	स्फुरिक
Phosphorous	स्फुरस
Phosphoryl	स्फुरील
Phosphotungstic	स्फुरो-वुल्फ्रामिक
Physical	भौतिक
Platinate	परौप्येत
Platinic	परौप्यिक
Platinochloride	परौप्योहरिद्
Platinichloride	परौप्यीहरिद्
Platinous	परौप्यस
Plumbite	सीसित
Poly—	बहु—
Polybasic	बहुभस्मिक

Polymerised	संघट्टित
Potential	अवस्था
Pseudo—	मिथ्या
Purpureocobaltic	लालकोबल्टिक
Pyro—	उष्म—
Pyrophosphate	उष्मस्फुरेत—

Q

Qualitative	गुणात्मक
Quantitative	परिमाणात्मक

R

Radioactive	रश्मिशाक्तिक
Radioactivity	रश्मि शक्तित्व
Radio—	रेडियो
Rare-earth	दुष्प्राप्य पार्थिव
Rays	किरण, रश्मि
Reaction	प्रक्रिया
Reciprocal	व्युत्क्रम
Reducing agent	अवकारक रस
Reduction	अवकरण
Reversible reaction	विपर्ययित प्रक्रिया
Rhodic	ओड्रिक
Roseocobaltic	गुलाबीकोबल्टिक
Ruthenate	रुथेनेत

S

Saturated	संपृक्त
Selenate	शशेत
Selenic	शशिक
Selenious	शशास—
Selenonium	शशोनियम
Self-oxidation	स्व-ओषदीकरण
Separation	पृथक्करण
Silicane	शैलेन
Silicate	शैलेत
Silici—	शैलि—
Silicic	शैलिक
Silico—	शैलिको
Simultaneous	सह—
Sodamide	सैन्धकामिद्
Solubility	घुलनशीलता
Solution	घोल
Specific heat	गुप्तताप
Spectrum	किरण-चित्र
Stannic	वंगिक
Stannous	वंगस
Stannyl	वंगील
Stereochemistry	अवकाश रसायन
Stibine	आञ्जनिन
Sub—	उप
Subchloride	उपहरिद्
Subgroup	उपसमूह
Sulphate	गन्धेत
Sulphide	गन्धिद्
Sulphinic	गन्धिनिक
Sulphite	गन्धित
Sulpho—	गन्धेत—
Sulphonated	गन्धोनेतित
Sulphonic	गन्धोनिक
Sulphonium	गन्धोनियम
Sulphoxide	गन्धोषिद्
Sulphuric acid	गन्धकाम्ल
Sulphurous aind	गन्धसाम्ल
Sulphuryl	गन्धर्कील
Superoxide	अत्योषिद्

T

Tantalifluoride	तन्तालिप्लविद्
Tautomeric	चलरूपता
Tellurate	थलेत
Telluric acid	थलिकाम्ल
Tellurious acid	थलसाम्ल
Tetra—	चतुर—

Tetroxide चतुरोषिद्
Tetrahedron चतुष्फलक
Thallic थैलिक
Thallous थैलस
Thermal ताप
Thio— गन्धकी-
Thiocarbonate गन्धकीकर्बनेत
Thionic गन्धकीनिक
Thionyl गन्धकीनील
Thiosulphate गन्धकी गन्धेत
Titanate टिटेनेत
Titannic टिटेनिक
Titanifluoride टिटेनीप्लाविद
Titanous टिटेनस
Titano— टिटेनो—
Transitional group संयोजक समूह
Tri— त्रि—
Trivalent त्रिशक्तिक
Tungstic वुल्फ्रामिक

U

Unipolar एक ध्रवी
Unit इकाई
Unsaturated असम्पृक्त
Uranate पिनाकेत
Uranic पिनाकिक
Uranous पिनाकस
Uranyl पिनाकील

V

Valency संयोगशक्ति
Vanadate बलदेत
Vanadic बलदिक
Vanaditungstic बलदी वुल्फ्रामिक
Vanadius बलदस
Vanadyl बलदील
Vapour density वाष्पघनत्व
Volume आयतन
Water जल
Xanthocobaltic पलाशकोबल्टिक
Zincate दस्तेत
Zirconate ज़िरकुनेत
Zirconifluoride ज़िरकुनी-प्लविद

भौतिक रसायन

(विज्ञान १९२९, ३०, १७)

PHYSICAL CHEMISTRY

मैंने इस विषयकी एक शब्दावली प्रकाशितकी थी जिसका आंशिक उपयोग विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक परिमाण नामक ग्रन्थमें किया जा चुका है।

A

Abnormality असामान्यता
Absolute निरपेक्ष
Absorption शोषण
Acclimatisation सहनशीलता, क्षमता
Actinometer किरण क्रिया मापक
Active deposit सचेष्ठ या क्रियाशील प्रक्षेप
Active mass क्रिया शील मात्रा
Activity क्रियाशीलता
Accumulator परवर्त्तीय बाटरी
Additivity योग शीलता
Adiabatic expansion अतापन प्रसार
Adsorption अधिशोषण
Affinity स्नेह
After-effect अनु-प्रभाव
Alcogel मद्यिक जेली
Alcosol मद्योपघोल
Allotropy बहु रूपता
Alloy धातुसंकर

Alpha particle	एल्फाकण
Alternating current	उलटी सीधी धारा
Amalgam	पारद-मेल (मिश्रण)
Ammeter	धारामापक, एम्प-मापक
Amorphous	अमणिभ, बेरवा
Ampere	एम्पीयर
Amphoteric	द्वयरूपी
Analysis	परीक्षा, विश्लेषण
Angular	कोणीय
Anisotropic	सोंफोल रूपी (विषमदिग्)
Anode	धनोद्
Antagonism	प्रतिरोधता
Approximation	सन्निकटी करण
Arc spectra	चाप-किरण चित्र
Artificial light	कृत्रिम प्रकाश
Associated liquids	सहवर्ती द्रव
Association	सहवर्तन
Atom	परमाणु
Attraction	आकर्षण
Autocatalysis	स्वोत्प्रेरण
Average life	औसत जीवन
Axial	अक्षीय
Axis	अक्ष
zimuthal quantum N0.	दिगंशीय क्वाण्टम संख्या (तन्मात्रिक संख्या)

B

Bases	क्षार
Beta	बीटा
Bimetallic	अर्धधातविक
Bimolecular	द्वयणुक
Binary alloy	द्वयांशी धातुसंकर
Bi-refringence	अर्धावर्जनीयता
Boiling point	क्वथनांक
Bolometer	विकिरण-मापक
Boundary	सीमा, सतह
Bridge	सेतु
Bubble	बुलबुला
Buffer solutions	तुलनात्मकघोल

C

C_p/C_v	$\text{ता}_{\text{द}}/\text{ता}_{\text{आ}}$
Cadmium cell	संद्स्तम् बाटरी
Calculation	गणना
Calomel electrode	केलोमल बिजलोद्
Calorie	कलारी
Caloriemeter	कलारी मापक
Calorimetry	कलारी मापन
Capillary	सूचिका
Carnot cycle	कार्नो चक्र
Catalysis	उत्प्रेरण
Catalyst	उत्प्रेरक
Cataphoresis	ध्रुवागमन
Cathode	ऋणोद्
Cell	बाटरी
Centrifuge	मथना
Chain reactions	शृंखला-बद्ध प्रक्रियायें
Characteristic	विशेष, मुख्य
Charge	सञ्चार आवेश
Chemical	रासायनिक
Classical	प्राचीन
Closed solubility curve	घुलनशीलता सूचक बन्द वक्र
Cloud formation	बादल बनना
Coagulation	अधःक्षेपण
Cohesion	संसक्ति
Colligative	सम्बन्धी गुण
Collision	समाघात, संघर्षण
Colloid	कलोद्
Colour	रंग

Tetroxide	चतुरोषिद्
Tetrahedron	चतुष्फलक
Thallic	थैलिक
Thallous	थैलस
Thermal	ताप
Thio—	गन्धकी-
Thiocarbonate	गन्धकीकर्बनेत
Thionic	गन्धकीनिक
Thionyl	गन्धकीनील
Thiosulphate	गन्धकी गन्धेत
Titanate	टिटेनेत
Titannic	टिटेनिक
Titanifluoride	टिटेनीप्लाविद्
Titanous	टिटेनस
Titano—	टिटेनो—
Transitional group	संयोजक समूह
Tri—	त्रि—
Trivalent	त्रिशक्तिक
Tungstic	वुल्फ्रामिक

U

Unipolar	एक ध्रवी
Unit	इकाई
Unsaturated	असम्पृक्त
Uranate	पिनाकेत
Uranic	पिनाकिक
Uranous	पिनाकस
Uranyl	पिनाकील

V

Valency	संयोगशक्ति
Vanadate	बलदेत
Vanadic	बलदिक
Vanaditungstic	बलदी वुल्फ्रामिक
Vanadius	बलदस
Vanadyl	बलदील
Vapour density	वाष्पघनत्व
Volume	आयतन
Water	जल
Xanthocobaltic	पलाशकोबल्टिक
Zincate	दस्तेत
Zirconate	जिरकुनेत
Zirconifluoride	जिरकुनी-प्लविद

भौतिक रसायन

(विज्ञान १९२९, ३०, १७)

PHYSICAL CHEMISTRY

मैंने इस विषयकी एक शब्दावली प्रकाशितकी थी जिसका आंशिक उपयोग विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक परिमाण नामक ग्रन्थमें किया जा चुका है।

A

Abnormality	असामान्यता
Absolute	निरपेक्ष
Absorption	शोषण
Acclimatisation	सहनशीलता, क्षमता
Actinometer	किरण क्रिया मापक
Active deposit	सचेष्ठ या क्रियाशील प्रक्षेप
Active mass	क्रिया शील मात्रा
Activity	क्रियाशीलता
Accumulator	परवर्त्तीय बाटरी
Additivity	योग शीलता
Adiabatic expansion	अतापन प्रसार
Adsorption	अधिशोषण
Affinity	स्नेह
After-effect	अनु-प्रभाव
Alcogel	मद्यिक जेली
Alcosol	मद्योपघोल
Allotropy	बहु रूपता
Alloy	धातुसंकर

Alpha particle — एल्फाकण
Alternating current — उलटी सीधी धारा
Amalgam — पारद-मेल (मिश्रण)
Ammeter — धारामापक, एम्प-मापक
Amorphous — अमणिभ, बेरवा
Ampere — एम्पीयर
Amphoteric — द्वयरूपी
Analysis — परीक्षा, विश्लेषण
Angular — कोणीय
Anisotropic — सोंफोल रूपी (विषमदिग्)
Anode — धनोद्
Antagonism — प्रतिरोधता
Approximation — सन्निकटी करण
Arc spectra — चाप-किरण चित्र
Artificial light — कृत्रिम प्रकाश
Associated liquids — सहवर्ती द्रव
Association — सहवर्तन
Atom — परमाणु
Attraction — आकर्षण
Autocatalysis — स्वोत्प्रेरण
Average life — औसत जीवन
Axial — अक्षीय
Axis — अक्ष
zimuthal quantum NO. — दिगंशीय क्वाण्टम संख्या (तन्मात्रिक संख्या)

B

Bases — क्षार
Beta — बीटा
Bimetallic — अर्धधातविक
Bimolecular — द्वयणुक
Binary alloy — द्वयांशी धातुसंकर
Bi-refringence — अर्धावर्जनीयता
Boiling point — क्वथनांक
Bolometer — विकिरण-मापक
Boundary — सीमा, सतह
Bridge — सेतु
Bubble — बुलबुला
Buffer solutions — तुलनात्मकघोल

C

C_p/C_v — $ता_द/ता_आ$
Cadmium cell — संद्स्तम् बाटरी
Calculation — गणना
Calomel electrode — केलोमल बिजलोद्
Calorie — कलारी
Caloriemeter — कलारी मापक
Calorimetry — कलारी मापन
Capillary — सूचिका
Carnot cycle — कार्नो चक्र
Catalysis — उत्प्रेरण
Catalyst — उत्प्रेरक
Cataphoresis — ध्रुवागमन
Cathode — ऋणोद्
Cell — बाटरी
Centrifuge — मथना
Chain reactions — शृंखला-बद्ध प्रक्रियायें
Characteristic — विशेष, मुख्य
Charge — सञ्चार आवेश
Chemical — रासायनिक
Classical — प्राचीन
Closed solubility curve — घुलनशीलता सूचक बन्द वक्र
Cloud formation — बादल बनना
Coagulation — अधःक्षेपण
Cohesion — संसक्ति
Colligative — सम्बन्धी गुण
Collision — समाघात, संघर्षण
Colloid — कलोद्
Colour — रंग

Combination संयोग
Combustion जलना
Common समान
Complete पूर्ण
Complex formation संकीर्ण-रचना
Complex-ion संकीर्ण-यवन
Component अवयव
Composition सङ्गठन
Compound यौगिक
Compressed संकुचित
Compressibility सङ्कोचनीयता
Compression सङ्कोचन
Concentration समाहरण, गाढ़ापन, शक्ति
Condensation सलिलीकरण, द्रवीकरण, संयोग, लिप्तीकरण
Condensed systems संयुद्धपद्धति
Conductance चालकता
Coducting power चालन-बल
Conduction चालन
Conductivity चालकता
Conductors चालक
Conglomeration उपचयन
Congruent mt. pt. सम्बद्ध द्रवांक
Conjugate आबद्ध
Consecutive क्रमागत
Conservation of energy सामर्थ्य की अविनाशता, नाशता
Constancy स्थिरता
Constants स्थिरांक
Constitution सङ्गठन
Contact potentials संयोग अवस्थायें
Continuity सातत्य
Contraction संकोचन
Control of reactions प्रकियाओंका निग्रह
Conventional सांकेतिक, लोकसंमत
Cooling curves शीतलीभवन वक्र
Corressponding सम्बद्ध, अनुरूप
Coulometer कूलम्बमापक, कूलमापक
Covalence समसंयोगशक्ति
Critical विपुल, चरम
Cryohydrates हैमउदेत
Crystalline रवेदार
Crystallography मणिभ (रवे सम्बंधी)
Crystals रवे
Crystallisation स्फटिकीकरण
Crystalloid स्फटोद
Cubical घनीय
Cumulative संचित
Current धारा
Cyclic चाक्रिक

D

Decomposition विभाजन
Degeneration जीर्णता
Degree of Dissociation or Freedom विश्लेषण-संख्या, स्वातंत्र्यकी-संख्या
Deliquiscence पसीजन
Density घनत्व
Deposit प्रक्षेप
Dessicating शोषण
Desilverisation चांदी अलगकरना
Deviations हटाव
Devitrification निष्काचाभकरण
Dialysis निःश्लेषण
Diatomic द्वयणुक
Dielectric Constant माध्यमिक संख्या
Differential भेद दर्शक
Diffusion निस्सरण, प्रसरण
Dilatometer द्रवप्रसार मापक
Dilute हलका

Dilutions	हलकेपन
Dilution law	हलकेपनका सिद्धान्त
Dimorphism	द्वयरूपता
Disperse phase	वितरित कला
Dispersion	वितरण
Displacement	स्थानान्तर
Dissociation	विश्लेषण
Distance	दूरी
Distribution	विस्तरण
Drops	बिन्दु, बूंदे
Dry	शुष्क
Dynamic	गत्यात्मक
Dyne	डाइन

E

Earth	पृथ्वी, धर्ती
Effective	प्रभावशाली
Efflorescence	पुष्पण
Electrical	वैद्युतिक
Electricity	विद्युत्
Electroaffinity	विद्युत्-स्नेह
Electrochemistry	विद्युत् रसायन
Electrode	बिजलोद
Electrolysis	विद्युत् विश्लेषण
Electrolyte	विद्युत् विश्लेष्य
Electrometer	विद्युत् मापक
Electromotive force	विद्युत् संचालक शक्ति
Electron	ऋणाणु
Electrophoresis	विद्युत् निस्सरण
Electrostatic	स्थिर विद्युतीय
Element	तत्त्व
Elliptic orbits	दीर्घवृत्तीय परिधि
Emulsion	पायस
Emulsoid	पायसोद
Enatiotropism	रूप-विनिमयता
Endosmosis	अन्तराभिसार
Endothermic	अन्तरतापिक
End point	अन्त बिन्दु
Energetics	सामर्थ्य गणना
Energy	सामर्थ्य
Entropy	यंत्र-समाई (अंत्रोपी)
Enzyme	प्रेरक जोव
Equation	समीकरण
Equilibrium	समता, सामान्यावस्था
Equipartition	सम-विभाग
Erg	अर्ग
Esterification	सम्मेलकरण
Eutectic mixture	मिलन मिश्रण
Eutectic pt.	मिलन बिन्दु
Evaporation	वाष्पी करण, भापबनना
Excitation	उत्तेजना, गरमाना
Exothermic	बाह्यतापिक
Expansion	प्रसार
Explosion	विस्फुटन
Extraction	निष्कर्षण

F

False equilibrium	साम्याभास
Fine structure	सूक्ष्म रचना
First order	प्रथमश्रेणी
Flocculation	निक्षेपण
Flowing	बहताहुआ
Fluorescence	चमक
Fractional	आंशिक
Free energy	स्वतंत्र सामर्थ्य
Free path	स्वतंत्रमार्ग या पथ
Freedom	स्वतंत्रता
Freezing pt.	द्रवांक
Frictional	घर्षणोत्पादित
Fused salts	गलित लवण
Fusion	गलाना

G

Galvanic गलवानीय
Gamma rays गामा किरण
Gas, Gaseous गैस, वायव्य
Grating ग्रेटिंग, वर्तन-पट
Gravity गुरुत्व

H

Half-life अर्ध जीवन
Haloes परिवेष
Halogen लवणजन
Harmonic motion आवर्तिक गति
Heat ताप
Heterogenous विषम
Hexagonal षष्ठभुजी
Homogeneous सम, एकरस
Hydrated उदित
Hydration उदकरण
Hydride उदिद
Hydrogel उद-जेली
Hydrogen उदजन
Hydrogenation उदजनीकरण
Hydrolysis उद्लेषण
Hydrolytic उद्लेषक
Hydrophile उद्स्नेही
Hydrophobe उदविरोधी
Hysteresis पिछड़न
Hydrous आर्द्र

I

Ice calorimeter बर्फकलारी मापक
Ideal आदर्श
Indices संख्या
Indicators सूचक, द्योतक
Induction आवेश
Infra red परालाल
Inhibited reactions निरोधित प्रक्रियायें
Inhibition निरोध
Interatomic अन्तर परमाणुक
Intercepts अन्तरांश
Interface अन्तरतल
Interfacial अन्तरतलीय
Internal आन्तरिक
Intra अन्तर
Intinsic नैज, निजी
Inversion विपर्यय
Iodometry नैलिन्मापकता
Ionic यावनिक
Ionization यापन
Ionizing यापक
Ions यवन
Isochore समायतनिक
Isoelectric समवैद्युत
Isomerism समरुपता
Isomorphism समपरिवर्तन
Isothermal समतापक्रमीय
Isotonic सम-शाक्तिक
Isotopes समस्थानिक

J

Junction जोड़
Jelly जेली

K

Kinetics गत्यात्मक

L

Latent गुप्त
Lattice जाल
Law नियम
Lead accumulator सीसेकी परिवर्तीयबाटरी
Life जीवन
Light प्रकाश

Limiting — अन्तिम, चरमसीमा
Line — रेखा
Linkage — जोड़, बन्ध
Liquefaction — द्रवीकरण
Liquid — द्रव
Lowering — अवकर्ष
Luminiscence — दीप्ति
Lyophile — उदस्नेही
Lyophobe — उदविरोधी

M

Mass action — परिमाण-क्रिया
Mass spectrograph — मात्रा चित्र लेखक
Maximum — अधिकतम
Mean free path — औसत स्वतंत्र मार्ग
Mechanicalequlvaient — यांत्रिक समसंख्या
Mechanism — रचना, योजना
Melting — द्रवण
Membrane — त्वचा, तबली
Mesomorphic — मध्यपरिवर्तक
Metallic — धात्विक
Metastable — अर्धस्थायी
Micelle — मिसेल, संघट्ट
Migration — भ्रमण
Mobility — रफतार
Molecular — आणविक
Molecule — अणु
Mol fraction — अणु-अंश
Moment of Inertia — मात्रा का घूर्ण
Monatomic — एक-परमाणुक
Monotropism — एकरूपता
Moving boundary — चलनशील सीमा
Multiple proportion — गुणक अनुपात
Mutarotation — क्षीण भ्रामकता

N

Nature — स्वभाव
Natural — स्वाभाविक
Negative — ऋणात्मक
Neutral — शिथिल
Neutralistion — शिथिलीकरण
Nomenclature — परिभाषा
Non-aqueos — अजलीय
Nonconductors — कुचालक
Non-electrolyte — विद्युत् अविश्लेष्य
Nucleus — केन्द्र

O

Octave — सप्तक
Oilfilm — तैलका तल या झिल्ली(पट)
Opposing reaction — विरोधी प्रक्रिया
Optical property — प्रकाश सम्बन्धी गुण
Orbit — परिधि, कक्षा
Order of reaction — प्रक्रिया की श्रेणी
Orientation — आयोजना
Oscillator — झूला, दोलक
Osmotic — निस्सारक
Oxidation — ओषदीकरण

P

Parachor — परायतनिक
Partial — आंशिक
Particle — कण
Passivity — शिथिलता, निष्चेष्टता
Perfect gas — पूर्णवायव्य
Period — काल
Periodic classification — आवर्तसंविभाग
Permeability — प्रवेशता
Perpetual — सतत
P_H value — $प_उ$ संख्या
Phase — कला

Phase rule कला-सिद्धान्त
Phosphorescence दमक
Photo-chemical प्रकाश रासायनिक
Photochemistry प्रकाश रसायन
Photo decomposition प्रकाश विभाजन
Photosensitisation प्रकाशोत्तेजन
Photosynthesis प्रकाश संश्लेषण
Photography फोटोग्राफी, चित्र खींचना, प्रकाशचित्रण
Photolysis प्रकाश विश्लेषण
Poison विष
Polar molecules ध्रुवी अणु
Polarisation दिग् प्रधानता
Polymorphism बहुपरिवर्तनशीलता
Positive धनात्मक
Potential अवस्था
Potential difference अवस्था भेद
Precipitate अवक्षेप
Precipitation अवक्षेपण
Pressure दबाव
Principle सिद्धान्त
Prism त्रिपार्श्व
Probabilty संभावना
Promoter उद्दीपक, उत्साहक
Protective संरक्षक
Proton धनाणु

Q

Quantum काण्टम (तन्मात्रा)

R

Racemic आंगूरिक, अभ्रामक
Radial व्यासाधिक
Radiation विकिरण
Radioactive रश्मिशाक्तिक
Radiometer रश्मिशक्तिमापक
Radium रश्मिम्
Rapid तीव्र, तेज
Rate of reaction प्रक्रिया की गति
Reaction प्रक्रिया
Reciprocal व्युत्क्रम
Recoil उछलना
Recording अनुलेखन
Recrystallisation पुनर्स्फटिकीकरण
Rectifier शोधक
Reduction अवकरण
Reflection परावर्तन
Refraction आवर्जन
Refractive index आवर्जन संख्या
Reproducible पुनरोत्पाद्य
Residual शेष, अवशिष्ट
Reissiance बाधा
Resonance अनुनाद
Reversible विपर्यय
Rise उत्थान, उत्कर्ष
Rotation भ्रमण

S

Salt नमक
Salting out नमक डालकर रवे जमाना, लवणीकरण
Saponification साबुनीकरण
Saturation संपृक्तीकरण
Scattering परिक्षेपण, प्रकीर्ण
Scintillation जगमगाहट
Second law द्वितीय सिद्धान्त
Second order द्वितीय श्रेणी
Secondary द्वितीय
Selection निर्वाचन
Self-induction स्वावेश
Semi-permeable अर्ध प्रवेशनीय
Side-reaction पार्श्व प्रक्रिया
Simultaneous reaction सह-प्रक्रिया

Size	आकार
Soap	साबुन
Solid	ठोस
Solidus	ठोस सूचक
Sol	उपघोल
Solubility	घुलनशीलता
Solute	घुलनशील
Solution	घोल
Solvation	घोलन
Solvent	घोलक
Space lattice	मंडल जाल
Spark spectra	तडित् किरण-चित्र
Specific	विशिष्ट
Specific heat	आपेक्षिकताप
Spectral	किरण चित्री
Spectrometer	किरण चित्र मापक
Spectrum	किरण चित्र
Stability	स्थिरता, स्थायीपन
Standard cell	प्रामाणिक बाटरी
Static	स्थितिक
Stationary	स्थायी
Stirring	हिलाना, टारना
Strong electrolyte	प्रबल विश्लेष्य
Structure	रचना
Sublimation	ऊर्ध्वपातन
Supercooled	अतिशीतलीकृत
Supersaturation	अति संपृक्तीकरण
Surface	पृष्ठतल
Surface energy	पृष्ठ सामर्थ्य
Suface tension	पृष्ठ तनाव
Suspended	अवलम्बित
Suspensoid	अवलम्बघोल
Symbol	संकेत
Synthesis	संश्लेषण

T

Tautomeric	चल-रूपता
Temperature	तापक्रम
Ternary Tertiary	} तृतीय
Theorem	सिद्धान्त
Thermal	ताप सम्बन्धी
Thermochemical	ताप-रासायनिक
Thermo chemistry	ताप-रसायन
Thermocouple	ताप-विद्युत्-युगल
Thermodynamics	ताप गति विज्ञान
Thermometry	तापमापकता
Thermopile	ताप युगल समूह
Threshold value	न्यूनांक
Titration	द्रवयोग मापन
Transition point	परिवर्तनांक
Translatory motion	स्थानान्तरीय गति
Transport number	वाहक संख्या
Trimolecular	त्रयणुक
Triple point	त्रियोग

U

Ultrafiltration	अति-छानन
Ultramicroscope	अतिसूक्ष्म दर्शकयंत्र
Ultraviolet	पराकासनी
Undissociated	अविश्लेषित
Unhydrated	अनाद्रित
Unipolar	एक-ध्रुवी

V

Valency	संयोग शक्ति
Vapour	वाष्प
Vapour pressure	वाष्प दबाव
Vaporisation	वाष्प भवन
Velocity	वेग,
Vibration	कम्पन, भूलन, स्पन्दन
Viscosity	स्निग्धता

Volt	वोल्ट
Voltage	वोल्टन
Voltmeter	वोल्टमापक
Voltameter	धारा मापक
Volume	आयतन

W, X etc,

Wave	लहर
Wavelength	लहर लम्बाई
X-ray	रोञ्जन किरण
Zero	शून्य

ORGANIC CHEMISTRY

(कार्बनिक रसायन)

(विज्ञान १६२६, २३, ६७)

कार्बनिक रसायनकी शब्दावलीका एक संग्रह विज्ञानमें प्रकाशित किया गया था, जिसका उपयोग मैंने अपनी 'कार्बनिक रसायन' नामक पुस्तकमें किया। श्रीब्रजबिहारीलाल दीक्षित, एम० एस-सी ने कार्बनिक रसायन सम्बन्धी कई लेख लिखे। आपकी सहायतासे पूर्व प्रकाशित शब्द संग्रह संशोधित एवं परिवर्धित करके यहां दिया जा रहा है।

A

Abietic acid	एबीटिकाम्ल
Acenaphthene	एसीनफथीन
Acenaphtylene	एसीनफतीलिन
Acetal	सिरकम
Acetaldehyde	सिरकमद्यानार्द्र
Acetaldoxime	सिरकमानोषिम
Acetamide	सिरकामिद्
Acetamidine	सिरकामिदिन
Acetamido-chloride	सिरकामिदो हरिद
Acetanilide	सिरक नीलिद्
Acetate	सिरकेत
Acetchlorimid	सिरक हरिमिद्
Acetic acid	सिरकाम्ल
Acetic anhydride	सिरकिक अनार्द्रिद
Acetimido	सिरकिमिदो
Acetin	सिरकिन
Aceto	सिरको
Acetoacetic ester	सिरकोसिरकिक सम्मेल
Acetotoluidide	सिरकोटोल्विदिद
Acetone	सिरकोन
Acetone-dicarboxylic acid	सिरकोद्विकर्बोषिलिकाम्ल
Acetonyl acetone	सिरकोनील सिरकोन
Acetoxime	सिरकोषिम
Acetoxyl	सिरकोषील
Aceturic acid	सिरकमूत्रिकाम्ल
Acetyl	सिरकील
Acetyl-acetone	सिरकील सिरकोन
Acetylene	सिरकीलिन
Acetylene-dicarboxylic acid	सिरकीलिनद्विकर्बोषिलिकाम्ल
Achroo-dextrin	निरंगी दक्षिणिन
Acid	अम्ल
Acid amide	अम्ल अमिद्
Acid anhydride	अम्ल अनार्द्रिद
Acid azo dyestuffs	अम्ल अजीव वर्ण
Aci-nitro compound	असिनोषोयौगिक
Aconitic acid	एकोनिटिकाम्ल
Acridine	चरपरीदिन
Acridine yellow	पीत चरपरीदिन
Acridinic acid	चरपरीदिनिकाम्ल
Acridonium iodide	चरपरोनयम नैलिद
Acrolein	चरपरोलीन
Acrosazone	चरपरोसाजीवोन

Acrose	चरपरोज़
Acrosone	चरपरोसोन
Acrylic a cid	चरपरीलिकाम्ल
Active compounds	सक्रिय यौगिक, भ्रामक यौगिक
Acyl	अम्लील
Additive compound	युक्त यौगिक
Adenase	एड़ीनेज़
Adenine	एडीनिन
Adipic acid	पीनिकाम्ल
Adipocellulose	पीनोछिद्रोज
Adrenaline	अद्रिनलिन
Adsorption	अधिशोषण
Aesculin	एसकुलिन
Airol	एरोल
Alanine	रेशमिन
Alanyl-	रेशमील
Albumin	अण्डसित्
Albuminate	अण्डसितेत
Albuminoid	अण्डसितोद्
Albumose	अण्डसितोज
Alcohol	मद्य
Alcoholysis	मद्यश्लेषण
Aldehyde	मद्यानार्द्र
Aldehydic	मद्यानार्द्रिक
Aldehydo-	मद्यानार्द्रो-
Aldo-hexoses	मद्यानोषष्ठोज
Aldoketens	मद्यानोसिरकीन
Aldol	मद्यानोल
Aldol condensation	मद्यानोल लिप्तीकरण
Aldoses	मद्यानोज़
Aldoxime	मद्यानोषिम
Aliphatic	मद्यमज्जिक
Alizarin	मञ्जिष्ठिन
Alizariviridin	मञ्जिष्ठा वीरीडिन
Alkaloid	क्षारोद्
Alkarsin	मद्य संक्षीणिन्
Alkyl	मद्यील
Alkylated sugars	मद्यीलित शर्करा
Alkylenes	मद्यीलिन
Allantoin	अलंटोइन
Allene	एलीन
Allo-	एलो-
Allocinnamic acid	एलोदालचीनिकाम्ल
Allonic acid	एलोनिकाम्ल
Allophanic acid	एलोफेनिकाम्ल
Allose	एलोज
Alloxan	एलकाष्ठन
Alloxanic acid	एलकाष्ठनिकाम्ल
Alloxantin	एलकाष्ठनतिन
Allyl	एलील
Allylalcohol	एलीलमद्य
Allylene	एलीलिन
Aloine	आलविन
Alphyl	मद्यमज्जील
Altronic acid	एलट्रोनिकाम्ल
Altrose	एलट्रोज
Aluminium	स्फटम्
Aluminium methyl	स्फटदारील
Alypine	एलीपिन
Amalic acid	अमेलिकाम्ल
Amber	एम्बर, राल
Ametone	हरीज्वलोन
Amide	अमिद्
Amidine	अमिदिन
Amido-	अमिदो-
Amidol	अमिदोल
Amidoxime	अमिदोषिम
Amine	अमिन
Amino-	अमिनो-

Ammelide	अमीलिद्
Ammonium	अमोनियम
Ammonium acetate	अमोनियम सिरकेत
Ammonium cyanate	अमोनियम श्यामेत
Amphoteric	द्वयरूपी
Amygdalase	बादामेज
Amygdalin	बादामिन
Amyl	केलील
Amyl acetate	केलील सिरकेत
Amylase	केलीलेज
Amylene	केलीलिन
Amylo-	केलीलो-
Amyloid	केलीलोद
Amylum	केलीलम
Amythyst violet	गोमद कासनी
Anaesthesise	मूर्च्छित करना
Anaesthetic	सम्मूर्च्छक, संवेदनानाशक
Analysis	विश्लेषण
Ana position	एना स्थिति
Anethole	सौंफज्वलोल
Angelic acid	एञ्जेलिकाम्ल
Anhydride	अनार्द्रिद
Anilic acid	नीलिकाम्ल
Anilide	नीलिद्
Aniline	नीलिन्
Anilino-	नीलिनो-
Animal charcoal	हड्डीका कोयला
Anisaldehyde	सौंफमद्यानाद्र
Anisic acid	सौंफिकाम्ल
Anisidine	सौंफिदिन
Anisole	सौंफोल
Anisyl	सौंफील
Anomalous	अनियमित, अपवाद
Anthocyanin	पुष्पिन
Anthracene	अंगारिन
Anthraflavine	अंगार हरपीतिन
Anthraflavinic	अंगारहरपीतिनिक
Anthragallol	अंगारमाजूफलोल
Anthranil	अंगारानिल
Anthranilic acid	अंगारानीलिकाम्ल
Anthranol	अंगारानोल
Anthrapurpurin	अंगारलालिन
Anthraquinone	अंगारकुनोन
Anthrarobin	अंगारपातिन
Anthrol	अंगारोल
Anti-albumose	प्रति-अण्डसितोज़
Antialdoxime	प्रति-मद्यानोषिम
Anti-febrine	विपरिबुखारिन
Antimony	आञ्जनम्
Antipyretic	विपरिज्वरक
Antipyrine	विपरिज्वरिन
Antiseptic	कीटाणुनाशक
Apo-camphoric	उपकर्पूरिक
Aposafranine	उपकेशरिन्
Arabinose	गोंदोज़
Arabitol	गोंदोल
Arabonic acid	गोंदोनिकाम्ल
Arachidic acid	एराकिडिकाम्ल
Arbutin	एरबुतिन
Arecaine	सुपारेन
Areca nut	सुपारी
Arecoline	सुपारीलोन
Arginase	आर्जिनेज
Arginine	आर्जिनिन
Aristol	अरिस्तोल
Aromatic	सुरभित
Arsacetin	संक्षीण सिरकिन
Arsanilic acid	संक्षीणनीलिकाम्ल
Arsenic	संक्षीणम्
Arseno-	संक्षीणो-

Arseno phenyl-glycine	संक्षीणोदिव्यीलमधुन
Arsine	संक्षीणिन्
Arsonium	संक्षीणोनियम
Artificial	कृत्रिम
Aryl	सुरभील, बानजावील
Arylamine	सुरभीलामिन
Aseptol	एसेप्टौल
Asparagine	पौधजिन
Asparatic acid	पौधिकाम्ल
Asphalt	एस्फाल्ट
Aspirin	पौधिन
Asymmetric	असमसंगतिक
Asymmetric synthesis	असमसंगतिक संश्लेषण
Atom	परमाणु
Atomic	परमाणविक
Atoxyl	एटोक्सोल
Atropic acid	धतूरिकाम्ल
Atropine	धतूरिन
Auramine	स्वार्णिन
Aurichloride	स्वर्णहरिद्
Aurine	स्वर्णिन
Australene	औस्ट्रेलिन
Auto-oxidation	स्वोषदीकरण
Auxochrome	वर्णाधार
Azelaic acid	एज़ेलाइकाम्ल
Azelone	एज़ीलोन
Azimino-	अजीविमिनो-
Azo-	अजीव-
Azobenzene	अजीवबानजावीन
Azoxy-	अजीवोष-
Azoxybenzene	अजीवोष बानजावीन

B

Bacillus butylicus	नवनीतील कीटाणु
Balance action	सममापित क्रिया
Balsam	बालसम
Barbituric acid	रसभमूत्रिकाम्ल
Basic dyebath	क्षारमयवर्ण आशय
Beer	शराब
Behenic acid	बिहीनिकाम्ल
Benzal chloride	बानजालहरिद्
Benzaldazine	बानजावमद्यानाजीविन
Benzaldehyde	बानजावमद्यानार्द्र
Benzaldoxime	बानजावमानोषिम
Benzamide	बानाजाविमिद्
Benzamino-	बानजावामिनो
Benzanilide	बानजावनीलिद्
Benz-antialdoxime	बानजप्रतिमद्यानोषिम
Benzazide	बानजावाजीविद्
Benzazurine	बानज आकाशिन
Benzene	बानजावीन
Benzhydrazide	बानजाव उदाजीविद्
Benzhydrol	बानजावउदोल
Benzidam	बानजाविदम
Benzidine	बानजाविदिन
Benzidine sulphonic acid	बानजाविदिन गन्धोनिकाम्ल
Benzil	बानजाविल
Benzoflavine	बानजावोवनस्पतिन
Benzoic—	बानजाविक—
Benzoic acid	बानजाविकाम्ल
Benzoin	बानजोइन
Benzoline	बानजोलिन
Benzo-	बानजो, बानजाव-
Benzo fast red G-L.	बानजो स्थाई अरुण प-ह
Benzoyl	बानजावील
Benz —	बानजाव
Benzyl—	बानजील
Benzyl chloride	बानजील हरिद्
Benzylidene	बानजीलिदिन

Berberine बरबेरीन
Betaine बीतेन
Betol बीतोल
Bile पित्त
Bisabolene विसब्योलीन
Bisabole विसब्योल
Bis-azo dyes युगलाजीव वर्ण
Bis diazo acetic acid युगलद्वयजीव सिरकाम्ल
Bismuth विशदम्
Bitter almond कड़वा बादाम
Biuret द्विमूत्रित
Black death श्यामकाल
Blood रुधिर
Blued नीलकृत
Boiling point क्वथनांक
Bonds बन्ध
Bone अस्थि तैल
Borneol बोर्नियोल
Bornyl alcohol बोर्नीलमद्य
Bornyline बोर्नीलिन
,, nitronitrosite ,, नोषोनोषोसित
,, nitrosite ,, नोषोसित
Bornyl nitrite बोर्नील नोषित
Boron टंकम्
Brassidic acid ब्रैसिडिकाम्ल
Brilliant green कान्तिहरा
Brilliant azurine 5 G. कान्ति एज़ूरिन ५ प
Brom- अरुण-
Bromaniline अरुण नीलिन्
Bromination अरुणीकरण
Bromine अरुणिन्
Bromo अरुणो-
Bromobenzene अरुणो बानजावीन
Bromoform अरुणोपिपील, अरुणीद्रिन
Brucine ब्रूसिन
Butadiene नवनीत-द्वयीन
Butadiine नवनीतादिन
Butane नवनीतेन
Butanol नवनीतेनोल
Butanone नवनीतेनोन
Butene नवनीतीन
Butine नवनीतिन
Butyl नवनीतील
Butyl alcohol नवनीतील मद्य
Butylene नवनीतिलिन
Butyric- नवनीतिक-
Butyro- नवनीतो-
Butyril- नवनीतील-

C

Caeodyl केकोडील
Cacodylic केकोडिलिक-
Cadalene कर्दलीन
Cadinene कर्दनीन
Cadaverine कर्दवरिन
Caffeic acid कहवीकाम्ल
Caffeine कहवीन
Calamenene कैलामिनीन
Calcium खटिकम्
Camphane कर्पूरेन
Camphanic कर्पूरेनिक
Camphanic acid कर्पूरेनिक अम्ल
Camphene कर्पूरीन
Camphenic कर्पूरीनिक
Camphenilan aldehyde कर्पूरीलनमद्यानार्द्र
Camphenilone कर्पूरीनिलोन
Campholic कर्पूलिक
Campholene कर्पूरोलीन
Campholenic कर्पूरोलीनिक

Campholide	कर्पूरिद्
Camphonic	कर्पूनिक
Camphoranic	कर्पूरानिक
Camphor	कर्पूर
Camphoramic	कर्पूरामिक
Camphoric	कर्पूरिक
Camphoronic	कर्पूरोनिक
Camphyl	कर्पूरील
Cane sugar	इक्षु-शर्करा
Caoutchouc	रबरिक
Capric acid	अजिकाम्ल
Caprilic	अजिलिक-
Caproic	अजोइक-
Caramel	केरेमल
Carbamic acid	कर्बामिकाम्ल
Carbamide	कर्बामिद्
Carbanilide	कर्बनीलिद्
Carbazole	कर्बाजीवोल
Carbinol	कर्बनोल
Carbo—	कर्बो—
Carbohydrate	कर्बोदेत
Carbolic acid	कर्बोलिकाम्ल
Carbon	कर्बन
Carbonic	कार्बनिक
Carbonyl	कार्बनील
Carbostyril	कार्बोस्त्रिल
Carboxy-	कर्बोष
Carboxylase	कर्बोषिलेज
Carboxylic	कर्बोषिलिक-
Carbylamine	कर्बीलामिन
Carnosine	कारनोसिन
Carone	कैरोन
Caroneoxime	कैरोनोषिम
Caronic	कैरोनिक
Carvacrol	कारवैक्रोल
Carvene	कारवीन
Carvenone	कारवीनोन
Carvestrene	कारवेस्त्रीन
Carvo-	कारवो-
Carvone	कारवोन
Carvotanacetone	कारवोतन कीतोन
Carvoxime	कारवोषिम
Carylamine	कैरिलामिन
Casein	दधिन
Caseinogen	दधिनोजन
Catalase	उत्प्रेरकाणु
Catalytic	उत्प्रेय
Catechol	कत्थोल
Celestial blue	आकाशी नील
Cellase	कोष्ठेज
Cellobionic acid	छिद्रद्वयोनिकाम्ल
Cellobiose	छिद्रद्वयोज
Cellose	छिद्रज
Cellulase	छिद्रेज
Cellulose	छिद्रोज
Centre	केन्द्र
Cetric	केन्द्रिक
Centrifugal machine	केन्द्रगर्वित यन्त्र
Cerotic	षड्विंशोतिक
Ceryl	षड्विंशील
Cetene	षोडशीन
Cetyl	षोडशील
Chain isomerism	श्रेणीसमरूपता
Chains,	श्रेणियां, शृङ्खला
„ open	खुली शृंखला
„ closed	बन्द शृङ्खला
Chalcone	शालकोन
Chelidonic	शेलीदोनिक
Chemical	रासायनिक

Chemiching	चूर्णितकरण
Chitosin	चिटोसीन
Chlor-	हर-
Chloracetic	हर-सिरकाम्ल
Chloral	हरल
Chloralhydrate	हरलाद्र
Chloramine	हरामिन
Chloranil	हरानिल
Chloranilic	हरनीलिक
Chloretone	हरीतोन
Chlorhydrin	हरोद्रिन
Chlorination	हरिनीकरण
Chlorine	हरिन्
Chloramine	हरामिन
Chloramine yellow G. G.	हरामिन पीत प प
Chloro-	हरो-
Chloroform	हरोपिपील, हरीद्रिन
Cholestrophane	कोलेस्ट्रोफेन
Choline phorphoric-acid	कोलीन स्फुरिकाम्ल
Chromatropic acid	रागधत्रुपिकाम्ल
Chromic acid	रागिकाम्ल
Chromic yellow D-F.	राग पीत ग-स
Chromogene	वर्णोजन
Chromone	वर्णोन
Chromophore	वर्णसूचक
Chromoxane green	रागोषेन हरा
Chromyl	रागील
Chrysamine	क्राइसामिन
Chrysoidine	क्राइसोदिन
Cinchene	सिंकीन
Cinchomeronic	सिंकोमरोनिकाम्ल
Cinchonidine	सिंकोनिदिन
Cineol	ज्वलत्रीन
Cinnamene	दालचीनीन
Cinnamenyl	दालचीननील
Cinnamic acid	दालचीनिकाम्ल
Cinnamo-	दालचीनो-
Cinnamyl	दालचीनील-
Cinnamyledene	दालचीनीलिदिन
Cineolic acid	ज्वलत्रिकाम्ल
Cis form	समदिश रूप
Citral	निम्बुल, जंबीरल
Citrazinic	जंबीराजीविनिक
Citric acid	नीबूइकाम्ल जंबीरिकाम्ल
Citronellal	निम्बुनल, जंबीरनल
Citronellic	निम्बुनिक, जंबीरनिक
Classification	वर्गीकरण
Closed chain	बन्द शृंखला
Coaltar	कोलतार, तारकोल
Cocaine	कोकेन
Cochenial	कचनील
Codeine	कोडीन
Codeinone	कोडीनोन
Collodion	कलोदियन
Colour	रंग, वर्ण
Combustion	भस्मीकरण
Complex	संकीर्ण
Compound	यौगिक
Condensation	लिप्तीकरण
Configuration	अन्तर्चित्रण
Congo red	लाल कांगो
Coniferin	पुच्छवृक्षिन्
Coniferyl	पुच्छवृक्षील
Conine	कोनीन
Conjugate double bonds	आबद्ध द्विबन्ध
Constitution	संगठन, गठन
Copper	ताम्र

Coral प्रवाल
Corrosive sublimate रस कपूर
Cotarnic कोटारनिक
Cotarnine कोटारनिन
Cotarnone कोटारनोन
Coumaran कूमरान
Coumaric कूमरिक
Coumarilic कूमरिलिक
Coumarin कूमरिन
Coumarinic कूमरिनिक
Coumarone कूमरोन
Couple संयुक्त
Coupling मिथुनीकरण
Cracking विच्छेद प्रक्रिया
Creatine कृतिन
Creatinine कृतीनिन
Creosol क्रिओसोल
Creosote क्रिओसोट
Cresol क्रूसोल
Cresyl क्रूसील
Crotonic क्रोटानिक
Crotonaldehyde क्रोटोन मद्यानार्द्र
Cryscopic हिमदर्शकी
Crystal violet बैंगनी रवे
Crystalline रवेदार, मणिभ
Cumene कूमीन
Cupric ferrocyanide ताम्रिक लोहोश्यामिद
Curare क्युरेर
Cutch-black कचश्याम
Cyamelide श्यामीलिद
Cymene श्यामीन
Cyanamide श्यामामिद
Cyanate श्यामेन
Cyanhydrin श्यामउदिन
Cyanic श्यामिक
Cyanide श्यामिद
Cyanidin श्यामिदिन
Cyanine श्यामिन
Cyanmethine श्याम दारिन
Cyano- श्यामो-
Cyanogen श्यामोजन
Cyanol श्यामोल
Cyanuramide श्याम मूत्रामिद
Cyanuric acid श्याममूत्रिकाम्ल
Cyclic चक्रिक
Cyclo- चक्रो-
Cymene स्निग्धिन
Cymogene स्निग्धजन
Cystein केशीन
Cystin केशिन

D

Decane दशेन
Decyl दशील
Decylene दशीलिन
Degradation अंशलेषण, अंशलेषित
Dehydration अनार्द्रीकरण
Dehydro camphoric उदघटित कपूरिक अम्ल
Deka- दश-
Delphinidin डेल्फिनिदिन
Deoxy-bonzoin गतौष वानजोइन
Depress मन्दगतिक
Depside डेप्साइड
Desmotropism बन्ध चालकता
Determination निकालना
Developing उभारना
Dextrin दक्षिणिन
Dextro- दक्षिणिक
Dextrose दक्षिणोज
Di- द्वि-
Diacetamide द्वि सिरकामिद

Diacetanilide	द्विसिरक नीलिद
Diaceto-	द्वि-सिरको-
Diacetoacetic ester	द्विसिरकोसिरकिक सम्मेल
Diacetyl	द्विसिरकील
Diacetylene	द्विसिरकीलिन
Dialdehyde	द्वयमद्यानार्द्र
Diallyl	द्वयेलील
Dialuric	दायलमूत्रि काम्ल
Diamide	द्वयामिद
Diamine	द्वयामिन
Diamino	द्वयामिनो
Diamond	हीरा
Diastase	दास्तेज
Diazine	द्वयाजीविन
Diazo-	द्वयजीव-
Diazonium	द्वयजीवोनियम
Diazotising	द्वयजीवकरण
Dibasic	द्विभास्मिक
Dibenzyl	द्विबानजील
Dibromo-	द्विश्ररुणो-
Dichlor-	द्विहर-
Dichloramine-	द्विहरिदामिनाट
Dichromate	द्विरागेत
Dicyclic	द्विचक्रिक
Diethyl	द्विज्वलील
Digitalin	डिजिटेलिन
Dihydric	द्वि-उदिक
Dihydro-	द्वि-उदो-
Dihydrocarveol	द्वि उदकारव्योल
Dihydroxy-	द्विउदौष-
Di-iodo-	द्विनैल-
Diketo	द्विकीतो-
Dimethoxy-	द्विदारौष-
Dimethyl-	द्विदारील-
" norcampholide	द्विदारील निः कर्पूरिद
Dinaphthol	द्विनफ्थोल
Dinaphthyl	द्वि नफ्थील
Dinitro-	द्विनोष-
Dioxime	द्वयोषिम
Dipentene	द्विपंचीन
Diphenic	द्विदिव्यिक
Diphenyl-	द्विदिव्यील-
Diphenylene	द्विदिव्यीलिन
Disaccharose	द्विशर्करोज
Disazo-	युगलाजीव-
Dissociation constant	विश्लेषणांक
Distillation	स्रवण
Disulphide	द्विगन्धिद
Disulphoxide	द्विगन्धोषिद
Dithio-	द्वि-गन्धोन
Diuretic	द्विमूत्रेतिक
Divalent	द्विशक्तिक
Dodecane	द्वादशेन
Dodecyl	द्वादशील
Dodecylene	द्वादशीलिन
Double bond	द्विगुण बन्ध
Drugs	ओषधियां
Dulcitol	डल्सितोल
Dyeing	रंगना, वर्णोदन
Dyes	रंग, वर्ण
Dyanamic isomerism	गत्यर्थक समरूपता
Dyestuff	वर्ण पदार्थ
Dynamite	डाइनेमाइट

E

Ebulliscopic	क्वथनदर्शिकी
Ecgonine	एकगोनिन
Edestin	एडस्टिन
Egg	अण्ड
Eicosane	विंशेन

Ekasantalal	एकोचन्दनल
Ekasantalic	एकोचन्दनिक
Elaidic acid	इलैडिक अम्ल
Elixir of life	अमृत
Emerald	मरकत मणि
Empirical formula	अनुमानित सूत्र
Emulsin	इमलसिन
Enzyme	प्रेरकाणु, प्रेरक जीव
Eosin	इओसीन, प्रभिन
Epichlorhydrin	एपिहरउदिन
Erucic acid	इरूसिकाम्ल
Erythrin	ऊषन
Erythritol	ऊषोल
Erythrosin	ऊषिन
Essential oil	सुगन्धित तैल
Esters	सम्मेल
Esterification	सम्मेलकरण
Ethanal	ज्वलेनाल
Ethane	ज्वलेन
Ethanol	ज्वलेनोल
Ethene	ज्वलीन
Ethenyl	ज्वलीनील
Ether	ज्वलक
Etherone	ज्वकोन
Ethidene	ज्वलिदिन
Ethyl-	ज्वलील-
Ethyl alcohol	ज्वलील मद्य
Ethyl urea	ज्वलील-मूत्रिआ
Ethylamine	ज्वलीलामिन
Ethylene	ज्वलीलिन
Ethylidene	ज्वलीलिदिन
Eucaine	युषेन
Eugenol	लवंगोल
Exhaustive methylation	निःशेषदारोलकरण
Extraction	निष्कर्षण

F

Farnesal	फारनीसल
Farnesene	फारनीसीन
Farnesenic	फारनीसीनिक
Farnesol	फारनीसोल
Fast dyes	स्थायीरंग
Fast green	स्थायीहरा
Fast red R	स्थाई अरुण अ
Fats	मज्जा, वसा
Fatty acid	मज्जिकाम्ल
Fenchene	फेञ्चीन
Fenchenic	फेञ्चीनिक
Fencho camphorone	फेञ्चो कर्पूरोन
Fenchone	फेञ्चोन
Fenchosantanone	फेञ्चोचन्दनोन
Fenchyl alcohol	फेञ्चल मद्य
Fermentation	खमीरण
Ferments	खमीर
Ferric	लोहिक
Fibrin	फाइब्रिन
Fibrinogen	फाइब्रिनोजन
Fiery red	ज्वाल अरुण
Flavanol	वनस्पतोल
Flavanone	वनस्पनोन
Flavo-	वनो-
Fluorane	फ्लोरेन
Fluorescein	फ्लोरेस्सिन
Formaldehyde	पिपीलमद्यानार्द्र
Formalin	पिपीलिन
Formamide	पिपीलामिद्
Formamint	पिपीलामिंत
Formhydroxamic acid	पिपीलउदौषामिक अम्ल
Formic acid	पिपीलिकाम्ल
Formose	पिपीलोज
Formula	सूत्र

Formyl	पिपीलील
Fractional distillation	आंशिक स्रवण
Fructose or fruit sugar	फलोज, फल शर्करा
Fuchsine	फुक्सिन
Fulminic	विस्फुटिक
Fumaric	वासिकाम्ल
Furaldehyde	देवदार-मद्यानार्द्र
Furane or furfurane	देवदारेन
Furyl	देवदारील
Fusel oil	मद्यिल तैल

G

Galactase	दुग्धस्योज
Galactonic	दुग्धस्योनिक
Galactose	दुग्धस्योज
Gallein	माजूफलीन
Gallic acid	माजूफलिकाम्ल
Gallo-	माजूफलो-
Gentianose	जैएट्यानोज़
Gentiabiose	जैएट्या द्वयोज
Geranial	गुलवियल
Geranic acid	गुलविकाम्ल
Geraniene	गुलविनीन
Geraniol	गुलवियोल
Gliadin	ग्लायडिन
Globulin	ग्लोबुलिन
Glucal	द्राक्षल
Gluco-	द्राक्षो-
Gluconic	द्राक्षोनिक
Glucosan	द्राक्षोसन
Glucose	द्राक्षोज
Glucoside	द्राक्षोसिद
Glucosone	द्राक्षोसोन
Glutaconic	गोंदोनिक
Glutamic	गोंदामिक
Glutamine	गोंदामिन
Glutaric acid	गोंदिकाम्ल
Gluteins	सरेसीन
Glutose	सरेसोज
Glyceraldehyde	मधुरमद्यानार्द्र
Glyceric	मधुरिक
Glyceride	मधुरिद
Glycerine	मधुरिन
Glyceryl	मधुरील
Glycide	मधुद
Glycine or Glycocoll	मधुन
Glyco-	मधु-
Glycogen	मधुजन
Glycol	मधुओल
Glycollic	मधुओलिक
Glycoronic	मधुरोनिक
Glyoxal	मधुकाष्ठल
Grape sugar	द्राक्ष शर्करा
Guaiacol	गोंद्योल
Guanidine	ग्वानिदिन
Gulonic	गुलोनिक
Gulose	गुलोज
Gum	गोंद
Gum benzoin	बानजावोन गोंद

H

Haematin	हीमेटिन
Haemin	हीमिन
Haemoglobin	हीमोग्लोबिन
Halogen	लवणजन
Halogenated	लवण जनित
Halogenation	लवणजनीकरण
Hedonal	मूर्च्छोनल

Helianthin	हेलियन्थिन
Hemiterpenes	अर्द्ध त्रपिन
Heptaldehyde	सप्तमद्यानार्द्र
Heptane	सप्तेन
Heptose	सप्तोज
Heptyl	सप्तील
Hesperidene	हेस्पेरिडिन
Heterocyclic	भिन्नचाक्रिक
Hetocresol	हितोक्रुसोल
Hexa-	षष्ठ-
Hexamine	षष्ठदारिन
Hexane	षष्ठेन
Hexose	षष्ठोज
Hexyl	षष्ठोल
Hippuric acid	अश्वमूत्रिकाम्ल
Histidine	केशिन
Histone	केशोन
Holocaine	होलोषेन
Homatropine	चक्षुपिन
Homocatechol	सहकत्थोल
Homologous series	समश्रेणी
Homo-	सः
Homo terpenylic methyl ketone	सः त्रिपिनीलिक दारोल कीतोन
Hordenine	होर्डेनिन
Hydantoin	हीडेण्टोइन
Hydracrylic	उद्चरपरिक
Hydrated oxide of iron	मंदुर
Hydrazide	उदाज़ीविद
Hydrazine	उदाज़ीविन
Hydrazo-	उदाज़ीव-
Hydrazone	उदाज़ीवोन
Hydriodic	उदनैलक
Hydro-	उद्-
Hydrocarbon	उदकर्बन
Hydrogen	उद्जन
Hydrous silicate of aluminium	कर्मद
Hydroxy-	उदौष-
Hydroxyl-	उदौषील-
Hymatol	हिमत्योल
Hyoscine	उत्रीन
Hyoscymine	उत्रपीन
Hypnotic	सम्मूर्च्छक
Hypodermic syringe	रक्तवर्ती पिचकारी
Hypoxanthine	उपजैन्थीन

I

Iodonic	नैलोनिक
Idose	आइडोज
Imid-azole	इमिदाजीवोल
Imide	इमिद
Imido-	इमिदो-
Imino-	इमिनो-
Indamine	नीलामिन
Indathrene	नीलांगारिन
Indican	नीलजन
Indigo	नील
Indirubin	नील लालिन
Indol	नीलोल
Indoxyl	नीलोषिल
Ink	स्याही, रोशनाई
Inosite	इनोसाइट
Insensible	अचेत
Insomnia	भंगनिद्रा
Inulase	अरुइज
Inulin	अरुइन
Inversion	विपर्यय
Invert sugar	विपर्ययित शर्करा
Inve tase	विपर्ययेज

Iodo-	नैगो-
Iodoform	नैलोपिपील, आइडोफार्म, नैत्रिनीद्रिन
Iodol	नैगोल
Iodoso-	नैलासो
Iono-medicine	यवनचिकित्सा
Ionone	इत्रोन
Iron	लोहा, लोह
Irone	इत्रोन
Isatic	आयसेटिक
Isatin	आयसेटिन
Iso-	सम-
Isobutyl-	सम नवनीतील-
Isocamphinilamic acid	समकर्पूनिलामिकाम्ल
Isoeugenol	समलवंगोल
Isoform	समीद्रिन
Isomerism	समरूपता
Isoprene	सम्प्रोन
Isopropyl	सम-अग्रील
Isosafral	समखशोल
J	
Juglone	जुग्लोन
K	
Kairine	केरीन
Keten	कीतीन
Keto-	कीतो-
Keto-lactone	कीतो-दुग्धोन
Ketone	कीतोन
Ketonic	कीतोनिक
Ketoses	कीतोज
L	
Laevo-rotatory	वाम भ्रामक
Labile	चंचल
Lac	लाख
Laccase	लाखेज
Lactamide	दुग्धामिद्
Lactam	दुग्धम
Lactase	दुग्धेज
Lactic acid	दुग्धकाम्ल
Lactim	दुग्धिम
Lacto-	दुग्धो-
Lactyl	दुग्धील
Laevo-	वाम, उत्तर-
Laevulic or laevulinic acid	उत्तरिकाम्ल
Lakes	लक्ष, या लाखानुरूपीरंग
Latent	गुप्त
Latex	दूध [रबरके पेड़का]
Lauric	लौरिकाम्ल
Laxative	घुट्टी
Lead	सीसा, सीसम्
Leather	चमड़ा, चर्म
Lecithin	लेसिथिन
Leucaniline	निष्वर्णनीलिन
Leucine	ल्यूसिन
Leuco-	निष्वर्ण-
Light colour	हलका रंग
Light treatment	रश्मि चिकित्सा
Lignin	लिगनिन, लकड़िन
Lignocellulose	लकड़-छिद्रोज
Ligroin	लिग्रोइन
Limonene	निम्बुनोन
Linaloyl	लैवेन्द्रोल
Liniment	द्रवलेप
Lipase	लाइपेज
Ludyl	लुडील
Lutidine	लुटिदिन
Lysatol	लर्पुत्योल
Lysidine	लीसिदिन, लर्पुदिन

English	हिन्दी
Lysine	लीसिन
Lyxose	लिक्सोज
M	
Madder root	मंजिष्ठ मूल
Magdala blue	मैग्डाला नील
Magenta	मैजण्टा
Magnetic susceptibility	चुम्बकीय ग्राह्यता
Malachite green	मैलाकाइट हरा
Malamide	सेवामिद्
Malic acid	सेविकाम्ल
Malonic	सेबोनिक
Malonyl	सेबोनील
Malt sugar	यव-शर्करा
Maltase	यवेज
Maltose	यवोज
Mandelic acid	बादामिकाम्ल
Mannitol	मैनीतोल
Manno-	मैनो-
Mannose	मैनोज
Meconine	मेकोनिन
Melibiose	मेली द्वयोज
Mellophanic	चतुरोफिनिक
Melting point	द्रवांक
Menthadiene	पुदिनद्वयीन
Menthane	पुदीनेन
Menthene	पुदानीन
Menthol	पुदान्योल
Menthone	पुदीनोन
Menthyl-	पुदीनिल-
Mercaptan	पारदवेधन
Mercaptide	पारदवेधिद्
Mercerised	मर्सरीकृत
Mercuri-	पारद-
Mercuric	पारदिक
Mercurous	पारदस
Meroquinene	मेराकुनीन
Mesaconic acid	मध्यकोनिकाम्ल
Mesidene	मेसिदिन
Mesityl	मेसीतील
Mesitylene	मेसितिलिन, त्रिदारबानीन
Meso-	मध्य-
Mesoxalic	मध्यकाष्ठिक
Meta-	मध्य
Metallic	धातविक
Methane	दारेन
Methoxy-	दारौष-
Methyl-	दारील-
Methyl alcohol	दारील मद्य
Methylamine	दारीलामिन
Methylation	दारीलकरण
Methylene	दारीलिन
,, blue	नील
Methyl violet	दारील बैंजनी
Metol	मीटोल
Milk sugar	दुग्ध शर्करा
Milling	चक्रन
Mineral oil	खनिज तैल
Mixed compound	मिश्रित यौगिक
Molasses	गुड़
Molecular	आणविक
Mono-	एक-
Monoethyl malonylurea	एकसुसल
Mono cyclic	एक-चक्रिक
Mordant	वर्णवेधक
Morphionic	अफ्युनिक
Morphin	अफीमिन
Mucic acid	विगोंदिकाम्ल
Musk	कस्तूरी

Mustard gas	सर्षप गैस
„ oil	सर्षप तैल, सरसोंका तैल
Mutarotation	क्षीण भ्रामकता
Myosin	मायोसिन
Myrosin	मायरासिन

N

Naphtha	नफ्था
Naphthalene	नफ्थलिन
Naphthalic	नफ्थलिक
Naphthaquinone	नफ्थाकुनोन
Napthazine	नफ्थाज़ीविन
Naphtho-	नफ्थो-
Naphthoic	नफ्थोइक
Naphthol-α-	नफ्थोल-क
" -β-	„ -ख
Naphthylamine	नफ्थीलामिन
Narcotine	नर्कोटिन
Nascent state	नवजातावस्था
Neosalvarsan	नवसलवर्सन
Nerol	नीरोल
Neral	नीरल
Neutral	शिथिल
Neutralise	शिथिल करना
Nickel	नकलम्
Nicotine	ताम्बुलिन
Nicotonic	ताम्बुलोनिक
Nirvanine	निर्वाणिन्
Nitramine	नोषामिन्
Nitric	नोषिक
Nitrile	नोषिल
Nitro-	नोषो-
Nitrosam ne	नोषोसामिन
Nitroso chloride	नोषोसोहरिद्
Nitrosyl chlorde	नोष सीक हरिद
Nitrous	नोषस
Nomenclature	नामकरण
Nonane	नवेन
Nondecyclic	एकोनविंशिक
Nonyl	नवील
Norekasantalic acid	निः एकोचन्दनिक अम्ल
Norekasantalol	निःएकोचन्दनोल
Normal	सामान्य
Norpinene	निःचीरीन
Novocaine	नवोषेन
Nucleic acid	केन्द्रिकाम्ल
Nucleo-protein	केन्द्र-प्रत्यामिन

O

O-(ortho)	पू-(पूर्व)
Octa-	अष्ठ-
Octane	अष्ठेन
Octyl	अष्ठील
Oil	तैल
Olefiant	तैलजनिक वायव्य
Olefines	तैलजनक
Olefinic terpenes	असम्पृक्त त्रपिन
Oleic acid	जैतूनिकाम्ल
Olive oil	जैतूनका तैल
Open chain	खुली श्रृङ्खला
Opianic acid	फीमिकाम्ल
Opium	अफीम
Optical activity	प्रकाश भ्रामक शक्ति
Orange	नारंगी
Orange II	नारंगी २
Orcinol	अर्चिल
Organo-	कार्बनिक-
Orientation	आयोजना
Ornithine	अर्निथिन
Ortho-	पूर्व-
Osazone	ओषाज़ीवोन
Osone	आेाषोन

Ovabrin	अण्डेवन
Oxal-	काष्ठल-
Oxalic acid	काष्ठिकाम्ल
Oxaluric	काष्ठमूत्रिकाम्ल
Oxalyl	काष्ठील
Oxamic	काष्ठामिक
Oxamide	काष्ठामिद्
Oxidase	ओषदेज
Oxidation	ओषदीकरण
Oxime	ओषिम
Oxindole	ओषनीलोल
Oxonium	ओषोनियम
Oxozonide	ओषओषोनिद्
Oxy-	ओष-
Oxygen	ओषजन
„ carrier	„ वाहक
Ozone	ओषोन
Ozonide	ओषोनिद्

P

P-(Para)	प (पर)
Palmitic acid	खजूरिकाम्ल
Palmitin	खजूरिन
Pancreatic juice	क्लोम रस
Papaverine	पैपावरिन
Paper	कागज़
Para-	पर-
Parabanic acid	परबनिकाम्ल
Paraffin	विषमयोगी
Paroxazine	पर ओषार्जाविन
Partial valency	आंशिक संयोग शक्ति
Pearl	मौक्तिक
Pectase	फलेज
Pectine	फलिन
Pecto-	फलो-
Pelargonic	पेलार्गोनिक
Pellitierine	पेलीटेरीन
Penta-	पंच-
Pentane	पंचेन
Pentoses	पंचोज़
Penultimate	उपान्तिम
Peppermint	पिपरमेंट
Pepsin	पेप्सिन
Peptone	पेप्टोन
Peracid	पराम्ल
Per-	पर-
Peri-position	परि-स्थान
Permanganate	परमांगनेत
Peroxidase	परौषदेज
Peroxide	परौषिद्
Perspiration	पसेव
Petrol	पेट्रोल
Phellandrene	फेलाण्ड्रीन
Phenacetin	दिव्यसिरकिन
Phenanthraquinone	दिव्यांगार कुनोन
Phenanthrene	दिव्यांगारिन
Phenanthrol	दिव्यांगारोल
Phenate	दिव्येत
Phenetidine	दिव्यीनिदिन
Phenazine	दिव्याजीविन
Phenetole	दिव्यीतोल
Phenol	दिव्योल
Phenolic	दिव्योलिक
Phenoxide	दिव्योषिद्
Phenyl-	दिव्यील-
Phenylene	दिव्यीलिन
Phloretic	फलोरिटिक
Phloroglucinol	प्रमदाद्रिनोल
Phloxime	गुलाबखिलिन
Phorone	फोरोन
Phosgene	फोसजीन, ओषहरीदिन

English	Hindi
Phosphine	स्फुरिन
Phospho-	स्फुरो-
Phosphorous	स्फुर
Phthalein	थलीन
Phthalic	थलिक
Phthalide	थलिद्
Phthalimide	थलीमिद्
Phthalyl	थलील
Physical	भौतिक
Physiological chem.	जीव रसायन
Picoline	पिकोलीन
Picramide	प्रबलामिद्
Picric acid	प्रबलिकाम्ल
Picryl	प्रबलील
Pigment	रंग
Pimelic acid	पंचदारिद्वि कर्बोषिलिकाम्ल
Pinene	चीरीण
Pinic acid	चीरिणिकाम्ल
Pinol	चीरोल
Pinonic acid	चीरोणिकाम्ल
Piperazine	मिर्चाजीविन
Piperic	मिर्चिकाम्ल
Piperidine	मिर्चीदिन
Piperine	मिर्चिन
Piperonal	मिर्चोनल
Piperonylic	मिर्चोनिलिक
Plaster	चूर्ण लेप
Poly-	बहु-
Polyterpenes	बहुत्रपिन
Polybasic	बहुभास्मिक
Polyhydric	बहु उदिक
Polymerization	संघट्ट भवन
Polypeptide	बहुपेप्टाइड
Polysachharose	बहुशर्करोज
Polyureids	बहुमूत्राद
Potassium	पांशुजम्
Prehenitic	पूर्विलिक अम्ल
Primary	प्रथम
Primuline	प्रिम्यूलिन
Proflavine	प्रवनस्पति
Propaldehyde	अग्रमद्यानार्द्र
Propane	अग्रेन
Propanol	अग्रेनोल
Proponone	अग्रेनोन
Propargyl	अग्रार्गील
Propene	अग्रीन
Properties	गुण
Propine	अग्रिन
Propiolic	अग्रोलिक
Propional	अग्रोनल
Propionic	अग्रोनिक
Propionyl	अग्रोनील
Propyl	अग्रील
Protamine	प्रत्यामिन
Protein	प्रत्यामिन
Proteolytic	प्रत्यश्लेषक
Proteose	प्रत्योज
Protocatechuic	प्रतिकत्थिकाम्ल
Protoplasm	कललरस
Prussian blue	प्रशियन नील
Prussic acid	प्रशिकाम्ल
Pseudo-	मिथ्या, मिस
Pseudo ionone	मिसत्रोन
Ptomaine	टोमेन, मत्स्यिक
Pulegone	पुलीगोन
Purgative	रेचक
Purine	प्यूरीन
Purpuric acid	परप्यूरिकाम्ल
Pyramidone	प्रभामिदोन
Pyrazine	प्रभाजीविन

Pyrazole	प्रभाजीवोल
Pyrazoline	प्रभाजीवोलिन
Pyrazolone	प्रभाजीवोलोन
Pyrene	पाइरीन
Pyridazine	पिरीदाजीविन
Pyridine	पिरीदिन
Pyridyl	पिरीदील
Pyrimidine	पिरीमिदिन
Pyro-	उष्म-
Pyromucic acid	उष्मविगोंदिकाम्ल
Pyrogallol	परमाजूफलोल
Pyrone	प्रभोन
Pyrrol	प्रभोल
Pyrrolidine	प्रभोलिदिन
Pyruvic acid	वाह्निविकाम्ल

Q

Qualitative	गुणात्मक
Quantitative	भारात्मक, परिमाणात्मक
Quaternary	चत्वारिक
Quercitin	कर्सिटिन
Quercitol	कर्सिटोल
Quercitron	कर्सित्रन
Quinaldine	कुनलदिन
Quinhydrone	कुनउदोन
Quinic	कुनिक
Quinine	कुनिन
Quino-	कुनो-
Quinol	कुनोल
Quinoline	कुनोलिन
Quinone	कुनोन

R

Racemic acid	अंगूरिकाम्ल, अभ्रामिकाम्ल
Racemisation	अभ्रामिकीकरण
Radicals	मूल
Raffinose	रैफिनोज़
Reductase	अवकरेज
Reduction	अवकरण
Refraction	आवर्जन
Rennin	रेनिन
Resin	राल
Resolution	विभाजन, पृथक्करण
Resorcin Resorcinol	रेशेनोल
Retene	रिटीन
Rhamnose	रेम्नोज
Rhodamine	रोदामिन
Rhodamine Scarlet	रोदामिन रक्त
Rhodinal	रोदीनल
Rhodinic acid	रोदिनिक अम्ल
Rhodinol	रोदीन्योल
Rhoduline Orange	रोडूलिन नारंगी
Ribose	रीबोज
Rochelle salt	रोशील लवण
Rosaniline	रोज़नीलिन
Rosebengale	गुलाब विकसिन
Rosinduline	रोजिन्दुलिन
Rosolic	रोज़ोलिक
Rubber	रबर

S

Saccharate	शर्करेत
Saccharic	शर्करिक
Saccharine	शर्करिन
Saffire	नीलम
Safranine	केशरिन
Safrol	खशोल
Salicin	विटपिन
Salicyl	विटपील
Salicylic acid	विटपिकाम्ल
Saliva	लार
Salol	विटपोल
Salt-out	लवणीकरण

Salvarsan	सलवर्सन
Sandalwood oil	चंदन तैल
Santalenes	चंदनीन
Santalol	चन्दनोल
Santene	चन्दीन
Saponification	सौबुनीकरण
Sarcine	पलिन
Sarcolactic acid	पल-दुग्धिकाम्ल
Saturated acid	संपृक्त अम्ल
Secondary alcohol	द्वितीय मद्य
Selinene	शिलीनीन
Semicarbazide	अर्धकर्बाजीविद
Semicarbazone	अर्धकर्बाजीविन
Semiconciousness	सुसुप्तावस्था
Semicyclic	अर्धचाक्रिक
Serine	सेरीन
Serum	रक्त-रस
Serum albumin	रक्तरस अण्डसित्
Sesqui-terpene	एकार्ध त्रपिन
Shale oil	शेल तैल
Shellac	शेलाक
Side-chain	पार्श्वश्रेणी
Sidonal or urol	सिडोनाल या मूत्रोल
Silico-	शैलो-
Silicon	शैलम्
Silk	रेशम, क्षौम
Simple ethers	साधारण ज्वलक
Skatole	विष्ठोल
Slow neutralisation	मन्द शिथिलीकरण
Soap	साबुन
Sobrerol	सोब्रारोल
Sodio-	सैन्धो-
Sodium	सैन्धकम्
Solanine	सोलानिन
Solubility	घुलनशीलता
Soluble starch	घुलनशील नशास्ता
Solvent naphtha	घोलक नपथा
Sorbic acid	सोर्बिकाम्ल
Sorbitol	सोर्बितोल
Sorbose	सोर्बोज
Sozolic acid	सोजोलिकाम्ल
Specific gravity	आपेक्षिक घनत्व
Specific volume	विशिष्ठ आयतन
Spirans	सर्पिन
Spirit	शराब, स्पिरिट
Stability	स्थायीपन
Starch	नशास्ता
Steam distillation	वाष्प स्रवण
Stearic acid	चर्बिकाम्ल
Stearin	चर्बिन
Stereochemistry	अवकाश रसायन
Stereoisomerism	अवकाश समरूपता
Steric hindrance	स्थित्यवरोध
Stibino-	आञ्जनो-
Stilbene	स्टिलबीन
Storax	स्टोरक्स
Stovaine	स्टोवेन
Strychnine	स्ट्रिक्निन
Styrene	स्टाइरिन
Suberic acid	सुबेरिकाम्ल
'Substantive' dyes	स्थापक रंग
Substituted	स्थापित
Substitution	स्थापन
Succinamic	रालामिक
Succinamide	रालामिद
Succinic acid	रालिकाम्ल
Succinimide	रालिमिद
Succinonitrile	राले-नोषिल
'Succinyl'	रालील
Sucrase	इक्षेज

Sucrose	इक्षोज
Sudans	सूडान
Sugar	शर्करा
Sulphanilic acid	गन्धानीलिकाम्ल
Sulphide	गन्धिद
Sulphinic acid	गन्धिनिकाम्ल
Sulpho-	गन्धो-
Sulphoform	गन्धोद्रिन, गन्धोपिपील
Sulphonal	गन्धोनल
Sulphonation	गन्धोनकरण
Sulphone	गन्धोन
Sulphonic	गन्धोनिक
Sulphonium	गन्धोनियम
Sulpho-urea	गन्धो-मूत्रिया
Sulphoxide	गन्धौषिद
Sulphur	गन्धक
Sylvestrene	सिलवस्त्रिन
Symmetry	समसंगति
Syn-	सह-
Syn aldoxime	सह-मद्यानोषिम
Synthesis	संश्लेषण
Synthetic	संश्लेषित
	T
Tagatose	टैगेटोज
Talitol	टैलीटोल
Talomucic acid	टैलोविगोंदिकाम्ल
Talonic	टैलोनिक
Talose	टैलोल
Tannic acid	टैनिकाम्ल, खालिकाम्ल
Tannin	टैनिन, खालिन, हरिमिन
Tanning	खालशोधन
Tar	तार
Tartar emetic	वमन इमलिक
Tartaric acid	इमलिकाम्ल
Tartrate	इमलेत

Tartazine	इमलाजीविन
Tartronic	इमलोनिक
Tartronyl	इमलोनील
Taurine	टौरीन
Taurocholic	टौरोकोलिक
Tautomerism	चलरूपता
Terephthalic	तटीथैलिकाम्ल
Terpadiene	त्रपाद्दीन
Terpadiol	त्रपद्वयोल
Terpane	त्रपेन
Terpanol	त्रपेनोल
Terpanone	त्रपानोन
Terpeneone	त्रपीन्योन
Terpene	त्रपीन
Terpenylic	त्रपीनिलिक
Terpin	त्रपिन
Terpinine	त्रपिनिन
Terpineol	त्रपिन्योल
Terpinolene	त्रपिनोलीन
Tertiary	तृतीय
Tervalent	त्रिशक्तिक
Tetra-	चतुर्-
Tetrakisazo-	द्वियुगल द्वयजीव-
Tetrazole	चतुर्जावोल
Tetrolic acid	चतुरोलिकाम्ल
Tetrose	चतुरोज
Thebaine	थीबेन
Theobromine	थियोब्रोमीन
Theophylline	थियोफिलीन
Theory	सिद्धान्त
Thiacetamide	गन्धकीसिरकामिद
Thiacetanilide	गन्धकीसिरकानीलिद
Thiacetic acid	गन्धसिरकाम्ल
Thiamide	गन्धकामिद
Thiazole	गन्धकाजोवोल

Thio-	गन्धकी-
Thioacetone	गन्धकासिटकोन
Thiophene	गन्धदव्यीन
Thio urea	गन्धकीमूत्रिया
Thrombase	थ्रोम्बेज
Thujene	थूजीन
Thujone	थूजोन
Thyme oil	आजवाइन का तैल
Thymo-	आजवानो-
Thymol	आजवानोल
Tiglic acid	टिग्लिकाम्ल
Tin	वंगम्
Tolamine	टोलामिन
Tolane	टोलेन
Tolidine	टोलिदिन
Tolu- quinone	टोल्वकुनोन
Toluene	टोल्वीन
Toluic acid	टोल्विकाम्ल
Toluidine	टोल्विदिन
Toluilene	टोल्वीलिन
Tolyl	टोलील
Toxin	विषिन
'Trans'	विपरि-रूप
Transformation	परिवर्तन
Trehalose	ट्रेहलोज
Tri-	त्रि-
Tropaeoline	ट्रोपोलीन
Tropein	ट्रोपीन
Tropic acid	ट्रोपिकाम्ल
Tropidine	ट्रोपिदिन
Tropine	ट्रोपिन
Tropinic	ट्रोपिनिक
Tropinone	ट्रोपिनोन
Tropaflavine	ट्रोपावनिन
Trypan red	त्रिपनलाल
Trypsin	ट्रिप्सिन
Tryptophan	ट्रिप्टोफ़ान
Turpentine	तारपीन
Types, theory of	आदर्श मूलोंका सिद्धान्त
Tyramine	टायरामिन
Tyrosinase	टायरोसिनेज़
Tyrosin	टायरोसिन
Tyrosol	टायरोसोल

U

Umbellic acid	अम्बेलिकाम्ल
Umbelliferone	अम्बेलीफेरोन
Undecane	एकादशेन
Undecylic	एकादशील
Unorganised ferments	अनियमित खमीराणु
Unsaturated	असम्पृक्त
Unsaturation	असम्पृक्तावस्था
Uramil	मूत्रामिल
Uranin	यूरानिन
Urea	मूत्रिया
Urease	मूत्रेज
Ureid	मूत्रीद
Urete	मूत्रित
Urethane	मूत्रज्वलेन
Uretidine	मूत्रिदिन
Uretidone	मूत्रिदोन
Uretone	मूत्रोन
Uric acid	मूत्रिकाम्ल
Uvitic acid	यूविटिकाम्ल

V

Valency	संयोग शक्ति
Valeric acid	बलिकाम्ल
Valero-	बलो-
Valerolactone	बलोदुग्धोन
Valerone	बलोन

Valine	वलिन	Wine	शराब
Vanillic	वेनिलिक	Wood	लकड़ी
Vanillin	वैनिलिन	Wool	ऊन
Vapour density	वाष्पघनत्व		
Vaseline	वेसलिन	X	
Vat dyestuffs	टंकीके रंग	Xanthene	जैन्थीन
Veratric	वेराट्रिक	Xanthic acid	जैन्थिकाम्ल
Veronal	वीरोनल	Xanthine	जैन्थिन
Victoria Blue	विक्टोरिया नील	Xantho-	जैन्थो-
Vidal black	वीडलश्याम	Xanthone	जैन्थोन
Vinegar	सिरका	Xylene	वनीन
Vinyl	विनील	Xylenol	वनीलोल
Violamine	वायलामिन	Xylidide	वनीदिद्
Violuric	वायलमूत्रिक	Xylidine	वनीदिन
Viscoid	स्निग्धोद्	Xylitol	वनीतोल
Viscose	स्निग्धोज	Xylo-	वनो-
Viscosity	स्निग्धता	Xylose	वनोल
Vitamine	विटेमिन	Y	
Vulcanite	गन्धकित	Yeast	यीस्ट
Vulcanization	गन्धकीकरण	Yellow	पीली, पीत
W		Z	
Walden inversion	वालडन विपर्यय	Zinc	दस्तम्
Wandering of groups	समूहोंकी भ्रमणता	Zinc dust	दस्तम् चूर्ण
Water blue	जल-नील	zinc ethyl	दस्त-ज्वलील
Wax	मोम	Zymase	प्रेरकेज
		Zymin	प्रेरकिन

PHYSICS
भौतिक विज्ञान
HEAT (ताप)

भौतिक विज्ञान सम्बन्धी कई लेख विज्ञानमें प्रकाशित हो चुके हैं जिनके आधार पर यह शब्दावली यहां प्रस्तुत की जाती है। विज्ञान परिषद् ने कई वर्ष हुए प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी० लिखित 'चुम्बक' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसके आधार पर, एक शब्दावली भी विज्ञान (१६२०, ११, ६४) में प्रकाशित हुई। प्रो० भार्गवजीके विद्युत् सम्बन्धी लेखोंके आधार पर विद्युत्के शब्दोंका संग्रह किया गया है। विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'वैज्ञानिक परिमाण' नामक ग्रन्थमेंसे भी शब्द संकलित किये गये हैं। डा० निहालकरण सेठी द्वारा संपादित एवं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित भौतिक विज्ञानकी शब्दावलीसे भी यथोचित सहायता ली गई है। ताप संबंधी शब्दोंका प्रयोग प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी द्वारा लिखित एवं विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'ताप' पुस्तकमें बहुत कुछ होचुका है।

सामान्य भौतिक गुणोंको प्रदर्शित करनेवाले शब्दोंका यहां अलग संकलन नहीं दिया गया है, क्योंकि मुख्यतः ये सभी शब्द 'भौतिक रसायन' की शब्दावलीमें अथवा भौतिक विज्ञानके अन्य भागोंमें आ चुके हैं।

आधुनिक भौतिक विज्ञान जिसके अन्तर्गत परमाणु रचना, किरण चित्रण, रौञ्जन रश्मि, रश्मि शक्तित्व, बेतारका तार आदि हैं उनका एक अलग संग्रह दिया जावेगा।

A

Absolute scale	केल्विन माप
Absolute zero	केल्विन शून्य
Absorption	शोषण
Adiabatic	अतापिक
Air thermometer	वायु-तापमापक
Atomic heat	परमाणु ताप

B

Barometer	दबाव मापक, भार मापक
Boiling point	क्वथनांक
Bolometer	किरण मापक
Bumping	फुदफुदाना

C

Caloric	कलारिक
Calorie	कलारी
Calorific	तापजनक
Calorimeter	कलारी मापक
,, bomb	बम कलारी मापक
Calorimetry	कलारी मापन
Carnot cycle	कार्नोट चक्र
Centigrade	शतांश मापक
Clinical thermometer	ज्वर तापमापक
Coefficient of expansion	प्रसार गुणक
... ,, linear	लम्बप्रसार गुणक
... ,, cubic	घनप्रसार गुणक
Cold	शीत, ठण्डा
Compression	दबाव
Condensation	द्रवीभूत होना
Conduction	चलन, चालन
Conductor	चालकता
Conservation of energy	सामर्थ्यकी अनित्यता
Convection	वहन, वाहन
Cooling	शीतलीभवन
Corresponding states	संगत अवस्थायें
Critical temperature	चरम तापक्रम

Cryohydrate कुहकोदेत
Cryophorous शीत दर्शक
Cycle चक्र
,, reversible विलोम चक्र
Cyclic operation चाक्रिक क्रिया

D

Density घनत्व
Dew point ओसांक
Diathermancy पारतापकता
Differential air thermometer भेद दर्शकवायु तापमापक
Diffusion निःसरण, प्रसरण, गौंजना
Dilatometer द्रवप्रसारमापक

E

Ebullition उबाल, क्थन
Efficiency of heat engine ताप-इञ्जिनकी उपयोगिता
Elasticity लचक
Emissivity स्कन्दनता
Energy सामर्थ्य
Entropy यंत्र समाई
Erg अर्ग
Evaporation वाष्पीभवन
Expansion प्रसार

F

First law प्रथम नियम
Force शक्ति
Free expansion स्वतंत्र प्रसार
Free path स्वतंत्र पथ
Freezing machine बरफ जमानेकी मशीन
Freezing mixture हिम मिश्रण
Freezing point द्रवांक, द्रवणांक
Frigorific फ्रिगोरिफिक
Fuse गलाना
Fusion गालन

G

Gas गैस, वायव्य
Glass कांच
Gram-calorie ग्राम कलारी

H

Heat ताप
Hygrometer क्लेदमापक
..., chemical रासायनिक क्लेद मापक
..., wet and dry bulb नम और शुष्क ताप-मापक क्लेद मापक
Hydrogen उद्जन
Hypsometer क्थनोत्सेध मापक

I

Ice calorimeter हिमकलारी मापक
Ideal heat engine आदर्श ताप-इञ्जिन
Internal energy आन्तरिक सामर्थ्य
Internal work आन्तरिक कार्य्य
Inverse square law व्युत्क्रम वर्गसिद्धान्त
Isothermal सम तापक्रमीय
Isotropic समदिक्

K

Kinetic theory गत्यर्थकसिद्धान्त

L

Latent heat गुप्त ताप
,, of fusion द्रवणका गुप्त ताप
,, of vaporisation वाष्पीभवनका गुप्त ताप
Liquefaction द्रवीकरण
Liquefied द्रवित

M

Maximum and minimum thermometer अधिकतम और न्यूनतम ताप मापक
Maximum density अधिकतम घनत्व
Mean intermolecular distance औसत अन्तराणविक दूरी

Mechanical equivalent of heat — तापका यांत्रिक तुल्यांक
Melting point — द्रवांक
„ , depression of — द्रवांकका अवकर्ष
Molecular depression — आणविक अवकर्ष
Molecular heat — आणविक ताप
Molecules — अणु
Momentum — आवेग

O

Over cooling — अति शीतलीकृत

P

Pendulum, compensated — नियोजित दोलक
Perfect gas — पूर्ण गैस
Platinum — पररौप्यम्
Pressure — दबाव
Pyknometer — द्रवघनत्वमापक
Pyroheliometer — सूर्यताप मापक
Pyrometer — उष्मता मापक

Q

Quantity of heat — तापकी मात्रा

R

Radiation — विकिरण
Radiomicrometer — सूक्ष्म विकिरण मापक
Regelation — पुनर्घनीभवन

S

Safety lamp — अभय दीप
Salt solution — लवण घोल
Saturation — संपृक्तता
Second law — द्वितीय सिद्धान्त
Solidification — घनीकरण
Specific heat — विशिष्टताप
Specific volume — विशिष्ट आयतन
Spectrum — किरण-चित्र
Spheroidal state — गोलीय अवस्था, तारकीयावस्था
Steam calorimeter — भापकलारीमापक
Sublimation — उर्ध्वपातन
Supersaturation — अति संपृक्तता

T

Temperature — तापक्रम
Temperature-entropy diagrams — तापक्रमयंत्रसमाईचित्र
Thermocouple — ताप-विद्युत्-युग्म
Thermodynamics — तापगति विज्ञान
Thermometer — तापमापक
Thermometric — तापमापिक
Thermopile — ताप-वैद्युत-पुंज
Thermoscope — तापदर्शक
Total heat — पूर्ण ताप
Transference — रूपान्तरित होना
Triple point — त्रिकविन्दु

U

Unit — इकाई

V

Vapour — वाष्प
„ density — वाष्पघनत्व
„ pressure — वाष्पदबाव
Velocity — वेग
Volume — आयतन

W etc

Water — जल, पानी
Weight thermometer — भारतापमापक
Wet and drybulb hygrometer — नम और शुष्क तापमापक-क्लेद मापक
Work — कार्य्य
Zero absolute — केल्विन शून्य

LIGHT (प्रकाश)

A

Aberration — अपेरण
" chromatic — वर्णापेरण
Absorption — शोषण
Accomodation — संविधान
Achromatic — वार्णिक
Actinic ray — क्रियाशील किरण
Aelotropic media — विषमदिक् माध्यम
Ametropic eyes — अदूरदर्शक नेत्र
Anomalous dispersion — अनियमित विस्तरण
Antinode — चलबिन्दु
Aperture — छिद्र
Aplantic foci — अनपेरक नाभियां
Aqueous humour — तरलरस
Astigmatism — दृष्टि वैषम्य
Axis of lens — ताल का अक्ष

B

Biaxal crystal — युगलाक्षी रवा या मणिभ
Bi-prism fringes — युगल त्रिपार्श्विक धारियां
Blind spot — अंध बिन्दु
Bolometer — किरण मापक
Brightness — चमक

C

Calcite — कैलसाइट
Calorescence — तापदीप्ति
Candle — बत्ती
..., standard — प्रामाणिक बत्ती
Cardinal points — आवश्यक बिन्दु
Caustic (formed by reflection) — किरण स्पृष्ट
Centre of curvature — वक्रताका केन्द्र
Centrifugal force — केन्द्रावसारी शक्ति
Chromatic aberration — वर्णापेरण
Circular measure — गोलीयमाप
Circular motion — गोलीय गति
" polarisation — गोलीय दिग्प्रधानता
Colour — रंग
Colour photography — वर्ण चित्रण
Comet — धूमकेतु
Concave grating — नतोदर ग्रेटिंग
" mirror — नतोदर दर्पण
Condenser — संग्राहक
Conjugate foci — अनुबद्ध नाभियां
Continuous spectrum — निरन्तर या अविच्छिन्न किरण चित्र
Convergent lens — संसृत ताल
Cornea — कनीनिका
Corpuscular theory — कणिका सिद्धान्त
Critical angle — चरम कोण
Crossed lens — प्रतिकूलताल
Cross wire — स्वस्तिक
Crystalline lens — नेत्र कांच
Crystals — रवा, मणिभ
Curvature — वक्रता

D

Deflection — विक्षेप
Density — घनत्व
Deviation — विचलन
Diffraction — वर्तन
Diffraction grating — वर्तक ग्रेटिंग
Dioptre — ताल माप
Dispersion — विस्तरण
Dispersive power — विस्तरण बल
Distortion of image — विम्बकी विकृति
Divergent — अपस्तृत
Double image prism — द्वयबिम्ब त्रिपार्श्व
Double refraction — द्वयावर्जन

E

Effect	असर
Elasticity	लचक
Electron	ऋणाणु
Elliptic polarisation	दीर्घ वृत्तीय दिग्प्रधानता
Emmetropic eye	दूरदर्शक नेत्र
Energy, potential	सामर्थ्य, अवस्था सामर्थ्य
" kinetic	गत्यज सामर्थ्य
Equivalent lens	तुल्यचित्रक ताल
Ether, luminiferous	तेजोवाही आकाश
External conical refraction	बाह्य शांक्विक आवर्जन
Eye	नेत्र, आंख
Eye piece	चक्षु ताल

F

Far point	दूर बिन्दु
Field lens	क्षेत्र वर्धक ताल
Fluorescence	चमक
Fluted spectrum	पट्टीदार किरण चित्र
Focal distance	नाभि दूरी, नाभ्यन्तर
Focal length	नाभ्यन्तर
Focal lines	नाभि रेखायें
Focus	नाभि

G

Grease spot photometer	तैल बिन्दु प्रकाश मापक

H

Half period zones	अर्ध कालिक खंड
Half shade	अर्धावरण
Half wave plate	लहरार्धपट
Harmonic motion	आवर्त्तिक गति
Homogeneous immersion	समांशीनिमज्जन
Hypermetropia	दीर्घदृष्टि

I

Illumination	प्रकाशन
Image	बिम्ब
Imaginary	काल्पनिक
Index of refraction	आवर्जन संख्या
Infra red rays	परालाल किरण
" spectrum	परालाल किरणचित्र
Insolation	द्युमकोत्तेजन
Intensity	तीव्रता
Interference	व्यतिकरण
Interferometer	व्यतिकरण मापक
Internal conical refraction	आन्तरिक शांक्विक आवर्जन
Internal reflection	आन्तरिक परावर्तन
Intrinsic luminosity	निजी दीप्ति
Inverse square law	व्युत्क्रम वर्गनियम
Irradiation	उद्दीपन
Isotropic media	समदिग् माध्यम

K

Kathode rays	ऋणोद रश्मि
Kinetic energy	गत्यर्थक सामर्थ्य

L

Labile ether	चपलाकाश
Lantern, magic	चित्र दर्शक लालटैन
Lens	ताल
Light	प्रकाश
Line-spectrum	रेखादार किरणचित्र
Luminiferous ether	तेजोवाही आकाश
Luminosity	दीप्ति

M

Magic lantern	चित्रदर्शक लालटैन
Magnification	अभिवर्धन
Magnifying lens	अभिवर्धक ताल
Mercury lamp	पारद लैम्प
Metallic reflection	धात्विक परावर्तन

Metre मीटर
Mica अभ्रक
Micromillimetre माइक्रो सहस्रांश मीटर
Micron माइक्रन
Microscope अनुवीक्षण यन्त्र
Minimum deviation न्यूनतम विचलन
Mirror दर्पण
" plane सम दर्पण
" spherical गोलीय दर्पण
" ellipsoidal दैर्घ्य दर्पण
" paraboloidal पारवलयिक दर्पण
Multiple reflections अपवर्त्य परावर्तन
Myopia निकट दृष्टि

N

Near point निकट बिन्दु
Nodal point अचल बिन्दु
Nodes अचलबिन्दु
Normal spectrum समान्तर किरण चित्र

O

Object वस्तु
Objective वस्तुताल
Opacity अपारदर्शकता
Ophthalometer नेत्रमापक
Ophthalmoscope नेत्र परीक्षक
Optic axis प्रकाश सम्बन्धी अक्ष
Optical bench प्रकाश मंच

P

Pencil of light प्रकाशावली
" astigmatic ,, दृष्टि विषम
" oblique ,, तिर्यक् प्रकाशावली
" centric ,, केन्द्रिक प्रकाशावली
" excentric ,, उत्केन्द्रिक प्रकाशावली
Pendulum लङ्गर, दोलक
Penumbra उपच्छाया
Periodic motion आवर्तगति
Persistence of vision दृष्टि निर्बन्ध
Phakoscope वक्रतादर्शक
Phase कला
Phase change कला परिवर्तन
" difference कलान्तर
Phosphorescence दमक
Photography चित्र खींचना
Photometry प्रकाशमापन
Pile of plates पटराशि
Pinhole camera सूचीछिद्र कैमरा
Polarisation दिग् प्रधानता
Polariscope दिग् प्रधानदर्शक
Polarised ray दिग् प्रधान रश्मि
Pole of mirror दर्पण का ध्रुव
Potential energy गत्यर्थक सामर्थ्य
Power of lens तालकी शक्ति
Presbyopia जरा दृष्टि
Principal focus मुख्य नाभि
Principal plane मुख्य तल
Principal points मुख्य बिन्दु
Prism त्रिपार्श्व

Q

Quarter wave plate चतुर्थांश लहर पट
Quartz बिल्लौर

R

Radian रेडियन
Radiation विकिरण
Radium रश्मिम्
Radius of curvature वक्रताका व्यासार्ध
Rainbow इन्द्रधनुष
Ray किरण, रश्मि
Real image वास्तविक बिम्ब
Red लाल

Reduced eye दुर्बल नेत्र
Reflection परावर्तन
Refraction आवर्जन
Refractive equivalent आवर्जनतुल्यांक
" index आवर्जन संख्या
Residual rays अवशिष्ट किरणें
Resolving power विश्लेषण बल
Retina कृष्ण पटल, रेटिना
Reversibility of rays किरणों की उत्क्रमणीयता
Rigidity दृढ़ता
Rings वलय, कुंडली
Rotation परिभ्रमण, घूर्णन

S

Saccharimeter शर्करामापक
Safety lamp अभयदीप
Saturn rings शनि वलय
Scattering of light प्रकाश का परिक्षेपण
Selective absorption विशिष्ट शोषण
Selenite सेलेनाइट
Sextant षष्ठांश मापक
Shadow छाया
Shear विरूपण
Sign संकेत
Sine ज्या
Sky-colours आकाश वर्ण
Solar spectrum सूर्य्यका किरण-चित्र
Solid angle ठोसकोण
Spectacles उपनेत्र, चश्मा
Spectrometer किरणचित्रमापक
" adjustment समायोजना
" calibration अनुमापित करना
Spectrum किरण चित्र
" band or fluted पट्टीदार किरण चित्र
Spectrum continuous निरन्तर किरण चित्र
" line रेखा किरण चित्र
Spherical aberration गोलापेरण
Spherometer गोलाई मापक
Standard candle प्रामाणिक बत्ती
Stellar motion नाक्षत्रिक गति
Strain तनाव,
" compressional संपीड्यतनाव
" shearing विरूपक तनाव
Stress चांप
Stroboscope विच्छिन्न दर्शक

T

Telescope दूरदर्शक
Thick lenses मोटे ताल
Total reflection पूर्ण परावर्तन
Tourmaline टुरमलीन
Transparency पारदर्शकता
Transverse waves खड़ी लहरें

U

Ultra-violet पराकासनी
Umbra प्रच्छाया
Uniaxal एकाक्षी

V

Vector दैशिक
Velocity वेग
Vibrating particles कम्पितकण
Vibrations कम्पन
Virtual image काल्पनिक बिम्ब
Visual purple आक्षिक पीतरंग
Vitreous humour सान्द्ररस

W

Waves, लहर, तरंग
" stationary स्थिर तरंग
" transverse खड़ी तरंग
Wavelength लहर लम्बाई
Wave surface लहर पृष्ठ

X

X-rays　रौञ्जन रश्मि

Y

Yellow spot　पीत बिन्दु

Z

Zone plate　मंडल पट
Zones　मंडल

——

SOUND (ध्वनि विज्ञान)

A

Absolute measurement　निरपेक्षमाप
Absorption　शोषण
Acceleration　वेगान्तर
Acoustics　ध्वनि विज्ञान
Adiabatic　अतापिक
Aeolian tones　इश्रोलियन सुर
Air pressure　वायु-दबाव
Alternate vortices　एकान्तर भंवर
Alternating current　उलटो सीधी धारा
Amplitude　झोटा
Analysis　विश्लेषण
Annular jet　वलयाकार धार
Antinode　चलविन्दु
Asymmetrical system　असम संगतिक संस्थान
Auditory　शाब्दिक
Axial　अक्षीय

B

Bars　छड़
Bassoon　बैसून
Beat notes　धड़कन स्वर
Beats　धड़कन
Bells　घंटियां
Bent bar　झुके हुए छड़
Blowing organ pipes　बांसुरी फूंकना या धौंकना
Bow　धनुष
Bowed strings　गजिततार
Bridges　घोड़ी, परदा

C

Carbon transmitter　कर्बन प्रेषक
Cents　शतांश
Character of keys　खूंटियों (कुञ्जियों) का स्वरुप या स्वभाव
Chords　चापकर्ण, संघात
Clarinet　क्लेरिनेट
Cochlea　कोकलीया
Combinational tones　समवायसुर
"Comma" from violin　वेलासे कामा
Compensating pistons　प्रतीकारक पिस्टन
Composition of vibrations　कम्पनोंका संयोजन
Condensation in waves　लहरोंकी सघनता
Conical pipes　शंकाकार नलिका
Consonance　संवादन
Convective equilibrium　वहन साम्य
Cornet　कोर्नेट
Correction for open ends　खुले सिरोंके लिये शोधन
Coupled vibrations　युग्मित कंपन
Criterion　लक्षण
Cylinderical shell　बेलनाकार कोष

D

Damped　क्रमोनगत
,, harmonic motion　क्रमोनगत आवर्तगति

Decrement	कमी
Differential equation	चलन समीकरण
Differential tone	वियोजित सुर
Diffraction	आवर्तन
Dilatation	प्रसार
Direction of sound	शब्द दिशा
Discharge of condenser	संग्राहक-विसर्जन
Discord	बेसुरापन
Displacement	हटाव
Dissonance	विस्स्वरता, बेसुरापन
Distortion	विकार, विरूपता
Diverging	फैलते हुए
Drum skin	ढोलकी खाल, तबली
Dust figures	धूल चित्र

E

Ear	कान, श्रोत्र
Echo	प्रतिध्वनि
Elastic	लचकीली
Elasticity	लचक
Elongation	बढ़ाव
Energy	सामर्थ्य
Epoch	आदिकला
Equal temperament	सममाजित परिवर्तन
Extended solid	प्रसरित ठोस

F

Fall plate	गिरनेवाला पट
Fixed-fixed bar	स्थायी स्थायी छड़
Fixed-free bar	स्थायी-मुक्त छड़
Flute	बांसुरी
Forced vibration	बलात् कंपन
Forks	दुसूल
" tuning	बजता हुआ दुसूल
Free-free bar	मुक्त-मुक्त छड़
Frequency	भूलन संख्या

G

Gases	वायव्य
Generalised bridge	सामान्य घोड़ी
Gramophone	ग्रामोफोन
Guitar	सितार

H

Harmonic	आवर्तिक
" echoes	आवर्तिक प्रतिध्वनि
" motion	आवर्तिक गति
Harmonical	सुरीला
'Harmonics'	नादवर्ग
Harmonium	हारमोनियम
Harp	हार्प, स्वर मंडल
Highest pitch	उच्चतम स्वर
Historical pitch	ऐतिहासिक स्वर

I

Impedance	रुकाव
Inductance	उपपादकत्व
Intensity	तीव्रता, प्रभाव
Interference	व्यतिकरण
Intermediate bridges	मध्यस्थसेतु
Interval	अन्तर
Intonation	सप्तक
Isothermal elasticity	समतापिक लचक

J

Jet	धार
Just intonation	शुद्ध सप्तक

K

Kaleidophone	कंपनवक्र दर्शक
Kettle drum	परदा
Key	खूंटी
Kinematic viscosity	गत्यर्थ स्निग्धता
Kundt's tube	कुण्ड नली

L

Large vibration	बड़ा कम्पन
Limit of audibility	सुनाई पड़नेकी सीमा
Limitation	सीमा, मर्य्यादा
„ of superposition	„ अधिष्ठापनकी
'Lissajous' figures	लिसाजू-चित्र
Logarithmic	लघुरिक्थ
„ cents	„ शतांश
„ spirals	लघुरिक्थ सर्पिल
Longitudinal	अनुदैर्ध्य
„ vibration	„ कम्पन
„ waves	„ लहर
Loudness	तीव्रता
Lowest pitch	निम्नतम स्वर

M

Maintenance of vibration	कंपनको क्रमित रखना
Major chord	दीर्घ चापकर्ण (संघात)
Mandolin	मैण्डोलिन
Manometric flames	गैस दबावमापक ज्वालायें
Mass of spring	कमानीकी मात्रा
Mean tone	मध्यम सुर
„ temperament	मध्यम सुरका संस्करण
Medium	मध्यम
Membrane	तबली, झिल्ली
Metal reeds	धातुकी जीभ
Micrometer	सूक्ष्ममापक
Microphone	सूक्ष्मदर्शक
Minimum	न्यूनतम
Minor chord	लघु चापकर्ण (संघात)
Modulation	संक्रमण
Momentum	आवेग
Monochord	सुरमापक
Musical arc	संगीत सम्बन्धी चाप
Musical instrument	वाद्य यन्त्र, बाजा
Musical interval	स्वर-अन्तर
Musical notation	संगीत संकेत
Mute	म्यूट

N

Narrow tube	पतली नली
Nodes	अचल बिन्दु
Noise	शोर, कोलाहल
Notes	नाद
Null method	स्थिर विधि

O

Objective	वास्तविक
Oboe	ओबो
Octave	सप्तक
Open end	खुला सिरा
Open pipe	खुली बांसुरी
Orchestra	गान मंच
Organ pipe	आर्गन बांसुरी
Oscillations	कम्पन
Oscillatory discharge	झूलित विसर्जन
Over-blown pipe	बहुत फूंकी हुई बांसुरी

P

Partial reflection	आंशिक परावर्तन
Period	काल
Permanent field of telephone	टेलीफोन का स्थायीक्षेत्र
Phase	कला
Phase change	कला-परिवर्तन
Phase difference	कलान्तर
Phonautograph	ध्वनि स्वलेखक
Phonograph	ध्वनि लेखक
Phonoscope	ध्वनि दर्शक
Pianoforte	पियानो
Pipes	बांसुरी
Pitch	स्वर

Plane waves	सीधी तरंग
Plates	पट
Plucked string	नखिततार
Portamento	पोर्टामेण्टो
Pressure of vibration	कम्पनका दबाव
Production ot sound	ध्वनि की उत्पत्ति
Progressive wave	उन्नति शील लहर
Projection	प्रलम्बता या विक्षेप
Propagation	प्रसार

Q

Quality	गुण

R

Radiation pressure	विकिरण दबाव
Ratio	निष्पत्ति अनुपाम
Reaction of resonator	अनुनादक की प्रतिक्रिया
Rectilinear propagation	सीधी रेखा में चलना
Reeds	जीभ
Reflection	परावर्तन
Refraction	आवर्जन
Registers of voice	ध्वनि का लेखा
Resistance	बाधा
Resisted oscillation	वाधित भूलन
Resolution of strains	तनावोंका विश्लेषण
Response	उत्तर
Resonance	अनुनाद
Resonator	अनुनादक
Resultant	लब्ध
" tones	लब्ध स्वर
Reverberation	गूंज
Rhythm	लय
Rigidity	दृढ़ता
Ring	वलय
Ripple tank	लहरदार तालाब
Rods	छड़

S

Saxophone	सैक्सोफोन
Scale (musical)	सप्तक, ग्राम
Scattering of sound	शब्द वितरण
Sensations	समवेदना
Setting of disc	सूचकता
Sharp tone	तीव्र स्वर
Shear	सरकाना, विरूपण
" simple	साधारण सरकन
Simple elongation	सादा बढ़ाव
Simple harmonic motion	साधारण आवर्तगति
Singing Flames	गानेवाली ज्वालायें
Siren	सायरन
Small oscillation	छोटे कम्पन
Sonometer	इक-तारा
Sound board	तुम्बी
Speaking arc	बोलता चाप
Speed of sound	ध्वनि वेग
Spherical pendulum	गोल लंगर
Spring pendulum	कमानीदार लंगर
Stationary wave	स्थिर लहर
Stopped pipe	रोधित बांसुरी
Strain	तनाव
Stress	प्रभाव
Struck strings	हथौड़ीतार
Summational tones	योगी नाद
Superposition	उपर्यागम
Sympathetic vibration	सह-कम्पन
Synthesis of tones	नादोंका संश्लेषण
Syphon recorder	सायफन लेखक

T

Telephony तारवाणी
Terminal bridges सिरेकी या सिरान्त घोड़ी
Tones नाद
Tonometer नाद मापक
Torsion एंठन
Torsional vibration एंठन-कम्पन
Total reflection पूर्ण परावर्तन
Transit of sound ध्वनि प्रसार
Transverse vibration खड़ा कम्पन
Trombone ट्रौम्बोन
Trumpet तुरही
Tuning fork नाद-दुमूल

U

Ultra-sonic waves पराशाब्दिक तरंगें
Undamped oscillation अनावरोधित कम्पन
Underblown pipe कम फूंकी हुई बांसुरी
Upper partials उच्च नाद

V

Valved instrument कपाटीय यन्त्र
Variation बदल
Velocity of sound ध्वनिका वेग
Vibrating system कम्पित संस्थान
Vibration कम्पन
Viola वायला
Violin बेला
Violoncello वायनसेलो
Volume elasticity आयतनलचक
Vowel quality स्वरिक गुण
Vowel स्वर

W

Wave motion तरंगगति
Whistle सीटी
Wind हवा

X

Xylophone काष्ठवाणी

Z

Zone कटिबन्ध

ELECTRICITY AND MAGNETISM
(विद्युत् और चुम्बक)

A

Absolute निरपेक्ष
Absolute electrometer निरपेक्ष विद्युन्मापक
Accumulator परिवर्त्तीय बाटरी
Aclinic line झुकाव शून्यरेखा
Agonic lines हटावशून्य रेखा, बेहटाव रेखा
Alternating current उलटीसीधी धारा
Alternator " धारा जनक
Ammeter एम्पीयरमापक, एम्पमापक
Ampere एम्पीयर
Amplitude झोटा
Angular acceleration कोणीय वेगान्तर
" displacement कोणीय हटाव
Anion धनयवन
Anode धनोद
Arm भुजदण्ड, बाजू
Armature आर्मेचर
Astatic स्वतंत्र
Atmospheric electricity अन्तरिक्ष विद्युत्
Atom परमाणु
Atomic number परमाणु संख्या
Atomic structure परमाणु रचना
Attracted disc आकर्षित प्याली
Attraction आकर्षण
Axial line अक्षीय रेखा
Axis अक्ष

B

Balance	तुला, तराज़ू
Ball ended magnet	गोलीदार चुम्बक या बनैटी चुम्बक
Ballistic galvanometer	प्रक्षेप धारामापक
„ method	प्रक्षेपविधि
Bar magnet	दंड चुम्बक, चौकोर चुम्बक
Battery	बाटरी
Bench	घोड़ी, बंच
Bichromate cell	द्विरागेत बाटरी
Bifilar suspension	दुसूती लटकन
Bound charges	बद्ध संचार (उपपादन)
Broadside position	मध्यरेखास्थिति

C

Cable	समुद्री तार
Calibration	अनुमापन
Canal rays	धनोद किरणें
Capacity	समाई
Capillary electrometer	सूची विद्युन्मापक
Carey-foster bridge	केरी फास्टर जाल
Cell	बाटरी
Centre	केन्द्र
C. G. S. units	श० ग० स० इकाइयां
Charges	संचार, आवेश मात्रा
Charging	संचारन, भरना
Charged	संचारित, आवेशित, भरा हुआ
Chemical effects	रासायनिक प्रभाव
Choke coils	घोट बेठन
Chromic acid cell	रागिकाम्ल बाटरी
Circuit	कुंडली
Coefficient	गुणक
Coercive force	निग्रहबल, घातक शक्ति
Coercivity	निकालनेवाली शक्ति
Coherer	संकोचक
Coil	बेठन
Core	लट्ठा
Compass	कुतबनुमा, दिग् दर्शक
Component	अवयव
Composition of magnets	चुम्बकोंकी रचना
Concentration cells	सांद्र-बाटरी
Condensation experiments	संग्रह प्रयोग
Condenser	संग्राहक
Conductance	चालकता
Couduction	चलन
Conductivity	चालकता
„ equivalent	तुल्यचालकता
Conductors	चालक
Constants	स्थिरांक
Contact potential	स्पर्शावस्था
Contact theory	स्पर्शसिद्धान्त
Convection discharge	वाहन विसर्ग
Copper-plating	तांबेकी कलई करना
Corrections	शोधन
Coulomb	कूलम्ब
Couples	युग्म, युगल
Critical pressure	चरम दबाव
Crystal structure	रवेकी गठन
Current	धारा
Current circuits	धारा चक्कर
Currents, induced	उपपादित धारायें
Cylindrical magnet	गोलदण्ड चुम्बक, बेलनाकार चुम्बक

D

Damping	क्रमीनता अवरोधन
Decay of current	धाराका गिराव
Declination	चुम्बकीय हटाव
Deflection magnetometer	विचलन चुम्बकत्व मापक
Deflections	विचलन, हटाव, घुमाव
Demagnetisation	चुम्बकत्व निकालना
Density of charge	संचार या आवेशमात्राका घनत्व
Detectors	सूचक
Determinations	नाप
Diamagnetism	विचुम्बकता
Dielectric	माध्यमिक
Dielectric constant	माध्यमिक संख्या
Dimension	परिमाण और विस्तार
Dip	झुकाव
Dip circle	झुकावमापक वृत्त
Dipping needle	झुकाव सूचक
Direction	दिशा
Discharge	विसर्ग, विसर्जन
Displacement	हटाव
Disruptive discharge	वेधित विसर्ग
Dissociation theory	विश्लेषण सिद्धान्त
Distribution of charge	मात्रा की बांट
Divided touch	पृथक स्पर्श
Doublets	जोड़ी
Dry cells	सूखी बाटरी
Dynamo	डायनमो, धारा जनक
Dyne	डाइन
Dynamometer	सामर्थ्यमापक

E

Earth magnet	पार्थिव चुम्बक
Efficiency	क्षमता
Electric (al)	वैद्युतिक
Eelectric current	वैद्युत् धारा
Electricity	विद्युत्
Electrification	विद्युत्करण
Electrified	विद्युतीकृत
Electrochemical	विद्यत रासायनिक
Electrode	बिजलोद
Electrodynamometer	विद्युत् बलमापक
Electrolysis	विद्युत् विश्लेषण
Electrolyte	विद्युत् विश्लेष्य
Electrolytic	विद्युत्-
Electromagnetic	विद्युत चुम्बकीय
Electromognet	विद्युत् चुम्बकी
Electrometer	विद्युत मापक
Electromotive force	विद्युत् संचालक शक्ति
E. M. F.	वि० स० श०
Electromotive intensity	विद्युत् संचालक प्रभाव या तीव्रता
Electrcn	ऋणाणु
" theory	ऋणाणु सिद्धांत
Electrophorous	विद्युत् उपपादक
Electroscoscope	विद्युत् दर्शक
Electrostatic induction	स्थिर विद्युत् उपपादन
Emanaton	उत्पत्ति
"End" position	अक्षीयरेखा स्थिति
Energy	सामर्थ्य
Equations	समीकरण
Equipotential	समानावस्था वाला
Equivalent	तुल्य
Error	त्रुटि

F

Farad	फैराड
Ferromagnetics	लोह चुम्बकीय
Field	क्षेत्र

Field of force शक्ति-क्षेत्र
Field strength क्षेत्र की तीव्रता
Flux density प्रभाव घनत्व
Force शक्ति
Frequency झूलन संख्या
Fuses फुसतार

G

Galvanometer धारा मापक
" astatic " स्वतन्त्र
" Dead beat " अप्रक्षेप
" ballistic " प्रक्षेप
" Mirror " दर्पण
" moving coil " चलित वेठन
" tangent " स्पर्श
Gauss गौस

H

Hearing effect तापकारी प्रभाव
Horizontal component क्षितिज अवयव
Hysteresis पिछड़न

I

Impedance रुकावट
Inclination झुकाव
Induced charges उपपादित मात्रा
Inductance आवेश
Induction आवेश
Induction coil आवेश वेठन
Inductor आवेशक
Insulation रोधन
Insulator रोधक
Intensity of field क्षेत्र का प्रभाव, तीव्रता
" of magnetic force चुम्बकीय प्रभाव
" magnetisation चुम्बकत्व का प्रभाव
Interrupter भंजक
Ions यवन
Ionisation यापन
Irreversible अपरिवर्तीय
Isoclinal समझुकाववाली
Isogonal सहटाव वाली

K

Kathode ऋणोद्
Kathode rays ऋणोद् किरणें
Kation ऋण यवन
Keepers रक्षक

L

L and M series घ और द श्रेणी
Lag पिच्छट
Laminated magnets तहदार चुम्बक
Lamp लम्प
Law of parallelogram of forces शक्ति समानान्तर चतुर्भुजका नियम
Left hand rule बायें हाथका नियम
Leyden jar लीडेन घट
Light प्रकाश
Lines of force शक्ति-रेखायें
Linkage बन्धन
Local action स्थानिक प्रक्रिया
Lodestone प्राकृतिक चुम्बक, चुम्बक पत्थर
Logarithmic decrement लघुरिक्थ ह्रास
Longitudinal tension दैर्ध्यतनाव
Loss of energy सामर्थ्य का नाश

M

Magnet चुम्बक
Magnetic चुम्बकीय
" dip " झुकाव
" equator " मध्यरेखा
" field " क्षेत्र

Magnetic force चुम्बकीय शक्ति
,, flux ,, प्रवाह
,, induction ,, आवेश उपपादन
,, meridian ,, याम्योत्तर
,, moment ,, घूर्ण
,, poles ,, ध्रुव
Magnetisation चुम्बकीकरण
Magnetising force चुम्बककारकशक्ति
Magnetograph चुम्बकत्व-लेखक
Magnetometer चुम्बकत्व-मापक
Magneton चुम्बकाणु
Mass मात्रा
Measurements माप, परिमाण
Mechanical यान्त्रिक
Meg ohm प्रयुत ओह्म
Migration constant भ्रमण अंक
Molecular rigidity आणविक दृढ़ता
Moment of inertia मात्रा का घूर्ण
Motor मोटर
Multicellular voltmeter बहुकोश वोल्टमापक
Mutual induction पारस्परिक आवेश

N

Negative ऋणात्मक
,, glow ,, ज्योति
Neutral उदासीन, शिथिल
Nickel plating नकल की कलई
Non magnetic अचुम्बकीय
Null point स्थिर बिन्दु

O

Oblong दीर्घाकार
Ohm ओह्म
Oscillation झोटा, कम्पन
Oscillator झूलक या झूलनेवाला
Oscillatory discharge झूलित विसर्जन

P

Paramagnetic अनुचुम्बकीय
Period of vibration झोटे का समय
Permanent magnetism स्थायी चुम्बकता
Permeability प्रवेशता मापक
Permeameter प्रवेशक
Phase difference कलान्तर
Photoelectric effect प्रकाश-विद्युत्-असर या प्रभाव
Pivot कीली
Plate condenser पट-संग्राहक
Pointer सूचक
Polarisation दिक्प्रधानता
Polarity ध्रुवता
Pole छोर ध्रुव
Pole strength ध्रुवशक्ति
Positive rays धनात्मक रश्मि
Post office box डाकघर बकस
Potential energy अवस्था सामर्थ्य
Potential difference अवस्था भेद
,, gradient ,, गिराव
Potentiometer अवस्था भेदमापक
Power बल
Precautions सावधानियां
Pressure दबाव
Primary cells प्राथमिक बाटरी
Primary coil प्राथमिक बेठन
Pull खिंचाव
Pulsations धड़कन

Q

Quadrant चतुर्थांश
Quantum क्वाण्टम
Quantity of electricity विद्युत्‌की मात्रा

R

Radiation	विकिरण
Radioactive changes	रश्मिशक्तिक परिवर्तन
Radiactivity	रश्मिशक्तित्व
Radio-balance	सूक्ष्ममापक तुला
Radiomicrometer	सूक्ष्मविकिर मापक
Rays	किरण, रश्मि
„ alpha	एलफा
„ beta	बीटा
„ gama	गामा
„ X	रौञ्जन
„ positive or canal	धनात्मक
Reactance	थाम
Reciprocal effect	उलटा प्रभाव
Rectification	शोधन
Rectifying detector	शोधन सूचक
Reduction factor	आवश्यक गुणक
Reflecting magnetometer	परावर्तक चुम्बकत्वमापक
Reluctance	रोक
Remanence	बकाया
Repulsion	निराकरण, हटाव
Residual effect	अवशिष्ट प्रभाव
Resistance	बाधा
„ in series	शृङ्खला या जंजीर बाधा
„ in parallel	हार
Resolution	विभाजन
Resultant	लब्ध
Reversible cells	विपर्यय बाटरी
Right hand rule	दहिने हाथका नियम
Rotating coil	घूमती हुई वेठन

S

Saturation current	सम्पृक्त धारा
Screen	परदा
Screening effect	प्रारदिक-असर
Secondary cells	गौण बाटरी
Secondary coil	उपवेठन
Self-induction	स्वावेश
Shells	पत्राकार, कोष
Shunt box	हार
Shunt	हार
Shunting	हार डालना या लगाना
Silver plating	चांदी करना
Simple galvanic cell	साधारण गलवनी बाटरी
Simple harmonic motion	साधारण आवर्त गति
Single touch	एक-स्पर्श
Sliding condenser	खिसकता संग्राहक
Soft iron	मुलायम लोहा
Solenoid	नलाकार
Solution pressure	घोल दबाव
Spark	तड़ित्
„ discharge	तड़ित् विसर्जन
Sparking potential	तड़ित् अवस्था
Specific resistance	विशिष्ट बाधा
Spherical condenser	गोल संग्राहक
Spiral	सर्पिल
Standard cell	प्रमाण बाटरी
Steel	इस्पात
Stirrup	रकाब
Surface	पृष्ठ
Susceptibility	ग्राह्यता

T

Tables	सारिणी
Tangent	स्पर्शरेखा
„ "A" pasition of gauss	'क' स्थिति
„ "B" pasition of gauss	'ख' स्थिति

Tangent galvanometer स्पर्शरेखीय धारामापक
Telegraphy तार लेखी
„ wireless बेतारका तार लेखी
Telephony तारवाणी
Temperature तापक्रम
„ coefficient तापक्रम गुणक
Tension तनाव
Thermal ताप-तापीय
Thermocouple ताप युगल
Thermo electro circuit ताप-विद्युत् चक्कर
Thermoelectricity ताप-विद्युत्
Thermopile ताप विद्युत् पुंज
Torsion एंठन
Torsion balance ऐंठनतुला
Transformers परिवर्तक
Transport number वाहक संख्या
Tubes of force शक्ति नलिकायें
Twist ऐंठन

U

Uniform एकसा
Unit इकाई
Unlike असमान

V

Velocity वेग
Vertical component ऊर्ध्व या खड़ा अवयव
Vibration कम्पन
Virtual काल्पनिक
Volt वोल्ट
Voltaic cell वोल्टीय बाटरी
Voltameter धारामापक
Voltmeter वोल्टमापक

W

Watts वाट
Wattmeter वाटमापक
Wave तरंग, लहर
Wheatstone bridge व्हीटस्टनका जाल
Wireless telegraphy बेतारका तार लेखी
Work कार्य

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Yijnana, the Hindi Organ of the Yernacular Scientific Society Allahabad.
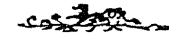
अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर व्रजराज,

एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,

म० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०

भाग ३१

कन्या १९८७

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

औद्योगिक रसायन

कृषिशास्त्र

गणित और ज्योतिष

जीवनचरित्र

परिभाषा

भौतिक विज्ञान

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३२ } तुला, संवत् १९८७ { संख्या १

मंगल सितारेका वृत्तान्त

[ले० श्री० एम० एस० कमठान]

कई सौ वर्षोंसे ज्योतिषी मंगल तारेका हाल जाननेके लिये बड़े-बड़े प्रयत्न कर रहे हैं और पिछली तीन शताब्दिओंमें उन्होंने उसके विषयमें अनेक अद्भुत बातें मालूम कर ली हैं। आजकल भी योरुप और अमेरिकाके ज्योतिषी मंगलके वृत्तान्तको निश्चित करनेके हेतु सब भांतिके उपायोंमें लगे हुये हैं। यह लोग इस बातके बड़े उत्सुक रहते हैं कि कब मंगल पृथ्वीके निकट आये तो अपनी अपनी दुरबीनें लगा कर अपने पड़ोसी भूमण्डल को देखें और उसके विषयमें नई नई बातें मालूम करें।

जब यह दोनों पृथ्वियां एक दूसरेके निकट आती हैं तो इसे सम्मुखता (oppositions) कहते हैं। ऐसा हर छब्वीसवें महीने पर होता है। सम्मुखताके समय ही में यह सितारा भली भाँति देखा भाला जा सकता है। अतः हर नई सम्मुखता हमारे इस सितारेके ज्ञानको थोड़ा बहुत बढ़ा देती है।

यही कारण है कि सम्मुखताके निकट बड़े बड़े ज्योतिषीगण अपनी दुरबीनों तथा भिन्न भिन्न वैज्ञानिक यन्त्रोंको ठीक कर तैयार रहते हैं।

इन खोजोंका उद्देश्य मंगलका जलवायु मालूम करना तथा मंगलकी नहरोंकी उत्पत्ति और उनका स्वभाव जानना है। साथ ही साथ वहांके निवासियोंका तथा उनकी व्यवस्थाओंका स्वभाव जाननेका भी प्रयत्न हो रहा है।

मंगलका वृत्तान्त भली भांति समझनेके लिये यह उपयोगी है कि हम उसकी खोजके इतिहास पर संक्षिप्त रूपसे दृष्टि डालें। ऐसा करनेसे हमको

प्रतीत होगा कि हमारा मंगलके विषयका वर्तमान ज्ञान किस प्रकार धीरे धीरे बढ़ा है, तभी हम यह जान सकेंगे कि मंगल की घटनाओंको समझनेके हेतु मार्गमें कितनी कठिनाइयां पड़ती हैं और देखेंगे कि किस प्रकारसे अत्यन्त श्रेष्ठ मस्तिष्क वाले वैज्ञानिकोंने एक एक कर उनका सामना किया और कितना अधिक धन उन्होंने अपने उद्देश्यको सफल करनेमें व्यय किया।

१६१० ई० में जब विख्यात गेलीलियोने अपनी नई बनाई हुई दुर्बीन को आकाशकी ओर मोड़ा तो मंगल उसकी दृष्टिमें तो अवश्य ही पड़ा किन्तु उसको वहांके सागरों तथा महाद्वीपोंके कोई चिह्न दिखलाई नहीं दिये। वह केवल इतना ही कह सका कि मंगल कभी कभी उभरे हुये चन्द्रमाके समान मालूम होता है।

१६३० ई० में नेपल्स नगरके निवासी फौण्टेनाने गेलीलियोकी दुर्बीनसे अधिक शक्तिशाली दुर्बीन ली और उसके द्वारा मंगलको देखा तो उसे सितारेके तल पर भूरे चिह्न मालूम हुये। यह चिह्न अपने स्थान बदलते हुये जान पड़े, कारण कि सितारा अपनी कीली पर घूमता है।

ह्यूजीहेन्स और हुक महाशयोंने फिर इन चिह्नोंको और भी अच्छी भांति १६५६ ई० में देखा। ह्यूजिन्सने सबसे प्रथम मंगलकी शक्लें भी खींचीं यद्यपि यह शक्लें साफ़ न थीं तो भी ज्योतिषियोंको इनसे बहुत सहायता मिली।

इसके पश्चात् इटली देशके कैसीनी नामी ज्योतिषीने एक अत्यन्त शक्तिवाले दुर्बीनसे काम लिया तो उसे साफ़ साफ़ बहुतसे भूरे चिह्न सितारेके मण्डल पर दिखलाई दिये। उसने यह भी मालूम किया कि वही चिह्न प्रति २४ घंटे ४० मिनटके पश्चात् फिर दिखलाई देने लगते हैं और तदनुसार उसने मंगलके दिवसको २४ घण्टे ४० मिनट का माना। यह समय प्रायः ठीक ही था क्योंकि यथार्थमें मंगल का दिवस २४ घण्टे ३७ मिनट, २२.५८ सेकिण्ड का होता है।

१७१९ ई० में मेराल्डीको दो अत्यन्त चमकीले पैवन्द मंगलके ध्रुवोंके समीप दिखलाई दिये। यह कदाचित् हमारी पृथ्वी की ध्रुवी टोपियोंके समान मंगलकी ध्रुवी टोपियां थीं। उसने विशेषकर यह लिखा है कि यद्यपि ध्रुवी टोपियां अपना स्थान बदलती हुई मालूम होती हैं तो भी वे समय समय पर छोटी बड़ी होती रहती हैं।

मंगलके ज्ञानका साधन उचित रूपसे अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें आरम्भ हुआ जब कि सर विलियम हर्शेलने अपने शक्तिशाली प्रतिविम्बकारी दूरदर्शक यन्त्रका उपयोग किया। बहुत दिनोंकी निरन्तर देखाभालीके पश्चात् उसने यह निश्चित किया कि भूरे चिह्न जो पूर्व ज्योतिषियोंकी दृष्टिमें पड़े थे वे यथार्थमें सागर थे, चमकीले भाग मंगलके महाद्वीप थे तथा मंगलमें स्थल जलसे अधिक था। मेराल्डीकी ध्रुवी टोपियोंको उसने भी ठीक माना और कहा कि वे रूप तथा डीलडौलमें ऋतुओंके अनुसार बदलती रहती हैं। उसने इस बातका भी प्रमाण दिया कि मंगलमें यथेष्ट घनत्वका वायुमण्डल भी है। इसका कारण उसने यह बतलाया कि किसी किसी समय पर मंगलके ऊपरी भाग कुछ कालके लिये—विशेषकर बादलोंकी घनी तहोंसे, ओझल हो जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें मंगलको देखनेके लिये और भी उत्तम रूपसे निरन्तर प्रयत्न होते रहे। बियर और मेडलर नामक दो जर्मनीके ज्योतिषियोंने मंगलके मण्डलको भली भाँति देखा भाला। यद्यपि उनके यन्त्रका छेद केवल चार ही इंच था तो भी अति तीव्र तथा प्रवीण होनेके कारण उन्होंने उससे ऐसी अच्छी तरहसे काम लिया कि वे सितारेका नक्शा उतारनेमें सफल हुए। थोड़े ही दिन बीते थे जब कि प्रौक्टरने अति उत्तम तथा साफ़ नक्शा बनाकर संसारको दिखला दिया।

इसके पश्चात् टर्बी, लौकीयर, कैसर, ब्राउनिंग तथा ग्रीन इत्यादि दर्शकोंने मंगलके वृत्तान्तको सम्पूर्ण रूपसे जाननेके लिये बहुत परिश्रम किया।

साथ ही साथ अन्य रीतियोंका भी प्रयोग होता रहा। ह्यू जिन्सने १८६७ ई० में वैज्ञानिकोंके सबसे अधिक शक्तिशाली किरणचित्रदर्शक (Spectroscope) को भी, जो कि रोशनीके विभागमें काम आता है, मंगलकी ओर दौड़ाया। उसका अभिप्राय यह था कि किसी प्रकार यह मालूम करें कि मंगलमें भाप उपस्थित है या नहीं और उसने अपने नवीन यन्त्र द्वारा यह निश्चित कर दिया कि मंगलमें भाप वर्तमान है। परन्तु पहले पहल कुछ अन्य ज्योतिषी इसके विरुद्ध रहे, कारण कि उनको मंगलमें भापके कुछ भी चिह्न नहीं दिखाई दिये। इस बातका सम्पूर्ण प्रमाण १९१४ ई० में हुआ जब स्लिफ़रने फिरसे यह निश्चित किया कि मंगलमें भाप वर्तमान है।

मंगलकी जांचके इतिहासमें १८७७ ई० अति घटनाशाली प्रतीत हुई। प्रथम तो यह है कि मंगल हमारी पृथ्वीके बहुत निकट आगया जहां वह पूर्णरूपसे देखा भाला जा सकता था। मिलन नगरके सिश्च्यापेरेलीने मंगलकी प्रत्येक उत्तम अवसर पर जांच की तो उसे अवश्य अपने परिश्रमोंका फल मिला। उसने एक ऐसी अद्भुत् बात निकाली जिसके स्वीकृत होने में बहुत दिन लगे।

उसको मंगलके स्थलभागोंमें काली रेखाओं का एक जाल दिखलाई दिया। यह रेखायें बिल्कुल सीधी थीं और उनमेंसे किसी किसी की लम्बाई ३,००० मील तक थी। सिश्च्यापेरेली तुरन्त ही समझ गया कि यह अनोखी रेखायें पानीकी नहरोंके अतिरिक्त और कुछ न थीं क्योंकि वे मंगलके समुद्रोंको एक दूसरेसे मिलाती थीं।

१८७९ और १८८१–८२ में उसने इन नहरों की ओर फिर अपने नेत्र लगाये तो उसे मालूम हुआ कि उनमेंसे बीस रेलकी पटरियोंकी भांति दोहरी थीं जिनके बीचकी दूरी २०० मीलसे ले ४०० मील तक थी।

पहिले पहल जब यह अनोखी बात बहुतोंके समझमें न आई तो वे बेचारे सिश्च्यापेरेलीकी दृष्टिको दोष देने लगे और कहने लगे कि यह सब मन गढ़न्त है।

किन्तु होते होते अन्य दर्शकोंने भी भिन्न भिन्न देशोंमें इन नहरोंके चिह्न पाये। पेरोटिन और थोलनने नीसमें, बर्टनने अमरीकामें और स्टेनली विलियम्सने इङ्गलिस्तानमें उनको देखा। अब यह सिद्ध हो गया कि मंगलमें नहरें अवश्य हैं।

प्रोफ़ेसर पिकेरिंगने १८९२ में यह निश्चित किया कि नहरें केवल स्थलके भागों हीमें न थीं किन्तु वहांके सागरोंमें भी थीं। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि पहले चाहे कुछ भी रहा हो अब मंगलके महासागरोंमें पानी नहीं है अर्थात् अब वे सूखे हैं।

इसके पश्चात् धनवान डाक्टर लौवेलने एक बड़ीभारी वेधशाला (Lowell observatory) केवल मंगल की ही दशा जाननेके हेतु खोली। उसने ४० इञ्च व्यास तककी दुर्बीनें लीं और वह कई अन्य ज्योतिषियोंके साथ मंगलकी जाँचमें लग गया। उसने अपने उद्योगोंमें सफलता प्राप्तकी और कई नवीन बातें मालूम कीं। उसने यह निश्चित किया कि मंगलके भू-मण्डलमें बुद्धिमान् तथा चतुर मनुष्य निवास करते हैं और वहाँकी नहरें इन्हींकी कृति हैं।

मंगलकी छानबीनके इतिहासका संक्षिप्त रूपमें देख कर अब हमको उसके मण्डलके विषयकी वर्तमान बातों पर ध्यान देना उचित है।

अब यदि एक पुरुष किसी मानमन्दिरमें जाकर मंगलको ध्यानसे देखे तो प्रथम उसे तेज नारङ्गी रंगका एक गोल कुण्डल दिखलाई देगा जो एक बड़ी गोलीके समान मालूम पड़ेगा। इस कुण्डल पर नक्शेकी भाँति परस्पर काले और चमकीले क्षेत्र दिखलाई देंगे। इस प्रकार सितारेको कई रातों निरन्तर देखनेसे जैसे जैसे सितारेके भिन्न भिन्न भाग उसकी परिक्रमा द्वारा दृष्टिमें आते जायेंगे वैसे ही इन चिह्नोंके भिन्न भिन्न क्रम दिखलाई देने लगेंगे।

यह चिह्न स्थिर होते हैं तो भी ऋतुओंके अनुसार उनके रंग बदलते रहते हैं और कभी कभी वे सफेद और पीले बादलों के कारण धुंधले हो जाते हैं तथा दिखलाई नहीं देते। सफेद बादल सचमुचमें पानीकी भाप ही के होते हैं किन्तु पीले बादलोंके विषयमें मत भेद है। कुछ ज्योतिषी इन्हें रेतीके तूफ़ान बतलाते हैं और कुछ इन्हें भी पानी की भाप के ही बने हुये बादल कहते हैं। पीले बादलों की ऊँचाई लगभग १५,००० फुट है परन्तु सफेद बादल इनसे भी अधिक ऊँचाई पर रहते हैं। सम्भव है कि पीले बादल भी यथार्थमें सफेद ही हों कारण कि वे मंगलके वायु-मण्डलके अधिक घनत्व द्वारा देखे जाते हैं।

काले क्षेत्र जो मंगलके सागरोंके नामसे विख्यात हैं हरे व पीले रंगके सर्पके समान दिखलाई देते हैं। सितारेका शेष भाग नारङ्गी रंग का निपट रेगिस्तान है। मंगलमें जलका भाग स्थलके भागका केवल $\frac{3}{5}$ है।

ध्रुवी टोपियां जिनके विषयमें पहिले कुछ कहा गया है, सदा रूप बदलाती रहती हैं। जब मंगलमें शरद ऋतु होती है और सर्वस्व वायुमण्डल शीतल हो जाता है तब यह टोपियां बहुत बढ़ जाती हैं और सितारेके अधिकांश मण्डल पर फैल जाती हैं। वसन्त ऋतु आने पर यह सिकुड़ने लगती हैं और ग्रीष्म ऋतुके अन्त तक बिलकुल लुप्त हो जाती हैं।

यह बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है कि यह टोपियां बरफ़की बनी हों किन्तु कुछ छिद्रान्वेषियोंका कथन है कि वे जमी हुई कर्बन द्विओषिद (Carbon dioxide) की भी हो सकती हैं। अन्य ज्योषियोंका विचार है कि वे पालेके बादलोंके लगातार जमाव हैं और उनकी मोटाई केवल कुछ इंच ही है।

परन्तु एक ऐसी घटना देखी गई जिससे इस कल्पनाका प्रमाण नहीं मिलता! वह यह कि जब मंगलके चतुर्भुज सम हो जाते हैं तो प्रायः सीमा (Terminator) के निकट सफ़ेद कुण्डल या धब्बे दिखलाई देते हैं। यह सीमा (Terminator) सूर्योदयकी रेखा है जहां कि रातमें जमा हुये पालेके बादलोंके चिह्न मिलते हैं।

दूसरी बात जो इसी कल्पना पर प्रभाव डालती है, यह है कि ध्रुवी टोपियां किसी विशेष सुडौल रूपमें नहीं सिकुड़ती हैं। सिकुड़न केवल उन पैवन्दोंमें होती है जो कि बीचके भागके सिकुड़ने पर पीछे पड़ जाते हैं। यह पैवन्द बहुत दिनों तक रहते हैं और प्रतिवर्ष उसी स्थानमें आ जाते हैं।

इस बातका लोगोंको बहुत पहिले हीसे सन्देह था कि भूरे भाग यथार्थमें सागर नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि ऋतुओंका हेर फेर इन भागोंमें भी विदित होता था। यद्यपि इन भागोंके रूप तथा विस्तार सदा एकसे ही रहते हैं तो भी कभी कभी तो वह साफ़ दिखलाई देते हैं और कभी कभी बिलकुल ही नहीं दिखलाई देते। प्रोफ़ेसर पिकेरिंगने जब यह देखा कि इस भागमें भी नहरें कटी हुई हैं तो यह पूर्णरूपसे सिद्ध हो गया कि इन भूरे भागोंमें सागर नहीं हैं, कारण कि नहरें केवल स्थल हीमें बनाई जाती हैं, न कि जलमें।

इसका दूसरा प्रमाण यह है कि यदि इन समुद्रोंमें कोई द्रव पदार्थ होता या पानीकी कितनी ही पतली एक तह मंगलमें होती तो बड़े बड़े दुर्बीनों द्वारा इनमें सूर्यकी परछाई कमसे कम कणके समान तो अवश्य ही चमकती हुई दिखलाई देतीं किन्तु ऐसा कभी भी नहीं देखा गया यद्यपि उपाय अनेक किये गये।

जब मंगलमें कृत्रिम नहरोंका होना सिद्ध हो गया तभी यह भी निश्चित हो गया कि वहां प्राणी भी हैं। हाल हीमें मंगलके वायुमण्डल पर बहुत ध्यान दिया गया है क्योंकि वहांकी रहन सहन पर इसका प्रभाव सम्भव ही है। उपयुक्त जल वायु होनेके कारण यथेष्ट सम्भावना है कि इस सितारेमें प्राणियोंका निवास है।

मंगलमें यथेष्ट घनत्वका वायुमण्डल भी है, क्योंकि वायुमण्डलके बिना ध्रुवी टोपियोंका बनना असम्भव था। उनके बननेमें कुछ ऐसे भापपदार्थ धीरे धीरे जमा हुये होंगे जो वायुमण्डलमें डालते

रहते हैं। यह भाप जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कभी कभी बादलोंके रूपमें वायुमण्डलमें भ्रमण करते हुए दिखलाई देते हैं।

लिक मानमन्दिरके प्रोफ़ेसर राइटने १९२४ में एक नवीन विधिसे मंगल को देखना आरम्भ किया। इस प्रवीण ज्योतिषीने भिन्न भिन्न रंगों की रोशनी-में मंगलकी तसवीरें उतारीं। बैंजनी और तेज़ लाल रंगोंकी रोशनीमें तसवीरें खींचनेसे बहुत सफलता प्राप्त हुई। बैंजनी रोशनीमें तसवीर लेनेसे सितारे-के मण्डल का पूर्ण ब्योरा साफ़ नहीं आता ।केवल बढ़ी हुई ध्रुवी टोपियांही दिखलाई देती हैं। यथार्थमें यह तसवीर सितारेके वायुमण्डलके अतिरिक्त अन्य किसी की नहीं हैं जिससे यहप्रत्यक्ष हो जाता है कि या तो ध्रुवी टोपियोंका वायुमण्डलसे अधिक सम्बन्ध है या वे घने बादलोंकी तहोंसे ढकी हुई हैं।

इसके विरुद्ध उन तसवीरोंमें मंगलके मण्डलकी दशा बहुत साफ़ दिखलाई देती है जो कि तेज़ लाल रोशनीमें खींची गई हैं। इन दोनों रंगोंकी रोशनी-में उतारी हुई तसवीरोंको नापनेसे मंगल के वायु-मण्डल की लम्बाई कमसे कम ६० मील की मालूम होती है तथा उसका घनत्व पृथ्वीके वायुमण्डलके घनत्व का केवल $\frac{१}{२}$ है।

ज्योतिषियोंने देखा कि मंगलके जीवन जाननेके लिये प्रथम वहांका तापक्रम जानना आवश्यक है। लौवेल मानमन्दिर और विलसनकी चोटी पर मंगलका तापक्रम जाननेके लिये अनेक प्रयत्न किये गये। दोनों स्थानके देखनेवालोंको सफलता प्राप्त हुई और दोनों ही स्थानोंकी छानबीन एक दूसरे-से बहुत मिलती है। उनका कहना है कि मंगलमें वायुमण्डल कम होनेके कारण वहाँ का तापक्रम बहुत बदलता रहता है। यद्यपि गर्मीमें मध्याह्न कालमें वहाँकी भू-मध्य रेखा पर तापक्रम ५०° फ़. तक पहुँच जाता है तो भी रात्रिमें हिमांकसे भी नीचे गिर जाता है।

अब मंगलकी लहरोंकी उत्पत्ति तथा उनके स्वभाव पर ध्यान देना उचित है क्योंकि उन्हींके द्वारा इस प्रश्नका उत्तर मिलता है कि मंगलमें प्राणी हैं या नहीं। डाक्टर लौवेलके अनुसार यह नहरें कृत्रिम हैं तब तो वहाँ के निवासियों ही ने इन्हें किसी विशेष उद्देश्यसे बनाया होगा अतः इस विषय-में वहाँ के निवासियोंके उद्देश्य पर भी दृष्टि डालना अच्छा है।

मंगल एक ऐसी पृथ्वी है जहाँ कि बहुत दिनोंसे जल चुक गया है और उसके समुद्रोंके स्थानमें सूखी भूमि निकल आई है। अतः जो कुछ भी थोड़ा बहुत जल प्राण रक्षाके हेतु मिल सकता है वह ध्रुवी टोपियों ही में है। इसके थोड़े होनेके कारण इस बातकी आवश्यकता हुई कि उसके एक एक बूंदको बड़ी सावधानीसे काममें लायें और जहाँ तक हो मंगलके अधिकतर भागोंको उससे सींचें। अतः मंगलके बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी लोगों ने यह देखा कि पानीकी कमताईके कारण वे अत्यन्त भयङ्कर गतिको प्राप्त होंगे, उन्होंने बहुत दिनों पहिले ही इन नहरोंके अद्भुत जाल (८०००,००० मील लम्बा) को रचा। इस प्रकार वह नहरों द्वारा ध्रुवी टोपियों से पानी लेकर अपनी रेतीली पृथ्वीको सींचने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि इस कठिन कार्यके साधनमें बड़े भारी परिश्रम तथा समुद्योग की आवश्यकता हुई होगी। परन्तु मनुष्य अपने जीवनको सुरक्षित रखनेके लिये क्या नहीं करता। मंगल की भूमि की आकर्षण शक्ति हमारी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की तिहाई है अतः उनको पृथ्वी पर नहरें खोदने में जितना परिश्रम करना पड़ता उसका केवल तिहाई उनको मंगलमें करना पड़ा होगा। इस बातमें अवश्य ही परमात्माने उनकी सहायता की।

देखने पर भी यह नहरें पानी लेजाने वाली ही जान पड़ती है। प्रथम तो इन नहरों का जल ध्रुवी टोपियोंसे आरम्भ होता है। द्वितीय, मंगल में वसन्त ऋतुके आगमन ही से ये टोपियां पिघलने लगती हैं और तब नहरों में पानी बढ़ जाने के कारण

वे अधिक साफ़ दिखलाई देती है। डाक्टर लौबेल ने तो यह भी लिखा है कि वसन्त, ऋतुमें हम केवल नहरों ही को नहीं किन्तु उनके किनारोंकी खड़ी हुई उपज, पेड़ पौधों इत्यादिको भी देख सकते हैं।

इस छोटेसे लेख को पढ़नेसे दो बातों पर अवश्य ही ध्यान जाता है। प्रथम तो यह कि यद्यपि मंगल के विषयमें कई आवश्यक बातें हमको मालूम हो गई हैं तथापि हमें उसके विषय में अभी बहुत सी बातें और भी मालूम करनी है। किन्तु हर्ष तो इस बात का है कि हमारे पूज्य ज्योतिषीगण अपने उद्योगोंसे हार मानकर नहीं बैठ गये हैं प्रत्युत नई नई रीतियोंसे अपनी प्रवीण बुद्धिके द्वारा प्रसन्नता पूर्वक धैर्य्य धारण कर नित्य नवीन बातें मालूम कर रहे हैं और इसमें सन्देह नहीं कि एक समय अवश्य ही आवेगा जब कि मंगल हीसे नहीं किन्तु अन्य सितारोंसे भी बोलचाल तथा आना जाना भी हो जायगा।

द्वितीय, इस बातको देखकर खेद होता है कि जितने भी प्रयत्न मङ्गल की दशा जाननेके लिये किये गये हैं उनमें भारतवासियोंका अंश शून्यमात्र ही है, यद्यपि यही भारतवर्ष ज्योतिष विद्याके हेतु जगत् में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। क्या भारतमें इस प्राचीन गौरवका पुनरोत्थान न होगा? अवश्य होगा और फिर भारत वर्ष अपनी ज्योतिषके महत्त्वमें संसारको नीचा दिखला देगा। आशा भी है कि शीघ्रही भारतके ज्योतिषी मङ्गलकी जांचमें उचित भाग लेंगे और संसारके अन्य ज्योतिषियोंसे इस क्षेत्रमें एक पग आगे ही रहेंगे।

यक्ष्मा

४ दानेदार गुल्म।

[ले० श्री कमलाप्रसाद जी, एम० बी०]

क्रमागत

(Granulomata)

ये एक प्रकारकी ऐसी अंग-विकृतियां हैं जिनमें किसी न किसी प्रकारका जीर्ण प्रदाह (chronic inflammation) हो चुका है और जिनमें शरीरके तंतुओंने अपनी रक्षाके लिए अथवा क्षति पूर्तिके लिए कुछ ऐसे कार्य्य किये हों जिनके फल स्वरूप एक ऐसे पिंडकी उत्पत्ति हुई हो जो आकार प्रकारमें एक गुल्म सा दिखाई देता हो। किन्तु सारा परिवर्तन किसी कीटाणुके प्रभावसे होता है और इसके साथ साथ शरीरके विषाक्त होनेके भी कुछ लक्षण अवश्य पाये जाते हैं, जैसे ज्वर, शक्ति-क्षय इत्यादि। ये दानेदार गुल्म यक्ष्मा, कुष्ठ, फिरंग रोग (गर्मी) ग्लैण्डर तथा अन्य एक स्ट्रिप्टोथ्रिक्स (Streptothrix) नामक कीटाणुके आक्रमणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें देखे जाते हैं।

यक्ष्मा

इसके कीटाणु रोगके बहुतसे केन्द्रोंमें पाये जाते हैं और एक न एक समय किसी क्षतमें अपने विकसित रूपमें अवश्य ही प्रकट होते हैं। किसी विशेष क्षतमें इनकी संख्या निर्धारित नहीं रहती और जीर्ण क्षतमें बहुधा नहीं दिखाई पड़ते, किन्तु ऐसे भी क्षत मिलते हैं जिनमें ये सदैव वर्तमान रहते हैं। ये कीटाणु चाहे किसी अंगमें क्यों न प्रवेश करें इनके प्रभाव से शारीरिक परिवर्तन एक से ही होते हैं। उदाहरणार्थ परिविस्तृत कला (उदरकी सबसे बड़ी झिल्ली—(Peritoneum) को लीजिये। आक्रमणके उपरान्त—

दो दिनों तक—बहु शक्ति केन्द्रित श्वेताणु (Polymorphonuclear leucocytes) अधिक संख्यामें उस स्थानमें पहुँच जाते हैं और यक्ष्मा कीटाणुओं का भक्षण भी कर जाते हैं। तीसरे दिन बहुतसे लसीकाणुओंका प्रादुर्भाव होता है और ये अधिकाधिक कीटाणुओं को भक्षण करने लगते हैं। ये लसीकाणु प्राणीके मृत्यु-पर्यन्त क्षत स्थानमें डटे हुए अपने कार्य्यमें निरत रहते हैं। इस समय यदि झिल्लीकी परीक्षाकी जाय तो देखा जायगा कि यक्ष्मा कीटाणुओंने अनेक स्थानों पर अपने केन्द्र स्थापित कर लिये हैं। २४ घण्टोंके भीतर ही इन केन्द्रोंके निकटवर्ती शरीरके स्थावर तंतु विस्तृत होने लगते हैं एवं टूट टूट कर भ्रष्ट होते हैं। यह तंतु-भ्रंश बढ़ता जाता है और तीन से पांच दिनों में प्रत्येक यक्ष्मा केन्द्रके चारो ओर कोषों का एक घेरा बन जाता है। घेरने वाले कोष गोल वा अंडाकार होते हैं और इनमें अधिक जीवन-मूल रहता है। इन्हीं कोषोंमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हैं और कभी तो इतनी अधिक संख्यामें पाये जाते हैं कि यह ज्ञात होता है कि वे इनके (कोषोंके) भीतर बढ़ने भी लगते हैं।

६ से १० दिनमें इन कोषोंके चारों ओर क्षुद्र गोल कोषोंका एक और घेरा बन जाता है और इस समय तक रक्त-धारामें क्षुद्र लसीकाणुओंकी संख्या बढ़ जाती है।

११ से १४ दिनोंमें इन यक्ष्मा-गुल्मोंमें एक विशेष परिवर्तन होता है। इन अन्तिम क्षुद्र गोल कोषों की गुच्छ-केन्द्रकी ओरकी दीवारें विलीन होने लगती हैं, इनका जीवन-मूल खुर्चे कांच की नांई दानेदार मालूम होने लगता है और इनके शक्ति-केन्द्र छिन्न भिन्न हो जाते हैं अथवा लुप्त हो जाते हैं। इस क्रियाको अधःक्षेपण क्रिया (caseation) कहते हैं। यह क्रिया केन्द्रसे लेकर सीमान्त की ओर अग्रसर होती जाती है जिससे यह गुल्म एक दम दानेदार हो जाता है। कोषोंकी परिधि विलीन हो जाती है, उनके शक्ति-केन्द्र का पता नहीं रहता और गुल्मके चारों ओर शरीरके स्थावर (fixed) कोषोंके विस्तारसे एक घेरा तैयार हो जाता है। इस केन्द्रमें यक्ष्मा कीटाणु बहुधा देखे जाते हैं। किसी किसी गुल्ममें (विशेष कर जब ये धीरे धीरे प्रस्तुत होते हैं) कुछ दानव कोष (Giant cells) देखे जाते हैं, जिनमें प्रत्येकमें बहुतसे शक्ति केन्द्र रहते हैं और जिनकी परिधि बहुत टेढ़ी मेढ़ी रहती है अथवा जिनका जीवन मूल खुर्चे कांच की नांई दानेदार रहता है। इन कोषोंमें भी यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हैं। ये दानव कोष सम्भवतः कई कोषों-के भ्रष्ट होकर मिल जानेसे तैयार होते हैं।

यक्ष्मा गुल्ममें अधःक्षेपण क्रिया अथवा कोषों-का विनाश कीटाणुओं और उनसे उत्पन्न विषके कारण होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इनके (कीटाणु एवं विषके) अतिरिक्त रक्तनलिकाओंके बन्द हो जानेके कारण (जो नष्ट होकर बन्द हो जाती हैं अथवा भ्रष्ट कोषों द्वारा अवरुद्ध हो जाती हैं) भी इन कार्यों (अधःक्षेपण इत्यादि) में सहायता मिलती है। छोटे छोटे गुल्मोंके मिल जाने पर बड़े बड़े गुल्म तैय्यार हो जाते हैं जिनका मध्य भाग द्रवित होकर बह जाता है और इस प्रकार शरीर में यक्ष्मा द्वारा उत्पन्न बड़े बड़े गर्त्त (cavities) बन जाते हैं।

यक्ष्मा गुल्म (विशेष कर जीर्ण अवस्थाओंमें) के चारों ओरके कोषोंसे सौत्रिक तंतुओंका विस्तार होता है। पहले छोटी छोटी रक्तनलिकायें दानेदार पिंडके रूपमें प्रकट होती हैं जिनमें असंख्य भ्रमणशील लसीकाणु और दानवकोष दीख पड़ते हैं। इस दानेदार पिंडमें भी अधःक्षेपण क्रिया हो सकती है किन्तु बहुधा इसमें घने दृढ़ सौत्रिक तंतुओं की उत्पत्ति होती है जिन पर यक्ष्मा कीटाणुओंका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार कभी कभीइन सौत्रिक तंतुओं द्वारा यक्ष्मा गुल्म चारों ओरसे पृथक् होकर बन्द हो जाता है और कुछकालो-परान्त नवोत्पन्न-तंतु इस पर आक्रमण करते हुए इसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं जिससे अन्तमें

यह गुल्म एक सूत्रमय गांठ सा रह जाता है। इस रोग युक्त गुल्म में खटिकम् जम (calcification) जाता है, किन्तु कभी कभी अधःक्षेपण केसे पदार्थ पाये जाते हैं और अणुवीक्ष्ण यंत्र द्वारा देखने पर इनमें दानवकोष पाये जाते हैं।

यदि शारीरिक तंतु अधिक बलवान हुए—(अपने अधिक बलके कारण वा यक्ष्मा-कीटाणुओंकी शक्तिहीनताके कारण) तो नाशकारी क्रियायोंकी अपेक्षा कोषोंकी पुनरुत्पत्ति एवं विस्तार अधिक होता है जिसका परिणाम यह होता है कि गुल्मोंके स्थान पर सौत्रिक गांठें पायी जाती हैं, वा उनमें खटिकम् बैठ जाता है। यदि तंतु अपनी शक्तिहीनता वा कीटाणुओंकी प्रबलताके कारण बलहीन हुए तो नाशकारी क्रियायें इतनी अधिक होंगी कि अन्तमें शरीरका नाश हो जाता है।

यक्ष्मा
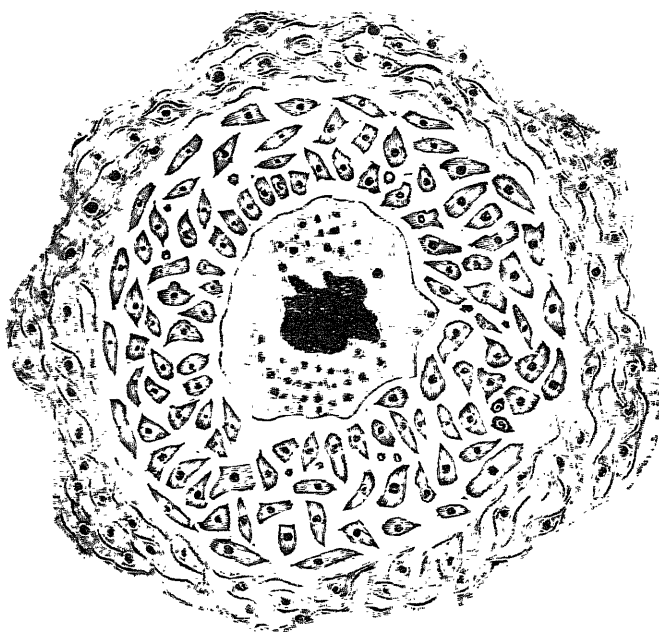
चित्र सं० ७
मध्यमें—विगलित दानव कोष
दूसरी तह—एपिथेलियल कोष
तीसरी तह—(सबसे बाहर)—लसीकाणु

नग्न चक्षु दृश्य

आरम्भमें एक प्रकारका फाइब्रिन युक्त तरल पदार्थ दीख पड़ता है, तदनन्तर निर्धारित क्षुद्र गांठें दिखाई पड़ती हैं। पहले तो ये गांठें छोटी, गोल, अपारदर्शी और भूरे एवं कुछ कुछ श्वेत रंगकी होती हैं और एकाध स्थानमें इकट्ठी रहती हैं वा बहुत दूर तक फैल जाती हैं। ये गाठें स्वयं बढ़ कर या गांठोंसे मिल कर बहुत बड़ी हो जाती हैं और एक बड़े गुल्मके आकारकी जान पड़ती हैं। ये गुल्म पीले रंगके वा पीले और हरे रंगके होते हैं और इनमें असमतल गर्त्त भी पाये जाते हैं। कुछ जीर्ण गुल्म सीप केसे श्वेत और बहुत बड़े होते हैं क्योंकि इनमें सौत्रिक तंतुओंकी उत्पत्ति हो जाती है और कभी कभी खटिक भी जम जाता है।

यक्ष्मा

अंग-व्यवच्छेद

१ श्वासोच्छ्वास संस्थान

इसके अन्तर्गत है—
स्वरनल (Larynx)
टेंटुआ (Trachea)
वायुनल (Bronchi)
फुफ्फुस (Lungs)
फुफ्फुसावरण (Pleura)

स्वर नल

यह वह अवयव है जहां वायु नासिकारंध्रों वा मुखद्वारा कंठमें पहुंच कर सर्व प्रथम (श्वास लेनेके समय) प्रवेश करता है। यह एक नलके आकारका है जिसका ऊपरका मुखकंठ (Phorynx) में खुलता है और निम्न भाग टेंटुएमें मिल जाता है। इसके ऊपर कागमुख (Epiglottis) नामका एक ढक्कन लगा रहता है, जो आवश्यकतानुसार खुलता और बन्द होता है और वायुके अतिरिक्त और किसी वस्तुको स्वरनलमें प्रवेश नहीं करने देता।

स्वरनलका दूसरा काम है स्वर (Voice) की उत्पत्ति करना।

टेंटुआ

वह एक बड़े आकारका नल है जो स्वरनलके अधोभागसे आरम्भ होकर वक्षके भीतर प्रायः इसकी (वक्षस्थलकी) सारी लम्बाईके चतुर्थांश तक प्रवेश करता है और वहां पर दाहिने और बायें दो वायुनलोंमें विभक्त हो जाता है। इसकी लम्बाई पुरुषोंमें ४" से ४½" तक और स्त्रियोंमें ३½" से ४" तक होती है और इसका व्यास ¾" से १" तक होता है। यह सम्पूर्ण नल एक प्रकारकी कठोर झिल्लीका बना रहता है जिसमें यहां वहां कारटिलेजकी अंगूठियां लगी रहती हैं। ये अंगूठियां संख्यामें १६ से २० रहती हैं और प्रत्येक अंगूठी पीछेकी ओर कुछ दूर तक कटी रहती है, जिससे यह नल पूर्ण गोलाकार न हो कर पीछेकी ओर कुछ चिपटा रहता है।

टेंटुएका भीतरी भाग कोषाङ्कुरयुक्त एपिथेलियम् से मढ़ा रहता है। यह एपिथेलियम्, आधार-भूत झिल्ली (Basement membrane) और कुछ संयोजक तन्तु मिल कर टेंटुएकी श्लेष्मा झिल्ली प्रस्तुत करते हैं इस झिल्लीमें असंख्य श्लेष्मा-ग्रन्थियां लगी रहती हैं जिनकी नलिकायें (Ducts) टेंटुएमें खुलती हैं। इस झिल्लीके नीचे रेखाहीन मांसतन्तुओं (Unstriped muscular tissue) की एक तह केवल उन अंशोंमें रहती है जहां कारटिलेज अंगूठियां नहीं पाई जाती हैं।

वायुनल

टेंटुएके दो भागोंमें विभक्त हो जानेसे इनकी उत्पत्ति होती है। अस्तु, ये संख्यामें दो होते हैं (दाहिना और बायां) और टेंटुएसे फुफ्फुस मूलकी ओर जाते हैं। फुफ्फुसमें प्रवेश करनेके पूर्व ये दो भागोंमें विभक्त हो जाते हैं और उसके प्रवेश करने पर वृक्षकी शाखाओंकी भांति इनका भी अनेक शाखाओंमें विभाग होता है। इन शाखाओंको वायुनलिका कहते हैं। ये नलिकायें (Bronchioles) भी बहुतसी क्षुद्र वायुनलिकाओंमें विभक्त हो जाती हैं, जो अन्तमें फुफ्फुस तंतुमें विलीन हो जाती हैं।

वायुनल और टेंटुएकी आकृति प्रायः एक सी होती है, अन्तर इतना ही रहता है कि नलमें मांसतंतुकी तह यहां वहां रहती है। वायुनलिकाओंकी आकृति वायुनलकी सी होती है। जब तक ये आकारमें बड़ी रहती हैं, तब तक तो इनमें कारटिलेजकी अंगूठियां मिलती हैं पर ज्यों ज्यों ये आकारमें छोटी होती जाती हैं त्यों त्यों ये अंगूठियां आकार और संख्यामें कम होती जाती हैं, यहां तक

कि अन्तमें इनका पता नहीं रहता। किन्तु श्लेष्मा झिल्ली, मांसतल और श्लेष्मा-ग्रन्थियां यहां वहां वर्त्तमान रहती हैं।

फुप्फुस

फुपफुस दो होते हैं—दाहिना और बायां। स्वस्थ शरीरमें ये वक्षस्थलके दोनों ओर फुप्फुसावरण नामक झिल्लीसे ढँके रहते हैं। दोनों फुपफुस प्रायः एक समान न होकर जिन गर्त्तोंमें रहते हैं उन्हींके आकार धारण करते हैं। दाहिना फुपफुस बायेंसे कुछ बड़ा और चौड़ा रहता है। प्रत्येक फुपफुस हल्का, मुलायम और स्पंजके समान रहता है। उसे दो उंगलियोंके बीचमें रख कर दबानेसे एक प्रकारका कुर्कुराहटका शब्द होता है। पानीमें छोड़ देने पर फुप्फुस ऊपर तैरने लगता है। इसमें स्थितिस्थापकत्व (लचक) अत्यधिक परिमाणमें रहता है। वक्षस्थलको खोलकर फुप्फुसावरण गर्त और वायुमण्डलका दबाव एक समान कर दिया जाय तो फुप्फुस सिकुड़ कर अपने वास्तविक आकारका अर्थात् साधारण आकारकी एक तिहाई रह जायगा।

फुप्फुसके तल छींटेदार होते हैं। इनकी स्लेटकी सी नीली ज़मीन पर बिखरे हुए अनेक प्रकारके काले काले छींटे एवं पतली काली काली एक दूसरीको काटती हुई असंख्य रेखायें दीख पड़ती हैं। फुप्फुसका रंग मनुष्यकी अवस्था (आयु) के अनुसार बदलता जाता है। नितान्त बाल्यावस्थामें यह गुलाबी रंगका होता है किन्तु ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों इसमें अनेक प्रकारके बाहरी पदार्थों—विशेष कर धूल धूयें—के कण प्रवेश करते जाते हैं (श्वासके साथ साथ) और फुप्फुस-तल को छींटेदार बनाते जाते हैं।

[प्रत्येक बार जब मनुष्य सांस लेता है, कुछ न कुछ इस तरह के कण श्वास द्वारा शरीरके भीतर चले जाते हैं। किन्तु इनका बहुत स्वल्पांश फुप्फुसमें प्रवेश कर पाता है क्योंकि इनका अधिक भाग श्वास-नल (वायुनल) की श्लेष्मा झिल्लीमें फँस कर रह जाता है और इनके कोषाङ्कुरों की सहायतासे श्लेष्मा (खखार) के साथ साथ बाहर निकल आता है। इनकी एक ऊर्ध्वगामी धारा सी प्रचलित रहती है जिससे ये कण सदैव बाहर फेंके चले जाते हैं। खूब छोटे छोटे कण छन छन कर फुप्फुसमें प्रवेश करते हैं। एवं कभी कभी लसीका ग्रन्थियोंमें प्रवेश कर उन्हें भी काले कर देते हैं। अतः फुप्फुसका रंग जिस वायुमें मनुष्य सांस लेता है उस पर बहुत कुछ निर्भर रहता है, उदाहरणार्थ कोयलेकी खानोंमें काम करने वाले मनुष्योंका फुप्फुस काले रंगका होता है।]

चित्र ८

दाहिना फुपफुस		बांया फुप्फुस
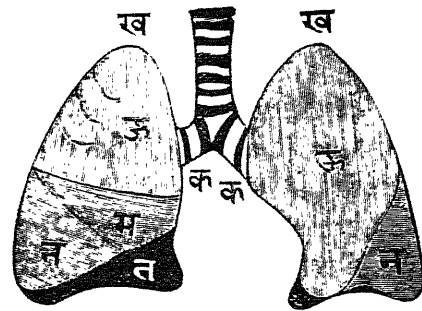
फुप्फुस और टेंटुए का कुछ अंश

क—वायु नल
ख—शिखर
अ—ऊर्ध्व खंड
म—मध्य खंड
न—निम्न खंड
त—अधस्तल

गर्भस्थ बालकके फुप्फुस (अर्थात् श्वास लेने के पूर्वके फुप्फुस) और ऐसे फुप्फुसमें जिसमें श्वासोच्छ्वास क्रिया स्थापित हो चुकी है बहुत अन्तर पाया जाता है। जन्मके पश्चात् जब बालक सांस लेने लगता है, फुप्फुस अपने गर्त्तमें शीघ्र फैल जाता है, पर इसके पहले यह सिकुड़ा हुआ वक्षस्थलके पश्चाद् भागमें सदा रहता है, छूनेमें

कड़ा जान पड़ता है और जल-तल पर तैरता नहीं, डूब जाता है। जब वायु एवं रक्त इसमें स्वच्छन्दतापूर्वक संचालित होने लगते हैं तब यह स्पंज का रूप धारण करता है और जलतल पर तैरनेकी शक्ति प्राप्त करता है।

फुफ्फुस का आकारः—फुफ्फुस जिस गर्त्तमें रहता है ठीक उसीका आकार धारण करता है। प्रकृति अवस्थामें उस पर उसी तरहके ऊँचे नीचे स्थान पाये जाते हैं, जैसा कि उनके अस्थिमय कक्षकी दीवारोंमें। प्रत्येक फुफ्फुसको इन भागोंमें बांट सकते हैं—शिखर, अधस्तल, मध्यतल और पार्श्व-तल तथा सम्मुख और पश्चात् धार।

शिखर (Apex) :—यह गोल होता है और प्रथम पर्शुका (पसली) के कुछ ऊपर तक बढ़ा रहता है, तथा वक्षस्थलसे बाहर होकर गर्दनकी जड़ तक पहुँचता है।

अधोस्तल (Diapragmotic surface) :—यह अर्धचन्द्राकार, बीचमें कुछ गहरा रहता है और वक्षोदरमध्यस्था मांस पेशी (Diaphragm) के एक अंगसे सटा रहता है।

पाश्वर्तल (Cortal surace) :—यह विस्तीर्ण, उन्नतोदर (बीचमें निकला हुआ) और पर्शुकाओं के सम्पर्क में रहता है।। पर्शुकायें इस पर अंकित हो जाती हैं।

मध्यतल (Medial surface) : यह आकारमें पार्श्वतलसे कुछ छोटा होता है और मध्यस्थानिक पर्देसे सटा रहता है। इसके मध्यमें फुफ्फुस-मूल रहता है, जहां श्वासनल (वायुनल), रक्तनलिकायें, नाड़ियां इत्यादि फुफ्फुसमें प्रवेश करती हैं।

सम्मुख धार (Anterior margin) :—यह शिखरके निम्नस्थ एक गर्त्तके निकटसे आरम्भ होकर अधोस्तल तक जाती है। यह तीक्ष्ण एवं पतली होती है और फुफ्फुसके मध्यस्थानिक तलको पार्श्वतलसे पृथक् करती है।

पश्चात् धार (Costal Border) :—यह पीछेकी ओर मेरुदण्डसे सटी हुई गोल और मोटी होती है। यह पार्श्वतलको मध्यस्थानिक तलसे पृथक् करती है।

फुफ्फुस-मूल (Hilum) :—यह मध्यस्थानिक तलके मध्यमें रहता है, इसकी प्रधान प्रधान नलिकायें हैं।

(क) दो फुफ्फुस शिरायें
(ख) फुफ्फुस धमनी
(ग) दो भागोंमें विभक्त हुआ वायुनल।

साधारणतः बायां फुफ्फुस दो और दाहिना तीन भागोंमें विभक्त रहता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक फुफ्फुस और छोटे छोटे भागों में विभक्त रहते हैं, इन भागोंको पिंड (Lobes) कहते हैं। ये पिण्ड क्षुद्रपिण्डोंमें विभक्त रहते हैं (Loberies) जो वास्तवमें एक स्वतन्त्र फुफ्फुससे ही होते हैं क्योंकि प्रत्येक क्षुद्र पिंडमें एक पृथक् क्षुद्र वायु नलिका प्रवेश करती है, एवं प्रत्येकको वायुकी थैलियां (air sacs), रक्त नलिकायें, वात नाड़ियां (Nerves) और लसीका नलिकायें प्राप्त रहती हैं। क्षुद्रवायुनलिकायें इन क्षुद्र पिंडोंमें प्रवेश कर और भी क्षुद्रतम भागोंमें विभक्त हो जाती हैं और अन्तमें इनके आकार प्रकारमें बड़ा अन्तर पड़ जाता है—प्रत्येक क्षुद्रतम वायु नलिकाका अन्तिम अंश चोंगेका सा हो जाता है (Funnel shaped) और इसमें बहुत से थैलेके आकारके गर्त्त बन जाते हैं जिन्हें वायुकी थैलियां (air-sacs) कहते हैं। इन चोंगों और वायुकी थैलियोंके समूहको वायुमन्दिर (Infundibulum) कहते हैं और इसके बीचमें जो एक शून्य असमतल स्थान बच जाता है (जिसमें सभी वायु की थैलियोंके मुख खुलते हैं) उसे अन्तर-तांतविक पथ (Intercellular passage) कहते हैं। प्रत्येक वायुकी थैलीका व्यास $\frac{1}{70}$ से $\frac{1}{80}$ इञ्चतक होता है और इसकी दीवारें एक प्रकारकी पतली झिल्लीकी बनी रहती हैं। इन थैलियोंके बाहर क्षुद्र रक्त

नालिकाओंका एक जाल सा बिछा रहता है। यह जाल इतना घना होता है कि इसके बीच बीचके शून्यस्थानोंका व्यास इन रक्त-नलिकाओंके व्यास जो $\frac{1}{3000}$ इञ्च होता है) से भी छोटा होता है। अस्तु फुफ्फुसमें रक्त और वायुके बीच दो पर्दे पड़े रहते हैं—इन वायु थैलियोंकी झिल्ली और क्षुद्र रक्तनलिकाओंकी दीवारें। वास्तवमें फुफ्फुसको एक बारीक पर्दा मान लें जिसका एक तल वायुसे और दूसरा तल रक्तसे सम्पर्क रखता है तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। श्वासोच्छ्वासके समय रक्त संशोधन होता है अर्थात् वायुका ओषजन रक्तमें मिल जाता है और रक्तका कार्बनिकाम्ल बाहर निकाल दिया जाता है, गैसोंका यह अदल बदल इसी पर्देके माध्यमसे होता है। [चित्र ९, १०]

पुनः इस विराट आयोजनका तात्पर्य यह है कि फुफ्फुसके से एक छोटे अवयवमें यथासम्भव अधिकाधिक गैसोंका अदलबदल हो सके। फुफ्फुसका क्षेत्रफल एक बृहदाकार कक्ष (१२× १२ गज) के क्षेत्र-फलके बराबर होता है।

फुफ्फुसावरण (Pleura)

वक्षस्थलका भीतरी भाग एक मध्यस्थानिक पर्दे (mediastinal septum) द्वारा दो पार्श्विक भागोंमें विभक्त रहता है। यह पर्दा रीढ़से लेकर वक्षोऽस्थि तक तना रहता है। प्रत्येक फुफ्फुस वक्षस्थलके इन्हीं पार्श्विक भागोंमें जिन्हें फुफ्फुसावरण-गर्त्त कहते हैं रहता है। फुफ्फुसावरण गर्त्त (Pleural cavity) की चौहद्दी यह है—

निम्न भागमें—वक्षोदर मध्यस्था मांस पेशी (जो उदरको वक्षस्थलसे पृथक् करती है) का एक अंश।

सम्मुख भाग—उप पर्शुकायें (Cortal cartilages) और वक्षोऽस्थि (sternum)

पार्श्व और पश्चाद् भाग—पर्शुकायें और पर्शुकान्तरस्थ-मांस पेशियां।

मध्य भागमें—रीढ़की कशेरुकाएं और मध्यस्थानिक पर्दा जो एक गर्त्तको दूसरेसे पृथक् करते हैं।

(चित्र ९)
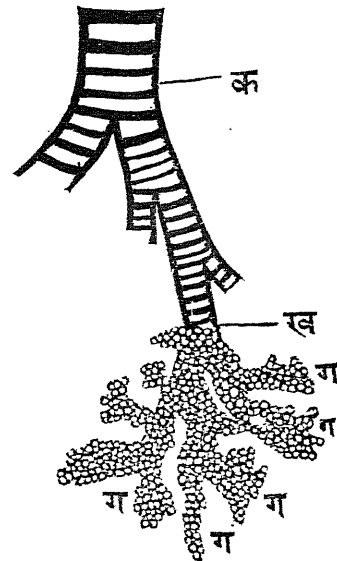
(वायुनलिकाका अन्तिम अंश)
क—वायुनलिका।
ख—वायुनलिकाका अन्तिम अंश।
ग—वायुकोष संमूह।

(चित्र १०)

फुफ्फुसका क्षुद्र धमनी जाल।
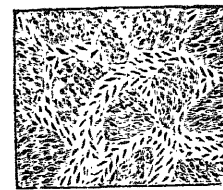
प्रत्येक गर्त्त फुफ्फुसावरण नामक एक झिल्लीसे इस प्रकार घिरा रहता है कि इसका वायुमण्डलसे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। यह झिल्ली केवल गर्त्तको ही नहीं घेरती बल्कि फुफ्फुसको भी चारों

ओरसे घेरे रहती है। अस्तु इसके दो भाग होते हैं, एकको परि-फुफ्फुसीया-कला कहते हैं, दूसरी को अन्तर्वस्था कला कहते हैं। अर्थात् परिफुफ्फु-सीया-कला द्वारा घिरा हुआ फुफ्फुस एक ऐसे गर्त्तमें पड़ा रहता है जिसका भीतरी भाग इसी कलाके एक अंशसे चिकना बनाया (घिरा हुआ) रहता है। दोनों कलाओंका भीतरी भाग खूब चिकना, चमकीला और पौलिश किया रहता है और इन दोनोंके बीच कुछ द्रव भी रहता है जो इन्हीं कलाओंसे उत्पन्न होता है। इन कलाओंकी इस प्रकारकी रचनाका तात्पर्य यह है कि फुफ्फुस श्वासोच्छ्वासके समय आयतमें घटता बढ़ता है तब उसमें और वक्षस्थलकी दीवारमें घर्षण नहीं होने पावे।

लसीका

जब रक्त क्षुद्र रक्त-नलिकाओं द्वारा शरीरसे संचालित होता है, उस समय इसके तरलांशका कुछ भाग इन नालिओंकी पतली दीवारोंसे छन छन कर बाहर निकल जाता है और इस प्रकार तंतुओंको खाद्य पदार्थ और पुष्टिकारक सामग्रियां प्राप्त होतो हैं। इसी वहिरागत तरल पदार्थको लसीका कहते हैं। इसके अतिरिक्त लसीका तंतुओंके मल (दूषित पदार्थों) को लेकर भिन्न भिन्न नलि-काओं द्वारा रक्त शिराओंमें पहुंचा देती है।

लसीकाके गुण—यह क्षारीय (Alkaline):— होती हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity) १०१५ (जल १०००) होता है। लसीका नलिकासे बाहर निकलने पर जम जाती है और इसकी एक रंगहीन थोक बन जाती है। यह रक्तवारिकी सी होती है। भेद इतना ही है कि रक्तवारिकी अपेक्षा इसमें प्रत्यमिन पदार्थों (Proteins) का अंश कम रहता है। लवण इसमें भी उतने ही रहते हैं जितने कि साधारणतः रक्त-वारिमें पाये जाते हैं। तंतुओंके दूषित पदार्थ (मल) इसमें रक्तवारिकी अपेक्षा अधिक रहते हैं। अणुवीक्ष्ण यन्त्र द्वारा देखने पर पारदर्शी लसीकामें रंगहीन लसीकाणु (Lymphocytes) दीख पड़ते हैं। ये लसीकाणु लसीका-ग्रन्थिरूपी फैक्टरियोंमें प्रस्तुत होते हैं।

लसीका ग्रन्थियां (Lymphatic glands):— ये गोल वा अंडाकार छोटे दानोंसे लेकर सेमके बीजके बराबर बराबर लसीका नलिकाओं के मार्ग में पड़ी हुई गाठें सी जान पड़ती हैं और इनके द्वारा एक न दूसरे समय लसीका का संचार होता है। ये ग्रन्थियां विशेष रूपसे अन्त्रधारक झिल्ली, उदर, वक्षस्थल और गले की बड़ी बड़ी रक्तनलिकाओंके साथ साथ और काँख, कच्छे और टेहुनेके पीछे पाई जाती हैं।

(चित्र ११)
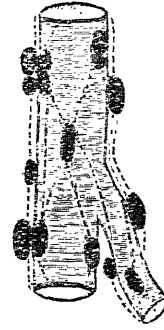
एक रक्त नलिकाके चारों ओर लसीका ग्रन्थियां। लसीका-मार्ग छिन्न रेखाओं द्वारा प्रदर्शित हैं।

[अन्य अवयवोंका आवश्यकतानुसार स्थान स्थान पर कुछ वर्णन कर दिया गया है। विस्तार-पूर्वक वर्णन प्रस्तुत लेखकी सीमाके बाहर है]

(क्रमशः)

टीका (Innoculation)

[ले० श्रीधर्मनाथ प्रसाद, कोहली, एम० एस० सी०]

प्रकृतिके रहस्यका उद्घाटन करना वैज्ञानिक का कर्तव्य है। वह अन्धकारमय खोहके अन्दरसे एक चमकता हुआ हीरा निकालनेके प्रयत्न में रहता है। ज्यों ज्यों वह भीतर पैठता है उसे वहांका दृश्य देख कर और भी अधिक अचम्भा होता है, और प्रकृतिके गूढ़ तत्व बढ़ते ही जाते हैं। एक रहस्य तक पहुँचनेके उपरान्त वैज्ञानिकके सन्मुख दूसरा उपस्थित हो जाता है। यह वह उद्यान है जिसका कहीं ओर छोर नहीं हैं। तब भी हम वैज्ञानिकके कार्यको दो प्रधान भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। एक ओर तो वे लोग हैं जिनके कार्यसे मनुष्य के आनन्द आर भोग विलासकी वस्तुओंका विकास हुआ है। कुछसे उनको सुविधा भी अधिक हो गई है, और आवश्यकताओंकी भी वृद्धि हो गई है।

दूसरी ओर वे लोग हैं जिन्होंने प्राणियोंके, चाहें मनुष्य हो अथवा जानवर—बचावका और दुःख निवारणका उपाय किया है। कितने ही प्राण-नाशक रोगोंका आज सफलतापूर्वक नाश हो गया है। पुराने समयमें अधिकांश घाव सड़ जाते थे, और लोगोंकी मृत्यु हो जाती थी। जबसे ग्लास्गो विश्वविद्यालयके लिसटरने चीड़फाड़में कार्बोलिक ऐसिडकी उपयोगिता प्रत्यक्ष दिखा दी, तबसे चीड़फाड़से मृत्यु कम होने लगी। ऐसे लोगोंका कार्य उन लोगोंसे कहीं अधिक महत्वका है जिन्होंने मनुष्यको आवश्यकताओंको बढ़ा कर उसे आडम्बर पूर्ण बना डाला है, और प्राचीन सरलताको दूर कर मनुष्यकी प्रकृति बदलनेका प्रयत्न किया है।

मनुष्यके दुःख तथा रोगकी जड़ काटने वालोंमें जेनर तथा पास्च्यूर (Pasteur) का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। पास्च्यूरका कार्य मनुष्यकी भलाईके विचारसे उत्प्रेरित था। लैवाशियेने हवा में ओषजनकी उपस्थिति स्थापित करके मनुष्यके जीवनको कायम रखने वाली वस्तुको ढूँढ़ निकाला था, पास्च्यूरने उन छोटे छोटे कीड़ोंको ढूँढ़ निकाला जो मनुष्यको रोगी बना कर कभी कभी मृत्युका कारण हो जाते हैं। किन्तु दोनों ही मनुष्य जीवनको बढ़ाने तथा बचानेके उच्चभावसे उत्प्रेरित थे। जेनरका कार्य उतने महत्वका नहीं है, जितना कि पास्च्यूरका, किन्तु जेनरने मार्ग दिखाया था, और उसी पथ पर चल कर पास्च्यूर ने अपने अन्वेषण किये थे।

१८वीं शताब्दीके अन्तमें यह बात फैल गई थी कि ग्वालोंको चेचक कम निकलती है, खास कर उन लोगोंको जो गायको दुहते और साफकरते हैं। जिन लोगोंको पहले काऊ पौक्स (Cowpox) (थोड़ी गाय चेचक) का रोग होता है, उन लोगों को तो कभी चेचक नहीं हुई। जेनरने इस पर विचार किया और इन लोगोंको ध्यानपूर्वक देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि इनके रुधिरमें कुछ वस्तु मिल जाती है। यह वस्तु वैक्सीना (Vaccina) अथवा काऊ पौक्स वीरस (Cowpox Virus) (गायके रुधिरमें रहने वाले कुछ कीड़े) हैं। उसके मनमें यह विचार उठा कि यदि और लोगों-के रुधिरमें वैक्सीनाकी सूई दे दी जावे तो वे भी चेचकसे बच सकते हैं, और प्रत्यक्ष करने पर ऐसा ही हुआ भी। जर्मनी, इंगलैंड आदिमें टीके दिये जाने लगे, और यह देखा गया कि इन लोगों को चेचक कम निकलती है। किन्तु इस बातके फैलनेमें समय लग गया।

पास्च्यूरका कार्य बहुत ही अधिक है। उसने यह दिखाया कि प्रत्येक सांक्रमिक रोगके कीड़े पृथक् पृथक् होते हैं। इसे पूर्णतया समझनेके लिये हम तनिक उसके जीवन तथा दूसरे कार्यों पर भी दृष्टि डालेंगे।

पास्च्यूर का जन्म १८२२ ई० में हुआ था, वह एक साधारण घराने का था, और ये लोग फ्रांसके एक गांवमें रहते थे। इसके पिता चमड़ेका काम करते थे, और माता मालीके घरकी थी। पिताका नाम जीन जासेफ था, और इन्होंने फ्रांसमें युद्धमें भी १८११ से १८१४ तक भाग लिया था। इस दम्पतिका प्रेम सराहनीय था, और घरमें शान्ति, उच्चभाव, तथा सन्तोषकी एक ध्वनि थी, जिसने पास्च्यूरके हृदयमें कोमल तथा महान् भावोंको सथान दिया था। विचार शीलता तथा कल्पना शक्ति पास्च्यूरकी पैतृक सम्पत्ति थी। स्कूलमें यह बहुत तेज़ न था, किन्तु विचारपूर्वक तथा समझके कार्य करने का अभ्यास इसके लिये प्राकृतिक था। पास्च्यूर पैरिस पढ़नेके लिये गया, किन्तु घरके हेरुएके कारण वह रोगग्रस्त हो गया और उसको घर लौटना पड़ा। पासके दूसरे कालेजमें पढ़ना आरम्भ किया, और अन्त में १८४३ ई० में वह एकोलेनार्मल, पैरिसमें चला गया। वहां पर इसने कठिन परिश्रम द्वारा रासायनिक शास्त्रका खूब अभ्ययन किया और अन्वेषण किये। १८४८ ई० इमलिकाम्ल [इमलीके सत] पर इसके प्रयोग समाप्त हुये, और इसने दिखाया कि दो प्रकारके अम्लोंमें जो अन्तर है वह उनकी बनावटके कारण है। इनके इस कार्यने इनको प्रसिद्ध कर दिया और फिर यह प्रोफेसर बना दिये गए। कुछ दिनों फिर भी यह उसी पर कार्य करते रहे।

तदुपरान्त इनका कार्य शराबके बनानेकी विधिके सम्बन्ध में है। शकरसे शराब बनाते समय उसमें यीस्ट (Yeast) नामक एक पदार्थ डालना पड़ता है। पास्च्यूरने दिखाया कि यीस्टमें जीवित बहुत छोटे कीड़े हैं जिनके बिना ख़मीरण नहीं हो सकता। फिर इन्होंने दूधके फट जानेका कारण भी बताया कि यह भी एक जीवित कण दुग्धिकाम्लाणु पर निर्भर है। इसको पास्च्यूरने अलग किया और यह बताया कि इनकी अनुपस्थितमें शराब बन सकती है और न दूध फट सकता है। इस प्रकार पास्च्यूरने दिखाया कि ख़मीरण (Fermentation) विभाजन (Decomposition) तथा सड़ना (Putrefaction) ये सब जीवाणुओं पर निर्भर है।

इसके बाद इन्होंने कहा कि इसी प्रकार रोग भी एक खास कीड़ेके कारण होता है। यद्यपि यह बात पहले भी ज्ञात थी कि कीड़ोंके कारण रोग होते हैं किन्तु कोई इसको ठीक प्रकार समझता नहीं था। पास्च्यूर ने बताया कि प्रत्येक रोगका अलग कीड़ा है। उन्होंने उसे अलग किया तथा उससे बचनेके उपाय बताये।

सन् १८६५ तथा १८६६ के बीचमें इन्होंने रेशमके कीड़ोंके रोगों पर ध्यान दिया जिसके कारण फ्रांसकी रेशमकी उपज बहुत ही न्यून होती जाती थी। उन्होंने दिखाया कि इनमें दो प्रकारके हैं और सांक्रमिक तथा फैलने वाले हैं। उन्होंने इनके कीड़ों को अलग अलग किया और इन रोगोंसे बचनेका उपाय बताया। किन्तु लोगोंने उस समय तक उनकी बात पर विश्वास न किया जब तक स्वयं उसका प्रभाव न देख लिया।

इसके बाद ही उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुआ, जिसने संसारमें कितने ही घातक रोगोंसे बचनेके उपायका मार्ग दिखाया। गाय और भेड़ोंमें एक प्रकारका ज्वर होता है जिसे एन्थ्रेक्स (Anthrax) अथवा स्प्लेनिक ज्वर (Splenic fever) कहते हैं। इससे दलके दलकी मृत्यु हो जाती थी। पास्च्यूरके पूर्व भी कोक (Koch) ने यह दिखाया था कि यह रोग कीड़ों द्वारा होता है। कीड़ों को अलग भी कर लिया था। १८७७ में पास्च्यूरने इस विषयको हाथमें लिया। साथ ही वह मुर्गोंके हैज़े (Chicken cholera) के विषयमें भी ध्यान दे रहा था। इस रोगके कीड़ोंको उन्होंने अलग

किया और देखा कि कई दिन बाहर रखनेसे उनकी शक्ति कम होजाती है। उसका प्रभाव देखनेके लिये पास्ट्यूरने मुर्गमें उसकी सुई लगाई, उसे तनिक ही रोग हुआ, वह मरा नहीं। फिर भी प्रभाव देखनेके लिये उन्होंने अधिक शक्ति वाले रसकी सुई लगाई, और देखा कि उसका प्रभाव कुछ भी न हुआ। उनको तत्काल ही रोगसे बचनेकी वह दवा सूझ गई। फिर उन्होंने भेड़ोंके ऊपर भी प्रयोग किया। पहले एन्थ्रेक्सके कीड़ों का रस बनाया। कम शक्ति वालेसे पहले सुई दी फिर अधिक शक्ति वालेका भी प्रभाव न हुआ। जब उन्होंने संसारको यह बात सुनाई तो किसी को उस पर विश्वास ही न हुआ। अपने प्रयोगकी सत्यता दिखानेके लिये उसने ५० भेड़ों पर सबके सामने प्रयोग किये। उनमेंसे २५ भेड़ोंको पहले कम शक्ति वाले रसकी सुई दी, फिर १० दिन बाद उससे अधिक शक्ति वाले रस को। इस प्रकार इन २५ का रुधिर इस रोगके कीड़ोंसे परिचित हो गया। फिर १५ दिन बाद कुल ५० को बहुत ही शक्तिपूर्ण रससे सुई दी गई। तीन दिन बाद देखने पर पता चला कि वे २५ जिनको पहलेसे तैय्यार नहीं किया गया था मर गए, और वे जिन्हें तैय्यार किया था बिलकुल अच्छे थे। चारों ओरसे पास्ट्यूरको बधाई मिली, उसके विवादियोंका सिर नीचा हुआ। स्वयं देखनेके उपरान्त उनको भी पास्ट्यूरकी बात माननी पड़ी। इस प्रकार १८८१ ई० में रोगसे युद्ध करनेकी एक नई विधिकी उपयोगिता संशयपूर्ण संसारके सन्मुख सिद्ध कर दी गई। अब तो बहुत रोगोंमें इस विधि का प्रयोग होता है।

अब हम पास्ट्यूरके उस कार्यकी विवेचना करेंगे जिसने अमर बना दिया है। अभी तक उनके प्रयोग केवल जानवरों पर ही हुए थे। यद्यपि पास्ट्यूरको विश्वास था कि यह विधि मनुष्यके लिये भी लाभदायक होगी किन्तु मनुष्य के ऊपर प्रयोग करते समय उनका हृदय कांपता था। १८८० के लगभग ही पास्ट्यूरने रेबीज़ अथवा हाइड्रोफोबियाके सम्बन्धमें खोज करना प्रारम्भ कर दिया था। जब मनुष्यको कोई पागल कुत्ता काट लेता है तो उसका जीवित रहना कठिन हो जाता है। पास्ट्यूरके प्रयोगोंके प्रथम बहुत सी मृत्यु इस प्रकार हो जाती थीं। उन्होंने इस विषयमें भी अपना मत प्रकट किया, किन्तु यह विषय कठिन था। इसमे कीड़ेका पता कठिनतासे चला, और ये कीड़े बहुतही घातक होते हैं। किन्तु संतोषपूर्वक तथा मनसे कार्य करने वालोंके लिये क्या कठिन है! पास्ट्यूरने इसे भी ढूँढ़ निकाला। लोगोंका विचार था कि ये कीड़े थूकमें अधिक होते होंगे, किन्तु पास्ट्यूरने दिखाया कि वे मस्तिष्कके निकट अधिक होते हैं। पास्ट्यूरने इन कीड़ोंके रसको भी अलग किया और देखा कि इसकी भी शक्ति प्रति दिन घटती जाती है और १४ दिनके उपरान्त यह बिलकुल हानि नहीं पहुँचाता। उन्होंने चूहों पर पहले प्रयोग किये, फिर कुत्तों पर।

अब प्रश्न यह कि इससे किस प्रकार बचा जावे। उन्होंने पहले बहुत ही थोड़ी शक्ति वाले रसकी सुई एक कुत्ते को दी—फिर उससे अधिक, फिर उससे अधिक शक्ति वाले रस की। इस कुत्तेको जब किसी पागल कुत्तेने काटा तो उस पर कुछ असर नहीं हुआ। इसी प्रकार कई कुत्तों पर ऐसा ही प्रभाव हुआ।

इसमें सूई पहले लगाई गई थी; पास्ट्यूरने दिखाया कि यदि सूई काटनेके बाद लगाई जावे तब भी लाभ होता है। यह खास बात है। कुत्तेके काटनेके बाद भी सुईसे लाभ हो सकता है, इसको दिखा कर पास्ट्यूरने एक बहुत बड़ा कार्य समाप्त किया। अब प्रश्न यह था कि मनुष्यपर इसका असर कैसे देखा जावे। पास्ट्यूर डरतेथे, कि १८८१ ई० में एक लड़का उनके यहां आही तो गया। उसके

१४ स्थानों पर पागल कुत्ते ने काटा था, और उसके बचनेकी कम आशा थी। डरते डरते पास्टयूरने उसके टीका लगाना प्रारम्भ किया। ज्यों ज्यों टीका लगता जावे त्यों त्यों लड़का अच्छा होता जावे, किन्तु पास्टयूरको अभी तक विश्वास न था और सदा डर बना रहता था। जब वह अच्छा हो गया तो उन्हें बहुत ही हर्ष और संतोष हुआ। इसीके बाद एक और मनुष्य आ गया, इस बार पास्टयूरने अधिक आशासे इलाज प्रारम्भ किया। वह भी अच्छा हो गया। इन दोनोंके अच्छे होने की खबर सब तरफ फैल गई और पास्टयूरका नाम घर घरमें प्रसिद्ध हो गया। दूर दूरसे लोग आने लगे और फायदा होने लगा। रूससे कुछ लोग आये जिनको भेड़िये ने काटा था, और वह भी काटनेके कई दिन बाद पहुँचे। फायदा होने लगा और पास्टयूर की प्रशंसा होने लगी। १८८६ ई० में २६६० के लगभग रोगियोंका इलाज पास्टयूरने किया, उनमेंसे केवल २५ ही मरे। इस इलाजके पहले प्रायः आधे लोगोंकी मृत्यु हो जाती थी। प्रत्यक्ष है कि प्रथम वर्षमें ही १००० से अधिक लोगोंका जीवन बचा। इसीसे हम समझ सकते हैं कि पास्टयूरने संसारका कितना भला किया है। ऐसे ही वैज्ञानिक धन्य हैं, जिनका जीवन दूसरोंकी भलाई में, तथा स्वार्थ-हीन कार्य दूसरोंके लाभके लिए हुआ है।

उसके बाद तो इस विषयमें बहुत ही शीघ्रता पूर्वक कार्य हुआ। कालेरा और क्षयरोगके कीड़े तो १८८३ और १८८२ में ही अलग कर लिये गये थे। इनके अतिरिक्त निद्रारोग भी कीड़ोंके कारण होता है। अफ्रीका की प्रसिद्ध सीसी मक्खी इन कीड़ोंको मनुष्यके शरीरमें पहुँचाती है। इसी प्रकार मलेरिया बुखार भी कीड़ों द्वारा ही फैलता है। सर रोनल्ड रॉस इस सम्बन्धमें अपने महान् कार्यके लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने दिखाया कि मच्छर मलेरियाके कीड़ोंको एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते हैं। इतना ही नहीं ये कीड़े मच्छरके शरीरमें ही बढ़ते हैं। इन बातों की उपयोगिताका एक उदाहरण यह है कि पहले पनामा नहर नहीं बन पाती थी, क्योंकि वहां पर बुखार इतना फैला था कि लोग काम नहीं कर पाते थे। इस बातको समझनेपर वहांके दलदल हटा दिये गये, और पानी पर तेल डाल दिया गया, जिसमें कीड़ोंके छोटे छोटे बच्चे हवा तक न पहुँच सके। तेलके नीचे हवा न पानेके कारण वे मर जाते हैं, और फैलने नहीं पाते। इस प्रकारका प्रबन्ध करनेके उपरान्त पैनामा नहर बन गई।

आज कल तो टीका बहुतसे रोगों पर लगाया जाता है। चेचकका टीका तो बचपनमें लगाना आवश्यक ही रक्खा गया है और हैज़ा, प्लेग, डिफ्थेरिया, टिटेनस इनके भी कीड़े अलग किये गये हैं और विषघातक (Antitoxins) रस निकाल कर उसीका टीका लगाते हैं। लोग डाक्टरके पास जाकर टीका लगवा आते हैं और अपनेको रोगसे मुक्त समझते हैं। अबतो टीकेका विश्वास घर घर पहुंच गया है। किन्तु इसकी नींव उस महान् आत्मा पास्टयूर ने अपने कठिन परिश्रम तथा विचारशीलताके कारण रक्खी थी जिन्होंने अपना जीवन मनुष्य की भलाई और सेवा करनेमें ही लगा दिया और जिनका महान् आदर्श सदा पथ प्रदर्शक रहा जिससे वे कभी विचलित न हुये।

अब हम इस बातको सूक्ष्ममें बतावेंगे कि किस प्रकार टीका लगानेसे लाभ होता है। मनुष्यके रुधिरमें दो प्रकारके कण होते हैं। एक लाल, दूसरे श्वेत। लाल कणोंका कार्य ओषजनको लेजाना है। रूसके वैज्ञानिक मेचनिकाफ (Metchnikoff) ने यह दिखाया कि श्वेत कणका कार्य पुलिसके समान है। जब कोई बाहरी कीड़ा रुधिरमें पहुँचा तो ये श्वेत (जिनको कीटाणु-

भक्षक (Phagocyte) कहते हैं उस कीड़ेको घेर लेते हैं और स्वाहा कर डालते हैं। विषघातक रस वैक्सीन (Vaccine) में उसी रोगके कम शक्ति वाले अथवा मरे हुये कीड़े होते हैं, जिस रोगके लिये टीका लगाया गया हो। पहले थोड़ी मात्रामें इन कीड़ोंको सूई द्वारा रुधिरमें डालनेसे श्वेत कण उसे घेर कर समाप्त कर डालते हैं और उन्हें उसके साथ व्यवहार करनेकी विधिका पता होजाता है। फिर जब वे कीड़े रुधिरमें आते हैं, तो इन श्वेत 'पुलिसवालों' को उनसे लड़नेकी और उन्हें हरानेकी विधि ज्ञात रहती है और वे बहुतसे कीड़ोंका भी नाश कर सकते हैं। जब कीड़ों का नाश शीघ्रता पूर्वक होगया तब रोग नहीं होने पाता। मनुष्य उस रोगसे रक्षित रहता है।

त्रयोदश अध्याय

परवलय

(ले० 'गणितज्ञ')

१३३—शंकुच्छिन्न—परिभाषा—शंकुच्छिन्न उस बिन्दुका बिन्दु-पथ है जो इस प्रकार परिभ्रमण करता है कि किसी एक निश्चित बिन्दुसे इसकी दूरी और किसी स्थिर सरल रेखासे इसकी दूरीमें कोई स्थिर निष्पत्ति विद्यमान रहे।

इस निश्चित बिन्दु को शंकुच्छिन्न की नाभि कहते हैं और इसे बहुधा स से सूचित करते हैं। तथा स्थिर सरल रेखाको नियत रेखा कहते हैं;स्थिरनिष्पत्ति को उत्केन्द्रता कहा जाता है, और बहुधा इसे उ से सूचित करते हैं। वह सरल रेखा जो नाभिसे होती हुई नियत रेखा पर लम्बरूप खींची जाती है अक्ष कहलाती है।

यदि उत्केन्द्रता, उ, इकाई हो तो शंकुच्छिन्नको परवलय कहेंगे और जब उ इकाईसे कम हो तो इसे दीर्घ वृत्त कहेंगे, तथा जब उत्केन्द्रता इकाईसे अधिक होती है तो शंकुच्छिन्न अतिपरवलय कहलाता है।

१३४—परवलय का समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि स नाभि है और ररा नियत रेखा है। स से एक रेखा स म नियत रेखा ररा पर लम्बरूप खींचो। मान लो कि म स = २ क म स का य-अक्षके समान उपयोग करो।
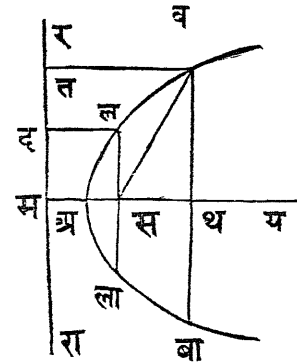
चित्र ५२

कल्पना करो कि वक्र पर ब कोई बिन्दु (य, र) है। ब त और ब थ अक्षों पर लम्बरूप खींचो तथा ब स को संयुक्त कर दो।

परवलयकी परिभाषाके अनुसार

बस = बत

$\therefore$ ब त^2 = बस^2 = सथ^2 + बथ^2

$\therefore$ य^2 = (य − २ क)^2 + र^2

= य^2 − ४ कय + ४ क^2 + र^2

र^2 = ४ क (य − क) ···(१)

यह परवलयका ऐच्छिक समीकरण है।

वक्र य-अक्षको अ पर काटता है जहां र = ०

अतः समीकरण (१) में यदि र = ० तो य = क,

अतः मअ = क = अ स

यदि मूल बिन्दु म को अ की स्थितिमें परिणत कर दिया जाय तो समीकरण (१) सूक्त ६० के अनुसार

र^2 = ४ कय ·······(२)

हम बहुधा परवलय का यह समीकरण ही उपयोगमें लावेंगे। यह स्पष्ट है कि इस अवस्थामें नाभिके युग्मांक (क,०) हैं, तथा नियत रेखाका समीकरण यह हैः—

य + क = ०

तथा स ब = व त = म अ + अ थ = क + य

समीकरण (२) को रेखा गणितके पदोंमें इस प्रकार लिख सकते हैं—

ब $थ^2$ = ४ अ स. अ थ

उपसिद्धान्त—यदि मूल विन्दु स को मानें और र—अक्ष लस ला को तो परवलयका समीकरण $र^2$ = ४ क (य + क) होगा।......(३)

१३५ — $र^2$=४ क य द्वारा सूचित वक्र को खींचना—

इस समीकरण द्वारा स्पष्ट है कि यदि य ऋणात्मक हो, तो तत्सम्बन्धी र के मान काल्पनिक होंगे क्योंकि ऋणात्मक संख्याओंका मान वास्तविक नहीं होता है। अतः वक्र का कोई भी भाग र अक्षके बायीं ओर विद्यमान नहीं हो सकता है।

यदि र = ० तो य भी = ० अतः य—अक्ष वक्र के साथ केवल अ विन्दु पर ही मिल सकता है। यदि य = ०, तो र भी = ० अतः र अक्ष भी वक्रके साथ केवल अ विन्दु पर ही मिलेगा।

य को धनात्मक मान लिया जाय तो तत्सम्बन्धी र के दो मान होंगे। दोनों मान परस्परमें मात्रामें बराबर और धनर्ण संकेत में भिन्न होंगे। अतः वक्र पर किसी बिन्दु ब से सम्बन्ध रखने वाला बा बिन्दु अक्षके दूसरी ओर अवश्य होगा। यह बिन्दु इस प्रकार मिल सकता है। ब थ को अक्षके दूसरी ओर इस प्रकार बढ़ाओ कि ब थ = थ बा। अतः ब बा रेखाको द्विगुण-कोटि कह सकते हैं।

ज्यों ज्यों य का मान बढ़ता है, र का मान भी बढ़ेगा। जब य अनन्त हो जायगा तो र भी अनन्त हो जायगा। य, क, और र के भिन्न भिन्न मान लेनेसे वक्र खींचा जा सकता है। इसकी दोनों शाखायें परस्परमें कभी नहीं मिलेंगी और अनन्त लम्बाई की होंगी।

१३६—ऊर्ध्वभुज—उस द्विगुण कोटि लस लाको ऊर्ध्वभुज कहते हैं जो नाभि स से य अक्षके लम्बरूप खींची जाती है।

परवलयमें स ल = सम = २ क

∴ ऊर्ध्वभुज ल स ला = ४ क

इस प्रकार यदि ऊर्ध्वभुज ज्ञात हो तो परवलय का रूप, स्थिति आदि सब ज्ञात हो जाती हैं और इसका समीकरण भी पूर्णतः ज्ञात हो जाता है।

४ क को बहुधा वक्रकी मुख्य परमिति भी कहते हैं। तथा किसी बिन्दु ब की दूरी स ब नाभि-दूरी कहलाती है।

नाभि दूरी = ब त = म थ = म अ + अ थ = क + य

१३७—उदाहरण—निम्न समीकरणद्वारा सूचित परवलय का शीर्ष विन्दु अ, नाभि और ऊर्ध्वभुज निकालो—

$र^2$ − ८ र − २ य + १० = ०

इस समीकरण को इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

$र^2$ − ८ र = २ य − १०

∴ $र^2$ − ८ र + १६ = २ य − १० + १६

∴ $(र − ४)^2$ = २ (य + ३)

शीर्ष विन्दु निकालने के लिये र = ०

∴ १६ = २ य + ६

∴ य = ५

∴ शीर्ष विन्दु (५,०) हुआ।

∴ नाभि = (१०,०)

तथा ऊर्ध्वभुज लला = २ लस

= २ मस

= २०

१३८—किसी सरल रेखा और परवलय $र^2$ = ४ कय के अन्तरखण्ड बिन्दुओंको निकालना—

कल्पना करो कि सरल रेखा का समीकरण यह है—

र = त य + ग.........(१)

वे बिन्दु जो परवलय और सरल रेखा दोनों पर हैं, दोनोंके समीकरणोंको पूर्ति करेंगे। परवलय का समीकरण यह है—

$र^2 = ४ कय \cdots\cdots (२)$

इसमें सरल रेखा का समीकरण उपयुक्त करने से—

$$(त य + ग)^2 = ४ क य$$

$$\therefore त^2 य^2 + २ त य ग + ग^2 = ४ क य$$

$$\therefore त^2 य^2 + २ य (त ग - २ क) + ग^2 = ० \cdots (३)$$

समीकरण (३) य में वर्गात्मक है अतः य के दो मान हो सकते हैं चाहें वे दोनों वास्तविक हों, या पराच्छादित या काल्पनिक।

अतः प्रत्येक सरलरेखा परवलय को दो वास्तविक, पराच्छादित या काल्पनिक बिन्दुओं पर काटती है।

समीकरण (३) के मूलों का वास्तविक, पराच्छादित या काल्पनिक होना इस पर निर्भर है कि

$$[२ (त ग - २ क)]^2 >=< ४ त^2 ग^2$$

अथवा $४ त^2 ग^2 - १६ क त ग + १६ क^2 >=< ४ त^2 ग^2$

अथवा $१६ क त ग >=< १६ क^2$

अथवा $त ग >=< क$

यदि त का मान बहुत ही न्यून हो तो समीकरण (३) के एक मूल का मान तो बहुत बड़ा होगा। यदि $त = ०$, तो एक मूल अनन्त होगा। अतः प्रत्येक सरल रेखा जो परवलय के अक्षके समानान्तर हो, वक्र को अनन्त दूरीमें एक बिन्दु पर काटेगी, और दूसरे बिन्दु पर सान्त दूरी में।

१३९—परवलय द्वारा किसी सरल रेखा में से काटे हुए चापकर्णकी लम्बाई निकालना—

सरल रेखाका समीकरण यह है—

$र = तय + ग \cdots\cdots (१)$

यदि परवलय और सरल रेखाके अन्तरखण्ड बिन्दुओंके युग्मांक ($य_1, र_1$) और ($य_2, र_2$) हों तो गत सूक्तके समीकरण (३)

$$त^2 य^2 + २ य (त ग - २ क) + ग^2 = ०$$

मेंसे $$य_1 + य_2 = -\frac{२ (त ग - २ क)}{त^2},$$

$$य_1 य_2 = \frac{ग^2}{त^2}$$

$$\therefore (य_1 - य_2)^2 = (य_1 + य_2)^2 - ४ य_1 य_2$$

$$= \frac{४ (त ग - २ क)^2}{त^4} - \frac{४ ग^2}{त^2}$$

$$= \frac{१६ क (क - त ग)}{त^4}$$

तथा $(र_1 - र_2) = (त य_1 + ग) - (त य_2 + ग)$

$$= त (य_1 - य_2)$$

$\therefore$ दोनों बिन्दुओंके बीचकी लम्बाई

$$= \sqrt{[(र_1 - र_2)^2 + (य_1 - य_2)^2]}$$

$$= \sqrt{[त^2 (य_1 - य_2)^2 + (य_1 - य_2)^2]}$$

$$= (य_1 - य_2) \sqrt{(त^2 + १)}$$

$$= \frac{४ \sqrt{[क (क - त ग)]}}{त^2} \sqrt{(त^2 + १)}$$

$$= \frac{४}{त^2} \sqrt{(त^2 + १)} \sqrt{[क (क - त ग)]}$$

१४०—उस अवस्थाको निकालना जब $र = त य + ग$ रेखा परवलय $र^2 = ४ क य$ का स्पर्श करे।

उन बिन्दुओंके भुज जिनमें सरल रेखा $र = त य + ग$ परवलय $र^2 = ४ क य$ को काटती है, निम्न वर्गात्मक समीकरण द्वारा सूचित होते हैं:—

$$त^2 य^2 + २ य (त ग - २ क) + ग^2 = ०$$

यदि सरल रेखा परवलयका स्पर्श करेगी तो दोनों अन्तरखण्ड बिन्दु पराच्छादित होंगे अतः इस समीकरणके मूल भी पराच्छादित अर्थात् समान होंगे। यह तब हो सकता है जब

$४ (त ग — २ क)^२ = ४ त^२ ग^२$

$\therefore त^२ ग^२ — ४ क त ग + ४ क^२ = त^२ ग^२$

$\therefore त ग = क$

$\therefore ग = \frac{क}{त}$

ग का यह मान सरल रेखाके समीकरण में उपयुक्त करने से—

$$र = त य + \frac{क}{त}$$

यह स्पर्श रेखाका समीकरण है।

१४१—परवलय $र^२ = ४ क य$ के किसी बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्श रेखाका समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि ब बिन्दुके युग्मांक (या, रा) और भ बिन्दु के युग्मांक (यि, रि) हैं। दोनों बिन्दु परवलयके वक्र पर स्थित हैं। अतः रेखा ब भ का समीकरण यह होगा :—

$$र - रा = \frac{रि - रा}{यि - या} (य - या) \cdots\cdots (१)$$

ब और भ दोनों वक्र पर हैं अतः

$$रा^२ = ४ क या \cdots\cdots\cdots (२)$$

$$रि^२ = ४ क यि \cdots\cdots\cdots (३)$$

समीकरण (३) मेंसे समीकरण (२) को घटाने से—

$$रि^२ — रा^२ = ४ क (यि — या)$$

$$\therefore (रि + रा)(रि — रा) = ४ क (यि — या)$$

$$\therefore \frac{रि — रा}{यि - या} = \frac{४ क}{रि + रा}$$

इसका समीकरण (१) में उपयोग करने से—

$$र — रा = \frac{४ क}{रि + रा} (य - या)$$

$\therefore र (रि + रा) = ४ क य + रिरा + रा^२ — ४क या \cdots\cdots\cdots (४)$

$$परन्तु\ रा^२ = ४ क या$$

$$\therefore रा^२ - ४ क या = ०$$

$\therefore$ समीकरण (४) इस प्रकार हुआ—

$$र (रि + रा) = ४ क य + रि रा \cdots (५)$$

यदि दोनों बिन्दु ब, और भ अति निकट हों अर्थात् या = यि और रा = रि, तो ब भ रेखा वक्र पर स्पर्श रेखा होगी, अतः समीकरण (५) में या = यि और रा = रि करनेसे स्पर्श रेखाका समीकरण यह होगा—

$$२ र रा = ४ क य + रा^२$$

$$पर\ रा^२ = ४ क या$$

$$\therefore २ र रा = ४ क य + ४ क या$$

$$= ४ क (य + या)$$

अतः स्पर्श रेखा का समीकरण यह होगा—

$$र रा = २ क (य + या) \cdots\cdots (६)$$

इस समीकरण में भी सूक्त १०४ का नियम उपयुक्त होता है—स्पर्श रेखाका समीकरण वक्रके समीकरण में $र^२$ के स्थानों में र रा और २ य के स्थान में (य + या) उपयुक्त कर देनेसे निकल आता है।

उपसिद्धान्त—बिन्दु (०, ०) पर की स्पर्श रेखा का समीकरण य = ० है अर्थात् शीर्ष पर की स्पर्श रेखा अक्ष के लम्बरूप है।

१४२—अभ्यास १—परवलय की दो स्पर्श रेखाओं के अन्तरखण्ड बिन्दुका कोटि स्पर्श-बिन्दुओंके कोटिके योग का आधा होता है।

बिन्दु (या, रा) और (यि, रि) पर की स्पर्श रेखाओंके समीकरण ये हैं :—

$$र रा = २ क (य + या) \cdots\cdots (१)$$

$$र रि = २ क (य + यि) \cdots\cdots (२)$$

इन दोनों का अन्तरखण्ड निकालनेके लिये दोनों समीकरणों को घटाने से—

$$र (रा — रि) = २ क (या - यि)$$

$$= २ क या — २ क यि \cdots (३)$$

पर दोनों बिन्दु परवलय पर हैं। अतः

$$रा^2 = ४ क या$$

$$\therefore २ क या = \frac{१}{२} रा^2$$

तथा $रि^2 = ४ क यि$

$$\therefore २ क यि = \frac{१}{२} रि^2$$

समीकरण (३) में इसका उपयोग करने से—

$$र (रा - रि) = \frac{१}{२} (रा^2 - रि^2)$$

$$= \frac{१}{२} (रा + रि)(रा - रि)$$

$$\therefore र = \frac{१}{२} (रा + रि)$$

अभ्यास २—परवलयकी उन दो स्पर्श रेखायोंके, जो परस्परमें लम्बरूप हैं अन्तरखण्ड बिन्दु का बिन्दु पथ निकालो—

कल्पना करो कि दो स्पर्श रेखाओं के समीकरण यह हैं—

$$र = त य + \frac{क}{त} \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$और\ रा = ता\ य + \frac{क}{ता} \cdots\cdots\cdots (२)$$

ये लम्बरूप हैं, अतः तता $= -१$, $\therefore ता = -\frac{१}{त}$

इसे समीकरण (२) में उपयुक्त करने से

$$र = -\frac{१}{त} य + \frac{क}{-त^{?}}$$

$$= -\frac{१}{त} य - तक \cdots\cdots\cdots (३)$$

समीकरण (३) को समीकरण (१) में से घटानेसे दोनों के अन्तरखण्ड का भुज निकल सकता है अतः—

$$० = य\left(त + \frac{१}{त}\right) + क\left(त + \frac{१}{त}\right)$$

$$\therefore य + क = ०$$

यह ऐच्छित बिन्दु-पथ है।

१४३—परवलयके किसी बिन्दु (या, रा) पर अवलम्ब निकालना—

(या, रा) पर अवलम्ब उस बिन्दु की स्पर्श रेखा पर लम्बरूप होगा। स्पर्श रेखाका समीकरण यह है :—

$$र = \frac{२ क}{रा} (य + या) \cdots\cdots\cdots (१)$$

(या, रा) से होकर जाने वाली किसी रेखा का समीकरण सूत्र ५६ के अनुसार यह है—

$$(र - रा) = त (य - या) \cdots\cdots (२)$$

यदि सरल रेखायें (१) और (२) परस्परमें लम्बरूप हैं तो—

$$त \times \frac{२ क}{रा} = -१$$

$$त = -\frac{रा}{२ क}$$

इस मानको समीकरण (२) में उपयुक्त करनेसे अवलम्ब का समीकरण यह हुआ :—

$$(र - रा) = -\frac{रा}{२ क} (य - या) \cdots\cdots (३)$$

उपसिद्धान्त—इस अवलम्बके समीकरण को दूसरे रूपमें भी रख सकते हैं। उपर्युक्त कथन के अनुसार

$$त \times \frac{२ क}{रा} = -१$$

$$\therefore रा = -२ त क$$

बिन्दु (या, रा) परवलय पर है, अतः

$$रा^2 = ४ क या$$

$$\therefore या = \frac{रा^2}{४ क}$$

पर $रा = -२ त क$

$$\therefore या = \frac{४ त^2 क^2}{४ क} = क त^2$$

या और रा के इन मानों को अवलम्ब के समीकरण

$$र - रा = -\frac{रा}{२ क} (य - या)$$

में उपयुक्त करने से अवलम्ब का समीकरण यह होगा—

$$र + २ त क = \frac{२ त क}{२ क} (य - क त^२)$$

$$\therefore र = त य - २ क त - क त^३$$

यह परवलय के (क $त^२$, −२ क त) बिन्दु पर अवलम्ब है।

१४४—अवान्तर स्पर्श रेखा और अवान्तर अवलम्ब—परिभाषा—
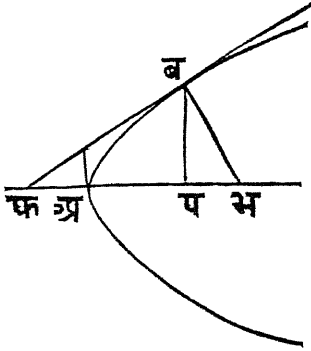
चित्र ५३

वक्र पर व कोई बिन्दु है और इस बिन्दु परकी स्पर्श रेखा वक्र के अक्ष से फ पर मिलती है, तथा अवलम्ब बभ अक्षसे भ बिन्दु पर मिलता है, ब बिन्दुसे अक्ष पर ब प एक लम्ब खींचो। अतः फ प जो स्पर्श रेखा का अक्ष पर विक्षेप है अवान्तर स्पर्श रेखा कहलाता है और प भ जो अवलम्ब का अक्ष पर विक्षेप है अवान्तर अवलम्ब कहलाता है।

१४५—अवान्तर स्पर्शरेखा और अवान्तर अवलम्बकी लम्बाई निकालना—

यदि ब बिन्दुके युग्मांक (या, रा) हों, तो स्पर्श रेखा ब फ का समीकरण सूक्त १४१ के अनुसार यह होगा :—

$$र रा = २ क (य + या) \cdots\cdots (१)$$

ब बिन्दुके युग्मांक (या, रा) हैं, अतः अ प= या, तथा फ अ की लम्बाई निकालनेके लिये हमें यह निकालना है कि सरलरेखा (१) अक्षसे किस बिन्दु पर मिलती है। इस बिन्दुके लिये र=०, अतः समीकरण (१) यह रूप धारण कर लेता है—

$$य = - या \cdots\cdots (२)$$

अतः फ अ = अ प

अवान्तर स्पर्श रेखा की लम्बाई = फ प

= २ अ प

= २ या

अर्थात् बिन्दुके भुजका द्विगुण।

त्रिकोण ब फ भ एक समकोण त्रिभुज है, अतः

$$ब प^२ = फ प . प भ$$

$$\therefore अवान्तर अवलम्ब = प भ = \frac{ब प^२}{फ प} = \frac{रा^२}{२ या}$$

पर परवलयका समीकरण $र^२ = ४ क य$ है और (या, रा) बिन्दु इस वक्र पर है

$$\therefore रा^२ = ४ क या$$

$$\therefore प भ = \frac{४ क या}{२ या} = २ क$$

अतः प्रत्येक बिन्दुके लिये अवान्तर अवलम्बकी लम्बाई स्थिर है, और यह अर्ध-ऊर्ध्व-भुज के बरावर होती है।

१४६—परवलयके कुछ गुण—अब हम यहां परवलयके कुछ ऐसे गुण देंगे जिनका रेखा गणित की दृष्टिसे अधिक महत्व है। इन गुणोंकी सत्यता में उपर्युक्त सूक्तोंके प्रमाण दिये जा सकते हैं।

(१) यदि ब कोई बिन्दु परवलय पर है जिससे ब फ स्पर्श रेखा और ब भ अवलम्ब अक्षसे फ और भ पर क्रमानुसार मिलते हुए खींचे गये हैं तो

स फ = स भ = स ब

तथा ∠ त ब फ = ∠ फ ब स यदि त ब अक्षके समानान्तर हो तथा नियतरेखा को त पर काटती हो।

सिद्धिः—सूक्त १४५ के अनुसार—

फ अ = अ प

∴ फ स = फ अ + अ स = अ प + अ स

= अ प + म अ = ब त = ब स

∴ < स ब फ = < स फ ब

पर < ब फ स = < फ ब त

∴ < स ब फ = < फ ब त

तथा सूक्त १४५ के अनुसार यह भी सिद्ध है कि—

प भ = २ अ स = म स

∴ स भ = स प + प भ = म स + स प

= मप = ब स

∴ स फ = स भ = स ब

(२) यदि ब पर की स्पर्शरेखा नियत रेखासे थ बिन्दु पर मिलती है तो कोण ब स थ समकोण होगा।

△ स ब फ = △ फ ब त = △ थ ब त

चित्र ५४

त्रिकोण त ब थ और त्रिकोण थ स ब में ब स = ब त, ब थ दोनोंमें सम्मिलित है तथा < स ब थ = < थ ब त

∴ दोनों त्रिकोण पूर्णतः समान हैं, अतः < ब त थ = < थ स ब

∴ < थ स ब एक समकोण है।

(३) किसी नाभि-चापकर्ण (चापकर्ण जो नाभिसे हो कर जाता है) के सिरों से खींची हुई स्पर्श रेखायें नियत रेखा पर आकर मिलती हैं और दोनों स्पर्श रेखाओं के बीचमें एक समकोण होता है।

ब स को दूसरी ओर इस प्रकार बढ़ा दो कि वक्रको यह बा पर काटे। उपर्युक्त कथनानुसार <ब स थ भी समकोण है, अतः बा पर खींची गयी स्पर्श रेखा भी नियत रेखासे थ बिन्दु पर मिलती है।

तथा (२) से < ब थ त = < स थ ब

इसी प्रकार <ता थ बा = स थ बा

अतः < ब थ बा = $\frac{1}{2}$ < स थ त + $\frac{1}{2}$ < स थ ता

= $\frac{1}{2}$ (< स थ त + < स थ ता)

= १ समकोण

(४) यदि ब पर से खींची गई स्पर्श रेखा पर स से एक लम्ब स द खींचा जाय तो द बिन्दु अ पर से खींची गई स्पर्श रेखा पर स्थित होगा और स द^2 = अ स, स ब।

किसी स्पर्श रेखाका समीकरण

$$र = त य + \frac{क}{त} \cdots\cdots\cdots (१) है$$

किसी रेखा का जो इस पर लम्बरूप हो और नाभि स से हो कर जाती हो समीकरण यह है:—

$$र = -\frac{१}{त}(य - क) \cdots\cdots (२)$$

सरल रेखायें (१) और (२) वहां मिलेंगी जहां

$$त य + \frac{क}{त} = -\frac{१}{त}(य - क) = -\frac{१}{त}य + \frac{क}{त}$$

अर्थात् जहां य = ०

अतः शीर्ष से खींची गई स्पर्श रेखा पर द स्थित है।

रेखा गणितसे स्पष्ट है कि—

स द^2 = स फ. स अ = स फ. स ब

१४७—सिद्ध करना कि किसी दिये हुए बिन्दुसे सामान्यतः दो स्पर्श रेखायें किसी परवलय पर खींची जा सकती हैं।

सूक्त १४० के अनुसार किसी स्पर्श रेखाका समीकरण यह है :—

$$र = त\ य + \frac{क}{त} \cdots\cdots (१)$$

यदि यह किसी निश्चित बिन्दु ($य_१, र_१$) से हो कर जाती है तो—

$$र_१ = त\ य_१ + \frac{क}{त} \cdots (२)$$

$$\therefore त^२ य_१ - त\ र_१ + क = ० \cdots (३)$$

$य_१$ और $र_१$ के किसी भी मान देने पर त के दो मान इस समीकरण द्वारा सूचित होते हैं। ये मान वास्तविक, पराच्छादित और काल्पनिक हो सकते हैं। त के प्रत्येक मानको समीकरण (१) में उपयुक्त करनेसे दो स्पर्श रेखायें प्राप्त हो सकती हैं।

दोनों मूल वास्तविक होंगे यदि $र_१^२ - ४ क\ य_१$ धनात्मक हो और दोनों काल्पनिक होंगे यदि $र_१^२ - ४ क\ य_१$ ऋणात्मक हो। दोनों मूल पराच्छादित होंगे यदि $र_१^२ - ४ क\ य_१ = ०$ ऐसी दशामें बिन्दु वक्रके ऊपर होगा।

अतः यदि बिन्दु वक्रके बाहर है तो दो वास्तविक स्पर्श रेखायें खींची जा सकती हैं, यदि बिन्दु वक्रके ऊपर है तो पराच्छादित स्पर्श रेखायें (प्रत्यक्षमें एक स्पर्श रेखा) खींची जा सकती हैं। यदि बिन्दु वक्रके भीतर हो तो दोनों स्पर्श रेखायें काल्पनिक होंगी। उनको खींच कर दिखलाना असम्भव है।

१४८—बिन्दु ($य_१, र_१$) से खींची गई स्पर्श रेखायोंके सम्पर्क चापकर्णका समीकरण निकालना—

किसी बिन्दु प से जिसके युग्मांक (या, रा) हैं खींची गई स्पर्श रेखाका समीकरण यह है :—

$$र\ रा = २ क (य + या)$$

किसी दूसरे बिन्दु फ से जिसके युग्मांक (यि, रि) हैं, खींची गई स्पर्श रेखा का समीकरण यह होगा :—

$$र\ रि = २ क (य + यि)$$

यदि ये स्पर्श रेखायें त पर मिलें जिसके युग्मांक ($य_१, र_१$) हों तो,

$$र_१\ रा = २ क (य_१ + या) \cdots\cdots (१)$$

$$र_१ रि = २ क (य_१ + यि) \cdots\cdots (२)$$

अतः सम्पर्क चापकर्ण प फ का समीकरण यह होगा—

$$र\ र_१ = २ क (य + य_१) \cdots (३)$$

क्योंकि समीकरण (१) और (२) समीकरण (३) में सम्बद्ध हैं।

१४९—परवलय $र^२ = ४ क\ य$ की अपेक्षासे बिन्दु ($य_१, र_१$) के ध्रुवीयका समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि व बिन्दु ($य_१, र_१$) से खींचा हुआ चापकर्ण परवलयसे प और फ बिन्दु पर मिलता है, तथा प से और फ से खींची गई स्पर्श रेखायें त बिन्दुपर मिलती हैं जिसके युग्मांक (च, छ) हैं। हमें इस बिन्दुका बिन्दु-पथ ज्ञात करना है, क्योंकि यह बिन्दु-पथ परवलय की अपेक्षा से ($य_१, र_१$) बिन्दुका ध्रुवीय कहलाता है।

उन स्पर्श रेखाओंके सम्पर्क चापकर्णका समीकरण जो त बिन्दु (च, छ) से खींची गई हैं; गत सूक्त के अनुसार यह है—

$$छ\ र = २ क (य + च)$$

यह रेखा बिन्दु ($य_१, र_१$) से भी हो कर जाती है अतः—

$$छ\ र_१ = २ क (य_१ + च) \cdots\cdots (१)$$

इस समीकरण (१) द्वारा स्पष्ट है कि बिन्दु (च, छ) सदा निम्न समीकरण द्वारा सूचित रेखा पर स्थित है—

$$र\ र_१ = २ क (य_१ + य) \cdots\cdots (२)$$

अतः समीकरण (२) ध्रुवीय का सूचक है।

उपसिद्धान्त १—नाभि (क, ०) के ध्रुवीयका समीकरण य+क=० है अर्थात् नियत रेखा ही नाभिका ध्रुवीय है।

उपसिद्धान्त २—जब बिन्दु ($य_1$, $र_1$) परवलय के बाहर स्थित है तो ध्रुवीय समीकरण, और ($य_1$, $र_1$) से खींची गयी स्पर्श रेखाओंके सम्पर्क चाप-कर्ण का समीकरण एक ही होगा।

जब बिन्दु ($य_1$, $र_1$) परवलय पर ही स्थित है तो उस स्थानके ध्रुवीय और स्पर्श रेखा दोनोंका समीकरण एक ही होगा।

१५०—बिन्दु ($य_1$, $र_1$) के ध्रुवीय खींचने की विधि—

कल्पना करो कि किसी त बिन्दु ($य_1$, $र_1$) के ध्रुवीय का समीकरण यह है:—

$$र\,र_1 = २\,क\,(य + य_1) \cdots\cdots (१)$$

त बिन्दु से एक रेखा अक्षके समानान्तर खींचो। इसका समीकरण यह होगा :—

$$र = र_1 \cdots\cdots (२)$$

कल्पना करो कि यह रेखा ध्रुवीयसे ट बिन्दु पर और परवलयसे ब पर मिलती है।

ट के युग्मांक रेखा (१) और (२) का अन्तरखण्ड बिन्दु ज्ञात होने से पता चल सकते हैं। अतः इसके युग्मांक ये हैं :—

$$\left(\frac{र^2}{२\,क} - य_1,\ और\ र_1\right)$$

ब बिन्दु वक्र पर है और इसकी कोटि $र_1$ है तथा युग्मांक

$$\left(\frac{र_1^2}{४\,क},\ र_1\right) \text{ हैं}$$

$$ब\ बिन्दुका\ भुज = \frac{त\ बिन्दुका\ भुज + ट\ बिन्दुका\ भुज}{२}$$

अतः सूक्त २२ के अनुसार ब बिन्दु रेखा त ट का मध्यबिन्दु है

तथा ब पर की स्पर्श रेखाका समीकरण यह है :—

$$र\,र_1 = २\,क\left(य + \frac{र_1^2}{४\,क}\right)$$

जो स्पष्टतः समीकरण (१) द्वारा सूचित रेखाके समानान्तर है। अतः त बिन्दुका ध्रुवीय ब बिन्दु पर की स्पर्श रेखाके समानान्तर है। अतः ध्रुवीय खींचनेकी विधि यह है:—

दिये हुये बिन्दु त से एक रेखा अक्षके समानान्तर खींचो। यह रेखा परवलय को ब पर काटे। त ब को और बढ़ा कर दूसरी ओर ट बिन्दु ऐसा स्थापित करो कि त ब=ब ट। ब बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा खींचो और ट बिन्दुसे एक रेखा इस स्पर्श रेखाके समानान्तर खींचो। यह रेखा एच्छित ध्रुवीय है।

१५१—यदि परवलयकी अपेक्षासे ब बिन्दुका ध्रुवीय किसी बिन्दु प से हो कर जाता है तो प का ध्रुवीय ब बिन्दुसे हो कर जावेगा :—

कल्पना करो कि ब के युग्मांक (या, रा) हैं और प के (यि, रि,) हैं। परवलय $र^2 = ४\,क\,य$ की अपेक्षासे ब बिन्दुके ध्रुवीयका समीकरण यह है।

$$र\,रा = २\,क\,(य + या)$$

यह रेखा (यि, रि) बिन्दुसे हो कर जाती है अतः—

$$रि\,रा = २\,क\,(यि + या) \cdots\cdots (१)$$

इसी प्रकार प के ध्रुवीयका समीकरण यह है।

$$र\,रि = २\,क\,(य + यि)$$

यदि यह ब बिन्दुसे हो कर जाय तो—

$$रि\,रा = २\,क\,(यि + या)$$

परिणाम (१) और (२) एक ही हैं अतः ब का ध्रुवीय प बिन्दुसे और प का ध्रुवीय ब बिन्दु से हो कर जाता है।

उपसिद्धान्त—दो बिन्दु प और ब के ध्रुवीय यदि त बिन्दु पर कटें तो यह बिन्दु प ब रेखाका ध्रुव है।

१५२—परवलयकी अपेक्षा किसी ज्ञात रेखाका ध्रुव निकालना—

कल्पना करो कि सरल रेखाका समीकरण यह है :—

$$\text{का य} + \text{खार} + \text{गा} = ० \cdots\cdots (१)$$

यदि इसका ध्रुव ($य_१$, $र_१$) बिन्दु है तो समीकरण (१) द्वारा सूचित रेखा और

$$र र_१ = २ क (य + य_१) \cdots\cdots (२)$$

द्वारा सूचित रेखा एक ही होगी। समीकरण (२) इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

$$२ क य - र र_१ + २ क य_१ = ०$$

समीकरण (१) और (३) से सूचित रेखायें एक ही हैं अतः गुणकों को तुल्यता देने से—

$$\frac{२ क}{का} = - \frac{र_१}{खा} = \frac{२ क य_१}{गा}$$

$$\therefore य_१ = \frac{गा}{का} \text{ और } र_१ = - \frac{२ क खा}{का}$$

अतः ध्रुवके युग्मांक $\left(\frac{गा}{का}, - \frac{२ क खा}{का}\right)$ हैं।

१५३—बिन्दु ($य_१$, $र_१$) से परवलय पर खींची गई युगल-स्पर्श रेखाओंका समीकरण निकालना—

किसी स्पर्श रेखा पर (च, छ) कोई बिन्दु लो। अतः ($य_१$, $र_१$) बिन्दु और (च, छ) बिन्दुको संयुक्त करने वाली सरल रेखाका समीकरण यह है :—

$$र - र_१ = \frac{छ - र_१}{च - य_१}(य - य_१)$$

अर्थात्

$$र = \frac{छ - र_१}{च - य_१} य + \frac{चर_१ - छय_१}{च - य_१}$$

यदि यह स्पर्श रेखाका सूचक है तो यह इस रूपका होना चाहिये :—

$$र = त य + \frac{क}{त}$$

अर्थात्

$$त = \frac{छ - र_१}{च - य_१} \text{ और } \frac{क}{त} = \frac{चर_१ - छय_१}{च - य_१}$$

अतः गुणा करने से

$$त \times \frac{क}{त} = \frac{छ - र_१}{च - य_१} \times \frac{चर_१ - छय_१}{च - य_१}$$

$$\therefore क = \frac{(छ - र_१)(चर_१ - छय_१)}{(च - य_१)^२}$$

$$\therefore क (च - य_१)^२ = (छ - र_१)(चर_१ - छय_१)$$

अतः (च, छ) का बिन्दु-पथ यह है :—

$$क (य - य_१)^२ = (र - र_१)(यर_१ - रय_१) \cdots (१)$$

यह समीकरण (१), युगल स्पर्श रेखाओंका समीकरण है। इसे इस रूपमें भी लिख सकते हैं :—

$$(र^२ - ४ कय)(र_१^२ - ४ कय_१) = [रर_१ - २ क (य + य_१)]^२$$

१५४—सिद्ध करना कि परवलयके समानान्तर-चापकर्ण समूहके मध्य बिन्दुओंका बिन्दु-पथ परवलयके अक्ष के समान्नातर एक सरल रेखा है :—

सूक्त १४१ के समीकरण (५) के अनुसार परवलय $र^२ = ४ कय$ परके दो बिन्दु (या, रा) और (यि, रि) को संयुक्त करने वाली सरल रेखा का समीकरण यह है :—

$$र (रा + रि) - ४ कय - रारि = ० \cdots\cdots (१)$$

$$\therefore र = \frac{४ क}{रा + रि} य + \frac{रारि}{रा + रि} \cdots\cdots (२)$$

किसी सरल रेखाका समीकरण र=तय+ग होता है। इसकी समीकरण (२) से तुलना करने पर

$$त = \frac{४ क}{रा + रि}$$

यदि यह रेखा परवलय के अक्षसे थ° का कोण बनाती है तो

$$त = स्पर्श\ थ^\circ = \frac{४ क}{रा + रि} \cdots\cdots (३)$$

यदि चापकर्णके मध्य बिन्दुके युग्मांक (य, र) हों तो

$$२ य = या + यि, \text{ तथा } २ र = रा + रि$$

अतः समीकरण (३) से—

$$स्पर्श\ थ^\circ = \frac{४ क}{२ र}$$

$$\therefore र = \frac{२ क}{स्पर्श\ थ^\circ} = २ क\ कोटि\ स्पर्श\ थ \cdots (४)$$

अतः जब तक थ° स्थिर है तब तक र भी स्थिर रहेगा अतः ऐच्छिक बिन्दु पथ अक्षके समानान्तर एक सरल रेखा है।

१५५—व्यास—परवलयके समानान्तर-चापकर्ण समूह के मध्यबिन्दुओंका बिन्दुपथ व्यास कहलाता है और चापकर्णों को इसका द्विगुण-कोटि कहते हैं।

१५६—व्यासके सिरेसे खींची गयी स्पर्श रेखा उन चापकर्णोंके समानान्तर है जिन्हें यह व्यास समद्विभाजित करता है।

समानान्तर चापकर्ण समूहके सब मध्यबिन्दु व्यास पर स्थित हैं अतः समानान्तर स्पर्शरेखाका विचार करनेसे, यह पता चलता है कि जब चापकर्ण द्वारा परवलयके अन्तर खण्ड बिन्दु पराच्छादित हो जाते हैं तब समानान्तर स्पर्श रेखा प्राप्त होती है। अतः समानान्तर चापकर्ण समूहका व्यास चापकर्णके समानान्तर स्पर्श रेखाके स्पर्श बिन्दुसे होकर जाता है।

चाय

[ले० श्री० जनार्दन प्रसाद शुक्ल]

चाय तो सभी पीते हैं पर इस बातके जाननेके इच्छुक कम मिलेंगे कि इसको पहले पहल किसने उपजाया। इसकी उपज इतने दिनोंसे होती आरही है कि इसका ठीक पता लगाना असम्भव सा ही है। पर इसमें संदेह नहीं कि यह पहले चीन देशमें उपजाई गई। कुछ लोग इसकी उपजका गौरव सम्राट चिनांग को देते हैं जो ईसाके २७३७ वर्ष पहले राज्य करता था। ऐसा भी मत है कि सन् ५४३ में बुद्ध धर्मा नामक दूत ने जो भारतवर्षसे बौद्ध धर्मको प्रचार करने गया था इसका प्रचार पूर्वकी ओर फैलाया। जो कुछ भी हो पर ६१८ से ६०६ ई० तक इसका इतना प्रचार हो चुका था कि इसकी उपज पर कर देना पड़ता था। नवीं शताब्दीमें मिओई (Miyoye) नामक पुजारी ने चायके बीजको पहले जापानके किउशियू (Kiushiu) नामक शहरमें बोया और इस प्रकार चायका प्रचार चीनसे जापानमें हुआ। इस शताब्दीमें डच लोग पुर्तगाल और चीनमें आये और तब उनको चायका शौक हुआ। फिर क्या था, पाश्चात्य देशोंमें भी इसका प्रचार बढ़ने लगा। पहले एक पौंड चायका दाम यूरोप में दस पौंड था। यह तोफे की चीज़ गिनी जाती थी। फिर इसके दाम पचास शिलिंग तक गिरे। १६६० ई० में एक गैलन चाय पर आठ पेंस कर भी लगने लगा। ईस्टइण्डिया कम्पनी ने १६६६ में केथरीन और चार्ल्स द्वितीयको २ पौंड चाय भेजी और फिर दो पार्सल २२$\frac{३}{४}$ पौंडकी दरबारमें भेजी, ऐसा इतिहासमें है। बढ़ते बढ़ते इसका प्रचार एक साल में २०००० पौंड हो गया।

साल	चायका कुल खर्च			चायका फी आदमी खर्च	
१८००	२३	लाख	पौंड	१·४	पौंड
१८५०	५१	"	"	१·८	"
१८६०	७७	"	"	२·६	"
१८७०	११८	"	"	३·७	"
१८८०	१५८	"	"	४·५	"
१८९०	१९४	"	"	५	"
१९००	२५०	"	"	६	"
१९१०	२८७	"	"	६·३	"
१९१२	२९६	"	"	६·४	"

सन् १७८२ ई० में सर जोज़फ बैन्क साहबने चायके उगानेकी अच्छी जगहें ढूँढ़ीं। आसाममें १८२० ई० में डेविड स्काट ने कुछ चायकी पत्तियां पाईं। विलियम बैनटिंग साहबके समयमें एक समिति बन गई जो चायकी उपज को चीनसे सीखकर हिमालय की तराईमें बुआती थी। और अब भी संघा जातिके लोग उसी प्रकार चाय जङ्गलोंमें उपजाते हैं। इसके बाद १८४० ई० में आसाम कम्पनी बनी जो अब भी है। इस कम्पनीने पहले १९०७ में ११७०००००० पौंड चाय बेची। इससे पाठक गण अन्दाज कर सकेंगे कि चायका उपयोग कितने जल्द बढ़ता गया।

इस समय चाय उपजाने वाले देशोंमें मुख्य चीन, जापान, भारतवर्ष, दक्षिण अमेरिका और भूमध्यसागरकी तराई है। पर लंका, नेटाल अस्ट्रेलिया आदि जगहों पर भी इसकी उपज अच्छी होती है।

देश	जगह बोनेकी	उपज	
चीन		१८८३७१०००	पौंड
"		१९००००००	"
जापान	१२१, २०२ एकड़	३९७७८०००	"
फारमूसा	७९८५८ "	२०३०००००	"
भारतवर्ष	५३११०८ "	२४०४१८८००	"
ब्रह्मा	१४९८ "	३२४९०००	"
स्याम स्टेट		१६००००००	"
लंका	३९०००० "	१७०५२७०००	"
जावा	४५००० "	२६२१५०००	"
नेटाल	५०००	२७०५०००	"
कुल		७२६६०१०००	पौंड

चायकी झाड़ी यदि जङ्गलमें देखी जाय, जहां उसे चाय बनानेके काममें नहीं लाते, तो तीस चालीस फुट लम्बी, झाड़ी क्या, पेड़ होगा। पर जहां इसको चायके बनानेके काम में लाते हैं इसकी ३ से ५ फीट लम्बी तक झाड़ियां ही होती हैं। इसकी पत्तियां चमड़ेके समान, अंडाकार, और नसोंसे गछी हुई होती हैं, और चायके फूल सफेद रंगके होते हैं जिनमें भीनी भीनी महक होती है।

सन् १९०६ में:—

	कुल सालमें खर्च (पौंड)	फी आदमी खर्च (पौंड)	कर फी पौंड
यूनाईटेड किंगडम	२६६१०३०००	६·१७	५ पैंस
रूस	१३५४०००००	·९४	१ शिलिंग
अमेरिका संयुक्तराज्य	८४८४२०००	·८९	२½ पैंस
कनाडा	२३९६९०००	४·३४	मुफ्त
औस्ट्रेलिया	२७९५९०००	६·९८	”
न्यूजीलेण्ड	६१४१०००	६·५	९ पैंस
जरमनी	६३५४०००	·११	१३५
फ्रांस	२४२८०००	·०६	१
हौलेंड	७८७४०००	१·४५	१
दक्षिण अफ्रीका	७७५२०००	१·४	४ ½ पैंस
भारतवर्ष	७८४०००	१	मुफ्त
बरमा	१९००००००	१	४ ½ पैंस तक

चायकी पत्तियां कई प्रकारकी होती हैं पर इनमें दो मुख्य हैं एक तो आसामी और दूसरी चीन देशकी। पहली दूसरी से देखनेमें कम हरी होती है। जितनी प्रकारकी पत्तियां उतने ही भिन्न पदार्थ उनमें होते हैं पर कहवीन (Caffiene) टैनिन और सुगन्धित तैल ही मुख्य हैं। चायकी महक तो सुगन्धित तैलके कारण होती हैं जो पत्तियोंमें छोटी थैलियों द्वारा भरा रहता है। जब चाय बनाई जाती है तो यह थैलियां फूट जाती हैं और तेल इन्हीं बनी पत्तियोंके ऊपर रह जाता है। जब गर्म पानी में चाय डाली जाती है तो उसीसे महक आ जाती है। चायमें निम्न मुख्य चीज़ें हैं जिससे यह अच्छी या बुरी कही जाती है।

यौगिक	हरी पत्ती पेड़ से सुखाई हुई प्रतिशत	उसीको जब हरी चायमें बना कर प्रतिशत	उसीको काली चाय बना कर प्रतिशत
अस्वच्छ प्रोटीन	३७·३३	३:·४३	३८९
अस्वच्छ तन्तु	१०·४४	१०·०६	१००७
ज्वलकनिष्कर्ष	६·४९	·५·५२	५८२
अन्य नोषजन रहित यौगिक	२७·८६	३१·४३	३५·३९
राख	·४·९७	४·९२	४·९३
कहवीन	३·३०४	३·२	३·३
टैनिन	१२·९	१०·६४	४·९
गरम पानीमें घुलनशील	५०·१७	५३·७४	४७·२३
पूर्णनोषजन	५·९·७३	५·९८९	६·२२४
अण्डसित् नोषजन	४ १०७	३·९३७	४·१०६
कहवीन नोषजन	·९५८	९२६	·९५५
अमिनो नोषजन	·९१	१·१२६	१·१६३

वास्तवमें चाय हम लोगोंको काली पत्तियोंकी मड़ुरी हुई चूनीके समान मिलती है पर अच्छी चाय काली पत्तियोंमें भी होती है जैसी कि ब्रूकबाण्डके बंडलमें आती है। पर ऐसा होनेके पहले चायकी पत्तीको कई जगह और कई कार्य करने पड़ते हैं। पहले तो चायका बीज उगाया जाता है फिर पत्तियां खुतर कर बनाई जाती हैं।

चाय की उपज गर्म और तर आबोहवा चाहती हैं जहाँ बहुधा पानी गिरता हो। जहाँ बलूतके पेड़ होते हैं वहाँकी जमीन इसके लिये अच्छी होती है। जगह ढालू हो तो बहुत अच्छा है जिससे पत्तियाँ और खाद आदि पानीके साथ बह कर आजाती हैं। चीनमें जहाँ सबसे अच्छी चाय होती है जहाँका तापक्रम अधिक तर ९० से १०८ अंश फेरनहीट तक रहता है। चायके बीज रीठोंसे कुछ छोटे होते हैं। यह नवम्बरमें पक जाते हैं। ये बीज छाये हुए घरोंमें उगाये जाते हैं जिनमें पानीसे सड़ न जाँय। जब अंखुये निकल आते हैं तो यह दो ढाई फुट जमीन खोद कर एक एक गड्ढेमें चार चार रख दिये जाते हैं। आस पास चार फुट तककी ज़मीन झाड़ीके लिये साफ रहती है। १ सालमें वह १½ फुटके होजाते हैं, उन्हें फिर क़लम करके बढ़ाते जाते हैं, ये जिसमें झाड़ीके रूपमें बीस घन फुट ज़मीन तक फैल जाते हैं। तीन वर्ष तक उनमेंसे पत्तियां नहीं चुनी जाती हैं। फिर उनकी कोपलों को तोड़ने लगते हैं। पहले तो एक झाड़ीसे एक आध औंस चाय ही निकलती है पर ९, १० वर्ष बाद ४, ५ औंस तक होने लगती है। भारतवर्षमें ज़मीन कुदालीसे खोद कर बीज लगाते हैं। एप्रिलके महीनेमें पत्तियां उतारी जाने लगती हैं। नवम्बर दिसम्बर तक पत्तियां ऊपर की कोपल वाली ही तोड़ी जाती हैं। उन्हींकी चाय अच्छी होती हैं। जावामें तो चाय बहुत वर्षों तक तोड़ी जाती है। लंका और दारजिलिंगकी चोटी पर चाय बहुत अच्छी होती है। चायकी झाड़ियां ७००० फुट समुद्रके ऊपर की सतहमें पाई

जाती हैं और एक एक झाड़ी पचास वर्ष तक काम देती है। चायको दीमक आदि बहुत नाश करती हैं। पर नोषजनकी खाद आदिसे उसकी रक्षा भी हो जाती है और उपज भी बहुत अच्छी होती है।

जब पत्तियां मिल गईं तो उनको बनाना रहा। बनानेके लिये भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न रीतियां हैं पर सब काम एक ही होता है। चाय दो प्रकार की बनाई जाती है, एक तो जो हरी रहे, दूसरी काली। हरी चाय बनानेके लिये पत्तियोंको पहले बासोंकी बड़ी चलनियोंमें ढक कर बफाते हैं जिससे तेल तो ऊपर आजाता है और पत्तियां हरी बनी रहती हैं। फिर पत्तियां बड़े बड़े लोहेके बर्तनोंमें गर्मकी जाती है। जब वह यहांसे निकाली गई तो उन्हें लपेट करके धीरे धीरे कल द्वारा ठंडा करते हैं। इस समय पत्तियां चलनी पर या लोहेकी ऊँची जाली पर रखली जाती हैं। फिर पत्तियां कोयले पर एक डेढ़ घंटे तक और गर्मकी जाती हैं जिससे पत्तियोंका रंग पक्का हो जाता है। इस समय पत्तियोंको चलाते जाना बहुत आवश्यक होता है। फिर पत्तियोंको बाहर निकाल कर अलग अलग कर लेते हैं क्योंकि पत्तियोंमें कई किसमें होनेके कारण जैसी चाय बनानी हो वैसी ही पत्तियां ली जाती हैं। यहाँ पर पत्तियां सिकुड़ जाती हैं, पत्तियोंको फिर पछोड़ कर गर्द आदिसे अलग कर लेते हैं यह काम मशीनसे हो जाता है। फिर पत्तियोंको चार पांच मिनट तक गर्म कर लेते हैं और शून्यदार बगडलोंमें भर देते हैं यही हरी चाय हुई।

काली चाय बनानेकी विधिमें पत्तियां तोड़ कर बांस या तारकी चटाइयों पर फैला दी जाती हैं और दो घंटे तक सुखाई जाती हैं। यहाँ पर पत्तियोंको पीट कर मुलायम कर लेते हैं और अगर ठंडक हुई तो थोड़ा गर्म भी कर लेते हैं। फिर पत्तियां ढेरमें इकट्ठा कर दी जाती हैं जहाँ ओषदीकृत होती हैं और जब कुछ लाल होने लगती है और महक निकलने लगती है तो उसे भूनते हैं। तारकी कई चलनियां होती हैं जिनका ताप २४० फ तक होता है। सिरक्को टीनके होते हैं जो नीचेसे गर्म कर दिये जाते हैं। बीस मिनटमें पत्तियोंको भून कर ठण्डाते हैं। यहाँ पर भी पत्तियां ओषदीकृत होती हैं और यौगिकमें कुछ परिवर्तन होता है। फिर पत्तियां और कली आदि अलग करली जाती हैं। पत्तियोंकी यहाँ कई किसमें और कई नामकी होती हैं। कुछको आरंज पाकोई, कुछको पाकोई, पाकोई संकोनी और संकोनीके नामसे पुकारते हैं जैसी अलग अलग पत्तियां हों। अलग अलग करनेके बाद पत्तियां बक्सोंमें भर दी जाती हैं ऊपरका सब काम जो (Roll) करने व भुनने व (Sife) करनेका है सब कल द्वारा ही होने लगा है।

पहले जब चाय ऊँटों द्वारा दूर दूर भेजी जाती थी और लेजानेमें असुविधा होती थी तो चाय को दबा कर ईंटें भी बनाई जाती थी। रूसके लोग अबो भी चाय के टिकियोंके रूपमें काममें लाते हैं पहले तो इन्हीं टिकियोंके सिक्केके रूपमें भी काम में लाते थे। इसमें जो चायकी पत्तियां टूट जाती हैं उनको या उनके चूरे को बहुत अच्छी तरह काममें लाया जा सकता है।

चायमें जैसा ऊपर लिखा जा चुका है मुख्य कहवीन, टैनिन, राख, और सुगन्धित तैल होते हैं कहवीन काली चायमें ज्यादा होती है और टैनिन हरी चायमें।

चायके बनानेमें कुछ चीजें घुल कर इधर उधर हो जाती हैं या जब भुनाई होती है तब कुछ परिवर्तन होनेसे ही स्वाद आदिमें अन्तर हो जाता है। चायकी पत्तियोंमें ऋतुके अनुसार बदल हुआ करती है। प्रत्यमिन और कहवीन की तादाद कम होती जाती है जैसे जैसे मौसम वसंतसे पतझड़में बदलता है। यही नहीं, पर प्रकाशका भी बहुत असर होता है।

क उ₃ना——क ओ
| |
क ओ क——नो (कउ₃)
कहवीन | ॥ क उ
क उ₃ नो—क——नो

टैनिन क (ओ उ) क उ क (ओ उ) क उ ओ
(ओ उ) क< क. क ओ. क ओ
क (ओ उ) क उ क उ. क. क ओ ओ उ
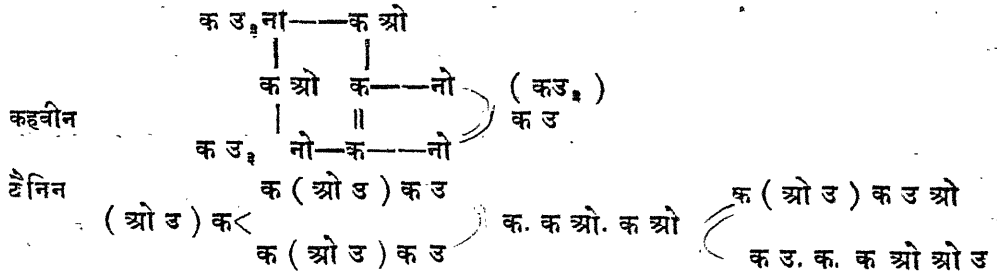
	अंधेरेमें उपजाई गई चायमें	प्रकाशकी चायमें
कहवीन	४·५३२	३·७=४
पूर्ण नोषजन	७·८३४	६·९४५
कहवीन नोषजन	१·३११	१·०९४३
टैनिन	कुछ भेद नहीं	

६ किस्मकी भारतीय चायमें पदार्थोंका औसत

पदार्थ	ज्यादासे ज्यादा	कमसे कम	औसत
पानी	६·१९	५·५६	५·८१
आधे घंटेमें पानीमें उतरी हुई चीजें	३९·६६	३७·२	३८·७७
कुल उतरी हुई चीजें	४५·६४	४१·३२	४२·९४
अनघुल पत्ती	५३·०७	४८·५३	५१·२४
टैनिन	१८·८६	१३·०४	१४·८७
कहवीन	३·३	१·८०	२·७
घुलनशील राख	३·६८	३·२४	३·५२
अनघुल राख	२·२२	१·९३	२·१२
उदहरिकाम्लमें अनघुल राख	·२९६	·१३७	·१७८

कहवीनको अलग करनेके बहुत तरीके हैं। हम यह तो ऊपर लिख चुके हैं कि यह किन तत्त्वोंसे बनी है। इसको निकालनेके लिये चायको पहले अमोनिया घोलके साथ मिलाते हैं, फिर यदि १० ग्राम चाय हो और ५ ग्राम अमोनिया तो २०० ग्राम क्लोरोफार्मके साथ आधे घंटे तक खूब हिलाते है फिर छान लेते हैं। करीब १५० ग्राम छान कर सुखा लेते हैं। फिर बची हुई वस्तुको ५ घ० शम० ज्वलक और २० घ० शम० उदहरिकाम्ल में मिलाते हैं और गर्मका गर्म ही छान लेते हैं। जो छाननेसे आया उसे कई वार क्लोरोफार्ममें मिला कर छाननेसे कुछ बची हुई कहवीन भी निकाली जा सकती है। इसमें कोई रंग तो नहीं होता पर यह स्वादमें बड़ी कडुई होती है। यह जहरीली वस्तु है और इसका असर हृदय पर तथा अंतड़ियों और स्नायुओं पर पड़ता है और इससे टिटेनस भी होजाता है। इस प्रकार यह विदित हुआ कि मनुष्य के चाय पीनेसे स्नायुसंस्थान कैसे उत्तेजित होता है और थकेको चायसे आराम पहुँचता है। यह वस्तु तमाखुन (निकोटिन) के जहरको दूर करनेके लिये लाभकारी है। चाय पीनेसे जो असर होते हैं वह मुख्य कर इसीसे हुये पर और पदार्थों द्वारा यह असर कम हो जाते हैं।

टैनिन—बनावट तो हम ऊपर लिख ही आये हैं। इसको भी निकालनेके लिये कई तरीके हैं चाय (१ ग्राम ४०० घ० शम० में) पानीमें उतार कर १५°, १६° श तक ठंडा कर १ ग्राम भस्मिक कुनिन गन्धेत जो २५ घ० शम० पानी और २५ घ० शम० स-गन्धकाम्लमें घुली डाली जाती है। घोल खूब हिलाया जाता है जिसमें १०-१५ मिनटमें थक्केदार अवक्षेप बैठ जाता है। यह कुनिन टैनेत है इसको निथार कर धोकर टैनिनका अंदाजा कर सकते हैं। इसका हाज़मे पर बहुत बुरा असर होता है।

राख—इसमें पांशुज क्षार और स्फुरेत और मांगनीज ही खास चीज़ हैं। यह चायको जला कर परौप्यम्की घरियामें गर्म करनेसे हरे रंग की रह जाती है। मांगनीज लवणसे ही इसका रंग हरा होता है। इस राखमेंसे जो पानीमें घुल जाती है उसे पानीमें उबाल कर निकाल लेते हैं और बाकी को अमोनियम कर्बनेतके साथ गला लेते हैं और फिर उदहरिकाम्लमें घोलकर उबाल करके सुखा कर निकाल लेते हैं। जो वस्तुयें पानीमें नहीं घुल पातीं वह बालू और अनघुल शैलेत ही होते हैं और भी कई पदार्थ होते हैं पर सबका हमको कोई काम नहीं।

निष्कर्ष—इसमें वह वस्तुयें आती हैं जो पानीमें घुल सकें जैसे कहवीन, टैनिन, प्रोटीन, गोंद, दक्षिणिन, वर्ण पदार्थ, खनिज पदार्थ, माजूफलिकाम्ल, काष्ठिकाम्ल आदि, पर यह वस्तुयें बहुत कम मिकदारमें अलग अलग जगहोंकी चायमें अलग अलग रहती हैं।

सुगन्धित तैल—इसका अंदाजा पानीके साथ चायको उबाल कर स्रवित करनेसे लगाया जा सकता है। जब स्रवित पदार्थ आगया तो इसे ज्वलकके साथ घुलानेसे और उसे सुखानेसे यह तेल रह जाता है। यह पीला होता है जो हवामें ओषदीकृत हो कर काला होता जाता है और अपनी चायके समान महकको खो बैठता है। इसीसे चाय खुली रखनेसे या पुरानी होनेसे उसमें महक कम हो जाती है।

चायमें नोषजनीष पदार्थ भी होते हैं पर उनसे हमको अधिक कुछ मतलब नहीं, क्योंकि न तो इनका कोई गुण ही है और न अवगुण। इसी प्रकार मोम और गोंदकी स्थिति भी हमको कोई हानि या लाभ नहीं पहुँचाती।

एक अच्छे प्यालेमें १ ग्रेन कहवीन तो होती है। इस प्रकार अगर मामूली तौर पर देखा जाय तो चाय पीने वाले लोग पांचसे आठ ग्रेन तक कहवीन खाते हैं। इसका क्या कुछ भी असर न होगा? ऐसा नहीं है। चाय पीनेकी आदत से ग्रसित लोगों का स्वभाव चिड़चिड़ा होजाता है। उनको कुदरती फल फूल बुरे मालूम होने लगते हैं। वह समय समय पर सुस्त रहते हैं और हाज़मा ठीक नहीं रहता। यह सब कहवीन, टैनिन आदिसे हो जाता है। ६, ७ ग्रेन इन पदार्थोंको खानेसे ही कही हुई सब तकलीफें ऊपर आने लगती हैं। पट्ठोंके सिकुड़नेसे जो हलकाहट आती है जैसा लोगोंका ख्याल है और जो थकावटके समय पीना लाभदायक होता है वह वास्तवमें पट्ठोंका सुस्त होना या नशेमें आ जाना है। कुछ लोगोंका मत है कि इसके पीनेसे विचारधारा प्रबल और एकाग्रित रहती है पर यह सिद्ध है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। असर उलटा ही होता है। एकाग्रित नहीं पर मनुष्यकी प्रकृति विभाजित रहती है। विचार धारा सुस्त हो जाती है। यही नहीं पर चाय पीने वालोंको कभी कभी एक प्रकारकी कमजोरी सी आ जाती है जिससे शरीर भारी मालूम होने लगता है। क्यों न हो, जब शरीरके पट्ठे ही कमज़ोर हो जायेंगे तो काम कहांसे करेंगे। चायके पीनेसे स्नायु भी कमज़ोर हो जाते हैं जिससे कई हानियां होती हैं इसके गुण औगुणोंका क्या कहना है? जो लोग पीते हैं उन्हें तो यह अमृतके ही समान है और शायद

और लोगोंके पूछनेसे और नये नये गुण पाठकोंको सुनाई पड़ें पर इसका विचार पाठकगण आप ही कर सकेंगे। एक बड़े रासायनिकका मत है कि चाय पीनेकी आदत हलकी शराबके पीनेकी आदतसे कहीं बुरी है। पर हाँ, जो मनुष्य कि संसारमें कुछ न कर सकते हों उनके लिये आराम देना ही इन वस्तुओंका काम है। पाश्चात्य सभ्यतामें तो उत्तेजित प्रकृति धन, ऐश-आराम और शारीरिक व्यायाम न करने की आवश्यकता ही जीवनका आनन्द समझा जाने लगा है। चाय न पीना एक असभ्यता सी हो गई है पर अब उन्हीं लोगों को यह विदित हो चला है कि यह कैसी तामसिक वस्तु है। उन्हें यह मालूम होता जाता है कि मनुष्यकी प्रकृतिमें ऐसा परिवर्तन क्यों हो गया है। ऐसे मनुष्य जो बहुत कोमल हृदयके होते हैं और जीवनके भारोंको सहनेमें असमर्थ रहते हैं उन्हींको इस प्रकारके नशोंसे आनन्द मिलता है। चाय भी इन्हीं नशोंमें एक है। सच तो यह है कि संसारको इससे बहुत भारी हानि हो रही है और हो चुकी है।

नोबेल पुरस्कार और भौतिक शास्त्रके महर्षि (२)

[ले० श्री श्यामनारायण शिवपुरी, बी० एस-सी० (आनर्स) तथा श्री हीरालाल दुबे एम० एस-सी०]

जोसेफ जान टामसन

(१८५६—जीवित)

दूसरे ही वर्ष इंगलेण्डको फिरसे नोवेल पुरस्कारकी प्राप्ति हुई। सन् १९०६ का पुरस्कार सर जे० जे० टामसनको प्रदान किया गया। टामसन उन भौतिकज्ञोंके विचारोंका है जो हर एक विषयकी सत्यताको जानना चाहते हैं और न कि उनमेंसे जो किसी भी विषयकी गणित द्वारा परिभाषा करके संतुष्ट हो जाते हैं। जैसा कि गणित संबन्धी महान् भौतिकज्ञ लार्ड केलविन (Kelvin) ने कहा है—"गणितके चिह्नों पर अधिक भरोसा रखनेसे जितना धक्का उन्नतिको पहुंच सकता है उतना और किसीसे नहीं पहुंच सकता, क्योंकि विद्यार्थी सरल ही रास्तेसे जाना चाहेगा और गणितके नियमोंको समझनेका प्रयत्न करेगा, न कि उसकी भौतिक सत्यताको।"

टामसनके कई शिष्य हैं। उनमेंसे कई विख्यात पुरुष भी हैं जैसे सर ई० रदरफोर्ड (Sir E. Rutherford), सी० टी० आर० विलसन (C. T. R. Wilson) आदि। उसके विचारके भौतिकज्ञों का यह ख्याल है कि जिसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते उसका प्रतिबिंब सचाईमें हो ही नहीं सकता। इस विश्वका विचार केवल मानसिक प्रतिमाओं द्वारा ही हो सकता है। इसके लिये प्लैंक (Planck) का विकिरण सिद्धान्त, आइन्सटाईन (Einstein) का काल एवं दिशाका सिद्धान्त (Non-Eucledean representation of space) आदि विचारमें आही नहीं सकते। परन्तु वर्तमान भौतिकज्ञोंका ध्यान प्रत्येक विषयको गणितका रूप देनेकी ओर अधिक है और इसी कारण टामसन के मतवाले पिछड़े जा रहे हैं।

टामसनका जन्म मैनचेस्टरके पास १८ वीं दिसम्बर १८५६ में हुआ था। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें उसने शिक्षा प्राप्तकी। वह २७ वर्षकी आयुमें ही प्रयोगिक भौतिक विज्ञान शास्त्रकी केवेंडिश प्रोफेसरशिपके पद पर २२ दिसम्बर १८८४ में कैम्ब्रिजमें सम्मानित हुआ। सन् १९१८ तक वह इस पद पर कार्य करता रहा। सन् १८८४ में वह

एफ० आर० एस० (रायल सोसायटीका फेलो) चुना गया और १६१२ में बृटिश सरकारने उसे आर्डर आफ मेरिट (Order of merit) की उपाधि दी। वह सन् १६१६ से १६२० तक रायल सोसाइटीके सभापतिका स्थान सुशोभित करता रहा। करीब ११ विश्वविद्यालयोंने उसे डिग्रियां देकर सम्मानित किया है। टामसनकी विख्याति पाश्चात्य देशोंमें सब जगह फैल रही है। वह सन् १६१८ की फर्वरीमें केमब्रिजसे प्रोफेसरके पद को त्याग कर ट्रिनिटी कालेज (Trinity college) में आगया। उस समयसे अब तक वह यहीं पर है।

सन् १८८३ में टामसनने फिरसे विद्युत्की विद्युत्-चुम्बकीय इकाई (Electro magnetic unit) और स्थिर विद्युतीय इकाई (Electro-static unit) की निष्पति निकाली और उसे २.६६३ × १०¹⁰ मात्रा मिली। सन् १८६० में उसने सरले (Searle) की सहायतासे इस प्रयोगकी फिरसे दुहराया और इस समय २.६६५८ × १०¹⁰ मात्रा मिली।

उसने वस्तुके विकिरण सिद्धान्त (Radiant theory of matter) पर सर विलियम क्रूक्सके ही ढंग पर अन्वेषण आरम्भ किये और १८६६ में उसने अपना महान् अविष्कार किया। उसने दिखलाया कि जो प्रकाशवान कण, शून्य नली द्वारा अधिक शक्तिवान विद्युत् प्रवाह किये जानेसे प्रवाहित होते हैं वे ऋणात्मक विद्युत्से संचारित रहते हैं। उसने एक यन्त्र भी बनाया जिसके द्वारा वह उनका वेग और इन कणोंके संचार (Charge) की निष्पत्ति उनकी मात्रा (Mass) पर जान सकता है। इन प्रयोगोंसे टामसनने यह सिद्ध किया कि ऋणोद् कण (Cathode particles) बहुत ही अधिक वेगसे भागते हैं और उनका भार (Mass) परमाणुसे कहीं अधिक कम होता है। ऋणोद कणका वही भार होगा, चाहे विद्युत संचार किसी भी गैस द्वारा किया जावे या विद्युल्लोद (Electrode) किसी भी प्रकारका होवे। इस प्रकार टामसनने प्राऊट (Prout) के सिद्धान्तके लिये कुछ प्रमाण दिया कि जितने तत्व हैं वे सब एक ही तत्वसे बने हुये हैं और उसने स्वतः भी कहा है—"तत्वोंके परमाणुओंमें एक ही आधार है और उनके आचारसे ऐसा ज्ञात होता है जैसे कि वे एक ही प्रकारके कणोंसे बने हुए हैं। परन्तु इन छोटे छोटे कणोंकी संख्या भिन्न भिन्न परमाणुओंमें भिन्न है।"

टामसनने यह भी दिखलाया कि ऋणात्मक विद्युत्से संचारित कणोंकी मात्राका आदि कारण विद्युत् शक्ति हो सकती है। इस विचारका समर्थन और प्रमाण सन् १६०२ में काफमैन (Kaufmann) ने दिया।

सन् १८६८ में उसने रौञ्जन किरणोंके नाड़ी सिद्धान्त (Pulse theory) को बतलाया। उसने दिखलाया कि यदि किसी विद्युत् संचारित कणको एकाएक रोक दिया जावे तो एक पतली विद्युत्-चुम्बकीय लहर (Thin electromagnetic wave) पैदा हो जाती है। इसी प्रकारसे रौञ्जन किरणोंकी उत्पत्ति होती है। रौञ्जन किरणोंमें मामूली प्रकाशकी लहरों के गुण नहीं होते क्योंकि उनकी नाड़ियों (Pulses) की चौड़ाई बहुत ही पतली होती है।

सन् १६०३, १६०४ और १६०६ में टामसनने कई लेख लिखे जिनमें उसने परमाणुकी एक नई बनावटको गणित द्वारा सिद्ध किया। टामसनके परमाणुके मंडलमें धनात्मक विद्युत् एकसी विभाजित थी जिसमें कई ऋणाणु जड़े हुए हैं और इन ऋणाणुओंका सञ्चार (Charge) धनात्मक विद्युत्के बराबर है। उसने यह भी दिखलाया कि ऋणाणु दृढ़ चक्रके रूपमें होते हैं। एक ऋणाणुको लेकर उसमें और ऋणाणु जोड़ते जावें तो पांच

ऋणाणुओं तक चक्र दृढ़ रहता है और यदि इसमें एक ऋणाणु और जोड़ दिया जावे तो चक्रमें दृढ़ता नहीं रहती और एक ऋणाणु मध्यमें चला जाता है। और फिर दूसरा चक्र बनने लगता है। इस प्रकार कई चक्र बनते हैं। टामसनने परमाणुकी इस बनावट द्वारा उनके कुछ रसायनिक गुणोंको भी समझाया। उसने इससे एबेग (Abegg) की संयोगशक्तिके नियमको सिद्ध किया। इस स्थितिक परमाणुकी प्रतिमा द्वारा उसने तत्वोंकी संकोचनीयता (Compressibility) ज्ञातकी।

सन् १६०५ में और १६०७ से १६०६ तक टामसन एक नए प्रकारके संचारित कणोंके वेग और उनके संचारकी निष्पत्ति (Ratio) उनकी मात्रा (Mass) पर मालूम करनेमें लगा रहा। इन नये संचारित कणोंका आविष्कार एक जर्मन भौतिकज्ञ ने किया था जिसका नाम गोल्डस्टाइन (Goldstein) है। टामसनने उन कणोंको धनात्मक विद्युत्से संचारित सिद्ध किया।

धनात्मक विद्युत्से संचारित कणों पर या धनात्मक किरणों (Positive rays) पर प्रयोग करते हुए टामसन एक बहुत ही अद्भुत बात पर पहुँचा। उसने यह देखा कि निष्क्रिय (Inert) गैस, नूतनम्, (Neon) दो गैसोंका मिश्रण है। एकके परमाणुका वज़न २० है और दूसरेका २२। रसायनिक गणनाके अनुसार नूतनम्के परमाणुका भार २१ है। इस कारण टामसनने यह विचारा कि जिस गैसके परमाणुका भार २२ है वह एक बिलकुल ही नवीन गैस है। एसटन (Aston) ने इस अन्वेषणको और आगे बढ़ाया और अन्तमें उसे ज्ञात हुआ कि दोनों गैस मामूली नूतनम ही हैं। इस प्रकार उसने समस्थानिक (Isotopes) का अस्तित्व दिखलाया; अर्थात् वे तत्व जो वस्तुतः एक ही हैं परन्तु उनके परमाणुओंका भार दूसरा है। जे० जे० टामसनने एसटनकी सहायतासे कई वस्तुओं को दिखलाया कि वे समस्थानिक हैं।

१६२१-२२ में टामसनने अपने स्थितिक (Static) परमाणुके ढांचे द्वारा विद्युत् चालन (Electric conduction) का सिद्धान्त बतलाया। उसका सिद्धान्त इस प्रकारसे है—परमाणु घन (Cube) के केन्द्रमें होते हैं और "स्वतन्त्र" ("Free") ऋणाणु जो विद्युत्के चालनसे चलायमान होते हैं वे हर एक कोनेमें होते हैं। इन कोनेके ऋणाणुओं की जंजीर विद्युत्से चलायमान होती है और यह जंजीर विद्युत्को धातुके रवेके एक भागसे दूसरे भाग तक ले जाती है। तापक्रमसे बाधा (Resistanec) में हेर फेर, और नीचे तापक्रम पर अधिक चालकताको इस नवीन सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया गया है।

यद्यपि टामसन महोदय बहुत ही बूढ़े हैं तिसपर इस पकी उम्रमें वे बहुत ही उद्योगी और धैर्यवान कार्यकर्त्ता हैं। उन्हें मालूम ही नहीं कि थकावट किसे कहते हैं। वे अपने शिष्योंके कार्य में बहुत ही दिलचसपी लेते हैं। टामसनकी जीवनीको लिखते हुए एक महाशय कहते हैं—"वह बहुत ही अच्छे स्वभावका है। उसे अपने आविष्कारोंमें इतना अभिमान नहीं होता जितना अपने शिष्योंकी उन्नति देख कर होता है।"

माइकेलसन

MICHELSON

(१८५२—जीवित)

अभी तक नोबेल पुरस्कार केवल यूरोपमें ही रहा था परन्तु १६०७ में वह एटलांटिक महासागर को पार कर गया। यूरोपके बहुत ही थोड़े मनुष्य जो कि वैज्ञानिक नहीं थे एलबर्ट एब्राहम माइकेलसन (Albert Abrahem Michelson) का नाम जानते थे परन्तु ज्योंही उसे यह पुरस्कार मिला त्योंही बिजली की भांति उसका नाम यूरोप भरमें चमक उठा। वह शिकागो विश्वविद्यालयमें भौतिकशास्त्रका प्रधान अध्यापक तथा उस विषयका विशेषज्ञ है।

माइकेलसनका जन्म जर्मनीके स्ट्रेलनो (Strelno) नामक गांवमें १६ वीं दिसम्बर १८५२ में हुआ था, परन्तु वह अपने वचपन हो में अमेरिका चला गया था। सोलह वर्षकी उम्रमें उसे अमेरिकाकी जलसेना में पद मिला और वहीं पर कुछ अध्ययन भी करता रहा। उसी पद पर रहते हुए वह ग्रेजुएट हो गया और उसे नेवेल एकाडेमीमें भौतिक और गणित-शास्त्रोंके शिक्षकका पद दिया गया। इस पद पर वह १८७५से १८७६ तक रहा। इसीसमयसे उसने प्रकाशके वेग मालूम करनेके लिये अन्वेषण आरम्भ कर दिये। यद्यपि ये अन्वेषण बहुत ही कठिन और अधिक समय लेने वाले थे परन्तु साथ ही वे बड़े मनोरम भी थे। वह तीन वर्ष (१८८०-१८८२) के लिये जर्मनी भेजा गया था। उसने यह समय बर्लिन, हेडेलबर्ग (Heidelberg) और पेरिसमें व्यतीन किया। यूरोपसे लौट कर उसने अपने इस पदसे स्तीफा दे दिया।

इसके बाद वह क्लीवलेंड (Cleveland) के केस कालेज (Case college) में भौतिक शास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त हुआ। इस स्थान पर वह १८८३ से १८८६ तक रहा। १८८८ में वह विज्ञानकी नेशनल एकाडेमी (National academy) का मेम्बर चुना गया। १८८६ में वह क्लार्क विश्व विद्यालय वारसेसटर (Worcester) में भौतिक शास्त्रका अध्यापक हुआ और १८६२ में वह शिकागो विश्वविद्यालयमें चला गया। वहाँ पर वह यूनीवर्सिटी प्रोफेसर और भौतिकशास्त्रके विषयका अध्यक्ष था। उसने १६२६ में, ३७ वर्ष के कठिन परिश्रमके बाद, इस पदसे विश्राम लिया। सन १६३०में वह अमेरिकन भौतिक सभा (American Physical Society) का सभापति नियुक्त हुआ। विज्ञान की रायल सोसाइटीने उसे १६०२में अपने यहां की विदेशी मेम्बर चुना। १८८६में उसे रमफोर्ड (Rumford) पदक प्रदान किया गया और १६०७में कोपले (Copley) पदक। वह फ्रांस, हालेण्ड, रोम, रशिया और स्टाकहोलमके विज्ञान की एकाडेमियोंका मेम्बर है। वह गोटिनगेज (Gottingen) विश्वविद्यालय में १६११में एक्सचेञ्ज अध्यापक(Exchange professor) नियुक्त हुआ और १६ २०में पेरिसमें।

माइकेलसनका जीवन तीन प्रकारके कार्योंमें लगा रहा। पहला—प्रकाशके वेगको फिरसे मालूम करना, दूसरा—तारोंके व्यास को नापना और तीसरा—ईथर चलायमान है या स्थिर इस बातको जानना।

उसका सबसे प्रथम कार्य १८७८ में, फोको (Focault) के घूमनेवाले शीशोंसे आकाशका वेग मालूम करने वाली रीतिमें सुधार करना था। उसने दोनों शीशोंके बीच ५ फीटका अन्तर रक्खा और इन प्रयागोंसे उसे प्रकाशका वेग एक सेकेंडमें १८६५०८ मील मिला। इसके बाद उसने दो बातोंके सुधारनेका प्रयत्न किया। पहली—फासलेमें अंतर (Distance interval) और दूसरा—समयमें अंतर (Time interval)। सन १६२४ में उसने फिरसे प्रकाशका वेग मालूम किया और इस समय प्रकाशके मार्गकी लम्बई २२ मील रक्खी। एक सेकेण्डमें १८६३५६ मीलका वेग मिला।

उसके दूसरे अन्वेषण इस प्रश्नसे आरम्भ हुए कि जब पृथ्वी घूमती है तब ईथर जिसके द्वारा प्रकाशकी लहरें चलायमान होती हैं, विश्वके सम्बन्ध से स्थिर रहता है या घूमते समय पृथ्वी ईथरको भी अपने साथ चलायमान कर देती है। माइकेलसनने मारले (Morley) के साथ इस प्रश्नका अध्ययन किया और १८८७ में क्लीवलेण्डमें ईथरके वेगको पृथ्वीके वेगसे मिलान करनेके लिए प्रयोग आरम्भ किये। इस प्रयोगको करनेके लिए उसे दो किरणोंके वेगमें समयके अंतरको जानना आवश्यक था। इस अंतरको उसने एक यंत्रसे नापा जिसे उसने खुद बनाया था। और जो आजकल माइकेलसन व्यतिकरण-मापक (Miche-

lson's Interferometer) के नामसे प्रसिद्ध है। उन्हें प्रयोगसे किरणोंमें कुछभी समयमें अंतर नहीं मिला। इससे प्रत्यक्ष है कि ईथर चलायमान नहीं है और वह घूमती हुई पृथ्वीके संवन्धमें स्थिर है। माईकेलसनने इस प्रयोगको १६२१ से १६२५ तक फिर किया और १६२८ में फिरसे दुहराया परन्तु उसे वही परिणाम मिला कि ईथर स्थिर है।

उसके कार्य का तीसरा भाग व्यतिकरणमापक के सम्बन्ध में है जिसे उसने खुद बनायाथा। इस यन्त्र द्वारा उसने बहुत दूर वाले तारों के कोणीय व्यास (Angular diameter) मालूम करने की युक्ति निकाली।

वेटेलगुइज़ (Betelgeuse) तारे का व्यास माईकेलसनकी विधिसे मालूम किया गया; और किसी प्रकारसे इसका व्यास नहीं मालूम हो सका था। इसका व्यास २४,०००,००० मीलका है।

प्रोफेसर माईकेलसनने लम्बाईके लिए प्रामाणिक आदर्श निकालने में बहुत तकलीफ उठाई और इसके लिए उसका नाम सदैव स्मरण किया जावेगा। पेरिसके पास सिवरिस (Sevres) में परारौप्यम्की एक छड़ है जिसमें दो बिंदुओंके चिह्न हैं और इन बिंदुओंके फासलेको लम्बाई की इकाई मानते हैं। यह छड़ प्रामाणिक मीटर मानी जाती है। यदि यह छड़ खो जावे तो फिर इसी प्रकारकी नई छड़ बनानेके लिये और कोई माप नहीं है। प्रोफेसर माइकेलसनने प्रामाणिक मीटर को लेकर एक वर्णिक प्रकाश (Monochromatic light) की लहर लंबाई (Wave lenths) मालूमकी। उसने एक मीटर की लम्बाई में लहरों की कितनी संख्या होती है मालूम की। अब यदि यह परारौप्यम् का मीटर खो जावे तो हम फिर उसे बना सकते हैं क्योंकि एक वर्णिक प्रकाश की लहर लंबाई हर समय और हर मौसम में वही रहती है। इस प्रकार उसने मीटर की प्रामाणिक लम्बाई निश्चित की।

एक समय किसीने इस वैज्ञानिकसे पूछा कि आप प्रकाश के वेग मालूम करने वाले प्रयोगों को वार २ क्यों किया करते हैं तो उसने जवाब दिया कि "मेरा मुख्य कारण इन प्रयोगोंको वारम्बार करनेका यह है कि उनमें मुझे बड़ा मज़ा आता है। उसकी यह आनन्ददायिनी प्रकृति जन्म भर रही। अमेरिका वाले उसे अपना सबसे महान भौतिकज्ञ मानते हैं। किसीने एक अमेरिकनसे पूछा कि क्या माइकेलसन दुनियां में प्रकाशके विषय में सबसे अधिक जानता है तो उसने उत्तर दिया—"हां वह सबसे अधिक जानता है, परन्तु यह कम है, कृपा करके इसमें मार्स (Mars) और पूरा विश्व भी मिला लीजिए। माइकेलसनके समान प्रकाशके विषयमें और कोई दूसरा विद्वान् नहीं है।" वास्तव में यह सच भी है।

गेब्रिल लिपमैन

(GABRIEL LIPPMANN)

(१८४५-१६२१)

१६०८ का पुरस्कार फ्रांसके गेब्रिल लिपमैन को मिला। उसका जन्म लुज़ेमवर्ग (Luxembrg) के पास होलरिचमें सन् १८४५ में हुआ था। उसकी दृढ़ता और कुशलता छोटेपन हीसे प्रतीत होती थी जो कि बाद में उसके अन्वेषण के विषय चुनने और प्रश्नों का हल करनेमें सहायक हुई। परन्तु यह बालक अपने ही विचारों में मग्न रहता और दूसरों की कुछ परवाह न करता। इस कारण वह शालामें कुछ नाम न कर सका और यहां तक कि उस परीक्षामें भी असफल हुआ जिसे पास कर लेनेसे उसे सरकारी नौकरी का अधिकार हो जाता। परन्तु उसकी यह असफलता विज्ञानके लिए बड़ी ही लाभ दायक हुई।

यदि पारेके एक बून्द को जो हलके गन्धकाम्लसे घिरा हुआ है लोहेके तारसे छुआ जावे

तो वह सिकुड़ जाता है और जब तार हटा लिया जाता है तो वह अपनी पहले वाली आकृतिमें आ जाता है। ऊपरके प्रयोगसे लिपमैन को ज्ञात हुआ कि विद्युत्-दिग् प्रधानता (Electro Polarisation) और पृष्ठ तनाव (Surface Tension) में कुछ सम्बन्ध है। इसी सिद्धान्तसे उसने बाद में सूचिका-विद्युत्-मापक (Capillary Electrometer) यन्त्र बनाया।

सन् १८८३ में लिपमैन पेरिसमें गणित संबंधी भौतिक शास्त्रका अध्यापक नियुक्त हुआ और तीन वर्ष बाद ही जैमिन (Jamin) के स्थान पर प्रयोगिक भौतिक शास्त्रका अध्यापक हुआ और अन्वेषण प्रयोगशालाका भी डाइरेक्टर नियुक्त हुआ जिस स्थान पर वह अपने मृत्यु काल तक रहा।

जिन अन्वेषणोंके कारण लिपमैन इस संसार में अमर हो गया है वे रंगीन चित्रकला (Colour Photography) पर हैं। सन् १८८६ हीमेंवह अपने व्याख्यानोंमें चित्रकला द्वारा चित्रोंमें प्राकृत रंगों को पा सकने के ऐसे सिद्धान्तोंको बतलाया करता था। सन् १८९१ में उसने पहले पहल ऐसे चित्र खींचे। चित्रपटको केमरामें इस प्रकार रखते हैं कि उसके कांचकी ओर वस्तु ताल (Objective Lens) रहता है और रजत अरुणिद के फिल्मके पीछे पारेकी परावर्तक सतह (Reflecting layer) होती है। प्रकाश इस पारेकी सतह से परावर्तित हो कर चांदीके यौगिकको चल बिन्दुओं (Antinodes) पर पर अवकृत कर देता है। चित्रपटको उभारने पर उसमें चमकदार रंग दिखाई देते हैं। १८९३ में उसने विज्ञानकी एकेडेमीको अपने चित्र प्रदान किए और सन् १८९४ में उसने अपने अन्वेषणोंके सिद्धान्तोंको पूर्ण रीतिसे छपवाया। उस समयसे वह इस विषयकी प्रयोगिक कलाको सुधारने हीमें लगा रहा और सन् १९११ में उसने एक दूसरा ही तरीका निकाला जिससे कि रंगीन-चित्र कला बहुत ही सरल हो गई।

उसने समयको ठीक ठीक मापनेमें भी अति ही मार्केका कार्य किया है जो अपने ढंगमें अद्वितीय है। ज्योतिष शास्त्रको भी उसने एक यन्त्र प्रदान किया जिसका कि उसने स्वतः आविष्कार किया था। उस यन्त्र का नाम उसने कोलोस्टेट (Coelostat) रक्खा। सन् १९०५ में उसने पृथ्वीकी ऊपरी पपड़ी (Earth's Crust) के समस्थितिक (Isostacy) सिद्धान्तको बतलाया।

मारशल फयोल (Marschal Fayolle) के आधिपत्यमें फ्रांस ने एक मिशन केनेडा और अमेरिकाके संयुक्त राज्यों में भेजा था। उसमें लिपमैन भी मेंम्बर था और अन्तमें लौटते समय जहाज़ ही पर इस वैज्ञानिक की मृत्यु सन् १९२१ की ३१वीं जुलाई को हो गई।

एक लेखक लिखता है—"लिपमैनका वैज्ञानिक कार्य छपे हुए पन्नोंमें अधिक नहीं है; विज्ञानकी एकेडेमीके लिए उसके लेख छोटे हुआ करते थे, परन्तु वे अपूर्व विचारोंसे भरे होते थे और विषयके मूल तत्वको प्रदर्शित करते थे।

सन् १९०९ का नोबेल पुरस्कार दो वैज्ञानिकों के बीच बांटा गया। जी० मारकोनी (G. Marconi) और ब्राउन (Braun)।

जी० मारकोनी

G. MARCONI

(१८७४-जीवित)

सन् १९३० की २०वीं अप्रेलका इलसट्रेटेड वीकली आफ् इण्डिया लिखता है—"उस दिन श्रीमान मारकोनी ने जिनोवाके पास अपनी नांवमें एक बटन दबाया और उसी क्षण सिडनीके टाऊनहालमें जो १०००० मीलसे भी दूरी पर है, ३००० बिजलीकी बत्तियां जल उठीं। बेतार के तारकी

अद्भुत महिमा है !………बे तारके तार की उत्पत्ति अभी दिन ही कितने हुए हैं ? अभी कल ही उसका अन्वेषण हुआ और वह संसारमें बिजलीकी भांति चमक गया। दुनियाँ ने और किसी दूसरे अविष्कारको इस प्रकार उन्नति करते नहीं देखा।"

सबसे पहले गुलिलमों मारकोनी (Gulielmo marconi) ने संसारको दिखलाया कि बे तारके के विज्ञानको उन्नति करनेमें बहुत सी अद्भुत तथा अनहोनी बातें हो सकती हैं।

इस महापुरुष का जन्म इटलीमें बोलोगना (Bologna) में १८७४ की २५वीं अप्रेलको हुआ था। उसने लेघोर्न (Leghorn) और वोलोगना विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई। उसका गुरु प्रोफेसर रीघी (Reghi) था। मारकोनी बड़ा भाग्यशाली था कि उसे ऐसा गुरु मिला जो स्वतः ईथरकी लहरोंके चमत्कारको समझना चाहता था।

फेरेडे (Faraday) मेकस्वेल (Maxvell) और हर्ट्ज़ (Hertz) ने इन लहरोंकी व्यापारिक सफलता पर भविष्यवाणी की थी। प्रीस (Preece) लाज (Lodge) और ह्यूग्स (Hughes) ने बिना तारके तार दिए भी थे परंतु उन्हें व्यापारिक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

मारकोनी अपने सिद्धान्तोंके महत्वकी झोंपमें यह भी सोचता था कि " मेरे प्रयोगोंसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि कुछ खास अवस्थाओंमें ईथरकी बाधाओं (Disturbances) से जो लहरें मण्डल में पैदा होती हैं वे बहुत ही कामकी हैं परन्तु उसी समय मुझे यह ध्यानमें आता था कि इतने महत्वकी बात यानी इन लहरोंका किसी उपयोगी कार्यमें उपयोग करना, इतने बड़े बड़े वैज्ञानिकोंकी आंखोंसे कैसे बच सकता था।" परन्तु आश्चर्य है कि सच हीमें यह बात वैज्ञानिकों की आँखोंके तलेसे निकल गई। किसे मालूम कि कितने ही ऐसे अद्भुत अविष्कार अपने आदिकाल ही में नष्ट हो गए क्योंकि वे नवयुवक वैज्ञानिक अपनी बुद्धि तथा पौरुषको कमती समझते और अपनेसे बुद्धिमान लोगों को बहुत ही अधिक समझते थे।

तिस पर भी वह अपने सिद्धान्तोंसे न हटा और दूसरे वैज्ञानिकोंके लेखों तथा विचारों की खोजमें यह मालुम करनेमें लगा कि उसके विचार और दूसरे वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कमें पहले कभी उत्पन्न हुए थे या नहीं। उसको अन्तमें यह मालूम हुआ कि उसने वैज्ञानिक संसारमें एक अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा बिलकुल ही नवीन बात पैदाकी है। मारकोनी ने सन् १८६४ में अपने संकेतोंको दो मीलकी दूरी पर छोटी लहरों (Short waves) द्वारा संचारण करनेमें सफलता प्राप्त की। वह अभी तक ह्यूग्सके चमत्कारोंके वारेमें बिलकुल ही अज्ञात था जिसने ५०० गजकी दूरी परसे बे तारका तार दिया था।

इसके बाद वह इङ्गलैंड आया और वहां पर सर डब्लू० एच० प्रीससे उसकी मित्रता हुई जिसने इस विदेशी युवकको शुरूमें उसके प्रयोगोंमें उदारतासे मददकी थी। जैसे ही उसके कार्यमें सफलता होती जाती थी वैसे ही मारकोनीको कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। सबसे अधिक कठिनाई " दिनके प्रकाशके प्रभाव " (Day light effect) की थी और मारकोनी ने इस बाधामें विजय पाई यद्यपि उसमें बहुत धैर्य तथा कठिन परिश्रमकी आवश्यकता थी। उसने हर्ट्ज, लाज और ह्यूग्स आदिकी विधिमें सुधार और बहुत हेर फेर किया और लघुशक्ति वाली छोटी लहरोंके संचारको छोड़ कर दीर्घ शक्ति विकिरणकी लम्बी लहरों का उपयोग किया। इन लहरों की लम्बाई १५०१० से २५००० मीटर तक की थी। बादमें प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि संकेतोंकी तीव्रता (Intensity) सूर्यकी औसत ऊँचाई के व्युत्क्रम अनुपातमें बदलती है जब कि सूर्य क्षितिजके ऊपर है। इस प्रकार दीर्घ

शक्ति वाले संकेत दिनमें किसी भी समय पर ज्ञात हो सकते हैं।

सर आलीवर लाज ने सबसे पहले कोहेरका उपयोग किया था। मारकोनीने इस यन्त्रमें सुधार दिया। जिससे वह मूल यंत्रसे बहुत ही अधिक चेतन शील हो गया। उसने एक बहुत चेतनशील चुम्बकीय शोधक (Magnetic rectifier) बनाया जिससे मन्द संकेत सरलतासे ज्ञात हो जाते हैं। श्रीमान रीज (Mr Reisz) के साथ उसने एक बहुत चेतनशील माइक्रोफोन (Microphone) बनाया जिससे मन्द संकेतोंको तीव्र (ampliphy) कर सकते हैं। मारकोनी ने एक ऐसा यन्त्र बनाया जिसके द्वारा लम्बी लहरें जिनकी लम्बाई १५,००० से २०,००० मीटर की हों सरलतासे पैदाकी जा सकती हैं उसका एक घनिष्ठ मित्र कर लिखता है—

"वह प्रत्येक कठिन प्रश्नको शीघ्र ही हल कर लेता है और ऐसे ही मनुष्यके लिए बुद्धिमान शब्द ठीक लागू होता है।" यही कारण है कि उसने इतना कठिन कार्य इतनी सरलतासे कर लिया।

सम्राट एडवर्डको इस युवा आविष्कारककी ओर बहुत अनुराग हुआ और उन्होंने अपनी राजनौका जिसका नाम "आसबोर्न" (Osborne) था मारकोनीको प्रयोग करनेके लिए दे दी और उसका आविष्कार खूब ज़ोरोंसे होने लगा। सन् १८९९ में उसने पहले फ्रांस और इङ्गलैंडके बीच बे तारके तारका संचार किया और १९०१ की १२वीं दिसम्बर को एटलांटिक महासमुद्रके पार जिसका फासला १८०० मीलों का है—पहला संकेत एक सेकेंडके ६० वें ही हिस्से हीमें उछल कर उस पार सुनाई दिया। एक वर्ष पश्चात् केनेडाकी ओरसे ठीक प्रकारसे सन्देश भेजे जाने लगे।

सन् १९०९ में उसे बे तारके तारमें आविष्कार करने पर अर्धनोबेल पुरस्कार दिया गया। सन् १९१४ में इङ्गलैंडकी सरकारने उसे जी० सी० वी० ओ० (G. C. V. O.) से सम्मानित किया। मारकोनी ने प्रयोगों द्वारा जब यह दिखला दिया कि बेतारके तारसे सन्देश भेज सकते हैं तो उसने तार और खबरें आदि भेजनेके लिए एक कम्पनी खोली। परन्तु इसमें भी उसे तकलीफें उठानी पड़ीं। कई समय उसे केबुल कम्पनी (Cable Company) के साथ मुकदमे लड़ने पड़े परन्तु अन्तमें जस्टिस पेकर (Paiker) ने यह फैसला कर दिया कि मारकोनीका आविष्कार लाभदायक और ठीक है और वह केबुल कम्पनीके अधिकारोंमें किसी प्रकार हस्तादेप नहीं करता है। इस प्रकार मारकोनी को न्यायालयसे छुटकारा मिला।

१९१६ से मारकोनीका ध्यान नवीन प्रकारसे बे तारके तार द्वारा दूर २ संकेत भेजनेमें आकर्षित हुआ जिसमें लघुशक्ति द्वारा ही कई मीलों के फासले खबर पहुंच सकती है। इस तरीकेमें जो "बीमसिस्टम" (Beam System) के नामसे प्रसिद्ध है विद्युत्की छोटी लहरें किरणों (Beam) के रूपमें भेजी जाती हैं। ये किरणें कुछ २ टार्च (Torch) की प्रकाश किरणोंके समान होती हैं। इन किरणोंके लिए विशेष रूपके परावर्तक (Reflectors) सन्देश भेजने वाले तथा ग्रहण करने वाले स्थानोंमें होते हैं। मारकोनी ने ये आविष्कार और प्रयोग फ्रेंकलिन (Franklin) तथा मेथ्यू (Mathieu) की सहायतासे किए और क्राले (Crawley) इन अन्वेषणोंके बारेमें लिखता है "ये नवीन आविष्कार बे तारके तार द्वार सन्देश भेजनेको उन्नतिके शिखर पर पहुँचा सकते हैं"।

सन् १९२४ की जून में मारकोनी ने रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स (Royal Society of Arts) में व्याख्यान देते हुए "बीम सिस्टम" द्वारा खबरें भेजनेमें जो उन्नति हुई है उनका

विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। उसके परावर्तक (Reflector) में कई तार रहते थे। वह आकाशी (Aerial) के समानान्तर रहता और उसका आकाशी अर्ध भागमें परवलय (Parabolic curve) के रूपमें होता था। इस प्रकार लहरें ३०° के कोणमें एकत्रित हो जाती हैं। पुराने तरीकेसे इस तरीके में कई लाभ हैं।

(१) लम्बी लहरों की अपेक्षा छोटी लहरोंमें, दूरीके साथ जो शक्ति नष्ट होती जाती है वह बहुत कम है।

(२) इसमें किरणें किसी खास ओर भेजी जा सकती हैं और दूसरी दिशाओंमें शक्तिका नष्ट होना कम हो जाता है।

(३) इसमें वर्षा तथा वायुमण्डलकी विद्युत् आदिसे किसी प्रकार गड़बड़ी नहीं होती। लम्बी लहरोंमें इनका बहुत असर पड़ता है और शब्द ठीक नहीं सुनाई देते। कभी २ बड़ी जोरकी सीटी तथा "घों घों" होने लगती है।

इस प्रकार मारकोनी बे तारके तारकी कलाकी उन्नति कर रहा है।

वार्षिक वृत्तान्त

सेवामें—सभापति, विज्ञानपरिषत् महोदय—

परमात्माकी असीम कृपासे विज्ञानपरिषत्का एक और वर्ष निर्विघ्न समाप्त हो गया। इस साल भी सब काम प्रायः वैसा ही हुआ जैसे गत वर्ष होता था। इस वर्ष भी कार्यकर्त्ता वही रहे, कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आर्थिक अवस्था इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा कुछ नहीं सुधरी। आमदनी हर एक मद्दमें घट गई। आय निम्नलिखित रही:—

ग्राहकोंसे चन्दा	...	३०३।=)
पुस्तकोंकी बिक्री	...	२६०।≋)॥
सभ्योंसे चन्दा	...	१५६।)
आजन्म सभ्योंसे	...	११५)
विज्ञापन छपाई	...	४०)
गवर्मैंटसे	...	६००)
फुटकर	...	२)

खर्च निम्न लिखित रहा:—

टिकट	...	८२॥।=)॥
तनखाह क्लर्क	...	१२०)
विज्ञान छपाई	...	६३४।-)
कागज़	...	२१८।)॥
ब्लाक बनवाई	...	१०६॥≡)
रिप्रिण्टकी लागत	...	४६॥)
फुटकर	...	५॥-)
जिल्द बँधाई	...	३)

इस आय व्ययके व्योरेसे ज्ञात होता है कि इस साल किताबोंकी बिक्री घटी है। कारण यह है कि विज्ञान प्रवेशिका भाग १ व २ और ताप इस साल स्टाकमें नहीं थीं और यही किताबें अधिक बिकती थीं। नये संस्करण छपानेकी आवश्यकता थी परन्तु उनके संशोधनमें कठिनाई रही और रुपयेका भी प्रबन्ध नहीं था अतः यह निश्चय किया गया कि इन किताबोंके संशोधित और परिवर्धित संस्करण किसी प्रकाशक द्वारा छपाए जाँय जिससे इन परमोपयोगी पुस्तकोंसे जनताको लाभ पहुंचता रहे और विज्ञानपरिषत्को बिना रुपयेकी जिम्मेदारी लियेभी कुछ आमदनी होती रहे। रुपयेकी कमीके कारण इस वर्ष कोई दूसरी पुस्तक भी नहीं छपाई जा सकी। केवल विज्ञानसे उद्धृत (Reprint) कराके पुस्तकें बनानेका प्रबन्ध रहा जिससे सूर्य-सिद्धान्त तैयार होता रहा है। इस वर्ष परिषत् का मुख्य कार्य विज्ञान का प्रकाशन ही रहा है और विज्ञान बराबर ठीक समय पर निकलता रहा। इस कार्यमें श्रीसत्यप्रकाशजीने बड़ा परिश्रम किया। इसके लिये परिषत्की ओरसे मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। विज्ञानके प्रकाशनमें परिषत्को प्रायः ४००) का घाटा सहना पड़ा। सरकारसे केवल ६००) की सहायता मिली इससे हमारी सब आमदनी विज्ञानमें ही खर्च होती रही। सरकारसे अधिक सहायता मिलनेकी अब भी कोई आशा नहीं है

क्योंकि एकेडेमीके पास हमारी प्रार्थना भेज दी गई थी और एकेडेमी हमारी सहायता करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सभ्योंकी संख्या इस समय बहुत कम है, केवल २३ आजन्म सभ्य और २३ साधारण सालाना चन्दा देने वाले सभ्य हैं। इनमेंसे २३ आजन्म सभ्योंसे कोई आमदनी नहीं होती और सालाना चन्दे वाले सभ्य भी कई ऐसे रहे जिनसे चन्दा नहीं मिला, इसलिये हमारी शक्ति बहुत थोड़ी रही। राजनीतिक आन्दोलनका प्रभावभी हमारे काम पर पड़ा, विज्ञानके ग्राहक घटे, चन्दा कम आया और जनताका ध्यान हमारे कामसे दूर जा पड़ा अतः कौंसिलने यही उचित समझा कि विज्ञानके प्रकाशनको जैसे तैसे जारी रखें। यह काम बड़े महत्वका है क्योंकि इसप्रकार हम स्थायी वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण करते जा रहे हैं और सबसे बड़ा काम जो इस प्रकार हो रहा है वह है नये वैज्ञानिक शब्दों अर्थात् (Vocabulary) बनानेका वह होता जा रहा है। आगामी वर्षके लिये भी यही उचित जान पड़ता है कि विज्ञानके प्रकाशन पर ही अधिक ध्यान दिया जाय और यदि प्रकाशक मिल जायं तो उन्हींके द्वारा किताबें छपाई जाँय। अब हमारी सबसे बड़ी जरूरत यह है कि १६ वर्षोंमें विज्ञानमें छपे हुए शब्दोंको एकत्र करके और उनमें संशोधन और परिवर्धन करके एक कोष या ग्लासरी तयार कर ली जाय जिससे लेखकोंको सुविधा हो जाय और विज्ञान परिषत्का १६ वर्षो का काम स्थायी रूप प्राप्त कर ले। उत्साही कार्यकर्ता और रुपये की जरूरत इस कामको सफल करनेके लिये हैं। यदि जनताकी सहानुभूति मिले तो शायद परिषत् यह कार्य करनेका प्रबन्ध करे।

इस वर्ष परिषत्के द्वारा तीन महत्वपूर्ण भाषण भी कराये गये। श्रीमान् प्रोफेसर श्रीरञ्जन जी एम० एस-सी० ने "घर घर बाम" विषय पर, श्री० डाक्टर व्रजराज किशोर बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० ने 'रोगोंसे छुटकारा' पर और डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० ने "आकाश गमन विद्या" विषय पर लेक्चर दिया जिससे जनताको आनन्द मिला।

—सतीशचन्द्र देव, एम० ए०

—सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०

प्रधान मंत्री

सूर्य-सिद्धान्त

(गतांक से आगे)

विज्ञान-भाष्य — इन तीनों श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि ब्रह्माण्डकी परम परिधिके भीतर नक्षत्रों और ग्रहोंकी कक्षाएं किस क्रमसे हैं। हमारी पृथ्वीका स्थान इस ब्रह्माण्डके बिल्कुल मध्यमें माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्डके केन्द्रमें है। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्तके प्रतिकूल है। अर्वाचीन ज्योतिषमें सूर्य जगत्का केन्द्र समझा जाता है। सूर्यके सबसे निकट बुध ग्रहकी कक्षा है, फिर शुक्र,

आकाश
नक्षत्र
शनि
गुरु
मंगल
रवि
शुक्र
बुध
चन्द्र
भू
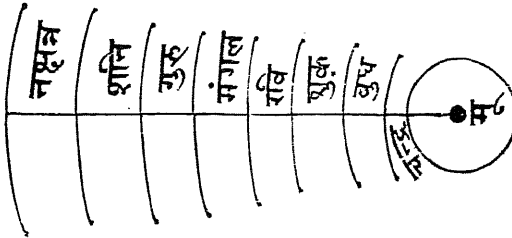
चित्र १२१

भारतीय ज्योतिषके अनुसार कक्षाओंका क्रम (पृथ्वी केन्द्रमें)

पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनिकी कक्षाएं क्रमानुसार दूर होती गयी हैं। चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रोंकी कक्षा अर्वाचीन ज्योतिषके अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं हैं। आकाश कक्षाकी सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि आजकल कुछ तारोंकी दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षाकी सीमा उसके सामने नगण्य है। नीचेके दो चित्रोंसे हिन्दू ज्योतिष और अर्वाचीन ज्योतिषके मतोंकी भिन्नता अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

पृथ्वी और चन्द्रकक्षाके बीचमें मेघों, विद्याधरों और सिद्धोंके लोक हैं जो इस चित्रमें नहीं दिखलाये जा सके।

चित्र १२२

अर्वाचीन ज्योतिषके अनुसार ग्रहकी कक्षाओंका क्रम (यहाँ सूर्यकेन्द्रमें है)

इस चित्रमें चन्द्रमाकी कक्षा नहीं दिखलायी गयी है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है और पृथ्वीके साथ साथ सूर्यके भी चारों ओर जाता है। ऐसे कई चन्द्रमा मंगल गुरु और शनिके चारों ओर भी भ्रमण करते हुए देखे गये हैं। चित्र १२२ में कक्षाओंकी दूरी प्रायः समान देख पड़ती है और आकार गोल, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। इसका विचार आगे किया जायगा; यहां तो केवल क्रम दिखलाया गया है।

श्लोक ३२ में जिस धारणात्मिका शक्तिकी चर्चा है उसे ही आजकल गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। इस श्लोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार हमारी पृथ्वी शून्यमें स्थित मानी गयी है। इसको कोई जीव थांमे हुए नहीं है। परमेश्वरकी जिस शक्तिके बल पर यह पृथ्वी शून्यमें ठहरी हुई है उसे धारणात्मिकाशक्ति कहा गया है। आजकल यह माना जाता है कि पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह इत्यादि सूर्यके गुरुत्वाकर्षणसे बंधे हुए हैं और ग्रहों, उपग्रहोंकी गतियोंका कारण भी यही गुरुत्वाकर्षण है।

भूगोलमें पाताल, सुमेरु आदिके स्थान :—

तदनान्तरपुटाः सप्त नागासुर समाश्रयाः।
दिव्योषधि रसोपेता रम्याः पाताल भूमयः ॥३३॥
अनेक रत्ननिचयो जम्भूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥
उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वत् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥३५॥
ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः।
मेखलेऽवास्थितोधात्र्या देवासुरविभागकृत ॥३६॥

अनुवाद—(३३) इस भूगोलके भीतरी परतोंमें अति सुन्दर सात पाताल भूमि हैं जहां नाग और असुर रहते हैं और जहां प्रकाश देने वाले और रसीले वृक्ष हैं। (३४) नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा हुआ, स्वर्णमयी जाम्बू नदीसे सुशोभित, भूगोलके आर पार दोनों ओर निकला हुआ सुमेरु पर्वत है। (३५) इस सुमेरु पर्वतके ऊपरकी ओर इन्द्रके साथ देवता और महर्षि लोग रहते हैं और नीचेकी ओर असुर रहते हैं। ये देवता और असुर एक दूसरेके शत्रु हैं। (३६) इस सुमेरु पर्वतके चारों ओर घेरे हुए यह महासागर (लवण समुद्र) पृथ्वीकी मेखलाकी तरह स्थित है तथा देवताओं और असुरोंका विभाग कर देता है।

विज्ञान भाष्य—भूगोलके भीतर सात पाताल देश माने गये हैं जिनके नाम अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल हैं। यहां नागों और असुरोंका निवास है। सुमेरु पर्वतके पास जम्बूनदी है। यह पर्वत भूगोलके केन्द्रसे होता हुआ दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर निकला हुआ माना गया है। उत्तरी ध्रुव पर देवता और दक्षिणी ध्रुव पर असुर रहते हैं जो परस्पर शत्रु हैं। इस मेरु पर्वतको घेरे हुए पृथ्वीके चारों ओर लवण समुद्र है जो देवताओं और असुरोंकी भूमिको अलग करता है और पृथ्वीकी मेखलाकी तरह है।

इस वर्णनमें बहुत सी बातें कल्पनासे उत्पन्न हुई जान पड़ती हैं इसलिये इन सबका अस्तित्व नहीं बतलाया जा सकता उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंको सुमेरु पर्वतके ऊपर और नीचे वाले सिरे समझना चाहिये। इसके बीचमें विषुवत् रेखाके पास लवण समुद्र माना गया है जो आजकल भी प्रायः इसी स्थितिमें है।

विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियोंका वर्णन :—

समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादि नगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकार तोरणा ॥३८॥
याम्यायां भारतेवर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरु वर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धामहात्मानो निवसन्ति गतव्यथा ॥४०॥
भूवृत्तिपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छायां नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥४२॥

अनुवाद—(३७) मेरुके मध्य भागके चारों ओर समुद्रके समान अन्तर पर जम्बू द्वीपके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें देवताओंकी बनाई हुई चार नगरी हैं। (३८) पूर्वमें भूपरिधिके चतुर्थांश पर भद्राश्व वर्षमें यमकोटी नगरी प्रसिद्ध है जहां सोनेके दीवार और फाटक हैं; (३९) दक्षिणमें भारतवर्षमें उसी प्रकार लङ्कापुरी और पश्चिममें केतुमाल देशमें रोमकपुरी प्रसिद्ध हैं; (४०) उत्तरमें कुरु देशमें सिद्धपुरी है जहां सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त सिद्ध, महात्मा लोग रहते हैं। (४१) यह नगरियां एक दूसरेसे भूपरिधिके चतुर्थांश अन्तर पर स्थित हैं जिनसे उत्तर दिशामें उतने ही अन्तर पर देवताओंका निवास स्थान मेरु है। (४२) जब सूर्य विषुव वृत्त पर आता है तब इन नगरियोंके ठीक ऊपर होता है इसलिए न वहां विषुवच्छाया होती है और न अक्षांश ही होता है।

विज्ञान भाष्य—इन छः श्लोकोंमें विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों की स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है। ये नगरियां एक दूसरेसे भूपरिधिके चतुर्थांश अन्तर पर हैं अर्थात् यह एक दूसरेसे ९० अंशके अन्तर पर हैं और उत्तर मेरु (उत्तरी ध्रुव) भी इतने ही अन्तर पर इनसे उत्तरमें है। इन नगरियों की दिशायें भारतवर्षसे मानी गयी हैं। भारतवर्षके दक्षिण विषुवत् रेखा पर लङ्का नगरी है जिसका स्थान मध्यमाधिकारके ६२ वें श्लोकके अनुसार उज्जैनकी देशान्तर रेखा पर माना जाना चाहिए (पृष्ठ ९६)। ग्रीनिचसे उज्जैन का देशान्तर ७६ अंशके लगभग है। इसलिये यदि लङ्का इसी देशान्तर पर और विषुत् रेखा पर मानी जाय तो आजकल यहां समुद्र है। इससे ९० अंश पूर्व छः स्थान ग्रीनिचसे १६६ अंश पूर्व देशान्तर पर है। इसलिए यमकोटी नगरी की जगह भी आजकल समुद्र है। लङ्कासे ९० अंश पश्चिम अथवा

ग्रीनिचसे १४ अंश पच्छिम देशान्तर पर भी विषुवत् रेखा पर स्थल का नाम नहीं हैं इसलिए रोमक नगरी का भी पता नहीं लगाया जा सकता। यह रोमक नगरी आजकलके पच्छिमी अफरीकाके फ्रीटाउनसे ५० मील के लगभग दक्षिण रहा होगा। इसी प्रकार सिद्धपुरीसे वर्तमान् मेक्सिकोसे १००० मीलसे भी अधिक दक्षिण रही होगी।

यदि इन चार पुरियों का अस्तित्व कभी रहा होगा तो वह काल बहुत ही प्राचीन होगा क्योंकि आजकल तो इतना अन्तर पड़ गया है कि उसका का कोई चिह्न वर्तमान नहीं है। यह भी सम्भव है कि इन चार पुरियों का अस्तित्व कवि की कल्पनामें ही रहा हो और आलंकारिक भाषामें इस बात का वर्णन किया गया हो कि विषुवत् रेखा पर ये चार स्थान ऐसे हैं कि जब लङ्कामें मध्याह्न होना है तब रोमक में सूर्योदय, सिद्धपुरीमें मध्यरात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त।

यह तो स्पष्ट ही है कि जब सूर्य विषुवत्‌रेखाके खस्वस्तिक पर रहता है तब वहां मध्याह्नकालमें किसी खड़ी वस्तु की कोई छाया नहीं पड़ती। इस रेखाके क्षितिज पर उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं इसलिए यहां ध्रुव तारेकी ऊँचाई शून्य होती है। इसलिए अक्षांश भी शून्य होता है। इसी कारण विषुवत् रेखाको निरक्ष देश कहा गया है। इसका और स्पष्ट वर्णन अगले तीन श्लोकों में है।

मेरु पृथ्वीके बीचसे होता हुआ दोनों ओर निकला हुआ बतलाया गया है इसलिए इसे पृथ्वी का अक्ष समझना चाहिए जिसका उत्तरी सिरा उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव कहलाते हैं। इसी अगले मध्य अर्थात् भूकेन्द्रके चारों ओर समान पूरी पर विषुवत् रेखा मानी गयी है जो जम्बूद्वीप और लवण समुद्र की सीमा समझी गयी थी।

विषुवत् रेखा और उत्तरी दक्षिण ध्रुवों का सम्बन्ध—

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभः स्थिते।
निरक्षदेश संस्थानामुभयेक्षितिजाश्रये ॥४३॥
अतोनाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः।
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांश कास्तथा ॥४४॥
मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनन्।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५॥

अनुवाद—(४३) मेरुके दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंकी तरफ आकाशमें स्थित ठीक खमध्यमें हैं, निरक्ष देशमें रहनेवालों को ये दोनों तारे क्षितिजमें देख पड़ते हैं। (४४) इसलिये इन नगरियोंकी क्षितिज रेखा पर दोनों ध्रुवतारोंके होनेके कारण इन पुरियों का अक्ष ऊँचा नहीं है अर्थात् इनका अक्षांश शून्य है परन्तु लम्बांश ९० है। इसी प्रकार मेरुओं का अर्थात् ध्रुवोंका अक्षांश ९० है। (४५) सूर्य जब देव भागमें अर्थात् उत्तरी गोलार्धमें रहता है तब मेषके आदि स्थानमें देवताओंको उसका प्रथम दर्शन होता है और जब सूर्य असुर भागमें अर्थात् दक्षिणी गोलार्धमें रहता है तब तुलाके आदिमें वह असुरोंको पहले पहल देख पड़ता है।

(क्रमशः)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३२ | वृश्चिक, संवत् १९८७ | संख्या २

यक्ष्मा जनित अंग विकृति

[ले० डा० कमलाप्रसाद जी० एम० बी०]

[साधारण प्रदाह (INFLAMMATION)

परिभाषा—किसी तन्तुके साथ कुछ उत्तेज्य पदार्थों का सम्पर्क होनेसे अथवा उस पर किसी प्रकारका आघात पहुँचनेसे उसमें (तन्तुमें) कुछ प्रतिक्रियायें (Reactions) उत्पन्न होती हैं जो तन्तुकी (क्षतिसे) रक्षा करनेकी अथवा क्षति-पूर्तिकी चेष्टा करती हैं। इन प्रतिक्रियायोंको प्रदाह कहते हैं।

कारण—कीटाणु और उनके विष (Toxin) अथवा अन्य उत्तेजक पदार्थ जो किसी प्रकार तन्तु को क्षति पहुँचा सकते हैं, प्रदाहके कारण होते हैं।

प्रदाह-जनित परिवर्तन—यदि एक चूहे की परिविस्तृत कला पर कुछ उत्तेजक पदार्थ (Irritant matter) डाला जाय तो उसमें निम्नलिखित प्रतिक्रियायें लक्षित होंगी :—

(१) सर्व प्रथम उस स्थान (झिल्ली) में रक्त क्षीणता देखी जायगी। किन्तु यह अवस्था कुछ ही क्षणके लिए रहती है।

(२) पुनः अधिक रक्त का संचार होने लगता है। इस प्रकार क्षत स्थानमें अधिक रक्त इकट्ठा हो जाता है।

(३) किन्तु शीघ्र ही रक्त-प्रवाह धीमा होने लगता है और कुछ कालके लिए वन्द भी हो जाता है यद्यपि क्षत स्थानमें पहले का आया हुआ अधिक रक्त जमा रहता है।

(४) इस समय अधिक लसीका निर्गत होती है, जिससे वह स्थान सूज जाता है। झिल्ली लाल, सूजी हुई, और अपारदर्शी मालूम होती है। रक्त नलिकायें फैल जाती हैं और श्वेताणु इनसे बाहर निकल पड़ते हैं। बहुतसे रक्ताणु भी देखे जाते हैं।

अब यदि प्रदाहक पदार्थ को उस स्थानसे हटा लें और यदि इस समय तक अधिक क्षति न होने पाई हो, तो ये प्रतिक्रियायें धीरे धीरे शांत हो जायेंगी। किन्तु यदि क्षति अधिक हुई हो अथवा कुछ तन्तु एक दम नष्ट हो गये हों तो प्रतिक्रियायें तब तक दीख पड़ेंगी जब तक नष्ट तन्तु एक दम नहीं हटा दिये जायँ और क्षति-पूर्त्ति न हो जाय। नयी रक्त नलिकायें प्रादुर्भूत होती हैं और क्षत स्थानको एक दम पाट देती हैं।

यह तो उस अवस्था का वर्णन है जिसमें चूहे की मृत्यु नहीं होती, किन्तु जिससे मृत्यु हो जाती है उस अवस्थामें क्षत-स्थानमें श्वेताणुओं की संख्या बढ़ती ही जाती है किन्तु क्षति-पूर्ति की कोई आशा नहीं दीख पड़ती।

साधारण प्रदाह और यक्ष्मा जनित प्रदाहमें बहुत बड़ा अन्तर यह है कि उसमें रक्त-संचार होने ही नहीं पाता, (क्योंकि यक्ष्मा कीटाणु और उनके विष नयी या पुरानी रक्त नलिकाओं को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। और अधःक्षेपण क्रिया की प्रधानता रहती है।)

१ रक्त-संचार संस्थान

(१) यक्ष्मा-जनित हृदयावरण प्रदाह—यह विशेष कर पशुओंको होता है और मनुष्योंमें बहुत कम देखा जाता है। यक्ष्मा कीटाणु अन्य स्थानोंसे (फुफ्फुसावरण, फुपफुस, वक्षस्थल की लसीका ग्रन्थियां, उरोऽस्थि एवं पर्शुकाओंसे) आते हैं। बहुसंख्यक यक्ष्मा गांठें इसमें विरले ही पाई जाती हैं, किन्तु बच्चोंमें एकाध छितरायी हुई गांठों का पाया जाना असम्भव नहीं है। झिल्ली के तल पर फाइब्रिन युक्त एक द्रव जम जाता है। जिससे झिल्ली (हृदयावरण) की दोनों तहें कभी कभी आपसमें सट जाती हैं। यह द्रव लसीका, रक्त, वा पीवके सदृश होता है। इसमें यक्ष्मा कीटाणु बहुधा नहीं पाये जाते किन्तु दानव-कोष अवश्य वर्त्तमान रहते हैं।

इस प्रकार के यक्ष्मामें खटिक का जमना एक साधारण बात है तथा नाशकारी क्रियायों से हृत्पिण्ड भी अक्षत नहीं रह जाता।

(२) हृत्पिण्डके भीतरकी झिल्ली—(Eudocardium) इसमें यक्ष्माका आक्रमण बहुत कम देखा जाता है। कभी होता भी है तो एकाध छोटी गांठें पाई जाती हैं।

(३) हृत्पिण्ड—इसमें सौत्रिक तन्तुओं की वृद्धि होती है और दानवकोष पाये जाते हैं। गांठें छोटी होती हैं किन्तु कभी कभी बड़ी गांठें भी पाई जाती हैं।

(४) धमनियोंका यक्ष्मा—(Tuberculosis of the arteries) धमनियोंके सबसे बाहरी तल (Coat) में यक्ष्मा का आक्रमण होता है। धमनी बलहीन होजाती है। अस्तु, यह क्षतस्थानमें कभी कभी फूल जाती है। क्षत-वृद्धिके साथ साथ धमनीका मुखावरोध होता है किन्तु ऐसी अवस्थामें यक्ष्मा गाँठोंके चारों ओर अधिक रक्त संचार होने लगता है।

(५) शिराओं का यक्ष्मा—(Tuberculosis of the veins)—यह बहुत भयङ्कर होती है क्योंकि गांठोंके भ्रष्टांश रक्त धारामें पड़ कर दूर २ तक फैल जाते हैं जिससे शरीरके भिन्न २ अवयवों में यक्ष्मानीड़ की उत्पत्ति हो जाती है।

२—लसीका नलिकायें और ग्रन्थियां

(१) लसीका नलिका—अन्त्रधारक कला की लसीका नलिकाओं में विशेष कर इसका आक्रमण होता है। यक्ष्मा कीटाणु प्रथमतः अन्त्र को पकड़ते हैं, तदनन्तर वहांसे भ्रमण कर इन नलिकाओंमें पहुँच जाते हैं। इस अवस्थामें यक्ष्माके दाने छोटी छोटी श्वेत रेखाओंके रूपमें दीख पड़ते हैं।

(२) लसीका ग्रन्थियां—इनमें लसीका धारा द्वारा अथवा रक्त द्वारा नूतन वा जीर्ण आक्रमण हुआ करता है किन्तु बहुधा इन ही ग्रन्थियोंमें प्राथमिक आक्रमण होता है। इस प्रकार अन्त्रधारक कला की लसीका ग्रन्थियोंमें, गलेकी ग्रन्थियोंमें एवं घण्टी (Tonsil) और इसके समीपवर्ती कण्ठस्थ ग्रन्थाकार तन्तुओंमें भी इन कीटाणुओंका प्राथमिक आक्रमण होता है।

माध्यमिक आक्रमण (Secondary infection)—लसीका ग्रन्थियोंमें इन कीटाणुओं का माध्यमिक आक्रमण एक साधारण क्रिया है। उदाहरणार्थ, फुफ्फुस के यक्ष्मामें इसकी निकटवर्ती ग्रन्थियाँ बहुधा आक्रान्त होती हैं। लसीका-ग्रन्थियोंके यक्ष्मा की एक बहुत बड़ी खूबी यह है कि यह बहुत दिनों तक एक स्थानमें स्थिर रह सकता है और शरीर इससे धीरे धीरे एक दम मुक्त भी हो जाता है, किन्तु दूसरी ग्रन्थियोंमें माध्यमिक आक्रमण होने पर विस्तीर्ण यक्ष्माका होना बहुत सम्भव है। यह विस्तार नूतन वा जीर्ण होता है।

यक्ष्मा द्वारा क्षत स्थानमें दो प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं—(क) नाशकारी क्रियायें जो कीटाणु द्वारा की जाती हैं, जैसे तन्तुओं का घुल घुल कर अधःक्षेपका बनना इत्यादि। (ख) आच्छादन क्रियायें (जो तन्तु द्वाराकी जाती हैं) जैसे कोषों का पुनरुत्पादन और प्रस्तार और सौत्रिक तन्तुओं का प्रादुर्भाव इत्यादि जिनका तात्पर्य यह होता है कि क्षति को और बढ़ने नहीं दिया जाय। इन परिवर्तनोंमें बहुत तरह की न्यूनाधिकता होती है, जो शरीर की शक्ति एवं कीटाणुओं की प्रकृति (बल इत्यादि) पर निर्भर होती है। यदि कीटाणु बड़े उग्र और प्रबल हुए तो क्षत बहुत विस्तीर्ण होगा अथवा यदि शरीरके तन्तु की शक्ति बढ़ी चढ़ी हुई एवं कीटाणु बलहीन हुए तो लसीका ग्रन्थियोंके कोषों की पुनरुत्पत्ति तथा विस्तार होगा और क्षति बढ़ने नहीं पायेगी।

निम्नलिखित तीन प्रकारके यक्ष्मा-क्षत देखे जाते हैं:—

(१) दानव-कोष-प्रणाली (Giant-Cell System)—यह प्रणाली नूतन वा जीर्ण होती है और फुफ्फुस-यक्ष्माके संसर्गसे श्वासनलकी समीपवर्त्ती ग्रन्थियोंमें देखी जाती है। नग्न-चक्षु द्वारा इन ग्रन्थियोंमें कुछ नहीं दिखाई पड़ता—कभी कभी छोटे श्वेत (वा भूरे) दाने मिलते हैं जिनके बीच बीच का स्थान रक्त-रंजित गुलाबी रंग का दीख पड़ता है। ये ग्रन्थियां समय पा कर सौत्रिक तन्तुओंमें परिवर्त्तित हो जाती हैं और इनमें अधःक्षेपण इत्यादि क्रियायें नहीं देखी जातीहैं।

(२) दूसरे प्रकारके क्षतमें अधःक्षेपण-क्रिया अत्यधिक परिणाममें देखी जाती है। बहुसंख्यक क्षुद्र क्षत-स्थानोंके बढ़नेसे एवं एक दूसरेसे मिल जानेसे बड़े बड़े क्षत तैयार हो जाते हैं। ये देखनेमें श्वेत वा पीत-श्वेत रंगके होते हैं, जैसा कि काटने पर आलू वा छुना का तल दिखाई पड़ता है। यह विकृति सारी ग्रन्थि वा उसके एक बड़े अंशमें देखी जाती है। क्षत-स्थान धीरे धीरे सड़ने लगता है और अन्तमें वहां एक घाव हो जाता है। इस सड़ते हुए स्थानमें कभी कभी खटिक जम जाता है जो एक कड़े पत्थरके सदृश हो जाता है—यह अवस्था बहुधा श्वासनल (वायुनल) की समीपवर्त्ती एवं अन्त्रधारक कला की ग्रन्थियोंमें विशेषरूपसे देखी जाती है।

(३) किसी २ रोगीमें लसीका ग्रंथियां बहुत बड़ी हो जाती हैं और उनके बढ़नेका कारण है उनके तंतुओंका पुनरुत्पादन एवं स्फालन। कभी २ दानवकोष प्रणाली इसमें नहीं पाई जाती और तब यह कहना कठिन हो जाता है कि यह अवस्था वास्तवमें यक्ष्माके कारण प्रादुर्भूत हुई थी अथवा अन्य किसी प्रकारके प्रदाहके कारण। पुनः इन ग्रंथियोंमें अधःक्षेपण क्रिया भी होती है और अन्तमें खटिक जम जाता है। यह अवस्था वायुनल की निकटवर्ती ग्रंथियों, अन्नधारक कला की ग्रन्थियों वा सारे शरीर की ग्रंथियों की देखी जा सकती है। स्पर्श करने पर ये कड़ी एवं गुल्माकार जान पड़ती हैं।

अणु वीक्षण दृश्य—इस यन्त्र द्वारा देखनेसे यक्ष्माक्रान्त ग्रन्थियोंमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जा सकते हैं—कभी असंख्य कीटाणु मिल सकते हैं और कभी एक भी नहीं मिलते। किन्तु जिन ग्रन्थियोंमें कीटाणु नहीं भी पाये जाते उनके कुछ अंशको यदि अन्य पशुओंमें आरोपित किया जाय तो उन पशुओंमें यक्ष्मा रोग उत्पन्न हो जाता है और उनमें कीटाणु पाये जाते हैं भिन्न भिन्न भांतिके कीटाणु इन यक्ष्माक्रांत ग्रन्थियोंमें मिल सकते हैं किन्तु पाशविक कीटाणुओं की ही अधिकता होती है।

३–श्वासोच्छ्वास संस्थान का यक्ष्मा।

(१) नासा रंध्र—इनमें यक्ष्मा-कृत क्षति परिमित वा विस्तृत घावके रूपमें दीख पड़ती है। आक्रमण दोनों नासारंध्रोंके बीचकी दीवार पर होता है। चर्म यक्ष्मा फैलता २ रंध्रोंके अग्रभाग तक पहुँच सकता है।

(२) स्वर नल—इसमें यक्ष्माका आक्रमण बहुधा माध्यमिक रीतिसे होता है। इसके दो भेद हैं।

(क) स्वरतंत्री (Vocal chord) की श्लेष्मा झिल्लीमें छोटे २ यक्ष्माके दाने निकलते हैं जो अन्त में छोटे २ घाव बन जाते हैं।

(ख) विस्तीर्ण यक्ष्मा—तंतुओंमें सूजन पायी जाती है, तदनन्तर घाव भी तैयार होते हैं इसे स्वरनलका क्षय (Laryngeal Pthisis कहते) हैं। घाव पहले तो छोटे २ होते हैं किन्तु पीछे दो वा तीन मिल कर बड़े बन जाते हैं।

अणु वीक्षण दृश्य—आसपासके (यक्ष्मा-क्षत के निकटवर्त्ती) तंतु बहुत निम्नतल तक आक्रान्त हो जाते हैं और दानव-कोष प्रणाली बहुत स्पष्ट देखी जाती है।

इस समय दूसरे २ कीटाणु भी आक्रमण करते हैं और क्षतको और विस्तृत करते हैं।

(३) वायु-नल (Trachea) इसमें यक्ष्माका आक्रमण ठीक वैसा ही होता है जैसा कि स्वर नलमें।

स्वर नल, स्वर तंत्री, एवं टेंटुएका यक्ष्मा

(४) फुफ्फुस-यक्ष्मा—यह केवल इसी अवयय में होता है या सर्वाङ्ग-यक्ष्मा (Wide-spread general tuberculosis) का एक अंश-स्वरूप होता है। इसमें यक्ष्मा कीटाणु अवश्य पाये जाते हैं। क्षतकी भिन्नता निम्नलिखित कारणों पर निर्भर रहती है।

(क) आक्रमण का मार्ग।

(ख) फुफ्फुसमें कीटाणुओंके फैलनेकी विधि एवं विशेष २ तंतुओंका आक्रान्त होना।

(ग) फुफ्फुसमें किसी दूसरे रोगकी उपस्थिति वा अनुपस्थिति।

(घ) यक्ष्मा कीटाणुओंकी विष-शक्ति (Virulence) और रोगीकी अवरोधिनी शक्ति।

(ङ) यक्ष्माके आक्रमणके उपरान्त फुफ्फुसका अन्य रोगों (विशेष कर अन्य कीटाणुओं द्वारा) आक्रान्त होना।

आक्रमणका मार्ग

ट्विटला, काल्मेट्टी, सिम्मर्स इत्यादि महानुभावोंका कथन है कि फुफ्फुस-यक्ष्माके बहुतसे रोगियोंमें आक्रमण कीटाणुओं वा कीटाणु-मिश्रित पदार्थोंके श्वास द्वारा खिंच कर प्रवेश करनेसे नहीं होता है। उन लोगोंने यह सिद्ध कर दिया है कि कालिख, छापनेकी रोशनाई और यक्ष्मा कीटाणु अंतकी श्लेष्मा -झिल्लीको पार कर लसीका द्वारा अन्त्र-धारककलाकी लसीका ग्रन्थियों में पहुँचते हैं और वहांसे किसी कीटाणु-भक्षक कोष (Phagocyte) में प्रविष्ट होकर, वा स्वतन्त्र रूपसे महालसीका वाहिनी नलिका (thoracic duct से प्राप्त होते हैं और अन्तमें किसी शिरामें पड़ कर फुफ्फुसमें पहुंच जाते हैं। इस सम्बन्धमें बहुत लोगोंका मतभेद है। परन्तु यह निश्चित है कि लसीका इन कीटाणुओंका एक प्रधान मार्ग है।

बच्चोंमे ये कीटाणु सर्व प्रथम घंटी (Tonsil) पर आक्रमण करते हैं और कभी २ नाक वा दन्त-कोटर द्वारा प्रवेश कर पाते हैं। वहांसे गलेकी ग्रन्थियोंमें पहुँचते हैं और तब वक्षस्थल एवं श्वास-नलकी ग्रन्थियोंसे होते हुए फुफ्फुसमें पदार्पण करते हैं।

इनका (कीटाणुओंका) आक्रमण सबसे पहले फुफ्फुस-मूल पर होता है, तदनन्तर ये निम्न लिखित मार्गोंमेंसे एकको चुन लेते हैं—

ऊर्ध्व एवं वहिः ओर—जिससे फुफ्फुसके शिखर एवं भीतरी भाग आक्रान्त होते हैं।

सीधा वहिः ओर—जिससे फुफ्फुसके उस ओरके तंतु आक्रान्त होते हैं एवं फुफ्फुसावरण पर भी आक्रमण होना है।

वहिः एवं अधः ओर।

यक्ष्मा कीटाणु फुफ्फुसावरण द्वारा भी फुफ्फुस में प्रवेश कर जाते हैं किन्तु यह झिल्ली स्वयं अन्त्र-यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त होती है।

यदि वायुनल पहले आक्रान्त हो जाय तो ये कीटाणु उसको परिवेष्टन करने वाली ग्रन्थियों के मार्गसे सीधे फुफ्फुसमें पहुँच जाते हैं।

वायु मार्ग द्वारा प्रवेश—साधारणतः वयस्क लोगोंमें इसी मार्गसे आक्रमण होता है। ये कीटाणु सूखे थूक वा धूलि में मिश्रित रहते हैं और सांस लेते समय नाक, कंठ वा टेंटुए की भीगी दीवारों पर बैठ जाते हैं और तब धीरे २ फुफ्फुसकी ओर अग्रसर होते हैं। सांस लेते समय इनके एकाएक फुफ्फुसमें प्रवेश कर जानेकी बहुत कम सम्भावना रहती है।

फुफ्फुसमें कीटाणुओंका प्रसरण।

यक्ष्मा कीटाणु निम्नलिखित मार्गोंसे फुफ्फुस के एक स्थानसे दूसरेकी ओर अग्रसर होते हैं।

रक्त धारा द्वारा।

संयोजक तंतुओं की लसीका धारा द्वारा।

वायु मार्ग द्वारा।

तंतुओंके सम्पर्क द्वारा।

फुफ्फुस-यक्ष्मा-सम्बन्धी कुछ साधारण बातें

(१) इसकी गति (आक्रमणकी तीव्रता-वा वेग) के कई भेद हैं; अस्तु तज्जनित क्षतमें भी उतनी ही भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ, नूतन अवस्थाओंमें अधःक्षेपण एवं अन्य नाशकारी क्रियायें अत्यधिक परिमाणमें पाई जाती हैं, और अवस्था जितनी जीर्ण होती जाती है उसमें सौत्रिक तंतुओंकी अधिकता होती जाती हैं,

फुफ्फुसका किसी समयका चित्र इन दो परिवर्तनों के सम्बन्ध पर निर्भर करता है।

(२) फुफ्फुसका क्षत यक्ष्मा-कृत-सर्वाङ्ग आक्रमणका एक अंशमात्र हो सकता है। उदाहरण-स्वरूप निम्न श्रेणीके पशुओंमें (प्रयोगार्थ) त्वचाके नीचे यक्ष्मा-कीटाणुके आरोपित किये जाने पर व बच्चोंमें वा ऐसे वृद्धोंमें जिनकी अवरोधनी शक्ति नष्ट होगई है, नूतन बहुसंख्यक यक्ष्माके प्रादुर्भूत होने पर फुफ्फुस भी आक्रान्त होता है। पुनरपि आक्रमण फुफ्फुससे आरम्भ होकर सारे शरीर में फैल जाता है। अथवा फुफ्फुस निकट-वर्ती किसी यक्ष्माकेन्द्रसे आक्रान्त हो सकता है।

(३) फुफ्फुस-क्षत परिमित वा विस्तृत हो सकता है। रुग्नावस्थामें यह क्षत बहुधा दाहिनी फुफ्फुसके शिखर पर पाया जाता है, यद्यपि मृत्युके उपरान्त देखा जाता है कि यह फुफ्फुस मूलसे ऊपर की ओर चढ़ा है। एक ही फुफ्फुसमें क्षत बहुत विरले ही देखा जाता है। यद्यपि जीवितावस्थामें बाहरसे देखने पर ऐसा ही प्रतीत होता है। दोनों ही फुफ्फुस रोगके बहुत आरम्भमें आक्रान्त होजाते हैं किन्तु एकमें (विशेष कर दाहिने में) रोग अधिक तेज़ी दिखाता है।

(४) अन्य रोगोंसे उत्पन्न क्षत इसके द्वारा किये गये परिवर्त्तनोंमें हेरफेर कर सकते हैं।

(५) जब यक्ष्मा कीटाणु एक स्थानमें बैठ जाते हैं तब इनकी फैलने की और क्षतको विस्तृत करने की प्रवृत्ति होती है।

फुफ्फुस-यक्ष्माके भेद

(क) गर्त्त-रहित-फुफ्फुस-यक्ष्मा। (Pulmonary tuberculosis without cavity) (१) नूतन (Acute)

रक्त धारा द्वारा आक्रान्त फुफ्फुस → नूतन असंख्य यक्ष्मा क्षतों की उत्पत्ति होती है।

लसीका द्वारा आक्रान्त फुफ्फुस → असंख्य छितराये क्षत वा श्वास नलिकाको घेरे हुए परिमित क्षत मिलते हैं। इसमें भी असंख्य यक्ष्मा क्षतोंकी उत्पत्ति होती है।

श्वास मार्ग द्वारा आक्रान्त फुफ्फुस → इससे नूतन यक्ष्माकृत श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह होता है (२) जीर्ण (Chreuic)—इस रीतिसे आक्रमण विशेष कर श्वासनल परिवेष्ठनी लसीका नलिकाओं के मार्गसे होता है।

(ख) गर्त्त-युक्त फुफ्फुस यक्ष्मा (क्षय वा राज-यक्ष्मा) (Tuberculosis with cavity formation—Pthisis)

(१) नूतन—जिससे श्वासनल-फुफ्फुस-प्रदाह प्रादुर्भूत होता है।

(२) जीर्ण—जो श्वासनल परिवेष्टनी लसीका धारा द्वारा उत्पन्न होती है।

गर्त्त रहित फुफ्फुस यक्ष्मा

नूतन-यक्ष्मा

रक्त द्वारा आक्रमण—इस रीतिसे आक्रमण बहुत कम देखा जाता है और यदि होता भी है तो नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा का एक अंशमात्र हो कर। किसी केन्द्रसे च्युत होकर यक्ष्मा कीटाणु रक्त-धारामें पड़ जाते हैं, और फुफ्फुस धमनी की अन्तिम शाखाओंमें पहुँच कर स्थगित हो जाते हैं। यहींसे फुफ्फुस यक्ष्मा आरम्भ होता है। इस अवस्थामें प्राथमिक केन्द्र साधारणतः उदर में पाया जाया है। टेंटुए की निकटवर्ती ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं और मुलायम होजाती हैं, तथा उनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है। फुफ्फुसावरण में बहुत सी यक्ष्मा गांठें दिखाई पड़ती हैं, और फुफ्फुस को काटने पर उसमें यक्ष्माके असंख्य दाने नज़र आते हैं। साथ ही साथ मध्यस्थ (यक्ष्मा क्रान्त फुफ्फुसके) तन्तुओं में रक्ताधिक्य और सूजन पाये जाते हैं और कभी कभी फुफ्फुस प्रदाह हो जानेके कारण ये तन्तु ठोस (Pneumonic Consolidation) हो जाते हैं।

लसीका द्वारा आक्रमण—वह दो प्रकारसे होता है—अनियमित और नियमित।

लसीका द्वारा अनियमित आक्रमण—इस रीतिसे आक्रमण नितान्त नूतन और शीघ्र बढ़ने वाली अवस्थाओंमें एवं जिससे रोग फुफ्फुसावरण वा फुफ्फुस मूल की निकटवर्ती ग्रन्थियों को पकड़ने के उपरान्त माध्यमिक रूपसे फुफ्फुस पर आक्रमण करता है देखा जाता है। इस प्रकार उत्पन्न क्षति एवं रक्त द्वारा आक्रमणसे उत्पन्न क्षतिमें कोई अन्तर नहीं पाया जाता। नग्न-चक्षु दृश्य—बहुत सी क्षुद्र भूरे रंग की गांठें फुफ्फुसके संयोजक तन्तुओंमें जहां तहां बिखरी हुई पाई जाती हैं। ये गाठें अनियमित, गोल, बीचमें पीले रंगकी और स्पर्श में कठोर होती हैं। अणु वीक्षण-दृश्य—आरम्भमें बहुतसे लसीकाणुके से कोष पाये जाते हैं। पुनः संयोजक तंतु और एपिथेलियम तन्तु का प्रस्तार होता है जिनके बीच बीचमें कुछ अधःक्षेपण क्रिया भी लक्षित होती है। दानव कोष नहीं बनने पाते हैं। वायु स्थानों की दीवारें मोटी हो जाती हैं। इन दीवारों एवं क्षुद्र श्वास नलिकाओं पर कीटाणुओं का आक्रमण होता है, जिससे ये गिर पड़ती हैं वा उन स्थानोंमें प्रदाह उत्पन्न होता है।

लसीका द्वारा नियमित और परिमित आक्रमण—यह श्वास नलिकाको परिवेष्टन करने वाली लसीका-धारा द्वारा होता है और रोग की अपेक्षाकृत कम नूतन अवस्थाओंमें वा जीर्ण अवस्थाओंमें देखा जाता है। किन्तु इस प्रकार का आक्रमण उन अवस्थाओंमें भी देखा जाता है जिनमें रोग का विस्तार बहुत द्रुत गतिसे होता है। क्षत का रूप श्वास नलिकाके आकारके अनुरूप बदलता है। बड़ी नलिका की दीवारोंसे इतने द्रव निकलते हैं कि नलिका बहुत संकीर्ण (वा एकदम बन्द) हो जाती है। अथवा वह स्वयं क्षत-ग्रस्त हो जा सकती है। किसी किसी अवस्थामें श्वास नलिका का माध्यमिक-स्फालन (Secondary dilatation) होता है और नूतन यक्ष्माकृत श्वासनल-प्रदाह (Tuberculous bronchitis) भी देखा जाता है। अवस्था और भी खराब होती है और अन्ततः श्वासनल-फुफ्फुस-प्रदाह उपस्थित होता है। पुनश्च, यक्ष्मा छोटी २ श्वास नलिकाओं पर आक्रमण करनेके पश्चात् उनके चारों ओर प्रवाहित होने वाली लसीका धाराके मार्गसे फुफ्फुस पर आक्रमण कर सकता है। इस अवस्थामें यक्ष्मा गांठें वृक्ष की शाखाओं की सी बन जाती हैं। श्वास-नलिकाओंमें कभी २ घाव हो जाता है वा नलिका एकदम बन्द हो जाती है। वा इसके आसपास की फुफ्फुस की दीवारें बैठ जाती हैं और उनमें अधःक्षेपण क्रिया होने लगती है। जब बहुत क्षुद्र श्वास नलिकाओं की दीवारें आक्रान्त होती हैं तब यक्ष्माकृत श्वास नल-फुफ्फुस प्रदाह होने की बहुत सम्भावना रहती है।

वायु मार्ग द्वारा आक्रमण—इस मार्गसे आक्रमण होने पर बहुधा यक्ष्माकृत श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह (Tuberculous bronch) देखा जाता है।

आक्रमण की रीति—कीटाणुओंसे लदी हुई धूलिके प्रवेश करनेसे अथवा रक्त (वा फुफ्फुस) से छन कर कीटाणुओंके प्रवेश करनेसे श्वास मार्ग आक्रान्त हो जाता है। इस प्रकार का आक्रमण फुफ्फुसके वायुस्थानों की और क्षुद्र श्वास नालिकाओं की दीवारोंके घावसे अथवा फुफ्फुस मूलके निकटस्थ क्षत ग्रन्थियोंसे भी हो सकता है।

क्षत का रूप—क्षुद्र श्वास नलिकाओं और वायु गर्तों का भयानक प्रदाह हो जाता है। इस प्रदाहके साथ २ श्वास नलिका की दीवारों, वायु गर्तों, और वायु कोषों का सड़ना और उनमें अधःक्षेपण होना भी आरम्भ हो जाता है। प्रथम आक्रान्त श्वास नलिकाके आकारके अनुसार फुफ्फुसके एक वा अधिक अंशों पर आक्रमण

होता है। वायुस्थल की दीवारें लसीकाणुओंसे परपूरित हो जाती हैं जिससे इन स्थानों की रक्त नलिकायें अधिक चापके कारण दब जाती हैं। दानव कोष नहीं मिलते, वा मिलते भी हैं तो बहुत कम। मध्यस्थ फुफ्फुस तंतुमें रक्ताधिक्य (Engorgement) हो जाता है और वे सूज जाते हैं तथा इनमें रक्तस्राव, फाइब्रिन युक्त द्रवका निर्गत होना और प्रदाह देखे जाते हैं [ठीक उसी प्रकारके परिवर्त्तन होते हैं, जैसे कि नूतन फुफ्फुस-प्रदाह (Pneumonia) में]। जैसे २ क्षत बढ़ता जाता है वैसे २ अंगूरके गुच्छे की भांति यक्ष्मा गांठें बढ़ती हुई पाई जाती हैं। ये देखने में श्वेत, वा पीत-श्वेत रंग की, मुलायम और सहज ही टूट जाने वाली होती है तथा क्षत अंशमें यहां वहां बिखरी हुई पाई जाती हैं।

नग्न चक्षु दृश्य—यदि केवल क्षुद्र नलिकायें आक्रान्त हुईं तो छोटी २ गांठें यहां वहां बिखरी हुई पाई जाती हैं। ये सतहसे कुछ उठी हुई और मुलायम होती हैं। कभी २ इनके द्वारा नलिकाके आकार का पता चलता है। यदि कुछ बड़ी नलिका पर आक्रमण हुआ तो यक्ष्माके दाने एक २ स्थानमें एकत्रित हो जाते हैं, जो देखनेमें कुछ पीले और सतहसे उठे हुए जान पड़ते हैं। ये आपसमें मिल कर एक बड़ा स्थान घेर लेते हैं और तब फुफ्फुस छीदेदार बन जाता है, क्योंकि कहीं २ पर ये पीले दाने दीख पड़ते हैं और उनके बीच २ के स्थान अधिक रक्त परिपूरित होनेके कारण लाल दीखते हैं। मध्यस्थ तंतुओंमें प्रदाह हो जाता है।

जीर्ण यक्ष्मा

इस प्रकारके यक्ष्मामें श्वास नलिकाको परिवेष्टन करनेवाली लसीका धारा द्वारा विस्तार ठीक उसी प्रकार होता है जैसा कि अधिक नूतन अवस्थाओंमें; किन्तु क्षत बड़ा और रक्षित सौत्रिक तंतुओं की एक दीवारसे घिरा हुआ, परिमित रहता है। इसको गांठें बड़ी बड़ी और कठोर होती हैं, इनके आकार बहुत नियमित रहते हैं तथा इनके बाहर की ओर दानव कोष प्रणाली पाई जाती है।

नग्न-चक्षु-दृश्य—इसकी गांठोंमें निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं।

१—सौत्रिक तंतुओंके सघन होनेके पूर्व इसमें अर्धपारदर्शिता (Translucency) देखी जाती है।

२—फुफ्फुस तल पर रंजक पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं जिसका एक कारण है पहलेके कर्बन रेणुओं का इकट्ठा होना और दूसरा कारण है जीर्ण प्रदाहके फल-स्वरूप रंजक रेणुओं का प्रादुर्भूत होना।

३—गांठ के चारों ओर कटोरी की भांति सौत्रिक तंतुओं की एक दीवार बन जाती है।

४—क्षतके बीचमें अधःक्षेपण क्रिया देखी जाती है।

अणुवीक्षण-दृश्य—गांठ सौत्रिक की वा कोष-मय सौत्रिक तंतुओं की बनी रहती है जिसके बीच में अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है और जिसके चारों ओर दानव-कोष-प्रणाली पाई जाती जाती है।

जीर्ण यक्ष्मासे जब जीर्ण क्षय (अर्थात् गर्त्त युक्त जीर्ण फुफ्फुस-यक्ष्मा) की अवस्था आरम्भ हो जाती है तब अधःक्षेपण क्रिया अधिकतासे होने लगती है और इसके चारों ओर सौत्रिक तंतुओं का भी अधिक विस्तार होने लगता है। अन्तमें गांठें किसी श्वास नलिकाको फोड़ डालती हैं जिससे विगलित पदार्थ (नष्ट तंतु इत्यादि) निर्गत होने लगते हैं और क्षत स्थानमें भिन्न २ प्रकारके गर्त्त प्रस्तुत होते हैं। किसी श्वास नलिकाके आक्रान्त होने पर यक्ष्माकृत श्वासनल-प्रदाह (Bronchitis) और श्वासनल फुफ्फुस (Bronchopneumonia) होने की भी सम्भावना रहती है। ये गांठें रोग मुक्त भी हो जाती हैं

अर्थात् सौत्रिक तंतुओं की एक दृढ़ कटोरी इनको चारों ओरसे भली भांति बन्द कर देती है। इस कटोरीके मध्यस्थ क्षत में अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है या खटिक जमने लगता है। कभी २ यह कटोरी इतनी सिकुड़ जाती है कि फुफ्फुसमें यक्ष्मा केन्द्रके स्थान पर सौत्रिक तंतुओंका अधःक्षेप चिह्न मात्र रह जाता है।

सौत्रिक यक्ष्मा

यक्ष्माकृत प्रत्येक क्षतमें दो प्रकार की क्रियायें देखी जाती हैं—एक तो कीटाणुके विष द्वारा की गई नाशकारी क्रियायें और दूसरी तंतुओं द्वारा की गई क्षति पूर्तिकी चेष्टायें। कभी २ इन पिछली क्रियायों का बाहुल्य होता है, जिससे नाशकारी क्रियायें परिमित हो जाती हैं। यह काम विशेष कर संयोजक तंतुओंके प्रस्तारसे होता है जो क्षत-स्थान को चारों ओरसे घेर लेते हैं और एक दीवार तैयार कर उसे समीपवर्त्ती अक्षत तंतुओंसे पृथक् कर देते हैं और इस प्रकार नाशकारी क्रियायों को बढ़ने नहीं देते। अस्तु, यह प्रस्तार-कार्य उन्हीं स्थानोंमें विशेष कर देखा जाता है जहाँ यक्ष्माकृत नाशकारी क्रियायें रोक दी गई हों वा रोग बहुत धीरे २ बढ़ रहा हो। पर कभी कभी बहुत नूतन अवस्थाओंमें भी यह देखा जाता है। उदाहरणार्थ, नूतन ग्रन्थि-यक्ष्माकी गाठें कभी कभी सूख जाती हैं, सौत्रिक तंतुमय हो जाती हैं; अथच, क्षुद्र चिह्न वा रञ्जित सौत्रिक तंतु में परिणत हो जाती हैं। और भी यक्ष्माकृत श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह द्वारा उत्पन्न गांठों के चारों ओर सेरोत्रक तन्तुकी एक कटोरी बन जाती है और जिन अंशोंमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है वे सूख जाते हैं और उनमें खटिक जम जाता है। किन्तु सौत्रिक तंतुओं का प्रस्तार विशेष कर जीर्ण अवस्थाओंमें ही अधिक देखा जाता है। इन अवस्थाओंमें श्वास नलिकायें एक दम बन्द हो जाती हैं नलिकायों और उनके समीपवर्त्ती स्थानों (तथा उनके अन्तर्गत होती हुई अधःक्षेपण क्रिया, खटिक जमना इत्यादि) को घेर कर सघन सौत्रिक तंतुओं की एक कटोरी बन जाती है। इस कटोरी के चारों ओरके फुफ्फुस तन्तुओं का प्रवेश और प्रस्तार होता जाता है। अन्तमें क्षत स्थान एक दम रोग मुक्त होजाता है और इस स्थानमें कभी यक्ष्मा कीटाणुओं का आक्रमण हुआ था इसके प्रमाणमें एकाध दानवकोष वहां पर पाये जाते हैं।

त्रपिन एवम् कर्पूर

एक चक्रिक त्रपिन

[ले० श्री व्रजबिहारी लाल दीक्षित, एम० एस-सी]

इस समुदायमें वह सभी त्रपिन एवम् उनके सम्बन्धी जन सम्मिलित हैं जो $क_{10} उ_{16}$ सूत्रसे प्रदर्शित किए जा सकते हैं और जिनमें छः कर्बन परमाणुओंका एक बन्द चक्र होना आवश्यक है। उनमें दो कर्बन द्विबन्ध भी होंगे चाहे वह चक्रके अन्दर हों या बाहर। ऐसे पदार्थ बहुधा प्रकृतिमें प्रकाश भ्रामक रूपोंमें पाये जाते हैं और कहीं कहीं अभ्रामक रूपमें। इन सबका रासायनिक अध्ययन करनेसे पूर्व यह अधिक रुचिकर होगा कि उनसे सम्बन्ध रखने वाले ऐसे पदार्थोंका वर्णन पहिले हो जावे जो इन वस्तुओंके संगठनकी ग्रन्थियोंको सुलझानेमें सहायता देंगे।

कैरोल एक ऐसा कीतोन है जो $क_{10}उ_{16}$में उदजन परमाणुको ओ से स्थापित करनेसे प्राप्त होता है। प्रकृतिमें यह वाम भ्रामक तथा दक्षिण भ्रामक दोनों ही रूपोंमें पाया जाता है। फूलोंमेंसे एकत्रित कर लिए जानेके पश्चात् इसे शुद्ध रूपमें प्राप्त करनेके लिए उसमें उदगन्धिद गैस प्रवाहितकी जाती है जिसके योगसे यह एक सुन्दर विचित्र रवेदार पदार्थमें परिणत होकर अवक्षेपित हो जाता है और फिर इस अवक्षेपको विभाजित करके प्राप्त कर लिया जाता है। इसका संगठन निर्णय करनेमें विचारनेकी बात यह है कि यह एक कीतोन है और इस कारण इसके ओषिम सरलतासे ही प्राप्त किये जा सकते हैं परन्तु यह ओषिम सभी रूपों में—भौतिक एवम् रसायन—वही पदार्थ होता है जो निम्बुनीन नोषोसोहरिद पर पांशुज क्षारकी प्रतिक्रिया द्वारा प्राप्त होता है और जो नोषोसो निम्बुनीनके नामसे प्रचलित है। इसके अतिरिक्त कारवोनको स्फुरिकाम्लके साथ गरम करनेसे एवम् अन्य रसोंके सम्पर्कसे भी, एक समरूपी परिवर्तन हो जाता है जिसका संगठन भली भांति ज्ञात है। यह केवल उदौष-पर श्यामिन है जिसका रूप इस प्रकार है।

```
          क उ_3
          |
   क उ = क — क — ओ उ
   |          ||
   क उ = क — क उ
         |
 क उ_3 — क उ — क उ_3
```
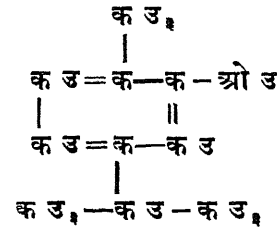
इस परिवर्तनमें यह अनुमान किया जा सकता है कि किसी भी निकटस्थ कर्बन परमाणुका एक उदजन परमाणु हट कर कीतोन-ओषजन परमाणु से जुट जाता है। इस प्रकारके परिवर्तन कार्बनिक रसायनमें भली भांति दृष्टिगोचर होते हैं। इससे यह स्पष्ट ही है कि कारवोनमें दारील एवम् समअग्रील समुदायों का स्थान ऊपर लिखे अनुसार होता है और उसमें दो कर्बन द्विबन्ध चक्रस्थ ही होते हैं। एक हलके अवकारक रस—मद्य एवम् दस्तम्चूर्ण—द्वारा यह एक अणु उदजनके योगसे द्विउदकारवोन देता है। इससे अधिक शक्तिशाली अवकारक रस—सैन्धकम् एवम् मद्य—द्वारा यह द्विउद कारव्योलमें परिवर्तित हो जाता है, परन्तु यह दोनों ही पदार्थ अब भी असम्पृक्त ही हैं क्यों कि उनमें अबभी उद-अरुणिदसे योग करने की शक्ति विद्यमान रहती है। और अवकृत करने पर चतुर-उद कारव्योल प्राप्त होता है। यह एक सम्पृक्त यौगिक है और इसके ओषदीकरण से चतुरुद् कारवोन प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु असली बात जाननेकी यह है कि यह द्विबन्ध किन किन स्थानों पर है। इसके लिये एक बन्ध वाला पदार्थ—द्वि उदकारव्योल ही प्रथम चुना जाता है। इस पर पांशुज परमांगनेत के हलके घोलके प्रभावसे त्रिउदोष-षष्ठोदश्यामिन प्राप्त होता है जिस पर रागिकाम्लका प्रभाव डालनेसे एक कीतोनिक मद्य, $क_{9} उ_{16} ओ_{2}$, सूत्रका

प्राप्त होता है। यह सैन्धकउपअरुणित द्वारा क७ उ१२ (ओ उ) क ओओ उ सूत्रके अम्लमें परिणत हो जाता है और अरुणिन द्वारा और भी ओषदीकरण करनेसे यहमध्य-उदौष पर टोलिवकाम्ल में परिणत होजाता है। इन सभी परिवर्तनोंको भली भांति समझनेके लिये यह अनुमान किया जासकता है कि सम अग्रील पार्श्व शृङ्खलामें एक कर्वन द्विबन्ध है क्योंकि ऐसी स्थितिमें पांशुज परमांगनेत केवल जहाँ पर ऐसा बन्ध होगा वहां पर दो उदौष मूल ही जोड़ देगा और जहां पर उदौष मूल जुड़ गए हैं वहीं पर एक उदौष मूल के कीतोन रूपमें ओषदीकरणकरनेसे कीतोनिक मद्य प्राप्त होगा और दूसरा उदौष मूल जिस कर्वन में लगा है उसके सहित नष्ट हो जावेगा। इसके अतिरिक्त जिसमें यह नष्ट होने वाला कर्वन परमाणु लगा था उसमें एक दारीलमूल और लगा होना आवश्यक ही है अन्यथा कीतोन किस प्रकार आसकेगा। अब आगेके ओषदीकरणसे यह दारील मूल भी नष्ट हो जावेगा और चक्रमें केवल कर्बोषिल ही लगा रहेगा। शृङ्खलाके भली भांति ओषदीकृत हो चुकने पर अब आगे अरुणिन् द्वारा ओषदीकरण करनेसे तो किन्हीं दो निकटस्थ सम्पृक्त दारील मूलोंमें से उदजनके निकल जानेसे वहां एक द्विबन्ध स्थित हो जावेगा। सम अग्रील समुदायकी पार्श्वशृंखलाके अतिरिक्त और कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहां पर यह सब क्रियायें होने पर भी चक्र बना रह सके। इस अनुमानके अनुसार सभी क्रियायें इस प्रकार होंगी।

मध्य उदौष पर-टोलिवकाम्ल
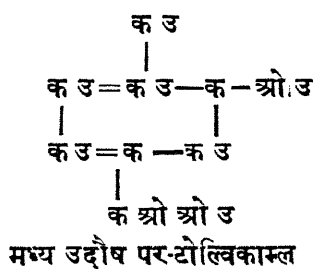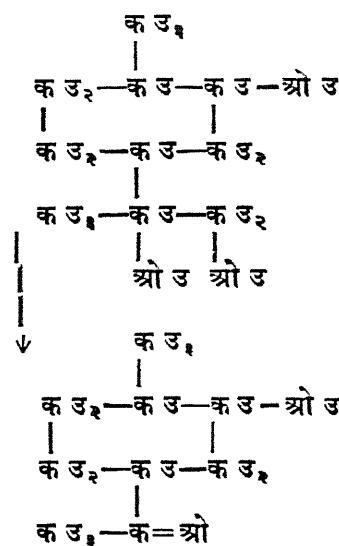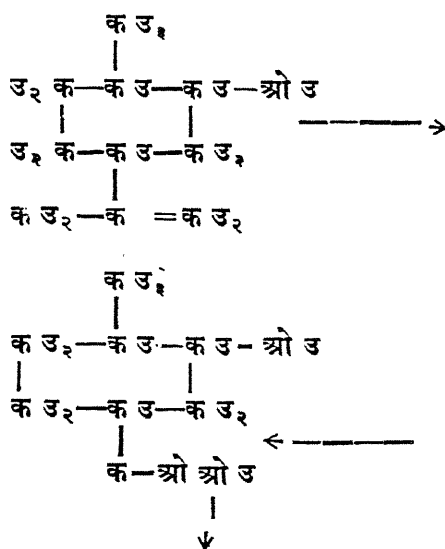
कारवोनके दूसरे कर्बन द्विबन्धका स्थान त्रपिन्योलके द्वारा सिद्ध होता है। त्रपिन्योलका संगठन जाननेके लिये त्रपिनकी शरण जाना पड़ता है। यह एक द्विप्रीनका सम्बन्धी मद्य ही है क्योंकि द्विप्रीनके द्विउदारुणिदको रजत सिरकेतसे प्रतिकृत करनेके पश्चात् तत्प्राप्त वस्तुको उदविश्लेषित करनेसे यह प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत स्वयम् त्रपिन भी उदजन अरुणिदके प्रभावसे द्विप्रीन द्विउदारुणिदमें परिवर्त्तित हो जाता है। व्यापारिक मात्रामें उपलब्ध करनेके लिये तारपीनके तैलके मद्यघोलमें तीव्र नोषिकाम्ल डालते हैं। इस प्रकार यह एक उदेत रूपमें अवक्षेपित हो जाता है। त्रपिन के दो अवकाश समरूप होते हैं:—सम और विषम दिक्। विषमदिक् अधिक घुलनशील होता है और द्विप्रीनउदअरुणिदसे प्राप्त किया जाता है और समदिक् तारपीन तैलसे अथवा त्रपिनीनको हलके गन्धकाम्लके घोलसे प्रभावित करनेसे प्राप्त कर लिया जाता है। इसी रूपमें उदेत भी बनता है। यद्यपि इन दोनोंमेंसे कोई भी रूप प्रकृतिमें नहीं पाया जाता परन्तु अनार्द्रकरसोंके प्रभावसे यह दोनों ही ऐसे दो पदार्थ देते हैं—ज्वलत्रीन एवम् त्रपिन्योल—जो अनेकानेक उड़ायी इत्रोंमें पाये जाते हैं। इन दोनोंका एक ही सूत्र ($क_{१०} उ_{१८}$ ओ) होता है।

ज्वलत्रीनका स्वयं महत्व तो कुछ अधिक नहीं है पर प्राकृतिक पदार्थ होनेके कारण इसका कुछ वर्णन यहां दे देना असंगत न होगा। यह तो कहा ही जा चुका है कि यह अनेक उड़ायी तैलोंमें, विशेष कर युकेलिप्टस, कजोपुत आदिमें पाया जाता है। यह १७७° श के क्वथनांकका द्रव होता है और इसमें कपूरकी तरहकी सुगन्ध होती है। त्रपिनसे इसका सम्बन्ध तो बड़ा घनिष्ठ है पर न इसमें कोई मद्यीय गुण ही है और न कोई कीतोनिक गुण ही। इन कारणोंसे यह आन्तरिक ज्वलक रूपमें समझा जा सकता है—
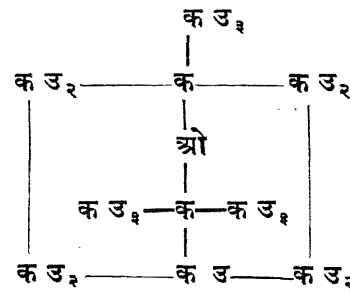
इस रूपकी वास्तविकताका अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि ओषदीकरणसे इससे एक द्विमूली अम्ल—ज्वलत्रीनिकाम्ल·प्राप्त होता है जो सिरकाम्लके संसर्गसे एक अनार्द्र उत्पन्न करता है और वह तपाने पर ज्ञात संगठनके दारील सत्तीनोनमें परिवर्त्तित हो जाता है। इस प्रकार :—
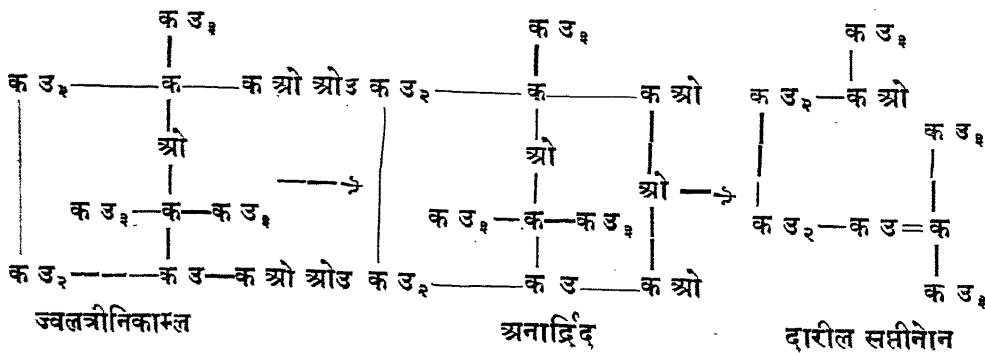
अब त्रपिन्योलकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। इसकी महत्ता भी बहुत है। यह क$_{10}$ उ$_{19}$ ओउ, सूत्रवाले अनेक असम्पृक्त मद्यों मेंसे एक है जिनको पुदीनोल भी कहते हैं। प्रकृतिमें यह शक्तिक एवम् अशक्तिक सभी रूपोंमें पाया जाता है, दक्षिण भ्रामक रूप तो दालचीनीके तैलमें होता है, वामभ्रामक रूप निम्रोली तैलमें और अशक्तिक रूप कजीपुटके तैलमें होता है। त्रपिन उदेतको हलके गन्धकाम्लसे प्रतिकृतकर देनेके बाद अत्यन्त ही शीतल करके ठोस त्रपिन्योलको अलग कर लेते हैं। इसमें एक तो तृतीय मद्योल मूल होता है जिसकी सूचना इससे दिग्यीलमूत्रेन उत्पन्न होनेके कारण मिलती है। एक द्विबन्धकी विद्यमानता भी नोषोर्सील हरिद अथवा अरुणिन् के एक अणुसे योग होनेके कारण मिलती है। उदौषिल मूलका स्थान वही होगा जो कि त्रपिन उदेतके किसी भी ऐसे मूलका होगा अथवा जहां पर द्विप्रीन द्विउदारुणिदमें कोई भी लवणजन हैं। इसकी समस्याको सुलझानेमें भी परमांगनेतसे बड़ी ही सहायता मिली है। सबसे पहिला प्राप्त पदार्थ तो त्रिउदौषषष्ठ उदश्यामिन (अथवा पुदिन त्रिओल) होता है। परन्तु यह द्विउदकारब्योल ही नहीं होता है क्योंकि हलके गन्धकाम्लसे तपाने पर यह तो श्यामिन एवम् कारविनोनमें परिवर्त्तित हो जाता है परन्तु वह नहीं होता है। रागिकाम्ल द्वारा आगे ओषदीकृत करने पर यह त्रिउदौष यौगिक सहत्रपिनलिकाम्ल और फिर त्रपिनिक अम्लमें परिवर्त्तित हो जाता है जिन सबका रूप संश्लेषण द्वारा भली भांति ज्ञात है। सूत्ररूप यह क्रियायें इस प्रकार होंगी :—
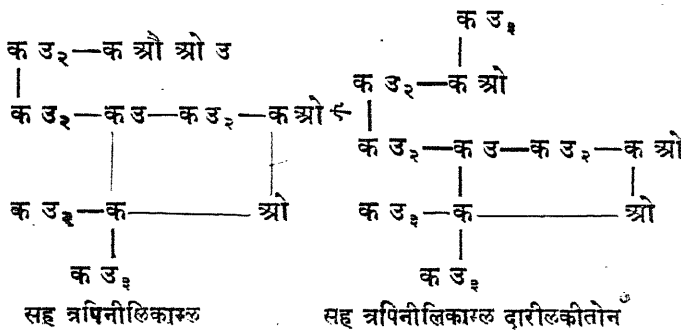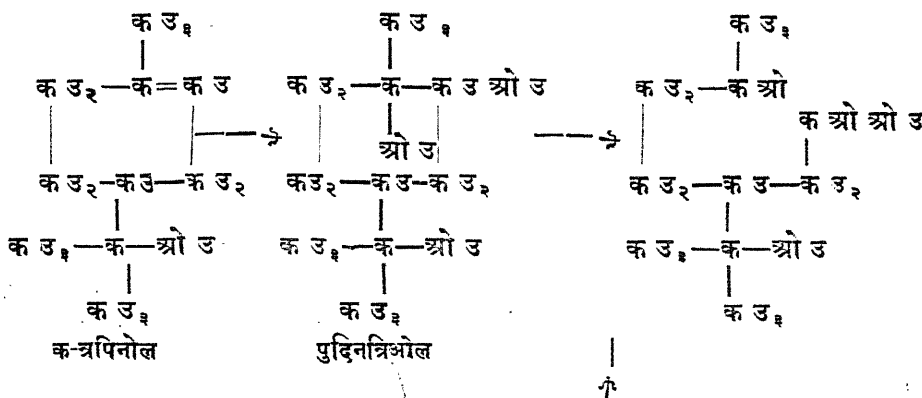
इन सभी वस्तुओंका संश्लेषण भी सरल और स्पष्ट ही है। पीनिक, गोंदिक तथा रालिकाम्लोंके ख—सिरकील यौगिक पर ग्रिगनार्ड रसका प्रभाव डालनेसे ही सहत्रपिनिलिकाम्ल, त्रपिनिलिकाम्ल अथवा त्रैबिकाम्ल प्राप्त हो जाते हैं। व्यवस्था सभीमें एक सी ही है और एक ही उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा।

```
      ओ ओ क₂ उ₅                       ओ ओ क₂ उ₅              क उ₂--क ओ ओ उ
        |                                |                     |
क उ₂—क      क ओ ओ क₂ उ₅   क उ₂—क       क ओ ओ क₂ उ₅   क उ₂—क उ—कउ₂—क ओ
|           |              |            |               |           |
क उ₂—क उ— क उ₂  ——→   क उ₂—क उ₂ —क उ₂-->      क उ₂—क————————आ
      |                         |                        |
     क ओ                  क उ₃—क—ओ उ                   क उ₃
      |                         |
     क उ₃                      क उ₃
```
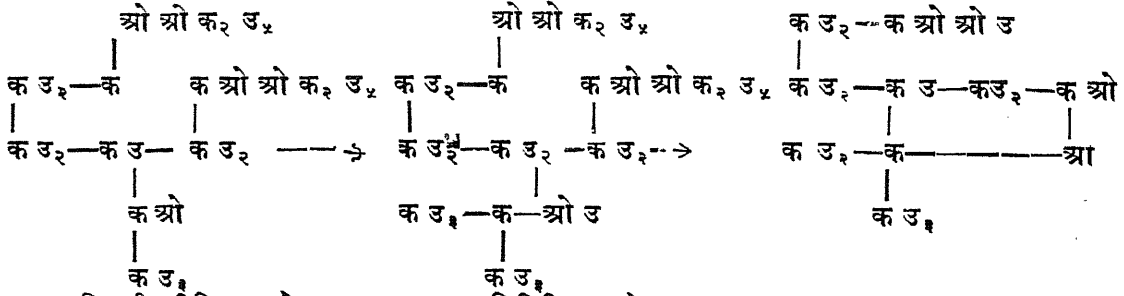
ख—सिरकीलपीनिक सम्मेल   सह त्रिपिलिकसम्मेल   सहत्रिपिनिलिक सम्मेल

अब यह ज्ञात हो जाने पर कि त्रपिन एक द्वि-तृतीय मद्य है उसका एक ओर तो त्रपिन्योलसे संबंध और दूसरी ओर द्विप्रीन द्वि-उद्अरुणिद्से सम्बन्ध स्पष्ट ही है। इस प्रकार—

त्रपिन्योल   त्रपिन   द्विप्रीनिद्विअरुणिद्
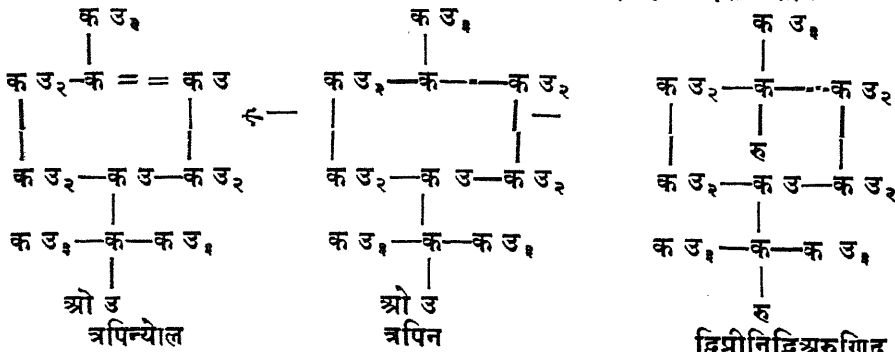
वस्तुतः देखा गया है कि त्रपिन दो सम दिक् एवम् विषमदिक् नामके समरूपकोंमें पाया जाता है। उपर्युक्त सूत्रानुसार उन दोनों रूपोंका आकार भी भली भांति स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार—
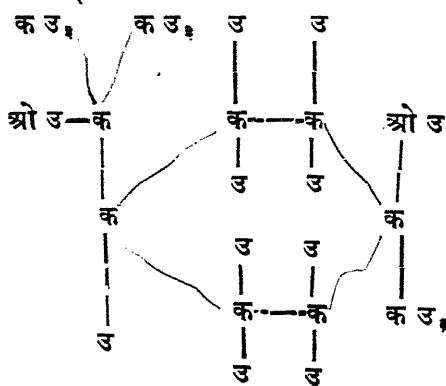
समदिक् (क्थ० १०२-१०५° श)
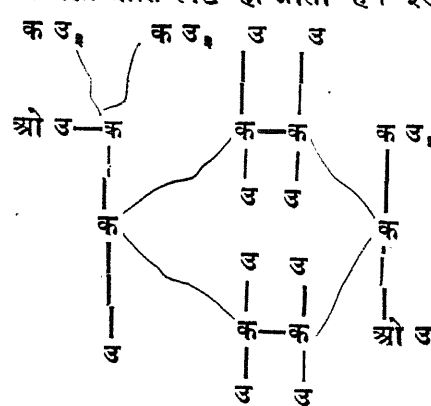
विषम दिक् (क्थ० १५६-१५८° श)

और इसी प्रकार द्विप्रीन द्वि-उदअरुणिदके तत्सम्बन्धी रूप भी होंगे। परन्तु स्वयं द्विप्रीन का कोई भी शृंखलाबद्ध रूप निश्चित् नहीं किया जा सकता क्योंकि यह लवणाम्ल तो अनेक प्रकार से निघटित किये जा सकते हैं। परन्तु यह अवश्य है कि कारवोन ओषिम तथा नोषोसो निम्बुनीन एक ही पदार्थ है। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनों ही में कर्बन द्वि-बन्धोंका स्थान एक ही होगा। इनमेंसे एकका स्थान तो निर्विवाद रूपसे द्विउदकारव्योलके ओषदीकरण द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। दूसरा प्रायः वह है जो त्रपिन्योलमें है परन्तु इसका प्रमाण तभी होगा जब कि इन दोनोंका सम्बन्ध भलीभांति स्थिर किया जा सके। यह रासायनिक जगत्को श्रीमान् वलक साहेबकी कृपासे प्राप्त हुआ जब उन्होंने त्रपिन्योलको कारवोन और कारवोनको त्रिपिन्योलमें परिवर्त्तित कर दिखाया। उनकी प्रथम विधि तो कुछ लम्बी सी और इस प्रकार है कि त्रपिन्योलको द्विअरुणिदके सम्पर्कमें अधिक समय तक रक्खा जाता है जब कि उदौषिल मूल अरुणिन्से स्थापित हो कर त्रिअरुणिद प्राप्त होता है। इसको सैन्धक दारीलेतके साथ कुछ तप्त करने पर कारवियोल दारील ज्वलक प्राप्त होता है जिसमें कि उदजन अरुणिदके दो अणु तो निकल ही जाते हैं और तीसरा दारौषिल मूलसे स्थापित हो जाता है। इसके ओषदीकरणसे कारवोन प्राप्त होता है। इस प्रकार—
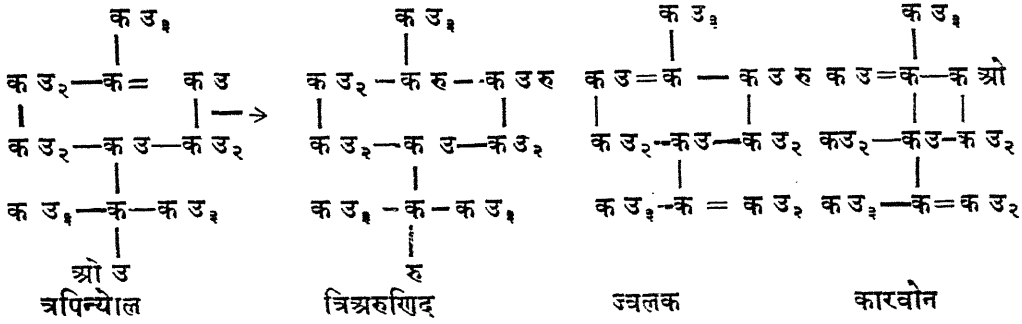
परन्तु बादको उन्होंने एक अतिही सरल विधि इस प्रकार निकाली कि त्रपिन्योल का नोषोसोहरिद बनाकर उसमेंसे उदजनहरिद निकाल कर ओषिम प्राप्त कर लेते हैं जिसको अम्लोंके साथ उबालनेसे कारवोन मिल जाता है—
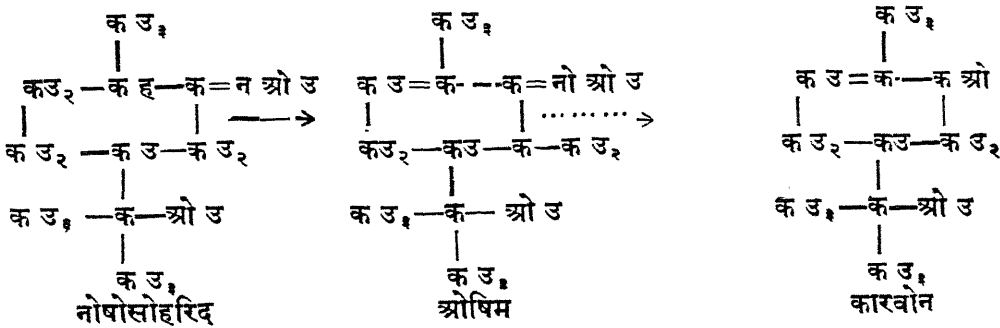
द्विप्रीन एक अभ्रामक पदार्थ है। इसके प्रकाश भ्रामक रूप अलग अलग होकर द—अथवा वा—निम्बुनीनके नाम से प्रसिद्ध हैं। बहुधा सभी उड़ायी तैलोंमें यह पदार्थ पाये जाते हैं। निम्बुकी सुगन्ध से यह सभी गन्ध बहुत कुछ समानता रखती हैं। दक्षिण भ्रामक रूपमें यह निम्बुओं, नेरोली, नारंगी तथा पुष्पों इत्यादि में प्राप्त होती है। वाम-रूप इतना अधिक प्राप्य नहीं है परन्तु फिर भी चीडकी पत्तियोंमें तथा रूसी एवम् अमरीकाके स्पीयरमिण्ट और पिपरमिंट इत्यादिमें विद्यमान होती है। अशक्त द्विप्रीन भी चीड की पत्तियों, निम्बुनिला तैल एवम् कूबेबके तैल में प्राप्त होती है। दोनों ही प्रकार के निम्बुनीन को मिलानेसे अथवा उनमें किसी को भी कुछ अधिक ताप पर अभ्रामक करनेसे भी द्विप्रीन प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक त्रपिन अधिक समय तक वफाने पर द्विप्रीन उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि अनेक रेज़िन और गोंदीय पदार्थके शुष्क स्रवणसे यह पदार्थ पाया जाता है। द्विप्रीन अमरीकन तारपीनके तैलसे प्राप्त होने वाली पिनीनमें भी मद्यील गन्धकाम्ल डालनेसे अथवा उसे जलीय उदजन हरिद डालकर द्विप्रीन द्विउद हरिद रूपमें प्राप्त होती है। त्रपिन्योल एवं ज्वलत्रीन से भी यह तैयार की जा सकती है।

इसके शुद्ध करने की विधि यही है कि उसके द्रव रूपमें वायव्य उदजन हरिद प्रवाहित करके रवेदार यौगिक संचित कर लिया जावे जिसको सिरकाम्ल में घुले हुए सैन्धक सिरकेतके साथ उबालनेसे द्विप्रीन निकल आती है। निम्बुनीन इस प्रकार शुद्ध नहीं की जा सकती क्योंकि उसमें अभ्रामकता आ जाना अनिवार्य ही है। वस्तुतः उसके रवेदार चतुररुणिद यौगिकमें परिणत करके उसे दस्तचूर्ण तथा मद्य द्वारा अवकृत करके शुद्ध कर सकते हैं। इसके नोषोसोल हरिद यौगिक भी विशिष्ट महत्वके हैं। यह $क_{१०} उ_{१६}$ नो ओह सूत्रके रवेदार पदार्थ होते हैं जो कि त्रपिनमें सिरकाम्लमें घुले हुए केलीलनोषित को डाल कर तीव्र उदहरिकाम्लसे अम्लित करने पर प्राप्त होते हैं। परन्तु इस नए रसके योगसे एक नवीन असमसंगतिक कर्बन परमाणु इसके अणुमें प्रवेश कर जाता है। इस कारण प्रत्येक निम्बुनीनसे अथवा द्विप्रीनसे २ रूप—क—अथवा ख—नोषोसोहरिद प्राप्त होते हैं। इन पर नीलिन का प्रभाव डालनेसे प्रत्येक एक २ भिन्न नीलिद भी देता होता है। इस प्रकार

$क_{१०} उ_{१५}$ नो ओह + $उ_{२}$ नो $क_{६} उ_{५}$ ⟶
निम्बुनीननोषोसोहरिद

$क_{१०} उ_{१५}$ नो ओ—उनो—$क_{६} उ_{५}$ + ह उ
निम्बुनीननोपोलनीलिद

वा-निम्बुनीन

ख-नोषोसो हरिद → क-नोषोल नीलिद, द्रवांक ११३°

ख-नोषोसो हरिद → ख-नोषोल नीलिद, द्रव० १५३°

द-निम्बुनीन

क-नोषोसो हरिद → अ-नोषोल नीलिद, द्रव० ११३°

ख-नोषोसो हरिद → ख-नोषोल नीलिद, द्रव० १५३° श

अ-द्विप्रीन नोषोल नीलिद, द्रव० १२६° श

ख-द्विप्रीन नोषोल नीलिद, द्रव० १४९° श

क—अथवा ख— द्—नोषोसेोहरिद् क अथवा ख ता—नोषोसोहरिद्के साथ समविषमभ्रामक ही होंगे और इस प्रकार क एवं ख निम्बुनीनके बा—अथवा द्—रूपों के मिलानेसे क—अथवा ख—रूप द्विप्रीन भी प्राप्त हो सकती है।

कारवोनसे प्राप्त ओषिम और द्विप्रीनके नोषोसो हरिद्की एकता सिद्ध ही की जा चुकी है और इस कारण कारवोन के प्रथम प्रमाणित रूपमें यह सम्बन्ध इस प्रकार होगा :—

क उ₃ — क—क ओ — क उ= — क उ₂—क उ—क उ₂ — क उ₂ =क—क उ₃ → क उ₃ — क उ=क—क=नो ओ उ — क उ₂ —क उ—क उ₂ — क उ₂ =क—क उ₃ ↓ क उ₃ — क उ₂—क ह—क=नो ओ उ — क उ₂—क उ—क उ₂ — ← क उ₂ =क—क उ₃
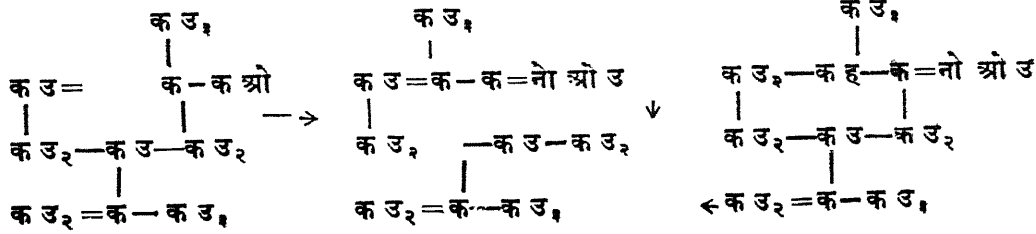
कारवोन — कारवोषिम् — निम्बुनीन नोसोहरिद्

इस प्रकार निम्बुनीनका रूप यह प्रमाणित होता है—
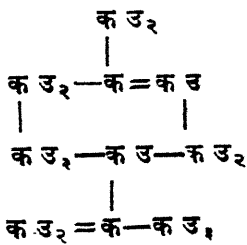
अब भी इन सूत्रोंमें जो विवादास्पद बात रह गई हो वह बहुत कुछ मात्रामें अपने त्रपिन्योल एवम् द्विप्रीनके निम्नांकित संश्लेषणसे दूर हो जाती है। सबसे प्रथम द्—कीतोषष्टउद्बानजाविकाम्ल (सूत्र १) तैयार किया जाता है। फिर उसके सम्मेल को मगनीसदारील नैलिदसे प्रतिकृत करने पर जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे उद्विश्लेषित करने पर द्—उदोषषष्ठउद्-परटोल्विकाम्ल (सूत्र २) प्राप्त हो जाता है। धूम्रित उद्अरुणिकाम्लमें डालनेसे यह अत्यन्त ही शीघ्रतासे घुल जाता है और फिर कुछ ही समयमें उपर्युक्त पदार्थ के एक ऐसे यौगिकके रवे निकलने लगते हैं जिसमें उदौष मूलके स्थानमें केवल एक अरुणिन् का परमाणु आ गया हो। इसको हलके क्षारों द्वारा अथवा पिरीदिन द्वारा प्रतिकृत करनेसे उद्अरुणिकाम्ल का अणु वहिष्कृत हो जाता है और △३ चतुर्-उद-परटोल्विकाम्ल प्राप्त हो जाता है (सूत्र ३) इस प्रकार—
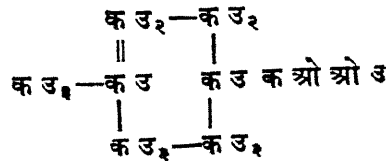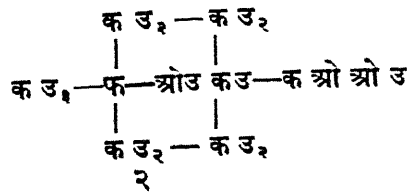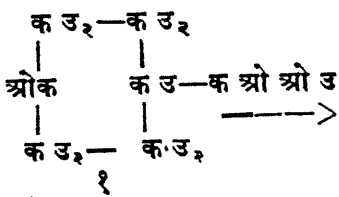
अब इस अम्ल को फिर मगनीस दार्रीलनैलिद से ही प्रनक्रित करते हैं और जैसा कि इस क्रिया में सदा ही होता है सम्मेल समुदायके स्थानमें तृतीय मद्यिल मूल स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्राप्त पदार्थ त्रपिन्योल ही होगा और फिर प्रकाश भ्रामक रूपोंमें पृथक् किया जा सकता है। इस प्रकार—
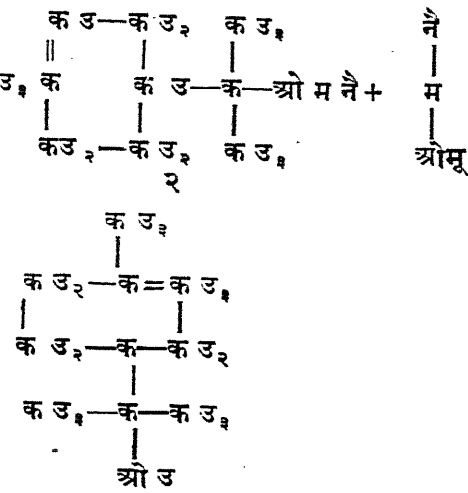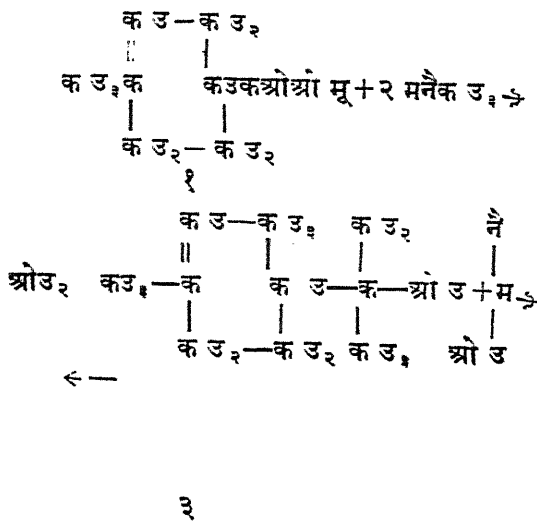
त्रपिनोल

अब इसमें जलके योग कर देनेसे त्रपिन उदेत अथवा जल निघटनसे द्विप्रीन प्राप्त करना तो सरल है। प्रथममें हलके गन्धकाम्लके घोलके संसर्गमें रखना पड़ता है और बाद वाली क्रियामें पाशुज उदजन गन्धेतसे प्रतिकृत करना पड़ता है। त्रपिन स्वयम् तो प्रारम्भिक चाक्रिक षष्ठेनोनसे भी मगनीस दार्रील नैलिद की अधिक मात्रा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त यौगिक अभ्रामक ही होते हैं। भ्रामक रूप प्राप्त करनेके लिए चतुरुद टोल्विकाम्ल को ही उसके भ्रामक रूपोंमें स्ट्रिकनीन एवम् ब्रूसिन लवणों द्वारा अलग अलग कर लेते हैं और उनसे फिर उपर्युक्त सभी क्रियाओं द्वारा अन्ततोगत्वा प्रकाश भ्रामक त्रपिन्योल प्राप्त किया जा सकता है। निम्बुनीनके लिए अवश्य ही बड़ी कठिनाई पड़ती है क्योंकि वह तो प्रायः सभी संश्लेषित त्रपिनों की भांति बड़ी शीघ्रतासे अभ्रामक हो जाती है।

इस भाँति द्विप्रीन का रूप तो भली भांति स्थिर हो गया है और उनका त्रपिन, त्रपिन्योल एवम् ज्वलत्रीनसे अनार्द्रक रसों द्वारा उत्पादन भी स्पष्ट ही है परन्तु इन सभी क्रियाओंमें केवल द्विप्रीन ही नहीं प्राप्त होती है। उसके अतिरिक्त दो अन्य त्रपिनें भी प्राप्त होती हैं जिनका नाम त्रपिनोलिन एवम् त्रपिनीन है। इनके विषयमें कुछ विचार कर लेना भी प्रसंगसंगत ही होगा।

त्रपिनोलीन एक कृत्रिम तथा निष्भ्रामक त्रपिन है। सर्व प्रथम इसको वलक साहेब ने चीरीण को मद्यिक गन्धकाम्ल द्वारा विपर्य्य पदार्थोंमें से प्राप्त किया था। परन्तु तत्पश्चात् जैसा कि दर्शाया जा चुका है इसकी उपलब्धि त्रपिन, त्रपिन्योल अथवा ज्वलत्रीनके साथ गन्धकाम्लके हलके घोल अथवा स्फुरिकाम्ल की क्रियाओंमें भी हो चुकी है। त्रपिनोलीन शीघ्रतासे ही त्रपिनीनमें परिवर्त्तित हो जाती है और यदि इसमें गन्धकाम्ल

को प्रयोग किया जाता है तो श्यामीन भी प्राप्त होती है। सर्वोत्तम विधि त्रपिन्योल पर काष्ठ-काम्लके प्रभावसे ही अथवा ग—त्रपिन्योल पर अन्य हलके अम्लोंके प्रभावसे ही है। इस प्रकार यह सिद्ध ही है त्रपिन्योलमें से जलके एक अणु के निकल जानेसे ही यह पदार्थ बनता है। परन्तु जल का यह अणु दो रूपसे निकल सकता है और चूंकि एक प्रकारसे प्राप्त वस्तु द्विप्रीन होती है इस कारण दूसरे प्रकारसे प्राप्त वस्तु अधिक सम्भव है कि त्रपिनोलिन ही होगी।
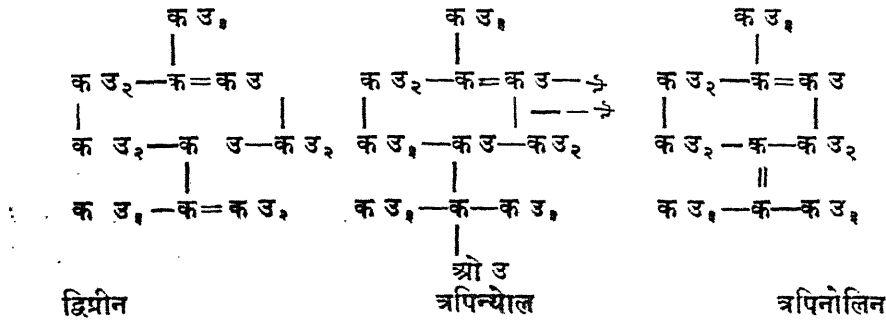
इस विचार पर ही निर्भर रह कर काम नहीं चल सकता है क्यों कि एक ऐसी ही क्रियामें त्रपिनीन भी तो प्राप्त होती है परन्तु इस विषयके लिये अनेक अन्य प्रमाण भी हैं। द्विप्रीन त्रिअरुणिद से भी यह पदार्थ प्राप्त किया जा चुका है। इसमें अरुणिद को यदि दस्त चूर्ण एवम् सिरकाम्लसे प्रतीकृत करें तो दो अरुणिन् परमाणु तो निकल जाते हैं और तीसरा उदौष मूलसे स्थापित हो जाता है जिसका सिरकेत रूप प्राप्त होता है। यह कुनोलिन की विद्यमानतामें स्रवण किये जाने पर त्रपिनोलिन एवम उद्विश्लेषण पर एक नया ही त्रपिन्योल देता है। इस नये त्रपिन्योलका द्रवांक ७०° का है और अब तक जिसका विवरण होता आया है उसका केवल ३५° का ही था। त्रपिन्योल सिरकेतके संगठनके विषयमें जो प्रमाण दिया जा सकता है वह है, उसके एक नीले रवेदार नोषोसो हरिद्के आधार पर। यह यौगिक चतुर् दारिल ज्वलीलिन के नोषोसो हरिद्से दृष्टिगत भावोंमें किसी प्रकार भी भिन्न नहीं होता है, इस लिये यह अनुमान करलेना साधारण ही होगा और शुद्ध भी होगा कि दोनों का रूप एक ही होना चाहिए। इस प्रकार—
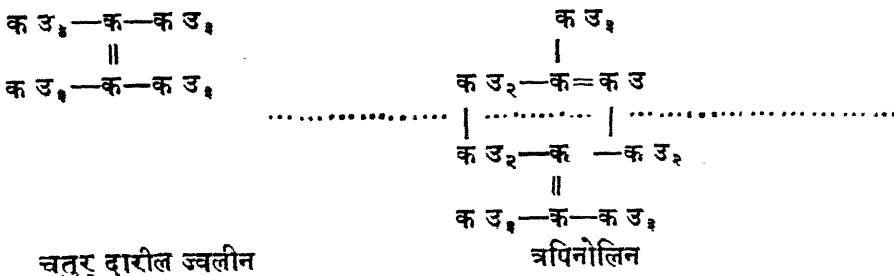
अब द्विप्रीन से त्रपिनोलिन प्राप्त होने पर माध्यमिक रूप निम्न प्रकार दर्शाये जा सकते हैं—
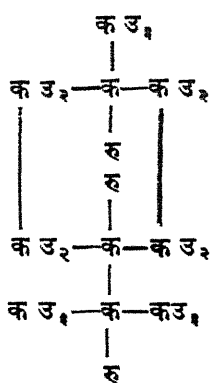
द्विप्रीन त्रि अरुणिद (१—४—८ त्रि अरुणो पुदिनेन) त्रपिन्योल सिरकेत (△४ (८) पुदीनोल (१)) त्रपिन्योलीन (△१ ४ (८) पुदिनद्विन)
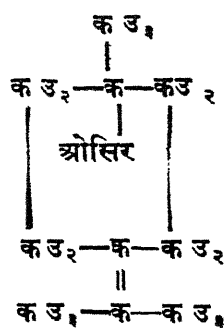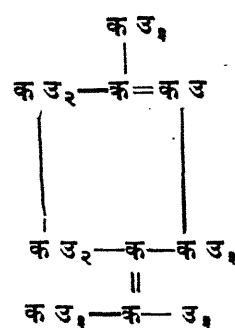
अब त्रपिनीन को लो। इसके भी कई रूप होते हैं। अ-रूपमें इसका त्रपिन उदेत, त्रपिन्योल अथवा ज्वलत्रीनसे प्राप्त होना कहा ही जा चुका है और इसका ऐसे पदार्थसे प्राप्त होना जो कि सरलतासे गन्धकाम्ल द्वारा त्रपिनमें परिवर्तित हो जाते हैं अनुमान ही किया जा सकता है जैसे कि चीरीण, द्विप्रीन इत्यादि। किन्तु इसकी सबसे सरल एवम् महत्व पूर्ण विधि तारपीन के तैलसे है। बारबार न्यून मात्रामें तीव्र गन्धकाम्ल डालनेसे इस तेलमें जो चीरीण होती है वह त्रिपिनीनमें परिवर्तित हो जाती है। यह प्रकृतिमें बहुत ही कम पाई जाती है। न्यूनांशमेंसर्व प्रथम यह दालचीनीकेतैलमें दृष्टिगत हुई थी जब कि इसका नोषोसित यौगिक क$_{१०}$उ$_{१६}$नो$_{२}$ ओ$_{३}$ रवेदार अवक्षेप रूपमें प्राप्त किया गया था। यह नोषसाम्ल द्वारा प्राप्त होता है और त्रपिन एवम् फलन्द्रिन दोनोंका ही विशिष्ट गुण है। लवणजनअम्लोंके दो अणुओंसे त्रपिनीन योग करके रवेदार अवक्षेप देती है जिससे इसमें दो कर्बन द्वि बन्धोंका अनुमान किया जा सकता है। ओषदीकृत होने पर क-,क'-, दारील सम अग्रील कक' द्वि उदोष पीनिकाम्ल भी देती है। इस प्रमाणके आधार पर और निम्नांकितसंश्लेषणके आधार पर यह निर्विवाद रूपमें कहा जा सकता है कि इसमें दो आबद्ध द्विबन्ध होते हैं और यह △१-३ पुदिनद्वीन है। कुछ लोगोंके मतानुसार इसमें कुछ न कुछ अंश १-४ पुदिनद्वीनका भी सदा ही मिला रहता है जिसे ग-त्रपिनीन कहते हैं।

त्रपिनोलिन एवम् त्रपिन्योलसे त्रपिनीन प्राप्त होनेमें यह सम्भव हो सकता है कि एक द्विबन्ध पार्श्व श्रेणीसे हट कर चक्रांतर्ग हो जाता हो। इस अनुमानसे इस पदार्थका निष्भ्रामक होना भी सरलतासे स्पष्ट हो जाता है।
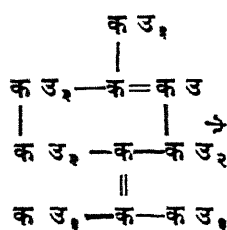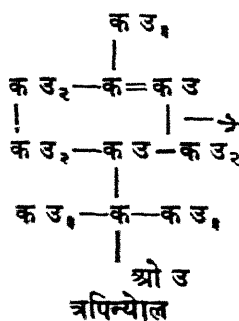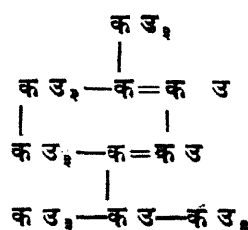
त्रपिन्योल त्रपिनोलिन क-त्रपिनीन

इसके अतिरिक्त एक ख-त्रपिनीन (△१ (७)-३-पुदिनढीन) भी है जो वलक साहेबने १६०७ में सबिणकीतोनसे एक ऐसी क्रिया द्वारा संश्लेषित की थी जो कि वह बहुधा चाक्रिक-कीतोनके ओषजनको पार्श्वश्रेणीके द्वि बन्ध (=क उ$_2$) से स्थापित करनेके लिये प्रयोग करते थे। कीतोनको दस्त चूर्णकी विद्यमानतामें अरुणोसिरकसम्मेलसे लिप्त करते हैं। फिर उसे उदविश्लेषितकरके सिरक अनार्द्रिदके साथ तपाते हैं जिससे एक असम्पृक्त अम्ल प्राप्त होता है। इस अम्लको गरम करने पर ही इसमेंसे कर्वन द्विओषिद तथा जल वहिष्कृत हो जाता है और असम्पृक्त पार्श्व श्रेणी स्थापित हो जाती है। और चक्रान्तर्गत चक्र एक द्वि बन्ध रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार—
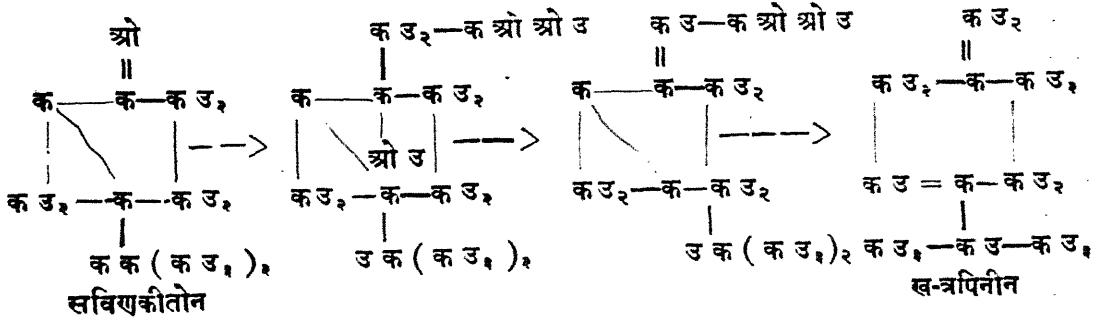
यह नोषस अम्लके साथ बड़े ही धीरे धीरे योग करती है और नोषोसित देती है। अरुणिन्के साथ एक अनघुल रवेदार चतुर्-अरुणिद् देती है जोकि क-त्रपिनीन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वायुके संसर्गसे ओषदीकृत भी बड़ी ही जल्दी हो जाती है।

एक अन्य त्रपिनीन भी दृष्टि गत् हुई है जो कि क्रिथमम् मेरीटिमससे प्राप्त की गई है और जिसका यह रूप दिया गया है। यह कुछ बहुत अधिक महत्वकी वस्तु नहीं है और इसके सगंठनके विषय में भी निर्विवाद शृंखलाबद्ध प्रमाण भी अभी प्रस्तुत नहीं हो सके हैं—

क उ$_2$
‖
क उ$_2$—क—क उ$_2$
|　　　|
क उ$_2$—क—क उ$_2$
‖
क उ$_2$—क—क उ$_2$
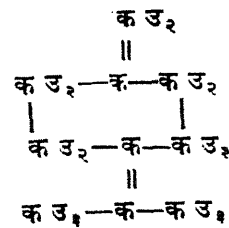
गैसोंमें विद्युत् प्रवाह

[ले० श्री प्रेम बहादुर वर्मा, बी० एस-सी०]

धन और ऋण किरणें

यह प्रत्येक मनुष्य का अनुभव है कि विद्युत् का प्रवाह ऋण और धन सिरौके तारोंको जोड़नेसे ही होता है। अगर जोड़में कुछ भी कमी है तो प्रवाह उचित रूपसे नहीं होगा। जोड़के बीच में वायु न होनी चाहिये, नहीं तो चिनगारियां (spark) उत्पन्न होंगी जो कि उचित प्रवाह नहीं है। इससे लोगों में ऐसा विश्वास हो गया था कि कोई भी गैस पदार्थ साधारण रूपमें अपनेमें विद्युत्का प्रवाह न होने देगा। पर विश्वास इतना बढ़ गया था कि अगर वायुमें रक्खी हुई किसी वस्तुकी विद्युत् मात्रा (Charge) कम हो जाती थी तो यह समझ लिया जाता था कि यह बाधक पदार्थोंका दोष है।

परन्तु यह विश्वास न ठहर सका और लगभग तीस वर्षसे विद्युत्के इस विभाग ने इतनी उन्नतिकी है कि इसने परमाणु (Atom.) के विषयमें हमारे विचार एक दम बदल दिये है। इस अशुद्ध विश्वासको हटानेका श्रेय सी०टी०आर० विलसनको है। इस वैज्ञानिक ने बहुत ही साधारण परन्तु अत्यन्त ही सुन्दर रीतिसे यह सिद्ध कर दिया कि साधारण अवस्थामें भी गैसमें विद्युत् प्रवाह होता है। परन्तु उसकी धारा इतनी निर्बल है कि उसको कई हजार गुणा करने पर भी बढ़ियासे बढ़िया धारा मापक (Galvanometer) से नहीं जान सकते। वह केवल इतना ही कह कर संतुष्ट नहीं हुआ परन्तु उसने उस धारा को नापनेका भी एक उपाय बतलाया। पाठकों के मनोरंजनार्थ हम यहाँ पर गणितका वह भाग देंगे जो कि इस उपायका मुख्य भाग है। अगर किसी वस्तुकी आवेश मात्रा (charge) म हो, और अवस्थाभेद (potential) व हो और समाई (capaciy) स हो तो हम कह सकते हैं किः—

$$म = स\ व$$

इस समीकरणसे अगर चलनकलन द्वारा हम समयके साथ२ मात्राके परिवर्तनकी दर निकालें तो हमें धारा मिलेगी।

$$धारा = \frac{य\ म}{य\ क} = स \frac{य\ व}{य\ क}$$ [क समयको बतलाता है]

अर्थात् विद्युत् संचालक शक्तिके परिवर्त्तनकी समयके साथकी दरको अगर हम समाईसे गुणा करें तो हमें धारा मिलेगी। इस परिणाम के कारण हमें धारामापककी आवश्यकता नहीं रहती है।

अगर ऊपरके परिणामको ध्यानपूर्वक देखा जाय तो एक बात और प्रकट होती है कि एक सबल धाराके लिये अवस्था भेद या वोल्टज (Voltage) बहुत बड़ी होनी चाहिये। गैसोंमें विद्युत् प्रवाह करनेके लिये बहुत ही बड़ी वि० सं० श० का व्यवहार किया जाता है। अगर एक बन्द नली जिसके भीतरका दबाव (Pressure) $^1/_{10}$ सहस्रांश मीटर हो तो लगभग १००० वोल्टकी आवश्यकता होगी।

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम वर्षोंमें गैस पर विद्युत्के प्रयोग किये जाने लगे। फल भी अच्छा प्राप्त होता गया और साथ २ बड़ा आकर्षक भी हो गया। यहां पर हमारा अभिप्राय पाठकोंको प्रयोगके विषयमें कुछ बतलाना तथा उनके फलों की कुछ महत्ता प्रगट करना है।

अगर किसी बन्द नली जिसमें वायु भरी हुई हो और परसौप्यम्के दो बिजलोद लगे हों और उसमें भरी हुई वायु अगर किसी पम्प द्वारा कम कर दी जाय तो उसमें विद्युत्का प्रवाह बड़ी आसानीमें हो सकता है। प्रवाहके होने पर अत्यन्त ही मनोहर दृश्य दिखाई देते हैं। अगर अवस्थाभेद आवश्यकतासे बिलकुल अधिक नहीं है तो पहले केवल दोनों ध्रुवोंके पास ही प्रकाश (Luminosity) दिखाई देगा।

प्रकाश केवल ध्रुवोंके पास ही पाया जाता है और उनके बीचमें अंधेरा रहता है। अगर वायु का दबाव एक सहस्रांश मीटरके बराबर कर दिया जावे तो धन बिजलोदके पासका प्रकाश बढ़ जाता है और नलीके एक बड़े मार्गमें फैल जाता है।

नलीके भीतर वायु का दबाव पारेके एक सहस्रांश मीटरके बराबर है। वायु का परिमाण बहुत कम हो चुका है। अगर पम्प द्वारा हम इस परिमाणको और भी कम कर दें तो हमें कई अन्य दृश्य मिलेंगे। दबावके कम करने पर और प्रवाह को जारी रखनेपर ऋणोदके पासके प्रकाशके दो भाग हो जाते हैं और उनके मध्यमें अंधेरा रहता है। ऋण ध्रुवके पास वाले प्रकाश को ऋणोद प्रकाश (Cathode glow) कहते हैं और दूसरे को जो कि कम दवाव पर बहुत ही फैला रहता है ऋणात्मक चमक कहते हैं। इन दोनोंके बीचके भाग को क्रूक्स-श्यामपुट (Crookes dark space) कहते हैं। ध्यानपूर्वक दृष्टि डालनेसे एक और अंधेरा भाग जिसका नाम फैरैडे श्यामपुट है, दिखाई देगा। इसका स्थान ऋण और धन बिजलोदोंके प्रकाशके मध्यमें है। एक या एक अधिक सहस्रांश मीटरके दबाव पर धन प्रकाश लम्बा होता है और दबावके कम करने पर उसके अन्धेरे और उजालेमें कई भाग हो जाते हैं।

ऋण बिजलोदके पास जो घटनायें दिखाई देती हैं उनकी लम्बाई नलीके भीतरके गैस पदार्थ व उनके दबाव पर निर्भर है तथा नली की लम्बाईसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। नलीका शेष भाग चाहे कितना ही लम्बा क्यों न हो धनभागसे भरा रहता है।

दबाव इससे भी कम कर दिया जाय तो क्रुक्स भाग बढ़ जाता है और धन भाग धन बिजलोद की ओर सिकुड़ने लगता है। दबावके और भी कम कर देने पर नलीकी दीवारें भिन्न २ प्रकारके प्रकाशसे चमकने लगती हैं। इस प्रकाशका रंग उन पदार्थों पर निर्भर है जिसकी नली बनी हुई है।

अब हम पाठकोंके सामने एक अत्यन्त मनोरञ्जक विषयका वर्णन करेंगे जो कि आधुनिक विज्ञानमें विशेष महत्वका है और जिसने कि जैसा हम पहले कह चुके हैं हमारे आणविक सिद्धान्तोंको बिलकुल ही पलट दिया है। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत वैज्ञानिकोंका यह मत हो गया है कि भिन्न २ तत्त्व केवल एक ही सूक्ष्म पदार्थसे बने हुये हैं और उनमें केवल रूपान्तर ही है।

जब कि नलीमें, जिसका कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, दबाव काफी कम हो जाता है तो एक और घटना होती हुई दिखाई देती है। यह ऊपर कही गई चमकों के बिलकुल भिन्न है। नीलेसे प्रकाशकी किरणोंका एक झुण्ड ऋण बिजलोद से लम्ब हो कर जाता हुआ दिखाई देता है। दबाव जितना कम होता है उतनी ही ये किरणें साफ़ दिखाई देती हैं। ये किरणें ऋण किरणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं।

ये किरणें क्या हैं और किस चीज़ की बनी हुई हैं? इस विषय पर बहुत समय तक विवाद युक्त विचार होता रहा। गोल्डस्टन (Goldstein) ने जिसने कि इन्हें यह नाम दिया है इनको आकाश (Ether) में उत्पन्न हुए किसी कम्पनका परिणाम समझा। इसके विरुद्ध क्रुक्सने बतलाया कि ये किरणें गैसके अत्यन्त सूक्ष्म कणों की बनी हुई हैं और ये कण विद्युत्के बहुत बड़े संचार (Charqe) से युक्त हैं तथा ऋणोद ध्रुवके धरातलसे विद्युत्की शक्तियों द्वारा फेंके जाते हैं। वैज्ञानिकोंका वर्त्तमान मत क्रुक्सके मतसे मिलता है। पाठक भी इन किरणोंके गुणोंसे उनका प्रकृतिके विषयमें जान सकते हैं। उनके गुण ये हैं :—

(१) इन किरणोंकी गति सर्वदा सरल रेखामें होती है। अगर धनोद ऋणोद, के सम्मुख न हो तो भी गतिमें अन्तर नहीं पड़ता। इस गुणके

दिखलानेके लिये जो नलियां बनाई जाती हैं उनमें धनोद ऋणोद के बगल हीमें बनाया जाता है। अगर इन किरणोंके मार्गमें किसी वस्तुको लाकर रुकावट डाली जावे तो उसकी छाया नलीकी भिजि पर ऋणोदके सामने पड़ेगी।

(२) ये किरणें ऋणोद के धरातलसे लम्ब होकर निकलती हैं। अगर यह धरातल समान (Plane) हो तो ये समानान्तर होंगी और अगर बैठा हुआ अर्थात् नतोदर (Concave) हो तो एक बिन्दु (Focus) पर इकट्ठी हो जावेंगी। इनका यह गुण रोञ्जन किरणोंके उत्पन्न करनेमें प्रयोग किया गया है। अगर इन ऋण किरणोंके मार्गमें एक तार खड़ा कर दिया जावे तो उसकी स्वच्छ छाया पड़ती है।

(३) ये किरणें द्रव्य (Matter) में कुछ दूर तक प्रवेश कर सकती हैं। उदाहरणार्थ, अगर स्फटम्की पतली चद्दर किरणोंके मार्गमें लाई जावे तो ये चद्दरके दूसरी ओर भी दिखाई देंगी और इस पार वे लेनार्ड किरणें कहलाती हैं। इनका रंग ऋण किरणों जैसा ही होता है।

(४) चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा ये एक ओरको हटाई जा सकती हैं। अगर इनके मार्गके पास एक चुम्बक लाया जावे तो इनके मार्गमें मोड़ आ जाती है।

(५) ये ऋण संचार (Neqatiue charqe) को ले जाती हैं। यह बिलकुल ठीक २ मालूम हो गया है कि इनका विद्युत् संचार ऋण होता है।

(६) विद्युत् स्थितिक क्षेत्रों (Electrostatic) द्वारा भी ये एक ओर हटाई जा सकती हैं। किरणों का यह गुण जो कि क्रुक्स मतके लिये अत्यन्त आवश्यक था कुछ समय तक बिलकुल ही अज्ञात रहा। परन्तु सन् १८९७ में प्रो० जे० जे० टामसन ने नलीको और भी खाली करके इसे पूर्णरूपसे सिद्ध कर दिया।

(७) इनमें बहुत ही गत्यर्थक सामर्थ्य (Kinetic enerqy) भरी है तथा दूसरे पदार्थों पर यह दबाव भी डाल सकती है। इन बातोंके विचारसे क्रुक्स का मत कि ये किरणें ऋण विद्युत्से युक्त किरणोंकी बनी हुई हैं और ये कणही ऋणाणु (Electron) हैं जैसा आगे चलके मालूम हो जायगा कुछ संदेह नहीं रहता। गोल्डस्टन मत वालों को दो बातों का सहारा था, एक तो छठे गुणका न होना और दूसरा, किरणों का धातुमें प्रवेश करना। परन्तु जब छठे गुण का होना पाया गया और यह जाना गया कि इनमें परमाणु नहीं हैं प्रत्युत उससे कई गुने छोटे कण हैं तो क्रुक्स मत को स्थापित होने में अधिक देर न लगी। आजकल हम इन ऋणाणुओंका भार (Mass), विद्युत मात्रा और गति अलग २ नाप सकते हैं।

ऋणाणुके विषयमें इन बातोंके जाननेके लिये हमें एक गणितीय सम्बन्ध का आश्रय लेना पड़ता है तथा चुम्बकीय क्षेत्रकी आवश्यकता होती है। अगर प्रत्येक का भार ब, गति ग शतां शमीटर प्रति सैकिंड; और क्षेत्रके कारण उसके मार्गका व्यासार्ध स हो तो उस पर केन्द्रावसारी शक्ति (Centrifrugal force) $\frac{\text{ब. ग}^2}{\text{स}}$ होगी; और अगर चुम्बकीय क्षेत्र जिसका परिमाण क्ष है और जिसकी दिशा कणके मार्गसे लम्ब है तो उस पर क्षेत्र के कारण क्ष. म. ग. शक्ति होगी जिसमें कि म कणकी विद्युत् मात्रा है। इस अवस्थामें जब चुम्बकीय क्षेत्र मार्गसे लम्ब है ये दोनों शक्तियां बराबर होंगी। इसलिये

$$\frac{\text{ब. ग}^2}{\text{स}} = \text{क्ष. म. ग.}$$

$$\therefore \text{स} = \frac{\text{ब}}{\text{म}} \times \frac{\text{ग}}{\text{क्ष}}$$

$$\text{या} \quad \frac{\text{म}}{\text{ब}} = \frac{\text{ग}}{\text{क्ष . स}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

ऊपर अत्यन्त ही सरल सम्बन्ध प्रगट किया गया है परन्तु यह विशेष अवस्थाओंमें है। $\frac{\text{म}}{\text{ब}}$ का मान प्रो० जे० जे० टामसन आदि कई वैज्ञानिकोंने कई अवस्थाओंमें तथा भिन्न २ पदार्थोंसे निकाला है। परन्तु इस महान प्रश्नका जो उन्हें उत्तर मिला है वह प्रयोगकी भूलोंको छोड़ कर बिलकुल एक ही है। प्रयोग-परिस्थितियों का उस पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम नलीके सिरोंका अवस्था भेद (Potential) कितना ही अधिक या कम रक्खें, किसी भी पदार्थके अपने बिजलोद बनायें और नली के भीतर कैसी ही गैससे काम लेवें और उसे किसी भी दबाव पर क्यों न रक्खें इस महान उत्तरमें कुछ भी अन्तर नहीं आता।

कुछ समयके पश्चात् इन कणोंके, जिनको हम ऋणाणु कहेंगे, म और ब का अलग २ मान निकाला गया। इसका बोझ उद्जन परमाणुके बोझका १८४० भाग है। अतः यह निष्कर्ष निकला कि ये कण परमाणु नहीं हैं परन्तु उनसे कई गुणे छोटे हैं और जैसा अभी कहा जा चुका है, इस मानमें किसी भी पदार्थके साथ भिन्नता नहीं होती, ये ऋणाणु प्रत्येक तत्त्वका भाग बनाते हैं। अथवा प्रत्येक तत्त्व इन्हीं ऋणाणुका स्थूल रूप है। अभी तक कोई ऐसी विद्युत् मात्रा भी भी नहीं देखी गयी जो कि ऋणाणुओंकी विद्युत् मात्रासे कम हो।

द्रव्यके विषयमें यह अत्यन्त आधुनिक सिद्धांत है। इसका वर्णन बहुत ही सूक्ष्म रूपमें किया गया है। पुराने सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक तत्त्व छोटे २ परमाणुओंसे बना हुआ है और प्रत्येक तत्त्व के परमाणु दूसरे से भिन्न होते हैं; अतः एक तत्त्व दूसरेमें परिणत नहीं हो सकता। ये परमाणु सर्वदा गति करते हैं तथा यह गति तापके घटा बढ़ा देनेसे घटती बढ़ती रहती है। इन परमाणुओं को हम आगे नहीं बांट सकते हैं। परन्तु आधुनिक सिद्धान्त एक कदम—नहीं कई कदम आगे चला गया है। इसके अनुसार आधुनिक वैज्ञानिकके लिये एक परमाणु उतनी ही गम्भीर समस्या है जितनी हमारे पूर्वजोंके लिये एक तत्त्वकी बनावट। नवीन सिद्धान्तके अनुसार परमाणुकी बनावट सूर्य मण्डलके दृष्टांत से दी जा सकती है। जिस प्रकार सूर्यमण्डलमें स्थित सूर्य के चारों ओर कई ग्रह और तारागण बड़े वेगसे चक्कर लगाया करते हैं उसी प्रकार एक परमाणुमें कई स्थित केन्द्रके चारों ओर कई ऋणाणु अत्यन्त ही वेगसे निरन्तर चक्कर लगा रहे हैं। इन चक्कर करते हुये ऋणाणुओंका भिन्न भिन्न बनाव भिन्न २ तत्त्वोंको उत्पन्न करता है। इस प्रकार अब परमाणुके भी भाग कर दिये गये हैं। और एक तत्वको दूसरेमें परिणत करना भी सम्भव हो गया है तथा पाठकों को यह जान कर अचम्भा हुये बिना न रहेगा कि आजकल एक तत्वको दूसरेमें परिणत करनेके प्रयत्नमें सफलता हुई है, और इस प्रकार हम नवीन सिद्धान्तमें पूरी तरह विश्वास कर सकते हैं। इस नवीन सिद्धान्त ने तत्वोंके सब गुणों की व्याख्या कर दी है परन्तु इन सबका का वर्णन इस समय नहीं किया जा सकता।

यह तो हुआ ऋण किरणों तथा उनकी महत्ता के विषयमें। इनके साथ २ उसी नलीमें हमें दूसरी किरणें भी मिलती हैं। इनका नाम धनकिरण है। ये धनाणुओंकी बनी हुई हैं जो कि ऋणाणुओंकी अपेक्षा अत्यन्त भारी होते हैं। अगर नलीके क्रुक्स-भागमें कोई ठोस रुकावट डाली जावे तो उसकी छाया न केवल नलीकी दूरकी दीवार पर गिरती है प्रत्युत ऋणोद पर भी उसकी छाया दिखाई देती है। पहली छायाका कारण ऋण किरणकी उपस्थिति है। दूसरी छायासे कुछ ऐसी किरणोंका होना प्रकट होता है जो कि धनोदकी ओरसे ऋणोदकी ओर आते हैं। इनका धनसे ऋण-बिजलोदकी ओर आना हमें यह बतलाता है कि ये धन विद्युत्से संचारित हैं। अगर ऋणोदमें छेद कर दिये जाँय तो किरणें उसके पार जाती हुई

दिखाई देंगी और नलीकी भित्ति पर लाल चमक उत्पन्न करेंगी।

धनकिरणें ऋणकिरणोंसे बिलकुल ही भिन्न हैं। ये नलीमेंकी भिन्न २ गैसोंके अणुओं (Molecule) और परमाणुओंकी बनी हुई हैं जो कि धन विद्युत्से संचारित हैं। इनकी गति भी तेज़ नहीं है। इनके गुणोंकी छान बीन अधिक कठिन प्रतीत हुई है क्योंकि नलीकी बची हुई गैसमें ये दूसरे और गुणोंको उत्पन्न करती हैं। एक धनाणु गैसके कणोंसे टक्कर खा कर, चूँकि वे दोनों लगभग एक ही आकारके होते हैं, उसे आगे चलनेके लिये वाधित करता है। परन्तु टक्कर खाते हुए कणके लिये यह आवश्यक नहीं कि विद्युत्से संचारित ही हो। प्रो० सर जे० जे० टामसनने अत्यन्त परिश्रम करनेके पश्चात् धनकिरणोंकी छानबीन कर एक सुन्दर उपाय निकाला है जिसका कुछ वर्णन आगे दिया जाता है।

इस प्रयोगमें विद्युत् प्रवाह एक बड़ी कुप्पीमें किया गया क्योंकि प्रवाह अधिक गैसमें ठीक प्रकार और अत्यन्त थोड़े दबाव पर आसानीसे होता है। २० या ३० शतान्श मीटर का व्यास इसके कार्यके लिये पर्याप्त है। ऋणोद एक स्फटम् छड़का बना हुआ होता है जिसमें होकर एक पतली सी ताम्र-नली जाती है। इस नलीका व्यास $\frac{१}{१०}$ सहस्रांश मीटर होता है और नरम लोहेकी बड़ी मोटी नलीमें रक्खी जाती है ताकि किरणों पर किसी अन्य चुम्बकीय क्षेत्रका प्रभाव न पड़े तथा इसी अभिप्रायसे प्रवाह वाली कुप्पीको भी एक लोहेकी चद्दर लगा कर ढक दिया जाता है। प्रवाहके समय अत्यन्त ही ताप निकलता है जिसके रोकनेके लिये पानीके प्रवाहका भी प्रयोग किया जाता है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि ताम्र नलीका व्यास $\frac{१}{१०}$ सहस्रांश मीटर है। इसके कुछ लाभ हैं; एक तो, यह धनाणुओंकी बहुत ही पतली किरणमें सहायता करता है जो कि प्रयोगकी सफलताके लिये अत्यन्त ही आवश्यक है और दूसरे, यह चित्रपट पर या किसी दमक परदे (Phosphorescent screen) पर एक स्वच्छ बिन्दु देता है। तीसरे, यह हमारे प्रयोग स्थल को प्रवाह कुप्पीसे अलग रखता है और इसलिये हम बिना किसी प्रकारकी कठिनताके उस स्थलका दबाव कुप्पीके दबावसे बहुत कम रख सकते हैं; यह सफलताकी कुंजी है। किरणके ऋणोदसे निकलनेके बाद हम चुम्बकीय एवं विद्युत् क्षेत्रोंका प्रभाव ठीक उसी प्रकार जैसे कि ऋणकिरणोंके प्रयोगमें था, डालते हैं और गणितके उन्हीं सम्बन्धोंका सहारा लेते हैं। अगर य विद्युत् और र चुम्बकीय क्षेत्रोंसे किरणोंका हटाव हो तो

$$\left.\begin{aligned} य &= क_१ \frac{मा . क्ष_१}{ब . ग^२} \\ र &= क_२ . \frac{मा . क्ष}{ब^२ . ग} \end{aligned}\right\} \ldots\ldots\ldots (३)$$

होंगे। इनमें $क_१$, $क_२$ दिये हुये यंत्रके स्थिरांक हैं जो कि प्रयोग द्वारा जाने जा सकते हैं, मा एक धनाणुकी विद्युत् मात्रा है, और $क्ष_१$ विद्युत् क्षेत्रका परिमाण है। इन समीकरणोंसे हमको

$$\frac{र}{य} = \frac{क_२ . क्ष}{क_१ क्ष_१} . ग \ldots\ldots\ldots (४)$$

$$\frac{र^२}{य} = \frac{क_२^२}{क_१} . \frac{क्ष^२}{क्ष_१} . \frac{मा}{ब}$$ (५) मिलते हैं।

समीकरण (४) व (५) के विषय में विशेष विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है। अगर सब कणों (धनाणुओं) की गति एक ही तो और मा/ब का मान भी उन सबके लिए एक ही हो तो उन सब का हटाव (Deflection) दोनों क्षेत्रोंमें बराबर ही होगा और वे सब परदे पर एक ही स्थान पर आकर लगेंगे। परन्तु वे कण जो धन ध्रुवके पास उत्पन्न होंगे वे धनसे लेकर ऋण ध्रुव तक का मार्ग पूरा करेंगे और अगर दोनों ध्रुवों का अवस्थाभेद व है तो कण की सामर्थ्य व मा, समीकरण $\frac{१}{२}$ ब $ग^२$ = व मा द्वारा

ऋण ध्रुव पर पहुंचने पर प्रगट होगी। इस समय उनकी गति शीघ्रतम होगी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कण भी होंगे जो कि ऋण ध्रुवके पास बनेंगे और ऐसे कणों की गति उस ध्रुव पर पहुँचने पर बहुत थोड़ी होगी। इस प्रकार नलीके भीतर किरणमेंके कणों की गति किसी हद से अधिक न होगी और यह हद नली के लिये एक ही होगी। इसलिए यह बिना हटा हुआ चिह्न, जिसको हम पहले बता चुके हैं, दोनों क्षेत्रों के प्रभावसे एक पंक्तिमें खिंचा हुआ दिखाई देगा। समीकरण (५) से प्रगट होता है कि वे कण, जिनके लिये मा/ब मान एक ही है, भले ही उनकी गति कुछ भी हो,

$$\frac{र_२}{य} \quad \text{स्थिर संख्या}$$

वक्र (Curve) पर होंगे। यह परवलय (Parabola) का समीकरण है। अगर किरणों में ऐसे कणों के कई झुंड हैं जिनके $\frac{मा}{ब}$ के मान अलग २ हैं तो उन सबोंके अलग २ परवलय बनेंगे।

कणों का विद्युत् क्षेत्र द्वारा हटाव य= का$_१$ $\frac{मा. क्ष_१}{ब. ग_२}$ द्वारा प्रगट होता है और उनकी उच्चतम गति $\frac{१}{२}$ ब. ग^२ = व मा द्वारा जानी गई है, तो उनका कमसे कम हटाव

$$य = \frac{१}{२} क_१ \frac{क्ष_१}{व}$$

द्वारा प्रगट होता है। अर्थात् सब परवलय एकदम पम से $\frac{१}{२}$ क$_१$ $\frac{क्ष_१}{व}$ की दूरी पर ठहर जायँगे। इन परवलयों का आकार सैद्धान्तिक रूपमें निम्न प्रकार प्रगट किया जा सकता है।

कणोंके इन टेढ़े मार्गोंके चित्र लिये गये हैं। और ये चित्र वैसे ही हैं जैसा कि अभी बतलाया जा चुका है।
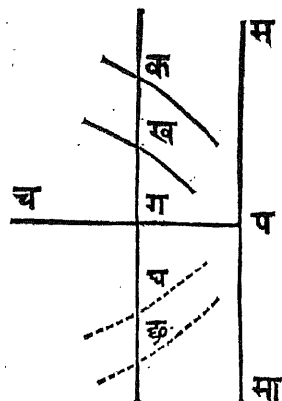
धन किरणोंके चित्रमें परवलय वाम भाग में भी दिखाई देते हैं। इनके लिये $\frac{मा}{ब}$ का मान एक ही है तथा यह भी निश्चय है कि इनका विद्युत् धन के बदले ऋण होना चाहिये। पहले हम देख चुके हैं कि ये धनाणु ऋणोद में हो कर आये हैं इसलिये इनका भार प्रवाहमें धन ही था परन्तु हटाने वाले क्षेत्रोंके पास पहुँचनेसे यह भार लुप्त ही नहीं हुआ प्रत्युत ऋण हो गया है। ऐसा ताम्र नलीके भीतर ही हुआ। इसकी व्याख्या साधारण ही है। धन किरणें बचे हुये द्रवमें टक्करों द्वारा यवनों (Ions) को उत्पन्न करती हैं और चूँकि धनाणुओंको उसी द्रवमें हो कर जाना पड़ता है अतः ऋणाणुओं (Electron) द्वारा ये धनाणु आच्छादित रहते हैं। जब कोई धनाणु द्रवके परमाणु (Atom) से टक्कर खाता है तो ऋणाणुओं की ही उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ऋणाणुओं से ढके रहने के कारण जब कभी दो ऋणाणु एक धनाणुसे मिल जाते हैं तो धनाणु का विद्युत् भार ऋणात्मक हो जाता है। जब एक ही ऋणाणु मिलता है तो ऋणका विद्युत्

भार कुछ भी नहीं रहता और क्षेत्रोंसे उसके मार्गमें कुछ भी हटाव नहीं होता है। ऐसी अवस्था कदाचित् बहुतसे कणों की होती है क्योंकि चित्रमें हमेशा एक बिना हटा हुआ स्थान देखा जाता है। ऐसे परवलय जो कि चित्रमें वाम भाग की ओर दिखाई देते हैं ऋणात्मक परवलय कहलाते हैं। ऋणात्मक परवलय ओषजन, और लवणजन गैसके साथ बहुत ही स्वच्छ पाये जाते हैं क्योंकि ये गैस ऋणात्मक हैं। परन्तु नोषजन और हिमजन (Helium) के साथ कभी नहीं पाये गये।

धन किरणों की एक भावी महत्ता यह है कि इसका उपर्युक्त गुण गैसके पारिमाणिक विश्लेषण में काम लाया जा सकता है और रंगवीक्षण विधि की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परन्तु इस विधिमें क्रियात्मक कठिनाइयाँ अधिक हैं, इस कारण साधारण प्रयोग में नहीं आ सकता। प्रो० टामसन के प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है कि समस्थानिक (Isotopes) अर्थात् वे तत्त्व जिनके रासायनिक गुण एकसे हैं परन्तु परमाणु भार भिन्न है, अन्य तत्वोंके साथ भी मिल सकते हैं। पहले ऐसे पदार्थों के उपस्थिति रश्मिशक्तिक पदार्थों के साथ ही मानी जाती थी। परवलयमें कुछ ही तत्व भाग लेते हैं। धातुओं की अनुपस्थिति ही रहती है। केवल पारा ही ठीक परवलय देता है तथा कुछ कठिनाइयों द्वारा नकलम् भी भाग लेता है।

यहां पर परमाणुके विषयमें कुछ संख्यायें दी जाती हैं जो कदाचित् मनोहर होंगी :—

(१) $\frac{म}{ब} = १०^{७} \times १.७६$ वि० चु० इ० और $१०^{७} \times १.७७$ के बीच में

यह मान प्रयोग भूलों को छोड़ बिलकुल एक ही है। यह मान कई पदार्थों से निकाला गया है। वे कुछ पदार्थ ये हैं :—ऋण किरणें, गरम चूना, रश्मिम् की बीटा किरणें तथा पराकासनी प्रकाश।

(२) $ब = ९.० \times १०^{-२८}$ ग्राम

(३) $म = १०^{-२०} \times १.५१$ वि० चु० इ०

(४) $व्यासार्ध = १.९ \times १०^{-१३}$ शतांशमीटर (कदाचित्)

चतुर्दश अध्याय

परवलय

उत्तरार्ध

[ले० 'गणितज्ञ']

१५७—परवलयका समीकरण निकालना जब इसके अक्ष व्यास और व्यासके सिरेसे खींची गई स्पर्श रेखा हैं।

कल्पना करो कि किसी व्यासका सिरा ब है और इस बिन्दु ब परकी स्पर्श रेखा अक्षसे थ° का कोण बनाती है। <ब ध त=<थ°। सूक्त १५४ के अनुसार—
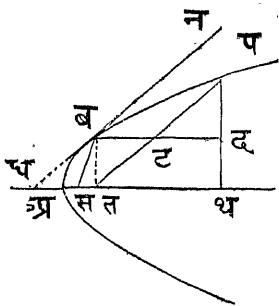
चित्र ५५

अतः तब = २ क कोस्प थ°

$\therefore$ अत = $\frac{\text{त ब}^2}{\text{४ क}}$ = क कोस्प^2 थ

कल्पना करो कि परवलय पर किसी बिन्दु प के युग्मांक नये अक्षोंकी अपेक्षा (य, र) हैं। परवलयके अक्ष पर पथ लम्ब खींचो। यह लम्ब व्यास बटको द में काटता है। यह रेखा स्पर्श रेखा न ब ध के समानान्तर है। अतः

<प ट द = <बधत = < थ°

थप = द प + द = दथ प + बत

= ट प ज्या थ + २ क कोस्प थ

= २ क कोस्प थ + र ज्या थ ······(१)

अथ = अत + तथ

= अत + बट + टद

= क कोस्प^{2}थ + य + र को ज्याथ ···(२)

र^2 = ४ क य

प बिन्दु परवलय पर है अतः

$\therefore$ पथ^2 = ४ क. अथ

अतः समीकरण (१) और (२) से

(२ क कोस्प थ + र ज्याथ)^2

= ४ क (क कोस्प^2 थ + य + र कोज्या थ)

४ क^2 कोस्प^2 थ + र^2 ज्या^{2} थ

+ ४ क र को ज्या थ

= ४ क^2 कोस्प^2 थ + ४ क य +

४ कर कोज्या थ

$\therefore$ र^2 ज्या^{2} थ = ४ क य ···(३)

परन्तु अत = क कोस्प^2 थ

$\therefore$ सब = क + अत = $\frac{\text{क}}{\text{ज्या}^2\text{ थ}}$

अतः सब या $\frac{\text{क}}{\text{ज्या}^2\text{ थ}}$ के स्थानमें 'का' उपयुक्त करनेसे वक्रका समीकरण यह होगा—

र^2 = ४ का य·········(४)

१५८—उपर्युक्त समीकरण (४) में ४ का को व्यासकी परिमिति कहते हैं। यह उस चापकर्णके बराबर है जो ब बिन्दुकी स्पर्श रेखाके समानान्तर है और नाभिसे होकर जाता है।

यदि पाटाठा कोई चापकर्ण स्पर्शरेखा बन के समानान्तर नाभिसे होकर खींचा जाय और व्यास बटदसे टा पर मिले तो—

बटा = सध = सब = का

$\therefore$ पाटा^{2} = ४ क· बटा = ४ का^{2}

$\therefore$ पाठा = २ पाटा = ४ का

१५९—सूक्त १५४ के समीकरण (४) द्वारा स्पष्ट है कि र = $\frac{\text{२क}}{\text{त}}$ तथा परवलय में—

र^2 = ४ क य

$\therefore$ य = $\frac{\text{र}^2}{\text{४ क}}$ = $\frac{\text{४ क}^2}{\text{त}^2}$ × $\frac{\text{१}}{\text{४ क}}$

$$= \frac{क}{त^२}$$

अतः $य = \frac{क}{त^२}$ और $र = \frac{२ क}{त}$

∴ त के प्रत्येक मानके लिये बिन्दु $\left(\frac{क}{त^२}, \frac{२ क}{त}\right)$ सदा परवलय पर स्थिर रहेगा। त उस कोणका स्पर्श है जो किसी बिन्दु परकी स्पर्शरेखा अक्षसे बनाती है। इस बिन्दुपरकी स्पर्शरेखाका समीकरण—

$$र = तय + \frac{क}{त}$$

है।

सूक्त १०७ के समीकरण (३) में याके स्थान पर $\frac{क}{त^२}$ और रा के स्थानमें $\frac{२ क}{त}$ उपयुक्त करनेमें अवलम्बका समीकरण यह निकल आवेगा—

$$र - \frac{२ क}{त} = \frac{-\frac{२ क}{त}}{२ क}\left(य - \frac{क}{त^२}\right)$$

$$∴ तर + य = २ क + \frac{क}{त^२}$$

१६०—य और र के उपर्युक्त मानोंका उपयोग बहुधा लाभकर होता है। य और र के ये मान भिन्नों में हैं। अतः इनको इस रूपमें रखना अधिक सरल प्रतीत होगा। $त^२$ के स्थानमें $\frac{१}{ट^२}$ रखनेसे

$$य = \frac{क}{त^२} = क ट^२$$

$$र = \frac{२ क}{त} = २ क ट$$

इनका उपयोग बहुतसे प्रश्नोंके सरल करनेमें सहायता देगा।

(१) बिन्दु ($क ट^२$, २ कट) पर स्पर्श रेखाका समीकरण

$$र = त य + \frac{क}{त^२}$$

इस रूपमें अब परिणत हो जायगा —

$$टर = य + क ट^२$$

(२) बिन्दु ($कट^२$, २ कट) परके अवलम्ब का समीकरण—

$$त र + य = २ क + \frac{क}{त^२}$$

निम्न रूप धारण कर लेगा—

$$र + ट य = २ क ट + कट^३$$

(३) दो बिन्दु ($क ट_१^२$, २ क $ट_१$) और ($कट_२^२$, २ $कट_२$) को संयुक्त करने वाली रेखाका समीकरण यह होगा :—

$$र (ट_१ + ट_२) = २ य + २ क ट_१ ट_२$$

इन बिन्दुओं परकी स्पर्श रेखाओंके समीकरण ये हैं—

$$ट_१ र = य + कट_१^२$$
$$और \quad ट_२ र = य + क ट_२^२$$

अतः इन दोनों स्पर्शरेखाओंका अन्तरखण्ड बिन्दु यह होगा :—

$$[कट_१ ट_२, क (ट_१ + ट_२)]$$

इसी प्रकार अन्य परिणाम भी परिवर्तित किये जा सकते हैं।

१६१—सिद्ध करो कि परवलय पर स्थित तीन बिन्दुओं को संयुक्त करनेसे जो त्रिकोण बनता है उसका क्षेत्रफल उस त्रिकोणके क्षेत्रफलका दुगुना होता है जो उन बिन्दुओं परकी स्पर्श रेखाओं द्वारा बनता है।

कल्पना करो कि परवलय पर स्थित तीन बिन्दुओंके युग्मांक ये हैं—

($क ट_१^२$, २ क $ट_१$), ($क ट_२^२$, २ $कट_२$) और ($क ट_३^२$, २ $कट_३$)

सूक्त २४ के अनुसार इन बिन्दुओंको संयुक्त करके बनने वाले त्रिकोणका क्षेत्रफल—

$$= \frac{१}{२} [क ट_{१}^{२} (२ क ट_{२} - २ क ट_{३}) + क ट_{२}^{२} (२ क ट_{३} - २ क ट_{१}) + क ट_{३}^{२} (२ क ट_{१} - २ क ट_{२})]$$

$$= क^{२} (ट_{२} - ट_{३})(ट_{३} - ट_{१})(ट_{१} - ट_{२}) \cdots (१)$$

इन तीन बिन्दुओं परकी स्पर्श रेखाओंके अन्तर-खण्डोंके युग्मांक गत सूक्त १६० के परिणाम (३) के अनुसार ये हैं :—

$$[क ट_{२} ट_{३}, क (ट_{२} + ट_{३})];$$
$$[क ट_{३} ट_{१}, क (ट_{१} + ट_{३})];$$
$$[क ट_{१} ट_{२}, क (ट_{१} + ट_{२})]$$

इन बिन्दुओंको संयुक्त करने वाले त्रिकोणका क्षेत्र फल—

$$= \frac{१}{२} [क ट_{२} ट_{३} (क ट_{३} - क ट_{२}) + क ट_{३} ट_{१} (क ट_{१} - क ट_{३}) + क ट_{१} ट_{२} (क ट_{२} - क ट_{१})]$$

$$= \frac{१}{२} क^{२} (ट_{२} - ट_{३}) (ट_{३} - ट_{१}) (ट_{१} - ट_{२}) \cdots\cdots\cdots (२)$$

क्षेत्रफल (१) स्पष्टतः क्षेत्रफल (२) से दुगुना है।

१६२—अभ्यास—सिद्ध करो कि उस त्रिकोणके शीर्षोंसे होकर जाने वाला वृत्त, जो परवलयकी किन्हीं तीन स्पर्श-रेखाओं द्वारा बनता है, नाभिसे होकर जाता है।

कल्पना करो कि प, फ और ब बिन्दुओंसे स्पर्शरेखायें खींची गई हैं और इन बिन्दुओंके युग्मांक ये हैं—

$$(क ट_{१}^{२}, २ क ट_{१}), (क ट_{२}^{२}, २ क ट_{२}), (क ट_{३}^{२}, २ क ट_{३})$$

सूक्त १६० के अनुसार दो दो स्पर्श रेखायें निम्न तीन बिन्दुओं पर कटती हैं—

$$[क ट_{२} ट_{३}, क (ट_{२} + ट_{३})], [क ट_{३} ट_{१}, क (ट_{३} + ट_{१})], [क ट_{१} ट_{२}, क (ट_{१} + ट_{२})]$$

मान लो कि वृत्तका समीकरण यह है :—

$$य^{२} + र^{२} + २ छ य + २ च र + ग = ० \cdots (१)$$

यह वृत्त उपर्युक्त तीनों बिन्दुओंसे होकर जाता है अतः—

$$क^{२} ट_{२}^{२} ट_{३}^{२} + क^{२} (ट_{२} + ट_{३})^{२} + २ छ क ट_{२} ट_{३} + २ च क (ट_{२} + ट_{३}) + ग = ० \cdots\cdots\cdots (२)$$

$$क^{२} ट_{३}^{२} ट_{१}^{२} + क^{२} (ट_{३} + ट_{१})^{२} + २ छ क ट_{३} ट_{१} + २ च क (ट_{३} + ट_{१}) + ग = ० \cdots (३)$$

$$क^{२} ट_{१}^{२} ट_{२}^{२} + क^{२} (ट_{१} + ट_{२})^{२} + २ छ क ट_{२} ट_{१} + २ च क (ट_{१} + ट_{२}) + ग = ० \cdots\cdots\cdots (४)$$

समीकरण (३) को (२) में घटाने और $क (ट_{२} - ट_{१}^{२})$ से भाग देने पर—

$$क [ट_{३}^{२} (ट_{१} + ट_{२}) + ट_{१} + ट_{२} + २ ट_{३}] + २ छ ट_{३} + २ च = ०$$

इसी प्रकार समीकरण (३) और (४) से—

$$क [ट_{१}^{२} (ट_{२} + ट_{३}) + ट_{२} + ट_{३} + २ ट_{१}] + २ छ ट_{१} + २ च = ०$$

इन दो समीकरणोंमें से—

$$२ छ = - क (१ + ट_{२} ट_{३} + ट_{३} ट_{१} + ट_{१} ट_{२})$$

और

$$२ च = - क (ट_{१} + ट_{२} + ट_{३} - ट_{१} ट_{२} ट_{३})$$

इन मानोंको समीकरण (२) में उपयुक्त करने से—

$$ग = क^{२} (ट_{२} ट_{३} + ट_{३} ट_{१} + ट_{१} ट_{२})$$

∴ वृत्तका समीकरण यह हुआ—

$$य^{२} + र^{२} - क य (१ + ट_{२} ट_{३} + ट_{३} ट_{१} + ट_{१} ट_{२}) - क र (ट_{१} + ट_{२} + ट_{३} - ट_{१} ट_{२} ट_{३}) + क^{२} (ट_{२} ट_{३} + ट_{३} ट_{१} + ट_{१} ट_{२}) = ०$$

यह स्पष्ट है कि यह वृत्त (क, ०) बिन्दु अर्थात् नाभिसे होकर आता है।

१६३—सिद्ध करना कि परवलय की किन्हीं तीन स्पर्श रेखाओं द्वारा बनाये हुए त्रिकोणका ऋजुकेन्द्र[*] नियत रेखा पर होता है।

---

[*] ऋजुकेन्द्र वह बिन्दु है जहाँ पर त्रिकोणमें शीर्षसे सामने वाली भुजा पर खींचे गये लम्ब परस्परमें मिलते हैं।

निम्न स्पर्श रेखायें त्रिकोणकी भुजायें हैं :—

$$र = ताय + \frac{क}{ता} \quad \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$र = तिय + \frac{क}{ति} \quad \cdots\cdots\cdots (२)$$

और $$र = तीय + \frac{क}{ती} \quad \cdots\cdots\cdots (३)$$

(२) और (३) भुजाके अन्तरखण्ड बिन्दुके युग्मांक ये हैं—

$$\left(\frac{क}{ती\ ति}, \frac{क}{ति} + \frac{क}{ती}\right)$$

इस बिन्दुसे पहली भुजा परके लम्बका समीकरण यह होगा :—

$$र - \frac{क}{ति} - \frac{क}{ती} = -\frac{१}{ता}\left(य - \frac{क}{ति\ ती}\right)$$

यह रेखा नियतरेखा को जिसका समीकरण य = −क है, उस बिन्दु पर काटेगी जिसकी कोटि

$$क\left(\frac{१}{ता} + \frac{१}{ति} + \frac{१}{ती} + \frac{१}{ताततिती}\right)$$

इस प्रकार लम्ब भी नियत रेखाको इसी बिन्दु पर काटेंगे, अतः त्रिकोण का ऋजुकेन्द्र नियतरेखा पर है।

१६४—उन दो अवलम्बों के अन्तरखण्ड बिन्दुका बिन्दुपथ निकालना जो परस्परमें लम्बरूप हों।

परवलय $र^2 = ४ क य$ पर किसी अवलम्बका समीकरण यह है :—

$$र = त य - २ क त - क त^3 \cdots\cdots\cdots (१)$$

(सूक्त १४३ के उपसिद्धान्तके अनुसार)

यदि य और र ज्ञात हों तो समीकरण (१) अवलम्बों की दिशाओं का सूचक है।

कल्पना करो कि इस समीकरणके मूल $त_1$, $त_2$ और $त_3$ हैं अतः सूक्त ३ के अनुसार

$$त_1 + त_2 + त_3 = ० \cdots\cdots (२)$$

$$त_1 त_2 + त_2 त_3 + त_3 त_1 = \frac{२ क - य}{क} \cdots (३)$$

और $$त_1 त_2 त_3 = -\frac{र}{क} \cdots\cdots\cdots (४)$$

यदि दो अवलम्ब जो $त_1$ और $त_2$ से सम्बन्धित हैं, परस्परमें लम्बरूप हों तो

$$त_1 त_2 = -१ \cdots\cdots (५)$$

समीकरण (२), (३), (४) और (५) मेंसे $त_1$, $त_2$ और $त_3$ का निराकरण करनेसे बिन्दुपथ यह निकल आवेगा—

$$र^2 = क (य - ३ क)$$

१६५—सिद्ध करना कि सामान्यतः किसी बिन्दुसे परवलय पर तीन अवलम्ब खींचे जा सकते हैं और इन तीन अवलम्बोंके पदों की कोटि का बीजयोग शून्य होगा।

सूक्त १४३ के उपसिद्धान्तके अनुसार सरलरेखा

चित्र ५६

$$र = त य - २ क त - क त^3 \cdots\cdots (१)$$
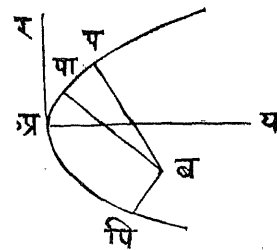
बिन्दु $(क त^2, -२ क त) \cdots\cdots (२)$

पर अवलम्ब है।

यदि यह अवलम्ब ब बिन्दु (च, छ) से होकर जाता है तो

$$छ = त च - २ क त - क त^3$$

$$\therefore क त^3 + (२ क - च)\ त + छ = ० \cdots\cdots (३)$$

यह समीकरण तृतीय घात का है अतः इसके तीन मूल होंगे चाहें वे वास्तविक हों या काल्पनिक और प्रत्येक द्वारा सूचित अवलम्ब ब से हो कर जावेगा।

यदि $त_1$, $त_2$ और $त_3$ इस समीकरणके मूल हों तो सूक्त ३ के अनुसार

$$त_1+त_2+त_3=0$$

यदि इन अवलम्बोंके पदों की कोटियां $र_1$, $र_2$, और $र_3$ हों तो (२) से

$$र_1+र_2+र_3=-2 क (त_1+त_2+त_3)$$

इन अवलम्बों का वास्तविक तथा काल्पनिक होना ब की स्थिति पर निर्भर है।

१६६—परवलय का सामान्यतम समीकरण निकालना—

सूक्त १३४ में हमने परवलय का सबसे सरल समीकरण निकाला था। अब हम मूल बिन्दु और अक्षोंको सामान्यरूपमें परिणत करते हैं। कल्पना करो कि नवीन मूल बिन्दुके युग्मांक (च, छ) हैं और नवीन य-अक्ष पूर्व अक्षके साथ $थ^\circ$ कोण बनाता है, और इन नवीन अक्षोंके बीचमें $ला^\circ$ कोण है।

अतः सूक्त ९२ के अनुसार हमें य और र के स्थान में

$$य \text{ कोज्या } थ+र \text{ कोज्या } (ला+थ)+च$$

और

$$य \text{ ज्या } थ+र \text{ ज्या } (ला+थ)+छ$$

उपयुक्त करने होंगे, अतः परवलय का समीकरण $र^2=4 क य$ इस रूपमें परिवर्तित हो जायगा—

$$[य \text{ ज्या } थ+र \text{ ज्या } (ला+थ)+छ]^2 =4 क [य \text{ कोज्या } थ+ र \text{ कोज्या } (ला+थ)+च]$$

अर्थात्

$$[य \text{ ज्या } थ+र \text{ ज्या } (ला+थ)]^2 +2 य (छ \text{ ज्या } थ-2 क \text{ कोज्या } थ)]$$

$$+2 र [छ \text{ ज्या } (ला+थ)-2 क \text{ कोज्या } (ला+थ)]+छ^2-4 क च=0 \cdots\cdots (1)$$

यह परवलय का सामान्यतम समीकरण है। इसमें द्वितीय घातके पद सदा पूर्ण वर्ग बनाते हैं। समीकरण (१) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

$$(का य+खा र)^2+2छा य+2 चा र+गा =0 \cdots\cdots (2)$$

१६७—किन्हीं दो स्पर्श रेखाओं को अक्ष मान कर परवलय का समीकरण निकालना जब कि स्पर्श-बिन्दु मूलबिन्दु से क और ख दूरी पर हों।

गत सूक्तके अनुसार किसी परवलय का सामान्यतम समीकरण यह है:—

$$(का य+खा र)^2+2 छाय 2 चार+ गा=0 \cdots\cdots (1)$$

यह परवलय य—अक्षासे जहां पर मिलता है उसका भुज निम्न समीकरणसे सूचित होता है:—

$$का^2 य^2+2छा य+गा=0 \cdots\cdots (2)$$

यदि परवलय य-अक्षको मूल बिन्दुसे क दूरी पर मिले तो यह समीकरण निम्न समीकरणके तुल्य समझा जा सकता है:—

$$का^2 (य-क)^2=0 \cdots\cdots (3)$$

समीकरण (२) और (३) की तुलना करने पर

$$\left.\begin{array}{l} छा=-क का^2 \\ गा=क^2 का^2 \end{array}\right\} \cdots\cdots (4)$$

इसी प्रकार यदि परवलय र-अक्षको मूलबिन्दु से ख-दूरी पर काटे तो

$$\left.\begin{array}{l} चा=-ख खा^2 \\ गा=ख^2 खा^2 \end{array}\right\} \cdots\cdots (5)$$

समीकरण (४) और (५) से

$$गा=क^2 का^2=ख^2 खा^2$$

$$\therefore खा=\pm\frac{क}{ख}का \cdots\cdots (6)$$

ऋणात्मक संकेत लेने से—

$$\text{खा} = -\frac{\text{क}}{\text{ख}}\text{का},\ \text{छा} = -\text{क का}^2$$

$$\text{चा} = -\frac{\text{क}^2\ \text{का}^2}{\text{ख}} \text{ और गा} = \text{क}^2\ \text{का}^2$$

इन मानोंको समीकरण (१) में उपयुक्त करने से पच्छित समीकरण यह होगा—

$$\left(\text{का य} - \frac{\text{क}}{\text{ख}}\text{का र}\right)^2 - 2\ \text{क का}^2\ \text{य} - 2\ \frac{\text{क}^2\ \text{का}^2}{\text{ख}}\text{र} + \text{क}^2\ \text{का}^2 = 0$$

$$\therefore \left(\text{य} - \frac{\text{क}}{\text{ख}}\text{र}\right)^2 - 2\ \text{क य} - 2\frac{\text{क}^2}{\text{ख}}\text{र} + \text{क}^2 = 0$$

क² से भाग देने पर—

$$\left(\frac{\text{य}}{\text{क}} - \frac{\text{र}}{\text{ख}}\right)^2 - 2\frac{\text{य}}{\text{क}} - \frac{2\ \text{र}}{\text{ख}} + 1 = 0 \quad \cdots\cdots (७)$$

इस समीकरण को इस प्रकार भी लिख सकते हैं :—

$$\left(\frac{\text{य}}{\text{क}} + \frac{\text{र}}{\text{ख}}\right)^2 - 2\left(\frac{\text{य}}{\text{क}} + \frac{\text{र}}{\text{ख}}\right) + 1 = \frac{4\ \text{य र}}{\text{क ख}}$$

$$\therefore \frac{\text{य}}{\text{क}} + \frac{\text{र}}{\text{ख}} - 1 = \pm 2\sqrt{\frac{\text{य र}}{\text{क ख}}}$$

$$\therefore \left(\sqrt{\frac{\text{य}}{\text{क}}} \mp \sqrt{\frac{\text{र}}{\text{ख}}}\right) = 1$$

$$\therefore \sqrt{\frac{\text{य}}{\text{क}}} + \sqrt{\frac{\text{र}}{\text{ख}}} = 1 \quad \cdots\cdots (८)$$

यह परवलय का अन्तिम ऐच्छित समीकरण है।

१६८—परवलय $\sqrt{\frac{\text{य}}{\text{क}}} + \sqrt{\frac{\text{र}}{\text{ख}}} = 1$ के किसी बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्श रेखा का समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि (या, रा) बिन्दुके निकट कोई बिन्दु (यि, रि) भी वक्र पर स्थित है। इन दोनों बिन्दुओं को संयुक्त करने वाली रेखा का समीकरण यह होगा—

$$\text{र} - \text{रा} = \frac{\text{रि} - \text{रा}}{\text{यि} - \text{या}}(\text{य} - \text{या}) \quad \cdots\cdots (१)$$

परन्तु ये दोनों बिन्दु वक्र पर भी स्थित हैं, अतः

$$\left.\begin{aligned} \sqrt{\frac{\text{या}}{\text{क}}} + \sqrt{\frac{\text{रा}}{\text{ख}}} = 1 \\ \sqrt{\frac{\text{यि}}{\text{क}}} + \sqrt{\frac{\text{रि}}{\text{ख}}} = 1 \end{aligned}\right\} \cdots\cdots (२)$$

$$\therefore \frac{\sqrt{\text{या}}}{\sqrt{\text{क}}} + \frac{\sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{ख}}} = \frac{\sqrt{\text{यि}}}{\sqrt{\text{क}}} + \frac{\sqrt{\text{रि}}}{\sqrt{\text{ख}}}$$

$$\therefore \frac{\sqrt{\text{यि}} - \sqrt{\text{या}}}{\sqrt{\text{क}}} = -\frac{\sqrt{\text{रि}} - \sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{ख}}}$$

$$\therefore \frac{\sqrt{\text{रि}} - \sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{यि}} - \sqrt{\text{या}}} = -\frac{\sqrt{\text{ख}}}{\sqrt{\text{क}}} \quad \cdots\cdots (३)$$

समीकरण (१) में इस मान का उपयोग करने से—

$$\text{र} - \text{रा} = \frac{\sqrt{\text{रि}} - \sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{यि}} - \sqrt{\text{या}}} \cdot \frac{\sqrt{\text{रि}} + \sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{यि}} + \sqrt{\text{या}}}(\text{य} - \text{या})$$

$$= -\frac{\sqrt{\text{ख}}}{\sqrt{\text{क}}} \cdot \frac{\sqrt{\text{रि}} + \sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{यि}} + \sqrt{\text{या}}}(\text{य} - \text{या}) \quad \cdots\cdots (४)$$

यदि (या, रा) और (यि, रि) बिन्दु बहुत ही निकट हों तो या = यि और रा = रि, अतः स्पर्श-रेखाके लिये समीकरण (४) निम्न रूप धारण कर लेगा—

$$\text{र} - \text{रा} = -\frac{\sqrt{\text{ख}}\sqrt{\text{रा}}}{\sqrt{\text{क}}\sqrt{\text{या}}}(\text{य} - \text{या})$$

अर्थात् $\frac{य}{\sqrt{(क\ या)}} + \frac{र}{\sqrt{(ख\ रा)}} =$

$$\sqrt{\frac{या}{क}} + \sqrt{\frac{रा}{ख}} = १ \cdots\cdots (५)$$

उपसिद्धान्त—उस अवस्थाको निकालना जब कि सरल रेखा $\frac{य}{च} + \frac{र}{छ} = १$ परवलयकी स्पर्श रेखा हो—

यह रेखा समीकरण (५) द्वारा सूचित रेखा होगी यदि—

$च = \sqrt{(क\ या)},\ छ = \sqrt{(ख\ रा)}$

अर्थात् $\frac{च}{क} = \sqrt{\frac{या}{क}}$ और $\frac{छ}{ख} = \sqrt{\frac{रा}{ख}}$

अतः $\frac{च}{क} + \frac{छ}{ख} = १$

यही ऐच्छित अवस्था है।

१६९—परवलय $\sqrt{\frac{य}{क}} + \sqrt{\frac{र}{ख}} = १$ की नाभि निकालना—

कल्पना करो कि परवलय की नाभि स है और मूल बिन्दु म है। प और फ दो स्पर्श बिन्दु हैं। म फ और म प स्पर्श रेखायें अक्ष हैं।
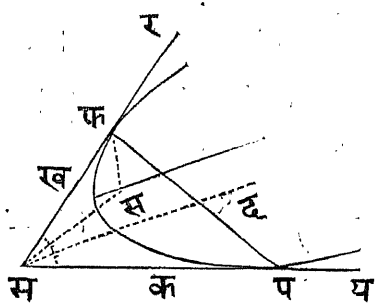
त्रिकोण म स प और म स फ समान हैं अतः

$\angle$ स म प $= \angle$ स फ म

अतः यदि कोई वृत्त स, म और फ को छूता हुआ खींचा जाय तो प म रेखा उस वृत्तकी स्पर्श रेखा होगी। अतः बिन्दु स उस बिन्दु पर स्थित है जो मूल बिन्दु, म, से और फ बिन्दु (०, ख) से होकर जाता है, और म प रेखा को छूता है।

वृत्त का समीकरण यह है :—

$य^२ + २\ यर\ कोज्या\ ल + र^२ = ख\ र \cdots\cdots (१)$

इसी प्रकार क्योंकि $\angle$ स म फ $= \angle$ स प म

अतः स, म, प को घेरने वाला वृत्त म फ रेखा का स्पर्श करेगा, इसलिये स निम्न वृत्त पर स्थित है :—

$य^२ + २\ यर\ कोज्या\ ल + र^२ = क\ य \cdots (२)$

समीकरण (१) और (२) के अन्तरखंड निकाल कर नाभिके युग्मांक निकाले जा सकते हैं। इन समीकरणोंमें निराकरण करनेसे ये युग्मांक उपलब्ध होंगे :—

$$\left(\frac{क\ ख^२}{क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२},\ \frac{क^२\ ख}{क^२ + २क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२} \right)$$

१७०—अक्ष का समीकरण निकालना—

गत सूक्तके चित्रमें यदि प फ का मध्य बिन्दु द हो तो सूक्त १५४ के अनुसार यह अक्षके समानान्तर होगा। पर द के युग्मांक $\left(\frac{क}{२} + \frac{ख}{२}\right)$ हैं।

अतः स से म द के समानान्तर खींची गई रेखा अक्ष होगी। इसका समीकरण यह है—

$$र - \frac{क^२\ ख}{क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२}$$

$$= \frac{ख}{क}\left(य - \frac{क\ ख^२}{क^२ + २कखकोज्याल + ख^२} \right)$$

अर्थात् कर $-$ ख य $=$

$$\frac{क\ ख\ (क^२ - ख^२)}{क^२ + २\ क\ च\ कोज्या\ ल + ख^२}$$

१७१—नियत रेखा का समीकरण निकालना—

यदि सरल रेखा म प और इसके लम्बरूप किसी स्पर्श रेखा का अन्तरखण्ड बिन्दु ज्ञात हो जाय तो सूक्त १४६ (३) के अनुसार यह बिन्दु नियत रेखा पर स्थित होगा।

इसी प्रकार म फ पर भी एक ऐसा बिन्दु उपलब्ध हो सकता है जो नियत रेखा पर स्थित हो।

म य पर लम्बरूप कोई रेखा जो (च, ०) बिन्दुसे हो कर जाती हो, निम्न समीकरण द्वारा सूचित की जा सकती है—

$$र = त\,(य - च)$$

इसमें सूक्त ७८ के अनुसार

$$१ + त \text{ कोज्या } ल = ०$$

$$\therefore त = -\frac{१}{\text{कोज्या}ल}$$

अतः इस लम्ब रेखा का समीकरण यह हुआ—

$$र = -\frac{१}{\text{कोज्या}ल}(य - च)$$

$$\therefore य + र \text{ कोज्या}ल = च \cdots\cdots (१)$$

यह सरल रेखा परवलय का स्पर्श करेगी यदि सूक्त १६८ उपसिद्धान्तके अनुसार

$$\frac{च}{क} + \frac{च}{ख \text{ कोज्या } ल} = १$$

$$\text{अर्थात् यदि } च = \frac{क\,ख \text{ कोज्या } ल}{क + ख \text{ कोज्या } ल}$$

अतः बिन्दु $\left(\frac{क\,ख \text{ कोज्या } ल}{क + ख \text{ कोज्या } ल}, ०\right)$ नियत रेखा पर स्थित है।

इसी प्रकार बिन्दु $\left(\frac{क\,ख \text{ कोज्या } ल}{ख + क \text{ कोज्या } ल}\right)$ भी नियत रेखा पर स्थित है। इन दोनों बिन्दुओं को संयुक्त करनेसे नियत रेखा का समीकरण प्राप्त हो सकता है।

अतः नियत रेखाका समीकरण यह हुआ—

$$य\,(क + ख \text{ कोज्या } ल) + र\,(ख + क \text{ कोज्या } ल) = क\,ख \text{ कोज्या } ल \cdots\cdots (२)$$

इस नियत रेखासे नाभि की लम्ब-दूरी का दुगुना ऊर्ध्वभुज कहलाता है। नाभिके युग्मांक निम्न हैं—

$$\left(\frac{क\,ख^२}{क^२ + २\,क\,ख \text{ कोज्या } ल + ख^२},\ \frac{क^२\,ख}{क^२ + २\,क\,ख \text{ कोज्या } ल + ख^२}\right)$$

अतः हिसाब लगा कर यह दिखाया जा सकता है कि सूक्त ७६ के अनुसार ऊर्ध्वभुज

$$= \frac{४\,क^२\,ख^२ \text{ ज्या}^२ ल}{(क^२ + २\,क\,ख \text{ कोज्या } ल + ख^२)^{\frac{३}{२}}}$$

१७२—शीर्षके युग्मांक और शीर्ष पर की स्पर्श रेखा का समीकरण निकालना—

अक्ष और वक्रका अन्तर खंड बिन्दु ही वक्रका शीर्ष कहा जा सकता है। सूक्त १७० के अनुसार अक्षका समीकरण यह है :—

$$\frac{र}{ख} - \frac{य}{क} = \frac{क^२ - ख^२}{क^२ + २\,क\,ख \text{ कोज्या } ल + ख^२} \cdots (१)$$

और सूक्त १६७ के समीकरण (७) के अनुसार वक्रका समीकरण यह है :—

$$\left(\frac{य}{क} - \frac{र}{ख}\right)^२ - \frac{२\,य}{क} - \frac{२\,र}{ख} + १ = ०$$

अर्थात्

$$\left(\frac{य}{क} - \frac{र}{ख} + १\right)^२ = \frac{४\,य}{क} \cdots\cdots\cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) से

$$य = \frac{क}{४}\left[१ - \frac{क^२ - ख^२}{क^२ + २ कखकोज्याल + ख^२}\right]^२$$

$$= \frac{क\ ख^२\ (ख + क\ कोज्या\ ल)^२}{(क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२)}$$

इसी प्रकार

$$र = \frac{क^२\ ख\ (क + ख\ कोज्या\ ल)^२}{(क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२)^२}$$

अतः ये ही शीर्ष के युग्मांक हैं।

शीर्ष पर की स्पर्श रेखा नियत रेखाके समानान्तर है अतः इसका समीकर यह होगा—

$$(क + ख\ कोज्या\ ल)\left[य - \frac{क\ ख^२\ (ख + क\ कोज्या\ ल)^२}{(क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२)^२}\right]$$
$$+ (ख + क\ कोज्या\ ल)\left[र - \frac{क^२\ ख\ (क + ख\ कोज्या\ ल)^२}{(क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२)^२}\right] = ०$$

अर्थात्

$$\frac{य}{ख + क\ कोज्या\ ल} + \frac{र}{क + ख\ कोज्या\ ल} = \frac{क\ ख}{क^२ + २\ क\ ख\ कोज्या\ ल + ख^२}$$

उदाहरणमाला ११

[१]

(१) उस परवलय का क्या समीकरण होगा जिसकी नाभि (३, −४) और नियत रेखा ६ य − ७ र + ५ = ० है। [उत्तर $(७\ य + ६\ र)^२ - ५७०\ य + ७१० र + २१०० = ०$]

(२) निम्न परवलयों के शीर्षबिन्दु, अक्ष, ऊर्ध्वभुज और नाभि निकालो :—

(१) $य^२ + २\ र = ८\ य - ७$ [उत्तर र = य; य + र = ४ क; र + य = ०, य − र = ४ क]

(२) $य^२ - २\ क\ य२ \quad क\ र = ०$

[उत्तर ४ र = य + २८; (२८, १४)]

(३) $र^२ = ४\ क\ य$ परवलय को $र = २\ य - क$ रेखा किन बिन्दुओं पर काटती है?

[उत्तर $(क, २\ क), \left(\frac{क}{६}, -\frac{२}{३}क\right)$]

(४) एक सरल रेखा $य^२ + र^२ = २\ क^२$ और $र^२ = ८\ क\ य$ दोनों वक्रोंका स्पर्श करती है। सिद्ध करा कि इसका समीकरण $र = \pm (य + २\ क)$ है।

(५) सिद्ध करो कि 'त' का कोई भी मान क्यों न हो, रेखा $र = त\ (य + क) + \frac{क}{त}$ सदा $र^२ = ४\ क\ (य + क)$ परवलय का स्पर्श करेगी।

(६) किसी परवलयकी ऐसी दो स्पर्श रेखायों के अन्तरखण्ड बिन्दुका बिन्दुपथ निकालो जो परस्परमें लम्ब रूप हों।

[कल्पना करो कि दोनों स्पर्श रेखायोंके समीकरण निम्न हैं :—

$$र = त\ य + \frac{क}{त} \quad \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$र = ता\ य + \frac{क}{ता} \quad \cdots\cdots\cdots (२)$$

ये दोनों रेखायें परस्परमें लम्ब रूप हैं, अतः त ता = −१

इसलिये समीकरण (२) को इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$र = -\frac{१}{त} य - क त \quad \cdots (३)$$

समीकरण (१) और (३) का अन्तरखण्ड बिन्दु निकालने के लिये (१) मेंसे (३) घटाने पर

$$० = य \left(त + \frac{१}{त}\right) + \left(त + \frac{१}{त}\right)$$

$\therefore$ य + क = ०

अतः ऐच्छित बिन्दुपथ य + क = ० है।]

(७) यदि कोई वृत्त ऐसा खींचा जाय जो एक दिये हुए वृत्त और एक दी हुई सरल रेखाका सदा स्पर्श करे तो सिद्ध करो कि वृत्तके केन्द्रका बिन्दुपथ एक परवलय होगा।

[२]

(८) निम्न परवलयोंके दिये हुए बिन्दुओं पर की स्पर्शरेखायों और अवलम्बोंके समीकरण निकालो—

(१) बिन्दु (४, ६), परवलय $र^२ = ९ य$

[उत्तर ४ र + ३ य = १२; ४ य + ३ र = ३४

(२) परवलय $र^२ = १२ य$ के ऊर्ध्वभुजके सिरों पर

[उत्तर र − य = ३; र + य = ९; य + र + ३ = ०; य − र = ९

(९) $र^२ = ४ क य$ परवलयकी कोई स्पर्श-रेखा अक्षसे ६०° का कोण बनाती है, तो बताओ कि इस रेखा और परवलयका स्पर्शबिन्दु क्या है?

[उत्तर $\frac{क}{३}, \frac{२ क}{\sqrt{३}}$

(१०) $र^२ = ४ क य$ और $य^२ = ४ ख र$ परवलयोंकी समान स्पर्शरेखायोंके समीकरण निकालो:—

$$ख^{\frac{१}{३}} र + क^{\frac{१}{३}} य + क^{\frac{२}{३}} ख^{\frac{२}{३}} = ०$$

(११) उस बिन्दुसे जहाँ पर कि $र^२ = ४ क य$ परवलयका कोई भी अवलम्ब अक्षसे मिलता है, एक रेखा अवलम्बके लम्ब रूप खींची जाय तो यह सिद्ध करो कि यह रेखा सदा बराबरके ही दूसरे परवलयका स्पर्श करेगी।

[परवलयके अवलम्बका समीकरण यह है:—

$$र = त य - २ कत - कत^३$$

यह अक्षसे $(२ क + क त^२, ०)$ बिन्दु पर मिलता है।

इस बिन्दुसे अवलम्ब पर लम्बरूप रेखाका समीकरण निम्न होगा—

$$र = त_१ (य - २ क - कत^२)$$

जिसमें $तत_१ = -१$

$$अतः \quad र = त_१ \left(य - २ क - \frac{क}{त_१^२}\right)$$

$$अर्थात् \quad र = त_१ (य - २ क) - \frac{क}{त_१}$$

इस समीकरणसे स्पष्ट है कि यह रेखा निम्न परवलयका स्पर्श करेगी:—

$$र^२ = -४ क (य - २ क)$$

इस परवलयका शीर्ष बिन्दु (२ क, ०) है और जिसकी नतोदरता य—अक्षकी ऋण दिशाकी ओर है।]

(१२) सिद्ध करो कि दो परवलय जिनकी नाभियाँ एक ही हों पर जिनके अक्ष विपरीत दिशामें हों परस्पर लम्बरूप कटते हैं।

[३]

(१३) $र^२ = ४ क य$ परवलयकी ऐसी दो स्पर्श रेखाओंके अन्तरखंड बिन्दुका बिन्दुपथ निकालो जो एक दूसरेसे एक दिया हुआ कोण अ° बनाती हों।

[उत्तर $र^२ \parallel ४ क य - (क + य)^२ . स्पर्श^२ अ = ०$

(१४) सिद्ध करो कि $र^२ - ४ क य = ०$, अथवा $य^२ - ४ ख र = ०$ परवलयोंमेंसे किसीमें भी अनन्त संख्याके ऐसे त्रिकोण खींचे जा सकते हैं जिनकी भुजायें दूसरे परवलयका स्पर्श करें।

[कल्पना करो कि $र^२=४कय$ परवलय पर तीन बिन्दु $र_१$, $र_२$, $र_३$ इस प्रकारके हैं कि उनकी भुजायें $र_१$, $र_२$ और $र_१$, $र_३$ परवलय $य^२=४खर$ का स्पर्श करती हैं। तो हमें यह सिद्ध करना है कि $र_२$, $र_३$ भुजा भी इस परवलयका स्पर्श करेगी।

$र_१$ और $र_२$ को संयुक्त करने वाली रेखा निम्न होगी—

$$र(र_१+र_२)-४कय-र_१र_२=०$$

यह रेखा दूसरे परवलयका स्पर्श करती है अतः

$$(र_१+र_२)य^२-१६कखय-४खर_१र_२=०$$

के मूल बराबर होंगे—

$$\therefore र_१र_२(र_१+र_२)+१६क^२ख=० \ldots(१)$$

तथा इसी प्रकार

$$र_१र_३(र_१+र_३)+१६क^२ख=० \ldots(२)$$

इनको घटा कर

$र_१(र_२-र_३)$ से भाग देनेसे (जो शून्यके बराबर नहीं है)

$$र_१+र_२+र_३=० \cdots\cdots(३)$$

(१) और (३) में से $र_१$ का निराकरण करनेसे

$$र_२र_३(र_२+र_३)+१६क^२ख=०$$

जिससे स्पष्ट है कि $र_२$ और $र_३$ को संयुक्त करने वाली रेखा भी $य^२=४खर$ का स्पर्श करती है।]

स्वर्गीय पं० रामजीलाल शर्मा

यह सुन कर किसको दुःख न होगा कि श्री पं० रामजीलाल शर्माका ३० अगस्त १९३० को परलोकवास हो गया। आपका जन्म सं० १९३६ वि० में मेरठमें हुआ था। तदुपरान्त वैदिक यन्त्रालय अजमेर एवं इण्डियन प्रेस प्रयागमें कुछ काल सेवायें कीं। इस समय आप प्रयागमें हिन्दी प्रेसके स्वामी थे। आप विद्यार्थी और खिलौना के सफल सम्पादक रहे और हिन्दी साहित्य सम्मेलनके ५ वर्ष प्रधानमंत्री रहे। जिन व्यक्तियों का श्री शर्माजीसे संसर्ग रहा है, वे आपकी स्वभावशीलता और विचार-भावुकतासे परिचित ही हैं। शर्माजी उन व्यक्तियोंमेंसे थे जिनका सम्पूर्ण जीवन हिन्दी साहित्यकी सेवामें ही व्यतीत हुआ। आपने छोटे मोटे अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन किया। विद्यार्थियों की रुचिसे आप बहुत ही परिचित थे और यही कारण है कि आपका विद्यार्थी नामक पत्र विद्यार्थियोंमें और विशेष कर ग्रामीण विद्यार्थियोंमें भी अधिक प्रचार पाता रहा है। विद्यार्थी उस समयका पत्र है जब कि हिन्दीमें चमक दमक वाले भड़कीले पत्र थे ही नहीं। इसमें सभी विद्वानोंकी रचनायें और लेख जैसे श्री पद्मसिंहजी, शंकर जी, कर्णकवि, हरिऔधजी, चन्द्रशेखर शास्त्री, शङ्करराव जोशी आदिके बहुत पुराने समयसे निकलते आये हैं।

शर्माजीने अभी कुछ दिनोंसे बालकोपयोगी 'खिलौना' मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया था जिसकी भी हिन्दी संसारमें अच्छी ख्याति हो चली थी।

शर्माजी उन व्यक्तियोंमेंसे थे जो अत्यन्त अध्यवसाय शीलताके कारण ही जीवन उच्च बना सके। आपकी मृत्युसे हिन्दी क्षेत्रमें एक बहुत पुराने हितैषीकी कमी हो गई। आप प्रयागस्थ अनेक संस्थाओंके क्रियाशील कार्यकर्त्ता थे; अतः आपके असामयिक देहावसानसे प्रयागको तो बहुत ही क्षति पहुँची है। हमारी यह हार्दिक प्रार्थना है कि ईश्वर विगत आत्माको सद्गति और उनके कुटुम्ब एवं स्नेहियोंको धैर्य प्रदान करे।

समालोचना

मेरी ईरान यात्रा

सचित्र -ले० श्रीमहेशप्रसाद जी, आलिम फाज़िल, प्रकाशक,आलिम फाज़िल बुकडिपो, लक्का, बनारस सिटी। छपाई और कागज़ उत्तम पृ० सं० २६३, मूल्य १॥=)

श्रीमहेशप्रसाद जी को मुसलमानी संस्कृतिसे विशेष स्नेह है, और इसी स्नेहके प्रेरित होकर आपने गत वर्ष अप्रेल १६२६ में ईरान की ओर पैर बढ़ाया और १६ मई को बन्दर अब्बास पहुँच गये, और फिर एक सप्ताह बाद करमान में। करमानसे दुजदाब और फिर अफगानिस्तान की सीमाके समीप होते हुये कोइटा, बिलोचिस्तान पार करके भारत लौट आये। इस प्रकार आपने सम्पूर्ण ईरान की तो नहीं, पर पूर्व-दक्षिणी ईरान की यात्रा की। इस यात्रा का ही मनोरञ्जक वृत्तान्त आपने इस पुस्तकमें दिया है। जो कुछ आपने देखा सुना वह तो लिखा ही है, पर उसके अतिरिक्त ईरान का संक्षिप्त वृत्तान्त—वनस्पति, खनिज, निवासी, आयात-निर्यात काविवरण—और परिशिष्टोंमें प्राचीन पारसियों का उल्लेख, ईरान की संस्कृति पर ईसाइयत और अंग्रेजी भाषा का प्रभाव वहांके हिन्दू और मुसलमानोंके पारस्परिक सम्बध उनकी भाषा, शिक्षा त्योहारों आदि का भी रोचक समाचार लिखा है। सम्पूर्ण पुस्तक १० चित्रों से सम्पन्न है जिनमें एक ईरान का मान चित्र भी है। पुस्तक सरल और सरस भाषामें लिखी गई है हिन्दी की यात्रा-साहित्यिक पुस्तकोंमें इसे अच्छा स्थान मिलना चाहिये, और आशा है कि हिन्दी जगत् ने जिस प्रकार स्वा० सत्यदेव, स्वा० मंगालनन्दपुरी, या बाबू शिवप्रसाद गुप्त की यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों को अपनाया था, वह उसी प्रकार इसका भी सम्मान करेगा। विद्यार्थियों और यात्रासे प्रेम करने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

कल्याण मासिक पत्र का रामायणांक

सम्पादक—श्रीज्वाला प्रसाद कानोड़िया और श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार। प्रकाशक—गीता प्रेस गोरखपुर। पृष्ठ संख्या ५१२—मूल्य २॥=) इसी के साथ एक परिशिष्टांक भी प्राप्त हुआ है।

युगल सम्पादकों ने इस रामायणांक को बड़े ही परिश्रम और बड़ी सावधानीसे सम्पादन किया है। इसमें कुल २०६ विषयों पर लेख या कविताएँ हैं। कुल १५७ चित्र है जिनमें एक दर्जन रंगीन चित्र हैं। प्रायः सभीचित्र सुन्दर और मनोहरहैं। रामायण से सम्बन्ध रखने वाले चित्रों के अतिरिक्त अयोध्या, जनकपुर, शृङ्ग वेर, चित्रकूट, प्रयाग, नासिक रामेश्वर आदि के मन्दिरों के भी तथा गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन सम्बन्धी काशी के चित्र हैं इसमें सूर्यवंशावली भी छपी है।

इसमें बड़े बड़े भक्तों और रामायण प्रेमियों के अतिरिक्त प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित विद्वानों के भी लेख पढ़ने और मनन करने योग्य हैं। इसके पढ़ने से वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस का महत्व अच्छी तरह हृदय में अंकित हो जाता है। जो लोग गोस्वामी कृत रामायण के प्रेमी है उन्हें तो सौ काम छोड़ कर इस अंक को रखना चाहिए। क्योंकि इसमें अधिकतर लेख रामचरितमानससे संम्बन्ध रखते हैं। अनेक कवियों की कविताओं से भी यह अंक सुसज्जित है।

इस अंक में जिन सैकड़ों विद्वानों ने लेख लिखे है उनमें से अनेक विद्वानोंका नामोल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ—महात्मागांधी, पं० मदन-मोहन मालवीय, गोवर्द्धन पीठाधीश्वर श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, कांची मठाधीश्वर प्रति-वादि भयंकर श्री स्वामी अनन्ताचार्य जी महाराज, साधु टी० एल, वास्वनी, राव बहादुर श्रीचिन्तामण विनायक वैद्य, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा,महामहो पाध्याय पं० प्रमथनाथ जी तर्क भूषण,

साहित्य रत्न पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ पं० विजयानन्द जी त्रिपाठी, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री राजबहादुर लमगोडा, श्रीमंगलदेव शास्त्री एम. ए. डी. फिल, महेश प्रसाद जी मौलवी—फाजिल, श्री आई. जी. एस. तारापुरवाला, पी. एच. डी. बार ऐटला, साहित्याचार्य पं० श्री रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल, साहित्या चार्य पं० शालिग्राम जी शास्त्री इत्यादि नामों से ही समझ लीजिये कि यह अंक कितना उत्तम और दर्शनीय होगा। इसमें कुल २०६ विषयों पर लेख और कविताएँ हैं। कुछ विषयों का उल्लेख मात्र कर देता हूँ—वाल्मीकि रामायण की विशेषता, श्री सीता के चरित्र से आदर्श शिक्षा, हनुमानजीके चरित्र से शिक्षा, हिन्दू समाज पर रामपूजा का प्रभाव, रामचरितमानस की विशेषताएं, ज्ञानदीप का स्पष्टीकरण, रावण की लंका कहाँ थी, बालिवध का औचित्य, रामायणके राक्षस, रामायणके वानर-ऋक्ष, वाल्मीकि रामायणसे अवतारवाद की सिद्धि, फारसी में रामायण, मराठी में रामायण, बँगलामें रामायण, रामायण और राजनीति, रामायण और श्राद्ध तर्पण, रामायण में आदर्श भ्रातृ प्रेम, रामायण कालीन भौगोलिक दिग्दर्शन, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, भगवान श्रीराम, गोस्वामी जी की निष्काम भक्ति, रामायण कालीन शपथ विधि आदि। इन विषयों से पाठक अनुमान करलें कि यह रामायणांक रामभक्तों और रामचरित मानस के प्रेमियों के लिए कितना सुन्दर मनोहर, सुखद और उपयोगी है।

—कृष्णानन्द

गंगा

मासिक पत्रिका, सम्पादक श्रीरामगोविन्द त्रिवेदी, श्री गौरीनाथ झा, तथा श्री शिवपूजन

सहाय जी। मिथिला प्रेस, कृष्णगढ़, सुलतान गंज (भागलपुर)। वार्षिक मूल्य ५) । पृष्ठ संख्या १००।

यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि बिहार प्रान्तसे गंगा नामक एक साहित्यिक पत्रिका उत्साही सम्पादकों की अध्यक्षता में निकलनी आरम्भ हो गई है। इसका पहला अंक हमारे पास समालोचनार्थ भेजा गया है। इसमें श्री रामदास जी गौड़, श्री अवध उपाध्याय तथा पं० लोचन प्रसाद पांडेय के लेख उल्लेखनीय हैं। गुप्तजी, हरि औध जी तथा प्रसादजीकी कविताएँ भी मनोरम हैं। सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी गम्भीर एवं मननशील हैं। चित्रमय लेखभी कई हैं। हमें यह पूर्णाशा है कि बिहार के साहित्य सेवी इस पत्रिका को प्रथम श्रेणी की बनाने में कोई कसर बाकी न रक्खेंगे। यही नहीं, इस पत्रिका के द्वारा युवक-मंडली को भी समुचित प्रोत्साहन मिलेगा।

इस प्रथम अंक में गंगा के सम्पादकों और संरक्षकों की आत्मकहानी कुछ अवश्यकता से अधिक है। सम्पादक-त्रयीसे हमारा निवेदन है कि आगे से वे इस बात का विशेष ध्यान रक्खें कि लेखों का संकलन लेखों के महत्व की दृष्टि से हो न कि लब्धप्रतिष्ठलेखकों की दृष्टिसे। बिहार प्रान्त के अनेक युवकों को उसमें प्रोत्साहन मिलना चाहिये। यह हमारा विश्वास है कि आधुनिक युवक पूर्व वर्ती वयो वृद्धों की अपेक्षा अधिक उत्तम लेख लिख सकते हैं क्यों कि उनमें जगता हुआ उत्साह होता है। हमारी यही शुभेच्छा है कि इस जीती जागती पत्रिका द्वारा बिहारी साहित्यक युवकों में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न होजाय। इस पत्रिकाका भविष्य बहुत ही आशाजनक है। हम इसकी उत्तरोत्तर उन्नति के प्रार्थी हैं।

—सत्यप्रकाश

सूर्य-सिद्धान्त

(गतांक से आगे)

विज्ञानभाष्य—यहां बतलाया गया है किउत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके खमध्यमें ध्रुवतारे हैं जो निरक्षदेश की क्षितिज पर हैं। इससे यह अनुभव किया जा सकता है कि प्राचीन कालमें जब सूर्य सिद्धान्त कहा गया था तब दो ध्रुवतारे रहे होंगे। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे उत्तरी ध्रुवके खमध्यमें एक तारा है वैसे ही दक्षिणी ध्रुवके खमध्यमें भी एक तारा समझा गया होगा। परन्तु यह निश्चय है कि उत्तरी ध्रुवके खमध्य में इस समय जो तारा देख पड़ता है वह प्राचीन कालमें इस स्थान पर नहीं था क्यों कि अयन चलनके कारण इसका स्थान भी बदल रहा है (देखो पृष्ठ ३५४-३५६)। इस लिए यहां जिन ध्रुव तारोंका वर्णन है आकाशीय ध्रुवोंके स्थान हैं जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके खमध्यमें हैं। इनसे किसी तारेका सनातन सम्बन्ध नहीं है। जब अयन चलनके कारण कोई तारा इनके पास आजाता है तब वह भी प्रत्यक्षमें ध्रुव तारा कहलाने लगता है।

यह कई जगह बतलाया जा चुका है कि विषुवत् रेखा पर अक्षांश शून्य और लम्बाक्षांश ९०° तथा उत्तरी दक्षिणीध्रुवों पर अक्षांश और लम्बांश शून्य कैसे होता है (देखो पृष्ठ ८८,८९, ३७८,३७९ इत्यादि)।

श्लोक ४५ बड़े महत्वक है। इसमें बतलाया गया है कि जब सूर्य मेष राशिके आदिमें होता है तब देवताओंको पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब उत्तरी ध्रुव निवासियोंके लिए सूर्यका उदय होता है और जब वह तुला राशिके आदिमें होता है तब असुरोंको पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब दक्षिणी ध्रुव निवासियोंके लिए उसका उदय होता है। इससे प्रकट होता है कि मेष राशिका आदि स्थान उसे ही समझना चाहिए जहां क्रान्तिवृत्त और विषुवन्मण्डल का योग होता है अर्थात् और जहां पहुंचकर सूर्य उत्तर गोलमें हो जाता है। इसी स्थानको वसंत संपात बिन्दु कहते हैं।—इसी प्रकार तुला का आदि बिन्दु शरद सम्पात बिन्दु है जहां पहुंच कर सूर्य दक्षिण गोलमें हो जाता है। जब सूर्य मेषके आदिमें विषुवन्मंडल पर आता है तभी उत्तरी ध्रुव वालोंके लिए सूर्योदय होता है और असुरोंकी रात क्योंकि जब तक सूर्य उत्तर ध्रुव वालों को देख पड़ता है तब तक वह दक्षिण ध्रुववालोंके लिए अदृश्य रहता है और वहां रात रहती है। जिस समय सूर्य तुला राशिके आदिमें पहुंचता है उस समय उत्तरी ध्रुव पर सूर्यास्त और दक्षिणी ध्रुव पर सूर्योदय होता है इस समयसे ६ महीने तक सूर्य दक्षिण ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है और वहां ६ महीने का दिन होता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तथा विषुवत् रेखा पर यह विशेषताएं इसीलिए होती हैं कि ध्रुव विषुवत् रेखासे ९० अंशके अन्तर पर है (देखो पृष्ठ ९२, ९३)।

सूर्यकी किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं ?

अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः ।
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ॥४६॥

अनुवाद—जब सूर्य देवभागमें अर्थात् उत्तर गोल में रहता है तब देवताओंके बहुत निकट होनेके कारण ग्रीष्म ऋतुमें उसकी किरणें बड़ी तीव्र होती हैं और हेमन्त ऋतुमें दूर होनेके कारण मन्द होती हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकमें बतलाया गया है कि ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणें इस लिए तीव्र होती हैं कि सूर्य निकट होता है और हेमन्त ऋतुमें इस लिए मन्द होती हैं कि सूर्य दूर रहता है परन्तु यह ठीक नहीं है। आजकल यथार्थमें ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य पृथ्वीसे दूर होता है और हेमन्त ऋतुमें निकट जैसा कि उसके बिम्बोंके आकारसे जान पड़ता है (देखो पृष्ठ १२८-१२६)। यथार्थ कारण यह है कि ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य की किरणें लम्बरूपमें खड़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता अधिक होती है और हेमन्त ऋतुमें सूर्यके नीचे होनेके कारण किरणें टेढ़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता कम पड़ जाती है। यह बात प्रति दिन देखी जाती है। मध्याह्नमें सूर्य ऊँचा होता है इस लिए इसकी किरणें प्रायः खड़ी रहती हैं और गरमी भी बढ़ जाती है। परन्तु प्रातःकाल और सायं-काल इसकी किरणें बहुत तिरछी रहती हैं इसलिये उतनी गरमी नहीं रहती। यही दशा सारे भूपृष्ठ पर एक वर्षकी अवधिमें होती है। विषुवत्रेखाके आस पासके देशों में सूर्य साल भर तक प्रायः सिर पर देख पड़ता है इसलिये इसकी किरणें लम्बरूपसे खड़ी आती हैं और बड़ी तीव्र होती हैं परन्तु उत्तर दक्षिण ध्रुवों पर सूर्यकी किरणें बहुत तिरछी हो जाती हैं इसलिये वहां सदैव ठंडक रहती है। यह बात चित्र १२३ से स्पष्ट हो जायगी। इस चित्रमें दिखलाया गया है कि सूर्यसे आती हुई किरणें ग ख तल पर लम्ब हो कर गिरती हैं और वही किरणें क ख तल पर तिरछी हो जाती हैं। यह स्पष्ट है कि क ख तल ग ख तलसे बड़ा है क्योंकि यह समकोण त्रिभुज क ग ख का कर्ण है इसलिये जब वही किरणें अधिक स्थानमें फैल जाती हैं तब उनकी शक्ति कम पड़ जाती है और ग ख तल पर जितनी गरमी होती है उतनी क ख तल पर नहीं हो सकता। इसका अनुभव पढ़े, बे पढ़े सभीको है, क्योंकि जब सूर्यकी किरणें तिरछी आती हैं तब लोग किसी वस्तुको सुखानेके लिये उसे ऐसे तल पर रखते हैं जो इस प्रकार टेढ़ा कर दिया जाता है कि किरणें लम्ब रूपमें गिरें।
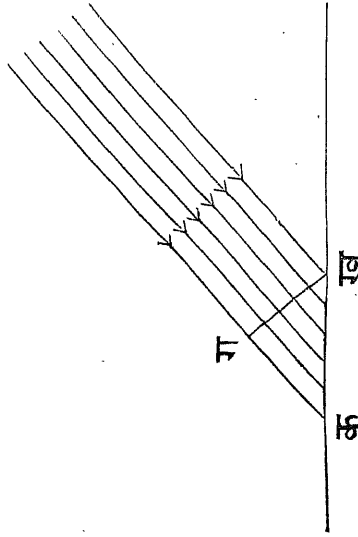
चित्र १२३

चित्र १२४ से प्रकट होता है कि विषुवत् रेखाके आस पास सूर्य की किरणें जितनी आती हैं उतनी ही किरणें विषुवत्रेखासे दूरके देशोंमें तिरछी होनेके कारण अधिक क्षेत्रफलमें फैल जाती और मन्द पड़ जाती हैं। इस चित्रसे स्पष्ट देख पड़ता है कि जितनी किरणें विषुवत्रेखाके पास क ख भूभाग पर पड़ती हैं उतनी ही किरणें उत्तर ध्रुवके निकट ग घ भूभाग पर पड़ती हैं जो क्षेत्रफलमें कहीं अधिक होता है इसलिये फैल जानेके कारण इनकी तीव्रता कम पड़ जाती है।

देवताओं और असुरोंके दिनरातके विभाग—

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे ॥४७॥
मेषादावुदितः सूर्यस्त्रीन्राशीनुदगुत्तरम् ।
सञ्चरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरु वासिनाम् ॥४८॥
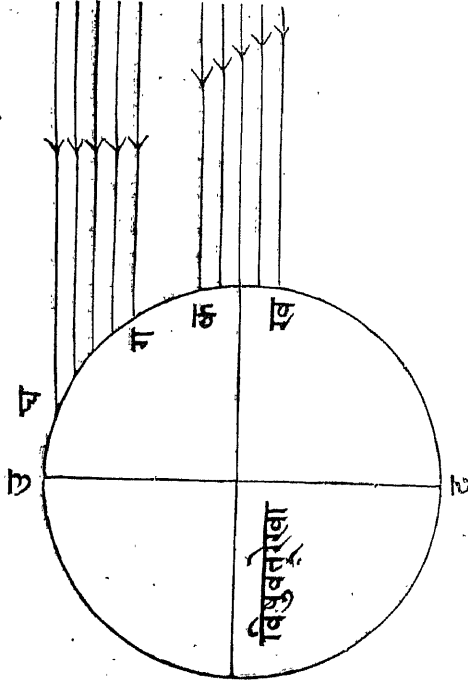
चित्र १२४

कर्कादीन्सञ्चरंस्तद्वदह्नः पश्चार्धमेव सः ।
तुलादींस्त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥४९॥
अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात् ।
अहोरात्र प्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात् ॥५०॥

अनुवाद—(४७) जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिनरात एक दूसरेके विपरीत होता है । (४८) मेष राशिके आदिमें उदय होकर सूर्य उत्तरकी तीन राशियों मेष, वृष और मिथुनमें उत्तरकी ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरुनिवासियों अर्थात् देवताओंके दिनका पूर्वार्ध पूरा करता है । (४९) उसी प्रकार कर्क राशिके आदिसे आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुलामें वह उनके दिनका उत्तरार्ध पूरा करता है । इसी प्रकार तुला वृश्चिक और धनु राशियोंमें जाता हुआ वह असुरोंके दिनका पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें जाता हुआ वह असुरोंके दिनका उत्तरार्ध पूरा करता है । (५०) इसलिये देवताओं और असुरोंके अहोरात्र एक दूसरेके विपरीत होते हैं और सूर्यका एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है ।

विज्ञानभाष्य—जिस दिन सूर्य वसंत संपात बिन्दु पर आता है उस दिनको विषुव दिन कहते हैं । इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके क्षितिजपर रहता है इसलिये उत्तर ध्रुवके निवासियों देवताओंको और दक्षिण ध्रुवके निवासियों असुरोंको क्षितिज पर देख पड़ता है । परन्तु सूर्यकी गति उत्तर होनेके कारण वह देवताओंको उदय होता हुआ और असुरोंको अस्त होता हुआ देख पड़ता है । अर्थात् इस दिनसे देवताओंके दिनका और असुरोंकी रातका आरंभ होता है । सूर्यके इस स्थानको अर्थात् वसंत सम्पात बिन्दुको मेषका आदि स्थान कहा गया है । इसके बाद सूर्य उत्तरकी ओर प्रतिदिन बढ़ता है । जब यह वसंत-संपात बिन्दुसे ९० अंश पर पहुँचता

है तब इसका उत्तरकी ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्यकी परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसीदिन देवताओंका मध्याह्न होता है और असुरोंकी मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात बिन्दुसे ९० अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियां होती हैं। जब सूर्य कर्कराशियोंके आरंभसे लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियोंको पार करके तुलाके आदिमें पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओंको यह अस्त होता हुआ देख पड़ता है। इसलिये इस समयसे देवताओंकी रात और असुरोंके दिनका आरंभ होता है। सूर्यका यह स्थान शरद-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिनको भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियोंमें रहता है तब तक असुरोंका पूर्वाह्न और देवताओंकी पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशिके आदिमें पहुंचता है तब देवताओंकी मध्यरात्रि और असुरोंकी मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें होता है तब असुरोंकी अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्यका एक फेरा जितने समयमें पूरा होता है उतने समयमें देवताओं या असुरोंका एक अहोरात्र होता है। परन्तु देवताओंका जो दिन है वही असुरोंकी रात और देवताओंकी जो रात है वह असुरोंका दिन।

इस वर्णनसे यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियोंका आरंभ वसंत-सम्पातसे माना गया है न कि निरयण मेषसे जो आजकल वसंत-सम्पातसे २३ अंशसे भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पातसे सदैव आगे होता जा रहा है। इसी अन्तरको अयनांश कहते हैं। १४०० वर्षसे कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ साथ थे इसलिये इस समय मेषका आदि स्थान वही था जिसे आज कल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आज कल ज्योतिषियोंमें दो भेद होगये हैं, सायन वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायन वादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पातको ही मेषका आदि स्थान मानते हैं। परन्तु निरयण वादी लोग निरयण मेषको राशियोंका आरंभ स्थान मानते हैं। सूर्य-सिद्धान्तमें सायन और निरयणका भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्यसिद्धान्त लिपिवद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आज कल निरयण मेषका आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनोंकी चर्चा है।

देवताओं या असुरोंके अहोरात्रके वर्णनसे जो सूर्यसिद्धान्त में कई जगह आया है यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्षके समान होता है और यही वर्षका स्वाभाविक मान है। परन्तु इस अहोरात्रका प्रमाण सूर्यके भगण कालके समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकारके श्लोक २९ और ३७ के अनुसार ३६५.२५८७५६ मध्यम सावन दिनके समान होता है और सायन वर्षसे .०१६५४० मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगण काल शुद्ध नक्षत्र सौर वर्षसे भी .००२३८२ दिन बड़ा है (देखो पृष्ठ ३६० की पाद टिप्पणी)। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्तमें सायन वर्षका मान स्थूल रूपसे सूर्यके भगण कालके समान मान लिया गया है।

देवासुरोंका मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचेका क्या अर्थ है—

दिनदापार्धमेतेषामयनान्ते विपर्ययात् ।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ॥५१॥

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम् ।
भद्राश्वकेतुमालस्था लङ्कासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥

सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम् ।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्वाप्यधः ॥५३॥

अनुवाद—(५१) देवताओं और असुरोंका मध्याह्न और मध्यरात्रि अयनके अंतमें एक दूसरेके विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपनेको दूसरेसे ऊपर मानते हैं। (५२) जो लोग भूव्यासकी दिशामें रहते हैं वे भी दूसरेको अपनेसे नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्षके (यमकोटि नगरके) रहने वाले केतुमाल देशके (रोमक नगरके) रहने वालोंको और लङ्का नगरके रहने वाले सिद्धपुर वालोंको अपनेसे नीचे समझते हैं। (५३) इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थानको ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाशमें स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहां है ?

विज्ञान-भाष्य—५१ वें श्लोक का पूर्वार्ध ५० वें श्लोकसे सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध यह बतलाता है कि देवता और असुर दोनों अपनेको दूसरेसे ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगेके दो श्लोकोंमें उदाहरणके साथ बतलाया गया है।

अयनके अन्तमें देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशिमें प्रवेश करता है तब यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियोंके लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशिमें प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचेकी बात भी समझना कठिन है क्योंकि सब लोग उस दिशाओं को ऊपर मानते हैं जो आकाशके मध्यमें होता है और इसकी विपरीत दिशाओं के नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगहके रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यासके दूसरे सिरे पर रहने वालोंको नीचे समझते हैं।

चित्र १२५ में गोल रेखा भूपृष्ठ है। उत्तर ध्रुवके रहने वालों को वह दिशा ऊपर है जिसमें क अक्षर दिखलाया गया है और इसकी विपरीत दिशा वह है जिधर भू मध्य है परन्तु इस दिशा की सीधमें भूगोल की दूसरी ओर दक्षिण ध्रुव है इसलिए दक्षिण ध्रुव उत्तर ध्रुवसे नीचे देख पड़ता है। परन्तु दक्षिण ध्रुव वालोंके लिए वह दिशा ऊपर है जिसमें ख अक्षर दिखालाया गया है और भूमध्य की दिशा अथवा उत्तर ध्रुव नीचे है। यह बात चित्र को उलट कर पढ़नेसे सहज ही समझमें आसकती है। इसी प्रकार च स्थानके लिए ग की दिशा ऊपर और छ या घ की दिशा नीचे है परन्तु छ स्थानके लिए घ की दिशा ऊपर और च या ग की दिशा नीचे है।

पृथ्वी चपटी देख पड़नेका कारण—

अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतोमुखम् ।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥५४॥
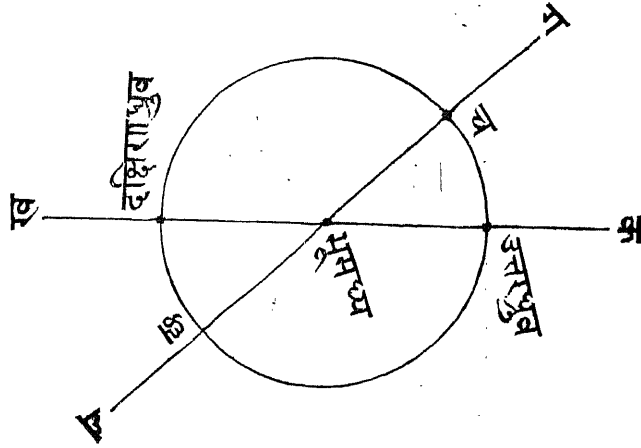
चित्र १२५

अनुवाद—मनुष्य पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत छोटे होनेके कारण अपने स्थानसे गोल पृथ्वीको सब दिशाओंमें चक्राकार देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—किसी वृत्तके बहुत छोटे खण्डके धनु और उसकी ज्यामें इतना कम अन्तर होता है कि दोनों समान समझे जाते हैं अर्थात् धनु वक्र होने पर भी ज्याके समान होता है और धनु की वक्रता नहींके समान होती है। इसी लिए तो २२५ कला की ज्या भी २२५ कला ही समझी गयी है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक १५)। इसी प्रकार किसी गोल पिंडके पृष्ठका अत्यन्त छोटा भाग वक्र होने पर भी सम देख पड़ता है। यह गणना की जा सकती है कि समतल भूमि या किसी बड़ी झीलके तल पर खड़ा होकर चारों ओर देखनेसे मनुष्यको ३ या ४ मीलसे अधिक दूर तक का धरातल नहीं देख पड़ता।

मान लो ख भूतल पर एक स्थान है, कख मनुष्य की ऊँचाई है, घ भूगोल का केन्द्र है और कग सीधी रेखा है जो भूतलको ग बिन्दु पर स्पर्श करती है। रेखा गणितसे यह सिद्ध है कि

कग^2 = कख × कच = कख (कख + खच)
मान लो कख = उ, खघ = घच = त्र, कग = त्त
तब त्त^2 + उ × (उ + २ त्र) = उ^2 + २ उ × त्र

यहां २ उ त्र की तुलनामें उ^2 इतना छोटा है कि नगण्य समझा जा सकता है क्योंकि त्र पृथ्वी की त्रिज्या है इसलिए यह ३९६० मीलके लगभग है और उ मनुष्य की ऊँचाई है जो १ मीलके हज़ारवें भागके लगभग है, इसलिए यह माना जा सकता है कि

त्त^2 = २ उ त्र ······················ (१)

जब कि प्रत्येक नाप मीलोंमें ली जाय। यदि मान लिया जाय कि उ नाप फुटमें फ हो तो

$$फ = उ \times १७६० \times ३$$

$$या\ उ = \frac{फ}{३ \times १७६०}$$

उ का यह मान समीकरण (१) में उत्थापन करनेसे और त्र की जगह ३९६० रखनेसे

$$ल^२ = २ \times \frac{फ}{३ \times १७६०} \times ३९६० = \frac{३ फ}{२}$$

$$या\quad ल = \sqrt{फ \times १\text{-}५}$$
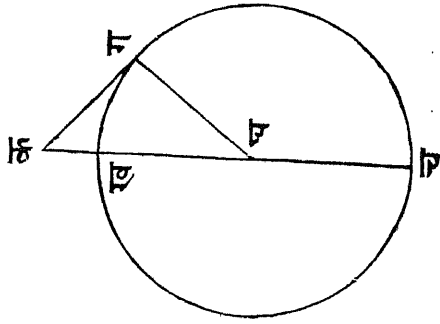
चित्र १२६

यहां ल का मान मीलोंमें और फ का फुटमें समझना चाहिए। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य भूतल से जितने फुट ऊपर हो उसका डेवढ़ा करके वर्गमूल लेनेसे जो आवे उतने ही मील दूर तक की क्षितिज वह देख सकेगा।

यदि मनुष्य कीऊँचाई ६ फुट हो तो उसकी क्षितिज ३ मील दूर होगी और ऊँचाई २४ फुट हो तो वह ६ मील दूर तक की क्षितिज चारों ओर देख सकेगा।

चित्रसे प्रकट है कि यदि कख ६ फुट हो तो कग ३ मील होगा और जो कग होगा वही खगको भी समझना चाहिए।

परन्तु भूतल की परिधि स्थूलरूपसे २५००० मील है और ६ फुट ऊँचे मनुष्य की क्षितिज का व्यास ६ मील है जो २५००० मीलके चार हज़ारवें भागसे भी कम है इसलिए उसे यदि गोलाकार पृथ्वी चक्राकार देख पड़ती है तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भूतल पर दिन रातके घटने बढ़ने का कारण—

सव्यं भ्रमति देवनामपसव्यं सुरद्विषाम् ।
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षेपश्चान्मुखः सदा ॥५५॥
अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा ।
हानिवृद्धी सदा वाम सुरासुर विभागयोः ॥५६॥
मेषादौ तु सदा वृद्धिरुदगुत्तरतोऽधिका ।
देवांशे च क्षया हानिर्विपरीतं तथासुरे ॥५७॥
तुलादौ घुनिशोर्वामं क्षयवृद्धी तयोरुभे ।
देशक्रान्ति वशान्नित्यं तद्विज्ञानं परोदितम् ॥५८॥

क्रमशः

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३२ | धन, संवत् १९८७ | संख्या ३

सर चन्द्रशेखर वेङ्कटरमन
और
उनके वैज्ञानिक अनुसन्धान

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी०]

आधुनिक युगमें भारतवर्षमें इने गिने ही वैज्ञानिक हुए हैं पर फिर भी आये दिन एक न एक भारतका मस्तक संसारमें ऊँचा किये ही रहता है। हाल हीमें भौतिक विज्ञानका नोबेल पुरस्कार सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमनको मिला है और प्रथम बार एक भारतीयका नाम सुवर्णाक्षरोंमें विज्ञानके महारथियोंमें लिखा गया। आप कलकत्ता विश्वविद्यालयमें भौतिक विज्ञानके आचार्य हैं और आपने हाल ही में "रमन असर" का आविष्कार कर समस्त वैज्ञानिक जगतका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

वेङ्कट रमनका जन्म त्रिचनापल्लीमें ७ नवम्बर १८८८ को हुआ था। आपके पिता चन्द्रशेखर ऐय्यर यहीं अध्यापक थे परन्तु आपके जन्मके कुछ ही दिन पश्चात् गणित और भौतिक विज्ञानके आचार्य हो कर आप वालटेयर चले आये।

जब रमन एम० ए० परीक्षाके लिये प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रासमें अध्ययन कर रहे थे उन दिनों आपके एक सहपाठी अप्पाराव वहांके प्रोफेसर जोन्सके सामने एक प्रयोग विषयक कुछ कठिनाई लेकर उपस्थित हुए। प्रोफेसर महाशयसे कुछ कहते न बन पड़ा परन्तु रमनने सारी बात समझ ली। उन्होंने स्वतः उस प्रयोगको किया और उस प्रयोगसे कई नये फल निकाले। इस विषय पर एक गवेषणा पूर्ण लेख विलायतके एक वैज्ञानिक मासिकमें प्रकाशित होनेके लिये भेजा गया। यह इतना महत्व पूर्ण था कि प्रसिद्ध लार्ड रेलेने स्वयं आपको इसके बारेमें एक पत्र लिख कर उत्साहित

किया। इसके पश्चात् आपने प्रकाश पर एक दूसरा मौलिक लेख लिखा और यही आपके वैज्ञानिक जीवनका प्रारम्भ था। इसी समय आपकी प्रतिभाकी झलक दिखाई दे गई थी "होनहार बिरवानके होत चीकने पात"।

एम० ए० की परीक्षामें बैठनेके पश्चात आपको मद्रास सरकारकी ओरसे विलायत भेजनेका प्रस्ताव उपस्थित हुआ परन्तु डाक्टर ने आपको स्वास्थ्य अच्छा न होनेके कारण जानेसे मना कर दिया। भारत सरकारके आयव्यय विभागमें एकाउण्टेण्ट जनरलोंकी भरती करनेके लिये एक परीक्षा होती है जिसमें भारतवर्ष भरके विद्यार्थी बैठ सकते हैं। रमन इस परीक्षामें बैठनेके लिये कलकत्ते गये और परीक्षा प्रारम्भ होनेके एक दिन पहले ही आपको तार मिला कि आप एम० ए० परीक्षामें पहले दर्जेमें उत्तीर्ण हुए हैं और आपका नम्बर भी पहला है। यही नहीं, आपने इतने अङ्क पाये जितने कि मद्रास विश्वविद्यालयके सारे इतिहासमें किसी ने न पाये थे। इस दूसरी परीक्षामें भी आप उत्तीर्ण होकर सर्व प्रथम आये। इस समय आपकी आयु केवल १८ वर्ष की थी! आपकी नियुक्ति कलकत्तेमें डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरलके पद पर हुई।

इस नियुक्तिसे आपकी वैज्ञानिक प्रवृत्तियोंको ज़रा भी धक्का नहीं पहुंचा। सत्यके अनुसन्धान की लालसा प्रत्येक प्रतिभाशाली व्यक्तिमें इतनी तीव्र होती है कि उसका दमन होना कठिन ही है। परन्तु दफ़्तरकी कुर्सी पर बैठ कर प्रयोग हो नहीं सकते—आपको अब एक प्रयोगशालाकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

यह भी दैवी कृपासे शीघ्र ही मिली। एक दिन कहीं जाते हुए आपकी दृष्टि एक जगह पड़ी। वहां लिखा था "Indian Association for the Cultivation of Science" इस समितिका उद्देश वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये विश्वविद्यालयकी प्रयोग शालाओंके बाहर काम करने की इच्छा करने वालोंको सुविधा देना था। रमनको तो यही चाहिये भी था। आपने तुरन्त इसके विषय में पूछताछ की। उसी समय इस परिषत्की एक बैठक समाप्त हो रही थी। कलकत्ता विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर स्वनामधन्य बाबू आशुतोष मुखर्जी भी वहां उपस्थित थे। रमन का परिचय इस परिषत्के मन्त्री डा० अमृतलाल सरकारसे हो गया। आपने अपने लिखे हुए लेख दिखाए और यहां काम करनेकी इच्छा प्रगट की। आपके उत्साह और प्रतिभाका डा० सरकार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। आप उसी समय सदस्य बना लिये गये और समितिकी प्रयोगशाला में प्रयोग करनेके लिये आपको विशेष सुविधा दी गई।

रमनको एक प्रयोगशाला की आवश्यकता थी और प्रयोगशालाको एक रमन की। दोनों ने एक दूसरेकी आवश्यकता पूरी की। अपने अदम्य उत्साह और प्रतिभाके कारण आप ने बहुत ही जल्दी यहां ख्याति प्राप्त की। फ़ुरसत का सारा समय यहीं व्यय होने लगा। पर यह बहुत दिनों तक न चल सका क्योंकि आपकी बदली रंगून हो गई।

जिन दिनों आप बर्मामें थे उन दिनोंकी एक छोटी सी घटना आपके चरित्र पर प्रकाश डालती है। इन्सीन स्कूलमें कुछ वैज्ञानिक यन्त्र आये थे। इन्हें देखनेके लिये आप घर पर धर्मपत्नीको अकेली छोड़ कर आधी रातको चल दिये और सुबह होते २ घर आ गये!

पिताकी मृत्युके कारण आप मार्च १९१० में मद्रास आये। यहां ६ महीने प्रेसीडेन्सी कालेजकी प्रयोगशालामें आपने कुछ काम किया। नवंबर १९११ में रमन को फिर कलकत्ते डाक और तार विभाग के एकाउण्टेण्ट जनरल होकर जाना पड़ा और इस प्रकार फिर अपनी पुरानी सुविधाएं उन्हें मिल गईं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय

उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालयकी बागडोर स्वनामधन्य स्वर्गीय बा० आशुतोष मुखर्जी के हाथ में थी। बंगालमें आधुनिक शिक्षा पद्धतिके उन्नति और विकासका अधिक श्रेय इसी महा-विभूति को है। आशुतोष मनुष्योंके अच्छे पारखी थे। किस पदके लिये कौन सबसे अच्छा रहेगा यह जान लेना उन्हें खूब आता था। सर तारक नाथ पालित और डा० रास बिहारी घोषके महान दानोंसे एक बड़ा भारी साइन्स कॉलेज तो बन गया था पर अच्छे अच्छे मनुष्योंकी कमी थी। आशुतोष बाबूकी नज़र रमन पर बहुत दिनोंसे थी। उन्हें रमनकी प्रतिभाका बड़ेसाहबकी कुरसी पर अपव्यय होते देख बड़ा दुःख होता था। उन्होंने बेधड़क रमनको कलकत्ता साइन्स कॉलेजके भौतिक विज्ञानके आचार्यकी जगह देनेका प्रस्ताव किया और रमन ने भी अपूर्व स्वार्थ त्याग कर उस जगहको स्वीकार किया। इस प्रकार रमन २५ वर्षकी अवस्थामें ही इस उच्च पद पर नियुक्त हुए। विज्ञानकी आराधनाके लिये रमन ने धन का इतना बड़ा बलिदान किया। समय ने बता दिया कि बूढ़े जौहरी ने इस रत्नको परखनेमें भूल न की थी।

रमन ने अपूर्व उत्साहसे काम किया। उनकी प्रयोगशालासे नाद और प्रकाशके विषयमें अनेक मौलिक और गवेषणा पूर्ण लेख निकलने आरम्भ हुए। धीरे धीरे विज्ञानके इस मन्दिरमें उपासकों की संख्या बढ़ी। यूरोप तक यहां की खोजोंका मान होने लगा। थोड़े ही समयमें आप लन्दनकी रायल सोसाइटीके सदस्य चुन लिये गये। यह सम्मान भारतमें आज तक केवल चार वैज्ञा-निकोंको प्राप्त हुआ है :—स्वर्गीय गणितज्ञ रामानुजम, डा० सर जगदीशचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन और प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० मेघनाद साहा। सदस्य चुने जानेके कुछ ही दिन बाद आप संसारके प्रसिद्ध २ वैज्ञानिक केन्द्रों का भ्रमण करनेके लिये निकले। लन्दनमें कुछ समय ठहर कर आप कनाडामें ब्रिटिश असोशियेशनकी बैठकमें भाग लेने चल दिये। प्रत्येक जगह आपको प्रमुख वैज्ञानिकों और समितिओंके सम्मुख अपने विचार प्रगट करने का अवसर मिला। कनाडामें आपकी मिलीकनसे भेंट हुई जिन्होंने आपको पास-डेनाकी नार्मनब्रिज प्रयोगशालामें एकत्रित वैज्ञानिकों के सामने कुछ दिन तक व्याख्यान देनेका निमन्त्रण दिया। यह सम्मान आपके पहले आइन्स्टाइन और लारेन्ज जैसे महापुरुषोंको प्राप्त हो चुका था। कनाडा और अमेरिका भ्रमणके बाद आपने अमेरिकन विश्वविद्यालयों और सभाओंके सम्मुख व्याख्यान दिये। इसके पश्चात् आपने यूरोप भ्रमण किया और स्थान स्थानके विश्वविख्यात वैज्ञानिकों की प्रयोग शालाएँ देखीं।

हाल हीमें आपने 'रमन असर' विषयक खोजके पश्चात् फिर एक बार यूरोप यात्रा कर अपने विचार अनेक वैज्ञानिक समितियोंके सामने रक्खे। जहां जहाँ आप गये आपका सम्मान हुआ और सबने आपके व्याख्यानोंको बड़े चावसे सुना। आपकी खोजोंके उपलक्षमें ३ जून १९२९ को आपको सरकी उपाधि मिली। हालमें ही रायल सोसाइटी ने आपको एक उच्च पदक प्रदान किया है और १ लाख ३० हज़ार रुपयेके लगभगका नोबेल पुरस्कार तो कल की बात है। १० दिसम्बरको आपको यह पुरस्कार अति सम्मान पूर्वक स्वीडेन सम्राटके हाथोंसे भेंट किया गया है।

यहां नोबेल पुरस्कारके विषयमें भी कुछ कहना अनुचित न होगा। यह पुरस्कार एल्फ्रेड नोबेल नामी एक स्वीडेनके इञ्जीनियर और वैज्ञानिकके नामसे मिलता है। नोबेल ने डायनामाइट और कुछ दूसरे विस्फोटक पदार्थोंका आविष्कार कर विशाल धनराशि का संग्रह किया। इस आवि-ष्कारसे मानवजातिके विनाशमें जो सहायता मिली थी उसीका मानों प्रायश्चित्त करनेके लिये अपने

वसीयतनामेमें एक इतनी बड़ी रक़मकी व्यवस्था की जिससे कि प्रति साल नीचे लिखे विषयोंमें एक खासी रक़म पुरस्कार रूप दी जा सके :—

(१) भौतिक विज्ञान
(२) रसायन
(३) वैद्यक
(४) साहित्य
(५) शान्ति स्थापन

नोबेल पुरस्कारकी रक़म एक लाख रुपयेसे अधिक होती है और प्रत्येक विषयमें इसका मिलना संसारमें सर्वोच्च सम्मान-समझा जाता है। पाठकों को स्मरण होगा कि कुछ ही समय पहले कविवर रवीन्द्रनाथ टेगोरको साहित्यका नोबेल पुरस्कार मिला था।

भौतिक विज्ञानमें इसको पानेवालोंमें रोञ्जन, माइकिलसन, लारेञ्ज, टामसन, रदर फोर्ड, आइन्सटाइन,-बोह्र, काम्प्टन इत्यादि सब धुरन्धर विद्वानों की गणना है।

वैज्ञानिक अनुसन्धान

नाद

आचार्य रमनके पहले प्रयोग नाद से सम्बन्ध रखते हैं। वायलिनको बजाते समय उसे धनुषसे टंकारित करते हैं। इस समय इस यन्त्रमें तना हुआ तार एक विशेष रीतिसे स्पन्दित होता है और इसके स्पन्दन और वायलिनमेंसे निकलने वाले स्वर का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। रमनने इसी पर प्रयोग किये। वायलिनके तारको भिन्न भिन्न रीतियोंसे स्पन्दित कर बहुत ही सरल रीतिसे एक फोटोग्राफिक प्लेट पर उसका छाया चित्र लिया जाता था। चित्र लेते समय प्लेट तीव्र गतिसे आगे बढ़ता है—इसलिये चित्र एक लहरके स्वरूपमें आ जाता है। इस लहरका "फोरियर श्रेणी" की सहायतासे विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि कौन कौनसे मूल स्वर एक बार टंकारित करने पर निकलते हैं। इस प्रकार बहुतसे प्रयोग कर रमनने टंकारित तारका सिद्धान्त निकाला जो सर्वमान्य है।

संगीत यन्त्रों पर इन दिनों और भी बहुतसे अनुसन्धान हुए जिसमें पियानोका नाम उल्लेखनीय है। इस बाजेमें एक तने हुए तार पर छोटीसी हथौड़ी एकदम आकर गिरती है और उसीसे आवाज़ निकलती है। यदि भिन्न भिन्न प्रकारकी हथौड़ियोंसे आघात किया जाय तो स्वर भी अलग अलग निकलेंगे, इस विषय पर भी रमनने कुछ काम किया और उनके शिष्योंने भी।

यदि कपूर की एक छोटीसे डली पानीमें छोड़ दी जाय तो वह जल्दी २ चलने लगती है। इसका सम्बन्ध पृष्ठ तनावसे है, रमनने इस विषयको कैसे हाथमें लिया इस सम्बन्धमें एक मनोरंजक कहानी कही जाती है। रमन किसी विश्वविद्यालयकी एम० एस-सी० परीक्षाके परीक्षक थे। पर्चेमें उन्होंने इसी सम्बन्धमें एक प्रश्न पूछा। जब उत्तर पढ़ने बैठे तो देखा कि आप किसी भी विद्यार्थीके इस प्रश्न पर लिखे हुए उत्तरसे सहमत नहीं थे। इन्होंने सोचा कि जब सभी ग़लती कर रहे हैं तो इसमें अवश्य कोई विशेष बात होगी। उस समय तक पढ़ाई जाने वाली पुस्तकोंमें भी वही बात थी। इस पर रमनने कुछ प्रयोग कर इस समस्याका नया उत्तर दिया।

प्रकाश

रमनकी अधिक महत्वपूर्ण खोजें प्रकाशके क्षेत्रमें हैं। इसके पहले कि हम उनका वर्णन कर सकें प्रकाशके परिक्षेपण (Scattering) या बिखरनेके विषयमें थोड़ा सा ज्ञान होना आवश्यक है।

रसोईमें किसी छेदसे सूर्यकी रश्मियोंका प्रवेश बच्चोंको बहुत ही मनोरंजक प्रतीत होता है। सूर्य की रश्मियोंसे प्रदीप्त हो धुएँके कण नाचतेसे प्रतीत होते हैं और नीला रंग भी फ़ैला हुआ सा प्रतीत होता है। यह दृश्य वैज्ञानिकोंको भी अच्छा लगा। इस नीले रंगका सम्बन्ध आकाशके नीले रंगसे

अवश्य है। यह अनुमान कर प्रो० टिण्डलने एक प्रयोग किया। न एक नली थी जिसमें कि नव-नीतोल नोषेत (Butyl nitrate) और उदहरि-काम्ल की भाप मिलाई जा सकती थी। दोनोंके मिलने पर रासायनिक प्रक्रिया होनेके कारण सफेद धुंआ सा नलीमें बन गया और इसके कण भी धीरे धीरे आकारमें बढ़े। क ख दिशामें दिग् प्रधानता लिये हुए सफेद प्रकाशकी एक रश्मि जाती है। तरंगमें कम्पनकी दिशा कागज़की सतह में है। इस रश्मिको लालसे नीले तक लगभग सात रंगोंकी बनी हुई मान सकते हैं। धीरे २ जब कणोंका उचित आकार हो जाता है तो क ख दिशासे समकोण बनाते हुए यदि ऊपर देखे तो आकाशके समान नीला रंग दिखाई देने लगता है।
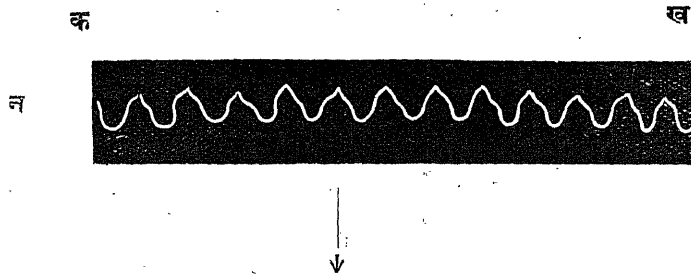
चित्र सं० १

कागज की सतहमें आंख रख कर देखनेसे कुछ न दिखाई देगा। रश्मिमें तो बहुतसे रंग थे पर बिखरे हुए प्रकाशमें नीले ही रंगकी प्रधानता दीख पड़ती है। यदि क ख दिशामें इस समय देखें तो सूर्योदय या सूर्यास्तके समान लाल और गुलाबी रंग दीख पड़ेगा। यही नहीं, पर बिखरे हुए प्रकाश में भी दिग् प्रधानता है।

इसी प्रयोगको प्रमाण रूप समक्ष स्वर्गीय लार्ड रेलेने आकाश के नीले रंगका कारण बताया। प्रकाशकी तरंगोंसे उत्तेजित हो छोटे २ कण कम्पित होते हैं और ऐसा करते हुए फिरसे प्रकाशका परिक्षेपण हो जाता है। गणितसे लार्ड रेलेने यह सिद्ध किया यदि भिन्न भिन्न तरंगोंका परिक्षेपण छोटे २ कण करें तो परिक्षेपित प्रकाशकी तीव्रता और लहर लम्बाई में यह सम्बन्ध होगा।

$$त \propto \frac{१}{ल^४}$$

त तीव्रता है और ल लहर लम्बाई। इससे यह सिद्ध हुआ कि छोटी लम्बाई की लहरें अधिक बिखरेंगी। इसीलिये उस प्रयोगमें नीला रंग अधिक परिमाणमें दिखाई देता था। (नीले प्रकाश की लहर लम्बाई साधारण प्रकाशमें पायी जाने वाली सब तरंगोंकी लम्बाईसे कम होती है) और रंगकी रश्मियां भी बिखरे हुए प्रकाशमें थीं पर उनकी तीव्रता नीले रंगके मुकाबलेमें बहुत कम थी। अब आकाशमें क्या होता है? आकाशमें विद्यमान किसी भी प्रकारके छोटे २ कण या सम्भवतः स्वयं अणु सूर्यके सफेद प्रकाशको बखेरते हैं। इसका परिणाम होता है कि प्रकाशकी प्रगति की दिशामें छोड़ शेष सब ओर नीले रंगका बाहुल्य होता है। सूर्योदय या सूर्यास्तके समय हम प्रकाशकी ओर देखते हैं इसलिये रंग लाल या गुलाबी दिखाई देता है क्योंकि नीला रंग और छोटी लम्बाईकी लहरें पहिले ही परिक्षेपित हो चुकी हैं। आकाशसे आये हुए प्रकाशमें थोड़ी बहुत

दिग् प्रधानता भी होती है। रेलेने सोचा था कि यह कण बड़े होंगे परन्तु छोटे लार्ड रेले और कबानीसने प्रयोग किये जिनसे सिद्ध हुआ कि परमाणुओंसे भी ठीक इसी प्रकारका परिक्षेपण होना चाहिये। यहां एक बात समझ लेना चाहिये—अभी तक न तो वैज्ञानिक इस विषयकी खोजके लिये एकरंगा प्रकाश काममें लाये थे और न किसी विशेष वस्तुके अणु प्रयोगोंके लिये व्यवहृत हुए अर्थात् अणुका आंतरिक संगठन (Inner structure) का और प्रकाशके परिक्षेपणका कोई भी सम्बन्ध नहीं ढूँढा गया।

रमनने इस विषय पर अपनी प्रयोगशालामें संगठित खोज आरंभकी। कुछ ही समयमें १०० से अधिक मौलिक निबन्ध प्रकाशित हुए। फल स्वरूप जल्दी ही रमनने समुद्रके नीले रंगके कारणके विषयमें अनुसन्धान कर कुछ फल निकाले। बर्फसे ढके हुए चट्टानों पर दूरसे देखने पर जो एक अद्भुत ज्योति सी दिखाई देती है उसका कारण भी अणुओं द्वारा परिक्षेपण ही पाया गया।

"रमन असर" (Raman effect) के विषय में छान बीन करनेके पहले दो एक इधर उधरकी बातें समझनी होंगी। पहली बात है अणुओंका रश्मि-चित्र। अणु जो प्रकाश देते हैं उसका कुछ हिस्सा परालालमें होता है। इस ओर न तो फोटो हो लिया जा सकता है और न देखा जा सकता है—केवल ताप वैद्युत पुंज (Thermopile) की सहायतासे रश्मियां कहां कहां पड़ रहीं हैं यह मालूम होता है। इस परालालमें प्रकाश इस प्रकार पैदा होता है :—

मानलीजिये कि हमारे पास एक उदहरिकाम्ल (Hcl) का अणु है यह दो परमाणु इस प्रकार बंधेसे हैं :—

अ

ह उ
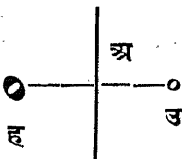
चित्र सं० २

इस अणुमें सामान्यतः दो प्रकारकी हलचल हो सकती है। या तो दोनों परमाणु अ बिन्दुके चारों ओर घूमने लगें या साथ ही साथ दोनोंको मिलाने वाली रेखाकी दिशामें कम्पन हो। यदि पहले प्रकारकी हलचल हो तो परालालमें ४०×१०^{-१} श० म० तरंग—लंबाईकी लहरोंका प्रादुर्भाव होगा। मान लीजिये ऐसी लहरकी झूलन संख्या "न" है। यह परमाणु भिन्न भिन्न गतियोंसे घूम सकते हैं और इस कारण परालाल भागमें एक पूरा रश्मि पट (Spectrum) मिलेगा। यह तो सीधी सी बात है। जिन अणुओंमें दो से अधिक परमाणु होते हैं उनमें कई प्रकारकी गतियां हो सकती हैं। अब यदि एक ऐसे परमाणुओंके समूहोंमेंसे निरन्तर किरण चित्र (Continuous spectrum) भेजा जाय तो वह तरङ्गें शोषित हो जांयगी जो कि अणु उत्तेजित होने पर स्वयं उत्पन्न कर सकता। शोषण होने वाली तरङ्गों की झूलन संख्याएँ (Frequency) उस परमाणु की स्वसंख्या (Characteristic frequency) कहलाती हैं!

दूसरी बात प्रकाश के सम्बन्धमें है। आधुनिक विज्ञानमें प्रकाश दो प्रकारका माना जाता है। कभी तो कहते हैं कि प्रकाश तरङ्ग रूप होकर चलता है और कभी सामर्थ्य (Energy) के कणोंके रूपमें। इन्हें काण्टम (Quantum) कहते हैं। यदि किसी प्रकाशकी झूलन संख्या "न" हो तो मान लेते हैं कि इस प्रकाशके प्रत्येक कणमें स × न सामर्थ्य है। स प्लैङ्क का स्थिर गुणक कहलाता है। यदि किसी कणमें की सामर्थ्य कम हो जाय तो उसका फल यह होगा कि प्रकाशकी झूलन संख्या घट जायगी क्योंकि "स" तो बदल ही नहीं सकता। यह याद रखना चाहिये कि झूलन संख्या या तरङ्ग लम्बाईके ऊपर ही प्रकाशका रंग निर्भर होता है इसलिये इसके बदलनेसे रंग भी बदल जायगा।

अब हम "रमन असर" की ओर अग्रसर होते हैं। सफेद प्रकाशके परमाणुओं द्वारा परिक्षेपणका ज़िक्र किया जा चुका है पर इन प्रयोगोंमें जो प्रकाश बिखरा वह गिरने वाली रश्मिमें पहलेसे था। हुआ यही कि नीला रंग दूसरे और रंगोंकी अपेक्षा अधिक बिखरा। रमनने दूसरा प्रयोग किया। प्रयोगका ढंग नीचे चित्रमें दिखाया गया है। ल एक
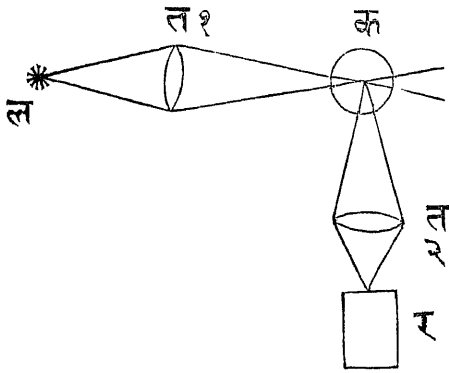
चित्र सं० ३

ल—पारद चाप ; $त_1$—ताल ; क—बानजावीनसे भरा कांचका गोला ; $त_2$—ताल ; र—रश्मि चित्रक

पारद चाप (Mercury vapour arc) है। इसमें २२० वोल्ट पर धारा भेजनेसे बहुत ही तीव्र प्रकाश निकलता है जिसकी तीव्रता लगभग ३००० बत्तियों की होती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकाशका यदि विश्लेषण किया जाय तो पारद का रश्मि चित्र मिलेगा। ताल $त_1$ से इस प्रकाशको एक कांचके गोलेमें रखे हुए बानजावीनमें इकट्ठा किया जाता है। प्रकाशकी जानेकी दिशासे समकोण बनाते हुए एक किरण चित्रक (Spectrograph) रख कर परिक्षेपित प्रकाशका चित्र लिया जाता है। यदि पारद चापके प्रकाशका रश्मि चित्र खींचा जाय तो भिन्न रंग रेखाओंके रूपमें प्रकट होंगे। रमनने देखा कि परिक्षेपित प्रकाश में असली रेखाओंके साथ ही साथ और भी कई नई रेखायें आ गईं हैं। यह पारद चापके प्रकाशमें तो थी नहीं, आईं कहाँसे ? प्रयोगों से यही फल निकला कि जब प्रकाश बानजावीनके अणुओंको पार कर रहा था तो उन्होंने साधारण रूपसे तो परिक्षेपण किया ही पर साथ ही साथ अपनी ओरसे कुछ रंग बना डाले जो नई रेखाओंके रूपमें प्रगट हुए। इसमें और पुराने रंगोंमें क्या सम्बन्ध है इसका ज़िक्र हम आगे करेंगे। इन्हीं नयी रेखाओंकी उत्पत्तिका नाम 'रमन असर" है।

इस परिक्षेपित प्रकाशमें कई विशेषतायें थीं। असली रश्मिमें किसी प्रकारकी दिग् प्रधानता न थी पर इन बिखरी हुई नई रश्मियोंको देखनेसे पता चला कि अलग अलग रेखाओंमें भिन्न भिन्नरूपसे दिग्प्रधानता आ गई है। इनकी तीव्रता भी बहुत कम थी यहाँ तक कि इनका चित्र लेनेके लिये पहले पहल तो कहते हैं कि एक सप्ताह तक दर्शन देना पड़ा। इन नई रेखाओंको अब हम "रमन रेखा" कहेंगे और इस पूरे रश्मि पटको "रमन चित्र"।

यह फल अचानक ही मिल गया यह न समझना चाहिये। पहलेके अर्थात् १९२५-२६ के लगभग किये गये प्रयोगोंमें इस प्रकारके नये प्रकाशका आभास प्रतीत होता था पर उन दिनों रमनको यह ध्यान न हुआ कि यह कोई विशेष बात भी हो सकती है। उस समय कह दिया गया कि यह "एक विशेष प्रकारकी हलकी चमक है" (Special type of feeble fluorescence) पर १९२७ में जब आचार्य रमन कामटन असर (Compton effect) के एक नये सिद्धान्तको निकालनेमें लगे हुये थे उनकी समझमें आया कि वह " हलकी चमक " भी कोई महत्वकी चीज है। जल्दी ही प्रयोग आरम्भ हुए और फलस्वरूप २८ फरवरी १९२८ को " रमन असर " निकाला गया। यह तिथि भारतके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंसे लिखने योग्य है।

अब यह रमन रेखाएं कैसे बनती हैं? मान लीजिये बानजावीनका एक अणु है। यदि उसमेंसे परालाल सिरे का निरन्तर प्रकाश भेजा जाय तो बानजावीन की स्वसंख्यावाली कुछ रेखाएं शोषित हो जावेंगी। उनमेंसे एक रेखाकी भूलन संख्या मान लीजिये "न₁" है। अब पारद रश्मिपट की एक रेखा जिसकी भूलन संख्या "न" है इस अणु पर पड़ी। हम कह आये हैं कि इसके एक काएटममें की सामर्थ्य स × न होगी। यह काएटम आकर एक अणुसे टकराया। अणु ने इस काएटमसे कुछ सामर्थ्य उधार ले ली अर्थात स × न₁ सामर्थ्य ले कर स्वयं उत्तेजित हो गया और बचा बचाया काएटम आगे बढ़ा। अब इस सामर्थ्य की पुड़ियों में से कुछ निकाल लिया गया है इसलिये इस बचे हुये प्रकाश की भूलन संख्या कम हो जायगी और चित्रमें वह एक नई रेखा होकर पड़ेगा। यही नहीं कभी २ परन्तु साधारणतः कम ऐसा होता है कि काएटम उस अणुसे टकरावे जो पहलेसे उत्तेजित रहा हो। अब अणु स्वयं साधारण दशामें आकर एक सामर्थ्यका काएटम स × न₁ उगल देगा। यह काएटम प्रकाशके काएटमसे मिल कर दूसरे रंग की रेखा बन कर चित्रित होगा। इस रेखाकी भूलन संख्या बढ़ी हुई होगी। इस प्रकार उत्तेजक रेखाके दोनों ओर एक एक या इससे अधिक नये रंगकी रेखाएं होंगी। उत्तेजित अणुओं की संख्या साधारण तापक्रमों पर अधिक नहीं होंगी पर यदि तापक्रम बढ़ाया जाय तो यह भी बढ़ जायगे। इसीलिये साधारण तापक्रमों पर बढ़ो हुई भूलन संख्याकी रेखा कम तीव्र होगी पर यदि तापक्रम बढ़ाया जाय तो इसकी तीव्रता बढ़ती जायगी।

प्रयोग करने पर देखा गया कि यह असर बानजावीनके अणुओं पर ही नहीं परन्तु साधारणतः प्रत्येक अणुमें होता है। पानी, बरफ, बिल्लौर और बहुतसे पदार्थोंसे प्रयोग किया गया और सबमें यही असर मिला।

रमनके प्रयोगमें चित्र लेनेमें बहुत समय लगता था। अमेरिकाके प्रो० वुड ने इसमें उन्नति की। उनके प्रयोगमें एक नलीमें पदार्थ रख कर पारद चाप उसीकी बग़लमें रख दिया जाता था। चारों ओरसे शीशोंसे प्रकाश परावर्तित हो फिर उसीमें गिरता था। नलीमें के पदार्थको ठण्डा रखनेके लिये चारों ओर पानी बहता था। इस प्रकार चित्र लेनेमें बहुत कम समय लगा। इसके पश्चात् वुडने और भी फेर बदलकी और अन्तमें नीचे चित्रमें दिखाये गये सामानसे प्रयोग किया गया:—
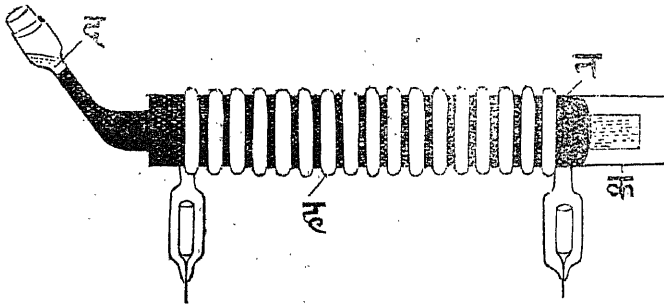
चित्र सं० ४

द=द्रव

ह=हिमजन नली (द्रव वाली नली के चारों ओर लिपटी हुई)

न=द्रव से भरी नली (नक़ल ओषिद की बनी हुई)

हिमजन नलीमें से प्रकाश नलीमें रखे हुए पदार्थ पर पड़ता है। दूसरी नली ऐसे शीशे की बनी हुई है कि पराकासनी प्रकाश ही उसमेंसे निकल सकता है। हिमजन नलीमें अधिक गरमी नहीं निकलती इसलिये पानीसे ठंडा करनेकी आवश्यकता नहीं रहती—दूसरे हिमजन चित्र पटमें रेखाएं बहुत दूर दूर हैं इसलिये रमन रेखाओंके लिये जगह साफ मिलती है।

बानजावीनका एक रमन चित्र दिखाया जाता है। ऊपर (क) पारद चापका रश्मि चित्र है और नीचे (ख) बानजावीनसे परिक्षेपित प्रकाशका चित्र। जो नई रेखाएं आ गई हैं वह रमन रेखाएं हैं।
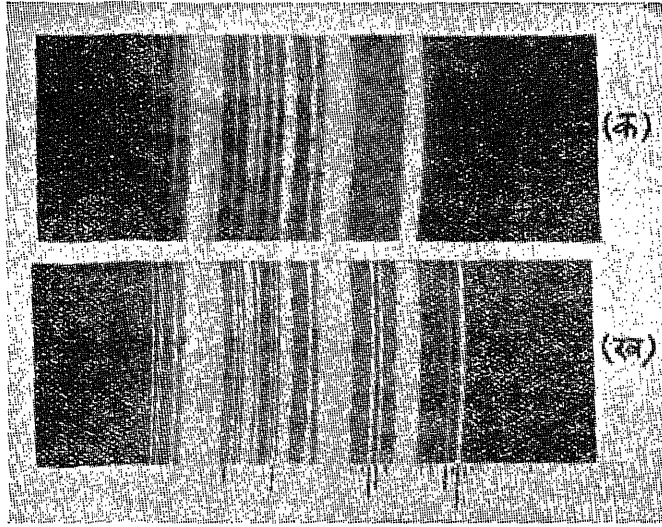
चित्र सं० ५

(क) पारद चाप का रश्मिचित्र

(ख) बानजावीन अणुओं द्वारा परिक्षेपित रमन चित्र (रमन रेखाओं के नीचे चिह्न बने हैं)

और प्रयोग करने पर पता चला कि, ऊपर रमन रेखाएं उत्पन्न होनेका जो सीधा साधा कारण दिया गया है वह पर्याप्त नहीं है। यह तो हम कह चुके हैं कि यदि उत्तेजक रेखा (Exciting line) की भूलन संख्यामें से रमन रेखाकी भूलन संख्या घटाई जाय तो जो कम्पन संख्या आयेगी वह परिक्षेपक अणुकी किसी स्वसंख्या (परालाल भाग की) में से होगी। यह प्रत्येक अणु और प्रत्येक रमन रेखाके लिये नहीं कहा जा सकता। न तो प्रत्येक स्वसंख्याके लिये एक रमन रेखा होती है और न प्रत्येक रमनरेखाके लिये एक स्वसंख्या ही ढूँढ़ सकते हैं। कभी कभी रमन रेखाका सम्बन्ध एक "सुस्त भूलन संख्या" (Inactive frequency) से होता है। पर न तो इस विषय पर पूरी पूरी खोज ही हुई और न इस लेखमें हम अधिक गहन जाना चाहते हैं।

अब हम कुछ विशेष वस्तुओंके रमन चित्रका वर्णन करेंगे।

जल :—इसमें विशेष बात यह है कि रेखा न आकर रमन चित्रमें पट्टियाँ आती हैं परन्तु यदि बरफ़का चित्र पट लिया जाय तो यही पट्टियाँ सिमट कर कुछ २ रेखा रूप हो जाती हैं। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि पानीके अणु बरफमें रवेके रूपमें होते हैं और इसी सुसंगठनके कारण कुछ कुछ रेखाएं आने लगतीं हैं। कुछ रवोंमें जल "रवों के जल" के रूपमें रहता है। इस जलके कारण जो रमन रेखाएं होती हैं वह भी तीक्ष्ण होती हैं। इसलिये रवोंमें स्थित जल विशेष रूप से रहता है।

बिल्लौरमें ६ या ७ रमन रेखाएं आती हैं। अभी तक इनका अर्थ क्या है यह ठीक रीतिसे नहीं कहा जा सकता। यह मालूम होने पर बिल्लौर के प्रकाश सम्बन्धी गुणों और इसके रमन असरका अवश्य कोई घनिष्ट सम्बन्ध निकलेगा।

साधारण नमकसे प्रयोग करने पर कोई भी रमन रेखा नहीं पाई गई। नमक ही नहीं पर कई और भी ऐसे लवण हैं जिसमें रमन रेखा नहीं मिलतीं। सम्भवतः रवेकी गठन और रमन असर का कोई ऐसा सम्बन्ध है कि इन रवोंमें रमन रेखाएं नहीं आतीं।

बहुतसे कार्बनिक द्रवों पर प्रयोग किये गये हैं। एक तो इन द्रवोंसे काम करना सरल है, दूसरे एक पूरी श्रेणीके अध्ययनसे किस प्रकारके परमाणु समूहोंमें कैसे कम्पन होते हैं यह पता चल सकता है। एक ही परमाणु समूह कई तरहके बन्धनोंमें किस प्रकार झूलन संख्या बदल सकता है यह भी पता चलेगा। इसी दृष्टिसे बानजावीन, मद्य, विषमयोगी (Paraffin) इत्यादि वस्तुओंसे प्रयोग किये गये हैं। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इन प्रयोगोंसे अणुओंकी आंतरिक रचनाके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री मिली है। आगे का काम इन ही फलोंको एकत्रित कर सुसंगठित करना होगा।

वायव्य

वायव्य या गैसोंका अध्ययन और भी मनोरंजक है। बहुतसे गैस जैसे उद्जन, ओषजन, अमोनिया, कर्बन द्वि ओषिद इत्यादि व्यवहृत हुए। उद्जन और ओषजन पर तो द्रव रूपमें अर्थात् बहुत थोड़े तापक्रम पर प्रयोग किया गया। उद्जनमें पाया गया कि इस पदार्थके दो प्रकारके अणु हैं जिनका अस्तित्व अभी तक वैज्ञानिकोंकी कल्पनामें ही समझा जाता था। दोनों प्रकारके अणु अपनी अपनी रमन रेखाएँ देते हैं और इन रेखाओंके अध्ययनसे यह भी पाया गया कि एक प्रकारके अणु धीरे धीरे दूसरे प्रकारमें भी परिवर्तित होते रहते हैं।

उदहरिकाम्ल परके प्रयोगोंसे और भी एक अद्भुत बात प्रगट हुई। रमन चित्रमें एक रेखा ऐसी आती थी जिसका सम्बन्ध इसी वस्तुके परा-लाल शोषण चित्रपटसे था अवश्य, परन्तु यही रेखा शोषित नहीं होती थी अर्थात् शोषण चित्रपटमें इस रेखासे सम्बन्ध रखने वाले प्रकाशके स्थानमें कुछ न आता था। यह बात बहुत ही महत्व पूर्ण है और यही रमन असरके सिद्धान्तोंका मुख्य आधार है।

रमन असरका महत्व

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आधुनिक युगके आविष्कारोंमें रमन असरका स्थान बहुत ऊँचा है। अभी तो इसके जन्मको थोड़े ही दिन हुए हैं परन्तु इतने ही समयमें इसके कारण हमारे पहलेके विचारोंमें बहुत अन्तर हो गया है। अणुओं और कदाचित् परमाणुओंको हम दूसरे ही दृष्टि कोणसे देखने लगे हैं। इनके भीतर घुस कर इसका रहस्य खोज करनेका यह बहुत ही उपयोगी साधन सिद्ध हुआ।

परालाल भागमें प्रयोग करना कठिन तो है ही पर उतना ही महत्वपूर्ण भी है। रमन असरने सारे परालालको उठा कर मानों प्रत्यक्ष रूपसे

हमारी आंखोंके सामने रख दिया। जिन परालाल रेखाओंसे सम्बन्धित रेखायें रमन चित्रमें आजातीं हैं उनके विषयमें तो हम कुछ जानते ही हैं पर जो नहीं आतीं वह भी हमारी ज्ञानवृद्धि करती ही हैं। उनके रहस्योंका पता हम लगा ही सकेंगे।

अणुओंके और विशेष कर कार्बनिक समूह और बन्धनोंके विषयमें इसकी सहायतासे बहुत महत्व-पूर्ण खोजें हो सकती हैं। रमन रेखाओंके रूपमें अणु अपनी सारी कहानी आप ही लिख देंगे। उस कहानीको समझना, उस लिखावटको पहचानना ही हमारा काम होगा।

अभी तो जिस बड़े भारी क्षेत्रका दरवाज़ा हमारे लिये खुला है उसकी केवल झलक ही मिली है, भीतर क्या क्या रत्न होंगे यह समय ही बतायगा।

आचार्य रमनकी और खोजें भी वैज्ञानिक संसारमें अपना स्थान रखतीं हैं। आपने देखा कि अणुमें जो परमाणु होते हैं वह चारों ओर समान रूपसे नहीं बंटे होनेके कारण अणुमें कुछ वैज्ञानिक झुकाव पैदा कर देते हैं। इसे वैद्युतिक या चुम्बकीय विषमता (Electric or magnetic anisotropy) कहते हैं। अब यदि यह अणु किसी वैद्युतिक या चुम्बकीय क्षेत्रमें रखे जावें तो यह एक ओर झुकसे जाते हैं जिसका फल यह होता है कि प्रकाशकी एक रश्मि यदि इन अणुओंके समूहमेंसे निकले तो एक रश्मि दोमें बंट जाती है और भी कई प्रभाव होते हैं। इसकी जांचसे अणु की रचना और उसके विषयमें और बातें जानना संभव है। इस प्रकारकी खोज करनेके लिये रमन ने कलकत्तेकी कबाड़ियोंकी दूकानें ढूँढ कर एक बड़ा भारी वैद्युतिक चुम्बक तय्यार किया और इस पर खोज कर बहुतसे महत्वपूर्ण फल निकाले।

इसी विषयसे संबन्धित हाल हीमें रमनने कार्बनिक लवणोंके रंगके संबन्धमें एक सिद्धान्त प्रकाशित किया है। इस विषय पर प्रयाग विश्व-विद्यालयके डा० शिखिभूषण दत्तका एक सिद्धान्त है उसीको रमनने अपने प्रयोगोंके आधार पर भौतिक रूप दिया है।

यदि रौञ्जन किरणें कुछ अणुओं द्वारा परिक्षेपित हों तो कुछ चक्र बन जाते हैं। इस प्रकारकी खोज रमनकी प्रयोगशालामें बहुत दिनोंसे हो रही है और बहुतसे मौलिक और गवेषणा पूर्ण निबन्ध यहांके और विलायतके प्रमुख पत्रोंमें निकले हैं।

अभी तक रमनके सबसे बड़े आविष्कारका हमने नाम भी नहीं लिया है। वह है एक बड़ी प्रयोगशाला और एक प्रकारके वैज्ञानिक मठकी स्थापना। जिस प्रकार बौद्ध कालमें संघ बना कर भिक्षुक गण संसारसे सम्बन्ध छोड़ ज्ञानोपार्जन करते थे उसी प्रकार रमनने अपने चारों ओर वैज्ञानिकोंका ऐसा दल इकट्ठा कर दिया है जो जी तोड़ कर रमनकी प्रतिभाके प्रखर प्रकाशमें ज्ञान-मार्ग ढूंढनेमें लगा है। यह देशकी स्थायी सम्पत्ति है और इसीके लिये हम रमनके सबसे अधिक कृतज्ञ हैं।

अभी भारतीय जनता ने अपने महापुरुषों का सम्मान करना नहीं सीखा है। यूरोप में तो प्रत्येक देश रमनको सम्मान देनेमें स्पर्धा कर रहा है और भारतमें अभी सिवा कुछ लोगोंको छोड़ किसीको यह पता भी नहीं कि रमन हैं कौन; सम्मानित करनेकी बात तो दूर है। आज नोवेल पुरस्कार के मिलने पर स्काटलैंडका एक विश्व विद्यालय तो आपको उपाधि देकर सम्मानित कर रहा है पर क्या किसी भारतीय विश्व विद्यालय ने भी ऐसा प्रयत्न किया? अस्तु।

इस छोटे से लेख में रमन के समस्त वैज्ञानिक अनुसन्धानोंका तो नाम लेना भी सम्भव नहीं। केवल थोड़ा सा दिग्दर्शन मात्र हो सका है, अन्तमें विज्ञानकी ओरसे आचार्य सर वेङ्कट रमनको हार्दिक बधाई देकर हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वह आपको दीर्घजीवी करे और आपके द्वारा संसारमें भारत का स्थान दिनों दिन बढ़े। अभी तो आपके वैज्ञानिक जीवन का प्रौढ़ युग है और आशा है कि मानव जातिके ज्ञान भंडारकी आपकी प्रतिभासे श्री वृद्धि होती रहेगी।

विज्ञान परिषद् और वैज्ञानिक साहित्य

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

'विज्ञान' को प्रकाशित होते हुए लगभग १६ वर्ष हो गये हैं। इसप्रकार यह हिन्दी-साहित्य के बड़े ही पुराने मासिक पत्रोंमेंसे एक है। आजकलकी अग्रगण्य पत्रिकायें जैसे माधुरी, सुधा, चांद, विशाल भारत आदि—इसके सामने बहुत ही नयी हैं। केवल सरस्वती ही ऐसी है जो बहुत दिनों से हिन्दी की सेवा करती आ रही है।

सामान्यतः हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करना सभी पत्रिकाओंका उद्देश्य है, पर विज्ञानका प्रकाशन विज्ञान-परिषद् ने एक विशेष उद्देश्यसे प्रारम्भ किया था। वह उद्देश्य यह था कि हिन्दी-भाषा को इस योग्य बना देना कि उसके द्वारा गूढ़-तमसे लेकर सरल वैज्ञानिक-साहित्य तक व्यक्त किया जा सके। यह उद्देश्य कितना महत्वपूर्ण है इसके कहनेकी आवश्यकता ही नहीं। 'विज्ञान' विशेषज्ञोंका पत्र है और इसका विषय भी विशेष है। इस विशिष्टताके कारण ही इसे विशेष कठिनाइयां भी झेलनी पड़ती हैं।

'विज्ञान' की आँखोंके सामने हिन्दी-साहित्य का भविष्य सदा नृत्य करता रहता है। उसे वर्तमानकी तो चिन्ता नहीं है, वह आगे आने वाले मार्ग को निष्कण्टक बनाना ही अपना ध्येय समझता है। वह ऐसे साहित्यका निर्माण करना चाहता है जिसकी उपयोगिता आज चाहे कोई न समझे, पर आगे चलकर उसकी विशेषता अवश्य अनुभव होने लगेगी।

विज्ञान एक प्रकार से राष्ट्रीय पत्र है। जहाँ राजनीतिक राष्ट्रमें स्वातंत्र्य का आन्दोलन अनेक दृष्टियोंसे हो रहा है वहां विज्ञान द्वारा विदेशीय भाषाके स्थानमें स्वदेशी भाषाको पुनः संस्थापित करने का यत्न किया जा रहा है। स्वदेशी भाषाको इस योग्य बनाना अत्यन्त ही आवश्यक है कि सब प्रकारका साहित्य और विज्ञान इसके द्वारा व्यक्त किया जा सके। भाषाकी पराधीनता मानसिक पराधीनताके समान है, अतः प्रत्येक भारतीयको अपनी राष्ट्रभाषा के लिए कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिये।

हिन्दी साहित्यके निर्माण के लिये जिन संस्थाओं ने अब तक प्रशंसनीय कार्य किया है उनमें नागरी प्रचारिणी सभा काशी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का नाम उल्लेखनीय है। थोड़े दिनोंसे संयुक्त प्रान्तमें एक हिन्दुस्तानी एकेडेमी भी खोली गई है। अभी इसको काम करते हुए थोड़े ही दिन हुए हैं, अतः इसके विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता है। पर, हां, इससे जितनी आशा थी, और जितनी रुपये वाली यह संस्था है, उसके विचारसे इसे अभी कुछ सफलता नहीं मिली है। अस्तु।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पुराने काव्य ग्रन्थोंका उद्धार किया, हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में रिपोर्टें तैयार कीं। हिन्दी शब्द सागर नामक एक बृहद् कोष तैयार किया। नागरी प्रचारिणी-पत्रिका नामक एक सुन्दर और अत्युपयोगी पत्रिका प्रकाशित की। हिन्दी व्याकरणको भी संकलित किया। ये सब कार्य्य इस संस्थाको अमर रखने के लिये पर्याप्त हैं। वैज्ञानिक साहित्यको प्रोत्साहित करनेके लिये उसने एक वैज्ञानिक कोष भी तैयार कराया जिसका अब दूसरा संस्करण भी कई भागोंमें निकल रहा है।

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी-साहित्यके प्रति जनताकी रुचि आकर्षित करनेका तो बहुत कुछ प्रयत्न किया और इसमें उसे सफलता भी मिली, पर हिन्दी-साहित्यके निर्माणमें उसने बहुत ही थोड़ा भाग लिया। हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका मुख्य उल्लेखनीय कार्य्य परीक्षाओं की स्थापना करना है और इन परीक्षाओं द्वारा निस्संदेह बहुतसे व्यक्तियोंमें हिन्दीके प्रति रुचि भी बढ़ गई है। कुछ पुस्तकें जो अन्यथा कठिनतासे बिकतीं, अब परीक्षाओंके पाठ्यक्रममें आ जानेके

कारण अधिक बिक जाती हैं, और प्रकाशकों को इससे प्रोत्साहन मिलता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने वैज्ञानिक साहित्य के सम्बन्धमें कुछ भी नहीं किया। कुछ दिनों हुए उन्होंने रसायन-प्रवेशिका नामक एक पुस्तिका निकाली थी और उसी प्रकारकी अन्य पुस्तकें भी निकलने वाली थीं, पर न जाने क्यों, उनका प्रकाशन बन्द हो गया।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने भी अभी कुछ अधिक काम नहीं किया है। इस एकेडेमीमें इतिहास-वेत्ताओंकी प्रमुखता प्रतीत होती है। इतिहासके पश्चात् कहानी (उपन्यास या नाटक) अथवा कविता-साहित्यसे रुचि रखने वाले व्यक्तियों की प्रधानता है। इस प्रकार इनकी सम्पूर्ण शक्ति इसी प्रकारके साहित्यमें लग रही है। इस प्रकारके साहित्यके लिये तो अन्य संस्थायें भी थीं, और इस प्रकारकी पुस्तकोंकी अधिक खपत होनेके कारण अन्य प्रकाशक भी इन ग्रन्थों को प्रकाशित कर सकते थे। इस बातका हमें अवश्य खेद है कि हिन्दुस्तानी एकेडेमीमें कोई भी वैज्ञानिक नहीं है। हिन्दीके प्रसिद्ध प्रकाशकों ने वैज्ञानिक साहित्यकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। नवलकिशोर प्रेस, इण्डियन प्रेस, गङ्गा पुस्तक माला, ज्ञान मंडल, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, खड्ग विलास प्रेस, आदि अग्रगण्य प्रकाशकोंका ध्येय तो केवल उन्हीं पुस्तकोंको प्रकाशित करने का रहा है जिनकी साधारण जनतामें मांग है और उनकी व्यापारिक नीतिके अनुसार यह बहुत कुछ ठीक भी है, क्योंकि जो पुस्तकें बिकें ही नहीं, उनके लिये धन लगाया ही क्यों जाय! अतः इन प्रकाशकों का साहित्य काव्य, इतिहास, उपन्यास, कहानियों और कुछ मनोरञ्जक विषयों तक ही सीमित रहा है। कुछ सामान्य बालोपयोगी साहित्यकी भी अभिवृद्धि की गई है। धार्मिक साहित्यकी भी अधिक खपत होनेके कारण कुछ प्रकाशकों ने इस विषयके प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थोंका भी सम्पादन किया है।

शिक्षा विभाग और विज्ञान

अँग्रेजी स्कूलोंमें विज्ञानकी बहुत दिनों से शिक्षा होती आई है। पहले पहल तो लगभग सभी विषयोंमें विदेशी प्रकाशकोंका ही आधिपत्य था। मैकमिलन, लांगमेन, ब्लैकी इत्यादि संसार-मान्य-प्रकाशकोंके हाथमें ही ग्रन्थोंका बनवाना, छपाना और बेचना था। बहुत दिनों तक आरम्भसे लेकर ऊपर तक शिक्षाका माध्यम अंग्रेज़ी ही रहा। विज्ञान, इतिहास, भूगोल और गणितकी पुस्तकें बहुधा विदेशियोंकी बनाई हुई और विदेशी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित विदेशी भाषा—अंग्रेजीमें रहती थीं। इस प्रकार बहुत दिनों तक काम चलता रहा और इसका फल यह हुआ कि एक ऐसा वायु मण्डल तैयार कर दिया गया जिसकी धारणा यह रही कि अंग्रेज़ीके अतिरिक्त और किसी माध्यममें शिक्षा देना असम्भव एवं हानिकर दोनों ही है। ऐसी प्रवृत्ति की विद्यमानतामें भला यह कब सम्भव था कि हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका कुछ भी विकास हो सकता। जब शिक्षा अंग्रेज़ीमें ही मिलती थी तो भला कौन ऐसा मनचला होगा जो हिन्दीमें व्यर्थ ही ग्रन्थ रचे।

ऐसी परिस्थितिमें हिन्दी प्रेमियोंको एक विशेष दुविधामें डाल दिया गया। जब कोई व्यक्ति हिन्दी माध्यमका प्रस्ताव रखनेकी धृष्ठता एवं साहस करता तो उससे कह दिया जाता कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य है ही नहीं, तो फिर भला हिन्दीमें शिक्षा दी कैसे जा सकती है। यही युक्ति भूगोल, इतिहास आदिके विषयोंमें रहती थी। जब उपयोगी ग्रन्थ बने ही नहीं, तो शिक्षा विभाग किन ग्रन्थोंको पाठ्यक्रम में स्वकृति देगा। यह थी शिक्षा-विभागके उच्चाधिकारियोंकी युक्ति। दूसरी ओर प्रस्ताव-कर्त्ताओंकी यह धारणा थी कि जबतक

शिक्षा विभाग हिन्दी माध्यमके सिद्धान्तको स्वीकार न कर लेगा तब तक कोई प्रकाशक हिन्दीमें पाठ्य-ग्रन्थ प्रकाशित करेगा ही क्यों। ऐसा करना तो लेखक एवं प्रकाशक दोनोंके लिये ही व्यर्थ होगा।

इस प्रकारकी उलझन दोनों ही ओरसे बराबर रही। जब कभी इस उलझनसे छुटकारा मिलने की कुछ आशा होती, तो हिन्दी-उर्दूका झगड़ा, अन्य प्रान्तीय भाषाओंका प्रश्न और प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयां प्रस्तुत कर दी जातीं, और अन्ततोगत्वा फल यह होता कि शिक्षा विभाग की नीति अचल रहती। वर्षों तक ऐसा ही होता रहा।

राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव

राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस), लिबरल लीग आदि अन्य संस्थाओं द्वारा भारतवर्षमें जातीयता की एक नई लहर पैदा कर दी गई। समस्त भारतवर्षको राजनीतिक दृष्टिसे एक सूत्रमें बांधने का प्रयत्न होने लगा। स्वत्वोंके अधिकारके लिये भारतवासी चिन्तित होने लगे। भारतवर्षको एक राष्ट्र बनानेके लिये एक राष्ट्रीय भाषाकी आवश्यकता हुई। महामना श्रीमालवीय जी, एवं महात्मा गान्धी जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मंचसे हिन्दीको राष्ट्रीय भाषा बनानेकी घोषणाकी। वस्तुतः हिन्दी समस्त भारतीयोंकी स्वीकृत भाषा है। कलकत्ता, बम्बई और देहली तीनों विभिन्न और सुदूर स्थानोंमें हिन्दीका ही साम्राज्य है, और भारतवर्षके व्यापारी जो इस देशके कोने कोने में फैले हुए हैं मुख्यतः हिन्दीका व्यवहार करते हैं।

इस राष्ट्रीय भाषाके लिये जिस लिपिको स्वीकृत किया गया, वह देवनागरी लिपि है। धार्मिक संस्कृत ग्रन्थोंकी दृष्टिसे इस विषयमें किसीको आपत्ति हो ही नहीं सकती है क्योंकि चाहें कोई मद्रासका तामिल, तेलगू बोलने वाला हो, चाहें बंगालका बंगाली अथवा गुजरातका गुजराती, सबके सामान्य ग्रन्थ वेद, दर्शनशास्त्र, उपनिषद्, पुराण, स्मृति आदि सभी देवनागरी लिपिमें ही अधिकांशतः प्रकाशित होते हैं। प्रत्येक-स्थलीय धर्म-जिज्ञासु इस लिपिसे भली प्रकार प्रचलित है।

आर्य समाजकी उन्नतिके साथ साथ हिन्दी साहित्यकी उन्नति अधिक हुई है। पंजाबमें जहाँ पर उर्दूका अभेद्यगढ़ था अब हिन्दीका वायुमंडल बढ़ता जा रहा है। संयुक्त प्रान्तके हिन्दू पहलेकी अपेक्षा अब हिन्दी अधिक पढ़ते हैं, और उर्दू कम। महात्मा गांधीके प्रोत्साहनसे मद्रास प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इधर आसाममें भी साहित्य सम्मेलनकी ओरसे प्रचार करनेकी आयोजना हो रही है।

भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी भावना जैसे जैसे प्रबल होती जा रही है, वैसे ही वैसे हिन्दीकी ओर लोगोंका ध्यान अधिक आकर्षित हो रहा है। राजपूताना, मध्य भारत, मध्य प्रान्त और महाराष्ट्र प्रान्तमें तो हिन्दी ही हिन्दी है। बिहारकी एक मात्र भाषा हिन्दी ही है। इस हिन्दीका प्रस्तार प्रवासी-देशोंमें भी होरहा है। दक्षिणी अफ्रीका, जावा, सुमात्रा, फीज़ी अथवा जहां कहीं भी भारतीय पहुंचे हैं, उन्होंने हिन्दी को नहीं छोड़ा है। उनकी कई पत्र पत्रिकायें भी हिन्दीमें प्रकाशित होती हैं। हिन्दीके प्रति यह भावना प्रतिदिन प्रौढ़ होती जा रही है। हमारी राष्ट्रीय जागृतिके साथ साथ राष्ट्रीय भाषा भी अधिक सर्व व्यापिनी होती जा रही है। हिन्दी के प्रस्तारकी दृष्टिसे यह अवस्था बहुत ही आशा-प्रद है।

इस राष्ट्रीय भावनाके वातावरणका ही यह प्रभाव समझना चाहिये कि अधिक कठिनाइयाँ और साहित्यिक अभावके होते हुए भी अब शिक्षा विभाग ने स्कूली कक्षाओंकी शिक्षाका माध्यम हिन्दी उर्दू स्वीकृत किया है, और समय ने इस बातको प्रमाणित कर दिया है कि हिन्दी भाषामें भी अंग्रेज़ी के समान उपयोगी ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, और यही नहीं, विद्यार्थी अपनी भाषामें अधिक सुन्दरता

से विषयको समझ सकते हैं और अपने भावोंको व्यक्त कर सकते हैं। हमारे प्यारे राष्ट्रके लिये हमारी प्यारी राष्ट्रभाषा भला हितकर क्यों न होगी !

विज्ञान परिषद् का दृष्टिकोण

तात्कालिक परिस्थितिकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये अन्य संस्थायें और प्रकाशक हैं ही। पर भविष्य निर्माण का स्वप्न देखनेके लिये विज्ञान परिषद्की आयोजना की गई थी। विज्ञान परिषद् ने अपना उद्देश्य इन शब्दोंमें प्रकट किया है –

'विज्ञान परिषत्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।'

ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान परिषत्के जन्मदाता भविष्यके एक बहुत ही मधुर स्वप्नकी कल्पना कर रहे थे। विज्ञान परिषद्के द्वारा न केवल वे भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी अभिवृद्धि ही देखना चाहते थे, प्रत्युत वे इसे वैज्ञानिक खोज की भी एक विशेष संस्था बनादेना चाहते थे। कदाचित् उनके सामने रायल सोसायटी लन्दन, अथवा पेरिसकी वैज्ञानिक एकेडेमियोंके चित्र आदर्श रूप नाचते हुए प्रतीत होते थे।

विज्ञान परिषद्की स्थापना धूमधामसे की गई थी। कार्य्यकी कमी तो थी नहीं, पर कार्य्यकर्त्ताओं की कमी सब जगह रहती है। उद्देश्य कितना ही उच्च क्यों न बना लिया जाय पर कार्य्य करनेकी शक्तिकी मर्य्यादा होती है; स्फूर्ति और उत्साहका प्रवाह समतल भूमि पा कर धीमा पड़ जाता है। अतः यह कहना तो कठिन है कि विज्ञान परिषद्ने अपने सर्वाङ्ग उद्देश्यमें सफलता पाई। उद्देश्यकी पूर्तिके बहुतसे साधनोंको तो यह आरम्भ भी नहीं कर सका है। यदि इसने कुछ कार्य्य किया है तो केवल इतना ही कि यह 'विज्ञान' नामक मासिक-पत्रको बराबर प्रकाशित करता रहा है और उसने कुछ उपयोगी वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण भी किया है।

विज्ञान परिषद्के ग्रन्थ

विज्ञान परिषद्का उद्देश्य साधारणतः हिन्दी और उर्दू भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न करना रहा है। पर यह स्वाभाविक ही है, कि उर्दूकी अपेक्षा हिन्दीसे अधिक रुचि रखने वालों की ही विज्ञान परिषद्में अधिक प्रधानता रही है। इस दृष्टिसे इस परिषद्का मुख्य कार्य्य हिन्दीमें ही हुआ है।

परिषद् के सभ्योंकी बहुमत सम्मतिसे 'विज्ञान' पत्रिका हिन्दी में निकालनी आरम्भकी गई, और इस पत्रिका द्वारा वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणका उद्देश्य भी दृष्टिमें रखा गया। साधारणमें वैज्ञानिक उपयोगी लेखोंको पुस्तकाकार छपवाना आरम्भ किया गया। इस प्रकार 'विज्ञान' ग्रन्थमालाकी नींव डाली गई। इनको पुस्तक अथवा ग्रन्थ कहना तो उपयुक्त न होगा, प्रत्युत इन्हें 'विज्ञान'-ट्रैक्ट-माला समझना चाहिये।

इन ट्रैक्टोंने वैज्ञानिक साहित्यकी ओर लोगों की रुचिको विशेष आकर्षित किया और ये उपयोगी भी सिद्ध हुए। कुछ उपयोगी ट्रैक्ट ये हैं—

खेती और वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी

१—वर्षा और वनस्पति—
२—फ़सलके शत्रु } ले० पं० शंकर राव जोशी

३—आलू—श्रीगङ्गा शङ्कर पचौली—

स्वास्थ्य सम्बन्धी—

१—मनुष्यका आहार—ले० गोपीनाथ गुप्त

२—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० श्री गोपाल नारायण सेनसिंह

रसायन—

१—सुवर्णकारी—ले० श्री गङ्गाशङ्कर पचौली

२—दियासलाई और फोस्फोरस—श्री रामदास गौड़

इनके अतिरिक्त विज्ञान परिषद् ने कुछ उपयोगी पुस्तकोंको भी प्रकाशित किया। यह बड़ी आवश्यकता थी कि आरम्भिक विद्यार्थियोंके योग्य कुछ पुस्तकें निकाली जायँ, और इस दृष्टिसे 'विज्ञान प्रवेशिका' के दो भाग प्रकाशित किये गये। ये पुस्तकें उस समय प्रकाशित की गई थीं जब विज्ञानकी शिक्षाका माध्यम हिन्दी न था। इस समय स्कूलोंमें सातवीं और आठवीं कक्षाओंमें विज्ञानके जिस पाठ्यक्रमकी शिक्षा दी जाती है उसका समावेश इन दोनों पुस्तकोंमें है। इन दोनों पुस्तकोंका उर्दू अनुवाद भी मिफताह-उल-फनून नामसे प्रकाशित किया गया है। इन पुस्तकोंकी उपयोगिता आजकल भी बहुत है।

स्कूली विद्यार्थियोंके योग्य 'ताप' नामक एक पुस्तक श्रीप्रेमवल्लभ जोषी जी ने लिखी। विज्ञान परिषद्की इस पुस्तक ने बहुत दिनों तक एक बड़ी आवश्यकताको पूरा किया। इसका नवीन परिवर्धित संस्करण भी अब प्रकाशित होने वाला है, जिससे एफ० ए० कक्षा तक 'ताप' विषयक ज्ञान हिन्दीमें प्राप्य हो जायगा।

प्रो० सालिगराम जी भार्गव ने 'चुम्बक' नामक एक उपयोगी भौतिक विज्ञानकी पुस्तक लिखी। भारतीय विश्वविद्यालयोंकी एफ० ए० परीक्षाओंमें चुम्बक विषयके जितने ज्ञानकी आवश्यकता होती है वह इस पुस्तकके पढ़नेसे हो सकता है। कई अंशोंमें यह पुस्तक अपनी कोटिकी अंग्रेज़ी पुस्तकों से भी अच्छी है। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें, 'ताप' और 'चुम्बक' इन दोनों पुस्तिकाओंको एक विशेष स्थान मिलना चाहिये क्योंकि इन दोनों पुस्तकोंको प्रकाशित करके विज्ञान परिषद् ने यह सर्व प्रथम सिद्ध कर दिया कि गूढ़से गूढ़ वैज्ञानिक विषय भी हिन्दी भाषामें व्यक्त किये जा सकते हैं।

गणित और ज्योतिष

हिन्दीके गणित और ज्योतिष साहित्यके लिये हमें दो व्यक्तियोंका विशेष कृतज्ञ होना चाहिये, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और दूसरे श्रीमहावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव पं० सुधाकर जी ने चलन कलन और चलराशि कलन (integral and differential calculus) नामक उच्चकोटिके ग्रन्थोंको लिख कर हिन्दीकी जो सेवाकी उसकी जितनी प्रशंसाकी जाय, थोड़ा ही है। वस्तुतः भारतीय भाषाओंमें हिन्दीको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि इसमें गणितके इतने उच्च ग्रन्थ विद्यमान हैं।

अभी थोड़े ही दिन हुए, विज्ञान परिषद् ने सुधाकर द्विवेदी जी को ६०० पृष्ठकी मोटी ताज़ी 'समीकरण मीमांसा' (Theory of Equations) नामक पुस्तकको प्रकाशित किया है। यह पुस्तक अपने विषयकी अकेली ही है, और सुधाकर जी ने सिद्ध कर दिया है कि गणितके सर्वोच्च विषय भी हिन्दीमें बड़ी सुगमतासे प्रकट किये जा सकते हैं।

श्रीसुधाकर जी के चलन कलन और चलराशि कलन साधारण बी० एस-सी० कक्षा के उपयोगके ग्रन्थ हैं। 'विज्ञान' और विज्ञान-परिषद् को यह सौभाग्य मिला कि इस विषयको कुछ आगे और भी बढ़ावे। मित्रवर श्रीअवध उपाध्याय जी ने चलन समीकरण (Differential Equations) पर एक पुस्तिका लिखी जो विज्ञान भाग २२ की २,३,४,५, और ६ संख्याओंमें ४ अध्यायोंमें प्रकाशितकी गई। अच्छा होता यदि इसका पुस्तकाकार पुनर्संस्करण भी हो जाता।

पं० लक्ष्मीशङ्कर जी मिश्र ने हिन्दीमें त्रिकोणमिति (Trigonometry) नामक एक पुस्तक लिखकर इस कमी को दूर किया था। आवश्यकता है कि इसका परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हो जावे।

बीजज्यामिति अथवा भुजयुग्म रेखा गणित (Analytical or coordinate geometry) की आवश्यकताका अनुभव बहुत दिनोंसे किया जा रहा था। कई वर्ष हुए श्रीब्रजराज जी ने इस विषयके एक दो लेख भी विज्ञानमें प्रकाशित कराये, पर यह कार्य्य आगे न बढ़ सका। इस विषयकी उपयोगिता समझते हुए मैंने बीजज्यामिति पर एक पुस्तक लिखी जो तीन चार मासमें पूर्ण हो कर जनताके सामने आ जायगी, और इसको प्रकाशित करके विज्ञान परिषद् एक पुरानी आवश्यकताको पूर्ण कर देगा।

श्रीमहावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यके पुराने और उद्यमी प्रेमी हैं, आपने विज्ञान प्रवेशिका भाग २ लिख कर उत्साह का परिचय दिया ही था पर आपका चिरस्थायी कार्य्य 'सूर्य सिद्धान्त' का विज्ञान-भाष्य है। लगभग ७ वर्षके निरन्तर परिश्रमसे आप योग्यतापूर्वक यह भाष्य कर रहे हैं। इस ग्रन्थके ४ भाग जिसमें १००० के लगभग पृष्ठ हैं पुस्तकाकार जनता को विज्ञान परिषद् द्वारा भेंट हो चुके हैं, जिनमें सूर्य सिद्धान्तके मध्यमाधिकार स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परिलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार और नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारका उल्लेख है। सूर्य सिद्धान्त का भूगोलाधिकार प्रकाशित हो रहा है। इस विज्ञान भाष्यकी विशेषता यह है कि इसके अध्ययनसे आधुनिक और प्राचीन दोनों ज्योतिष शास्त्रोंका समान ज्ञान हो सकता है। यदि श्रीवास्तव जी अथवा अन्य कोई व्यक्ति सामान्य ज्योतिष शास्त्र की आधुनिक ढंग पर क्रमित पुस्तक भी लिख दे तो बहुत ही अच्छा हो।

रसायन शास्त्र

रसायन एक बहुत ही उपयोगी एवं विस्तृत विषय है, और इस सम्बन्धमें लोगोंका ध्यान बहुत दिनोंसे आकर्षित हुआ है। श्रीमहेशचरण सिंह जी ने रसायन शास्त्र (हिन्दी कैमिस्ट्री) नामक एक पुस्तक बहुत दिन हुए लिखी थी। गुरुकुल काँगड़ीसे प्रो० रामशरणदास सकसेना ने गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis) नामक एक अत्युपयोगी पुस्तक प्रकाशित की। प्रो० गोपाल स्वरूपजी भार्गवने 'मनोरञ्जकरसायन' नामक एक मनोरञ्जक और उपयोगी पुस्तक लिखी। विज्ञान परिषद्की प्रकाशित पुस्तकोंमें इस पुस्तकका एक विशेष स्थान है।

रासायनिक पारिभाषिक शब्दोंका निर्वाचन होनेके पश्चात् मैंने यह आवश्यक समझा कि रसायनकी कुछ उच्च पुस्तकें भी निकलनी चाहियें। इस उद्देश्यसे विज्ञान परिषद् ने मेरी लिखी हुई 'साधारण रसायन' (Inorganic chemistry) और 'कार्बनिक रसायन' (Organic chemistry) नामक पुस्तकें प्रकाशित कीं। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ेसे संशोधन एवं परिवर्धनके पश्चात् ये पुस्तकें बी० एस-सी० के पाठ्यग्रन्थोंमें स्थान प्राप्त कर सकती हैं। डा० निहालकरण सेठीके सहयोगसे मैंने 'वैज्ञानिक परिमाण' नामक एक और ग्रन्थ तैयार किया जिसमें पदार्थोंके रासायनिक और भौतिक गुणोंकी सारिणियाँ (Tables of physical and chemical constants) हैं जिनका उपयोग विज्ञानकी प्रयोगशालाओंमें अनिवार्य्य है।

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस, ने अभी हाल ही में श्रीफूलदेव सहाय वर्मा की प्रारम्भिक रसायन नामक पुस्तिका दो भागोंमें प्रकाशित की है जो हाईस्कूल और आयुर्वेद विद्यालयके छात्रोंके उपयुक्त है।

वनस्पति शास्त्र और जीव विज्ञान

वनस्पति विज्ञानके विषयमें हिन्दी साहित्यज्ञों का ध्यान बहुत ही कम आकर्षित हुआ है। विज्ञान परिषद् ने भी अभी तक कोई ग्रन्थ नहीं तैयार किया है। कृषि शास्त्र सम्बन्धी लेख

लिखने वालोंमें पं० शंकरराव जोशीजीका नाम सर्वोपरि उल्लेखनीय है जिनकी दो पुस्तिकायें 'वर्षा और वनस्पति' और 'फसलके शत्रु' विज्ञान-ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो चुकी हैं। इधर तीन वर्षके अन्दर विज्ञानमें जोशी जीके वनस्पति सम्बन्धी लेख लगभग क्रमशः ही प्रकाशित होते रहे हैं जिनके संग्रहसे एक अच्छी पुस्तक तैयार हो सकती है। श्री केशव अनन्त पटवर्धन जी की पुस्तक 'वनस्पति शास्त्र' इस विषयकी एक अच्छी पुस्तक है।

जीव विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकका सर्वथा अभाव है, और हमारा अनुरोध है कि कोई जीव विज्ञान-वेत्ता इस ओर कुछ काम अवश्य करे।

शरीर विज्ञान और आरोग्य शास्त्र

प्राचीन ढंगके वैद्यक ग्रन्थोंकी हमारे यहाँ कमी नहीं है पर नवीन पद्धतिके शरीर विज्ञान और चिकित्साकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। श्री त्रिलोकीनाथजी वर्माकी 'हमारे शरीरकी रचना' नामक पुस्तक विशेष ख्याति प्राप्त कर ही चुकी है और इसका आदर भी ख़ूब किया गया है, पर आवश्यकता है कि इस विषय पर अधिक विस्तार से लिखा जाय। बैक्टीरियोलोजी, पैथोलोजी, और अन्य दृष्टियों से इस विषयकी मीमांसा परमावश्यक है।

इस विषयमें आचार्य्य धन्वन्तरि मण्डल, फगवाड़ा, कपूरथला स्टेट, ने भी प्रशंसनीय कार्य्य किया है। कविराज शिवशरण वर्मा जी ने इस मण्डलकी ओरसे निम्न अत्युपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिसके कारण हिन्दी संसार उनका सदा ऋणी रहेगा—

१—फेफड़ोंकी परीक्षा वा उनके रोग।

२—मूत्र परीक्षा (पाश्चात्यमानुसार)

३—बुद्धिमतीदाई या ग्रहस्थ सुधा शास्त्र (पञ्जाबीमें)

४—अस्थियों वा संधियोंके रोग

५—व्रणबन्धन अर्थात् पट्टियां (on bandaging)

आपने एक पुस्तक प्रसव विज्ञान (धात्री विद्या) पर भी लिखी थी, पर पता नहीं कि यह प्रकाशित हुई या नहीं। कविराज वर्मा जीको विशेष प्रोत्साहन मिलने की आवश्यकता है। प्रसूति शास्त्र पर श्रीप्रसादीलाल झा ने भी एक अच्छी पुस्तक प्रकाशित की है। विज्ञापनबाजों की यों तो बहुत सी अनेक पुस्तकें हैं पर वे न तो विश्वसनीय ही हैं और न वे वैज्ञानिक पद्धति पर ही लिखी गई हैं।

औद्योगिक विज्ञान

विज्ञान और उद्योगका घनिष्ठ सम्बन्ध है पर इस विषयकी पुस्तकों का हिन्दीमें सर्वथा अभाव है। प्रैक्टिकल फोटोग्राफी नामक एक पुस्तक श्रीहरिगुलाम जी ठाकुर ने १५ वर्ष हुए प्रकाशित की थी। यह हर्षकी बात है कि इस विषयकी बहुत बड़ी और सर्वांगपूर्ण पुस्तक डा० गोरख-प्रसाद जी ने लिखी है जिसे इण्डियन प्रेस प्रकाशित कर रहा है।

औद्योगिक रसायन सम्बन्धी अनेक लेख विज्ञानमें प्रकाशित किये गये हैं जिन्हें संकलित, संशोधित और सम्पादित करके औद्योगिक रसायन पर एक अच्छी पुस्तक तैयार हो सकती है। इस सम्बन्धमें कुछ उल्लेखनीय लेख निम्न हैं—

१—रंगने की विधि—सत्येश्वर घोष—भाग २१, २४६

२— ... ... " —भाग २२, १०४

३—प्राकृतिक रंग बनाने की विधि—शंकरलाल जिन्दल—भाग २२, १००

४—बनावटी नीलका व्यवसाय—जटाशङ्कर मिश्र—भाग २७, १६६

५—तन्तु वर्णोदन या तन्तुओंका रंगना—ब्रजबिहारीलाल दीक्षित—भाग २६,१

६—तैलोंका उदजनीकरण—ब्रजबिहारीलाल दीक्षित—भाग ३०, ६०

७—कृत्रिमतन्तु—ब्रजबिहारीलाल दीक्षित—भाग २८, १५२

८—पशुतन्तु ... " "—भाग २८, ५१

९—वनस्पति तन्तु " " —भाग २८, २४१

१०—कृत्रिम रेशम—अमीचन्द्र विद्यालंकार—भाग २३, २६९

११—पैट्रोलियम—धोरेन्द्र चक्रवर्ती—भाग २३, २४७

१२—धुनायी—जी० एस० पथिक—भाग २३, ६९

१३—साबुन—ब्रजबिहारीलाल दीक्षित—भाग २७, १६१

१४—भक्ष्य पदार्थ और उनमें मिलावटकी मात्रा—ब्रजबिहारीलाल दीक्षित—भाग २७, १४९

१५—भक्ष्य पदार्थमें मिश्रित वस्तुएं व उनकी जांच—लक्ष्मणसिंह भाटिया—भाग ३१, ६०

१६—कृत्रिम कस्तूरी—विष्णुगणेश नाम-जोशी—भाग २७, २०९

१७—वार्निश—जटाशङ्कर मिश्र—भाग २८, ४९

१८—सुगन्धित तैलोंका निकालना—राधानाथ टंडन—भाग २८, २७३ भाग २९, ६७

१९—सोडावाटर और उसका व्यवसाय—कृष्णचन्द्र—भाग २९, १४०

२०—खाण्ड का व्यवसाय—भीमसेन—भाग २९, २७७ भाग ३०, १

२१—कृषि और नोषजन—हीरालाल दुबे—भाग ३०, २३०

२२—बिजली की भट्टियाँ— " —भाग ३०, १३

२३—कागज की लुगदी—परमात्मा प्रसाद माथुर—भाग ३१, ७४

२४—लाख— परमात्मा प्रसाद माथुर—भाग ३१, १६६

इस प्रकार अन्य भी बहुतसे लेख हैं जिनका संग्रह और उचित संशोधन करके एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक तैयार की जा सकती है। यदि कोई सम्पन्न प्रकाशक इस कार्यको हाथ में ले तो हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार हो सकता है।

'विज्ञान' की नीति

इस सोलह वर्षकी आयुमें 'विज्ञान' ने बहुत कुछ कर डाला है, इसमें तो सन्देह नहीं, पर इसके सामने अभी इतना काम करनेको शेष है, कि वर्षोंमें भी यह कार्य्य पूरा नहीं हो सकता है। संसारमें विज्ञानकी प्रगति बड़े ज़ोरोंसे हो रही है, पर अभी हिन्दी-साहित्य कमसे कम १५० वर्ष पिछड़ा हुआ है। अब जितने समयमें हम इस कमी को पूरा कर पावेंगे, उतने समयमें दुनिया और आगे बढ़ जायगी। अतः एक 'विज्ञान' पत्रिका और एक विज्ञान-परिषद्से तो यह काम चल नहीं सकता है। इसमें समस्त हिन्दी प्रेमियोंके, इतना ही नहीं, समस्त भारतवासियों के सहयोगकी आवश्यकता है।

यह कहा जा चुका है कि 'विज्ञान' भविष्यका स्वप्न देखता है। जब हिन्दी साहित्य वाले मनोरञ्जक वैज्ञानिक विषयोंसे भी घबड़ाते थे, तब 'विज्ञान' ने सामान्य जनताके मनोरञ्जनार्थ सरल और सरस वैज्ञानिक लेख निकाले। यह हर्षकी बात है कि अब परिस्थिति बदल गई है। हिन्दी की अन्य पत्रिकाओं ने विज्ञान-वैचित्र्य, विज्ञान वाटिका आदि शीर्षक खोल रखे हैं जिनमें भव्य-चित्रित लेख प्रकाशित होते ही हैं। एक प्रकारसे विज्ञान ने अपना प्रारम्भिक मनोरञ्जक कार्य्य दूसरी पत्रिकाओंको सौंप दिया है और यदि 'विज्ञान' में पहलेके समान अथवा अन्य पत्रिकाओंके समान मनोरञ्जक लेख नहीं निकलते हैं, तो हमारे पाठकों और शुभेच्छुकोंको रुष्ट न होना चाहिये।

जब मनोरञ्जक विज्ञानका कार्य्य दूसरी पत्रिकायें भी करने लगीं, तो विज्ञानको ऐसे कार्य्यसे अवकाश मिल गया, और आज कल उसका ध्यान पहलेकी अपेक्षा कुछ उच्च साहित्य उत्पन्न कर देनेकी ओर है। हमें इसमें सन्तोष है कि यद्यपि इन तीन चार वर्षोंमें हम विज्ञानको सरस न बना सके और इसके कारण ग्राहक संख्या कम हो गई और हमें आर्थिक सङ्कट भी उठाना पड़ा, पर इस समयमें हमने हिन्दी विज्ञानका एक ऐसा स्थायी साहित्य उत्पन्न कर दिया है, जिसकी उपयोगिता, चाहें आज न समझी जावे, पर कुछ दिनों बाद अवश्य ही प्रकट हो जावेगी। 'विज्ञान' की नीति ही यह है कि वह भविष्यका निर्माण करे। जिस प्रकारके साहित्य उत्पन्न करनेमें दूसरे प्रकाशक व्यापारिक असफलताके कारण सङ्कोच करें, उस प्रकारके साहित्यकी ओर यह यथाशक्ति अग्रसर हो।

यह खेदकी बात है हिन्दीमें विशेषज्ञ-पत्रिकायें चल ही नहीं पाती हैं। ज्ञानमंडल ने राजनीति और अर्थशास्त्रका 'स्वार्थ' नामक उच्चकोटिका पत्र निकाला पर थोड़े ही समयमें वह काल-ग्रास हो गया। भूगोलका विशेषज्ञ पत्र 'भूगोल' भी एनकेन प्रकारेण कभी कभी दर्शन दे जाता है, इसकी कठिनाइयोंको बेचारे मिश्र जी ही अनुभव करते होंगे। यह परमात्माकी असीम कृपा ही है कि अनेक कठिनाइयोंके होते हुए भी 'विज्ञान' निरन्तर निकलता जा रहा है। हमें अपने पाठकोंसे यही कहना है कि विज्ञानके सम्मुख एक पवित्र और उच्च उद्देश्य है। इसमें लेख इस दृष्टिसे संग्रह नहीं किये जाते हैं कि वे पाठकोंको रुचिकर या मनोरञ्जक प्रतीत ही होंगे अथवा प्रत्येक पाठक सब लेखोंको समझ ही पावेगा—कदाचित् कभी कभी ऐसा भी होगा कि किसी पाठक-विशेषकी रुचि अथवा योग्यताका इसमें कोई भी लेख न रहता हो—हमारा उद्देश्य तो भाषाको इस योग्य बना देना है कि उच्चसे उच्च विज्ञानके सभी अंग हमारी भाषामें व्यक्त किये जा सकें और यह कलङ्क मिट जावे कि हिन्दी भाषा वैज्ञानिक विषयों के लिये उपयुक्त नहीं है, और विज्ञानके सीखनेके लिये योरोपीय भाषा अनिवार्य्य है। हमें यह पूर्णाशा है कि हमारे पाठक और ग्राहक हमारे दृष्टि-कोण को समझेंगे और हमारी कठिनाइयोंका अनुभव करेंगे। हमारे प्रत्येक ग्राहकको यह समझना चाहिये कि प्रतिवर्ष उसकी जेबसे जो तीन रुपये निकल जाते हैं, वे व्यर्थ नहीं जाते हैं। यह तो हिन्दी साहित्यके प्रति उसकी एक तुच्छ श्रद्धांजली है। चाहे किसीको विज्ञान रुचिकर लगे या न लगे, उसे हिन्दी-साहित्य-प्रेमीके नातेसे हमारे ऊपर कृपा बनाये रखना चाहिये।

यदि हमें प्रयाग विश्वविद्यालयके उत्साही युवकोंकी सहायता न मिलती तो 'विज्ञान' का ठीक समय पर निकलना ही असम्भव हो जाता। हम इस बातका अनुभव करते हैं कि उन्हें हिन्दी में वैज्ञानिक लेख लिखने बड़ी ही कठिनाइयाँ पड़ती हैं, और वस्तुतः उनकी यह निस्स्वार्थ सेवा अभिनन्दनीय है जिससे विज्ञान कभी उऋण नहीं हो सकता है। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि प्रयाग विश्वविद्यालयके युवकोंके होते हुए 'विज्ञान' कभी पीछे न हटेगा और यह अपने पवित्र उद्देश्यों में अवश्य ही सफल होगा। काशी, एवं लखनऊ विश्वविद्यालयोंसे भी हमें बहुत कुछ आशा थी पर न जाने क्यों वहाँ इतनी उदासीनता है। कमसे कम काशीमें तो 'विज्ञान' के पुराने प्रेमी विद्यमान हैं, उन्हें तो स्वयं जगना और विश्वविद्यालयके युवकोंको जगाना चाहिये।

नोबेल पुरस्कार और भौतिक शास्त्रके महर्षि (३)

[ले० श्रीश्यामनारायण शिवपुरी बी० एस-सी० (आनर्स) तथा श्री हीरालाल दुबे, एम० एस-सी०]

ब्राऊन (१८५०-१९१८)

डाक्टर फेरडिनेण्ड ब्राऊन (Dr. Ferdinand Braun) सन् १९०९ के नोबेल पुरस्कारमें मारकोनी का साथी था। उसे भी आधा पुरस्कार मिला था। वह जर्मनीमें फुल्डा (Fulda) में पैदा हुआ और उसका पालन पोषण तथा विद्याभ्यास भी उसकी मातृभूमि हीमें हुआ। भौतिक शास्त्रमें उसे बचपन हीसे प्रेम था और अन्तमें इसी शास्त्र द्वारा वह संसारमें विख्यात हुआ।

ब्राऊनके समयमें मनुष्य इस बातका ज़ोरोंसे प्रयत्न कर रहे थे कि बिना किसी माध्यमके ईथरके पार हमारे शब्द सुनाई देने लगें। हर्ट्ज़ने इस विषयकी सम्भावना दिखलाई थी और लाज, ह्यूग्स आदि व्यक्ति मारकोनीके समान इस विषयकी खोजमें अन्धकारमें भटक रहे थे। ब्राऊन को इस विषयमें रुचि पैदा हो गई और वह बिना किसीकी मदद तथा सलाह लिये हुए अपने ढंग पर अन्वेषण करने लगा।

उसने एक यन्त्र बनाया जो कि बादमें बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ। उसने यह विचार किया कि ऋणोद किरणें संचारित कणोंका एक झुण्ड है जो बहुत ही अधिक वेग से प्रवाहित होता है और इसलिये इनकी मात्राका घूर्ण (Inertia) कम होना चाहिये और इस कारण यदि उनका चुम्बकीय क्षेत्र बदल दिया जावे तो इसका प्रभाव कणों पर उसी क्षण प्रतीत होगा। उसने इस सिद्धान्त को प्रयोग द्वारा सिद्ध किया। ऋणोद किरणें एक परदे (Diaphragms) से हो कर भार-परौप्य-श्यामिद् (Barium-platino cyanide) या विलीमाइट (Willemite) के परदे पर पड़ती हैं और उसमें एक चमकदार स्थान पैदा हो जाता है। यदि एक बेठन (Coil) से जो ऋणोद किरणकी नलीके पास ही रक्खी है; उलटी सीधी धार (Alternating current) प्रवाहकी जावे तो परदे परका चमकदार स्थान बड़े वेग से कम्पन करने लगता है और इस कम्पनके लम्बाकार चलते हुए पट पर धारावक्रका स्वरूप चित्रित किया जा सकता है। यह यन्त्र ब्राऊन नली (Braun tube) या ऋणोद किरण कम्पन लेखक (Cathode ray oscillograph) के नाम से प्रसिद्ध है और परिवर्तित होती हुई धाराके रूपको जाननेके लिये अधिक उपयोगमें लाया जाता है।

ऊपर बतलाया हुआ सिद्धान्त हाल हीमें बेतार द्वारा तसवीर आदि (Wireless television) भेजनेकी कलाको उन्नति करनेमें उपयोग किया गया है। इस प्रकार ब्राऊन बेतारके तार आदि की कलाको बढ़ानेके लिये आविष्कार तथा प्रयोग करता रहा।

मारकोनी संदेश आदि भेजनेके किये कोहेरर (Coherer) का उपयोग करता था परन्तु वह कभी कभी धोखा दे जाता था और अयोग्य था। ब्राऊनने प्रेषकयुग्म (Coupled transmitter) का उपयोग किया जिससे कुंडली (Circuit) में तड़ित् (Sparks) पैदा होती थीं। इस कुंडली में एक संग्राहक (Condenser) था और इसका झोटा (Amplitude) करीब करीब एकसा रहता था। इस कुंडलीका प्रभाव आवेश (Induction) द्वारा आकाशी पर पड़ता है और इस प्रकार लहरें भेजी जा सकती हैं। इससे मारकोनी पद्धतिमें बहुत ही उन्नति हुई सबसे पहले मारकोनी ही ने इसका उपयोग एटलांटिक महासागरके पार संदेश भेजनेमें किया था।

सन् १९०९ में ब्राऊनको बेतारके तारमें उन्नति करनेके लिये पुरस्कार रूप आधा 'नोबेल पुरस्कार' दिया गया।

सन् १९१४ में वह जर्मनीके स्ट्रेसबर्ग विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्रोफेसर था और इस समय वह मारकोनी वायरलेस कम्पनी और जर्मन कम्पनी (जिसने सेवाईल (Sayville) में बेतारके तारका स्टेशन खोला था) के मुकद्दमे में गवाह हो कर अमेरिकाके संयुक्तराज्य को गया। वहां परसे वह लौट न सका और १९१८ की २० वीं अप्रेल को ब्रूकलेन के अस्पतालमें स्वर्गको सिधारा।

वेण्डरवाल्स (१८३७-१९२३)
VAN DER WALLS

हालेण्ड वाले वेण्डरवाल्सका बड़ा मान करते थे और उन्हें इसका घमंड था कि वह उनके देशका है। वह यथार्थमें ऐसा ही महापुरुष था। उसके लिये इंगलेण्डके प्रसिद्ध रसायनिक सर जेम्स डेवारने केमरलिंग ओन्स (Kammerlingh Onnss) को एक पत्रमें लिखा था कि "वह हम सब लोगोंका गुरु है" और "जिसे अधिक मान देनेके लिये हमारे पास कुछ नहीं है"।

उसका जन्म लेडेन (हालेण्ड) में १८३७ के नवम्बर मासमें हुआ था। वह अपने कई वैज्ञानिक साथियोंके समान स्वावलम्बी तथा पुरुषार्थी पुरुष था और उसने विश्वविद्यालयोंका उपयोग बहुत देर बाद किया। ३६ वर्षकी अवस्थामें उसने डाक्टरकी उपाधिके लिये थीसिस लिखी और इस लेखने भौतिक शास्त्रमें नवीन इतिहास आरम्भ कर दिया। १८७७में वह एम्सटरडेममें भौतिक शास्त्रका प्रोफेसर नियुक्त हुआ और हालेण्डमें भौतिकशास्त्रकी उन्नतिके लिये पूरा प्रयत्न करने लगा। वह एम्सटेरडेमकी विज्ञानकी रायल एकाडेमीका मेम्बर था और १८९६-१९१२ तक उसका सेक्रेटरी रहा इस महापुरुषने ८ वीं मार्च १९२३ को अपना देहत्याग किया।

वेण्डरवाल्सका वैज्ञानिक कार्य अपने ढंग का निराला ही है। उसमें एक ख़ास बात यह है कि वह बड़ी सरलतापूर्वक और सफाईसे किसी भी विषयको हल कर देता है जो कि बहुत ही कठिन तथा उलझाहट वाले दीख पड़ते हैं। उसके पांडित्य तथा महत्वके संबन्धमें उसके देशवासीके विचारोंसे बढ़ कर और किसके विचार हो सकते हैं? केमरलिंग ओन्स जिसे कुछ समय पश्चात् नोबेल पुरस्कार दिया गया था, वेण्डरवाल्सकी मृत्यु पर लिखता है—"एम्सटरडेममें ८ मार्चको ८५ वर्षकी अवस्थामें जे० डी० वेण्डरवाल्सकी मृत्यु होनेके कारण वर्तमान भौतिक शास्त्र और भौतिक रसायन क्षेत्रकी महानात्माओंमेंसे एक आत्मा उठ गई। उसकी थीसिस जिसमें उसने द्रव और गैसकी अवस्थाओंमें सातत्य (Continuity) दिखलाया था वह एक बिलकुल ही नई बात थी। न जाने कितने वर्ष तक उससे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये मैं एम्सटरडम प्रतिमास जाता रहा।"

जिस समय वेण्डरवाल्सने स्मरणीय अन्वेषण आरम्भ किये थे उस समय वैज्ञानिक संसार गैसोंके गत्यर्थक सिद्धान्त (Kinetic theory of gases) के अन्वेषणों पर पिल पड़ा था।

किसी भी गैसके दबाव, आयतन और तापक्रम के बीच जो संबन्ध है वह आजकल बायल और चार्लस 'नियम' के नामसे प्रसिद्ध है। स्वतः बायल हीने यह मालूम कर लिया था कि उसका 'नियम' आदर्श अवस्थाओं पर ही लागू है, अर्थात् ऊँचे तापक्रम और कम दबाव पर। हरएक तापक्रम के लिये दबाव और आयतनका एक वक्र खींचा जा सकता है। यदि गैस बायल और चार्लसके नियमोंका बिलकुल ठीक पालन करती है तो वक्र आयततातिपरवलय (Rectangularhyperbola) होंगे और एक दूसरेके समानान्तर होंगे। रेनाल्ट (Regnault) ने १८४७ में, कैलेटे (Cailletet) और एण्ड्रूज़ (Andrews) ने १८६९ में प्रयोगों

से दिखला दिया कि अधिक दबाव पर गैस इन नियमोंका ठीक प्रकारसे पालन नहीं करतीं। एण्ड्रूज़ के प्रयोग बहुत ही महत्वके हैं और वेंडरवाल्स के अन्वेषण इन्हींके आधार पर हैं।

अणुओंके परिमित आयतनका महत्व सर्व प्रथम क्लासिअस (Clausius) ने दिखलाया और १८६४ में हर्न (Hirn) ने साबित किया कि कणोंमें एक दूसरेके लिये आकर्षण शक्ति होती है। परन्तु इन दोनों बातोंका ध्यान रखते हुए एक उपयुक्त सिद्धान्तके निकालनेका श्रेय वेंडरवाल्स हीको है। उसने सबसे पहले १८७२ में अपने एक लेख "गैस और द्रव अवस्थाओंमें सातत्य" में इस विषय की भलीभांति मीमांसा की थी।

सूचिका (Capillary) के सिद्धान्तमें संसक्ति (Cohesion) के विचारकी सफलतासे उसका उत्साह बढ़ा और उसने गैसोंके दबावको संसक्ति शक्तिका रूप दिया। इससे उसका विचार हुआ कि संसक्तिका गुण द्रवों और गैसोंमें वर्त्तमान है। एकमें वह अधिक मात्रामें और दूसरेमें कम मात्रामें है। इससे उसे दीख पड़ा कि द्रवों और गैसोंकी कई बातोंमें बड़ी समता है।

दूसरे उसने यह बतलाया कि घनत्वके बदलनेसे दबाव भी बदल जाता है। उसने गैसोंके गुणोंका कारण बतलानेके लिये इस प्रकारकी मीमांसाकी। इस बातको मानना आवश्यक है कि जब दो अणुओं के बीच किसी ख़ास परिमित संख्यासे कम फासला रह जावे तो वे एक दूसरेको आकर्षित करते हैं। एक धरातलके पार आकर्षणसे तनाव प्रभाव (Tensile stress) की उत्पत्ति होती है, जो कि गैसके घनत्वके वर्गके समानुपाती है। यदि गैसके घनत्वको दूना कर दें तो आकर्षित अणुओंकी संख्या भी धरातलके दोनों तरफ दूनी हो जाती है और इस कारण संसक्ति शक्ति चौगुनी हो जाती है। यह तनाव प्रभाव (Tensile stress) गैसके असली दबावको बढ़ाता है।

उसका दूसरा बड़े महत्वका विचार यह था कि गैसके अणुओंका अपरिमित आयतन नहीं होता है। उनका आकार परिमित होता है और इस कारण उनका आयतन भी परिमित होता है और जिस बर्तनमें गैस रक्खी जाती है उसके पूरे आयतनसे कम स्थान अणुओंकी गति (Motion) के लिये रह जाता है। इन दोनों बातोंका उसने अपने प्रशंसनीय सिद्धान्तमें उपयोग किया जो आजकल 'वेंडरवाल्सका अवस्थाका समीकरण' (Equation of state) के नामसे प्रसिद्ध है। वेंडरवाल्सके समीकरणका अर्थ इस प्रकार हो सकता है कि एक खास तापक्रम पर, किसी वस्तुके अणुओंके औसत वर्ग वेग (Mean square velocity) जो द्रव अवस्थामें है, उसी वस्तुके अणुओंके औसत वर्ग वेगके बराबर हैं जो अब वाष्प अवस्थामें है। वेंडरवाल्सने अपने समीकरण की सत्यता कर्बन द्विओषिदके प्रयोगोंसे सिद्ध की।

यह बात मान ली गई है कि किसी भी वस्तुकी तनाव शक्तिका सङ्गठन संसक्ति शक्तिसे होता है। वेंडरवाल्सने अपने 'अवस्थाके समीकरण' से इस तनाव शक्तिका मान निकाल लेनेकी रीति मालूम करली थी। उसे कई प्रयोगोंके पश्चात् १००° तापक्रम पर संपृक्त (Saturated) जलवाष्पके लिये ४.३५×१०^{१०} डाइन प्रति वर्ग शम. की संख्या मिली।

इसके पश्चात् वेंडरवाल्सने एक दूसरे परमोपयोगी नियमकी खोजकी जो 'सम्बद्ध अवस्थाओंका सिद्धान्त' (Law of corresponding states) कहलाता है। इस सिद्धान्तमें और पहले दिये हुए 'अवस्थाके समीकरण' में केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें आयतन, तापक्रम और दबावको चरम (Critical) आयतन, चरम ताप क्रम, और चरम दबावसे भाग दे दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त समीकरण सभी गैसोंके लिये लागू हो सकता है।

वेण्डरवाल्सका यह समीकरण देखनेमें तो अति सरल प्रतीत होता है पर इसके निकालनेमें ७ वर्ष

लग गये थे और वह भी वेण्डरवाल्स ऐसे महान् मनन शील व्यक्तिको, दूसरा कोई न जाने इस काम के लिये कितने वर्ष लेता। इस सिद्धान्तका आधार इस भावना पर है कि किसी एक गैसके ताप सम्बन्धी गुण ज्ञात होने पर सभी गैसोंके ताप सम्बन्धी गुण ज्ञात हो सकते हैं क्योंकि सभी गैसों में एक पारस्परिक अनुपात है। ओन्सका कहना है कि "इस भावनाका महत्व इसीसे समझा जा सकता है कि मुझे ४० वर्ष उपरान्त भी अपने अन्वेषणोंमें इसीकी आदर्श रूप सहायता लेनी पड़ी।"

यद्यपि वेण्डरवाल्सका सम्पूर्ण कार्य्य थोड़ेसे ही पृष्ठोंमें संकलित है पर उसकी महत्ता किसी भी महान् वैज्ञानिक अन्वेषणसे कम नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि वेण्डरवाल्स विभूति सम्पन्न वैज्ञानिक था और उज्ज्वल जीवन और पवित्र स्वभाव द्वारा उसने अपने मित्रोंके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था और उसकी मृत्युसे उसके मित्रोंको जितनी हार्दिक वेदना पहुँची उसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

विलहेम वीन (१८६४-१९२८)
WILHELM WIEN

१९११ का पुरस्कार विजेता वीन था। विलहेम वीनका जन्म १८६४ में पूर्व प्रुशियामें फिश्चहासेनके पास गुफकेन (Guffken) में हुआ था। उसका पिता मामूली स्थितिका किसान था और उसे साहित्य तथा विज्ञानसे बिलकुल प्रेम न था। इस बालकको अपने माता पितासे कुछ सहायता न मिली और जो कुछ इसने सीखा वह केवल अपने परिश्रम हीसे सीखा। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा रासटेनबर्ग और कोनिग्सवर्गमें हुई। इसके पश्चात् उसका विद्याध्ययन गोटिनगेन, बर्लिन, हेडेलबर्ग और अन्तमें फिरसे बर्लिन विश्वविद्यालयोंमें हुआ। बर्लिनमें वह विख्यात भौतिकज्ञ वान हेलमहोल्ट्ज़ (Von Helmholtz) का शिष्य था।

सन् १८८६ में केवल २२ वर्षकी ही अवस्थामें वह 'डाक्टर' की उपाधिसे सम्मानित किया गया। उसने शोषण तथा प्रकाशके वर्तन (Diffraction of light) पर कार्य किया था। वह अपने पूर्व प्रोफेसर हेलमहोल्ट्ज़का सहायक नियुक्त हुआ। १८९६ में वह आचेन (Aachen) टेकनीकल हाई स्कूलमें विशेषाध्यापक (Extra-ordinary professor) नियुक्त हुआ। १८९९ में उसने गेसेनमें प्रयोगिक भौतिक शास्त्रके प्रोफेसरके पदको स्वीकार किया। सन् १९०० में वह बुर्ज़बर्ग चला गया और अन्तमें १९२० में म्यूनिच गया। वीन १९२८ की ३१ वीं अगस्त को कमही उम्रमें स्वर्ग सिधार गया।

लार्ड केलविनकी मृत्यु पर वीनने कहा था—"एक ऐसे जीवनका अन्त हुआ है जिसकी आत्मा महान थी, ऐसे जीवनको तो अभी और रहना चाहिये था"। यही शब्द वीनके लिये भी बहुत ही उपयुक्त हैं।

वीनके कार्यका महत्व जाननेके लिये हमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जिस समय वीनने अन्वेषण आरम्भ किये उस समय भौतिक शास्त्रमें न्यूटन के विचारोंकी दृढ़ता थी और ऐसा समझा जाता था कि ये सिद्धान्त सनातन के लिये हो गये और मेक्सवेलका विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्त अभी नया ही था। विलहेम वीन उनमेंसे एक बहुत ही विख्यात वैज्ञानिक है जिन्होंने भौतिक शास्त्रको वर्तमान रूप देनेमें भाग लिया है।

उसने कई विषयों पर मूल लेख लिखे हैं। उसका सबसे मुख्य कार्य काली वस्तुओंके विकिरण (Radiation) के सिद्धान्त पर है। उसने क्षीण गैसों (Rarified gases) में वैद्युत् विसर्जन पर भी काम किया है।

उसका काली वस्तुओंके विकिरण (Black body Radiation) पर सर्व प्रथम लेख हेलमहोल्ट्ज़ ने सन् १८९३ में बर्लिन एकाडेमीमें प्रकाशित

कराया था। वीनने इस लेखमें यह सिद्ध किया कि किसी भी लहर लम्बाई (ल) और तापक्रम (त) के सामर्थ्यका घनत्व (Energy density) केल्विन तापक्रमके पंचमघात और 'ल त' गुणनफलके किसी फलके समानुपाती होता है।

सन् १८९६ में इससे, उसने एक दूसरा बड़े मार्के का नियम निकाला जो 'हटाव सिद्धान्त' (The Displacement law) के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि ल त= स्थिरांक (λm./T= constant), इसमें $ल_{म}$ (λm) =अधिकसे अधिक सामर्थ्य वाली लहर लम्बाई और त (T) काली वस्तुका केल्विन (Absolute) तापक्रम है, जिससे विकिरण हो रहा हो। इसे पाशचन (Paschen), ल्यूमर (Lummer) और प्रिंगशेम (Pringshiem) ने थोड़े ही समय में प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया। १९११ का नोबेल पुरस्कार वीन को "तापविकिरणके नियमोंके अन्वेषणों" के लिये दिया गया था।

१८९८ से उसका दूसरा महत्वका कार्य आरम्भ हुआ। गोल्डस्टाईन (Goldstein) ने यह देखा कि यदि अधिक शून्य विसर्जन नलीमें बहुतसे छोटे छोटे छेदों वाला ऋणोद काममें लाया जावे तो संचारित कण छिद्रों द्वारा प्रवाहित होने लगते हैं और इन कणोंका नाम उसने "केनाल किरणों" (Canal rays) रक्खा। वीन और जे० जे० टामसनने यह सिद्ध किया कि केनाल किरणोंमें धनात्मक, उदासीन और ऋणात्मक विद्युत्से संचारित कण एक ही साथ होते हैं और यदि धनात्मक विद्युत्से संचारित कण चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा किरणोंसे अलग कर दिये जावें तो वे बादमें आने वाली किरणोंमें फिरसे वर्त्तमान रहते हैं। उन्होंने यह भी दिखलाया कि कभी कभी कण अपना संचार बदल भी देते हैं। वीनने प्रयोगोंसे यह सिद्ध किया कि जितना ही कम दबाव होगा उतने ही कम कण उत्पन्न होंगे। उसने एक यन्त्र बनाया जिसमें उसने धनात्मक किरणोंके विक्षेप (Deflection) के लिये चुम्बकीय और समानान्तर विद्युत् क्षेत्र, दोनोंका उपयोग किया और यह दिखला दिया कि कणोंकी मात्रा बहुत अधिक होती हैं। सम्भव है कि ये कण धनात्मक विद्युत् से संचारित परमाणु हों।

वीनने १९२१ में उत्तेजित परमाणुकी आयु जाननेके लिये (अर्थात् एक उत्तेजित परमाणुको साधारण अवस्थामें आनेके लिये कितना समय लगता है), कुछ प्रयोग किये थे। उसने प्रकाशमापक यन्त्र द्वारा 'केनाल किरणों' की पतली प्रकाशावलीमें भिन्न भिन्न जगहोंकी दीप्ति (Luminosity) मालूम की और उसने यह देखा कि दीप्ति घातिक रूप (Exponential form) में क्षीण (Decay) होती है। उसने यह इस धारणा पर सिद्ध किया कि उत्तेजित परमाणु क्रमोनगत (Damped) कम्पित संस्थान हैं, इस कारण जैसे ही समय अधिक होता जाता है वैसे ही किसी भी खास रेखाका विसर्जन (Emission) धीमा होता जाता है। पुराने सिद्धान्त पर यह भविष्यवाणी ठीक संगठित न हुई और उसमें त्रुटि निकली। अब इसके बदले "काण्टम सिद्धान्त" संगठित किया गया है।

१९२२ में उसने प्रकाश विसर्जकोंके सिद्धान्त का अध्ययन किया। उसने 'केनाल किरण यन्त्र' से प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि चाप किरण चित्र (Arc spectrum) उदासीन कणोंके कारण मिलता है और तडित् किरणचित्र (Spark spectrum) यापित परमाणुओं (Ionised atoms) के कारण।

वीन प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक पत्रिका एनेलेन डर फिजीक (Annalen der Physik) का संपादक था। वीनकी मृत्युके अवसर पर नेचर पत्रिका में उसके संबन्धमें निम्न शब्द प्रकाशित हुए थे—"वह बहुत अच्छा व्याख्यान दाता तथा पाठक था। उसके विद्यार्थीगण उसका बहुत मान और

प्रेम करते थे। उनका और उसके परिचित व्यक्तियों को वीनके व्यवहार तथा पांडित्यका स्मरण आने पर बहुत ही शोक होगा।"

डेलेन

(१८६९—जीवित)

(DALEN)

यद्यपि डाक्टर नोबेल स्वेडिश था परन्तु १९११ तक किसी भी स्वेडिश भौतिकज्ञको यह पुरस्कार प्रदान न किया गया था। इससे उसकी यह भावना प्रत्यक्ष है कि "यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुरस्कार देते समय राष्ट्रीयताका कुछ भी ध्यान न दिया जावे। कहनेका तात्पर्य यह है कि पुरस्कार योग्य पुरुष को ही दिया जावे, चाहे वह स्केडिनेवियन हो या किसी और देशका।"

सन् १९१२ में सबसे पहली बार एक स्वेडिश भौतिकज्ञको, जिसका नाम गुस्टेफ डेलेन (Gustaf Dalen) है, नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। पुरस्कारके समय वह स्टाकहोलमकी 'स्वेडिश गैस संचायक (Accumulator) कम्पनी' का डाईरेक्टर था।

डाक्टर निल्स गुस्टेफ डेलेनका जन्म १८६९ की ३० मार्चको स्ट्रेनस्ट्राप (Strenstrop) (स्वीडेन) में हुआ था। उसका विद्याध्ययन गोटेनबर्गके शामर्स इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट और ज्यूरिच (स्वेटजरलेण्ड) के पोलीटेकनीशियम में हुआ था।

डेलेन सिद्धान्तिक भौतिक शास्त्रमें अविष्कारक नहीं है परन्तु वह एक प्रकारसे इञ्जीनियर है। उसने गरम वायु चक्र यन्त्र (Turbine machinery), वायु संपीडक (Air-compressers) और कृत्रिम दूध दुहनेकी मेशीनोंकी उन्नतिके लिये कई आविष्कार किये। वर्तमान तथा भूतकालके वैज्ञानिकोंकी अपेक्षा इस आविष्कारकके हम बड़े कृतज्ञ हैं। साधारण मनुष्योंकी जीबनीको सुरक्षित बनानेमें इसके आविष्कार बड़े ही ऊंचे दरजेके थे। उसने अपनी आविष्कारिक चतुरतासे, सिरकोन (Acetone) में सिरकीलिन (Acetylene) के घोलका उपयोग स्वप्रकाशित सामुद्रिक दीपकों (Automatic marine lights), रेलके सिगनलों, रेलकी बत्तियों आदिमें किया। १९०६ में उसका और भी मार्केका अन्वेषण हुआ। इस समय उसने एक ऐसे स्वप्रकाशित लेम्पका आविष्कार किया जो अंधेरा होनेसे स्वतः ही प्रकाशित हो जाता है। इस लेम्पका नाम 'सन-वाल्व' या सूर्य्य प्रदीप है। यह एक बहुत ही बड़ा तथा लाभदायक आविष्कार हैं क्योंकि इसका उपयोग उन ज्योतिः-स्तम्भों (Lights houses) पर हो सकता है जिस पर मनुष्यका रहना करीब करीब असम्भव ही है। सर्व प्रथम इस आविष्कारका उपयोग स्वेडिश सरकारने अपने ज्योतिः स्तम्भों पर किया था।

डेलेन १९१३ में विज्ञानकी रायल स्वेडिश इंस्टीट्यूटका मेम्बर चुना गया और लेंड विश्वविद्यालय ने १९१८ में उसे डाक्टरकी उपाधिसे शोभित किया। कई वर्षों से वह स्वेडिश गैस एक्यूम्युलेटरस् कम्पनीका डाइरेक्टर है और गैस संचायक (Accumulators) के रूप और आकारके सुधार में कार्य कर रहा है।

केमरलिंग ओन्स

(१८५३—१९२६)

(KAMMERLINGH ONNES)

केवल दो वर्ष ही व्यतीत हुए कि नोबेल पुरस्कार फिरसे हालेण्ड सरीखे छोटे देश को प्रदान किया गया। हाइक् केमरलिंग ओन्सका जन्म २१ सितम्बर १८५३ में ग्रोनिनगेन (Groningen) हालेण्ड में हुआ था। ऊटरिच् की नेशनल साइन्सकी फेकलटी ने १८७२ में इस युवा विद्यार्थी की निपुणता स्वीकारकर उसको सुवर्ण पदक प्रदान किया। उसका विद्याध्ययन ग्रोनिनगेनमें हुआ और १८७९ में उसे डाक्टरकी उपाधि प्राप्त हुई।

इस उपाधिकी थीसिस के लिए उसने "एक अक्ष पर पृथ्वी घूमती है इसके नए प्रमाणों" पर कार्य किया था। इस समय वह डेल्फ्ट (Delft) के पोलीटेकनीशियममें सहायक का कार्य करता था। १८८२ की ११ नवम्बरको, जब वह २६ वर्षका हो चुका था, लेडेन विश्वविद्यालयमें प्रयोगिक भौतिक शास्त्र और अंतरीक्ष विद्या का प्रोफेसर नियुक्त हुआ।

ओन्स एक जगह लिखता है, वेण्डरवालसके "सम्बद्ध अवस्थाओंके सिद्धान्त" के पढ़नेसे मैं गैसोंकी अवस्था पर प्रयोग करनेके लिए उत्तेजित हो गया" और इस कारण उसे भौतिक शास्त्रके उस भाग पर आविष्कार करने पड़े जिसके कारण उसकी ख्याति संसारमें फैल गई। १८८१ में ही उसने महत्वपूर्ण गणित सम्बन्धी एक मूल लेख लिखा था। उसमें उसने गैसों और द्रवों के ताप-गति-विज्ञान (Thermodynamics) में गत्यर्थक सिद्धान्त (Kinetic Theory) का उपयोग बतलाया था। अपनी एक नवीन विधि द्वारा उसने १८०१ में बहुत ही लघु तापक्रम पर कई गैसोंका अभ्यास किया और देखा कि अवस्थाओंके समीकरणमें से एक भी गैसोंके लक्षणों को ठीक प्रकारसे प्रदर्शित नहीं करता। उसने एक नया 'अवस्था-समीकरण' (Equation) बनाया जो लघु तापक्रमों पर ठीक लागू होता है।

करीब—१८०° शतांश मापकके नीचे परशैष्यम् का तापमापक यन्त्र बेकार हो जाता है। १९०७ में ओन्स ने प्रयोगों द्वारा देखा कि सीसे और सुवर्णके बाधा-ताप-मापक-यन्त्रों (resistance thermometers) का उपयोग, अधिक लाभदायक हो सकता है।

ओन्स लिखता है—"दस साल तक मैं अपने अवकाशके समयको इसी काममें लगाता रहा कि द्रवित गैसोंकी सहायतासे निम्नतम तापक्रमों पर भी किस प्रकार भौतिक गुणोंकी परीक्षा की जा सकती है।" उसने अपनी कुशलता से ऐसी विधियोंकी आयोजना की कि निम्नतम तापक्रमों पर भी भौतिक-परिमाण लेने सम्भव हो गये।

उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति "हिमजनिक" ("Cryogenic") प्रयोगशाला बनानेके लिये अर्पण कर दी, जो संसारमें अपना चमत्कार दिखाये बिना न रही।

'साईंटीफिक अमेरिकन' ने एक समय लिखा था—"उसने अपने तथा अपने विश्वविद्यालयके लिए एक ऐसा स्मारक बना दिया है जिसके लिए उसके देशवासियोंको घमण्ड हो सकता है। ओन्स अद्भुत आविष्कारोंके लिये प्रसिद्ध हैं और यह शाला अपने ढंगकी निराली है और विज्ञानमें उसका नया स्थान है; इतना नया कि एक नवीन शब्द "क्रायोजेनिक" (Cryogenic) उसके वर्णन करनेके लिए बनाया गया।"

इस प्रयोगशालामें ओन्स ने १६०८ में हिमजन (Helium) गैसको द्रवित कर सारे वैज्ञानिक संसार को चकित कर दिया। उसने (Pictet) की उन्नतकी हुई शीतली-भवन (Cooling) की कैस्केड-रीति तथा शीतलीभवनकी पुनर्जनन विधि (Regenerative method) से जिसे हेम्पसन और लिण्डे ने उन्नत किया था; सहायता लेकर इस गैसका द्रवीकरण किया। कई उत्तम शून्य पम्प (Vacuum pump) द्वारा और ०·३ सम. दबाव पर द्रव हिमजनको उबालनेसे ओन्स केल्विन-शून्य (absolute zero) के ऊपर ०·६° तापक्रम तक पहुँच सका था। १६२६ में कीसों (Keesom) ने लेडेन प्रयोगशालामें हिमजन गैसको ठोस अवस्था में प्राप्त किया। यह लघु-तापक्रम कार्योंमें सबसे महत्वका अन्वेषण था।

लघु-तापक्रम-हिमस्थापकों (Cryostats) की उन्नति होते ही, ओन्स गैसों और गैसोंके मिश्रण के तापक्रम, दबाव, आयतन और समतापक्रमों (Isotherms) को दबाव और तापक्रमके विविध

परिवर्तनों पर मापनेकी विधिको विश्वसनीय एवं शुद्ध करनेमें लग गया। उसने लघु-तापक्रमों पर वस्तुओंके घनत्व वाष्प-दबाव, वैद्युतिक, चुम्बकीय और प्रकाशीय गुणों का भी अध्ययन किया।

उसने अधिक दबावका पारद-दबाव-सूचक (Mercury manometer) बनाया और उसकी सहायतासे गैसोंकी सङ्कोचनीयता (Compressibility) मालूम की।

१९१३ में पुरस्कार देते समय नोबेल कमेटी ने इन बातोंका ध्यान रक्खा था—"उसके लघुतापक्रमों पर पदार्थोंके गुणों के अन्वेषण, जिससे कि और आविष्कारोंके साथ साथ द्रव हिमजनकी प्राप्ति हुई।"

ओन्स ने १९१३ में लघु तापक्रम पर धातुओंकी चालकता पर अन्वेषण किया जो "अति चालकता" (Superconductivity) के नामसे प्रसिद्ध है। धात्विक चलनके सिद्धान्तसे, जो "ऋणाणु गैस" (electron gas) के नामसे विख्यात है यह समझ सकते हैं कि किसी धातु की बाधा तापक्रमके कम होनेसे कम होती जावेगी या यह कि धातुकी बाधा अति लघु तापक्रम पर एक दमसे बढ़ने लगेगी क्योंकि ऋणाणु इतने कम तापक्रम पर एक प्रकारसे जमने ("Freeze" होने) लगेंगे। ओन्सने एक बड़े महत्वका अन्वेषण किया कि केल्विन शून्यके कुछ अंश ऊपर तापक्रम पर कुछ धातुओंकी बाधा एकदमसे शून्य हो जाती है (या उसकी मात्रा बहुत ही कम हो जाती है)। उसने सीसाके तारके बेठनके दोनों सिरोंको गला कर एक कुंडली बनाई और इसमें पास वाली विद्युतीय चुम्बक कुंडलीको तोड़ कर उपपादित विद्युत् प्रवाह किया और जब बेठनका तापक्रम बहुत ही कम रक्खा तब धारा कई घंटों तक प्रवाहित होती रही। 'साइंएटीफिक अमेरिकन' इस अन्वेषणके बारेमें लिखता है कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि इसवर्ष के वैज्ञानिक आविष्कारोंमें यह बड़े मार्केका आविष्कार है।"

१९२३ में केमरलिंग ओन्सने प्रोफेसरके पदका त्याग किया और २१ फरवरी १९२६ को इस संसार से चल बसा।

उसे कई एकाडेमियों, समितियों और गवर्मेण्टोंने सम्मान प्रदान किये। १९१२ में रायल सोसाईटी ने रमफोर्ड पदक प्रदान किया और १९१६ में अपनी सभाका विदेशी मेम्बर चुना। बर्लिन और डेलफ्ट (Delft) विश्वविद्यालयोंने उसे आनरेरी उपधिसे सम्मानित किया। १९०४ में उसे शेवेलियर (Chevalier) और १९२३ में नीदरलैण्डके काननकेशरी (Commander of the order of Iion of Neitherlands) की पदवियें मिलीं।

केमरलिंग ओन्समें प्रयोगिक कुशलता और हाथकी सफाईके सिवाय दो और गुण थे जिनके कारण वह इस महत्वको पहुंच सका। ये उसका अपार धैर्य और ऊंचे दर्जेकी प्रबन्धकर्तृणी शक्ति थी।

माइकेल फ़ैरेडे

[ले० श्री प्रेमबहादुर वर्मा, बी० एस-सी०]

विज्ञानके क्षेत्रमें आजकल ऐसा कान होगा जो कि माइकेल फ़ैरेडेके नामसे परिचित न हो। माइकेल फ़ैरेडे उन इने गिने १६ वीं सदीके वैज्ञानिकोंमें से हैं जिन्होंने विज्ञान हीके लिये अपना जीवन सर्वस्व दे दिया था। वस्तुतः हम फ़ैरेडेको आधुनिक विज्ञानका पिता कह सकते हैं। आज कल विद्युत् के जो भी कुछ लाभ उठा रहे हैं उसका श्रेय उसीको है। एक विद्युत् इंजीनीयरकी जितनी महत्ता है तथा जो कुछ भी सम्पत्ति वह कमाता है उसका कारण फ़ैरेडेके आविष्कार ही हैं। उसके आविष्कारोंके आधार पर जितनी नवीन खोजें हुई हैं उनका मूल कारण हमारे मतमें फ़ैरेडे ही कहा जा सकता है। ऐसा कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी।

आधुनिक समयका सबसे अद्भुत तथा चमत्कारक आविष्कार बेतारका तार है। इसका श्रेय मारकोनीको मिला हुआ है। परन्तु यह भी विज्ञानके अन्य आविष्कारों की भांति, एक मनुष्यके परिश्रमका फल नहीं है। इसमें समय समय पर सब मनुष्यों ने भाग लिया है। इस चमत्कारी आविष्कारमें भारतका कुछ भाग है; सर जगदीश चन्द्र वसु ने इस विभागमें काफ़ी समय तक नामी कार्य किया है। माइकेल फ़ैरेडेका भी सम्बन्ध बेतारके तार से है। वह उसका मूल कारण है। अगर बेतार प्रयोगोंको छोड़ दिया जावे तो हम बिना किसी संकोचके कह सकते हैं कि बेतार तरंगोंके विचार उसीसे आरम्भ होते हैं। बेतारके के कार्यमें उसके सिद्धान्तोंकी झलक आज तक विद्यमान है। भले ही फ़ैरेडेको स्वप्नमें भी बेतार का ध्यान न हो परन्तु वह उसके प्रवर्त्तकोंकी श्रेणीमें अवश्य है।

फ़ैरेडेका जन्म सन् १७६१ की २२ वीं सितम्बर को हुआ। इसका पिता लोहारका कार्य करने वाला ग़रीब व्यक्ति था जिसका निवास स्थान योर्कशायर में था। उस समय कौन जानता था कि ऐसे व्यक्तिका पुत्र विज्ञानके महर्षियोंमें से एक होगा, जो कि सारा जीवन वैज्ञानिक अनुशीलन तथा प्रयोगों ही में बिता देगा।

फ़ैरेडे का बचपन बहुत कम विदित है। उसका बचपन पिता की निरी आर्थिक दुर्दशा में व्यतीत हुआ है। जब कि वह बालक ही था योरोपमें नैपोलियन युद्ध छिड़ा हुआ था। ऐसे समयमें खाद्य पदार्थोंकी वैसे ही देशमें कमी रहती है फिर ग़रीबोंको तो उनका पूर्ण रूपमें प्राप्त होना अत्यन्त कठिन हो जाता है तथा अति साधारण जीवन ही उन्हें बहुत मूल्यवान हो जाता है। इस कारण फ़ैरेडेके पिताको केवल खाद्य सामग्री इकट्ठा करनेके लिये बेहद परिश्रम करना पड़ता था। घरमें चार बच्चे थे। पिता बड़े धार्मिक थे और उनका धर्म प्रेम उन्हें किसी अनुचित उपायसे अपने कुटम्बका पोषण करनेकी आज्ञा न देता था। अतः सारा परिवार दरिद्रता से निर्वाह करता था। फ़ैरेडेके पांच वर्ष इस प्रकार केवल उसके कमरोंमें रहते हुए बीते। आज यहां निवास स्थान है तो कुछ दिनों बाद दूसरी जगह और फिर तीसरी जगह। फ़ैरेडेके बाल्य जीवन की अवस्था उसीके शब्दोंमें सुनना अधिक अच्छा होगा। फ़ैरेडे कहा करता था कि "मेरी माँ बचपनमें सप्ताहके आरम्भमें हर एक को रोटीका चौथाई टुकड़ा दिया करती थी जो कि उसे सप्ताहके अन्त तक निबाहना पड़ता था।"

ऐसी दरिद्र अवस्थाओं में दुनियांके एक महान् वैज्ञानिक ने पोषण पाया। वह लड़का, जिसे कि पाठशालाकी साधारण शिक्षा भी धनाभावके कारण न मिल सकती थी, और जो कि अपना सारा समय सड़क पर गोलियां खेलनेमें गँवाया

करता था। आगे चल कर बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ और उसने योरोप भरकी विख्यात वैज्ञानिक समितियोंसे उपाधि तथा मान प्राप्त किये।

दरिद्रताके कारण फ़ैरेडेको बहुत छोटी अवस्था में नौकरी करनी पड़ी। १३ वर्षकी उम्र पर उसे एक पुस्तक-विक्रेताकी दुकान पर रख दिया गया। उन दिनोंमें समाचार पत्रोंका मूल्य बहुत हुआ करता था। उन्हें केवल धनी पुरुष ही ख़रीद सकते थे। दूसरे केवल किराये पर ही काम चलाते थे। इस दुकान पर फ़ैरेडेका कार्य समाचार पत्रोंको प्रातः कालमें बांटना तथा सायं कालमें उनको वापिस इकट्ठा कर लाना था। यह कार्य वह बहुत दिनों तक करता रहा। उसके कार्यसे इसका स्वामी पूरी तरह संतुष्ट रहा और इसके पारितोषिक रूपमें वह जिल्दसाज़ीके कार्यमें भर्ती कर लिया गया और उसका कार्य सीखने लगा। अब यहांसे फ़ैरेडेके जीवनका दूसरा भाग आरम्भ होता है। जिसमें कि उसका विकास हुआ।

इस विभागमें फ़ैरेडे ने जिल्दसाज़ीका कार्य सीखा और अच्छी योग्यता प्राप्त की। साथ ही साथ इस व्यापारमें उसने विद्युतीय विज्ञानका प्रथम ज्ञान प्राप्त किया। जो पुस्तकें जिल्द बँधनेके लिये आती थीं वह उनका अध्ययन भी करता जाता था। जो कुछ वह विज्ञान की पुस्तकोंमें पढ़ता था उस पर केवल पढ़ कर ही सब्र न कर लेता था उसका वह पूरी तरह मनन करता था और जब तक प्रयोगों द्वारा उन बातोंको ठीक न जान लेता था तब तक उसे शान्ति न मिलती। प्रयोगोंमें वह अपने बनाये हुये यंत्र ही उपयोगमें लाता था तथा कभी कभी अपनी मुट्ठी देख कर अन्य यन्त्रों से भी काम लिया करता था। इस प्रकार धीरे २ उसने काफ़ी योग्यता प्राप्त कर ली और कई शिक्षित और अच्छी संस्कृतिके मित्र भी बनाये।

कुछ समय तक वह ऐसे ही कार्य करता रहा। सन् १८१२ में हमारे भावी वैज्ञानिक को एक सुअवसर प्राप्त हुआ। एक बार म० डान्स, जो कि रायल इस्टीट्यूशनके सभासद थे, जिल्द बनवाने उसी दुकान पर आये जिस पर फ़ैरेडे काम करता था। ये महाशय फ़ैरेडेके नामसे पहले ही परिचित थे और उसके गुणोंके विषयमें भी बहुत कुछ सुन चुके थे। जिस समय ये दुकान पर आये, फ़ैरेडे सर्व-संग्रह-ग्रन्थ (encyclopedia) के लेख पढ़नेमें तल्लीन था। जब उन्होंने ऐसा देखा तो बहुत प्रभावित हुये और उनके हृदयमें उसके उत्साहके बढ़ानेकी इच्छा हुई। दूसरे दिन प्रसिद्ध रसायनवेत्ता सर हमफ़्री डेवीका व्याख्यान होने वाला था। उन्होंने उसमें सम्मिलित होने की उसे सलाह दी तथा बिना मूल्यके व्याख्यानका टिकट भी दिया। यह एक अमूल्य अवसर था और यहीं उसका वैज्ञानिक संसारमें प्रवेश हुआ। निश्चित समय पर व्याख्यान हुआ। फ़ैरेडे भी उसमें उपस्थित था। वहां पर उसने साथ २ व्याख्यानके नोट बहुत उत्साह पूर्वक लिये जिन्हें उसने बाद को व्याख्या चित्रोंके साथ पूरा पूरा लिखा। यह उसका प्रथम प्रयत्न था।

इस समय तक फ़ैरेडे की जिल्दसाज़ीकी शिक्षा पूरी हो चुकी थी। इसमें उसने पूरी योग्यता प्राप्त की। उसका स्वामी उसकी योग्यता पर बहुत ही मुग्ध था और इसके फल-स्वरूप उसे अपने व्यापारमें भाग देनेको तैयार था। परन्तु फ़ैरेडेकी इच्छा न हुई। यह उसके लिये धनवान बननेका अच्छा अवसर था और अगर इस व्यापार में भाग ले लेता तो बहुत सम्भव था कि कुछ समयमें अपने स्वामीके समान ही सम्पत्तिवान हो जाता। पर ईश्वर को ऐसा करना स्वीकार न था। उसका जीवन विज्ञानके लिये हुआ था और विज्ञानके लिये ही बीता। वह एक आविष्कारक तथा अनुसंधानकर्त्ता था। व्यापार उसकी प्रकृतिके अनुकूल न था और प्रकृति-विरुद्ध कार्य करके कोई मनुष्य सफलता नहीं पा सकता। फ़ैरेडेको व्यापार विभागमें रहना बहुत

ही बुरा लग रहा था और प्रत्येक दिन उसको उस विभागमें भारी था। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह विज्ञानका अध्ययन करे। वह कहा भी करता था कि व्यापार सर्वदा स्वार्थ तथा सद्गुणोंका घातक है। विज्ञानदेवी चाहती है कि उसके भक्त उदार व सद्गुण सम्पन्न हों। ऐसा विचार करते हुये एक दिन उसे एक बात सूझ पड़ी। उसने एक पत्र सर हम्फ्री डेवीको लिखा और उसके साथ साथ अपने लिये नोट भी भेज दिये। पत्रमें उसने विज्ञानके अध्ययनार्थ एक अवसर दिये जाने की प्रार्थना की थी।

पत्रने डेवीके सन्मुख एक समस्या उत्पन्न कर दी क्योंकि एक नवीन व्यक्तिके लिये उनके पास कुछ कार्य न था। बहुत कुछ सोचने पर भी कुछ न समझमें आया। एक मित्र ने सलाह दी कि बोतलें धोने पर रख लिया जाय। बहुत सोच विचारके बाद फ़ैरेडेको बुला भेजा गया। सर डेवीने उससे कहा कि "विज्ञान अत्यन्त ही कठिन है सरलतासे समझमें नहीं आता, फिर आविष्कारका तो कहना ही क्या है।" परन्तु उसका उत्साह असीम था और इन बातोंसे उस पर कुछ भी असर न पड़ा। सर डेवीने जब यह हाल देखा तो उसे ६५ शिलिंग साप्ताहिक पर अपने यहां एक सहायक बना लिया। जब डेवीके मित्र उसके आविष्कारों की प्रशंसा करते थे तो डेवी कहता था कि "पर हाँ, मेरा सबसे उत्तम आविष्कार तो फ़ैरेडे है।"

सहायक होनेके कुछ दिन बाद वह डेवीको बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ और शीघ्र ही कठिन कठिन व्याख्यानोंमें डेवीकी सहायता करने लगा। उसके इस व्यवहारसे हमारे जगत्प्रसिद्ध रसायन वेत्ताने भी जान लिया कि भविष्यमें फ़ैरेडे एक महान वैज्ञानिक होगा। सन् १८२३ में सर डेवीने प्रसिद्ध २ विज्ञानके केन्द्रों व वैज्ञानिकोंसे मिलनेके लिये देशाटन किया। इसमें दो वर्षका समय लगा, फ़ैरेडे भी इस देशाटन में साथ था। दोनोंने कई स्थानों का भ्रमण किया तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंसे मित्रता की। उनमेंसे कुछ स्थान ये हैं:—पैरिस, जिनेवा, फ्लोरैन्स, रोम, और नेपल्स। दोनों वैज्ञानिक सन् १८२५ के अप्रेल मासमें लौटे। वापिस आ कर फ़ैरेडेने प्रयोगशालाके सहायकका कार्य फिर अपने हाथमें ले लिया।

फ़ैरेडेको इस देशाटनसे बहुत लाभ हुआ। अब तक उसकी योग्यता विज्ञानमें बहुत बढ़ गई थी और भ्रमणमें मिले हुए वैज्ञानिकोंकी मित्रताने सोनेमें सुगंधका कार्य किया। इससे वह बहुत उत्साहित हुआ और उसने नियमानुसार अनुसंधानका विचार कर लिया। यहाँसे फ़ैरेडेके जीवनका तीसरा भाग आरम्भ होता है। उसके जीवनका यह भाग केवल विज्ञानकी खोजोंमें ही बीता है। इस समयमें उसने उन सिद्धान्तों व आविष्कारों को ढूँढ निकाला जिनके बिना वैज्ञानिक संसारमें भावी उन्नति होना कठिन ही न था प्रत्युत असम्भव था।

सन् १८२० में आस्टर्डने विद्युत् धारा व चुम्बकका सम्बन्ध ढूँढ निकाला। यह एक बड़ी मनोरञ्जक बात थी। फ़ैरेडेने उस समय तक विद्युत् और चुम्बकत्वके विषयमें जो कुछ ज्ञात था उस सबको लिखा। इसके साथ वह रायल इन्सटीट्यूशनकी प्रयोगशालामें और भी कुछ अनुसंधान करता रहा। उसने फ़ौलाद और काचके संबन्धमें व्यापारिक खोजकी। परन्तु व्यापार सम्बन्धी कोई भी परिणाम हाथ न लगा। उसने इस कार्यके साथ साथ बानजोल (बानजावीन) को ढूंढ़ा तथा हरिन् (Chlorine) आदि कई वायव्यों को द्रवमें परिणत करनेकी विधि खोज निकाली। इस विधिसे द्रव्यके गत्यर्थक सिद्धान्त (Dynamical theory) को पूरा आधार मिला। इस सिद्धान्तके अनुसार कोई भी पदार्थ तीन अवस्थाओंमें रह सकता है। अवस्थायें ये हैं; ठोस, द्रव, वायव्य।

सन् १८२५ ई० में फ़ैरेडे डेवी की जगह पर रायल इन्स्टीट्यूशनमें अध्यक्ष बना। यह एक आश्चर्यमय अवसर था। एक लोहारके लड़केसे साधारण सहायक बन कर उसी प्रयोग शालाका अध्यक्ष नियुक्त हुआ। परन्तु अभी बहुत कुछ होनेको शेष था। यह उसकी महान खोजका कार्य था, कदाचित् इसीलिये वह उत्पन्न हुआ था।

ऊपर कहा जा चुका है आरस्टडने विद्युत् धारा व चुम्बकत्वके सम्बन्धको प्रगट किया। अरागोने विद्युत् धाराकी चुम्बकत्व शक्तिको बतलाया। इन दोनों बातोंसे फ़ैरेडेको एक सुन्दर कार्य सूझ पड़ा। वह चुम्बकत्वसे विद्युत् धारा उत्पन्न करना था। सोच विचारके बाद फ़ैरेडेने "भविष्यका कार्य—चुम्बकत्वसे विद्युत् धारा" लिख कर भविष्यके स्मरणार्थ रख लिया। अवकाश मिलने पर उसने इस कार्य को हाथमें लिया। उसने आरस्टडके प्रयोगको उलटके किया। प्रयोग सफल हुआ और १८३१ में उसने चुम्बकत्वसे विद्युत् धारा निकालनेका सिद्धान्त ढूंढ़ निकाला। अगर चुम्बकीय क्षेत्रमें एक चालक आगे पीछे घुमाया जावे तो उल्टी सीधी धारा उत्पन्न होती है। चालक (Conductor) के बन्द कर देनेसे धारा भी बन्द हो जाती है। इस खोजसे यह प्रगट हो गया कि विद्युत्, चुम्बकत्व और गतिमें एक निकटतम सम्बन्ध है तथा अत्यन्त वेगवान पदार्थ विद्युत्को उत्पन्न करते हैं। मोटर और डायनैमोमें यही सिद्धान्त काम करता था।

चूँकि धारा चालकके चलानेसे ही मिलती है और बन्द करनेसे बन्द हो जाती है, चलाते रहने पर एक दशा ऐसी होती है जब कि धारा शून्य हो जाती है। इस प्रकार लगातार धारा नहीं प्राप्त होती, लगातार धाराके लिये लगातार गति अत्यन्त आवश्यकीय तथा मुख्य थी। फ़ैरेडेने नाल चुम्बकके बेठन (Coil) का प्रयोग करके एक मशीन बनाई जिसमें लगातार गति आसानीसे हो सकती थी और इसके परिणाममें लगातार धारा मिल सकती थी। इसे हम सर्व प्रथम डाइनैमो कह सकते हैं जो कि यंत्रीय (Mechanical) बलको विद्युत् बलमें परिणत करनेका एक उपाय है। बेठन परिवर्तक (Transformer) के कार्योंमें यह मूल कारण है। इस सिद्धान्तके प्राप्त हुए बिना रौञ्जन किरणोंकी खोज होना बिलकुल असम्भव था, तथा इन किरणों द्वारा मनुष्य जातिको जो लाभ हुआ है वह भी न हो सकता।

डाइनैमोके सिद्धान्तमें एक उन्नति हुई। एम्पीयरने बतलाया कि विद्युत कुंडली (Circuit) व चुम्बकत्वमें कोई भेद नहीं है और इन दोनोंका प्रभाव भी एक ही होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार स्थायी चुम्बकोंकी आवश्यकता न रही क्योंकि एक कुंडलीका प्रभाव दूसरी कुंडली या बेठन (Coil) पर उसी प्रकार काममें लाया जा सकता है जिस प्रकार कि एक चुम्बकका बेठन पर। ये सब आविष्कार इस बातको सिद्ध करते हैं कि विद्युत् और चुम्बकत्वमें एक अति निकटतम सम्बन्ध है।

यहां पर फ़ैरेडेके जीवनकी एक कथा देना अनुचित न होगा। एक बार वह लोगोंको अपने आविष्कारोंके विषयमें बतला रहा था। ये आविष्कार अत्यन्त नवीन अवस्थामें थे। उसी समय एक महिलाने पूछा कि इन आविष्कारोंका क्या लाभ है?" उसने उत्तर दिया कि "एक नवजात शिशुसे मनुष्य जातिको क्या लाभ?" आगे चलकर ये आविष्कार ऐसे ही सिद्ध हुए जैसे कि फ़ैरेडेने बतलाये थे।

फ़ैरेडेके कार्यने अपने बाद आने वाले वैज्ञानिकोंका मार्ग साफ़ कर दिया था। उसे आवेश बेठन (Induction coil) वा परिवर्तक और डायनैमोका जन्मदाता कह सकते हैं। उसके कार्यने तारलेखी (Telegraphy) व तारवाणी (Telephony) की सम्भवता प्रगटकी तथा बे-तारके मूल सिद्धान्तके कारण उसकी ही खोजें हैं।

ये चुम्बकीय शक्तिकी लहरें ही हैं जो कि आकाशीमें विद्युत धारा उत्पन्न करती हैं। क्लार्क मैक्सवैल के विद्युतीय चुम्बकत्वके कार्यमें भी उसने सहायता दी है। विद्युत विश्लेषणके नियम, जो कि रसायनिक कारखानोंकी वर्तमान उन्नतिका कारण है उसीके परिश्रमके परिणाम हैं। ये नियम उसीके नाम पर फैरेडे-सिद्धान्त कहे जाते हैं।

माईकेल फ़ैरेडे बहुत ही अच्छी संस्कृतिका व्यक्ति था। दूसरोंकी उन्नति वह हृदयसे चाहता था और ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंकी सहायताके लिये वह सदा तैयार रहता था। वह अपने जीवनमें एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ पर घमंड उसे छू भी न गया था। वह कहा करता था कि, "मैं कोई आविष्कारक नहीं हूँ। ये तो मेरे हाथमें कुछ चमकीले पदार्थ आ गये हैं।" इस आत्माने एक महान वैज्ञानिकका जीवन व्यतीत करते हुए सन् १८६७ में २५ वीं अगस्तको परलोक गमन किया। आजकल विद्युत विज्ञान उसके समयसे बहुत ही बढ़ गया है, पर तो भी वह अभी तक विद्युतका पिता कहा जाता है तथा वैज्ञानिक संसारने उसके नामको अमर करनेके लिये जैसा कि अन्य वैज्ञानिकोंके साथ होता रहा है, एक फ़ैरेडे नामकी इकाई खोल दी है।

पंचदश अध्याय

दीर्घवृत्त

[ले० 'गणितज्ञ']

१७३—सूक्त १३३ में कहा जा चुका है कि यदि किसी शंकुच्छिन्न की उत्केन्द्रता उ, इकाईसे कम हो तो यह शंकुच्छिन्न दीर्घ वृत्त कहा जाता है, अर्थात् दीर्घ वृत्त उस बिन्दुका बिन्दुपथ है जो इस प्रकार भ्रमण करता है कि किसी निश्चित बिन्दु, नाभि, से इसकी दूरी और नियत रेखा से इसकी दूरी में निश्चित निष्पत्ति रहती है और यह निष्पत्ति इकाईसे कम होती है।

१७४—दीर्घ वृत्तका समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि स नाभि है और दध एक नियत रेखा है। नियत रेखा पर नाभिसे सम एक लम्ब खींचो। सम को अ बिन्दु पर इस प्रकार विभाजित करो कि—
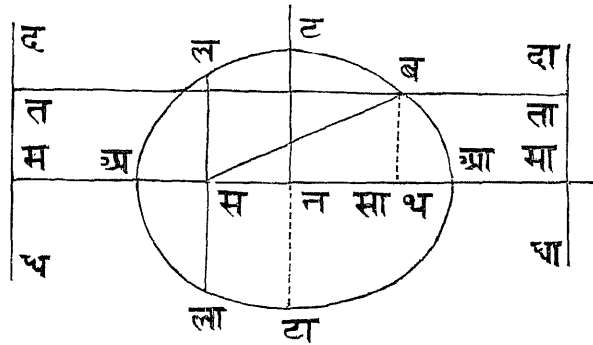
चित्र ५८

स अ : अम = स्थिर निष्पत्ति

= उ : १

मसको आगे बढ़ा कर एक दूसरा बिन्दु आ भी इस प्रकारका प्राप्त हो सकता है कि—

स आ : आ म : : उ : १

कल्पना करो कि अ आ का मध्यबिन्दु न है और अ आ की लम्बाई २ क है।

तो स अ = उ × अम

और स आ = उ × आ म

∴ स अ + सआ = उ (अम + आम)

∴ २ अ न = २ उ. म न

∴ २ क = २ उ. म न

$$\therefore \quad म\,न = \frac{क}{उ} \ldots\ldots (१)$$

तथा स आ − स अ = उ (आम − अम)

अथवा अ आ − २ स अ = उ. अ आ

∴ स न = उ. अ न = क उ ...(२)

कल्पना करो कि न मूल बिन्दु है और न आ य- अक्ष और इस पर की एक लम्ब रेखा र-अक्ष हैं, तथा वक्र पर ब कोई बिन्दु है जिसके युग्मांक (य, र) हैं।

अतः चित्र में—

$स\,ब^२ = उ^२.\, ब\,त^२$

$\therefore स\,थ^२ + थ\,ब^२ = उ^२.\, बत^२ = उ.^२\, मथ^२$

परन्तु सथ = स न + नथ

= क उ + य (परिणाम २ से)

तथा म थ = म न + नथ

$= \frac{क}{उ} + य$ (परिणाम १ से)

$$\therefore \quad (क\,उ + य)^२ + र^२ = उ^२\left(\frac{क}{उ} + य\right)^२$$

$$\therefore \quad र^२ + य^२ (१ - उ^२) = क^२ (१ - उ^२)$$

$$अथवा \quad \frac{य^२}{क^२} + \frac{र^२}{क^२ (१ - उ^२)} = १ \ldots\ldots (३)$$

यदि य = ०, तो $र = \pm\sqrt{[क^२ (१ - उ^२)]}$

$= \pm क\sqrt{(१ - उ^२)}$

इससे र-अक्ष पर वक्र द्वारा काटी हुई दूरी ज्ञात हो जाती है। यदि इन दूरियोंको ± ख कहा जाय तो—

$$ख^२ = क^२ (१ - उ^२) \ldots\ldots\ldots (४)$$

और समीकरण (३) का रूप इस प्रकारका हो जाता है :—

$$\frac{य^२}{क^२} + \frac{र^२}{ख^२} = १ \ldots\ldots\ldots (५)$$

यह दीर्घवृत्तका अभीष्ट समीकरण है।

१७५—गत सूक्तका समीकरण (५) इस रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$\frac{र^२}{ख^२} = १ - \frac{य^२}{क^२}$$

$$= \frac{क^२ - य^२}{क^२}$$

$$= \frac{(क + य)\,(क - य)}{क^२}$$

$$अर्थात् \quad \frac{बथ^२}{ख^२} = \frac{अ\,थ.\, आ\,थ}{क^२}$$

∴ ब थ² : अ थ. आथ : : ट न² : अ न²

१७६—परिभाषा—बिन्दु अ और आ को वक्रका शीर्ष कहते हैं तथा अआ को दीर्घ-अक्ष और टटा को लघु-अक्ष।

१७७—नाभि स के युग्मांक (− कउ, ०) हैं अतः यदि नाभिको मूल-बिन्दु माना जाय तो सूक्त ६० के अनुसार दीर्घ वृत्तका समीकरण निम्न होगा—

$$\frac{(य - क\,उ)^२}{क^२} + \frac{र^२}{ख^२} = १$$

यदि अ को मूलबिन्दु माना जाय और अमाको य−अक्ष और अ से इस अक्ष पर एक लम्बरेखा का र−अक्ष तो समीकरणका रूप यह हो जायगा :—

$$\frac{(\text{य}-\text{क})^2}{\text{क}^2}+\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2}=१$$

$$\therefore\ \frac{\text{य}^2}{\text{क}^2}+\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2}-\frac{२\,\text{य}}{\text{क}}=०$$

तथा यदि मद और ममा को अक्ष माना जाय तो नम $=-\frac{\text{क}}{\text{उ}}$ और अतः दीर्घ वृत्तका समीकरण निम्न होगा :—

$$\frac{\left(\text{य}-\frac{\text{क}}{\text{उ}}\right)^2}{\text{क}^2}+\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2}=१$$

१७८—दीर्घ वृत्तकी दूसरी भी एक नाभि और एक नियतरेखा होती है।

मूल बिन्दु न के दाहिनी ओर य–अक्ष पर एक दूसरा बिन्दु सा इस प्रकार लो कि सन=नसा =क उ और मा ऐसा बिन्दु लो कि नम=नमा $=\frac{\text{क}}{\text{उ}}$

मा से एक रेखा मादा य–अक्षके लम्बरूप खींचो और बता रेखा मादा के लम्बरूप खींचो। सूक्त १७४ के समीकरण (३) को इस रूपमें लिख सकते हैं :—

$$\text{य}^2-\text{य}^2\,\text{उ}^2+\text{र}^2=\text{क}^2-\text{क}^2\,\text{उ}^2$$

$$\therefore\ \text{य}^2+\text{क}^2\,\text{उ}^2-२\,\text{क}\,\text{उ}\,\text{य}+\text{र}^2=\text{क}^2+\text{य}^2\,\text{उ}^2-२\,\text{क}\,\text{उ}\,\text{य}$$

$$\therefore\ (\text{य}-\text{क}\,\text{उ})^2+\text{र}^2=\text{उ}^2\left(\frac{\text{क}}{\text{उ}}-\text{य}\right)^2$$

$$\therefore\ \text{सा}\,\text{ब}^2=\text{उ}^2.\,\text{ब}\,\text{त}^2$$

अतः वक्रका प्रत्येक बिन्दु ब इस प्रकार स्थित रहता है कि सा से इसकी दूरी मा दासे इसकी दूरीका उ–गुणा है। अतः सा को नाभि मान कर और मा दा को नियत रेखा मान कर जो वक्र उ–उत्केन्द्रताका खींचा जायगा वह वक्र भी पूर्व-वक्र ही होगा। इस प्रकार दीर्घ वृत्तकी दो नाभियाँ और दो नियत रेखायें होती हैं।

१७९—दीर्घ वृत्तके किसी बिन्दुकी नाभि-दूरियोंका योग दीर्घ अक्षके बराबर होता है—

सूक्त १७४ के चित्रसे

$$\text{स}\,\text{ब}=\text{उ}.\,\text{त}\,\text{ब}$$

$$\text{और}\quad \text{सा}\,\text{ब}=\text{उ}\,\text{ब}\,\text{ता}$$

$$\therefore\ \text{सब}+\text{सा}\,\text{ब}=\text{उ}\,(\text{त}\,\text{ब}+\text{ब}\,\text{ता})$$
$$=\text{उ}.\,\text{त}\,\text{ता}=\text{उ}.\,\text{ममा}$$
$$=२\,\text{उ}.\,\text{नमा}=२\,\text{क}=\text{दीर्घ अक्ष}$$

$$\text{तथा}\quad \text{स}\,\text{ब}=\text{उ}.\,\text{ब}\,\text{त}=\text{उ}.\,\text{थम}$$
$$=\text{उ}\,(\text{नम}+\text{न}\,\text{थ})$$
$$=\text{उ}.\,\text{नम}+\text{उ}.\,\text{न}\,\text{थ}$$
$$=\text{क}+\text{उ}.\,\text{य}$$

$$\text{सा}\,\text{ब}=\text{उ}.\,\text{बता}=\text{उ}.\,\text{थमा}$$
$$=\text{उ}\,(\text{नमा}-\text{नथ})$$
$$=\text{उ}.\,\text{न}\,\text{मा}-\text{उ}.\,\text{न}\,\text{थ}$$
$$=\text{क}-\text{उ}.\,\text{य}$$

१८०—दीर्घ वृत्तका ऊर्ध्व-भुज—स नाभिसे होता हुआ लसला एक द्विगुण-कोटि खींचो। दीर्घवृत्त की परिभाषाके अनुसार अर्ध-उर्ध्व भुज लंस की लम्बाई—

$$=\text{उ}\times(\text{ल बिन्दुकी नियत रेखासे दूरी})$$
$$=\text{उ}.\,\text{सम}=\text{उ}\,(\text{नम}-\text{नस})$$
$$=\text{उ}.\,\text{नम}-\text{उ}.\,\text{नस}$$
$$=\text{क}-\text{क}\,\text{उ}^2\ (\text{सूक्त १७४ (१), (२) से})$$
$$=\frac{\text{ख}^2}{\text{क}}\ (\text{सूक्त १७४ (४) के उपयोगसे})$$

१८१— $\frac{\text{य}^2}{\text{क}^2}+\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2}=१$ समीकरण द्वारा सूचित वक्रको खींचना—इस समीकरणको निम्न रूपोंमें भी लिखा जा सकता है :—

$$\text{र}=\pm\,\text{ख}\sqrt{१-\frac{\text{य}^2}{\text{क}^2}}\ \cdots\cdots(१)$$

$$\text{य}=\pm\,\text{क}\sqrt{१-\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2}}\ \cdots\cdots(२)$$

समीकरण (१) से यह स्पष्ट है कि यदि $य^२ > क^२$, तो र के मान काल्पनिक होंगे। अतः वक्रका कोई भी भाग आ के दाहिनी ओर और अ के (चित्र ५८) के बायीं ओर नहीं हो सकता।

इसी प्रकार समीकरण (२) से स्पष्ट है कि यदि $र^२ > ख^२$, तो र के मान काल्पनिक होंगे अतः वक्रका कोई भाग टा के नीचे और ट के ऊपर नहीं हो सकता।

यदि य का मान $-$क और क के बीचमें है तो समीकरण (१) से र के दो विपरीत धनर्ण मान होंगे अतः वक्र य$-$अक्षसे समसंगातावयव होगा।

इसी प्रकार यदि र का मान$-$ख और ख के बीचमें हो तो समीकरण (२) से य के दो विपरीत धनर्ण मान होंगे और वक्र र$-$अक्षके भी समसंगतिक होगा।

य और र को भिन्न भिन्न मान देनेसे अन्य बिन्दु भी खींचे जा सकते हैं।

१८२—यदि कोई बिन्दु (या, रा) दीर्घ वृत्तके अन्दर, ऊपर, या बाहर स्थित हो तो $\frac{या^२}{क^२}+\frac{रा^२}{ख^२}-१$ का मान क्रमानुसार ऋण, शून्य और धन होगा—

कल्पना करो कि किसी बिन्दु भ के युग्मांक (या, रा) हैं और कल्पना करो कि इस बिन्दुका कोटि दीर्घ वृत्तसे ब बिन्दु पर मिलता है। अतः सूक्त १७४ के अनुसार—

$$\frac{ब\,थ^२}{ख^२}=१-\frac{य^२}{क^२}$$

यदि भ वक्रके अन्दर हो तो रा अर्थात् भ थ $<$ब थ है, अतः

$$\frac{रा^२}{ख^२}<\frac{ब\,थ^२}{ख^२} \text{ अर्थात् } < १-\frac{या^२}{क^२}$$

अतः इस अवस्थामें

$$\frac{या^२}{क^२}+\frac{रा^२}{ख^२}<१$$

अर्थात् $\frac{या^२}{क^२}+\frac{रा^२}{ख^२}-१$ ऋणात्मक है।

इसी प्रकार यदि भ वक्रके बाहर हो तो भ थ$>$ बथ, अर्थात् रा $>$ बथ और $\frac{या^२}{क^२}+\frac{रा^२}{ख^२}-१$ धनात्मक होगा। पर यदि भ वक्र पर हो तो रा$=$भथ$=$ ब थ, अतः $\frac{या^२}{क^२}+\frac{रा^२}{ख^२}-१$ शून्य होगा।

१८३—दीर्घ वृत्तका ध्रुवीय समीकरण निकालना—दीर्घवृत्तके पूर्व समीकरणमें र के स्थान पर र ज्याथ, और य के स्थानमें र कोज्या थ रख देने से इसका ध्रुवीय समीकरण निकल आवेगा। सूक्त १७४ का समीकरण यह है—

$$\frac{य^२}{क^२}+\frac{र^२}{ख^२}=१$$

अतः दीर्घवृत्तका ध्रुवीय समीकरण निम्न हुआ—

$$\frac{र^२\,कोज्या^२\,थ}{क^२}+\frac{र^२\,ज्या^२\,थ}{ख^२}=१$$

$$\therefore \frac{१}{र^२}=\frac{कोज्या^२\,थ}{क^२}+\frac{ज्या^२\,थ}{ख^२}\cdots\cdots(१)$$

इसको इस रूपमें भी लिख सकते हैं—

$$\frac{१}{र^२}=\frac{१}{क^२}+\left(\frac{१}{ख^२}-\frac{१}{क^२}\right)ज्या^२\,थ\cdots\cdots(२)$$

$\frac{१}{ख^२}-\frac{१}{क^२}$ धनात्मक है, अतः समीकरण (२) में $\frac{१}{र^२}$ का सबसे छोटा माना $\frac{१}{क^२}$ हो सकता है और ज्यों ज्यों $थ^\circ$ का मान ० से $\frac{\pi}{२}$ की ओर बढ़ेगा, $\frac{१}{र^२}$ का मान भी बढ़ेगा। $\frac{१}{र^२}$ का सबसे बड़ा मन $\frac{१}{ख^२}$ होगा अतः नाभिश्रुतित्रिज्या, र, का मान इस अवस्थामें त्यों त्यों घटता जायगा ज्यों ज्यों $थ^\circ$ का मान ० से $\frac{\pi}{२}$ की ओर बढ़ेगा।

१८४—विक्षेप वृत्त—परिभाषा—वह वृत्त जो दीर्घवृत्तके दीर्घाक्षको व्यास मान कर खींचा जाता है। विक्षेप वृत्त कहलाता है।
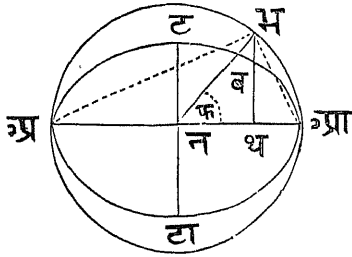
चित्र ५६

कल्पना करो कि थ ब दीर्घवृत्तकी कोई कोटि है। इसे यदि ऊपर बढ़ावें तो यह विक्षेप वृत्तको भ बिन्दु पर काटता है। कोण अभ आ समकोण है क्योंकि यह अर्धवृत्तका कोण है अतः रेखागणित के अनुसार

भ थ^2=अ थ. आ थ

अतः सूक्त १७५ के अनुसार

ब थ^2 : भ थ^2 : : ट न^2 : अ न^2

$\therefore \frac{\text{ब थ}}{\text{भ थ}} = \frac{\text{ट न}}{\text{अ न}} = \frac{\text{ख}}{\text{क}}$

बिन्दु भ जिसमें ब थ कोटि वृत्तसे मिलता है, ब बिन्दुका-सम्बन्धी-बिन्दु कहलाता है। अतः वृत्त परके किसी बिन्दुके कोटि तथा सम्बन्धी-बिन्दुके कोटिमें ख : क अर्थात् लघु अक्ष और दीर्घाक्षकी निष्पत्ति है।

इस आधार पर दीर्घवृत्तकी परिभाषा इस प्रकार भी कर सकते हैं:—

एक वृत्तलो और इसके प्रत्येक बिन्दुसे एक व्यास पर लम्ब खींचो। उन बिन्दुओंका बिन्दु-पथ जो इन लम्बोंको किसी ज्ञात निष्पत्तिमें काटता है दीर्घवृत्त कहलाता है। और वह वृत्त इस दीर्घवृत्तका विक्षेप वृत्त कहलाता है।

१८५—उत्केन्द्र कोण—गत सूक्तके चित्रमें भ को न से संयुक्त कर दो; तो कोण भ न थ दीर्घवृत्त परके बिन्दु ब का उत्केन्द्रकोण कहलावेगा। अतः दीर्घवृत्त पर के किसी बिन्दुका उत्केन्द्र कोण वह होता है जो उस बिन्दुके सम्बन्धी-बिन्दु को केन्द्रसे संयुक्त करने वाली भुजा द्वारा दीर्घ अक्षके साथ बनाया जाता है। इस कोणको बहुधा फ° से सूचित करते हैं।

चित्र में—

न थ=न भ कोज्या फ=क कोज्या फ

थ भ=न भ ज्या फ=क ज्या फ

अतः गत सूक्त से—

$\text{थ ब} = \frac{\text{ख}}{\text{क}}\ \text{क ज्या फ}$

=ख ज्या फ

अतः दीर्घवृत्त परके किसी बिन्दु ब के युग्मांक (क कोज्या फ, ख ज्या फ) हैं। अतः फ° ज्ञात होने पर ब बिन्दु निश्चित हो सकता है। अतः ब बिन्दुको "बिन्दु फ°" भी कहते हैं।

१८६—उस सरलरेखाका समीकरण निकालना जो दीर्घवृत्त परके उन दो दिये हुए बिन्दुओंको संयुक्त करती है जिनके उत्केन्द्र कोण दिये हुए हैं।

कल्पना करो कि दो दिये हुए बिन्दु, ब और बा, के उत्केन्द्र कोण फ° और फा° हैं, अतः इन बिन्दुओंके युग्मांक (क कोज्या फ, ख ज्या फ) और (क कोज्या फा, ख ज्या फा) हुए। इन दोनों बिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखाका समीकरण यह होगा—

$$र - ख\ ज्या\ फ = \frac{ख\ ज्या\ फा - ख\ ज्या\ फ}{क\ कोज्या\ फा - क कोज्या\ फ} (य - क\ कोज्या\ फ)$$

$$= \frac{ख.\ २\ कोज्या \frac{१}{२}(फ+फा).\ ज्या\ \frac{१}{२}(फा-फ)}{क\ २\ ज्या\ \frac{१}{२}(फ+फा)\ ज्या\ \frac{१}{२}(फा-फ)} (य - क\ कोज्या\ फ)$$

$$= -\frac{ख}{क}.\ \frac{कोज्या\ \frac{१}{२}(फ+फा)}{ज्या\ \frac{१}{२}(फ+फा)} (य - क\ कोज्या\ फ)$$

अर्थात् अभीष्ट समीकरण यह हुआ :—

$$\frac{य}{क} कोज्या\ \frac{फ+फा}{२} + \frac{र}{ख} ज्या\ \frac{फ+फा}{२} = कोज्या\ फ.\ कोज्या \frac{फ+फा}{२} + ज्या\ फ.\ ज्या \frac{फ+फा}{२}$$

$$= कोज्या \left[फ - \frac{फ+फा}{२} \right] = कोज्या\ \frac{फ-फा}{२}$$

१८७—दीर्घवृत्त $\frac{य^२}{क^२} + \frac{र^२}{ख^२} = १$ और किसी सरलरेखाके अन्तरखण्ड-बिन्दुओंको निकालना—

कल्पना करो कि सरलरेखा का समीकरण र=त य+ग है । अन्तरखण्डोंके निकालनेके लिये र का यह मान दीर्घवृत्तके समीकरणमें स्थापित करने से—

$$\frac{य^२}{क^२} + \frac{(त\ य + ग)^२}{ख^२} = १$$

$$\therefore य^२ (ख^२ + क^२ त^२) + २\ त\ ग\ क^२ य + क^२ (ग^२ - ख^२) = ० \cdots\cdots \cdots\cdots (१)$$

यह वर्गात्मक समीकरण है अतः इसके दो वास्तविक, पराच्छादित अथवा काल्पनिक मूल होंगे, अर्थात् प्रत्येक सरलरेखा दीर्घवृत्त को दो बिन्दुओं पर काटेगी। ये बिन्दु वास्तविक, पराच्छादित या काल्पनिक हो सकते हैं। सरल रेखाके समीकरण र=त य+ग में य को दो मान देनेसे र के भी दो मान होंगे।

समीकरण (१) के दोनों मूल परस्परमें बराबर होंगे, यदि

$$क^२ (ग^२ - ख^२)(ख^२ + क^२ त^२) = त^२ ग^२ क^४$$

अर्थात् यदि

$$ग^२ ख^२ + क^२ त^२ ग^२ - ख^४ - क^२ ख^२ त^२ - क^२ त^२ ग^२ = ०$$

$$\therefore ग^२ ख^२ = ख^४ + क^२ ख^२ त^२$$

$$\therefore ग^२ = ख^२ + क^२ त^२$$

यदि य के दोनों मान बराबर हैं तो र के भी दोनों मान बराबर होंगे, अतः दोनों अन्तरखण्ड बिन्दु पराच्छादित होंगे, यदि

$$ग = \pm\sqrt{(क^२ त^२ + ख^२)}$$

अतः निम्न रेखा दीर्घवृत्त का स्पर्श करेगी—चाहे त का कोई भी मान क्यों न हो—

$$र = त\ य \pm \sqrt{(क^२ त^२ + ख^२)} \cdots (२)$$

ग के इन मानोंमें ऋण, और धन दोनों चिह्न उपयोग किये जा सकते हैं। अतः त के प्रत्येक मानके लिये दो स्पर्श रेखायें किसी भी वृत्त पर खींची जा सकती हैं। अर्थात् किसी भी सरल रेखाके समानान्तर दो रेखायें दीर्घवृत्तका स्पर्श करती हुई खींची जा सकती हैं।

१८८—सरलरेखा र=त य+ग में से दीर्घवृत्त द्वारा काटे गये चापकर्ण की लम्बाई निकालना—

सूक्त १३९ के समान यह लम्बाई निकाली जा सकती है। सरलरेखाका समीकरण यह है—

$$र = त\ य + ग \cdots\cdots (१)$$

दीर्घवृत्तका समीकरण यह है—

$$\frac{य^2}{क^2}+\frac{र^2}{ख^2}-१=० \cdots\cdots\cdots (२)$$

समीकरण (१) के र के मानको समीकरण (२) में स्थापित करने से—

$$\frac{य^2}{क^2}-\frac{(त\,य+ग)^2}{ख^2}-१=० \cdots (३)$$

$$\therefore य^2(ख^2+क^2त^2)+२\,त\,ग\,क^2\,य+क^2(ग^2-ख^2)=० \cdots (४)$$

इस समीकरणके मूल यदि $य_१$ और $य_२$ हों तो—

$$य_१+य_२=-\frac{२\,क^2\,त\,ग}{क^2\,त^2+ख^2}$$

$$\text{और}\quad य_१\,य_२=\frac{क^2(ग^2-ख^2)}{क^2\,त^2+ख^2}$$

$$\text{अतः}\quad य_१-य_२=\frac{२\,क\,ख\sqrt{(क^2त^2+ख^2-ग^2)}}{क^2\,त^2+ख^2}$$

चापकर्ण और दीर्घवृत्त के अन्तरखण्डों के युग्मांक ($य_१, र_१$) और ($य_२, र_२$) हैं, अतः दीर्घवृत्त द्वारा काटे गये चापकर्ण की लम्बाई

$$=\sqrt{[(य_१-य_२)^2+(र_१-र_२)^2]}$$

$$=(य_१-य_२)\sqrt{(१+त^2)}$$

क्योंकि दोनों अन्तरखण्ड बिन्दु सरलरेखा $र=त\,य+ग$ पर विद्यमान हैं, अतः

$$र_१=त\,य_१+ग$$

$$र_२=त\,य_२+ग$$

$$\therefore र_१-र_२=त(य_१-य_२)$$

$$\therefore त=\frac{र_१-र_२}{य_१-य_२}$$

अतः अभीष्ट लम्बाई =

$$\frac{२\,क\,ख\sqrt{(१+त^2)}\sqrt{(क^2त^2-ख^2-ग^2)}}{क^2\,त^2+ख^2}$$

१८९—दीर्घवृत्त $\frac{य^2}{क^2}+\frac{र^2}{ख^2}=१$ परके किसी बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्शरेखा का समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि दीर्घवृत्त पर ब और भ दो बिन्दु हैं जिनके युग्मांक क्रमशः (या, रा), और (यि, रि) हैं। अतः सरलरेखा बभ का समीकरण यह होगा—

$$र-रा=\frac{रि-रा}{यि-या}(य-या) \cdots (१)$$

दोनों बिन्दु ब और भ दीर्घवृत्त पर स्थित हैं अतः

$$\frac{या^2}{क^2}+\frac{रा^2}{ख^2}=१ \cdots\cdots (२)$$

$$\frac{यि}{क^2}+\frac{रि}{ख^2}=१ \cdots\cdots (३)$$

अतः (२) को (३) में से घटाने पर

$$\frac{यि^2-या^2}{क^2}+\frac{रि^2-रा^2}{ख^2}=०$$

$$\therefore \frac{(रि+रा)(रि-रा)}{ख^2}=-\frac{(यि+या)(यि-या)}{क^2}$$

$$\therefore \frac{रि-रा}{यि-या}=-\frac{ख^2}{क^2}\cdot\frac{यि+या}{रि+रा} \cdots (४)$$

समीकरण (४) के मानको समीकरण (१) में उपयुक्त करनेसे ब भ का समीकरण यह होगा :—

$$र-रा=-\frac{ख^2}{क^2}\cdot\frac{यि+या}{रि+रा}(य-या) \cdots (५)$$

यदि भ बिन्दु ब बिन्दुके अति निकट हो तो रि=रा और यि=या, और ऐसी अवस्था में ब भ रेखा दीर्घवृत्तकी स्पर्शरेखा होगी। अतः इसका समीकरण यह होगा—

$$र-रा=-\frac{ख^2\,या}{क^2\,रा}(य-या)$$

$$\text{अर्थात्}\quad \frac{य\,या}{क^2}+\frac{र\,रा}{ख^2}=\frac{या^2}{क^2}+\frac{रा^2}{ख^2}=१$$

अतः स्पर्शरेखाका समीकरण यह हुआ —

$$\frac{य\ या}{क^2}+\frac{र\ रा}{ख_2}=१$$

अर्थात् स्पर्श रेखाका समीकरण दीर्घवृत्तके समीकरणमें $य^2$ के स्थानमें य या और $र^2$ के स्थानमें र रा रख देनेसे निकल आता है।

१९०—स्पर्शरेखाका दीर्घाक्षके साथ जो कोण बनता है उसके पदोंमें स्पर्शरेखाका समीकरण निकालना—

सरलरेखाका समीकरण यह है—

$$र=त\ य+ग \cdots\cdots(१)$$

यह रेखा जिन बिन्दुओं पर दीर्घवृत्तको काटती है वे सूक्त १८७ के अनुसार निम्न समीकरण द्वारा सूचित होते हैं—

$$य^2\ (ख^2+क^2\ त^2)+२\ त\ \ ग\ क^2\ य+क^2\ (ग^2-ख^2)=०$$

और इसके दोनों मूल पराच्छादित तब होंगे जब (सूक्त १८७ से)

$$ग=\sqrt{(क^2\ त^2+ख^2)}$$

अतः समीकरण (१) स्पर्शरेखा तब होगी जब

$$र=त\ य+\sqrt{(क^2\ त^2+ख^2)}$$

यही अभीष्ट समीकरण है क्योंकि 'त' सरल रेखा और अक्षके बीचके कोण पर निर्भर है।

१९१—गत सूक्तके अनुसार सरलरेखा यकोज्या थ+र ज्या थ=ल दीर्घवृत्तका स्पर्श करेगी, यदि

$$ल^2=क^2\ कोज्या^2\ थ+ख^2\ ज्या^2\ थ \cdots(१)$$

इसी प्रकार सरलरेखाका समीकरण यदि का य+खा र=गा हो तो यह दीर्घवृत्तका स्पर्श तब करेगी जब

$$क^2\ का^2+ख^2\ खा^2=गा^2 \cdots\cdots(२)$$

क्योंकि यह रेखा का य+खा र=गा जिन बिन्दुओं पर दीर्घवृत्तको काटती है उनको संयुक्त करने वाली रेखा का समीकरण यह है—

$$\frac{य^2}{क^2}+\frac{र^2}{ख^2}-\left(\frac{क\ का+ख\ खा}{गा}\right)^2=० \cdots(४)$$

यदि समीकरण (४) पूर्ण वर्ग हो तो दोनों अन्तरखण्ड बिन्दु पराच्छादित होंगे। यह पूर्ण वर्ग तब होगा जब—

$$\left(\frac{१}{क^2}-\frac{का^2}{गा^2}\right)\left(\frac{१}{ख^2}-\frac{खा^2}{गा^2}\right)=\frac{का^2\ खा^2}{गा^4}$$

अतः $$क^2\ का^2+ख^2\ खा^2=गा^2$$

यही इष्ट समीकरण है।

१९२—उस बिन्दु परकी स्पर्शरेखाका समीकरण निकालना जिसका उत्केन्द्रकोण $फ^\circ$ दिया हुआ है—

यदि बिन्दुका उत्केन्द्रकोण $फ^\circ$ है तो उस बिन्दुके युग्मांक (क कोज्या फ, ख ज्या फ) होंगे। सूक्त १८९ में, स्पर्शरेखाका समीकरण यह निकाला गया था—

$$\frac{य\ या}{क^2}+\frac{र\ रा}{ख^2}=१$$

इसमें या के स्थानमें क कोज्या फ और र के स्थानमें ख ज्या फ रखनेसे अभीष्ट स्पर्शरेखाका समीकरण यह होगा—

$$\frac{य.\ क\ कोज्या\ फ}{क^2}+\frac{र.\ ख\ ज्या\ फ}{ख^2}=१$$

अर्थात् $\frac{य}{क}$ कोज्या फ+ $\frac{र}{ख}$ ज्या फ=१

१९३—उन बिन्दुओं परकी स्पर्शरेखाओंका अन्तरखण्ड बिन्दु निकालना जिनके उत्केन्द्रकोण $फ^\circ$ और $फा^\circ$ हैं।

गत सूक्तके अनुसार इन स्पर्शरेखाओंके समीकरण ये होंगे—

$\frac{य}{क}$ कोज्या फ+ $\frac{र}{ख}$ ज्या फ=१

$\frac{य}{क}$ कोज्या फा+ $\frac{र}{ख}$ ज्या फा=१

इन दोनों समीकरणोंको सरल करके अन्तर खण्ड बिन्दु निकाला जा सकता है अतः

$$\frac{\text{य}/\text{क}}{\text{ज्याफ}-\text{ज्याफा}} = \frac{\text{र}/\text{ख}}{\text{कोज्या फा}-\text{कोज्या फ}}$$

$$= \frac{-१}{\text{कोज्या फ. ज्या फा}-\text{ज्या फ. कोज्या फा}}$$

$$= \frac{१}{\text{ज्या}\ (\text{फ}-\text{फा})}$$

अर्थात्

$$\frac{\text{य}}{२\ \text{क कोज्या}\ \frac{\text{फ}+\text{फा}}{२}\ \text{ज्या}\ \frac{\text{फ}-\text{फा}}{२}}$$

$$= \frac{\text{र}}{२\ \text{ख ज्या}\ \frac{\text{फ}+\text{फा}}{२}\ \text{ज्याफ}\ \frac{-\text{फा}}{२}}$$

$$= \frac{१}{२\ \text{ज्या}\ \frac{\text{फ}-\text{फा}}{२}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{फ}-\text{फा}}{२}}$$

अतः

$$\text{य} = \text{क}\ \frac{\text{कोज्या}\frac{१}{२}\ (\text{फ}+\text{फा})}{\text{कोज्या}\frac{१}{२}\ (\text{फ}-\text{फा})}$$

$$\text{और}\ \text{र} = \text{ख}\ \frac{\text{ज्या}\frac{१}{२}\ (\text{फ}+\text{फा})}{\text{कोज्या}\frac{१}{२}\ (\text{फ}-\text{फा})}$$

ये अन्तरखण्ड बिन्दुके अभीष्ट युग्मांक हैं।

१६४—बिन्दु (या, रा) परके अवलम्बका समीकरण निकालना—

अभीष्ट अवलम्ब वह सरल रेखा है जो बिन्दु (या, रा) से होती हुई उस बिन्दु परकी स्पर्शरेखा के लम्ब रूप खींची जाय। स्पर्शरेखाका समीकरण सूक्त १८६ के अनुसार निम्न है—

$$\frac{\text{य या}}{\text{क}^२} + \frac{\text{र रा}}{\text{ख}^२} = १$$

इसे इस रूपमें भी लिख सकते हैं :—

$$\text{र} = \frac{\text{ख}^२}{\text{रा}}\left(१ - \frac{\text{य या}}{\text{क}^२}\right)$$

$$= -\frac{\text{ख}^२}{\text{क}^२}.\frac{\text{या}}{\text{रा}}.\text{य} + \frac{\text{ख}^२}{\text{रा}}$$

स्पर्श रेखा पर लम्ब होनेके कारण अवलम्बका समीकरण यह है :—

$$\text{र}-\text{रा} = \text{त}\ (\text{य}-\text{या})$$

जिसमें

$$\text{त}.\ \left(-\frac{\text{ख}^२\ \text{या}}{\text{क}^२\ \text{रा}}\right) = -१$$

$$\therefore\quad \text{त} = \frac{\text{क}^२\ \text{रा}}{\text{ख}^२\ \text{या}}$$

अतः अवलम्बका समीकरण यह हुआ:—

$$\text{र}-\text{रा} = \frac{\text{क}^२\ \text{रा}}{\text{ख}^२\ \text{या}}\ (\text{य}-\text{या})$$

अर्थात्

$$\frac{\text{य}-\text{या}}{\frac{\text{या}}{\text{क}^२}} = \frac{\text{र}-\text{रा}}{\frac{\text{रा}}{\text{ख}^२}}$$

१६५—उस बिन्दु परका अवलम्ब निकालना जिसका उत्केन्द्र कोण फ° दिया हुआ है—

इस बिन्दुके युग्मांक (क को ज्या फ, ख ज्या फ) हैं अतः गत सूक्त द्वारा निकाले गये अवलम्बके समीकरणमें या के स्थानमें क को ज्या फ और रा के स्थान में ख ज्या फ रख देनेसे अवलम्बका अभीष्ट समीकरण प्राप्त हो सकता है। अतः समीकरण यह हुआ—

$$\frac{\text{य}-\text{क को ज्या फ}}{\frac{\text{क को ज्या फ}}{\text{क}^२}} = \frac{\text{र}-\text{ख ज्या फ}}{\frac{\text{ख ज्या फ}}{\text{ख}^२}}$$

$$\therefore\quad \frac{\text{य}-\text{क को ज्या फ}}{\frac{\text{को ज्या फ}}{\text{क}}} = \frac{\text{र}-\text{ख ज्या फ}}{\frac{\text{ज्या फ}}{\text{ख}}}$$

अर्थात्

$$\frac{\text{कय}}{\text{कोज्या फ}} - \text{क}^२ = \frac{\text{खर}}{\text{ज्या फ}} - \text{ख}^२$$

अतः अवलम्बका अभीष्ट समीकरण यह हुआ—

कय छेदन फ—खर कोछ्दन फ=$क^२ - ख^२$

१९६—अवान्तर स्पर्शरेखा और अवान्तर अवलम्ब की लम्बाई निकालना—

कल्पना करो कि बिन्दु (या, रा) से खींची गई स्पर्शरेखा और अवलम्ब य—अक्षसे भ और फ बिन्दुपर मिलते हैं, और बिन्दु ब का कोटि ब प है।

सूक्त १८६ के अनुसार ब पर की स्पर्शरेखाका समीकरण यह होगा—

चित्र ६०

$$\frac{य\ या}{क^२} + \frac{र\ रा}{ख^२} = १ \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

यह जहाँ पर य अक्षसे मिलेगी वहाँ र=०, अतः

$$\frac{य\ या}{क^२} = १,\ अथवा\ य = \frac{क^२}{या}$$

$$अर्थात्\ न\ भ = \frac{क^२}{न\ प}$$

$$\therefore\ न\ भ.\ न\ प = क^२ = न\ अ^२ \cdots\cdots (२)$$

अतः अवान्तर स्पर्शरेखा प भ=न भ—न प

$$= \frac{क^२}{या} - या$$

$$= \frac{क^२ - या^२}{या}$$

सूक्त १६४ के अनुसार अवलम्ब का समीकरण यह है :—

$$\frac{य - या}{\frac{या}{क^२}} = \frac{र - रा}{\frac{रा}{ख^२}}$$

जहाँ पर अवलम्ब य—अक्षसे मिलेगा, वहाँ र=०

$$\therefore \frac{य - या}{\frac{या}{क^२}} = -\frac{रा}{\frac{रा}{ख^२}} = -ख^२$$

अर्थात्

$$न\ फ = य = या - \frac{ख^२}{क^२}\ या$$

$$= \frac{क^२ - ख^२}{क^२}\ या$$

$$= उ^२\ या = उ^२\ न\ प \cdots\cdots\cdots (३)$$

अतः अवान्तर अवलम्ब प फ

$$= न\ प - न\ फ = (१ - उ^२)\ न\ प$$

अर्थात् $प\ फ : प\ न :: (१ - उ^२) : १$

अर्थात् $:: ख^२ : क^२$

[सूक्त १७४ (४) के अनुसार]

समालोचना

चमचम—सम्पादक श्रीमान् पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय और श्रीमान् विश्वप्रकाश जी बी० ए० एल-एल बी०। प्रकाशक—कला प्रेस, जीरो रोड इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ४०, वार्षिक मूल्य २॥), एक अंक का।)

राष्ट्रभाषा हिन्दी में बालसाहित्य की बड़ी कमी है। बच्चोंके लिए इने-गिने दो ही चार पत्र निकलते हैं। बड़े हर्ष का विषय है कि बच्चों के मनोरंजनार्थ और शिक्षार्थ "चमचम" नामक सचित्र मासिक पत्र, कई रंगोंमें प्रकाशित होने लगा है। जनवरी का प्रथम अंक मेरे सामने है। इसका रंगीन टाइटिल पेज बड़ा ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। इसमें बालोपयोगी कविताएँ, किस्से-कहानी संवाद और नाटक, हँसानेवाले चुटकुले, पहेलियाँ और जीवनचरित्र व किसी देश का वृत्तान्त आदि सब कुछ बच्चोंके पढ़ने योग्य रहते हैं। हँसी-खेलमें यदि बच्चोंको उच्च शिक्षा दिलानी हो तो इसे मँगाने के लिए सज्जनोंसे सादर अनुरोध करूँगा। मुझे पूर्ण आशा है कि लोग इसे मंगा कर अपने बच्चोंके हाथमें देंगे। बच्चे इस चमचमका स्वाद चखकर बहुत प्रसन्न होंगे।

—कृष्णानन्द

प्राप्ति स्वीकार

कलकत्ताके सुप्रसिद्ध डाक्टर एस० के० वर्मन द्वारा प्रकाशित सन् १९३१ के दो सुन्दर कैलेण्डर हमें प्राप्त हुए हैं जिनमें विक्री संवत की तिथियाँ भी लिखी हैं और उनकी दवाइयों का सूचीपत्र भी है।

सूर्य-सिद्धान्त

(गताङ्क से आगे)

अनुवाद—(५५) यह नक्षत्र चक्र देवताओंके सव्य दिशामें अर्थात् बांयेंसे दहने और असुरोंके अपसव्य दिशामें अर्थात् दहनेके वायें तथा निरक्ष देश वालोंके सिरके ऊपर पश्चिम दिशामें सदा भ्रमण करता है। (५६) इसलिए यहाँ निरक्ष देशमें ३० घड़ी का दिन और ३० की रात होती है परन्तु देवताओं और असुरोंके विभागोंमें अर्थात् विषुवत् रेखासे उत्तर और दक्षिणके देशोंमें दिन रात की क्षय वृद्धि परस्पर विपरीत होती है। (५७) मेष राशिमें प्रवेश करनेके पश्चात् सूर्य जैसे उत्तर की ओर बढ़ता है विषुवत्रेखासे उत्तरके देशोंमें दिन मान की वैसे ही वृद्धि और रात्रि की हानि होती है परन्तु विषुवत् रेखासे दक्षिणके देशोंमें इसका उलटा होता है अर्थात् वहाँ दिन क्षय और रात्रि की वृद्धि होती है। (५८) तुलाराशिमें प्रवेश करनेके पश्चात् सूर्य जैसे जैसे दक्षिण की ओर बढ़ता है वैसे ही वैसे उत्तर भागमें दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि तथा दक्षिण भागमें दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है। दिन रात्रि की क्षय वृद्धि स्थानके अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति पर निर्भर है जिसका विचार पहले ही किया गया है।

विज्ञान भाष्य—५५ वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि उत्तर ध्रुव निवासियोंको नक्षत्र चक्र सव्य दिशामें भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियोंको अपसव्य दिशामें। सव्य और अपसव्य शब्दोंकी व्यवस्था विज्ञान भाष्य पृष्ठ १८६ में की गयी है। विषुवत् रेखाके निकट देशोंमें नक्षत्र चक्र सिरके ऊपर पूरबसे पच्छिमको भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है। विषुवत् रेखा पर दिनका परिमाण ३० घड़ीका और रात्रिका परिमाण भी ३० घड़ीका सदा होता है। इससे उत्तर और दक्षिणके देशोंमें दिन रात्रिका परिमाण ३० घड़ी केवल विषुव दिनको ही होता है जब सूर्यकी क्रान्ति शून्य होती है। अन्य कालोंमें जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरके देशोंमें दिन ३० घड़ीसे बड़ा और रात ३० घड़ीसे उतनी ही छोटी होती है परन्तु दक्षिणके देशोंमें दिन ३० घड़ीसे छोटा और रात उतनी ही बड़ी होती है और जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होती है तब दक्षिणके देशों में दिन बड़ा, रात छोटी तथा उत्तरके देशोंमें रात बड़ी, दिन छोटा होता है। दिन या रातकी क्षयवृद्धिका विचार सूर्यकी क्रान्ति और स्थानके अक्षांशके अनुसार किया जाता है जैसा कि स्पष्टाधिकारके ६०-६१ श्लोकों और उनके विज्ञान भाष्यमें बतलाया गया है।

नक्षत्र चक्रके इस भ्रमणका कारण प्राचीनोंके मतसे प्रवह वायु और नवीन मतसे पृथ्वीकी दैनिक गति है जिसका विचार आगेके ७४ वें श्लोकके विज्ञानभाष्यमें किया जायगा।

इन श्लोकोंमें मेष और तुलाका अर्थ सायन मेष और सायन तुला समझना चाहिए क्योंकि दिनरातकी क्षयवृद्धि सायन राशियोंके ही अनुसार होती है।

विषुवत्रेखासे कितने योजन पर उत्तर या दक्षिण सूर्य ठीक ऊपर होता है।

भूवृत्तं क्रान्ति भागघ्नं भगणांश विभाजितम् ।
अवाप्त योजनैरर्को व्यक्षाद्यात्युपरिस्थितः ॥५९॥

अनुवाद—भूपरिधिके योजनोंको सूर्यकी तात्कालिक क्रान्तिके अंशोंसे गुणा करके ३६० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उतने ही योजन विषुवत रेखासे दूर सूर्य ऊपर होता है।

विज्ञान भाष्य—सूर्यकी जो क्रान्ति होती है उतने ही अक्षांश पर वह ठीक ऊपर होता है। क्रान्ति यदि उत्तर हो तो अक्षांश उत्तर समझना चाहिए और क्रान्ति दक्षिण हो तो अक्षांश दक्षिण समझना चाहिए (देखो त्रि० पृ० ३८३—८४)। कौन अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर होता है इसकी गणना जैसे की जाती है वैसे ही इस श्लोकमें गणना करनेकी रीति बतलायी गयी है। भूपरिधिका मान योजनोंमें जो होता है वह ३६० अंशके समान है इसलिये अभीष्ट अक्षांश विषुवत् रेखासे कितने योजन पर है यही अनुपात इसमें बतलाया गया है। ३६० अंश : क्रान्त्यंश : : भूपरिधि योजन : अभीष्ट योजन।

६० घड़ीका दिन या ६० घड़ीकी रात कहाँ होती है—

परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत् ।
भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥६०॥
अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः ।
नाड़ी षष्ट्या सकृदहर्निशाप्यस्मिन्सकृत्तथा ॥६१॥

अनुवाद—(६०) इसी प्रकार सूर्यकी परम क्रान्तिसे योजनका मान जानकर इसको भूपरिधिके चतुर्थ भागसे घटानेसे जो आवे विषुवत् रेखासे उतने ही योजन पर (६१) अयनके अन्तमें अर्थात् सायन कर्क संक्रान्तिके दिन उत्तरमें ६० घड़ी का एक दिन और दक्षिणमें ६० घड़ीकी एक रात तथा मकर संक्रान्तिके दिन दक्षिणमें ६० घड़ीकी एक दिन और उत्तर में ६० घड़ीकी एक रात होती है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंका अर्थ समझनेके लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक ६०-६१ तथा चित्र ४२, ४३ और उसके विवरणको दुहरा लेना चाहिए। इन चित्रोंकी सहायतासे एक नया चित्र बनाकर यह जानना सुगम है कि जब सूर्यकी क्रान्ति परम होती है तब किस अक्षांश पर इसका अहोरात्रवृत्त क्षितिज रेखाके बिल्कुल ऊपर हो जाता है। चित्र ४२ के ढंग पर चित्र १२७ बनाया गया है अंतर केवल इतना है कि इस चित्र का श बिन्दु उस स्थानको सूचित करता है जिसका लम्बांश सूर्यकी परम क्रान्तिके समान और अक्षांश उसके पूरक के समान है। उधखविद यहाँका याम्योत्तर वृत, ख खस्वस्तिक, उद क्षितिजकी उत्तर दक्षिण रेखा, वि विषुवन्मण्डल का एक बिन्दु और र सूर्य है जब इसकी क्रान्ति परम होती है अर्थात् सायन कर्क संक्रान्तिक दिनका सूर्य है। उध यहांके अक्षांश है इस लिए वीउ=विर। यह स्पष्ट है कि रउ इस दिनके सूर्यके अहोरात्रवृत्त है जो क्षितिज के बिल्कुल ऊपर है इस लिये इस दिन सूर्य क्षितिजके नीचे नहीं जायगा अथवा अस्त ही न होगा और ६० घड़ीका दिन होगा इसके विपरीत इतने ही दक्षिण अक्षांश पर इस दिन सूर्य

के अहोरात्र वृत्तका व्यास शून्य होगा अर्थात् ६० घड़ीकी रात होगी क्योंकि सूर्य वहांके क्षितिज पर ही ६० घड़ी तक रहेगा। जिस स्थानकी यह चर्चा है उसका अक्षांश आजकल ९०°—२३° २०'=६६° ३३' है। क्योंकि सूर्यकी परम क्रान्ति २३° २७' के लगभग है। उत्तर वाले स्थान को आजकल उत्तरी ध्रुव मण्डल और दक्षिण वाले स्थानको दक्षिणी ध्रुव मण्डल कहते हैं।
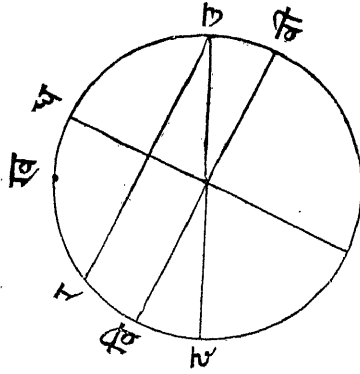
चित्र सं० १२७

जैसा सायन कर्क संक्रान्तिके दिन उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का दिन और दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीकी रात होती है वैसे ही सायन मकर संक्रान्तिके दिन दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीका दिन और उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीकी रात होती है। यह अवसर एक वर्षमें केवल एक बार पड़ता है।

श्लोकोंमें अक्षांशको अंशोंमें न लिख कर योजनोंमें विषुवत् रेखासे दूरी बतलायी गयी है।

दिन रात का प्रमाण ६० घड़ीका कहां होता है—

तदन्तरेपि षष्ठ्यन्ते क्षयवृद्धि अहर्निशोः।
परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्तते ॥६२॥

अनुवाद—शीत कटिबन्धोंके बीचके देशोंमें अहोरात्रका प्रमाण ६० घड़ीका होता है और इस समयके भीतर दिन और रातके वृद्धि होती है परन्तु इसके सिवा अन्य स्थानोंमें यह नियम बदल जाता है क्योंकि वहां नक्षत्र कक्षाकी स्थिति बदल जाती है।

दो महीनेका दिन या रात कहाँ होती है—

ऊने भूवृत्तपादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः।
धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ॥६३॥
तथा चासुरभागे तु मिथुने कर्कटे स्थितः।
नष्टच्छाया महीवृत्तपादे दर्शनमादिशेत् ॥६४॥

अनुवाद—(६२) दो राशियोंकी क्रांतिके योजनोंको भूपरिधि के चतुर्थांशसे घटाने पर जो आवे विषुवत् रेखासे उतने ही अन्तर पर उत्तरमें धनु और मकर राशिका सूर्य नहीं देख पड़ता और (६४) दक्षिणमें मिथुन और कर्क राशिका सूर्य नहीं देख पड़ता। क्योंकि जिस स्थान पर मध्याह्नकालमें छाया शून्य होती है उस स्थानसे भूपरिधिके चतुर्थांश तक सूर्य देख पड़ता है।

विज्ञान भाष्य—श्लोक ६४ के उत्तरार्धका अर्थ स्वामी विज्ञानानन्द जी ने अपनी बंगला टीकामें यह किया है कि जिस स्थानमें भूच्छाया नहीं है वहाँ सूर्यका दर्शन होता है। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीकामें इसका अर्थ यों किया गया है 'अभावं प्राप्ता छाया भूच्छाया यत्र तादृशे भूपरिधि चतुर्थांशे सूर्यस्य दर्शनं सदा कथयेत्'। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी तथा माधव पुरोहितकी हिन्दी टीकामें इसका अर्थ ही नहीं है। मैंने इसका अर्थ यों किया है कि जिस स्थान पर किसी वस्तु की मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है उस स्थानसे भूपरिधि के चतुर्थ भाग पर्यन्त तक उस दिन सूर्य देख पड़ता है। क्योंकि जहाँ मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है वहीं के ख-स्वस्तिक पर सूर्य होता है और यहींसे ९० अंश तक चारों ओर सूर्य इस समय देख पड़ता है। इसके सिवा 'छाया' का अर्थ भूच्छाया करना ठीक नहीं, मध्याह्न छाया ही उचित है। इसलिए 'नष्टच्छाया' का अर्थ है वह स्थान जहाँ की मध्याह्न छाया शून्य हो।

इन दो श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जब सूर्य सायन धनु और मकर राशियोंमें रहता है तब कहाँ दो मासकी रात होती है। जब सूर्य सायन धनुमें प्रवेश करता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०' होती है (देखो पृष्ठ ४६५) और जब तक यह धनु और मकर राशियोंमें रहता है तब तक इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०' से अधिक होती है। अब देखना है कि जब सूर्यकी दक्षिण क्रांति २०° १०' होती है तब यह भूपृष्ठ के किस भाग पर दिखाई पड़ सकता है। यह स्पष्ट है कि इस समय सूर्य उस स्थानके ख—स्वस्तिक पर रहता है, जिसका दक्षिण अक्षांश २०° १०' है। इसलिए इस स्थान पर मध्याह्नकालिक छाया भी शून्य होगी और यहाँ से भूपरिधिके भाग तक अर्थात् ९० अंश तक सूर्य उत्तर दक्षिण दिखाई पड़ सकता है। २०° १०' दक्षिण अक्षांश से ९० अंश उत्तरके स्थानका अक्षांश ९०° २०° १०' = ६९° ५०' हुआ। इसलिए इस दिन सूर्यकी किरणें यहीं तक जा सकती हैं। इसके बाद जब तक सूर्यकी दक्षिण क्रांति २०° १०' से अधिक दक्षिण होगी तब तक वह ६९° ५० के उत्तर अक्षांश पर नहीं देख पड़ेगा अर्थात् इस स्थान पर दो मास की रात होगी। इसके प्रतिकूल ६९° ५०' दक्षिण अक्षांश पर दो महीने का दिन होगा। इस स्थानका योजनात्मक अन्तर विषुवत् रेखा से क्या होगा यही जाननेका नियम इन दोनों श्लोकोंमें बतलाया गया है जो श्लोक ५९ में बतलाये गये नियमके अनुसार है और जिसका व्यवहार श्लोक ६०—६१ में किया गया है।

इसी तरह जब सूर्य सायन मिथुन और कर्क राशियोंमें रहता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २° १०' से अधिक होती है जिससे ६९° ५०' उत्तर अक्षांश के स्थानों पर इन दो महीने तक सूर्य बराबर देख पड़ता है इसलिए यहाँ दो मास का दिन होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर लगातार दो महीने तक सूर्य अदृश्य होने के कारण रात रहती है।

चार महीने का दिन या रात कहां होती है—

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः।
भूमिकक्षा चतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥६५॥

धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते ।
देवभागे सुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥६६॥

अनुवाद—(६५) एक राशिकी क्रान्तिके योजनोंको भूपरिधिके चतुर्थांशसे घटाने पर जो आवे विषुवत् रेखासे उतने ही अन्तर पर (६६) उत्तरमें धनु, मकर, कुम्भ, और मीन राशियोंका सूर्य नहीं देख पड़ता और दक्षिणमें वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियोंका सूर्य नहीं देख पड़ता।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें रहता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति एक राशि की क्रान्तिसे अर्थात् ११° २९′ से अधिक होती है इसलिए इन चार महीनोंमें सूर्य उस स्थान पर नहीं देख पड़ता जिसका उत्तर अक्षांश ९०°—११° २९′=७८° ३१′ है। इसका फल यह होता है कि इन दिनों यहां चार महीने की रात होती है परन्तु ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीनेका दिन होता है। इसी प्रकार जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति ११° २९′ से अधिक होती है अर्थात् जब सायन वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियोंमें रहता है तब ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीने की रात और उत्तर अक्षांश पर ४ महीने का दिन होता है।

श्लोकोंमें अक्षांशकी जगह विषुवत् रेखासे योजनोंमें दूरी जानने की रीति दी गई है जैसा कि पहलेके श्लोकोंमें है।

६ महीने का दिन या रात कहां होती है—

मेरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् ।
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ॥६७॥

अनुवाद—जब सूर्य मेषसे कन्या तक ६ राशियोंमें रहता है तब उत्तर ध्रुवके रहने वाले देवता लोग उसको एक ही बार उदय हुआ देखते हैं अर्थात् ६ महीने तक उसका अस्त नहीं होता और जब सूर्य तुलासे मीन राशियों में रहता है तब दक्षिण ध्रुव पर असुर लोग उसको बराबर उदय हुआ देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन मेषमें प्रवेश करता है तब यह उत्तर गोलमें आता है और ६ मास तक बराबर उत्तर गोलमें रहता है इसलिये उत्तर ध्रुव पर यह इन मासोंमें सदा दिखाई देता है और दक्षिण ध्रुव पर अदृश्य रहता है। इसलिये इन ६ महीनोंमें देवताओंका एक दिन और असुरोंकी एक रात होती है। परन्तु जब सूर्य सायन तुलामें आता है तब यह दक्षिण गोलमें हो जाता है और ६ मास तक बराबर दक्षिण गोलमें रहता है इसलिये इन ६ महीनोंमें असुर लोग सूर्यको बराबर देखा करते हैं और यहां ६ महीनेका दिन होता है तथा उत्तर ध्रुवसे अदृश्य होनेके कारण देवताओंकी ६ महीनेकी रात होती है।

सायन कर्क या मकर संक्रान्तिके दिन सूर्य ठीक ऊपर कहां देख पड़ता है और यहां क्या विशेषता है—

भूमण्डलात्पञ्चदशे भागे देवेऽथवासुरे ।
उपरिष्टाद् व्रजत्यर्कः सौम्य याम्यायनान्तगः ॥६८॥
तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक्सम्भवत्यपि ।
मेरोरभिमुखं याति परतः स्वविभागयोः ॥ ६९ ॥

(क्रमशः)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३२ | मकर, संवत् १९८७ | संख्या ४

बिना साखवाली सहकारी सभाएँ

[लेखक—श्रीशङ्करराव जोशी]

साखवाली सभाओंकी स्थापना होनेके कई साल बाद लोगोंका ध्यान इन सभाओं की ओर आकर्षित हुआ। साखवाली सभाओंकी सफलता और लाभोंको देख कर ही भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बिना साखवाली सभाएँ कायमकी गईं।

बिना साखवाली सभाओंके मुख्य वर्ग ये हैं—

१—कच्चा माल या औज़ार खरीद कर सभासदोंको देने वाली सभाएँ।

२—पक्का या तैयार माल तथा खेतीकी पैदावार बेचनेवाली सभाएँ।

३—माल तैयार करके बेचनेवाली सभाएँ।

४—माल खरीदने और बेचनेवाली सभाएँ।

५—मकान बाँधने या मकान खरीदनेके लिये रुपया उधार देनेवाली सभाएँ या मकान किराये पर देनेवाली सभाएँ।

६—पशु, फसल आदिका बीमा लेनेवाली सभाएँ।

भारतवर्षमें इन छःहों प्रकारकी सभाओंकी संख्या करीब तीन हजार है।

बिना साखवाली सभाओंकी जिम्मेदारी दोनों ही प्रकार—मर्यादित और अमर्यादित रक्खी जाती है। साधारणतः मर्यादित जिम्मेदारी रखना ही श्रेयस्कर है। कारण कि मर्यादित जिम्मेदारी

वाली सभाओंमें धनी लोग भी बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहटके शामिल हो जाते हैं। यह सही है कि मालदार आदमीको दूसरी जगह से सस्ते सूद पर रुपया उधार मिल जाता है। मगर अपनी पैदावार बेचने, मवेशीका बीमा कराने, खाद, बीज आदि खरीदनेके लिये तो उन्हें इन सभाओंमें शामिल होना ही पड़ेगा।

गवली लोगों और दूधका व्यवसाय करनेवाले व्यक्तियोंकी सहकारी सभाओंकी जिम्मेदारी तो मर्यादित ही रखी जानी चाहिये। वैसे ही जुलाहों कारीगरों आदिकी सभाओंकी जिम्मेदारी भी अमर्यादित ही होनी चाहिये। कारण कि ये लोग गरीब होते हैं और इनके पास जायदाद भी कम होती है।

अकसर यह सवाल उठाया जाता है कि बिना साखवाली सहकारी सभाओंको सभासदोंके अलावा दूसरे लोगोंसे लेन देन करना चाहिये या नहीं। हमारे मतसे दूसरे लोगोंसे व्यवहार रखनेमें कोई हर्ज ही नहीं है। कई अनुभवी व्यक्ति ऐसा करना ठीक नहीं समझते हैं। परन्तु बाहरी लोगों से व्यवहार रक्खे बिना तैयार माल और खेतीकी पैदावार बेंचनेवाली सभाओंका कारोबार कैसे चलाया जा सकेगा! कभी कभी सभासदोंसे ही लेन देनका व्यवहार रखनेसे कारोबार ठीक तरहसे नहीं चलता है और सभा बैठ जाती है। इसलिये जहाँ मुमकिन हो वाहरी लोगोंसे व्यवहार न रक्खा जाय और दूसरे व्यापारियोंकी बराबरीमें उतर कर प्रतिस्पर्धा न की जाय किन्तु सभाके कारोबारको ठीक तरहसे चलानेके लिये बाहरी लोगोंसे लेन देन करनेमें हम कोई हानि नहीं समझते हैं।

भारतमें अति प्राचीन कालसे 'गोल' या 'धर्म-गोल' नामक संस्थाओंका अस्तित्व है। प्रवेश फी की तरह सभासदोंसे नाज वसूल किया जाता है और सभासद अपना नाज अमानत भी रख सकते हैं। इस संग्रहमें से सभासदोंको खाने या बीजके लिये नाज सूद पर उधार दिया जाता है और नई फसल आने पर मय सूदके वसूल कर लिया जाता है। नाजकी तंगी या अकालके जमानेमें इन संस्थाओंसे किसानोंका बड़ा काम निकलता है। बंगाल, बिहार और उड़ीसामें ऐसी संस्थाएँ अस्तित्वमें हैं।

बीज और खेतीके औजार पुरानेवाली संस्थाएँ ही किसानोंको ज्यादा पसंद आई हैं। इन सभाओं से किसानोंको बड़ा लाभ पहुँचा है। हम दे[illegible] हैं कि किसान बीज नहीं रख छोड़ते हैं और [illegible] वक्त महाजनोंसे बीज उधार लाते हैं। यह [illegible] अच्छा नहीं होता और कभी कभी सारीकी सा[illegible] फसल मारी जाती है। इसके अलावा सूद भी ज्यादा देना पड़ता है। ये सभाएँ सभासदोंको उत्तम बीज देनेका काम हाथमें लेती हैं। सरकारी कृषि क्षेत्रों या अन्य स्थानोंसे अच्छी जातिका उत्तम बीज खरीद कर सभासदोंको दिया जाता है। कुछ प्रान्तोंमें साखवाली सभायें भी यह काम करती हैं। इन सभाओंसे काश्तकारोंको बहुत फायदा पहुँचा है। मगर देहातोंमें अच्छे कार्य-कर्त्ताओंकी कमी है और सञ्चालकोंके अभावके कारण इन सभाओंका जितना प्रचार होना चाहिये था, नहीं हो पाया है। अतएव यदि साखवाली सभाएँ इस काम को भी हाथमें ले लें, तो बहुत ही अच्छा हो। कुछ प्रान्तोंमें बिना साखवाली सभाओंका काम मध्यवर्ती बैंक करते हैं। ये संस्थाएँ सभासदोंकी मांगके अनुसार बीज या औजार खरीद देती हैं और कमीशन के तौर पर कुछ महनताना ले लेती हैं। मध्यप्रदेशमें गेहूँ और कपासकी उत्तम जातिके बीज तकसीम करनेके लिये 'बीज-भण्डार' खोले गये हैं और इनको अच्छी सफलता भी मिली है। इन भण्डारोंसे कृषि-विभागको भी खूब सहायता मिली है। कृषि-विभाग इन भंडारोंके जरिये बीजका प्रचार करता है। भारतके अन्य प्रान्तोंमें भी ऐसे भण्डारोंका खोला जाना निहायत जरूरी है।

ज्यों ज्यों कृषिकी नवीन पद्धतिका प्रचार होता जाता है, खेतीके नवीन औजारोंकी मांग भी बढ़ती जाती है। कम कीमतके औजार तो किसान खरीद भी लेता है; किन्तु कीमती औजारोंका खरीदना अधिकांश किसानोंकी हैसियतसे बाहर है। इसके अलावा छोटे पाये पर खेती करने वाला किसान कीमती—किन्तु उपयोगी मशीनोंसे फायदा भी नहीं उठा सकता है। कारण कि उसके पास इतनी थोड़ी जमीन होती है कि इने गिने दिनों तक ही वह उस मशीनको काममें ला सकता है। बाकीके दिनों वह निरुपयोगी पड़ी रहती है। इसलिए सहकारी सभाएँ औजार खरीद कर किसानोंको किराये पर देनेका धंधा करती हैं। मगर इकली दुकली सभाओंको सफलता मिलना जरा मुशकिल है। अगर सारे जिलेमें सभाएँ कायम करके संगठित रूपसे काम कियाजाय, तो बहुत लाभ हो सकता है और सभाओंको भी अच्छी सफलता मिल सकती है। कारण कि संगठित रूपसे काम करनेसे खर्च भी घट जाता है और मशीनें भी ज्यादा दिनों तक चलाई जा सकती हैं। कहीं कहीं सांठे का रस निकालनेकी चरखी, जीन, गुड़ बनानेका काम सहकारी तत्व पर किया जा रहा था। किन्तु इन संस्थाओंकी संख्या कम है।

कई प्रान्तोंमें कपास, गुड़, गेहूँ, सन आदि बेचनेके लिये बिना साखवाली सभाएँ खोली गई हैं। इनका कारोबार अच्छी तरह से चल रहा है, और कहा जा सकता है कि वे सफलता पूर्वक चलाई जा रही हैं।

कई प्रान्तोंमें डेरी-संस्थाएँ काम कर रही हैं। ये दूध, मक्खन, घी आदिका कारोबार करती हैं। जिन प्रान्तोंमें घास और चरागाहकी कमी नहीं है, ये संस्थाएँ अच्छा काम कर सकती हैं। यदि चरी, लूसर्न (रिजका), गीनी घास आदिकी खेती की जा सके, तो शहरोंके नज़दीक भी ये सभाएँ कायम की जा सकती हैं। मालवा, राजपूताना, बुन्देलखंड आदिके पहाड़ी प्रदेशोंमें डेरी-संस्थाएँ शुरू करना लाभदायक है और यदि रेलवे पास हो, तो बहुत अधिक फायदा उठाया जा सकता है। दूधसे मलाई निकाल कर मक्खन या घी तैयार करके शहरोंको भेजा जा सकता है और दुग्ध-शर्करा, केसीन, कंडेन्स्डमिल्क (सुखा कर डब्बेमें भरा हुआ दूध) का व्यवसाय भी किया जा सकता है।

मवेशी, फसल आदिका बीमा लेने वाली दो चार सभाएँ भी काम कर रही हैं किन्तु अभी इस ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है और न इन सभाओंको उतनी सफलता ही मिली है।

गाय, भैंस, घोड़ा, भेड़ आदिकी नस्ल सुधारनेके लिये भी एक दो सहकारी संस्थाएँ हैं। किन्तु अभी ये प्रयोगावस्थामें ही हैं।

जुलाहे, सुनार वगैरा कारीगरोंके लिये भी कई सभाएँ जारीकी गई हैं। ये लोग हाथ से ही काम करते हैं। इस यांत्रिक युग में हाथसे काम करने वालोंका निभाव होना जरा कठिन है। लोग खूबसूरती और फैशनके भक्त बनते जा रहे हैं। मज़बूती और सादगीका जमाना लद चुका। फिर भी देहातोंमें इस क्षेत्रमें बहुत कुछ किया जा सकता है। बंगाल प्रान्तकी 'होम इण्डस्ट्रेज़ असोसिएशन' अच्छा काम कर रही है। यह असोसिएशन कारीगरोंको कच्चा माल देती और उनका तैयार माल बेचती है। कलकत्तेमें इसकी एक दूकान भी है। भारतमें सहकारी-भांडारोंका भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है। कारण कि लोग गरीब हैं। देहातियोंकी रहन सहन सीधी सादी है। शहरोंमें ये भांडार सम्भवतः सफलतः पूर्वक चल सकते हैं।

बड़े बड़े शहरोंमें मकानोंकी कमी रहती है। मध्यवित्त जनताके पास इतना रुपया भी नहीं होता है कि वे शहरोंमें मकान बाँध सकें। इस कमीको पूरा करनेके लिये 'गृह-निर्माण-संस्थाएँ' अस्तित्वमें आई हैं। ये मकान बाँधने या खरीदनेके लिये कम

सूद पर रुपया उधार देती हैं। सभासद मकानके किरायेके रूपमें माहवार किश्तसे कर्ज चुकाता है और जब तक कुल रुपया अदा नहीं हो जाता है, मकान संस्थाकी जायदाद माना जाता है। मद्रास कलकत्ता, बम्बई, इन्दौर आदि बड़े बड़े शहरोंमें ऐसी संस्थाकी जरूरत है। बम्बईमें ऐसी एक संस्था काम भी करती है।

देहातोंमें गृह-निर्माण संस्थाएँ विशेष लाभ पहुंचा सकती हैं। गरीब किसानों और मज़दूरोंके पास इतना रुपया नहीं होता है कि वे अच्छा मकान बनवा सकें। यदि ये संस्थाएँ हवादार मकान बनवा कर लोगोंको रहनेके लिये देवें और किरायाकी तरह माहवार किश्त या छः माही किश्त से सात आठ सालमें रुपया वसूल करें, तो देहाती जनताके आरोग्यमें बहुत सुधार हो सकता है।

गर्त्तयुक्त फुफ्फुस-यक्ष्मा (क्षय)

[ले० श्रीकमला प्रसाद जी, एम० बी०]

(Tuberculosis with Cavity formation—Pthisis)

प्रथमतः क्षय वा थाइसिस् शब्द (जिसका अर्थ है नष्ट होना) एक विशेष प्रकार के यक्ष्मा रोगियों की अवस्थाओं के वर्णन में व्यवहृत हुआ था। अब इसका अर्थ फुफ्फुस की उस रुग्नावस्था (विकृति) का द्योतक है जिसमें यक्ष्मा-कृत क्षतमें गर्त्त वा गड्ढे बन जाते हैं। जिन क्रियायों से ऐसी अवस्था प्राप्त होती है उनका वर्णन ऊपर हो ही योग्य चुका है किन्तु तो भी यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसे क्षतका विस्तार बहुत नियमपूर्वक होता है अर्थात् पहले फुफ्फुस तन्तु ठोस हो जाता है तब उसमें अधःक्षेपण क्रिया देखी जाती है और अन्तमें गर्त्त तैयार होता है।

क्षयमें दो प्रधान क्रियायें देखी जाती हैं, फुफ्फुसका ठोस होना और उसका खना जाना। एक ही फुफ्फुस पर आक्रमण होना सम्भव है, पर बहुधा दोनों फुफ्फुस एक ही केन्द्रसे एक ही समय वा भिन्न भिन्न अवसरों पर आक्रान्त होते हैं। क्षत-विस्तारकी सीमा दोनों फुफ्फुस में भिन्न भिन्न होती है और क्षतोंकी प्रकृतिसे यह भी ज्ञात होता है कि एक ही फुफ्फुसमें समय समय पर कई बार आक्रमण होता है।

रोग फुफ्फुस-मूल वा उसके समीपसे आरम्भ होता है और इसकी प्रवृत्ति ऊपर एवं बाहरकी ओर बढ़नेकी होती है। अस्तु, जीवितावस्थामें यह फुफ्फुस-शिखर पर बहुधा लक्षित होता है। शिखरसे नीचेकी ओर इसका विस्तार धीरे धीरे किन्तु निरन्तर होता रहता है। यह विस्तार संलग्न तंतुओं द्वारा या फुफ्फुसावरण द्वारा होता है और कभी कभी बीच बीचके कुछ स्थान अक्षत भी रह जाते हैं अथवा निकटस्थ तन्तुओंको छोड़ कर दूरवर्त्ती अंशों पर रोग का आक्रमण हो जाता है। इस लिए कभी कभी छितराये हुए क्षत-स्थान देखे जाते हैं और कभी कभी श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह देखा जाता है। इस प्रकारके आक्रान्त फुफ्फुसमें शिखर पर एक जीर्ण क्षत पाया जाता है और अधो-भागमें यक्ष्माकृत नूतन श्वासनल फुफ्फुस-प्रदाह जनित क्षत मिलते हैं।

क्षत-विस्तार श्वासनलकी चारों ओरकी लसीका धारा द्वारा होता है और क्षुद्रतम नलिकाओं एवं वायुकोषों पर भी आक्रमण होता है। गांठोंके पुञ्ज तैय्यार हो जाते हैं जिनमें रंजककणोंकी अधिकता होती है। सौत्रिक तन्तु इन गांठोंको को भी घेरनेकी चेष्टा करते रहते हैं। रोग फुफ्फुस के तल पर पहुँच कर फुफ्फुसावरण पर भी आक्रमण करता है। दोनों ही फुफ्फुस आक्रान्त होते हैं। अक्षत फुफ्फुसमें श्वासनल सम्बन्धी लसीका

ग्रन्थियों एवं लसीकाधाराओं द्वारा रोग का विस्तार होता है।

क्षयके अन्तर्गत फुफ्फुसके जिन विकृत दृश्यों का वर्णन किया जाता है, वे अनेक प्रकारके होते हैं। इस भेदके कारण हैं क्षत-जनित परिवर्त्तनोंका द्रुत वा मन्द गतिसे बढ़ना, एक वा दूसरे प्रकारके प्राथमिक क्षतकी अधिकता और साथ साथ अन्य कीटाणुओंके आक्रमण। यदि क्षत-विस्तार बहुत मन्दगतिसे हुआ तो उसमें (क्षतमें) सौत्रिक तन्तुओंकी अधिकता हो जाती है अथवा यदि यक्ष्मा-कृत श्वासनल फुफ्फुस प्रदाहका रूप भयङ्कर हुआ तो अनियमित गर्त्तोंके पाये जानेकी सम्भावना रहती है। पुनरपि क्षय किसी अवस्थामें नूतन-रूप प्राप्त कर बड़े वेगसे फैल सकता है। इसके अतिरिक्त क्षतोंके भी अनेक भेद हो सकते हैं, उदाहरणार्थ श्वासनलके निकटवर्त्ती किसी यक्ष्मा गांठके श्वासनलमें फूटनेके कारण नूतन यक्ष्माकृत श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह का होना अथवा किसी रक्तनलिकामें फूटनेके कारण बहुसंख्यक यक्ष्माका होना असम्भव नहीं है।

नूतन क्षय

(Acute Pthisis)

इसके अन्तर्गत यक्ष्माके उसी रूपका वर्णन किया जाता है जिसमें यक्ष्माकृत श्वासनल-फुफ्फुस प्रदाह द्वारा की गई फुफ्फुसको नष्ट करने वाली क्रियायें (अर्थात् सर्व प्रथम ठोस होना, तदुपरान्त सड़ना, उसमें अधःक्षेपण होना और अन्तमें गर्त्त निर्माण होना इत्यादि) एक के उपरान्त दूसरी बहुत शीघ्रतासे होती जाती हैं। ठोस हुए अंश छितराये हुए क्षुद्र केन्द्रोंकेसे वा इनसे कुछ बड़े आकार के (बड़े क्षतांश छोटे क्षतांशोंके सम्मेलन से बनते हैं) देखे जाते हैं। इनके मध्यवर्त्ती तन्तुओंमें रुधिरावरोध, सूजन और नूतन सूत्रमय प्रदाह पाये जाते हैं। जब यक्ष्मा गाँठ फुफ्फुसके बाहरी तल पर पहुँच जाती है तब फुफ्फुसावरण-प्रदाह आरम्भ हो जाता है। कभी कभी जिन गांठोंमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है उनके चारों ओर कोषमय सौत्रिक तन्तु भी तैय्यार होते जाते हैं तथा दानव कोष भी देखे जाते हैं। इन दोनों (सौत्रिक तन्तु और दानव कोष) का वर्त्तमान रहना केन्द्र की जीर्णताका सूचक है। गर्त्त बड़ी शीघ्रतासे बनते हैं और एक साथ बहुत से गर्त्त तैय्यार हो जा सकते हैं। वे बहुधा छोटे आकारके होते हैं और उनकी दीवारें खुरदरी होती हैं (जिनमें अधःक्षेपण क्रिया भी होती रहती है)। पहले श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह होता है,

(चित्र सं० १) फुफ्फुस यक्ष्मा
निम्न भाग में अधःक्षेपण क्रिया देखी जाती है।

तब इन तंतुओंमें अधःक्षेपण क्रिया होने लगती है, अन्तमें ये तन्तु-घुल जाते हैं जिससे गर्त्त-निर्माण होता है। दूसरी रीति यह है:—श्वासनलिकामें यक्ष्माके आक्रमणके उपरान्त व्रण (घाव-ulcer) तैयार होता है जो फैल जाता है। इस घावसे बहुतसे नष्ट तंतु इत्यादि निकल जाते हैं जिससे गर्त्त बन जाता है। बालकोंके फुफ्फुसमें शायद ही कभी गर्त्त-निर्माण होता हो।

कभी कभी ये नूतन नाशकारी क्रियायें इतनी तीव्र गतिसे होने लगती हैं कि फुफ्फुसका एक बृहदांश क्षत-ग्रस्त हो जाता है और एक बड़ा गर्त्त तैय्यार हो जाता है। इस गर्त्तके सड़ते हुए पदार्थ किसी बड़ी श्वासनलिका में पड़ कर खाँसनेके समय बाहर निकल आते हैं। इस अवस्थामें यदि बलगम (खखार) की परीक्षा की जाय तो उसमें लचकीले तंतु (Elastic tissue), कुछ सौत्रिक तंतु और असंख्य यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हैं।

जीर्ण क्षय

सर्व प्रथम फुफ्फुसका वह अंश जिसकी श्वासनलिका के चारों ओर यक्ष्मा का आक्रमण होता है ठोस हो जाता है। इन नलिकाओंके चारों ओर सौत्रिक तंतु इकट्ठे होते हैं जो फुफ्फुस तंतुओं में दूर दूर तक फैलने लगते हैं। इस प्रकार कभी कभी तो सारा फुफ्फुस सूत्रमय हो जाता है गर्त्त निर्माण ऊपर कहे अनुसार होता है। जिन नलिकाओंमें नष्ट पदार्थ गिरते हैं वे भी अन्तमें आक्रान्त हो जाती हैं और बहुत ही मुलायम हो जाती हैं। उनकी शक्ति नष्ट हो जाती है; अस्तु साँस लेनेके समय वे कुछ अनियमित रूपसे फूलने लगती हैं। बाहरके सौत्रिक तंतुओंके खिंचाव के कारण इस क्रिया में और भी सहायता मिलती है। इनकी दीवारें एक दम नष्ट हो जाती हैं, अतएव गर्त्तकी दीवारें केवल सौत्रिक तन्तुओंकी ही रह जाती हैं।

बड़े गर्त्तों के रूप

ये बहुत अनियमित, टेढ़े मेंढ़े और गुच्छेदार होते हैं। इनकी दीवारमें एक पतली चिकनी झिल्ली सटी रहती है जो (अधिक जीर्ण होने पर) सौत्रिक तन्तुओंसे आच्छादित हो जाती है। नूतन अवस्थाओंमें इस दीवारमें अधःक्षेपणकेसे नष्ट पदार्थ चिपके रहते हैं और इसके भीतर बहुत सी रक्त नलिकायें पाई जाती है। इन गर्त्तों को आर-पार करते हुए सौत्रिक तन्तुओंके बहुतसे धागे मिलते हैं जिनमें ऐसी श्वासनलिकायें और रक्तनलिकायें जिनका मार्ग अवरुद्ध हो गया है सटी रहती हैं। ये रक्तनलिकायें स्थान स्थान पर फूल जाती हैं और फट जाती हैं, अथवा घिस जाती हैं जिसमें भयङ्कर रक्तस्राव होने लगता है। गर्त्त एक बार चाहे किसी प्रकार बना हो, नाशकारी क्रियायों और बाहरी सौत्रिक तन्तुओं के तनाव के कारण बढ़ता ही जायगा। इस गर्त्तमें जब बाहरसे अन्य कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं तब नष्टतंतु इत्यादि पीवके रूपमें परिणत हो जाते हैं। कभी कभी शरीर का सारा रक्त इन केन्द्रोंसे विषाक्त हो जाता है और टेंटुए, श्वासनल और स्वरनल इत्यादिके भी आक्रान्त होनेकी सम्भावना रहती है और इन में घाव भी हो सकता है। इन गर्त्तोंके ऊपरका फुफ्फुसावरण मोटा होता जाता है जिससे फुफ्फुस में छेद नहीं होने पाता, किन्तु कभी कभी छेद हो भी जाता है।

नग्न-चक्षु दृश्य—फुफ्फुसावरण (विशेष कर शिखर और क्षत-स्थानके ऊपर) मोटा हो जाता है और वक्षमें सट जाता है। इसके नीचे (भीतर) यक्ष्मागर्त्त पाया जाता है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। फुफ्फुसके शेष अंशोंमें यहाँ वहाँ मोटे सूतके से (सौत्रिक तन्तुओं के) धागे पाये जाते हैं, और कभी कभी छोटे गर्त्त भी मिलते हैं। वक्षकी लसीका ग्रन्थियोंमें भी यक्ष्मा गांठें मिलती हैं।

अणुवीक्षण दृश्य—यक्ष्मा गांठोंमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है और इनके चारों ओर कोषमय सौत्रिक तन्तुओं की दीवारें भी बनती जाती हैं। इन दीवारों में रञ्जक कणों (कर्बन कण और विकृत रक्तके कण) की प्रचुरता होती है और दानवकोष भी पाये जाते हैं।

वक्षकी ग्रंथियोंमें छोटे छोटे यक्ष्मा-केन्द्र मिलते हैं, जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है और दानवकोष मिलते हैं। अन्तमें इनमें खटिक जम

जाता है अथवा ये (ग्रन्थियाँ) सड़ कर मोम की सी हो जाती हैं ।

क्षयाक्रान्त फुफ्फुससे रक्त-स्राव

रोगकी आरम्भिक अवस्थामें रक्तस्रावके निम्न-लिखित कारण हैं :—

१—श्वास नलिका परिपार्श्विक किसी यक्ष्मा गांठके घुल जानेके उपरान्त इस नलिका और किसी रक्त नलिकाके बीच मार्ग स्थापन हो जाना ।

२—किसी गर्त्तकी दीवारसे सटी हुई रक्त नलिकाका फटना ।

इस अवस्थामें गर्त्तमें प्रवेशकरने वाली रक्त धारामें यक्ष्मा कीटाणुओं की यथेष्ट संख्या रहती है, अथवा श्वासके माध्यमसे ये कीटाणु दूसरी २ श्वास नलिकाओंमें प्रवेश कर पाते हैं और इस प्रकार रोगका शीघ्र विस्तार होता जाता है। इस समय रक्त इसका (रोगका) दो प्रकारसे सहायक बनता है, एक तो कीटाणुओंके लिये खाद्य-माध्यम बन कर और दूसरे वाह्यवस्तुकी भांति उत्तेजना (वा सङ्घर्षण) उत्पन्न कर। कभी कभी यक्ष्मा कीटाणु रक्त धारामें पड़ कर भयङ्कररूप धारण कर लेते हैं।

रोगकी कुछ जीर्णावस्थामें रक्तस्रावके निम्न लिखित कारण हैं :—

१—किसी गर्त्तमें घाव होनेके कारण सङ्घर्षण द्वारा किसी रक्त-नलिका का फटना ।

२—गर्त्तकी दीवारकी किसी रक्तनलिका का रक्ताधिक्यके कारण फटना ।

३—फुफ्फुस धमनीका किसी स्थान पर फूल जानेके कारण फटना। इस प्रकारके रक्तस्रावसे मृत्युतक हो जाती है ।

४—फुफ्फुस शिराकी किसी सहायक शाखा का सङ्घर्षण द्वारा फटना ।

५—फुफ्फुस तन्तुओंके एक बड़े अन्शका मुलायम होना और घुलना। (इससे रक्त नलिकायें भी घिस जाती हैं और इसी कारण रक्तस्राव होता है) ऐसा होना केवल नूतन अवस्थाओंमें सम्भव है क्योंकि यक्ष्माकेन्द्रके चारों ओरकी रक्त नलिकाओंके छेद बन्द हो जाते हैं और यक्ष्मा-क्षत अंश प्रायः रक्त विहीन रहता है ।

(५) फुफ्फुसावरणका यक्ष्मा—इस झिल्ली पर यक्ष्माका दो प्रकारसे आक्रमण होता है—प्राथमिक और माध्यमिक ।

(क) प्राथमिक आक्रमण—इस प्रकार अपेक्षाकृत कम आक्रमण होता है। इसमें साधारणतः वही दृश्य देखे जाते हैं जो अन्य कारणों द्वारा (यक्ष्माके अतिरिक्त) प्रादुर्भूत प्रदाहमें देखे जाते हैं। किन्तु निर्गत द्रवमें लसीकाणुओंकी अधिकता रहती है और यक्ष्माकीटाणु यदि अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा न भी देखे जायें तो क्षतमें इनकी उपस्थिति अन्य पशुओंमें टीका लगा कर सिद्धकी जा सकती है। इन कीटाणुओंके साथ साथ प्रायः पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणु भी प्रवेश कर जाते हैं। यह अवस्था बालकोंमें विशेष कर देखी जाती है।

(ख) माध्यमिक आक्रमण—इसका वर्णन फुफ्फुस यक्ष्माके वर्णनके साथ हो चुका है।

४. पाचक संस्थान का यक्ष्मा

(१) मुख—इसमें यक्ष्माका बहुत कम आक्रमण होता है और होता भी है तो माध्यमिक रूपसे (स्वरनल, कंठ वा फुफ्फुसकी यक्ष्मासे), जिह्वाके निम्न भागमें क्षत पाये जाते हैं जिनमें अधःक्षेपण क्रिया भी होती है। चर्म यक्ष्माके विस्तारसे कभी कभी मुखमें यक्ष्माका आक्रमण होता है।

(२) कंठ—फुफ्फुससे माध्यमिक आक्रमण होता है।

(३) घंटी—इसमें बहुधा प्राथमिक आक्रमण देखा जाता है।

(४) पाकस्थली—इसमें यक्ष्माका आक्रमण सम्भवतः नहीं होता ।

(५) अंत्रका यक्ष्मा—अंत्रका आक्रमण फुफ्फुस यक्ष्माके साथ विशेष कर संलग्न रहता है, किन्तु यह प्राथमिक रीतिसे भी हो सकता है। इसका कारण है कीटाणु-मिश्रित थूक, खखार, दूध वा अन्य पदार्थों को भक्षण करना। क्षुद्र अंत्र (Small intestine) का अन्तिम भाग क्षतका प्रधान स्थान है। अंत्रस्थ पेयरकी ग्रन्थियां (Payer's Patches) आक्रान्त होती हैं और उनमें नियमित वा अनियमित यक्ष्माकेन्द्रपाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त अंत्र की श्लेष्मा और उसके निम्न भागमें भी यक्ष्मा केन्द्र स्थापित हो जाते हैं। ये ग्रन्थियां सूज जाती हैं और पहले श्लेष्मिक कला इन्हें ढंके रहती हैं—जिसमें स्वयं भी प्रदाहके चिह्न मिलते हैं—पर बाद को इसमें (श्लेष्मा-झिल्लीमें) नाशकारी क्रियायें आरम्भ हो जाती हैं और ग्रन्थियोंके ऊपरकी श्लेष्मा-झिल्ली सड़ कर हट जाती है तथा वहां पर एक व्रण तैय्यार हो जाता है। पहले यह घाव गोल और छोटा रहता है किन्तु कुछ कालोपरान्त अन्य इसी प्रकारके व्रणोंसे मिल कर बड़ा और अनियमित हो जाता है। इस व्रणके तल और किनारे मोटे और द्रव-युक्त होते हैं। इसके तल (आधार) में अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है जिससे यह रुखड़ा और दानेदार हो जाता है। किनारे उठे हुए और अनियमित होते हैं। व्रण किनारेकी ओरसे बढ़ता जाता है और अंत्रको और भी खोदता जाता है तथा अंतमें एक गोल अंगूठी का सा बन जाता है। तदुपरान्त अंत्रके मांसीय तंतु और अन्त्रधारक झिल्ली पर भी आक्रमण होता है। यह झिल्ली मोटी हो जाती है और जहां तहां सट जाती है, इस अवस्थामें उदर खोलने पर इसमें उजली या पीली यक्ष्मा गांठें दीख पड़ती हैं। उधर सौत्रिक तंतुओं का भी विस्तार होता जाता है जिससे अंत्र एक दम अवरुद्ध हो जाता है। अंत्रको परिवेष्टित करने वाली झिल्लीके मोटी हो जानेके कारण अंत्रमें छेद नहीं होने पाता, किन्तु ऐसा होना असम्भव नहीं है। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा वे ही दृश्य देखे जाते हैं जो बहुधा यक्ष्मा-क्षतोंमें मिलते हैं। (छाया-चित्र नं० २)

(चित्र संख्या २)
(१) और (२) अन्त्र यक्ष्मा
(३) मेरुदण्ड (रीढ़) का यक्ष्मा

बृहदंत्रमें—यक्ष्माका आक्रमण बहुत कम देखा जाता है, मलाशयमें भी कम देखा जाता है परन्तु कभी कभी इसमें फिस्चुला (Fistula) इत्यादि उत्पन्न करना यक्ष्माके ही कार्य्य हैं। अंत्रधारक कलाकी ग्रन्थियां भी बहुधा आक्रान्त होती हैं और इनमें अधःक्षेपण क्रिया देखी जाती है। यह अवस्था बच्चोंमें विशेष कर पाई जाती है।

(६) परिविस्तृत कलाका यक्ष्मा—इस प्रकार का यक्ष्मा बहुत विस्तीर्ण होता है। कभी तो इसमें प्रदाह प्रतिक्रियायें (Inflammatory reactions) होती ही नहीं और कभी इतनी होती हैं कि रक्त-स्राव होने लगता है। किन्तु आक्रमण बहुधा धीरे धीरे होता है और झिल्लीके अनेक स्थानोंमें गुत्थियां बंध जाती हैं—कोई कोई अन्श

क्षत सर्व प्रथम क्षुद्र वा अन्तिम श्वास-प्रनाली से आरम्भ होता है इनमें दानव-कोष-प्रणाली प्रस्तुत होती है। तदनन्तर भरी यक्ष्मा गांठें तैय्यार होती हैं जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती है और तब इनके दो मार्ग हो जाते हैं
१
पार्श्विक तन्तुओं में भी श्वासनल फुफ्फुस प्रदाह होता रहता है
तथा क्षेपण होती है
अधः क्रिया रहती
निकटस्थ तन्तुओं में बहुसंख्यक-यक्ष्मा-केन्द्र तैयार हो जाते हैं
जिन क्षेपण होती
से अधः क्रिया रहती है
द्वितीयतः क्षतान्तर स्थानों के वायुकोषों के
तथा
रिक्त स्थानमें एपिथिलोयड कोष आक्रान्त होते हैं
जिससे अधःक्षेपण क्रिया होती रहती हैं, जिससे
२
दीवारें आक्रान्त होती हैं, जो मोटी होजाती हैं और जिनमें प्रदाह बढ़ता जाता है तथा
छनाकरण क्रिया होती है
पोली यक्ष्मा गांठें बनती हैं (जिसके मध्यमें श्वास प्रनालियां रहती हैं)
इनमें
कभी अधःक्षेपण क्रिया होने लगती है और कभी सौत्रिक तन्तुओंकी वृद्धि
जिससे
चतुर्थतः सौत्रिक तंतुओं की वृद्धि होती है जिनका पहले तो वायु-स्थान की दीवारो में संचार होता है, किन्तु बाद को
फुफ्फुस पिंडों को पृथक् करने वाले पर्दों में भी संचार हो जाता है।
ये तन्तु बढ़ते जाते हैं
वा यक्ष्माकृत नाशकारी क्रियायें द्वारा नष्ट हो जाते हैं।
साथ ही साथ फुफ्फुसावरण इत्यादि में भी सौत्रिक तन्तुओं की वृद्धि होती रहती है।
जिनके फल स्वरूप प्रारम्भिक क्षत बढ़ने लगता है और उसका अंश मुलायम होकर घुलने लगता है जिससे गर्त्तनिर्माण होना है और तब रोग की तीन गति संभव हैं।
तृतीयतः वायुस्थानान्तर्गत क्षुद्र रक्त नलिकायें फट जाती हैं और रक्तस्राव आरम्भ हो जाता है।
यदि गर्त्त की
सौत्रिक तन्तुओं
सौत्रिक तन्तुओं
यक्ष्मा के चारों ओर सौत्रिक तन्तुओं की
सारा फुफ्फुस सौत्रिक तन्तुमय

जैसे अन्त्रश्छदा कला Great omentum) तना मोटा हो जाता है कि उसकी मुटाई एक इञ्च से अधिक हो जाती है और झिल्ली उस स्थानमें भी एक के आकारकी जान पड़ती है। यक्ष्मा गांठे भिन्न भिन्न आकारकी होती हैं—बहुत नूतन अवस्थाओंमें छोटी छोटी और जीर्ण अवस्थाओंमें बड़ी बड़ी होती हैं। ये भूरे वा पीले रंगकी, अपारदर्शी और कम चमकीली होती हैं। क्षत-स्थानमें कुछ द्रव भी पाये जाते हैं। इसके समीपकी लसीका ग्रन्थियां भी प वा अधिक क्षत-ग्रस्त होती हैं।

रोग विशेष कर बच्चोंमें ही देखा जाता है किन्तु सी आयुके व्यक्तिमें पाया जा सकता है। आक्रमण माध्यमिक रीतिसे होता है और रोगका प्राथमिक केन्द्र उदरस्थ ग्रन्थियोंमें अथवा किसी अन्य अवयवमें पाया जाता है।

५ मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रिय संस्थान

(१) वृक्क (Kidneys)—वृक्क का यक्ष्मा नूतन सर्वांग वा जीर्ण यक्ष्मा का एक अंश मात्र हो सकता है परन्तु कभी कभी स्वतन्त्र रूपसे इस अवयव पर आक्रमण होता है, जो मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रिय तक ही परिमित रहता है।

सर्वांग नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा (General acute miliary tuberculosis) वृक्कके बाहरी तल (Corex), भीतरी तल अथवा सभी अंशोंमें यक्ष्माके दाने दिखाई पड़ते हैं जो छोटे, अपारदर्शी और श्वेत के होते हैं। कई एक दाने कभी कभी एक साथ मिल जाते हैं और वृक्क का एक बड़ा अंश घेर लेते हैं, अथच एक कील की भाँति दिखाई पड़ते हैं। साधारणतः इन्हें अन्य कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न क्षतोंसे पृथक् करना (केवल नग्नचक्षु द्वारा) कठिन है किन्तु अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा इनमें अधःक्षेपण क्रिया तथा अन्य यक्ष्मा-चिह्न देखे जाते हैं।

वृक्क पर यक्ष्मा का आक्रमण स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषोंमें अधिक देखा जाता है। आक्रमण सर्व प्रथम उपांड के एक अंश—ग्लोबस मेजर (Globus major of the Epididymis) पर होता है, तदनन्तर सारे अण्डकोष पर हो जाता है और तब यह रोग ऊपरकी ओर अग्रसर होता है, तथा वीर्य्याशय (Seminal vesicle) मूत्राशय, (Bladder), मूत्रमार्ग (urethra) और मूत्र प्रनाली (ureter) से होता हुआ वृक्कके गह्वर (Pelvis of the Kidney) पर आक्रमण करता है। पुनश्च कभी कभी वृक्कसे आरम्भ हो कर नीचेकी ओर उपर्युक्त मार्गोंसे अग्रसर होता है तथा दूसरे वृक्क पर भी आक्रमण करता है।

वृक्क पर यक्ष्माके आक्रमणके तीन मार्ग हैं। रक्त, लसीका और मूत्रमार्ग। किन्तु रक्तमार्गसे ही बहुधा आक्रमण होता है। किसी भी मार्गसे क्यों न आक्रमण होता हो सर्व-प्रथम वृक्कके गह्वर पर ही आघात होता है। इसकी श्लेष्मा-झिल्लीमें छोटे छोटे व्रण बन जाते हैं जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है तथा इसके बाहर (वृक्क-गह्वरके बाहर) अधिक रक्तावरोध हो जाता है। रोग धीरे धीरे वृक्कके आन्तरिक भागोंमें पहुँचता है और सारे वृक्क को अधःक्षेपके ढेरमें परिणत कर देता है, अथवा (यदि मूत्र-प्रनाली यक्ष्माकृत नाशकारी क्रियायों द्वारा कम वा बेशी बन्द कर दी गई हो) इसे छोटे छोटे थैलोंके आकार का बना देता है जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है और जिनकी दीवारें रुखड़ी हो जाती हैं। वृक्क का आकार रुकावट एवं फैलावके अनुसार बदलता रहता है और बहुधा यह अवयव बृहदाकार हो जाता है किन्तु कभी कभी साधारण आकार का रह जाता है अथवा इससे भी छोटा हो जाता है। अन्य स्थानों की भांति इसमें भी सौत्रिक तन्तुओंके प्रस्तार द्वारा यक्ष्मा केन्द्रोंको अवरुद्ध कर देनेकी चेष्टा होती रहती है।

मृत्यु के उपरान्त साधारणतः दोनों ही वृक्कमें यक्ष्मा क्षत पाये जाते हैं किन्तु एक सुविख्यात सर्जन (टौमसन वाकर) का कथन है कि जीविता-वस्थामें प्रतिशत ८८ से ९२ रोगियोंमें एक ही ओर का वृक्क रोग-ग्रस्त होता है। अंग विकृति विज्ञानसे पूर्ण पण्डित वेट्टी और डिक्सनका ख्याल है कि यह विश्वास करना कठिन है कि दूसरा वृक्क एक दम अक्षत रह जाता है। वाकर साहब कहते हैं कि दूसरे वृक्क पर आक्रमण रक्त मार्गसे होता है। जिन रोगियोंमें केवल एक ही वृक्क आक्रान्त होता है उनमें दाहिने ओर का ही वृक्क क्षत-ग्रस्त होता है।

वस्ति (Bladder) का यक्ष्मा एकाध स्थानमें ही परिमित रहता है या बहुतसे व्रण पैदा करता है।

परिणाम—बहुधा यह देखा जाता है कि जननेन्द्रिय एवं मूत्रेन्द्रिय का यक्ष्मा निरन्तर बढ़ता हुआ एक रोग है और कुछ समयके बाद रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। कुछ ऐसे भी रोगी मिलते हैं जिनमें रोग अवरुद्ध हो जाता है, वृक्कके अधःक्षेपित पदार्थ सूख जाते हैं, उनके स्थान पर खटिक जम जाता है एवं उनके चारों ओर सौत्रिक तंतुओं की एक कटोरी तैयार हो जाती है। इन रोगियों को अपने जीवन-काल में कभी इस बात का संदेह भी नहीं होने पाता है कि इन्हें किसी समय यह रोग था।

(२) अंड (Testes)—इसमें यक्ष्मा उपांडसे आरम्भ होता है और इस पर आक्रमण सम्भवतः रक्त मार्ग द्वारा ही होता है। रोगकी साधारण गति देखी जाती है—अर्थात् अधःक्षेपण क्रिया और सौत्रिक तन्तुओंका प्रस्तार होता है। पहले क्षत उपांड तक ही परिमित रहता है जो क्षत-ग्रस्त होने पर अण्डकोषके पश्चाद्भागमें एक लम्बी मुलायम अर्धचन्द्राकार वस्तुके आकार का मालूम होता है। समय पा कर रोग अण्डके अन्य स्थानों पर आक्रमण करता है तथा तज्जनित नाशकारी क्रियायें अण्ड को भी एक दम नष्ट कर देती हैं। अण्डमें बहुतसे व्रण हो जाते हैं जो अण्डकोषको फोड़ कर बाहर निकल आते हैं।

६ वात-संस्थान का यक्ष्मा

(Tuberculosis of the nervous System)

(१) (मस्तिष्कावरक) (meninges)—इस यक्ष्माका आक्रमण बहुधा देखा जाता है। यद्यपि रोग बच्चोंमें अधिक पाया जाता है किन्तु किसी आयुका व्यक्ति इससे वञ्चित नहीं है। बहुतसे रोगियोंमें रोग का आक्रमण सर्व प्रथम मस्तिष्क की जड़से आरम्भसे होता है और धीरे धीरे बढ़ता जाता है तथा अन्तमें एक बहुत बड़ा स्थान घेर लेता है। इन झिल्लियोंसे एक प्रकारका तरल पदार्थ निर्गत होता है जो आरम्भमें कुछ गंदला और अपारदर्शी होता है किन्तु पीछे कुछ पीले या हरे रंग का हो जाता है। यह द्रव कभी पीवमें परिणत नहीं होता है। इनमें (झिल्लियोंमें) यक्ष्माके दाने पाये जाते हैं जो आरम्भमें बहुत छोटे होते हैं और बड़ी मुश्किलसे दिखाई पड़ते हैं।

मृत्युके पश्चात झिल्लीके अन्तरावरण और मध्यावरण (Pia-archnoid) सूखे हुए और चिकने पाये जाते हैं किन्तु उनके बीचमें उपर्युक्त द्रव पाया जाता है और उन पर यक्ष्माके दाने भी दिखाई पड़ते हैं। मस्तिष्क कोष्ठ (Ventricles of the brain) स्वच्छ वा कुछ गंदले तरल पदार्थों से भरे रहते हैं तथा मस्तिष्क तन्तु मुलायम हो जाते हैं।

सुषुम्नावेष्ट (meninges of spinal cord) भी आक्रांत होता है। सच तो यह है कि पहले यह झिल्ली ही रोग ग्रस्त होती है। तदनन्तर रोग ऊपर की ओर बढ़ कर मस्तिष्कावरण पर आक्रमण करता है।

इन झिल्लियोंसे निर्गत द्रवकी अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर उसमें लसीकाणु पाये जाते

हैं और बहुत कठिनतासे एकाध यक्ष्मा कीटाणु भी मिलते हैं।

आक्रमणकी रीति—यह बहुधा-सर्वांग आक्रमण का अन्शमात्र होता है अथवा मस्तिष्कके किसी केन्द्र वा शिर की अस्थिके किसी केन्द्र वा शरीरके किसी केन्द्रसे आरम्भ होकर इन झिल्लियों तक पहुँच सकता है।

(२) मस्तिष्क (Brain) मस्तिष्कावरणके आक्रमणके साथ साथ मस्तिष्क भी कम वा अधिक आक्रान्त हो जाता है किन्तु स्वतन्त्र रूप से भी मस्तिष्कमें अनियमित गुल्माकार यक्ष्मा गांठें पाई जाती हैं जो संख्यामें एक वा अनेक हो सकती है और जिनका व्यास कभी कभी एक इञ्च तक होता है। ये नग्न चक्षु द्वारा भली भांति देखी जाती हैं। इसके बीच का भाग पीले रंगका होता है जिसमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है।

अणुवीक्षण दृश्य :—गांठें अधःक्षेपित पदार्थकी बनी रहती हैं और इनके चारों ओर दानवकोषयुक्त यक्ष्माके दाने रहते हैं जो निकटस्थ मस्तिष्क तन्तमें निमग्न होते जाते हैं। ये गुल्म बाहर तल तक पहुँच सकते हैं जिससे यक्ष्माकृत मस्तिष्कावरण प्रदाह भी हो सकता है और किसी शिरा पर अधिक दबाव पड़नेके कारण मस्तिष्क कोष्ट फूल जा सकते हैं तथा मस्तिष्कके अन्य भागोंमें भी बहुत उपद्रव मच सकता है।

(३) सुषुम्ना—(Spinal Cord) :—

(क) यक्ष्मा द्वारा सुषुम्ना प्रदाह और मेरु दण्ड का क्षय। (Tuberculous meningitis and Caries of the spine)

यक्ष्मा द्वारा कशेरुकाओं का क्षय किसी एक अस्थि तक परिमित रह सकता है वा कई अस्थियों को एक साथ नष्ट कर सकता है। मेरुदण्ड (Vertebral column) के किसी अन्शमें यह क्रिया सम्भव है किन्तु वक्ष एवं उदरके पीछेकी कशेरुकायें (Dorsal and Lumber Vertebrae) विशेष कर आक्रान्त होती हैं। अस्थियोंका विनाश पूरा कर यक्ष्मा कीटाणु आगे बढ़ते हैं और सुषुम्ना-वेष्टके बाह्यावरण पर आक्रमण करते हैं। इस झिल्ली का तल मोटा और तरलान्वित हो जाता है। कुछ कालोपरान्त इसका भीतरी तल भी यक्ष्माक्रान्त हो जाता है और आक्रमण भी अग्रसर होता है जिससे मध्यावरण और और अन्तरावरण (Pia-archnoid) भी रोगग्रस्त होते हैं। यक्ष्माकृत नष्ट पदार्थोंके इकट्ठे होनेके कारण सुषुम्ना पर दबाव पड़ता है जिसके फल स्वरूप क्षतके ऊपर और नीचे दोनों ओर के (सुषुम्ना के) अंश सड़ने लगते हैं। कशेरुकाओंके घिस जानेके कारण मेरुदण्ड एक ओरको झुक जाता है और इससे भी सुषुम्ना पर कुछ दबाव पड़ता है और उसमें ज्वलन (प्रदाह) उत्पन्न होती है। कभी अकस्मात् कशेरुकाओंके विलग हो जानेके कारण मृत्यु (रोगीकी) तक हो जाती है।

(ख) सुषुम्नावेष्टके बाह्यावरण पर यक्ष्माका आक्रमण स्वतन्त्र रूप से भी होता है और ऐसा विशेष कर गले वाले अन्शमें देखा जाता है। ऐसी अवस्थामें कशेरुकाओंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं पाया जाता।

(ग) अंतरावरण पर आक्रमण। इसका सम्बन्ध विशेष कर मस्तिष्क-यक्ष्मासे है। इस झिल्ली पर यक्ष्मा के छोटे छोटे दाने पाये जाते हैं।

(घ) सुषुम्ना—इसमें बहुधा यक्ष्माके दाने पाये जाते हैं और यह भी सम्भव है कि इसकी झिल्लियां एकदम अक्षत रह जाँय।

अस्थि-यक्ष्मा

यह एक बहुत साधारण रोग है। पाशविक प्रकारके कीटाणु रक्तधारा द्वारा वा लसीका धारा द्वारा पर्यस्थि वा अस्थिमें प्रवेश कर जाते हैं, अथवा संधियोंसे भी माध्यमिक रीतिसे आक्रमण होता है,

परन्तु बहुधा देखा जाता है कि रोग पहले अस्थि को पकड़ता है, तदुपरान्त संधिको। जहां कीटाणु प्रवेश कर पाते हैं वहां कोषोंका प्रस्तार होने लगता है और निर्धारित यक्ष्मा गांठे तैयार हो जाती हैं, इन गांठोंमें दानव कोष प्रणाली पाई जाती है तथा ये धीरे धीरे बढ़ती जाती हैं और अस्थि तंतुको नष्ट-भ्रष्ट करती जाती हैं। इस प्रकार विगलित तंतु (Necrosed tissue) अन्य तन्तुओंसे पृथक् हो कर एक ऐसे गर्त्तमें रह जाते हैं जो कोषोंके मुलायम पड़ जानेके कारण तैय्यार होता है और जिसकी दीवारोंमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है। गलित अंशको मृतास्थि (Sequestrum) कहते हैं। यह बहुत छोटा होता है किन्तु कभी कभी वृहदाकार भी हो सकता है।

अस्थियोंका घिसना (Caries) यक्ष्मा आक्रमणका एक साधारण परिणाम है। अस्थियोंका एक बड़ा अंश अनियमित रूपसे मुलायम हो जाता है तथा घिस जाता है। अस्तु, वहां यक्ष्माके दानोंसे घिरी हुई दीवारोंका गर्त्त तैय्यार हो जाता है। घिस जानेके कारण दो वा अधिक अस्थियां ढह कर आपसमें जुट जाती हैं जैसा कि प्रायः मेरुदण्डकी कशेरुकाओंमें देखा जाता है। कभी कभी सड़नेके कारण अस्थियोंके कुछ अंश मुलायम हो कर घुल जाते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानों वहां पर पीव बन गया हो—यद्यपि वास्तवमें वहां पीव नहीं बनता। इस प्रकारके क्षतसे एक तरहका शीत-व्रण (Cold abscess) तैय्यार हो जाता है जिसमें टूटे फूटे कोष, अधःक्षेपित पदार्थ और कुछ पीवके कोष पाये जाते हैं। यक्ष्मा कीटाणु अस्थिके किसी अंश—पर्यस्थि, अस्थि, या मज्जा—पर आक्रमण कर सकते हैं। निम्न लिखित अस्थियां विशेष कर आक्रान्त होती हैं—

मेरुदण्डकी कशेरुकायें
हाथ और पाँवकी अस्थियां }
लम्बी अस्थियोंके दोनों छोर }

कपालकी अस्थियोंमें यक्ष्माका आक्रमण बहुत कम होता है।

इन क्षतोंमें जीर्ण-प्रदाहके सभी चिह्न मिलते हैं, अस्थि तंतु क्षीण (Rarified) होते जाते हैं और इनके बाहरी तल रुखड़े हो जाते हैं और कभी कभी एक यक्ष्मा-क्षतके चारों ओर अस्थियोंका एक मोटा तल तैय्यार हो जाता है।

ये यक्ष्मा-क्षत कभी कभी स्वयं रोगमुक्त हो जाते हैं, इनके अधःक्षेप सूख जाते हैं और इनकी जगह पर दानेदार एवं सौत्रिक तंतु तैय्यार हो जाते हैं और अन्तमें इनमें खटिक जम जाता है।

८ संधि-यक्ष्मा

यह अधिकतर बच्चोंमें देखी जाती है। पहले यह रोग संधियोंकी स्नैहिक कलाओं और कभी कभी तो निकटवर्त्ती अस्थियोंसे आरम्भ हो कर संधियों पर आक्रमण करता है। ये झिल्लियां (स्नैहिक-कलायें) मोटी और मांड़ (कंजी) की सी हो जाती हैं और कुछ समयके बाद पुलपुली हो जाती हैं। संधियोंको मिलानेवाले कारटिलेज आक्रान्त होते हैं और मुलायम हो कर घिस जाते हैं वा उनमें घाव हो जाते हैं। अस्थियां भी क्षत-ग्रस्त होती हैं तथा घिस जाती हैं। संधि बन्धन छिन्न भिन्न हो जाते हैं, अणुवीक्षण-यन्त्र द्वारा यक्ष्मा के सभी दृश्य देखे जाते हैं।

९ मांस-तंतु का यक्ष्मा

प्राथमिक रीतिसे तो बहुत कम किन्तु माध्यमिक रीतिसे इन तंतुओं पर भी आक्रमण हो सकता है। इनमें यक्ष्माकी सभी नाशकारी क्रियायें देखी जाती हैं।

१० प्लीहा का यक्ष्मा

इससे माध्यमिक आक्रमण होता है। सर्वांग नूतन यक्ष्मा (General acute miliary tuberculosis) में असंख्य छोटी छोटी भूरी उजली और

अपारदर्शी गांठें यहाँ वहां इसमें (प्लीहामें) छित-राई हुई पाई जाती हैं। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा इन गांठोंमें दानवकोष प्रणाली देखी जाती है। आच्छादन क्रियायें (Reparative processes) उतनी नहीं होती जितनी नाशकारी क्रियायें तथा अधःक्षेपण क्रिया विशेष रूपसे देखी जाती है।

(चित्र संख्या ३)

(४) प्लीहा का यक्ष्मा

(५) यकृत यक्ष्मा

एक अन्य प्रकारका यक्ष्मा भी प्लीहामें होता है (जो प्रायः जीर्ण यक्ष्मा होता है) जिसमें इधर उधर छितराई हुई पीले या उजले रंगकी सड़ती हुई गांठें, जिनका व्यास एक इञ्चका तृतीयांश वा चतु-र्थांश होता है, दीख पड़ती हैं। यह अवस्था उन बन्दरोंमें विशेष कर देखी जाती है जो बहुत दिनों तक पिंजड़ेमें बन्द रखे जाते हैं। ये गांठें बहुत मुलायम होती हैं और सहज ही घुल जाती हैं जिससे इस अवयवमें छोटे छोटे गड्ढे तैय्यार हो जाते हैं। ऐसी ही अवस्था वृक्क और यकृत में भी देखी जाती है। प्लीहामें कभी कभी अखरोटके आकारके भी क्षत देखे जाते हैं।

११ यकृतका यक्ष्मा

इसमें यक्ष्मा गांठें बहुत छोटे छोटे दानोंके रूप में दिखाई पड़ती हैं। आक्रमण सर्वांग यक्ष्माका एक अन्श-मात्र होता है अथवा परिविस्तृत कलासे बढ़ता है। ये गांठें कभी कभी पित्तके रंगसे रंजित रहती हैं। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा इनमें अधःक्षेपण इत्यादि क्रियायोंके दृश्य देखे जाते हैं। कभी कभी ये दाने कुछ बड़े भी होते हैं। कभी कभी यक्ष्मा गांठें पित्त नलिकाओंके मार्गमें तैय्यार हो जाती हैं जिससे उनका मार्ग रुक जाता है और रोगीकी आंखोंमें हरापन छा जाता है।

तालका वर्णपेरण

[श्री० रघुनाथ सहायजी भार्गव एम० एस-सी०]

यदि हम काँचका बना हुआ कोई ताल लें जिसकी आवर्जन संख्या सूर्यके प्रकाशके हेतु ना है और लाल तथा नीली किरणोंसे प्रयोग करने पर आवर्जन संख्याका मान $ना_{ल}$ तथा $ना_{न}$ प्राप्त होता है तो हम यह मान सकते हैं कि $ना = \frac{ना_{ल} + ना_{न}}{२}$

यदि हम विचार करें कि तालके एक गोल तलकी वक्रताका व्यासार्ध $क_{१}$ है तथा दूसरे गोल तलका $क_{२}$ है तो उसका नाभ्यन्तर लाल किरणोंके वास्ते $न_{ल}$ नीचे दिये हुए गुरुके प्राप्त कर सकते हैं।

$$\frac{१}{न_{ल}} = (ना_{ल} - १) \left(\frac{१}{क_{१}} - \frac{१}{क_{२}}\right)$$

इसी प्रकार नीली किरणोंके वास्ते—

$$\frac{१}{न_{न}} = (ना_{न} - १) \left(\frac{१}{क_{१}} - \frac{१}{क_{२}}\right)$$

क्योंकि $ना_{ल}$ की अपेक्षा $ना_{न}$ अधिक है इसलिये $\frac{१}{न_{न}}$ भी $\frac{१}{न_{ल}}$ से अधिक होगा अर्थात् $न_{न}$ की अपेक्षा $न_{ल}$ कम होगा।

इससे हम इस तात्पर्यको पहुँचते हैं कि तालका नाभ्यन्तर नीली किरणोंके वास्ते लाल किरणोंकी अपेक्षा कम है या दूसरे शब्दोंमें यह कहिये कि नीली किरणोंके हेतु दोनों मुख्य नाभियां लाल किरणको मुख्य नाभियोंकी अपेक्षा तालके निकट होती हैं।

ताल दो प्रकारके होते हैं। प्रथम वह जो पतित किरणों को मुख्य अक्षकी ओर झुकाते हैं और द्वितीय वह जो मुख्य अक्षसे पतित किरणों को दूर करते हैं। यदि ताल ऐसा है कि किरणोंको मुख्य अक्षकी ओर झुकाता है तो नीली किरणें लाल किरणोंकी अपेक्षा अधिक झुक जावेंगी। यदि ताल पतित किरणोंको मुख्य अक्षसे दूर भेजता है तो नीली किरणें लाल किरणोंकी अपेक्षा दूर जावेंगी।

इस क्रियासे यह बाधा उत्पन्न होती है कि यदि हम एक बिन्दु लें जो मुख्य अक्ष पर रखा हो और जहांसे प्रकाशकी किरणें निकल रही हों तो ताल द्वारा उसका बिम्ब एक बिन्दु न होगा। पृथक् पृथक् रंगों का बिम्ब भिन्न भिन्न स्थानों पर बनेगा जिसमें नीला बिम्ब तालके निकट होगा। जिसके पश्चात हरा, पीला तथा लाल बिम्ब होगा। इस प्रकार पूर्ण बिम्ब एक रेखाके रूपमें किरण-चित्र होगा जिसका नीला सिरा तालके निकट तथा लाल तालसे दूर होगा।

इस प्रकार जिन नियमों पर तालके बारेमें अनेक गुरु सिद्ध किये हैं उनके विमुख एक बिन्दु-बिम्ब प्राप्त करनेके स्थान पर एक रेखात्मक किरण चित्र मिलनेको तालका वर्णपेरण कहते हैं।

इस प्रकार यदि हम एक ही तालसे तमाम रंगोंकी किरणोंको एक स्थान पर एकत्रित करना चाहें तो असम्भव है। यह दोष दो ताल उपयोगमें लानेसे दूर हो सकता है जिसका पूर्ण विवरण हम आगे चल कर करेंगे।

अब— $$\frac{१}{न_{ल}} = \frac{ना_{ल} - १}{ना - १} . (ना - १) \left(\frac{१}{क_{१}} - \frac{१}{क_{२}}\right) = \frac{ना_{ल} - १}{ना - १} . \frac{१}{न}$$

यहां न उन किरणोंके वास्ते तालका नाभ्यन्तर है जिनके लिये तालकी आवर्जन संख्या ना है।

इसी प्रकार $\frac{१}{न_{न}} = \frac{ना_{न} - १}{ना - १} . (ना - १) \left(\frac{१}{क_{१}} - \frac{१}{क_{२}} \right) = \frac{ना_{न} - १}{ना - १} . \frac{१}{न}$

अब वर्णपिरण $न_{ल} - न_{न}$ के बराबर है।

अब हम $न_{ल}$ न को $न^{२}$ के लगभग बराबर ले सकते हैं।

तब $$\frac{१}{न_{न}} - \frac{१}{न_{ल}} = \frac{न_{ल} - न_{न}}{न_{ल} न} = \frac{न_{ल} - न_{न}}{न^{२}} = \frac{ना_{न} - ना_{ल}}{ना - १} . \frac{१}{न},$$

$$\therefore\ न_{ल} - न_{न} = \frac{ना_{न} - ना_{ल}}{ना - १} न .$$

इसलिये समानान्तर किरणोंके हेतु वर्णपिरण तालकी औसत नाभ्यन्तर तथा उस वस्तुका जिसका ताल बना हुआ है विस्तरण बलके गुणनफलके बराबर है।

अब यदि हम दो ताल लें जिनकी औसत नाभ्यन्तर $न_{१}$ तथा $न_{२}$ हैं और यदि पहले तालकी $ना_{ल}$ $ना_{न}$ तथा ना और दुसरेकी $ना'_{ल}$, $ना'_{न}$ तथा $ना'$ आवर्जन संख्याएँ हों और उन दोनोंको मिला कर लाल किरणोंसे प्रयोग करने पर $न_{ल}$ नाभ्यान्तर प्राप्त होता हो तब—

$$\frac{१}{न_{ल}} = \frac{ना_{ल} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना_{ल} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}}$$

यदि नीली किरणोंके वास्ते दोनों तालको मिला कर $न_{न}$ नाभ्यन्तर प्राप्त होता है तब—

$$\frac{१}{न_{न}} = \frac{ना_{न} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना'_{न} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}}$$

यदि दोनों तालको मिला कर लाल तथा नीली किरणों के हेतु नाभ्यन्तर एक ही प्राप्त करना है तो $न_{ल}$ तथा $न_{न}$ बराबर होने आवश्यक हैं।

$$\therefore\ \frac{ना_{ल} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना'_{ल} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}} = \frac{ना_{न} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना'_{न} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}}$$

$$\text{या}\quad \frac{ना_{न} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} - \frac{ना_{ल} - १}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना'_{न} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}} - \frac{ना'_{ल} - १}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}} = ०$$

$$\text{या}\quad \frac{ना_{न} - ना_{ल}}{ना - १} . \frac{१}{न_{१}} + \frac{ना'_{न} - ना'_{ल}}{ना' - १} . \frac{१}{न_{२}} = ० . \quad \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

जिस समय समीकरण (१) की पूर्ति हो जाती है तो रेखात्मक किरण-चित्रके स्थान पर एक बिन्दु बिम्ब प्राप्त हो सकता है।

क्योंकि $ना_{न} > ना_{ल}$ तथा $ना'_{न} > ना'_{ल}$ और ना तथा $ना'$ दोनों > १ इस कारण ऊपर वाले समीकरणकी पूर्तिके वास्ते $न_{१}$ तथा $न_{२}$ अभिमुख संकेत होना आवश्यक है अर्थात् यदि उनमेंसे एक धन है तो दूसरा ऋण होना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि एक ताल नतोदर और दूसरा उन्नतोदर होना चाहिये।

एक दूरदर्शकके वस्तु तालमें दो प्रकारके ताल लगाते हैं जिनमें एक संसृत तथा दूसरा अपसृत होता है। संसृत ताल क्राउन (Crown) कांचका बना होता है और अपसृत फ्लिंट (Flint) कांचका।

प्रत्येक तालमें दो तल होते हैं। इसलिये यदि हमको दो ताल ऐसे छांटने हैं कि जिनके मिलानेसे वर्णापेरण दूर हो जाय तो हमको उनकी चारों वक्रताओंके व्यासार्धोंका ज्ञान आवश्यक है।

क्योंकि हमको चारका मान निकालना है इसलिये चार समीकरण प्राप्त करने अति आवश्यक हैं जिनमेंसे एक हम ऊपर प्राप्त कर चुके हैं और दूसरा $\frac{१}{न} = \frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}$ है।

जिस समय हम इन दोनों तालोंको बराबर मिलाकर रक्खेंगे तो परावर्तन द्वारा प्रकाशकी हानिको दूर करने के लिये यह उचित है कि दोनोंको हम कनाडा बालसम (Canada balsam) से जोड़ दें। यह उसी समय सम्भव है जब कि पहले तालके दूसरे तल तथा दुसरे तालके पहले तलका वक्रता केन्द्र एक ही हो। यदि $क_१$ तथा $क_२$ पहले तालके और $क_३$ तथा $क_४$ दूसरे तालके वक्रता-केन्द्र हैं। तो $क_२$ तथा $क_३$ बराबर होने चाहिये। यह हमको तीसरा समीकरण मिलता है।

चौथा समीकरण इस सिद्धान्त पर प्राप्त किया जा सकता है कि इन तालोंसे गोलापेरण न्यूनतम हो। इस विचारकी पूर्तिके लिये यह आवश्यक है कि उस तालका जो क्राउन कांचका बना हुआ है स्वतन्त्र तल फ्लिएट कांचके बने हुए तालके स्वतन्त्र तलकी अपेक्षा अधिक वक्र हो और यह दोनों तल उन्नतोदर हों। क्राउन कांचके बने हुए तालका स्वतन्त्र तल बाहरकी ओर होता है जिस पर प्रकाशकी किरणें प्रथम टकराती हैं।
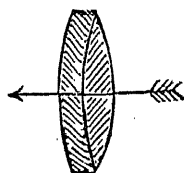
(चित्र १)

हरशलके विचारोंके अनुसार दूरदर्शक का सबसे उत्तम वस्तु-ताल जिसका औसत नाभ्यन्तर न है वह होगा जिसके क्राउन तथा फ्लिएट कांचके ताल के स्वतन्त्र तल की वक्रता का व्यासार्ध ०·६७२×न और १·४२०×न हो और जिसके शेष तलों की वक्रता का व्यासार्ध पहले बतलाए हुए समीकरणों की सहायतासे प्राप्त किया गया हो। बहुधा केवल फ्लिएट कांचके ताल के स्वतन्त्र तल को सम रखते हैं। नीचे वाली सारिणीसे हमको भिन्न भिन्न प्रकारके क्राउन तथा फ्लिएट कांचकी पीली (प) तथा नीली (न) किरणोंके हेतु आवर्त्तन संख्या प्राप्त हो सकती है :—

	प	न		प	न
कोमल क्राउन कड़ा	१·५१४६	१·५२१०	भारी फ्लिएट	१·६२२४	१·६३४७
क्राउन अधिक हलका	१·५१७१	१·५२३१	अधिक भारी फ्लिएट	१·६५०४	१·६६४२
फ्लिएट हलका	१·५४१०	१·५४६१	अति अधिक भारी फ्लिंट	१·७१०२	१·७२७३
फ्लिएट	१·५७४०	१·५८३६			

इस प्रकार हम दूरदर्शकके वस्तु तालके लिये कोई दो ताल ऐसे छांट सकते हैं जिनको मिलाकर रखनेसे वर्णापेरण दूर हो जाय। इस समय हम अभ्यासके लिये एक उदाहरण लेते हैं जिसको देख कर यह समस्या अति सरल प्रतीत होगी। मान लोजिये कि हमको एक ऐसा वार्णिक अर्थात् जिसमें वर्णापेरण न हो वस्तु-ताल बनाना है जिसका नाभ्यन्तर ३० शतांश मीटर हो, और जो दो पतले तालों को कनाडा बालसमसे जोड़ कर बनाया गया हो। उनमेंसे एक कड़े क्राउन कांच तथा दूसरा भारी फ्लिण्ट कांच का बना हो और जिसके अपसृत ताल का स्वतन्त्र तल सम हो तो यह मालूम करना है कि उनके गोलीय तलकी वक्रताके व्यासार्ध का मान क्या है ? और उनमेंसे प्रत्येक का नाभ्यन्तर क्या है ?

अब कल्पना किजिये कि " कड़े क्राउन " कांचके संस्कृत ताल का नाभ्यन्तर $न_१$ है तथा " भारी फ्लिण्ट " कांचके अपसृत ताल का नाभ्यन्तर $न_२$ है इसलिये—

$$\frac{१}{न_१}+\frac{१}{न_२}=-\frac{१}{३०}\cdots\cdots\cdots(१)$$

कड़े क्राउन कांचके लिये

$$\text{औसत आवर्जन संख्या, ना}=\frac{१\cdot५१७१+१\cdot५२३१}{२}=१\cdot५२०१.$$

$$\text{विस्तरण बल}=\frac{१\cdot५२३१-१\cdot५१७१}{०\cdot५२०१}=०\cdot०११५$$

भारी फ्लिण्ट कांचके लिये :—

$$\text{औसत आवर्जन संख्या, ना}'=\frac{१\cdot६२२४+१\cdot६३४७}{२}=१\cdot६२८५$$

$$\text{विस्तरण बल}=\frac{१\cdot६३४७-१\cdot६२२४}{०\cdot६२८५}=०\cdot०१९६$$

समीकरण (१) द्वारा जो कि पहले लिखा जा चुका है

$$\frac{०\cdot०११५}{न_१}+\frac{०\cdot०१९६}{न_२}=०\cdots\cdots\cdots(२)$$

$$\therefore \frac{१}{न_१}=-\frac{१९६}{११५}\cdot\frac{१}{न_२}$$

और ऊपर दिये समीकरण (१) से

$$\left(-\frac{१९६}{११५}+१\right)\frac{१}{न_२}=-\frac{१}{३०}$$

$$\therefore न_२=२१\cdot१३ \text{ शतांशमीटर}$$

$$\therefore न_१=-\frac{११५}{१९६}\cdot २१\cdot१३=-१२\cdot३९ \text{ शतांश मीटर}$$

अब कल्पना कीजिये कि अपसृत ताल के नतोदर तल का वक्रता-केन्द्र क है; क्योंकि इसका दूसरा तल सम है इसलिये—

$$\frac{१}{न_२} = \left(\frac{ना'—१}{क} \right)$$

$$\therefore क = (ना'—१) न_२$$

$$= (१\text{'}६२८५—१) २१\text{'}१३ \text{ शतांश मीटर}$$

$$= १३\text{'}२८ \text{ शतांश मीटर}$$

क्योंकि दोनों ताल एक दूसरेसे जुड़े हुए हैं, इस कारण संस्कृत ताल के एक तल की वक्रताका व्यासार्ध क=१३'२८ शतांश मीटर होना चाहिये। अब कल्पना कीजिये कि इस ताल के स्वतन्त्र तलकी वक्रता का व्यासार्ध $क_१$ है

तब— $$\frac{१}{न_१} = (ना—१) \left(\frac{१}{क_१} - \frac{१}{क} \right)$$

और $$\frac{१}{क_१} = \frac{१}{(ना—१) न_१} + \frac{१}{क}$$

$$= - \frac{१}{०\text{'}५२०१ \times १२\text{'}३६} + \frac{१}{१३\text{'}२८}$$

$$= -०\text{'}०७९६$$

$$\therefore क_१ = -१२\text{'}५२ \text{ शतांश मीटर}$$

इस प्रकार तालके विषयमें सब ज्ञातव्य बातें पता लगने पर हम ठीक ताल छांट सकते हैं

दो ताल एक निश्चित दूरी पर

यदि हम दो ताल लें और उनको कुछ अन्तरसे रक्खें तो हम भली भाँति एक ऐसा ताल मान सकते हैं जो एक निश्चित स्थान पर रखनेसे उतनी ही लम्बाई चौड़ाई का बिम्ब बनाये जितना कि उन दोनों ताल की सहायतासे बनता है। ऐसी दशामें यदि न इस एक तालका नाभ्यन्तर है और $न_१$ तथा $न_२$ उन दो तालोंमेंसे पहले तथा दूसरे तालके नाभ्यन्तर हैं और द उनके बीचमें अन्तर है तो

$$\frac{१}{न} = \frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२} + \frac{द}{न_१ न_२}$$

यदि इस नये ताल का नाभ्यन्तर लाल नीली किरणोंके हेतु $न_{ल}$ तथा $न_{न}$ हैं तो उन हालतों को प्राप्त करना है जब कि यह दोनों नाभ्यन्तर समान हों और लाल तथा नीले बिम्बमें कोई भिन्नता प्रगट न हो। यदि हम पहले ही तालको उपयोगमें लायें तो लाल किरणोंके हेतु नाभ्यन्तर $न_{ल}$ नीचे वाले गुरसे प्राप्त होगा।

$$\frac{१}{न_{ल}} = \frac{(ना_{ल} - १)}{(ना - १)} . \frac{१}{न_१}$$

यदि हम केवल दूसरे ही ताल को उपयोगमें लायें तो लाल किरणोंके हेतु उसका नाभ्यन्तर $न_{ल}$ नीचे वाले गुरसे प्राप्त किया जा सकता है।

$$\frac{१}{न_{२ल}} = \frac{ना_{ल}—१}{ना—१} . \frac{१}{न_२}$$

अब लाल किरणोंके हेतु इस नये ताल का जो इन दोनोंके तुल्य (Equivalent) है नाभ्यन्तर $_{ल}$ नीचे वाले समीकरणसे मालूम हो सकता है।

$$\frac{१}{न_ल} = \frac{१}{न_{१ल}} + \frac{१}{न_{२ल}} + \frac{द}{न_{१ल}न_{२ल}}$$

$$= \frac{ना_ल - १}{ना - १} \cdot \frac{१}{न_१} + \frac{ना_ल - १}{ना - १} \cdot \frac{१}{न_२} + \left(\frac{ना_ल - १}{ना - १}\right)^२ \cdot \frac{द}{न_१ न_२}$$

$$= \frac{ना_ल - १}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}\right) + \left(\frac{ना_ल - १}{ना - १}\right)^२ \frac{द}{न_१ न_२} \cdots\cdots\cdots (१)$$

इसी प्रकार $\frac{१}{न_न} = \frac{ना_न - १}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}\right) + \left(\frac{ना_न - १}{ना - १}\right)^२ \frac{द}{न_१ न_२} \cdots\cdots\cdots (२)$

अब उन हालतों को प्राप्त करनेके लिये जिसमें $न_न$ तथा $न_ल$ बराबर हों हमको समीकरण (२) तथा (१) के बायें हाथके भाग को बराबर करना चाहिये इसलिये—

$$\frac{ना_न - १}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}\right) + \left(\frac{ना_न - १}{ना - १}\right)^२ \frac{द}{न_१ न_२} = \frac{ना_ल - १}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}\right) + \left(\frac{ना_ल - १}{ना - १}\right)^२ \frac{द}{न_१ न_२}$$

या $\frac{ना_न - ना_ल}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२}\right) + \frac{(ना_न - १)^२ - (ना_ल - १)^२}{(ना - १)^२} \cdot \frac{द}{न_१ न_२} = ० \cdots\cdots (३)$

परन्तु $[(ना_न - १)^२ - (ना_ल - १)^२] = [(ना_न - १) - (ना_ल - १)]\,[(ना_न - १) + (ना_ल - १)]$

$$= [(ना_न - ना_ल)(ना_न + ना_ल - २)]$$

$$= २(ना_न - ना_ल)(ना - १)$$

क्योंकि $ना = \frac{ना_न + ना_ल}{२}$

इसलिये समीकरण (३) से हमको यह मिलता है कि

$$\frac{ना_न - ना_ल}{ना - १}\left(\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२} + \frac{२द}{न_१ न_२}\right) = ०$$

यदि हम साधारण गुणक $\frac{ना_न - ना_ल}{ना - १}$ को छोड़ दें तो

$$\frac{१}{न_१} + \frac{१}{न_२} + \frac{२द}{न_१ न_२} = ०$$

$$द = -\frac{(न_१ + न_२)}{२} \cdots\cdots\cdots\cdots (४)$$

समीकरण (४) से हमको ज्ञात होता है कि यदि हम दो ताल उपयोगमें लायें जिनका नाभ्यन्तर $न_१$ तथा $न_२$ हो तथा जिनके बीचमें द दूरी हो तो वर्णापेरण दूर करनेके लिये 'द' $= -\frac{न_१ + न_२}{२}$ होना चाहिये

चूंकि द धन है इसलिये $न_२ + न_१$ ऋण होना चाहिये जो उसी समय सम्भव है जबकि उनमेंसे एक या दोनों उन्नतोदर हों।

ऐसे दो पतले ताल जिनके बीचमें कुछ अन्तर हो अधिकतर दूरदर्शक तथा सूक्ष्मदर्शकके चक्ष-तालमें लगाये जाते हैं। ऐसी हालतोंमें हमको अनेक रंगोंके बिम्ब की दूरी तथा लम्बाई चौड़ाई का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस रीतिसे चक्ष-ताल इस प्रकार बनाया जाता है कि भिन्न २ रङ्गके बिम्ब आँखें पर एक ही कोण बनायें।

सिंकोनाकी खेती और कुनीन

[ले० श्रीहरकुमार प्रसाद वर्मा एम० एस-सी०]

रूबिसिया नामक जातिके एक विशेष पौधेकी छालको साधारणतः सिंकोना कहा जाता है। दक्षिणी अमरीकामें इसकी लगभग २० जातियां पायी जाती है। वेन्नुला, न्यू ग्रेनेडा, एक्यूडर, पीरु और बोलीविया इसके प्रसिद्ध स्थान हैं। अति प्राचीनकालमें स्पेन निवासियोंको यह बात विदित हो गई थी कि सिंकोनाकी छालमें ज्वरनाशक गुण विद्यमान हैं। धीरे धीरे इसका प्रचार बढ़ने लगा और यह आवश्यक समझा जाने लगा कि नियमपूर्वक इसकी खेतीकी जावे। सन् १८६० में बृटिश भारत, सीलोन और जावामें भी इसकी.खेती आरम्भ कर दी गई जिसका परिणाम यह हुआ कि सिंकोनाकी प्राप्तिके लिये दक्षिणी अमरीकाकी उपजका आसरा देखनेकी आवश्यकता न रही।

सिंकोनाके पौधे भिन्न भिन्न आकारके होते हैं और इसकी पत्तियां सदा हरी रहती हैं। इन श्वेत अथवा गुलाबी फूलोंमें भीनी भीनी सुगन्ध होती है। फूल संयुक्त सदण्डक (Panicles) में सुसज्जित होते हैं। उनका पुटचक्र (Calyx) उच्च स्थानीय पञ्च दलवाला (Five-toothed) होता है। दलपत्र नलीके आकारका पञ्चकोनी होता है और उसके सिरे पर झालर लगी रहती है। पुंकेसर (Stamen) पांच होते हैं और दलपत्रसे छुपे रहते हैं। गर्भाशय (Ovary) सिरे पर चपटी होती है। बीज एक फलीके अन्दर होता है, यह फली ऊपरी सिरे पर जुड़ी रहती है और नीचेसे फट जाती है ताकि बीज निकल जाय। इसके बीज चपटे होते हैं और उसके सब तरफ रुयें होते हैं। लगभग इसकी ४० जातियां पायी जाती हैं पर केवल १२ ही खेतीके योग्य समझी गई हैं। दक्षिणी अमरीकाकी पश्चिमी पर्वत श्रेणियों में १०° उत्तरसे लेकर २२° दक्षिण अक्षांश तक इसकी प्राकृतिक उपज होती है। समुद्रकी तहसे ५००० से ८००० फुट ऊँचाई तकका स्थान इनके लिये उपयोगी है।

इन पेड़ोंका महत्व केवल इनकी छालके लिये है जिससे ज्वर नाशक कुनीन निकाली जाती है। सबसे पहला उल्लेख जिसमें इस छालका ज्वरमें प्रयोग किया जाना लिखा है सन् १६३८ का है जब कि पीरुके शासककी पत्नी 'सिंकोनकी रानी' का ज्वर इसके सेवनसे दूर हो गया था। इस रानीके नाम पर ही इस छाल को सिंकोना कहा जाता है।

दक्षिणी अमरीकाके घने जंगलोंमेंसे इसकी छाल को प्राप्त करना बड़ा ही कठिन और परिश्रमशील व्यवसाय है। वहांका अनुभवी व्यक्ति पहले तो जंगलोंमें इस पौधेकी खोज करता है और फिर उस पर लपटी हुई लताओंको अलग करता है तदुपरान्त उन पर लगे हुए परोपजीवी कीड़ोंको साफ करता है। फिर जहां तक वह पहुँच सकता है, डालियों की छालोंको कुशलता पूर्वक छुटाता है, इसके पश्चात् पेड़ गिरा दिया जाता है और शेष सब छाल अलग करली जाती है। इसके पश्चात् इन्हें सावधानीसे एकत्रित करके दूसरे स्थानों पर भेजा जाता है। इन सब कामोंमें बड़ा ही परिश्रम उठाना पड़ता है। जबसे अमरीकामें इसकी खपत बहुत बढ़ने लगी तबसे यह आवश्यक समझा गया कि पुराने समयसे प्रचलित विधियोंमें सुधार किया जाय क्योंकि उनमें बहुत सी छाल खराब भी हो जाती थी और श्रम भी अधिक उठाना पड़ता था। सन् १८५४ में डच गवर्नमेंट ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया और जावामें इसकी खेतीको विशेष सफलता मिली। सन् १८६२ में सर क्लेमेण्ट मारखामने नीलगिरिमें इसकी खेतीका आरम्भ किया।

भारतवर्षमें सिंकोनाको खेतीके दो मुख्य केन्द्र हैं। मद्रास प्रेसीडेन्सीमें नीलगिरि, कोयम्बटूर और टिनावेलीमें इसको खेती होती है। बंगालमें दार्जिलिंग इसका प्रसिद्ध स्थान है।

कुनीन तीन जातिकी छालोंसे मुख्यतः प्राप्तकी जाती है। (१) सिंकोना लेजिरिआना-पीली छाल— इसकी खेती मुख्यतः बङ्गालमें होती है।

(२) सिंकोना सक्सी रूब्रा (लाल छाल)

(३) सिंकोना आफिसिनेलिस (पीली छाल)

सिंकोनाकी खेती पर जलवायुका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसके लिये ऐसी शीत जलवायु की आवश्यकता है कि जिसके तापक्रममें गरमी और सरदीकी ऋतुओंमें अथवा दिन और रातमें अधिक अन्तर न पड़े। ५० इञ्चसे १०० इञ्च तक
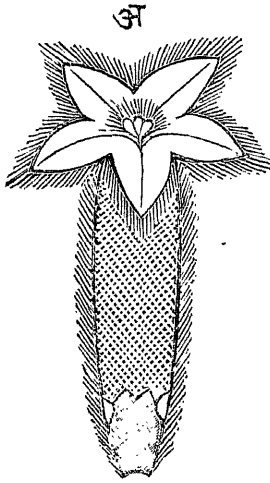
(चित्र नं० १)
फूल
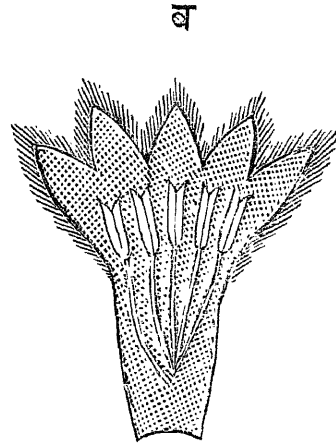
(चित्र नं० २)
दलपत्र (Corolla) खुला हुआ
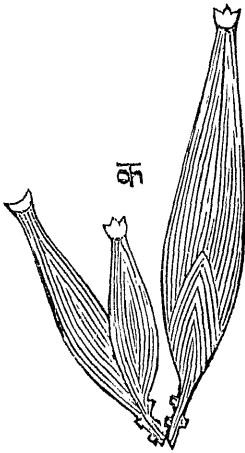
(चित्र नं० ३)
फल
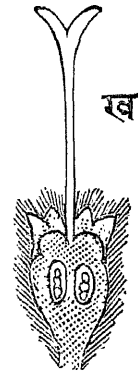
(चित्र नं० ४)
गर्भाशय

की वर्षाकी भी आवश्यकता है। नये साफ किये गये वन प्रदेशोंमें जिनकी भूमि उपजाऊ हो, खुली हो और ढलुआ हो जिससे पानी जल्दीसे बह जावे, सिंकोना बहुत ही अच्छी तरह पनपता है। चौरस और दलदल भूमि इसके लिये उपयुक्त नहीं है, पर कुछ जातिके पौधे जैसे कि पीली छालवाले साधारण हरी भरी ज़मीन पर भी उग सकते हैं।

सिंकोनाके बीजकी तैय्यारीके लिये भी विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है और इनकी क्यारियां भी सावधानीसे बनायी जाती हैं। सिंकोनाका बीज सामान्य तापक्रम पर अच्छी प्रकार उगता है अतः बोनेके लिये ग्रीष्म अथवा वर्षा ऋतु अधिक उपयुक्त मानी गयी है। क्यारियोंके लिये साफ़ ज़मीन चुनी जाती है जिसमें बनस्पतिक खाद डाला जाता है। इस कामके लिये ऐसा स्थान चुना जाता है जो ढाल पर स्थित हो जिससे पानीके बहने में कठिनता न हो। यह स्थान पूरब-पच्छिम फैला होता है। बीजोंको आंधी और पानीके झोकोंसे बचानेकी आश्यकता होती है, और सूर्यकी सीधी तीव्र किरणों से इनकी रक्षा भी करनी चाहिये। इसलिये इनके खेतों पर, छप्परोंका भी प्रबन्ध करना पड़ता है। जब यह सब प्रबन्ध हो जाता है तो बीज घने बो दिये जाते हैं, और मिट्टीकी पतली तहसे ढक दिये जाते हैं। इनमें अंकुर निकलनेका समय तापक्रम पर निर्भर रहता है। लगभग दो से छः सप्ताहोंके बीचमें अंकुर निकलने आरम्भ हो जाते हैं। इस समयके समाप्त होने तक इनमें दो तीन पत्तियाँ भी निकल आती हैं। इसके पश्चात् इन्हें धात्रालयों (Nurseries) में भेज दिया जाता है और वहां भी छप्पर आदि प्रबन्ध द्वारा इनकी रक्षाकी जाती है। क्यारियोंसे निकाल कर लगभग दो इञ्च अलग इन्हें बो दिया जाता है और जब तक ये चार पांच इञ्च ऊँचे न हो जायँ, इन्हें वहीं रहने दिया जाता है। इसके पश्चात् उखाड़ कर इन्हें फिर अलग बोया जाता है और अब इनकी रक्षाके लिये छप्परोंकी आवश्यकता नहीं रहती है। इन्हें बार बार उखाड़ने और बोनेका अभिप्राय यह है कि ऐसा करनेसे इनका बीज दृढ़ और जड़ें मज़बूत हो जाती हैं, जिससे कि ९—१२ मास हो जानेके पश्चात् इन्हें असली खेतोंमें सुरक्षित लगाया जा सके।

सिंकोनाकी खेतीके लिये जो भूमि निश्चित की गई हो उसका प्राकृतिक घास फूस सब अलग कर लेते हैं। जब यह बिलकुल साफ हो जाय, और फिर जहां जहां पौधे लगाने हों उन स्थानोंको बल्लियाँ गाड़ कर चिह्नित कर देते हैं। प्रत्येक बल्लीके पास गड्ढा खोदा जाता है और इसमें अच्छी खाद भर दी जाती है। इस खाद वाली ज़मीनमें पौधे जल्दी जड़ पकड़ लेते हैं। मेघाच्छन्न ऋतुमें पौधे लगाये जाते हैं और प्रत्येक पौधेके बीचमें ४ फुट या कुछ ज़मीन छोड़ दी जाती है। यद्यपि छाये हुए खेतोंमें व्यय अधिक पड़ता है पर इसके कुछ लाभ भी हैं।—अर्थात् भूमि की धूपसे रक्षा होती है, पौधोंमें साफ सीधे तने निकलते हैं, और छायामें नरकुल, सेठे आदि अनावश्यक पदार्थ कम उगते हैं। छोटे पौधोंको धूपसे बचानेके लिये इनके खेतोंके चारों ओर अन्य पदार्थोंके बड़े पौधे (या घास) बो दिये जाते हैं अथवा बाँसोंका घना बड़ा बना दिया जाता है जिनकी पत्तियाँ धूपकी ओर होती हैं, इस प्रकार उनसे धूप रुक जाती है।

सिंकोनाके पेड़ोंसे अच्छी छाल प्राप्त करनेके लिये कई वर्ष धैर्य धारण करना पड़ता है। यह समय पेड़की जाति विशेष पर और जिस स्थान पर बोया गया है उसकी ऊँचाई पर निर्भर है। सिंकोना सक्सीरूब्रा लगभग छः वर्षोंमें नीची भूमि पर तैयार हो जाता है और ऊँची जमीन पर सिंकोना आफिसिनेलिस १०-१५ वर्ष लेता है।

फसल काटने की दो विधियाँ है। काई लगा कर, (Mossing), कतरकर (Coppicing), सन् १८६३ में मेक-ईवर ने यह मालूम किया कि सिकोनाके पेड़में यह गुण है कि एक बार छाल

उखाड़ लेने पर, इसमें फिर, दुबारा छाल निकल सकती है, यदि छाल निकाले हुए स्थानमें गीली काई लगा दी जाय। यद्यपि यह विधि नीलगिरिमें सफलीभूत हुई पर दार्जिलिंगमें इससे काम न चला क्योंकि वहां चोटियोंके आक्रमण ने इसमें बाधा डाली। दक्षिणी भारतमें भी यह सफल न हुई क्योंकि इसकी वजहसे वहांके पेड़ोंकी वृद्धि रुक गई।

समस्त भारतमें सामान्यतः जिस विधिका व्यवहार किया जाता है वह कतरन विधि है। इसमें पेड़की नीचे वाली शाखें काट दी जाती हैं और इन कटे हुए स्थानोंमेंसे नवीन शाखें निकलने दी जाती हैं। इसका लाभ यह है कि यह विधि कई बार दोहराई जा सकती है। यदि पेड़ बहुत पुराना न हो तो इसके मुख्य तनेसे प्रत्येक बार नई शाखें निकलती हैं।

छाल प्राप्त करनेके लिये सबसे उत्तम समय शीत ऋतु का है। छाल को आसानीसे उखाड़ने के लिये जगह जगह पर पड़े और खड़े, गड्ढे चीर दिये जाते हैं और फिर चाकू की सहायतासे छाल उकसा कर छुटा ली जाती है। छाल उखाड़नेके उपरान्त सुखानेके लिये बाड़ोंमें भेज दी जाती है जहाँ यह बांसोंकी पच्चटों पर सुखाई जाती है। जब यहाँ काफ़ी सूख जाती है, तो यह विशेष शुष्कालयोंमें भेजी जाती है जहाँ इसे १००° श के लगभग तापक्रम पर गरम करके सुखाया जाता है। इस प्रक्रियामें इसके रासायनिक गुणोंमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ने पाता है। अब यह कुनीन निकालनेके योग्य बन जाती है।

शुष्कालयोंमेंसे निकाल कर इसे अच्छी प्रकार पीसते हैं, और फिर इसे शेल तैल और सैन्धक क्षारके घोलके मिश्रणके साथ लोहेके बड़े कड़ाहोंमें उपयुक्त तापक्रम पर प्रभावित करते हैं। ऐसा करनेसे सिंकोनाके क्षारोद शेल तैलमें घुल जाते हैं, जिसे अब कड़ाहोंमें अलग कर लिया जाता है और फिर इसे गरम करते हैं। तैलको फिर गन्धकाम्ल के हलके घोलसे संचालित करते हैं। इस प्रकार पृथक् हुआ तैल बार बार प्रयोगमें आ सकता है। इस अम्लीय घोल को फिर गरम किया जाता है और सैन्धक क्षार द्वारा इसे शिथिल किया जाता है और फिर सीसा चढ़े हुए थालोंमें इसे ठण्डा होने दिया जाता है। ऐसा करनेसे कुनीन गन्धेतके अस्वच्छ रवे बैठने लगते हैं। इन्हें फिर शुद्ध किया जाता है और तदुपरान्त शुद्ध कुनीन गन्धेत को सुखाकर ठीक कर लिया जाता है। ज्वरनाशक सिंकोना आरम्भिक द्रवको ही नीरंग करनेके पश्चात् सैन्धक क्षार डाल कर प्राप्त किया जाता है। ऐसा करनेसे अवक्षेप प्राप्त होता है जिसे धोकर सुखा लिया जाता है और यही ज्वरनाशक सिंकोना (Cinchona febrifuge) कहलाता है।

नीलगिरिके पेड़ोंसे दो प्रकारकी छाल प्राप्त होती है, लाल और पीली। लाल छालमें यद्यपि अन्य क्षारोद तो बहुत होते हैं पर कुनीन कम होती है। पीली छालमें कुनीन अधिक होती है अतः यह कुनीनके व्यवसायके लिये अधिक मूल्यवान समझी जाती है।

छालसे जो कुछ भी प्राप्ति होती है वह या तो विदेशोंमें भेज दी जाती है या गवर्नमेण्ट द्वारा खरीद ली जाती है। गवर्नमेण्टके दो मुख्य कारखाने हैं, एक तो नीडू वातलाम—नीलगिरिमें और दूसरा मंगपू में। यहाँ कुनीन गन्धेत और ज्वरनाशक सिंकोना तैयार किया जाता है। मलेरिया ज्वरके इलाजके लिये भारतवर्षमें कुनीन की जितनी मांग होती है वह इन कारखानोंसे अधिकतर पूरी हो जाती है। भारतके प्रत्येक डाकखानेमें कुनीन गन्धेत बिकता है। यह या तो चूर्णरूपमें बंडलोंमें बेचा जाता है या ४-४ ग्रेन की २० गोलियोंके पैकटोंमें जिनके ऊपर 'ट्रीटमेण्ट्स' लिखा होता है। भारतमें कुनीन की मांग कितनी है यह निम्न अङ्कोंसे विदित हो जायगा—सन्

१६२७-१६२८ में सरकारी दफ्तरों, संस्थाओं और जनतामें अकेला कुनीन गन्धेत ३६२०४ रुपये ८ आने का बेचा गया और कुनीन गन्धेत, ज्वरनाशक सिंकोना आदि सब की बिक्री ५३८२०२ रुपया ५ आना ६ पाई की हुई। महायुद्धसे पहले लगभग डेढ़ लाख रुपये के मूल्य की ३०००० सेर छाल इङ्गलैण्डको भेजी जाती थी, पर १६१७-१८, १६१८-१६ और सन् १६२२-२३ में समस्त छाल को मद्रास गवर्नमेण्ट ने खरीद लिया और नैडू वालामें इससे ८००० सेर कुनीन निकाल कर बाहर भेजी गई जिससे केवल ७६८० रुपये ही प्राप्त हुए।

कुनीन और इसके लवण भी बाहरसे भारतमें आते हैं। १६२२-२३ में ४० हज़ार सेर कुनीन और १५० सेर छाल भारत में आई। इसमें बहुत सा अंश तो इङ्गलैण्ड और अमरीका का है पर जावासे भी कुनीन बहुत आती है।

बृटिश फार्माकोपियामें जिस सरकारी छालका उल्लेख है वह लाल छाल है। यह छाल लम्बे खुरदरे टुकड़ोंके रूपमें बिदेश से आती है, जिसका ऊपरका भाग भूरे रंगका और भीतरी भाग लाल रंगका होता है। इसको पीसनेसे लाल-भूरा निर्गन्ध चूर्ण प्राप्त होता है, जिसका स्वाद कटु तीक्ष्ण होता है। बृटिश फार्माकोपियाके अनुसार उस छालमें जिसको औषधियोंमें प्रयोग किया जा सकता है ५-६ प्रतिशत सब क्षारोद होने चाहिये, और इस अंशमें या आधा कमसे कम कुनीन और सिंकोनिदीनका भाग होना चाहिये। इस छालसे चार पदार्थ उपलब्ध किये जाते हैं—(१) जल निष्कर्ष जिसमें ५% सब क्षारोद रहते हैं। (२) अम्ल-निष्कर्ष (३) टिंक्चर जिसमें १% सब क्षारोद रहते हैं (४) यौगिक टिंक्चर जिसमें क्षारोदिक मात्रा साधारण टिंक्चर की आधी होती है। साधारण शक्ति-वर्धन और पौष्टिकके लिये इन पदार्थों का उपयोग किया जाता है।

सिंकोना छाल के पदार्थ

सिंकोना छालमें ५ क्षारोद होते हैं, (१) कुनीन, (२) कुनीदिन, $क_{२०} उ_{२४} नो_{२} ओ_{२}$। कुनीदिन कुनीनकी समरूपी है। दोनोंमें भेद यह है कि कुनीनके सूच्याकार रवे होते हैं पर कुनीदिनके त्रिपार्श्वाकार। कुनीदिन दक्षिण भ्रामक होती है, न कि कुनीनके समान वाम भ्रामक। यह अमोनिया में अनुघुल है। (केवल अमोनियाकी अत्यधिक मात्रामें ही घुल सकती है।) (३) सिंकोनीन, $क_{१९} उ_{२२} नो_{२} ओ$। कुनीन को दारौष सिंकोनीन कह सकते हैं अर्थात् कुनीन $क_{१९} उ_{२२}$ (ओ $कउ_{३}$) $नो^{२}$ ओ, में एक दारौष मूल-ओ $कउ_{३}$, अधिक होता है। इसके गन्ध और रंग रहित त्रिपार्श्वाकार रवे होते हैं, यह हरिन् जल और अमोनियाके साथ हरा रंग नहीं देती है जैसा कि कुनीन और कुनदिनके साथ होता है। यह दक्षिण भ्रामक है और इसमें चमक भी नहीं होती है। यह अमोनिया और ज्वलकमें बिलकुल अनघुल है। (४) सिंकोनी दिन—सिंकोनीनको केलील मद्यमें घुले हुए दाहक पांशुज क्षारके साथ उबालनेसे इसमें समरूपी परिवर्तन हो जाता है और सिंकोनीदिन प्राप्त होती है। यह वाम भ्रामक है, और ज्वलकमें थोड़ी सी घुलनशील है। इसमें हलकी चमक भी होती है।

जब लाल छालका हलके उदरिकाम्लके साथ निष्कर्ष निकाल कर छाना जाता है और निष्कर्षमें दाहक सैन्धक का घोल डाला जाता है तो कुनीन और कुनीदिन दोनों अवक्षेपित हो जाती हैं। इनको पृथक् छान कर छने घोलको उबालने पर सिंकोनीन का भी अवक्षेप आ जाता है। इसे भी पृथक् करनेके उपरान्त थोड़ा सा दाहक सैन्धक और डाल कर उबालनेसे सिंकोनीदिन भी अवक्षेपित हो जाती है। पीली छालमें ३% कुनीन होती है और कम पीली छालमें १०% सम्पूर्ण क्षारोद होते हैं पर इसमें कुनीन का अभाव रहता है। मुख्यतः इसमें सिंकोनीन और कुनीदिन ही होती है।

छाल एक अनुपयोगी क्षारोद, कौनकुनामिन, कुनिकाम्ल, क$_{७}$ उ$_{१२}$ ओ$_{६}$, और कुनोविकाम्ल भी होते हैं। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तैल भी होता है जिसके कारण छालमें भीनी भीनी महक आती है। इसमें सिंकोना-अरुण नामक हलका रंग भी होता है। इनके अतिरिक्त २°/॰ सिंको-टैनिकाम्ल भी जो टैनिकाम्लसे बहुत कुछ मिलता जुलता है, होता है। इसके कारण छालमें तीक्ष्ण स्वाद आ जाता है। सिंकोना का प्रयोग तीक्ष्ण प्रभावके लिये कभी नहीं किया जाता है।

सिंकोनीन रोगियोंमें बहुधा रोगोद्दीपक गुण उत्पन्न कर देती है। सिंकोनदिन और सिंकोनामिन में ये गुण और भी अधिक पाये जाते हैं। ऐपिलेप्सिस (एक प्रकार का मूर्छा रोग) से पीड़ित रोगीको इनकी थोड़ी सी ही मात्रा देनेसे रोगाक्रमण और शीघ्र होने लगते हैं। मलेरियाके लिये कुनीदिन उतनी ही शक्तिवान् है जितनी कुनीन। सिंकोनोदिनमें कुनीन को ½ शक्ति और सिंकोनीन में ½ से भी कम शक्ति है।

सिंकोना छालके क्षारोदोंमें कुनीन ही सबसे मुख्य पदार्थ है। सन् १८१० में लिस्बनके गोमेज़ ने क्षारोदोंका एक मिश्रण प्राप्त किया जिसका नाम उसने सिकोनो रखा। यह मिश्रण उसने छालके मद्यिक निष्कर्ष को जलसे प्रभावित करके दाहक पांशुज का घोल डाल कर प्राप्त किया था। इस मिश्रणसे पैलेटियर और कैवेण्टू ने कुनीन और सिंकोनीन पृथक् किये।

छालमें ये क्षारोद सिंकोटैनिक और कुनिकाम्ल से संयुक्त पाये जाते हैं। वायुके ओषदीकरणसे सिंकोटैनिकाम्ल सिंकोना-अरुणमें जो सक्सीरूब्रा जातिके पौधों का रंग होता है, परिवर्तित हो जाता है। वे छाल जैसे सिंकोना केलिसाया, आफिसिनेलिस, लेजिरियानी आदि, जिनमें यह रंग सापेक्षतः कम होता है, कुनीन निकालनेके लिये अच्छी समझी जाती हैं और इनसे रंग रहित कुनीन बड़ी सरलतासे निकल आती है। इसके निष्कर्ष की वास्तविक विधि गुप्त रखी गई है। भारतीय सरकार निम्न विधिसे ज्वरनाशक सिंकोना निकालती है। (इस विधिसे सम्पूर्ण क्षारोद नहीं प्राप्त होते)—पिसी हुई छालको उदहरिकाम्लसे अम्ल जल द्वारा संचालित करते हैं, और फिर दाहक सैन्धक डाल कर क्षारोद अवक्षेपित कर लिये जाते हैं। दूसरी विधि इस प्रकार है कि पिसी हुई छालको दूधिया चूनेसे मिश्रित करते हैं, और धीरे धीरे टार कर इसे सुखाते हैं और तदुपरान्त उबलते हुए मद्यसे संचालित करते हैं। बचे हुए मद्य को स्रवित करके पृथक् कर दिया जाता है। इस मद्यिक घोलमें फिर हलका गन्धकाम्ल डाला जाता है जिससे क्षारोद तो सब घुल जाते हैं पर रंग और चूनेके अवशिष्टांश पृथक् अवक्षेपित हो जाते हैं जिन्हें छान कर अलग कर दिया जाता है। तत्पश्चात् घोल का आंशिक स्फटिकीकरण करते हैं, ऐसा करनेसे कुनीन गन्धेतके रवे सबसे पहले पृथक् होने लगते हैं।

बाजारमें जो कुनीन आती है वह शिथिल गन्धेत, क$_{२०}$ उ$_{२४}$ नो$_{२}$ ओ$_{२}$ उ$_{२}$ गओ$_{४}$, ८उ$_{२}$ ओ, के रूपमें होता है। यह ७८० भाग ठंडे पानीमें १ भाग घुलनशील है, पर उबलते हुए ३० भाग पानी में १ भाग घुल जाता है। इसका भाग ६० भाग शोधित मद्यमें और ४० भाग मधुरनमें घुलनशील है। सैन्धक गन्धेत या मगनीस गन्धेत की विद्यमानतामें यह घुलन शीलता और भी कम हो जाती है, परन्तु अमोनियम हरिद् और अम्लोंको विद्यमानतामें यह बढ़ जाती है। दवामें देते समय घुलनशील बनानेके लिये इसमें नीबूइकाम्ल या हलका गन्धकाम्ल डाल देते हैं।

कुनीन गन्धेतका अम्लीय घोल हलका होने पर चमक (fluorescence) देता है, और दक्षिण-भ्रामक होता है। इसके घोलमें पहले हरिन् या अरुणिन् डाल कर अमोनिया डालनेसे सुन्दर

हरा रंग प्रकट होता है क्योंकि थैलियोकुन नामक एक यौगिक बन जाता है। इस विधिसे कुनीन हलकी मात्रामें भी पहचान ली जा सकती है। (२०००० भाग पानीमें १ भाग तक)। २ लाख भागमें पानी १ भाग कुनीन हो तो भी इसके अम्लीय घोलमें चमक दिखाई पड़ जावेगी। सिरकाम्लमें कुनीन गन्धेतके घोलमें नैलिन् का मद्यिक घोल डालनेसे हैरापैथाइट ४ कुनीन, ३ $उ_2$ ग $ओ_4$ ·२ उ नै $नै_2$ ·६ $उ_2$ओ, नामक यौगिक बनता है जिसमें टूरमेलिनके से प्रकाश-गुण होते हैं। यह यौगिक उबलते पानीके १०० भाग में १ भाग घुलनशील है, पर मद्यमें बहुत ही कम घुलनशील है। इस गुण के आधार पर कुनीन की भारात्मक परीक्षा की जाती है।

कुनीन और अन्य क्षारोदोंमें अन्तर—

(१) कुनीदिन कुनीनके समान होती है पर यह दक्षिण भ्रामक होती है (कुनीन वाम भ्रामक है)। इसका नैलिद जलमें बहुत ही अनघुल है।

(२) सिंकोनादिन का घोल वाम भ्रामक है पर इसमें चमक नहीं होती है और यह थैलियोकुन परीक्षा नहीं देती है।

(३) सिंकोनिन सिंकोनीदिनके समान है पर यह दक्षिण भ्रामक है।

बाजारके कुनीन गन्धेतमें बहुधा १-१०% तक सिंकोनीदिन गन्धेत होता है। इसकी जाँच करने के लिये इस गन्धेतके १ भाग को २४ भाग उबलते पानीमें घोलते हैं। ठण्डा होने पर कुनीन गन्धेत के रवे नीचे बैठ जाते हैं, और सिंकोनीदिन स्वच्छ घोलमें रह जाती है जिसमेंसे यह सैन्धक पांशुज द्मलेत डाल कर अवक्षेपित कर ली जा सकती है।

क्षारोदों का मूल्य अधिक होता है अतः सरकार ने सिंकोना छालसे एक ऐसे मिश्रण निकालने की आयोजना की जो सस्ता भी हो और कुनीनके समान गुणकारी भी हो। इसका नाम ज्वर नाशक-सिंकोना (सिंकोना-फ्रैब्रीफ्यूज) है। यह सस्ते मूल्यके सिंकोना-सक्सीरूब्रासे प्राप्त किया जाता है।

सिंकोना क्षारोदोंका एक मिश्रण कुनेटम (quinetum) नामसे आता है जिसमें मुख्यतः सिंकोनीदिन गन्धेत होता है, पर कुनीन और सिंकोनीन गन्धेत का भी कुछ अंश रहता है। यह कुनीनसे सस्ता बिकता है।

औषधियां

दवाओंमें इन क्षारोदोंको निम्नलवणोंके रूपमें बेचा जाता है—

(१) गन्धेत।

(२) उदहरिद, $क_{20}$ $उ_{24}$ $नो_2$ $ओ_2$. उह, २ $उ_2$ ओ। यह देखनेमें गन्धेतके समान होता है, यह जलके ४० भागमें घुलन शील है। अधिक घुलनशीलता होनेके कारण छोटी खुराकें देनेसे ही काम चल जाता है।

(३) अम्ल हरिद, $क_{20}$ $उ_{24}$ $नो_2$ $ओ_2$ २. उह. ३ $उ_2$ ओ। कुनीनके लवणोंमें यह सबसे अधिक उपयोगी है। इसका नीरंग रवेदार चूर्ण होता है जिसका १ भाग १ भाग जलमें घुलनशील है। इस क्षारोदके सब लवणोंकी अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है।

औषधिमें जिस कुनीनका व्यवहार किया जाता है उसमें ३% तक सिंकोनीदिन रहता है पर इसमें सिंकोनीन, कुनीदीन और कूप्रीनकी मात्रा न होनी चाहिये। औषधि तीन रूपोंमें विशेष बेची जाती है—(१)फेरी-एट-कुनीनाइ-साइट्रस। इसकी दस ग्रेनकी खुराकें पुष्टईमें दी जाती हैं। इसका सेवन बड़ा ही अरुचिकर होता है।

(२) पिल्यूले कुनीनाइ। इसके ६ में पांच भाग गन्धेत होता है।

(३) सीरपस-फेरी फोस्फेटिस-कम कुनीना—एट-स्ट्रिकनीना—(ईस्टनका सीरप)। इसकी प्रत्येक खुराकमें $\frac{1}{5}$ ग्रेन कुनीन होती है।

शारीरिक प्रभाव

बौनके प्रोफेसर बिञ्ज (Binz) ने इस विषय की भली प्रकार जांचकी है। कुनीनमें मलेरियाके कीटाणुओंको नष्ट करनेकी शक्ति विद्यमान है। यह निराघात त्वचा पर प्रभाव नहीं डालती है, कुनीन खाने पर उसके बहुत ज्यादा कड़वे होनेकी वजहसे लाला ग्रन्थि (Salivary gland) और आमाशयिक ग्रन्थि (Gastric gland) से परावर्तित क्रियासे एक प्रकारका रस (Secretion) निकलता है। इससे आमाशयिक श्लैष्मिक कला (Mucous membrane) उत्तेजित होती है इस वजहसे भूख बढ़ती है और खाना जल्दी हज़म होता है। इस प्रकार कुनीन एक पौष्टिकका काम करती है। कुनीनका शोषण (Absorption) आमाशय ही में होता है क्योंकि जब वह पक्वाशय (Duodenum) के क्षारीय रस से मिलती है तो उसका अवक्षेपण (Precipitation) हो जाता है।

कुनीनमें जो बुख़ार के रोकनेकी शक्ति है उसका कारण शायद यह है कि वह मद्य और प्रशिकाम्ल (Prussic acid) की तरह रक्तके ओषदीकरणको रोकती है, इस वजहसे ओषित कण रञ्जक तन्तु (Tissue) को भली भांति ओषजन नहीं दे पाता। कुनीनका रक्त संचार (Circulation of blood) पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। हां अगर बहुत ज्यादा कुनीन खाई जाय तो नब्ज धीमी चलने लगती है और रक्तका दबाव इतना कम हो जाता है कि मरने तककी नौबत आजाती है।

कुनीनका जो तापक्रम पर प्रभाव होता है वह बहुत ही महत्वका है। जब बुख़ार नहीं होता तो कुनीनका तापक्रम पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता मगर जब बुख़ार चढ़ा होता है तो रक्त ग्लोबिन (Haemoglobin) के स्थायी हो जानेकी वजहसे अकसर बुखार उतर जाता है। बुखार दो घंटे बाद उतरना शुरू होता है। कुनीन गन्धेतकी मात्रा ४० ग्रेन और अम्लहरिद की २५ ग्रेन दी जाती है।

मलेरियाके लिये कुनीन एक अकसीर औषधि है और उसके लिये १०-१५ ग्रेनकी खुराकें दिनमें तीन बार खिलाई जाती हैं। मलेरिया, तिजारी, चौथिया और उससे मिलते जुलते हर प्रकारके बुखारके इलाजमें एक बात ध्यानमें रखना चाहिये। कुनीन पेटमें पहुँचने पर खून में मिल जाती है और मलेरियाके कीड़ों (Haematozoon malariae) को खतम कर देती है। मगर जब बुखार चढ़ा होता है तो यह कीड़े प्रजननावस्था (Reproductive stage) में होते हैं और तब कुनीन उनको नहीं मार सकती। इसलिए बुखार चढ़े होने पर कुनीन खानेसे कोई फायदा नहीं। या तो बुखार आनेके एक या दो घंटे पहले तीस ग्रेन गंधेतकी एक खुराक खिला देनी चाहिये या बुखार उतर जाने पर चार चार घंटे बाद १० ग्रेन गन्धेत देना चाहिये। इलाज शुरू करनेसे पहले एक हलकी रेचक (Purgative) की खुराक दे देते हैं और दूसरे दिनसे कुनीन खिलाने लगते हैं। कुनीन पौष्टिक के तौर पर भी बहुत काम आती है। अगर मलेरिया न भी हो तो भी कुनीन न्यूरलजिया (Neuralgia) में फायदेमन्द है।

बहुधा लोगोंको कुनीन खानेसे एक बीमारी हो जाती है जिसे सिंकोन रोग (Cinchonism) कहते हैं। इससे रोगी बहरा हो जाता है मगर, कानोंमें घड़घड़ाहट होती है। शिरमें दर्द होता है, आंखोंसे धुँधला दिखाई देता है और पेटमें भी विकार हो जाता है। अगर किसीको बहुत सी कुनीन खिला दी जाय तो वह बहरा या अन्धा हो जाता है, उसकी नाकसे खून बहता है, बेहोशी आजाती है और मौत तक हो जाती है। अगर कुनीनके साथ १० बूंदें हलके उद-अरुणिकाम्ल (Hydrobromic acid dil.) की मिला कर खाया जाय तो कुनीन नुकसान नहीं करती।

षोडश अध्याय

दीर्घवृत्त (उत्तरार्ध)

[ले० गणितज्ञ]

१९७—दीर्घवृत्तके कुछ गुण—अब यहाँ दीर्घवृत्त के कुछ रेखागणित सम्बन्धी गुण दिये जावेंगे ।

कल्पना करो कि बिन्दु ब परकी स्पर्शरेखा य और र अक्षोंसे भ और भा बिन्दु पर मिलती है, और इस बिन्दु पर का अवलम्ब इन अक्षोंसे फ और फा बिन्दुओं पर मिलता है। नाभि स और सा से स्पर्शरेखा पर स म और सा मा लम्ब खींचो और न से भी एक लम्ब नर स्पर्शरेखा पर खींचो। इसके अतिरिक्त न से एक रेखा इ ए स्पर्शरेखाके समानान्तर खींचो। यह समानान्तर रेखा अवलम्बसे ए बिन्दु पर और ब की नाभि दूरी बस से इ पर मिलती है।

मान लो कि ब के युग्मांक (या, रा) हैं, अतः इस बिन्दु परकी स्पर्शरेखाका समीकरण यह है—

$$\frac{य\ या}{क^2}+\frac{र\ रा}{ख^2}=१ \cdots\cdots(१)$$

(१) गत सूक्त १९६ में सिद्ध किया जा चुका है कि न भ.न प=न अ^2=न आ^2। इसी प्रकार ब प.न भा=न ट^2

(२) यह भी सिद्ध किया गया था कि

न फ= उ^2.न प

(३) स फ=स न+न फ

$$=क\ उ+उ^2\ या$$

और फ सा=क उ−उ^2 या

$$अतः\ \frac{स\ फ}{फ\ सा}=\frac{क\ उ+उ^2\ या}{क\ उ-उ^2\ या}$$

$$=\frac{क+उ\ या}{क-उ\ या}=\frac{स\ ब}{सा\ ब}$$

अतः ब फ रेखा कोण सबसा को समद्विभाजित करती है।

(४) ब फ^2=फ प^2+ब प^2

$$=(न\ प-न\ फ)^2+ब\ प^2$$

$$=रा^2+या^2\ (१-उ^2)^2$$

$$\therefore ब\ फ=ख^2\sqrt{\frac{रा^2}{ख^4}+\frac{या^2}{क^4}}$$

$$तथा\ ब\ ए=न\ र=\frac{१}{\sqrt{\left(\frac{या^2}{क^2}+\frac{रा^2}{ख^2}\right)}}$$

(सूक्त ७० के अनुसार)

(चित्र नं० ६१)

$\therefore$ ब ए. ब फ = $ख^2$

(५) सूक्त १८७ के अनुसार त के प्रत्येक मान के लिये निम्न समीकरण द्वारा सूचित रेखा दीर्घवृत्त का स्पर्श करेगी :—

$$र = त य + \sqrt{क^2 त^2 + ख^2} \cdots\cdots (२)$$

अतः यदि स म और सा मा नाभियोंसे इस स्पर्शरेखा पर खींचे गये लम्ब हों, तो सूक्त ७० के अनुसार

$$स म = \frac{-त क उ + \sqrt{क^2 त^2 + ख^2}}{\sqrt{(१ + त^2)}}$$

$$तथा\ सा\ मा = \frac{त क.उ + \sqrt{क^2 त^2 + ख^2}}{\sqrt{(१ + त^2)}}$$

$$अतः\ स\ म.सा\ मा = \frac{क^2 त^2 + ख^2 - त^2 क^2 उ^2}{१ + त^2} = ख^2$$

(६) स बिन्दुसे सरलरेखा (२) पर खींचे गए लम्ब का समीकरण यह होगा :—

$$त र + य + उ क = ० \cdots\cdots (३)$$

बिन्दु म अर्थात् रेखा (२) और (३) के अन्तरखण्ड बिन्दु का बिन्दु-पथ निकालनेके लिये इन दोनों समीकरणोंमें से त का निराकरण करना चाहिये। ये समीकरण इस रूपमें लिखे जा सकते हैं—

$$र - त य = \sqrt{क^2 त^2 + ख^2}$$

$$और \quad त र + क = - क उ$$

इन समीकरणोंके दोनों ओर का वर्ग लेकर योग करने पर

$(य^2 + र^2)(१ + त^2) = क^2 त^2 + ख^2 + क^2 उ^2 = क^2 (१ + त^2)$

अतः म का बिन्दु पथ वह विक्षेप वृत्त है जिसका समीकरण $य^2 + र^2 = क^2$ है। इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि मा का बिन्दु-पथ भी यही विक्षेप वृत्त है।

१९८—उन स्पर्शरेखाओंके अन्तरखण्ड बिन्दु का बिन्दु-पथ निकालना जो परस्परमें लम्बरूप होती हैं—

दीर्घ वृत्तकी किसी स्पर्शरेखा का समीकरण यह है—

$$र = त य + \sqrt{त^2 क^2 + ख^2}$$

कोई स्पर्शरेखा जो इसके लम्ब रूप होगी उसका समीकरण यह होगा—

$$र = -\frac{१}{त} य + \sqrt{क^2 \left(-\frac{१}{त}\right)^2 + ख^2}$$

अतः यदि इन दोनोंके अन्तरखण्ड बिन्दुके युग्मांक (द, ध) हों तो

$$ध - त द = \sqrt{त^2 क^2 + ख^2} \cdots\cdots (१)$$

$$त ध + द = \sqrt{क^2 + त^2 ख^2} \cdots\cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) में त का निराकरण करनेसे हमें द और ध के बीचमें सम्बन्ध प्राप्त हो जायगा। इन समीकरणों का वर्ग करके योग करनेसे

$$(ध^2 + द^2)(१ + त^2) = (क^2 + ख^2)(१ + त^2)$$

अर्थात् $ध^2 + द^2 = क^2 + ख^2$

अतः (द, ध) बिन्दु का बिन्दु-पथ यह है—

$$य^2 + र^2 = क^2 + ख^2$$

अर्थात् यह बिन्दु पथ एक वृत्त है जिसका केन्द्र दीर्घवृत्तका केन्द्र है और व्यासार्ध उस सरल-रेखाकी लम्बाईके बराबर है जो दीर्घवृत्तके दीर्घाक्ष और लघु-अक्षको संयुक्त करती है। इस वृत्त को **प्रधान वृत्त** कहते हैं।

१९९—सिद्ध करो कि किसी बिन्दु ($य_१$, $र_१$) से दीर्घवृत्त पर सामान्यतः दो स्पर्श रेखायें खींची जा सकती हैं—

सूक्त १९० के अनुसार किसी स्पर्शरेखा का समीकरण यह है—

$$र = त य + \sqrt{क^2 त^2 + ख^2} \cdots (१)$$

यदि यह किसी बिन्दु ($य_१$, $र_१$) से होकर जाती है तो—

$र_1 - त य_1 = \sqrt{क^2 त^2 + ख^2}$

$\therefore र_1^2 + त^2 य_1^2 - 2 त य_1 र_1 = क^2 त^2 + ख^2$

$\therefore त^2 (य_1^2 - क^2) - 2 त य_1 र_1 + (र_1^2 - ख^2) = 0$ ......(२)

$य_1$ और $र_1$ के किसी मानके लिये यह समीकरण सामान्यतः वर्गात्मक है और त के दो मान (कालपनिक, वास्तविक अथवा पराच्छादित) हो सकेंगे और त के प्रत्येक मानके लिए एक एक स्पर्शरेखा होगी। अतः सामान्यतः दो स्पर्शरेखायें (कालपनिक, वास्तविक अथवा पराच्छादित) खींची जा सकती हैं।

समीकरण (२) के मूल वास्तविक और भिन्न होंगे यदि—

$य_1^2 र_1^2 - (य_1^2 - क^2) (र_1^2 - ख^2)$ धनात्मक हो,

अर्थात् यदि $ख^2 य_1^2 + क^2 र_1^2 - क^2 ख^2$ धनात्मक हो,

अर्थात् यदि $\frac{य_1^2}{क^2} + \frac{र_1^2}{ख^2} - 1$ धनात्मक हो,

अर्थात् यदि बिन्दु ($य_1, र_1$) दीर्घवृत्त के बाहर स्थित हो।

दोनों मूल परस्परमें बराबर होंगे यदि—

$ख^2 क_1^2 + क^2 य_1^2 - क^2 ख^2 = 0$

अर्थात् यदि $\frac{य_1^2}{क^2} + \frac{र_1^2}{ख^2} = 1$

अर्थात् यदि बिन्दु ($य_1, र_1$) दीर्घवृत्त की परिधि पर स्थित हो। इस अवस्था में दोनों स्पर्श रेखायें पराच्छादित होंगी। इसी प्रकार यदि

$$\frac{य_1^2}{क^2} + \frac{र_1^2}{ख^2} - 1$$

ऋणात्मक हो तो दोनों मूल कालपनिक होंगे अर्थात् यदि बिन्दु दीर्घवृत्तके भीतर स्थित हो तो दोनों स्पर्श रेखायें कालपनिक होंगी।

२००—बिन्दु ($य_1, र_1$) से खींची गई स्पर्श रेखाओं के संपर्क-चापकर्ण का समीकरण निकालना—दीर्घवृत्त पर स्थित किसी ब बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्श रेखाका समीकरण यह है—

$$\frac{य\, या}{क^2} + \frac{र\, रा}{ख^2} = 1$$

इसी प्रकार किसी बिन्दु भ (यि, रि) परकी स्पर्श रेखा का समीकरण यह होगा—

$$\frac{य\, यि}{क^2} + \frac{र\, रि}{ख^2} = 1$$

यदि ये दोनों स्पर्शरेखायें किसी बिन्दु प पर मिलें जिसके युग्मांक ($य_1, र_1$) हों तो यह बिन्दु दोनों स्पर्शरेखाओं पर स्थित होगा, अतः

$$\frac{य_1 या}{क^2} + \frac{र_1 रा}{ख^2} = 1 \quad ... \quad (1)$$

$$\frac{य_1 यि}{क^2} + \frac{र_1 रि}{ख^2} = 1 \quad ... \quad (2)$$

अतः बभ रेखाका समीकरण यह हुआ—

$$\frac{य_1 य}{क^2} + \frac{र_1 र}{ख^2} = 1 \quad ... \quad (3)$$

क्योंकि दोनों बिन्दु ब और भ समीकरण (३) द्वारा सूचित रेखा पर स्थित हैं अर्थात् इस समीकरण में ब के युग्मांक स्थापित करनेसे समीकरण (२) प्राप्त हो जाते हैं, अतः समीकरण (३) अभीष्ठ सम्पर्क चापकर्णका समीकरण है।

२०१—दीर्घवृत्त $\frac{य^2}{क^2} + \frac{र^2}{ख^2} = 1$ की अपेक्षासे बिन्दु ($य_1, र_1$) का ध्रुवीय (सूक्त ११३) निकालना—

कलपना करो कि बिन्दु ($य_1, र_1$) से खींचा गया कोई चापकर्ण दीर्घवृत्तसे प और फ बिन्दुओं पर मिलता है। मान लो कि इन प और फ बिन्दुओंसे खींची गई स्पर्श रेखायें उस बिन्दु पर मिलती हैं जिसके युग्मांक (द, ध) हैं।

क्योंकि प फ उन स्पर्श-रेखाओंका सम्पर्क चाप-कर्ण है जो (द, ध) बिन्दुसे खींची गई हैं अतः गत सूक्तके अनुसार इसका समीकरण यह होगा—

$$\frac{य\, द}{क^2} + \frac{र\, ध}{ख^2} = १$$

यह सरलरेखा बिन्दु ($य_1, र_1$) से भी हो कर जाती है है, अतः

$$\frac{य_1 द}{क^2} + \frac{र_1 ध}{ख^2} = १ \quad \cdots\cdots(१)$$

परिणाम (१) के उपयुक्त होनेके कारण बिन्दु (द, ध) स्पष्टतः निम्न समीकरण द्वारा सूचित रेखा पर स्थित है—

$$\frac{य_1 य}{क^2} + \frac{र_1 र}{ख^2} = १ \quad \cdots\cdots(२)$$

अतः समीकरण (२) बिन्दु ($य_1, र_1$) का अभीष्ट ध्रुवीय है।

उपसिद्धान्त—(१) नाभि (क उ, ०) का ध्रुवीय

$$\frac{य.\, क\, उ}{क^2} = १$$

अर्थात् $य = \frac{क}{उ}$

है। अर्थात् तत्सम्बन्धी नियत रेखा इसका ध्रुवीय है।

(२) जब बिन्दु ($य_1, र_1$) दीर्घवृत्तके बाहर हो तो ध्रुवीयका समीकरण वही होगा जो उस बिन्दुसे खींची गई स्पर्श रेखाओंके सम्पर्क चाप-कर्णका है।

यदि बिन्दु ($य_1, र_1$) दीर्घवृत्त पर स्थित है तो ध्रुवीय और स्पर्श रेखा एक ही होगी।

(३) सूक्त १५१ के समान यहाँ भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि किसी बिन्दु प का ध्रुवीय किसी दूसरे बिन्दु फ से हो कर जावे तो फ का ध्रुवीय प बिन्दुसे हो कर जावेगा।

२०२—किसी रेखा का य + खार + गा = ० के ध्रुवके युग्मांक निकालना—

कल्पना करो कि ($य_1, र_1$) इस रेखाका ध्रुव है। तो सरल रेखा

$$का\, य + खा\, र + गा = ० \quad \cdots(१)$$

और ($य_1, र_1$) का ध्रुवीय दोनों एक ही होंगे। ध्रुवीयका समीकरण यह होगा :—

$$\frac{य\, य_1}{क^2} + \frac{र\, र_1}{ख^2} - १ = ० \cdots(२)$$

समीकरण (१) और (२) की तुलना करने पर यह स्पष्ट है कि ध्रुवके युग्मांक ये हैं—

$$\left(\frac{-का\, क^2}{गा},\ -\frac{खा\, ख^2}{गा}\right)$$

२०३—उन युगल स्पर्शरेखाओंका समीकरण निकालना जो बिन्दु ($य_1, र_1$) से दीर्घवृत्त पर खींची जाती हैं—

कल्पना करो कि दीर्घवृत्त पर खींची गई किसी स्पर्श रेखा पर (द, ध) बिन्दु स्थित है। (द, ध) और ($य_1, र_1$) बिन्दुओंको संयुक्त करने वाली रेखाका समीकरण यह है।

$$र - र_1 = \frac{ध - र_1}{द - य_1}(य - य_1)$$

$$अतः \quad र = \frac{ध - र_1}{द - य_1} य + \frac{र_1 द - य_1 ध}{द - य_1} \ldots(१)$$

यदि यह रेखा दीर्घवृत्तका स्पर्श करे तो इसका समीकरण निम्नरूपका होगा—

$$र = त\, य + \sqrt{क^2 त^2 + ख^2} \quad \cdots\cdots(२)$$

अतः (१) और (२) की तुलना करने पर

$$त = \frac{ध - र_1}{द - य_1}$$

$$और \quad क^2 त^2 + ख^2 = \left(\frac{र_1 द - य_1 ध}{द - य_1}\right)^2$$

$$अतः \quad \left(\frac{र_1 द - य_1 ध}{द - य_1}\right)^2 = क^2\left(\frac{ध - र_1}{द - य_1}\right)^2 + ख^2$$

पर यह वह अवस्था है जब कि बिन्दु (द, ध) निम्न बिन्दु-पथ पर स्थित हो—

$$(र_1 य - य_1 र)^2 = क^2 (र - र_1)^2 + ख^2 (य - य_1)^2 \cdots\cdots(३)$$

यही अभीष्ट स्पर्श रेखाओंका समीकरण है। इसको इस रूपमें भी लिख सकते हैं :—

$$\left(\frac{य^२}{क^२}+\frac{र^२}{ख^२}-१\right)\left(\frac{य_१^२}{क^२}+\frac{र_१^२}{ख^२}-१\right)$$

$$=\left(\frac{य\,य_१}{क^२}+\frac{र\,र_१}{ख^२}-१\right)^२ \cdots(४)$$

२०४—दीर्घवृत्तके समानान्तर चापकर्णोंके मध्य-बिन्दुओंका बिन्दु-पथ निकालना।

कल्पना करो कि चापकर्ण य-अक्षसे जो कोण बनाते हैं उनका स्पर्श त है अतः उनमेंसे किसी चापकर्णका समीकरण यह है—

$$र=तय+ग \cdots\cdots\cdots(१)$$

जिसमें ग का मान भिन्न भिन्न चापकर्णोंके लिए पृथक् पृथक् है।

यह रेखा जिन बिन्दुओं पर दीर्घवृत्तसे मिलती है उन बिन्दुओंके भुज निम्न समीकरणसे प्राप्त हो सकते हैं—

$$\frac{य^२}{क^२}+\frac{(तय+ग)^२}{ख^२}=१$$

अर्थात् $य^२(क^२त^२+ख^२)+२\ क^२तगय$ $+क^२(ग^२-ख^२)=० \cdots\cdots(२)$

कल्पना करो कि इस वर्गात्मक समीकरणके मूल $य_१$ और $य_२$ हैं। मानलो कि इन मूलों द्वारा सूचित दो बिन्दुओं को संयुक्त करनेवाली रेखाके मध्य-बिन्दुके युग्मांक (द, ध) हैं।

अतः सूक्त २२ के अनुसार—

$$द=\frac{य_१+य_२}{२}=\frac{-क^२तग}{क^२त^२+ख^२}\ \cdots(३)$$

(समीकरण (३) के मूल उपयुक्त करने पर)

यह मध्यबिन्दु निम्न रेखा पर भी स्थित है—

$$ध=तद+ग \cdots\cdots\cdots(४)$$

समीकरण (३) और (४) में ग का निराकरण करनेसे—

$$द=-\frac{क^२त(ध-तद)}{क^२त^२+ख^२}$$

अर्थात् $ख^२द=-क^२तध\cdots\cdots(५)$

अतः बिन्दु (द, ध) सदा निम्न रेखा पर स्थित होगा—

$$ख^२य=-क^२तर$$

अर्थात् $र=-\dfrac{ख^२य}{क^२त}\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots(६)$

अतः अभीष्ट बिन्दुपथ निम्न रेखा है—

$$र=त_१य$$

जिसमें $त_१=-\dfrac{ख^२}{क^२त}$

अर्थात् $तत_१=-\dfrac{ख^२}{क^२}\ \cdots\cdots\cdots\cdots(७)$

२०५—व्यास—परिभाषा—दीर्घवृत्तके समानान्तर चापकर्णोंके मध्यबिन्दुओंके बिन्दुपथको व्यास कहते हैं और चापकर्णों को इसके द्विगुण-कोटि कहते हैं।

गत सूक्तके समीकरण (६) द्वारा स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यास दीर्घवृत्तके केन्द्रसे हो कर जाता है तथा समीकरण (७) से प्रकट है कि व्यास $र=त_१य$ उन सब चापकर्णोंको समद्विभाजित करता है जो व्यास $र=तय$ के समानान्तर हैं, यदि—

$$तत_१=-\frac{ख^२}{क^२}\ \cdots\cdots\cdots(१)$$

इस परिणामकी समतासे यह भी प्रत्यक्ष है कि इस अवस्थामें व्यास $र=तय$ उन सब चापकर्णों को समद्विभाजित करेगा जो व्यास $र=त_१य$ के समानान्तर होंगे।

इन युगल व्यासोंको प्रतिबद्ध व्यास कहते हैं अतः इनकी परिभाषा निम्न रूपमेंकी जा सकती है—

प्रतिबद्ध व्यास—परिभाषा—दो व्यास उस समय प्रतिबद्ध व्यास कहलाते हैं जब उन दोनोंमेंसे प्रत्येक व्यास उन सब चापकर्णोंको समद्विभाजित करता है जो दूसरे व्यासके समानान्तर हों।

अतः दो व्यास र=तय और र=त, य उस समय प्रतिबद्ध व्यास कहलावेंगे जब

$$तत_1 = -\frac{ख^2}{क^2}$$

२०६—किसी व्यासके सिरे पर खींची गई रेखा उन चापकर्णोंके समानान्तर होती है जिन्हें यह व्यास समद्विभाजित करता है—

कल्पना करो कि दीर्घवृत्त पर कोई बिन्दु (या, रा) है। इस बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा, मान लो कि, निम्न चापकर्णके समानान्तर है—

$$र = त य + ग \quad \cdots\cdots (१)$$

बिन्दु (या, रा) परकी स्पर्श रेखाका समीकरण यह होगा—

$$\frac{य या}{क^2} + \frac{र रा}{ख^2} = १ \quad \cdots\cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) समानान्तर रेखाओंके सूचक हैं, अतः—

$$त = -\frac{ख^2}{क^2} . \frac{या}{रा}$$

अर्थात् बिन्दु (या, रा) निम्न रेखा पर स्थित है—

$$र = -\frac{ख^2}{क^2 त} य$$

पर, सूक्त २०४ के अनुसार यह समीकरण उस व्यासका सूचक है जो चापकर्ण र=तय+ग को तथा इसके समानान्तर अन्य चापकर्णोंको समद्विभाजित करता है।

उपसिद्धान्त—यह स्पष्ट ही है कि दोनों प्रतिबद्ध व्यास इस प्रकार स्थित हैं कि एकके सिरे परकी स्पर्श रेखा दूसरे व्यासके समानान्तर है। इस प्रकार एक प्रतिबद्ध व्यास ज्ञात होने पर दूसरे व्यासकी स्थिति भी ज्ञात हो जाती है।

२०७—किसी चापकर्णके सिरे पर खींची गई स्पर्श रेखायें उस व्यास पर मिलती हैं जो इस चापकर्ण को समद्विभाजित करता है—

कल्पना करो कि चापकर्णका समीकरण यह है—

$$र = तय + ग \quad \cdots\cdots (१)$$

मानलो कि इसके सिरों पर खींची गई स्पर्श-रेखायें बिन्दु (द, ध) पर मिलती हैं। क्योंकि यह चापकर्ण बिन्दु (द, ध) से खींची गई स्पर्श-रेखाओंका सम्पर्क चापकर्ण है अतः सूक्त २०० के अनुसार इसका समीकरण यह है—

$$\frac{यद}{क^2} + \frac{र ध}{ख^2} = १ \quad \cdots\cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) एक ही सरल रेखाके सूचक हैं अतः—

$$त = -\frac{ख^2}{क^2} . \frac{द}{ध}$$

अतः (द, ध) बिन्दु निम्न रेखा पर स्थित है—

$$र = -\frac{ख^2}{क^2 त} . य$$

यह समीकरण सूक्त २०४ के अनुसार उस व्यासका सूचक है जो दिये हुए चापकर्णको समद्विभाजित करता है। अतः (द, ध) बिन्दु इस व्यास पर स्थित है।

२०८—यदि युगल प्रतिबद्ध व्यासोंके उत्केन्द्र कोण फ° और फा° हों, तो फ° और फा° के बीचका अन्तर एक समकोण होगा।

जिस बिन्दुका उत्केन्द्र कोण फ° है उसके युग्मांक (क कोज्याफ, ख ज्याफ) हैं अतः इस बिन्दुको मूल बिन्दु (दीर्घवृत्तके केन्द्र) से संयुक्त करनेवाली रेखाका समीकरण यह होगा—

$$र = य . \frac{ख}{क} स्पर्श फ \quad \cdots\cdots (१)$$

इसी प्रकार दूसरे बिन्दुको जिसका उत्केन्द्र कोण फा° है मूल बिन्दुसे संयुक्त करने वाली रेखा यह होगी—

$$र = य . \frac{ख}{क} स्पर्श फा \quad \cdots\cdots (२)$$

ये दोनों व्यास प्रतिबद्ध होंगे यदि सूक्त २०५ के अनुसार—

$$\frac{ख^2}{क^2} \text{स्पर्श फ. स्पर्श फा} = -\frac{ख^2}{क^2}$$

अर्थात् यदि स्पर्श फ = – कोटि स्पर्श फा = स्पर्श (फा ± ६०°)

अर्थात् यदि फ° – फा° = ± ६०

२०९—सिद्ध करना कि दो प्रतिबद्ध व्यासार्धोंके वर्गोंका योग स्थिर रहता है—

कल्पना करो कि दो प्रतिबद्ध व्यासोंके सिरे ब और द है और ब का उत्केन्द्रकोण फ° है, तो गत सूक्तके अनुसार द का उत्केन्द्र कोण (फ ± ६०)° होगा।
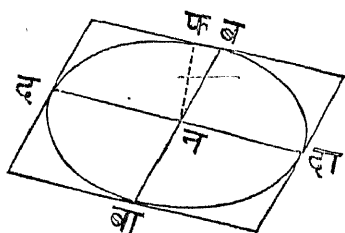
(चित्र नं० ६२)

ब के युग्मांक (क कोज्या फ, ख ज्याफ) होंगे और द के युग्मांक [क कोज्या (फ ± ६०), ख ज्या (फ ± ६०)] होंगे।

न मूल बिन्दु (०,०) है अतः

$$न ब^2 = क^2 \text{ कोज्या}^2 फ + ख^2 \text{ ज्या}^2 फ$$

तथा $$द न^2 = क^2 \text{ कोज्या}^2 (फ \pm ६०) + ख^2 \text{ ज्या}^2 (फ \pm ६०)$$

$$\therefore न ब^2 + द न^2 = क^2 + ख^2 = \text{स्थिर मात्रा}$$

२१०—उस समानान्तर चतुर्भुजका क्षेत्रफल स्थिर रहेगा जो प्रतिबद्ध व्यासोंके सिरों पर दीर्घवृत्तको स्पर्श करता है।

कल्पना करो कि गत सूक्तके चित्रमें द न दा और बनबा प्रतिबद्ध व्यास हैं। उस समानान्तर चतुर्भुजका क्षेत्रफल जो दीर्घवृत्त को द, दा, ब, बा बिन्दुओं पर स्पर्श करता है

$$४ \text{ न ब. न द. ज्या ब न द}$$

है अर्थात् क्षेत्रफल = ४ न द. न फ

यदि न फ बिन्दु न से ब परकी स्पर्श रेखा पर लम्ब हो।

यदि ब का उत्केन्द्र कोण फ° हो तो द का उत्केन्द्र कोण (फ ± ६०)° है।

$$\therefore न द^2 = क^2 \text{ कोज्या}^2 (फ \pm ६०) + ख^2 \text{ ज्या}^2 (फ \pm ६०)$$

$$\therefore न द^2 = क^2 \text{ ज्या}^2 फ + ख^2 \text{ कोज्या}^2 फ \quad \cdots\cdots\cdots (१)$$

ब परकी स्पर्शरेखा का समीकरण सूक्त १६२ के अनुसार यह होगा—

$$\frac{य}{क} \text{कोज्या फ} + \frac{र}{ख} \text{ज्या फ} = १$$

$$\therefore न फ^2 = \frac{१}{\frac{\text{कोज्या}^2 फ}{क^2} + \frac{\text{ज्या}^2 फ}{ख^2}}$$

(सूक्त ७० के अनुसार)

$$न फ^2 = \frac{क^2 ख^2}{क^2 \text{ज्या}^2 फ + ख^2 \text{कोज्या}^2 फ} \quad \cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) से स्पष्ट है कि समानान्तर चतुर्भुजका क्षेत्रफल ४ क ख है जो कि एक स्थिर मात्रा है।

२११—किसी बिन्दुकी नाभि-दूरियों का गुणनफल उस व्यासार्धके वर्गके बराबर होता है जो उस बिन्दुसे खींची गई स्पर्शरेखा के समानान्तर है।

यदि दिये हुए बिन्दुका उत्केन्द्र कोण फ° है तो सूक्त १७६ के अनुसार

$$स ब = क + क उ \text{ कोज्या फ}$$

तथा $$सा ब = क - क उ \text{ कोज्या फ}$$

$$\therefore स ब. सा ब = क^2 - क^2 उ^2 \text{ कोज्या}^2 फ$$

$= क^2 - (क^2 - ख^2)$ कोज्या^{2}फ
$= क^2$ ज्या^{2} फ $+ ख^2$ कोज्या^{2} फ
$=$ न द^2

२१२—सम-प्रतिबद्ध व्यास*—कल्पना करो कि ब और द दो सम-प्रतिबद्ध व्यासों के सिरे हैं, अतः न ब^2 = न द^2

यदि ब का उत्केन्द्र कोण फ° हो तो

$क^2$ कोज्या^{2} फ $+ ख^2$ ज्या^{2} फ
$= क^2$ ज्या^{2} फ $+ ख^2$ कोज्या^{2} फ
∴ स्पर्श फ = १

अर्थात् फ° = ४५° या १३५°

अतः न ब का समीकरण यह हुआ—

$$र = य.\frac{ख}{क} \text{स्पर्श फ}$$

$$\text{अर्थात् } र = \pm य.\frac{ख}{क} \cdots\cdots\cdots (१)$$

तथा न द का समीकरण यह है—

$$र = - य\frac{ख}{क}\text{कोटि स्पर्श फ}$$

$$\text{अर्थात् } र = \mp य\frac{ख}{क}$$

अर्थात् अ, आ, ट और टा पर की स्पर्शरेखाओं को भुजायें मान कर एक आयत बनाया जाय तो समीकरण (१) और (२) द्वारा सूचित रेखायें इस आयतके कर्ण होंगी।

२१३—पूरकचापकर्ण—परिभाषा—वे चापकर्ण पूरक चापकर्ण कहे जाते हैं जो दीर्घवृत्त परके किसी बिन्दु ब को इसके किसी व्यासके सिरे र, रा से संयुक्त करते हैं।

२१४—सिद्ध करो कि पूरक चापकर्ण प्रतिबद्ध व्यासोंके समानान्तर होते हैं—

कल्पना करो कि ब बिन्दु का उत्केन्द्र कोण फ° है और र तथा रा के उत्केन्द्र कोण क्रमानुसार $फ_१$° और १८०° + $फ_१$° हैं।
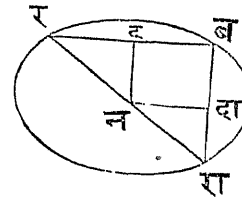
(चित्र नं० ६३)

बर का समीकरण सूक्त १८६ के अनुसार यह होगा—

$$\frac{य}{क}\text{कोज्या }\frac{फ+फ_१}{२} + \frac{र}{ख}\text{ज्या }\frac{फ+फ_१}{२}$$
$$= \text{कोज्या }\frac{फ-फ_१}{२} \cdots\cdots (१)$$

तथा ब रा का समीकरण इसी प्रकार यह है—

$$\frac{य}{क}\text{कोज्या}\frac{फ+फ_१+१८०}{२} + \frac{र}{ख}\text{ज्या}\frac{फ+फ_१+१८०}{२}$$
$$= \text{कोज्या }\frac{फ-फ_१-१८०}{२}$$

$$\text{अर्थात्} - \frac{य}{क}\text{ज्या }\frac{फ+फ_१}{२} + \frac{र}{ख}\text{कोज्या }\frac{फ+फ_१}{२}$$
$$= \text{ज्या }\frac{फ-फ_१}{२} \cdots\cdots\cdots (२)$$

$$\text{समीकरण (१) का ``त''} = -\frac{क}{ख}\text{कोटिस्पर्श}\frac{फ+फ_१}{२}$$

$$\text{समीकरण (२) का ``त''} : \frac{ख}{क}\text{स्पर्श }\frac{फ+फ_१}{२}$$

$$\text{इन ``त'' ओं का गुणनफ} = -\frac{ख^2}{क^2}$$

अतः सूक्त २०५ के अनुसार सरल रेखायें बर और ब रा प्रतिबद्ध व्यासों के समानान्तर हैं।

*बराबर लम्बाईके दो प्रतिबद्ध व्यास सम-प्रतिबद्ध व्यास कहलाते हैं।

२१५—यदि युगल प्रतिबद्ध व्यासोंको अक्ष माना जाय तो इनकी अपेक्षासे दीर्घवृत्तका समीकरण निकालना—

दीर्घाक्ष और लघु-अक्ष की अपेक्षासे दीर्घवृत्तका समीकरण यह है—

$$\frac{य^2}{क^2}+\frac{र^2}{ख^2}=१ \cdots\cdots (१)$$

यदि युगल प्रतिबद्ध व्यासों को अक्ष माना जाय तो भी मूलबिन्दु पूर्ववत् ही स्थित रहेगा अतः सूक्त ६१ के अनुसार य और र के स्थानमें द य+ तर और दा य+तारके रूपके मान स्थापित किये जा सकते हैं। अतः दीर्घवृत्त का समीकरण इस रूपका हो जायगा—

$$कि\, य^2+२\, ढि\, यर+खि\, र^2=१ \cdots (२)$$

अनुमानतः यह स्पष्ट है कि य—अक्ष उन सब चापकर्णोंको समद्विभाजित करता है जो र-अक्षोंके समानान्तर हैं अतः समीकरण (२) से य के किसी मानके लिये र के तत्सम्बन्धी दो बराबर पर भिन्न धनर्ण संकेतवाले मान मिलेंगे अतः ढि=०। इस प्रकार समीकरणका रूप यह हो जायगा—

$$कि\, य^2+खिर^2=१ \cdots\cdots (३)$$

य और र अक्षोंमें से वक्र द्वारा काटे हुए (का, खा,) भागों को निकालने के लिये क्रमशः य=० और र=० समीकरण (३) में रखने होंगे।

$$अतः\ कि\ का^2=१=खि\ खा^2$$

अतः युगल प्रतिबद्ध व्यासोंकी अपेक्षा दीर्घवृत्त का अभीष्ट समीकरण यह हुआ—

$$\frac{य^2}{का^2}+\frac{र^2}{खा^2}=१$$

जिसमें का और खा व्यासार्धोंकी लम्बाइयां हैं।

उपसिद्धान्त—(१) यदि समप्रतिबद्ध व्यासोंको अक्ष माना जाय तो का=खा, अतः इस अवस्थामें दीर्घवृत्त का समीकरण निम्न होगा—

$$य^2+र^2=का^2$$

(२) सूक्त १८६ के समान इस सूक्तमें निकाले गये दीर्घवृत्त की स्पर्शरेखा का समीकरण यह होगा—

$$\frac{य\,या}{का^2}+\frac{र\,रा}{खा^2}=१$$

इसी प्रकार ध्रुवीय आदि का भी समीकरण निकाला जा सकता है।

२१६—सिद्ध करना कि सामान्यतः किसीबिन्दुसे दीर्घवृत्त पर चार अवलम्ब खींचे जा सकते हैं और उनके पदोंके उत्केन्द्र कोणोंका योग दो समकोणों का विषम गुणक होता है।

किसी बिन्दु पर का अवलम्ब जिसका उत्केन्द्र कोण फ° है यह होगा—

$$\frac{क\,य}{कोज्या\,फ}-\frac{ख\,र}{ज्या\,फ}=क^2-ख^2=क^2\,उ^2$$

यदि यह अवलम्ब बिन्दु (द, ध) से होकर जावे तो—

$$\frac{क\,द}{कोज्या\,फ}-\frac{ख\,ध}{ज्या\,फ}=क^2\,उ^2 \cdots\cdots (१)$$

दिये हुए बिन्दु (द, ध) के लिये यह समीकरण उन अवलम्बोंके पदोंके उत्केन्द्र कोणोंको प्राप्त कराता है जो (द, ध) बिन्दुसे होकर जाते हैं।

कल्पना करो कि $स्पर्श\,\frac{फ}{२}=ट$

$$अतः\ कोज्याफ=\frac{१-स्पर्श^2\frac{फ}{२}}{१+स्पर्श^2\frac{फ}{२}}=\frac{१-ट^2}{१+ट^2}$$

$$और\ \ ज्याफ=\frac{२\,स्पर्श\frac{फ}{२}}{१+स्पर्श^2\frac{फ}{२}}=\frac{२\,ट}{१+ट^2}$$

समीकरण (१) में इन मानोंको स्थापित करने से—

$$क\,द.\frac{१+ट^2}{१-ट^2}-ख\,ध\,\frac{१+ट^2}{२\,ट}=क^2\,उ^2$$

अर्थात्

$$ख घ ट^{४} + २ ट^{३} (कद + क^{२} उ^{२}) + २ ट (कद - क^{२} उ^{२}) - खघ = ० \quad \cdots (२)$$

कल्पना करो कि इस समीकरणके मूल $ट_{१}$, $ट_{२}$, $ट_{३}$ और $ट_{४}$ हैं।

अतः समीकरण-सिद्धान्तके अनुसार—

$$ट_{१} + ट_{२} + ट_{३} + ट_{४} = -२ \frac{कद + क^{२} उ^{२}}{खघ} \quad \cdots (३)$$

$$ट_{१} ट_{२} + ट_{१} ट_{३} + ट_{१} ट_{४} + ट_{२} ट_{३} + ट_{२} ट_{४} + ट_{३} ट_{४} = ० \quad \cdots (४)$$

$$ट_{२} ट_{३} ट_{४} + ट_{३} ट_{४} ट_{१} + ट_{४} ट_{१} ट_{२} + ट_{१} ट_{२} ट_{३} = -२ \frac{कद - क^{२} उ^{२}}{ख घ} \quad \cdots (५)$$

तथा $ट_{१} ट_{२} ट_{३} ट_{४} = -१ \quad \cdots\cdots (६)$

अतः त्रिकोण मितिके सिद्धान्तानुसार—

$$स्पर्श \left(\frac{फ_{१}}{२} + \frac{फ_{२}}{२} + \frac{फ_{३}}{२} + \frac{फ_{४}}{२} \right) = \frac{स_{१} - स_{३}}{१ - स_{२} + स_{४}} = \frac{स_{१} - स_{३}}{०} = \infty$$

$$\therefore \quad \frac{फ_{१} + फ_{२} + फ_{३} + फ_{४}}{२} = न\pi + \frac{\pi}{२}$$

$$\therefore \quad फ_{१} + फ_{२} + फ_{३} + फ_{४} = (२ न + १)\pi$$

= २ समकोणोंके विषम गुणक

उदाहरण माला ११

(१) निम्न दीर्घवृत्तोंकी उत्केन्द्रतायें और नाभिके युग्मांक निकालो—

(क) $२ य^{२} + ३ र^{२} = १$

उत्तर $\frac{१}{\sqrt{३}}$, $\left(\pm \frac{१}{\sqrt{६}}, ० \right)$

(ख) $८ (य - १)^{२} + ६ (र + १)^{२} = १$

[उत्तर $\frac{१}{२}$, $(१, - १ \pm \frac{१}{१२} \sqrt{६})$

(२) केन्द्रकी अपेक्षासे उस दीर्घवृत्तका समीकरण क्या होगा

(क) जिसका ऊर्ध्वभुज ५ है और उत्केन्द्रता $\frac{२}{३}$

(ख) जिसकी नाभियाँ (४, ०) और (−४, ०) हैं और उत्केन्द्रता $\frac{१}{३}$ है।

[उत्तर (क) $२० य^{२} + ३६ र^{२} = ४०५$

(ख) $८ य^{२} + ९ र^{२} = ११५२$

(३) निम्न दीर्घवृत्तोंके ऊर्ध्वभुज निकालो—

(क) $य^{२} + ३ र^{२} = क^{२}$ [उत्तर $\frac{२ क}{३}$

(ख) $९ य^{२} + ५ र^{२} - ३० र = ०$ [उत्तर $\frac{१०}{३}$

(४) सिद्ध करो कि $र = य + \sqrt{\frac{५}{६}}$ रेखा $२ य^{२} + ३ र^{२} = १$ दीर्घवृत्तका स्पर्श करती है।

(५) $४ य^{२} + ९ र^{२} = २०$ दीर्घवृत्तके $(१, \frac{४}{३})$ बिन्दुपरकी स्पर्श रेखा और अवलम्बके समीकरण निकालो।

[उत्तर $य + ३ र = ५$, $९ य - ३ र = ५$

(६) बताओ कि बिन्दु (२, १) निम्न दीर्घ-वृत्तके अन्दर है या बाहर—

$$२ य^{२} + ३ र^{२} = १२$$

(७) $\frac{य^{२}}{क^{२}} + \frac{र^{२}}{ख^{२}} = १$ दीर्घवृत्तकी ऐसी स्पर्श रेखाओंके समीकरण बताओ जो अक्षोंके बराबर भाग काटती हों।

[उत्तर $य \pm र \pm \sqrt{(क^{२} + ख^{२})} = ०$

(८) दीर्घवृत्तके किसी बिन्दु ब से अक्ष पर ब न एक लम्ब खींचो और इसको किसी बिन्दु भ तक इस प्रकार बढ़ाओ कि नभ = बस, (स नाभि है)। सिद्ध करो कि भ का बिन्दु पथ निम्न दो रेखायें होंगी—

$$र \pm उ य + क = ०$$

(९) दीर्घवृत्त $४ य^{२} + ७ र^{२} = ८$ की अपेक्षासे $(-\frac{१}{२}, १)$ का ध्रुवीय और सरल रेखा $१२ य + ७ र + १६ = ०$ का ध्रुव निकालो—

[उत्तर $२ य - ७ र + ८ = ०$; $(-\frac{३}{२}, -\frac{१}{२})$

(१०) सिद्ध करो कि व्यास $र + ३ य = ०$ और $४ र - य = ०$ निम्न दीर्घवृत्तके प्रतिबद्ध व्यास हैं:—

$$३ य^{२} + ४ र^{२} = ५$$

नोबेल पुरस्कार और भौतिक-शास्त्रके महर्षि [४]

[ले० श्रीश्यामनारायण शिवपुरी, बी० एस-सी० (आनर्स) तथा श्रीहीरालाल दुबे, एम० एस-सी०]

लवे (LAUE)

(१८७९--जीवित)

प्रोफेसर मेक्सवान लवे (Max von Laue) उन थोड़ेसे वैज्ञानिकोंमें हैं जिन्होंने अपने विचारोंकी मौलिकता, अपूर्व बुद्धि और कुशलतासे मनुष्य जातिकी ज्ञान वृद्धिकी राह सरल कर दी है। ५ जून १९१४ को प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर विलियम एच० ब्रेगने एक व्याख्यान देते हुए कहा था—"दो वर्ष व्यतीत हुए कि डाक्टर लवेने चमत्कारिक आविष्कार किया। उसने दिखलाया कि जब रवों (Crystals) से रौञ्जन किरणें प्रवाहितकी जाती हैं तब व्यतिकरण प्रभाव (Interference effects) उत्पन्न होते हैं। इस महत्वपूर्ण प्रयोगसे कईयोंका रास्ता खुल गया और बहुतसा सिद्धान्तिक तथा प्रयोगिक कार्य इस क्षेत्रमें होने लगा है·········अब भी इतना कार्य है कि कई आविष्कारक इस ओर अपनी शक्ति लगा सकते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि जितना कार्य हमारे सामने है इससे कहीं अधिक कार्य विज्ञानके इस भागमें हो सकता है। जब हम इस नवीन विषयके विस्तार, उसके आविष्कारोंकी मात्रा और श्रेष्ठता तथा सिद्धान्तोंके महत्वका विचार करते हैं तो ऐसा कहनेमें कुछ अत्युक्ति न होगी कि लवेके प्रयोगसे एक नए विज्ञान की उत्पत्ति हो गई है"।

ब्रैगने ऊपर लिखे हुए शब्द उस समय कहे थे जब लवेको नोबेल पुरस्कार प्राप्त नहीं हुआ था और नोबेल कमेटीने यह पुरस्कार १९१४ में उसे देकर अपनी दूरदर्शिता प्रदर्शितकी।

प्रोफेसर मेक्स वान लवेकी जन्मभूमि जर्मनीमें कोबलेञ्जके निकट फेफेनडार्फ (Pfaffendorf) में है। उसका जन्म ९ अक्तूबर १८७९ में हुआ था। उसने स्ट्रासवर्ग, म्यूनिच और बर्लिन विश्वविद्यालयोंमें विद्याध्ययन किया। १९१२ में वह ज्यूरिच (Zurich) विश्वविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुआ और वहां से उसने अपने अन्वेषण प्रकाशित किए। इसके पश्चात् वह फ्रेंकफोर्ट विश्वविद्यालय गया और सन् १९१९ से वह बर्लिन विश्वविद्यालयमें सिद्धान्तिक भौतिकशास्त्रका प्रोफेसर है।

रौञ्जनने १८९६ में एक्स-रेज़ (रौञ्जन-किरण) का आविष्कार किया और बहुत जल्द यह ज्ञात होगया कि इन किरणोंमें आवर्जन (refraction) नहीं होता। शुस्टर (Schuster) ने आवर्जन न होनेका कारण यह दिया कि इन किरणोंकी लहर लंबाई बहुत कम है और इसलिए आवर्जन नहीं होता। लवेने विचार किया कि रवेमें परमाणुओं के निश्चित क्रम-विधान (Regular arrangement) होनेके कारण वह वर्तक ग्रेटिंग (Diffraction grating) का काम दे सकते हैं। इसमें हरएक परमाणु किरणोंका परिक्षेपण करेगा और इससे पैदा हुई छोटी छोटी लहरें आपसमें व्यतिकृत होंगी जिससे कुछ दिशाओंमें वे एक दूसरेको उत्तेजित (Reinforce) करेंगी और दूसरी दिशाओंमें एक दूसरेको नष्ट करेंगी। इस कारण यदि किसी रवेमें होकर मृदु रौञ्जन किरणोंका समूह प्रवाहित किया जावे तो दूसरी ओर चित्रपट पर व्यतिकरण-प्रदर्शक विशेष धब्बे मिलेंगे।

लवे एक गणितज्ञ है, इस कारण उसने अपने आविष्कार-सहायक, फ्रेडरिच (Friedrich) और क्रिपिंग (Kripping) से इस सिद्धान्तकी सत्यताको जांचनेके लिये प्रार्थनाकी और उन्होंने प्रयोगों द्वारा इस सिद्धान्तको बड़ी कुशलतासे सिद्ध कर दिया। बादमें डबल्यू० एल० ब्रेग (W. L. Bragg) ने रवोंकी बनावटके अध्ययन करनेमें लवेके चित्रोंका उपयोग किया था।

विलियम हेनरी ब्रेग
(W. H. BRAGG)
(१८६२—जीवित)

१६१५ का पुरस्कार पिता और पुत्रके बीच विभाजित किया गया। पिता सर डबल्यू० एच० ब्रेग और पुत्र डबल्यू० एल० ब्रेग थे।

सर विलियमने लवेके आविष्कारके संबन्धमें कहा था—"इस महत्वपूर्ण प्रयोगसे कईयोंका रास्ता खुल गया और बहुत सा सैद्धान्तिक तथा प्रयोगिक कार्य इस क्षेत्रमें होने लगा"। वास्तवमें लवे के कार्यसे एक नया विषय खुल गया जिसमें दोनों ब्रेग, मोज़ले (Moseley), बार्कले (Barkla) आदिने कार्य किया है।

सर विलियम हेनरी ब्रेग (Sir William Henry Bragg) का जन्म २ री जुलाई १८६२ में हुआ था। उसका विद्याध्ययन किंग विलियमस् कालेज, आईल आफ मेन (Isle of man) और इसके पश्चात् ट्रिनीटी कालेज केमब्रिजमें हुआ। वह १८८६ में केवल २६ वर्षकी उम्रमें आस्ट्रेलियाके एडीलेड (Adelaide) विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्रोफेसर नियुक्त हुआ। १६०८ में वह आस्ट्रेलियासे वापिस आया और लीड्स (Leeds) विश्वविद्यालयमें केविंडिश प्रोफेसरके पद पर शोभित हुआ। ब्रेग उत्साही आविष्कारक था परन्तु वह आस्ट्रेलियामें अधिक कार्य न कर सका क्योंकि वहां पर उसे नवीन अन्वेषणोंके संबन्धमें कुछ भी मालूम न होता था और वह अपने समयके बड़े बड़े वैज्ञानिकोंसे मिलजुल भी न सकता था। इस कारण वह बड़ा भाग्यशाली था कि उसे लीड्समें यह पद मिल गया और वहां पर वह अपना कार्य बिना किसी अड़चन तथा परिश्रमके साथ करने लगा। वह १६१५ में भौतिकशास्त्रका प्रोफेसर होकर लंदन विश्वविद्यालयमें आ गया। १६२३ में वह रायल इन्स्टीट्यूट लंदनमें रसायनशास्त्रका फुलेरियन (Fullerian) प्रोफेसर नियुक्त हुआ और डेवी-फेरेडे अन्वेषण प्रयोगशालाका डाईरेक्टर भी है।

श्रीमती क्यूरीने सर्व प्रथम यह देखा कि किसी भी गैससे एलफा कण सीधे प्रवाहित होते हैं, और इस अवस्थामें उनकी शक्ति भी कम होती जाती है अन्तमें उनका वेग इतना शिथिल हो जाता है कि वे संघर्षणसे गैसको यापित (Ionize) नहीं कर सकते। ब्रेगने विचारा कि यदि एलफा किरणें करीब करीब समानान्तर प्राप्त हो जावें तो प्रति इकाई लंबाईके यापनसे मालूम हो जावेगा कि केवल एक एलफा कणकी यापन शक्ति अपने पथमें किस अंशमें कम होती है। उसने एलफा किरणोंके कई भागोंमें यापनको नापा और देखा कि वह पहले प्रति इकाई लंबाई बढ़ता है, फिर अधिकतम होता है और फिर जल्दीसे शून्य हो जाता है। इस अधिकतमको ब्रेगने इस प्रकार व्याख्याकी कि अधिकवेग वाले कण परमाणुमेंसे इतनी शीघ्रतासे निकल जाते हैं कि उसमेंसे ऋणाणुको अलग नहीं कर सकते और बहुत ही कम वेग वालोंका परमाणु पर कोई असर ही न होगा। उसने रश्मिशाक्तिक पदार्थों (Radioactive bodies) की किरणोंके गुणों तथा प्रकृतिका भी अध्ययन किया और इसलिये उसे १६१६ में रायल सोसाईटीने रमफोर्ड पदक प्रदान किया। पदक देते समय सभापति महोदयने कहा था—"उसके एलफा किरणोंके प्रयोगोंने वस्तुओंमें एलफा किरणोंके शोषण (Absorption) के सिद्धान्त पर नया प्रकाश डाला और यह साबित किया कि हरएक रश्मिशाक्तिक परिवर्तनसे निकली हुई एलफा किरणोंका निश्चित और विशेष पथ रहता है जो उनके आदि वेग पर निर्भर होता है।"

लवे स्थल (Laue spot) के आविष्कारके पश्चात् ब्रेग बड़े उत्साहसे रौञ्जन किरणों पर कार्य करने लगा। यह पहले मालूम होगया था कि रौञ्जन किरणोंका वर्तन (Diffraction) पतन-कोण (Angle of incidenee) के बराबरके कोण

पर होता है। ब्रेगने यह विचार किया कि पतन-कोणको धीरे धीरे बढ़ानेसे हम हरएक लहर-लम्बाई की परीक्षा कर सकते हैं और मूल किरणोंकी तीव्रताका विभाजन हरएक लहर लम्बाईमें किस प्रकार हुआ है इसका इससे हमें कुछ अनुमान हो सकता है। इस विचारको सामने रखते हुए उसने एक यन्त्र बनाया जो "रौञ्जन किरण चित्र मापक" के नामसे प्रसिद्ध है। इस यन्त्र द्वारा उसने अपने पुत्रकी सहायतासे कई रवोंके तीव्रता-वक्र (Intensity Curves) ज्ञात किए।

उसने रौञ्जन किरणोंके शोषणका अध्ययन किया और पायर्स (Peirce) के साथ एक नियम बनाया जिससे भिन्न भिन्न लहर लम्बाइयोंमें भिन्न भिन्न शोषण स्पष्ट हो जाता है।

सर डबल्यू० एच० और डबल्यू० एल० ब्रेगने रौञ्जन-किरणोंकी लहर लम्बाई मालूम करनेकी एक रीति निकाली है। यह बहुत ही सरल तथा बड़े महत्व की विधि है और इससे उन्होंने सैकड़ों दफे लहर लम्बाइयां निश्चितकी हैं।

सर विलियम एच० ब्रेगने १९१५ में यह सूचना दी कि फोरियर-उपपाद्य (Fourier's theorem) से रौञ्जन किरणोंके तीव्रता-वक्र (Intensity Curves) का विश्लेषण कर सकते हैं और इससे रवेके भिन्न भिन्न पृष्ठतलों (Planes) में ऋणाणुओंका बटाव ज्ञात हो सकता है। बादमें उसके इस विचारका उपयोग उसके लड़के डबल्यू० एल० ब्रेग और ए० एच० काम्पटन आदिने कई रवोंके लिये किया था।

उसे कोलम्बिया विश्वविद्यालयसे रौञ्जन किरणों और रवोंके कार्यके लिये बर्नार्ड सुवर्ण पदक प्रदान किया गया और १९१७ में इटलीको विज्ञान परिषद्‌ने सुवर्ण पदक देकर उसे सम्मानित किया। १९३०में विलायतकी रायल सोसाइटीने उसे कोपले पदक प्रदान किया है।

ब्रेगने दूसरे विषयोंमें भी कुछ कार्य किया है। उसने १९१९ में एक तरकीब निकाली जिससे पन-डुब्बियोंमें होते हुए दिशाओंका ज्ञान सरलतासे हो सकता है। वुड और ब्राउनने ब्रेगके विचारोंकी सहायतासे एकयन्त्र बनाया जो "लाईट बाडी हाई-ड्रोफोन" (Light body hydrophone) के नामसे प्रसिद्ध है। इस यन्त्रको जिस ओरसे शब्द आ रहा हो उस ओर कर देनेसे दिशाका ज्ञान हो जाता है।

डेवी-फेरेडे प्रयोगशालाके डाईरेक्टरकी हैसि-यतसे ब्रेग बड़ा ही निपुण पथ प्रदर्शक और विद्या-र्थियोंको सहायता तथा उत्साहित करने वाला है। ईश्वरसे हमारी प्रार्थना है कि ऐसे पुरुषको दीर्घ-जीवी करे जिससे संसारका अधिक भला हो सके।

विलियम लारेंस ब्रेग

W. L. BRAGG

(१८९०—जीवित)

विलियम लारेन्स ब्रेग ने अपने पिताके साथ नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। उसका जन्म एडीलेड (आस्ट्रेलिया) में ३१ मार्च १८९० में हुआ। यहां पर उसका पिता उस समय प्रोफेसर था। उसकी शिक्षा सेन्ट पीटर्स कालेज एडीलेड, एडीलेड विश्वविद्यालय और अन्तमें ट्रीनीटी कालेज केमब्रिजमें हुई।

वह १९१४ में ट्रीनीटी कालेज केमब्रिजमें प्राकृतिक विज्ञानका व्याख्यानदाता और फेलो चुना गया। आदि ही से वह अपने पिताके आविष्कारोंमें सहायता किया करता और उनकी देख रेख तथा मददसे उसने कई प्रयोगिक अन्वेषण किए। ऐसे निपुण तथा दक्ष उपदेशकके साथ काम करनेसे इस बालककी बुद्धिके विकसित होने में देरी न लगी और नोबेल पुरस्कार देकर संसार ने उसकी कुशलता और गुणोंका मान किया। इस समय उसकी आयु केवल २५ वर्ष की थी।

नोबेल पुरस्कारके इतिहासमें यह पुरस्कार और किसी मनुष्यको इस उम्रमें प्रदान नहीं किया गया जब कि बहुधा बहुतसे युवक अपना जीवन आरम्भ ही करते हैं।

१९१५ में उसे रौञ्जन-किरणों और रवों की बनावटके आविष्कारके उपहारमें बरनार्ड पदक प्रदान किया गया। जब उसके पिताने रौञ्जन-किरण-चित्रमापक (X-ray spectrometer) यन्त्र बनाया तो वह उसके साथ रवोंसे रौञ्जन किरणोंके भिन्न भिन्न पतित-कोणों पर परावर्तन द्वारा यापन होनेके विषयमें अध्ययन करने लगा। उन्होंने प्रयोगोंसे यह पाया कि एक खास पतित कोण पर वर्तन अधिकतम होता है। सर्व प्रथम ब्रेगने रवों की बनावट जाननेमें लवेके चित्रों का उपयोग किया। उसने देखा कि पांशुज हरिदके रवेमें परमाणु केन्द्रोंका सामान्य घन-विधान (Simple cubical arrangement) था परन्तु सैन्धक हरिद और पांशुज अरुणिदका अध्ययन करनेसे जो रसायनिक गुणोंमें पांशुज हरिद के ही समान हैं ज्ञात हुआ कि पांशुज हरिदके परिणाम केवल आकस्मिक हैं। उसने सैन्धक हरिद और पांशुज अरुणिदके रवोंकी बनावट का भी अध्ययन किया। ब्रेगने रवोंकी बनावटसे परमाणुके विस्तार (dimensions) को भी निकाला।

बादमें उसने अपने पिताके साथ फोकस-विधि निकाली जिससे रौञ्जन किरणोंकी लहर लम्बाई बड़ी सरलतासे ज्ञात हो सकती है। इन्होंने करीब सात तत्वोंकी परीक्षाकी और उनकी भिन्न भिन्न लहर लम्बाइयों को ज्ञात किया।

इस समय महायुद्ध बड़े जोरोंसे आरम्भ हो गया था। अपनी मातृ-भूमि को इस संकटमें देख कर ब्रेग का चित्त अपनी प्रयोगशालामें न लगा और वह युद्धमें भाग लेनेके लिये तैयार हो गया। वह १९१५ से १९१९ तक युद्धमें कई महत्व पूर्ण वैज्ञानिक कार्य्योंमें अपनी लाभदायक सहायता देता रहा।

१९२१ में कुछ और वैज्ञानिकोंकी सहायतासे उसने कई बड़े मार्केके प्रयोग किये। उसने एक प्रकारकी विकिरण की किरणोंको रवेके कई भिन्न तलीय पृष्ठोंसे परावर्तित किया और इन परावर्तित किरणोंकी तीव्रताकी मीमांसा की। जब कि इस तीव्रता और पतित कोणका चित्र बनाया जाता है तब एक साधारण प्रकार का वक्र (Curve) मिलता है। उसने 'स्वतन्त्र' ऋणाणुसे परिक्षेपण (Scattered) किए हुए विकिरण (Radiation) के लिए एक सूत्र निकाला है। इसमें नवीन क्वाण्टम सिद्धान्त की सहायता न लेकर पुराने विद्युत् गत्यर्थक सिद्धान्तकी सहायता ली गई है। उसने परमाणुओं में ऋणाणुओंका विभाजन भिन्न भिन्न प्रकारसे अनुमान किया और उनकी विकिरण तीव्रता (Radiation Intensity) को अनुकूल (Corresponding) संख्याओंको निकाला। इस प्रकार उसने सिद्धान्तको प्रयोग द्वारा सिद्ध किया। इस सिद्धान्तके विषयमें प्रोफेसर एनड्रेड लिखते हैं:—"इससे परमाणुओंमें ऋणाणुओंके बटावका अभ्यास करने का एक नया और उन्नतिशील ढंग निकल सकता है, परन्तु उसकी आधुनिक अवस्थासे यह ज्ञान हो सकता है कि केन्द्रसे ऋणाणुओंका औसत फासला कितना है।........ कुछ भी हो परन्तु यह अपने ढंगका नया तरीका है जिससे और दूसरी विधियोंसे परमाणुओंमें ऋणाणुओंके विभाजनके सिद्धान्तकी सत्यता की जांच कर सकते हैं।"

१९२५ में हार्ट्री (Hartree) ने भी इसी प्रकार के सिद्धान्त पाए।

ब्रेग विक्टोरिया विश्वविद्यालय, मैंचेस्टरमें भौतिक शास्त्रके प्रोफेसर हैं और अपने पूज्य पिता को रौञ्जन किरणों द्वारा संकीर्ण रवों की बनावट का अध्ययन करनेमें सहायता दे रहे हैं।

सन् १९१६ में किसी भी भौतिकज्ञको नोबेल पुरस्कार नहीं दिया गया, और पुरस्कारका धन पुरस्कारकी मूल सम्पत्तिमें मिला दिया गया।

समालोचना

हिन्दुस्तानीः—हिन्दुस्तानी एकेडमीकी तिमाही पत्रिका। प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडमी संयुक्त प्रान्त, प्रयाग। जनवरी १९३१ वार्षिक मूल्य ८) छपाई सफ़ाई उत्तम। हिन्दीकी सचित्र और उर्दूकी चित्र रहित। पृष्ठ संख्या (हिन्दी) १३७। (उर्दू) १७०।

संयुक्तप्रान्तमें प्रान्तीय सरकारकी सहायतासे हिन्दुस्तानी एकेडमी नामकी संस्था कुछ दिनोंसे काम कर रही है। इसका मुख्य उद्देश "हिन्दी और उर्दू साहित्यकी रक्षा, वृद्धि और उन्नति करना है।" इसी सिलसिलेमें एक तिमाही पत्रिका निकाली गई है।

हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी संसार बड़ी उत्सुकता से इस संस्थाके कार्यक्रमको देख रहा है। इस पत्रिकाका विज्ञापन भी बहुत दिनोंसे देख रहे थे और आशा थी कि जैसा सुना था वैसा ही होगा परन्तु इस अङ्कको देख कर सारी आशा निराशामें परिणत हो गई—यही नहीं भविष्य भी अधिक उज्ज्वल नहीं दीख पड़ता।

इसके हिन्दी अंकमें समालोचना और सम्पादकीयको छोड़ ७ लेख हैं। इनमें से ४ तो ऐतिहासिक हैं और २ साहित्यिक समझे जा सकते हैं। ऐतिहासिक लेखोंसे सम्बन्धित चित्र भी हैं। उर्दू अङ्कमें सम्पादकीय एवं समालोचनाके अतिरिक्त ५ लेख हैं।

सम्पादकीयमें एकेडमी या ऐसी साहित्यिक संस्थाओंकी प्राचीन कालमें उत्पत्ति और विकासके विवेचनके पश्चात् इस एकेडमीकी उपयोगिताके विषयमें विचार प्रगट किये गये हैं। सम्पादकीय भाषाके विषयमें कुछ लिखना इसलिये उचित न होगा कि लेखक महोदय ने सम्भवतः उर्दू या अंग्रेज़ीमें लेख लिखा होगा, इसी कारण हर जगह अनुवादकी बू आ रही है और भाषा भी शिथिल है। "...... बादशाह फ्रेडरिक आज़म" और "होता है" इत्यादिका प्रयोग खटकता है। अस्तु! सम्पादक महोदय लिखते हैं। "लेखकोंकी एक अच्छी संख्या इस सेवामें तत्पर है और साहित्यके प्रत्येक अङ्ग की पूर्ति करनेमें प्रयत्नशील है। इस पर भी ज्ञान की ऐसी शाखाएँ हैं जिसमें पुस्तकें नहीं हैं और जिनमें पुस्तकें मौजूद हैं वह यह तो संख्यामें कम हैं या उस उच्चकोटिकी नहीं जैसा होनेकी आवश्यकता है। साहित्यकी आवश्यकताओंसे प्रत्येक हिन्दी और उर्दू प्रेमी परिचित है.........उर्दू और हिन्दी दोनों ही भाषाओंमें ऐसे नाटकों, उपन्यासों और गल्पोंकी कमी है जो साहित्यकी दृष्टिसे ऊँचा दर्जा रखते हों! समालोचना और इतिहास तथा गद्यके और अङ्ग भी बिलकुल अपूर्ण हैं।" (पृष्ठ १२५)

हिन्दुस्तानीके इस अङ्कको देखकर यह शोकके साथ कहना पड़ता है कि यदि इसका संगठन इसी प्रकार रहा तो इनमें से किसी भी न्यूनताको पूरा करनेमें या जनसाधारणके लिये उपयोगी और सुलभ साहित्य उत्पन्न करनेमें एकेडमी असफल रहेगी।

सात लेखोंमें से पांचका विषय इतिहास है, लेखकोंकी योग्यता और पांडित्यके विषयमें तो कोई सन्देह कर ही नहीं सकता है।

यदि हमें कोई आपत्ति है तो यह कि हम समझते हैं कि सम्पूर्ण पत्रिका पर केवल ऐतिहासिक साहित्यका प्रभुत्व साहित्य के अन्य अंगोंके लिये श्रेयस्कर न होगा, और इस दृष्टिसे हमारी इच्छा है कि सम्पादक मण्डली कुछ अधिक उदारता ग्रहण कर ले। पुरातत्व, इतिहास और काव्यके अतिरिक्त अन्य भी साहित्यके अंग हैं। यदि ऐसा न हुआ तो नागरी प्रचारिणी पत्रिका और 'हिन्दुस्तानी' में अन्तर ही क्या रह जावेगा।

एक बात जो सबसे अधिक खटकती है वह है वैज्ञानिक लेखोंका एकदम अभाव। आधुनिक युग वैज्ञानिक युग कहा जाता जाता है। चारों ओर घरमें और बाहर विज्ञानकी करामातें दिखाई पड़ती हैं। किसी को भी वैज्ञानिक शिक्षा और ज्ञानकी

उपादेयतामें सन्देह तो हो ही नहीं सकता। माधुरी, सुधा इत्यादि मासिक पत्रोंमें वैज्ञानिक चुटकुलोंको छोड़ जो कि अधिक तर इधर उधरके अङ्गरेजी पत्रोंमें से बिना समझे उड़ाये जाते हैं—सर्वसाधारणके लिये सुलभ वैज्ञानिक साहित्यका अभाव सा ही है। हिन्दी जनतामें इस विषयमें सुरुचि उत्पन्न करनेकी और भाषामें इस प्रकारका स्थायी साहित्य निर्माण करनेकी बड़ी ही आवश्यकता है। "विज्ञान" यथाशक्य इस प्रकारकी सेवा करनेकी चेष्टा कर रहा है पर न हमारे पास धन है न जन। एकेडमी के पास धन तो है ही पर जन भी हो ही सकते हैं यदि संचालक गण चाहें। वैज्ञानिक साहित्यके प्रति एकेडमीका यह सौतेली मां का सा बरताव, आशा है, जल्दी ही दूर होजायगा। अर्थ-शास्त्र पुरातत्व, कला इत्यादि विषयोंका भी शीघ्र ही समावेश होगा ऐसी आशा है।

—युधिष्ठिर भार्गव

आर्य्यका ऋषिबोधांक—प्रकाशक आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब। मूल्य ।=) पृष्ठ ४४

ऋषि दयानन्द सम्बन्धी स्मारकांक आर्य्य सामाजिक क्षेत्र में दो बार निकाले जाते हैं—दीपावलीके समय और शिवरात्रिके समय। शिवरात्रिके समयका यह अंक उस समयका बोध दिलाता है जब ऋषिवर ने शिवजी के मन्दिरमें सच्चे ईश्वरकी खोजके लिये प्रथम व्रत लिया था। प्रस्तुत अङ्क इस विचारसे तो अच्छा है कि इसमें श्री नारायण स्वामी, स्वामी सर्वदानन्द जी श्री सत्यानन्द जी, चमूपतिजी, बुद्धदेवजी प्रभृत योग्य सन्यासियों और विद्वानोंके लेख हैं। पर समस्त लेख अति साधारण हैं। ६४ पृष्ठ के अन्दर ३०—३२ लेख न देकर पांच छः अच्छे लेख होते तो बोधांक की उपयोगिता अधिक बढ़ जाती। सम्पादक और लेखक दोनोंको यह कठिनता अनुभव होती है कि प्रतिवर्ष कई स्मारकांक निकलते हैं तो इनमें कौन सी नयी बात दी जाय।

हमारा विचार यह है कि इस प्रकारके अङ्कोंमें ४—५ पृष्ठोंमें ऋषिके जीवनकी बोध-सम्बन्धी अथवा दिवालीके अवसर पर देहावसान सम्बन्धी घटनाओंका उल्लेख होना चाहिये और २—३ पृष्ठों में अपने अपने प्रान्तके पत्रों में अपने अपने प्रान्तको १२ मासकी आर्य्यसमाजकी प्रगतिका विवरण देना चाहिये। शेष पृष्ठोंके लिये सम्पादकको किसी एक गम्भीर सिद्धान्त-विषय पर अच्छे चार पांच लेख विशेषज्ञोंसे लिखाने चाहिये। इस प्रकार यदि वर्ष भरमें सब पत्रिकाओंके ४—५ विशेषांक निकलें तो उनमें चार पाँच विषयों पर पढ़ने योग्य अच्छी सामग्री मिल जायगी और ये अंक आर्य्य समाज की स्थायी साहित्यिक सम्पत्ति हो सकेंगे।

आर्य्यके ऋषिबोधांकमें टंकाराके शिवमन्दिर, स्वामीजीके जन्मगृह और उनके बचपनके एक साथीके चित्र हैं जिनसे इस अङ्ककी विशेषता अवश्य बढ़ गई है।

—सत्यप्रकाश।

हैहय क्षत्रिय मित्रका विशेषांक (भाग २७ संख्या १), अवैतनिक सम्पादक—चिन्तामणि जायसवाल "मणि"। वार्षिक मूल्य २॥), एक प्रतिका ।) पता—मैनेजर हैहय क्षत्रिय मित्र प्रयाग।

इसके अवैतनिक सम्पादक ने बड़े परिश्रम और बड़ी सजधजसे इसका सम्पादन किया है। यह विशेषांक राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए०, पं० रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए० बी० एल० प्रोफेसर माधोलाल एम० एस-सी०, बाबू गोपाल राम गहमरी, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, श्री विश्वप्रकाश जी बी० एल० एल-एल० बी०, महावीरप्रसादजी चौधरी एम० ए०, एल० एल० बी०, आदि विद्वानोंके लेखोंसे सुशोभित एवं श्री सत्यप्रकाशजी एम० एस-सी० और कविवर

विस्मिल आदि अनेक महानुभावोंकी कविताओंसे अलंकृत और स्वजातीय कतिपय प्रतिष्ठित विद्वानों के चित्रोंसे सुसज्जित है। इसके पिछले कई अङ्कों को देख चुका हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि योग्य विद्वानोंके लेखोंको एकत्र करनेमें सम्पादक को बहुत प्रयत्न करना पड़ा है। ऐसा सुन्दर और स्वजातिके उपयोगी विशेषांक निकालनेमें श्रीयुत मणि जी को जो सफलता मिली है उसके लिए बधाई देता हूँ।

—कृष्णानन्द।

सूर्य-सिद्धान्त

(गतांक से आगे)

अनुवाद—(६८) विषुवत रेखासे भूपरिधिके १५ वें भाग की दूरी पर स्थित उत्तर या दक्षिणके स्थानके ठीक ऊपर उत्तरायण या दक्षिणायनके अन्तकालका सूर्य भ्रमण करता है। (६९) इन्हीं रेखाओंके बीचमें मध्याह्न कालिक छाया दक्षिण या उत्तर हो सकती है। इनके बाहरके स्थानोंमें मध्याह्न छाया अपने अपने विभाग के मेरुकी ओर रहती है।
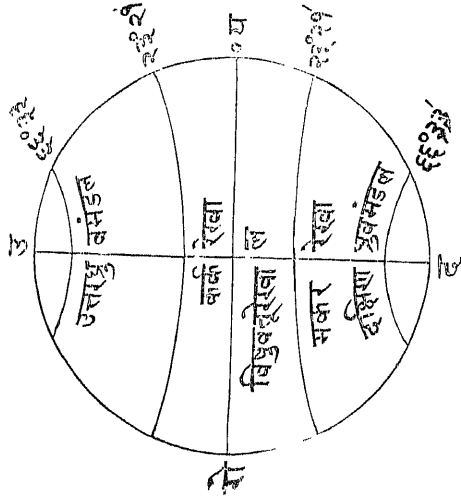
(चित्र नं० १२७)

विज्ञान-भाष्य—उत्तरायणका अन्त सायनकर्क संक्रान्तिकालमें होता है जिस समय सूर्यकी उत्तर क्रान्ति परम क्रान्तिके समान होती है जो सूर्यसिद्धान्तके मतसे २४ अंश है। इसलिये इस दिन २४ उत्तर अक्षांश पर सूर्य मध्याह्नकालमें ठीक ऊपर होता है और मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है। इसी प्रकार दक्षिणायनके अन्तमें सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति २४° होती है। इस लिये इस दिन २४ दक्षिण अक्षांश पर सूर्य ठीक ऊपर होता है। परन्तु भूपृष्ठका २४ अंश सारो भूपरिधिका १५ वां भाग है। आजकल यह २३ अंश २७ कलाके लगभग है। इसलिये २३°२७′ उत्तर अक्षांशके देशों पर सायन कर्क संक्रान्ति के दिन मध्याह्न कालमें सूर्य ठीक ऊपर होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर सायन मकर संक्रान्तिके दिन मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक ऊपर होता है, २३°२७′ उत्तर अक्षांश रेखाको इसीलिये कर्क रेखा और २३°२७′ दक्षिण अक्षांश रेखाको मकर रेखा कहता है। इन दोनों अक्षांशोंके बीचके भूभागको उष्ण कटिबन्ध कहते हैं क्योंकि यहां सूर्यके बारहों महीने ऊपर रहनेसे बड़ी गरमी पड़ती है।

इसी भूभागमें प्रत्येक स्थानके मध्याह्न कालकी छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है क्योंकि यहांके किसी स्थानका अक्षांश सूर्यकी परम क्रान्तिसे कम होगा इसलिये जब किसी स्थानका अक्षांश और सूर्यकी क्रान्ति एक ही दिशामें है और सूर्यकी क्रान्ति कम है तो मध्याह्न छाया उसी दिशाके ध्रुवको ओर होगी परन्तु यदि क्रान्ति अधिक है तो छायाकी दिशा उलटी होगी (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृ० ३८३, चित्र ५५, ५६)। परन्तु कर्क रेखा के उत्तरके देशोंमें मध्याह्न छायाकी दिशा सदा उत्तरको ओर होगी और मकर रेखाके दक्षिणके देशोंमें मध्याह्न छाया सदा दक्षिणकी ओर होगी।

चित्र १२७ में गोल रेखाके भीतर जो क्षेत्र है वह भूपृष्ठका गोलार्ध प्रकट करता है। उ और द क्रमसे उत्तर और दक्षिण

ध्रुव हैं। रोलय विषुवत् रेखा है। य यमकोटि, ल लंका और रो रोमक नगर है। सिद्धपुरी इस गोलार्ध पर नहीं दिखायी जा सकती क्योंकि यह लंकाके समसूत्रमें दूसरे गोलार्धमें है। विषुवत् रेखासे २३°२७′ उत्तर कर्क रेखा और दक्षिण मकर रेखा हैं। ये रेखाएँ विषुवत् रेखाके समानान्तर हैं। इन्हीं दोनों रेखाओंके बीचवाले भूभाग पर मध्याह्न छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है। विषुवत् रेखासे ६६°३३′ उत्तर और दक्षिण तथा उसके समानान्तर उत्तरी ध्रुव मंडल और दक्षिणी ध्रुव हैं। इन्हीं रेखाओं पर दिनका प्रमाण वर्षमें एक बार ६० घड़ी या २४ घंटेका होता है और रात्रिका प्रमाण भी एक बार इतना ही होता है जैसा कि ६०—६१ श्लोकोंमें बतलाया गया है। इन्हीं रेखाओंके बीचके भूभागमें अहोरात्रका प्रमाण ६० घड़ीका होता है। इनके बाहरके भूभागमें दिन रात्रिका प्रमाण विचित्र होताहै। उत्तरी ध्रुव मंडलके और उत्तर विषुवत् रेखासे ६९°५०′ दूर जो समानान्तर रेखा है उस पर वर्षमें एक बार २ मासका दिन तथा दो मासकी रात होती है। इसके भी उत्तर विषुवत् से ७७°३१′ दूर जो रेखा है वहाँ ४ महीनेका दिन और ४ महीने की रात होती है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव मंडलमें भी होता है। उत्तरी ध्रुवों पर ६ महीनेका दिन और ६ महीनेकी रात होती है।

विषुवत् रेखाके चार नगरोंमें सूर्योदय सूर्यास्त कब होता है—

भद्राश्वोपरिगः कुर्याद्भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं सदा ॥ ७० ॥
भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमन्।
मध्योदयार्धरात्र्यस्त कालान् कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥७१॥

अनुवाद—(७०) जब भद्राश्व वर्षके यमकोटि नगरमें सूर्य ठीक ऊपर होता है तब भारतवर्षके लंका नगरमें उसका उदय होता है, केतुमाल देशके रोमक नगरमें अर्धरात्रि होती है और कुरुक्षेत्रके सिद्धपुरी नगरमें उसका अस्त होता रहता है। (७१) इसी प्रकार भारतवर्ष आदि देशोंमें क्रमसे मध्याह्न, उदय, अर्धरात्रि और अस्तकाल होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन चार नगरोंका परस्पर सम्बन्ध ३८—४० श्लोकोंमें बतलाया जा चुका है। यहाँ इनके समयोंका सम्बन्ध बतलाया गया है। जब यमकोटिमें मध्याह्न होता है तब लंका में जो उससे ९० अंश पच्छिम है सूर्योदय होता है, रोमकमें जो लंकासे ९० अंश पच्छिम है मध्य रात्रि होती है और सिद्धपुरीमें जो रोमकसे ९० अंश पच्छिम है सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जब लंकामें मध्याह्न होता है तब रोमकमें सूर्योदय सिद्धपुरीमें अर्द्धरात्रि और यमकोटिमें सूर्यास्त होता है।

ध्रुवतारा और नक्षत्र चक्रका परस्पर अन्तर—

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥७२॥

अनुवाद—ध्रुवोंकी ओर चलनेसे ध्रुवताराका उन्नतांश और नक्षत्रचक्रका नतांश बढ़ता जाता है परन्तु विषुवत् रेखाकी ओर चलनेसे इसका उलटा होता है अर्थात् ध्रुवताराका नतांश तथा नक्षत्र चक्रका उन्नतांश बढ़ता है।

विज्ञान-भाष्य—नक्षत्रचक्र विषुवन्मण्डलके पास है इसलिए विषुवत् रेखा पर नक्षत्र चक्र ठीक ऊपर देख पड़ता है और ध्रुवतारे क्षितिज पर देख पड़ते हैं। यहाँसे ध्रुवोंकी ओर चलनेमें

ध्रुवोंका उन्नतांश बढ़ता जाता है और विषुवन्मण्डलका उन्नतांश उतना ही घटता जाता अथवा नतांश बढ़ता जाता है। ध्रुवों पर ध्रुवतारेका उन्नतांश ९० और विषुवन्मण्डलका उन्नतांश शून्य अथवा नतांश ९० होता है क्योंकि ध्रुवों पर से विषुवन्मण्डल क्षितिजमें हो जाता है। इसके विपरीत विषुवत् रेखाकी ओर चलनेमें ध्रुवतारेका नतांश बढ़ता और नक्षत्र चक्रका उन्नतांश बढ़ता है।

नक्षत्र चक्रकी गतिका कारण—

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम् ॥७३॥

अनुवाद—दोनों ध्रुवतारोंसे बँधा हुआ और प्रवाह वायुका धक्का खाता हुआ नक्षत्र चक्र निरन्तर घूमा करता है। इसी से क्रमानुसार बँधी हुई ग्रहकक्षाएँ भी इसीके साथ घूमती हैं।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य, चन्द्र, ग्रह तारे सभी पूर्व क्षितिज पर उदय होकर ऊपर उठते हैं, पच्छिम की ओर घूमते हुए अस्त हो जाते हैं और २४ घंटेमें फिर पूर्व क्षितिज पर आकर उदय होते हैं। इसका कारण प्राचीनकालमें यह समझा जाता था कि सारा आकाश चक्र दोनों आकाशीय ध्रुवोंमें बँधा हुआ प्रवह वायुके द्वारा घूम रहा है और ग्रहों की कक्षाएँ भी उसी आकाश चक्रमें बँधी हुई पूरबसे पच्छिम को घूम रही हैं। इस मतके समर्थक भारतवर्षके कुछ पण्डित अब भी देखे जाते हैं और वाद विवाद करनेके लिये तैयार रहते हैं। परन्तु अब अकाट्य प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया है कि आकाश चक्र की इस गति का कारण प्रवह वायु नहीं है वरन् स्वयम् पृथ्वी की गति है। एक गतिसे पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटेमें एक बार पच्छिमसे पूरब को घूम जाती है इस दैनिक गति को पृथ्वी का अक्ष भ्रमण कहते हैं। इसीसे आकाशके सभी पिंड पूरबसे पच्छिमको घूमते हुए जान पड़ते हैं। इसीसे दिन रातकी उत्पत्ति होती है। दूसरी गतिसे पृथ्वी एक वर्ष में सूर्यकी परिक्रमा कर लेती है जिससे ऋतुओं की उत्पत्ति होती है और आकाशमें सूर्य पच्छिमसे पूरबको चलता हुआ एक वर्षमें पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है। इस गति को पृथ्वी की वार्षिक गति कहते हैं। यह दोनों गतियाँ पृथ्वीमें एक साथ होती हैं जैसे ऊपर फेंकी हुई गेंद अपने अक्ष पर नाचती भी जाती है और अपने स्थानको बदलती भी जाती है अथवा लड़कोंके खेलने की फिरकी नाचती हुई अपने स्थान को भी बदलती जाती है।

हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथोंमें पृथ्वी को अचला माना गया है इसलिये पृथ्वी की गतिकी बात सनातन धर्मके कुछ पण्डितों को मान्य नहीं है परन्तु वाद विवादमें वे वही तर्क उपस्थित करते हैं जिसे आचार्य वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि पेश करते थे। इसलिये पहले यह विचार किया जायगा कि वे तर्क कहां तक गणित शास्त्रके अनुकूल हैं। इसके बाद अनेक गणित और भौतिक विज्ञान के प्रमाणोंसे सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वीमें दैनिक और वार्षिक दो गतियां है और इन्हींके कारण नक्षत्र चक्र दिनमें एक बार पूरबसे पच्छिमको घूमता हुआ देख पड़ता है और ऋतु आदि का परिवर्तन होता है तथा ग्रहोंकी चाल विचित्र प्रकार की देख पड़ती है। आचार्य

वराह मिहिर और ब्रह्मगुप्तने पृथ्वीकी गति काखण्डन जिन युक्तियोंसे किया था वे यह* हैं। यहां यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि हमारे यहांके आचार्य आर्यभट्ट अपने आर्यभट्टीय ग्रंथमें पृथ्वीका चलना मानते हैं और इसका समर्थन इस उदाहरणोंसे करते हैं कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठे हुए मनुष्य को नाव स्थिर और किनारेके पेड़, घर आदि उलटी दिशामें चलते हुई दिखाई पड़ते हैं इसी तरह नक्षत्र चक्र अचल होने पर भी घूमनेवाली पृथ्वी परके रहने वाले मनुष्यों को पच्छिमकी तरफ घूमता हुआ देख पड़ता है। परन्तु परम्परा विरुद्ध समझ कर किसी ने नहीं माना और बराह मिहिर आदि ने ये तर्क उपस्थित किये थे।

आचार्य बराह मिहिर का एक तर्क यह है कि यदि पृथ्वी ही पूरब की ओर घूमती है तो जो पक्षी अपने घोंसले छोड़ कर आकाश में उड़ जाते हैं वे फिर घोंसले तक क्यों पहुँच जाते हैं क्योंकि पृथ्वीके घूमनेके कारण पृथ्वीमें लगा हुआ घोंसला तो बहुत दूर पूरबमें हो जाता और पक्षी आकाशमें रह जानेसे बहुत पीछे रह जाता। दूसरा तर्क उन्होंने यह किया कि यदि पूरबकी ओर घूमती तो पताका झण्डा आदि सर्वदा पच्छिम की ओर उड़ते देख पड़ते क्योंकि यह साधारण अनुभव की बात है कि यदि कोई मनुष्य रूमाल हाथमें लटका कर दौड़े तो उसके वेगके कारण रूमाल पीछे की ओर उड़ने लगता है। और यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी बहुत मंद गतिसे घूमती है इसलिये पताका आदि पच्छिमको उड़ते हुए नहीं देख पड़ते तो इतनी मंद चालसे पृथ्वी दिन भरमें एक चक्कर कैसे कर लेती है।

(क्रमशः)

---

*भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः
यद्येव श्येनाद्यान खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः ॥६॥
अन्यच्च भवेद्भूमेरहा भ्रमरहंसा ध्वजादीनाम् ।
नित्यं पश्चात् प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति ॥७॥
पंच सिद्धान्तिका अध्याय १३

प्राणेनैति कलां भूर्यदि तर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम् ।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ॥१७॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, तन्त्र परीक्षाध्याय

†अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानिभानि तद्वत्सम पश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९॥
आर्यभटीय, गोलपाद

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३२ } कुम्भ, मीन, संवत् १९८७ { संख्या ५, ६

पृथ्वीकी आयु

[ले० श्रीअनन्त गोपाल भिंगरन एम० एस-सी०]

साधारणतया हम यह कभी कहीं सोचते कि पृथ्वीकी भी कुछ आयु होगी। सांसारिक मायामें फँसे हुए मनुष्य तो इस प्रकारके प्रश्नोंसे कोसों दूर रहना चाहते हैं। प्रथम तो ऐसे प्रश्न उनके मनमें उठते ही नहीं और यदि कभी किसीने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित भी किया तो वे इसे वेदान्तिक विषय कह कर छोड़ देते हैं और नहीं तो सतयुग, कलियुगकी गाथा गाने लगते हैं।

परन्तु यह प्रश्न कुछ नवीन हो सो बात नहीं है। यह समस्या तो इतनी ही पुरानी है जितना कि मानवी सभ्यताका विकास। हाँ जब कि मनुष्य बिलकुल असभ्य व जङ्गली था, आखेट ही उसके जीविकोपार्जनका एक मात्र अवलम्ब था और जब कि उसकी आवश्यकतायें बहुत ही कम थीं; संक्षेपमें जब कि वह केवल जीनेके लिये ही जीवित था, उसके जीवनका कुछ उद्देश्य, कुछ मर्म अथवा तत्व न था, तब तो निःसन्देह उसने इन प्रश्नों अथवा समस्याओंको कभी स्वप्नमें भी न सोचा होगा। परन्तु सभ्यताके विकासके साथ ही साथ ऐसे प्रश्न भी उत्पन्न होते रहे हैं और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए कौतुकके कारण मनुष्य सदैव ही पृथ्वी और प्रकृतिके इन गुप्त भेदोंका पता लगानेकी चेष्टा करता रहा है।

(१) पौराणिक प्रयास

इस प्रकारके प्रश्नोंकी व्याख्या सबसे प्रथम पौराणिक कथाओंमें मिलती हैं। लगभग सभी

जातियोंके पुराण पृथ्वीकी उत्पत्तिकी विधि और समय आदिकी कथाओंसे भरे हुए हैं। यह कथायें बड़ी ही रोचक तथा औपन्यासिक हैं और इनको पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता है। बचपनसे ही सुनते आनेके कारण अपने पुराणोंसे तो हम पूर्णतः परिचित हो गये हैं और उसमें कुछ धार्मिक अंश मिला होनेसे हमें उसमें कुछ भी विचित्रता प्रतीत नहीं होती। परन्तु दूसरी जातियोंके पुराणोंके विषयमें हमारी धारणा ऐसी नहीं है और यही कारण है कि उनको पढ़नेमें कुछ विशेष आनन्द तथा कौतूहल प्रतीत होता है।

अस्तु, इस पौराणिक कालमें विज्ञानका इतना विकास तो हुआ न था। न तो यह दूरबीनें ही उस समय थीं; न यह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र, न यह किरणचित्रमापक (Spectrometer) और न और ही कोई वैज्ञानिक यन्त्र। विज्ञानके इन आविष्कारों तथा इस विकासका श्रेय अधिकांशमें आधुनिक कालको ही है। उस समय तो मनुष्य जो कुछ नेत्र द्वारा देख सकता अथवा कान द्वारा सुन पाता उसीसे प्रकृतिको समझनेकी चेष्टा करता था। वह अपनी इन्द्रिय शक्ति पर ही पूर्णतः निर्भर था। बहुत सम्भव है कि मानसिक कल्पना शक्तिमें वह कदाचित इतना ही बढ़ा चढ़ा हो जितना कि अर्वाचीन मनुष्य। परन्तु अपने काल्पनिक सिद्धान्त की सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये उसके पास कुछ भी साधन नहीं था।

एक बात और है। पृथ्वीकी उत्पत्तिके इन सभी सिद्धान्तोंमें कुछ न कुछ धार्मिकता मिली हुई है। लगभग सभीमें यह सिद्धान्त निहित है कि सृष्टिकर्त्ताके पास कुछ द्रव्य था और उसमेंसे थोड़ासा अंश निकाल कर उसने पृथ्वीकी रचना की। बहुतसे धर्मभक्त पुरुषोंका विश्वास है कि मनुष्य जब कभी अधर्म करता है तो देवगण उससे रुष्ट हो जाते हैं और वे क्रोधित होकर मनुष्यका अनिष्ट करते हैं। उनके विचारसे यह पर्वतमालायें, शिखर, झीलें आदि सब दैवी कोपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जब यह कोप चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो ज्वालामुखीके उद्गारों और भूचालोंके रूपमें प्रगट होता है।

यह कथायें परम्परासे चली आती हैं और इनमें धार्मिक अंश मिला होनेके कारण इन्होंने मनुष्य के मस्तिष्क पर भलीभांति अधिकार कर लिया है। यद्यपि ज्ञानकी वृद्धिने इन सिद्धान्तोंको निर्मूल सिद्ध कर दिया है तथापि केवल धार्मिक अवहेलना और ईश्वरीय कोपके डरसे मनुष्यने इनमें उलट फेर करना नितान्त अनुचित समझा। जिन दो चारका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ भी और जिन्होंने इनमें कुछ सुधार करना चाहा उनके प्रयत्नको केवल अनधिकार चेष्टा बताते हुए उनके मार्गमें अनेकों बाधायें डाली गईं।

अस्तु, अब हम कुछ पौराणिक प्रयासोंका दिग्दर्शन करेंगे।

चैलडियन्स (Chaldeans) (जिनकी सभ्यता सबसे पुरानी समझी जाती है और जिसमेंसे कि आधुनिक पश्चिमीय सभ्यताका विकास हुआ है) का विश्वास था कि लगभग २० लाख वर्ष हुए पृथ्वीकी उत्पत्ति एकार्णव (Chaos) मेंसे हुई थी। बैबीलोनियन्स (Babyloneans) की धारणा थी कि मनुष्यकी उत्पत्ति आजसे ५ लाख वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु उनके पुराणोंमें पृथ्वीकी उत्पत्तिका कोई अलग समय नहीं दिया है। बहुत सम्भव है कि उन्होंने पृथ्वी और मनुष्य की उत्पत्ति को भिन्न भिन्न न समझा हो और उनका यही विश्वास रहा हो कि दोनोंकी उत्पत्ति एक ही साथ हुई है।

मिश्रियों के अनुसार—जिनकी सभ्यता चैलडियन्सके समकालीन अथवा लगभग उस ही समयकी मानी जाती है—पृथ्वी और अन्तरिक्ष प्राथमिक जलमें गाढ़ आलिंगन किये लेटे हुए थे। सृष्टि उत्पन्न होनेके समय उस जलमेंसे एक नये देवता 'शू' की उत्पत्ति हुई और उसने अपने दोनों हाथोंसे अन्तरिक्षको ऊपर उठा दिया। यही

अन्तरिक्ष देवी अब आकाश बन गई और दोनों हाथ और दोनों पैर जिन पर कि वह खड़ी है आकाशके खम्भे बन गये। दुर्भाग्यसे मिश्री पुराणोंमें इस सृष्टिके कालका कुछ वर्णन नहीं है।

ईरानी पुराणोंके अनुसार पृथ्वीकी सृष्टि आज से १२,००० वर्ष पूर्व हुई थी।

सृष्टि उत्पत्तिका सबसे पुराना उल्लेख हमारे साहित्यमें मनुस्मृतिमें (अध्याय १, श्लोक ६८-७३,७९,८०) है, जिसके अनुसार सम्वत् १९८७ वि० में सृष्टिको हुए १, ९७२९४९०३१ वर्ष हुए हैं। इसका समर्थन भास्कराचार्य जीके सूर्यसिद्धान्त द्वारा भी होता है। (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार २०-२४)। सम्पूर्ण सृष्टिकी आयु ४३२००००००० वर्ष है।

सृष्टिकी आयुकी गणना इस प्रकारकी गई है—

सम्पूर्ण सृष्टि = १४ मन्वन्तर + १५ संध्यायें
= १४ × ७१ चतुर्युगी + १५ संध्यायें
= १४ × ७१ × ४३२०००० वर्ष + १५ संध्यायें

प्रत्येक दो मन्वन्तरोंके बीचमें एक संध्या पड़ती है जिसका परिमाण सत्युगके समान १७२८००० वर्ष है—

∴ सम्पूर्ण सृष्टि = [१२ × ७१ × ४३२००००]
+ [१५ × १७२८०००]
= [४२९४०८००००+ २५९२००००]
= ४३२००००००० सौर वर्ष

यह तो सृष्टिकी सम्पूर्ण आयु है। इस समय सृष्टिके आरम्भसे ६ मन्वन्तर तो पूरे बीत चुके हैं और सातवें मन्वन्तरकी २७ चतुर्युगी पूरी बीती हैं, २८ वीं चल रही है जिसमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापर पूरे बीत चुके हैं, कलियुगके संवत् १९८७ वि० में ५०३१ वर्ष बीते हैं, सृष्टिको वर्तमान आयु निम्न प्रकार है—

१ मन्वन्तर = ७४ चतुर्युगी

सत्ययुग	१७२८००० वर्ष
त्रेता	१२९६००० ,,
द्वापर	८६४००० ,,
कलियुग	४३२००० ,,

१ चतुर्युगी = ४३२०००० वर्ष

सृष्टिकी आदिमें एक संध्या थी और प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें एक संध्या हुई, अतः सात संध्यायें हुई।

संध्या = १ सत्ययुग = १७२८००० वर्ष

वर्तमान आयु = ६ मन्वन्तर + ७ संध्या + २७ चतुर्युगी
+ सत्ययुग + त्रेता + द्वापर + ५०३१ वर्ष

६ मन्वन्तर = ६ × ७१ चतुर्युगी = ६ × ७१ × ४३२०००० वर्ष

	=	१८४०३२०००० ,,
७ संध्या = ७ × १७२८०००	=	१२०९६००० ,,
२७ चतु० = २७ × ४३२००००	=	११६६४०००० ,,
सत्ययुग	=	१७२८००० ,,
त्रेता	=	१२९६००० ,,
द्वापर	=	८६४००० ,,
कलियुगके	=	५०३१ ,,
योग	=	१९७२९४९०३१ वर्ष

आर्य्यभटने जो गणना दी है उसके हिसाबसे सृष्टिकी वर्तमान आयु १९८६१२५०३१ वर्षकी होती है। सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है (मध्यमाधिकार श्लोक २४) कि इस सृष्टिमें ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत आदिके विकासमें १७०६४००० वर्ष लगे।

मध्यकालीन

अब हम इन प्राचीन व्याख्याओंको छोड़ कर मध्यकालीन समयमें आते हैं। इस कालमें पृथ्वी की दीर्घकालीन आयुका विचार बिलकुल ही जाता रहा और मनुष्यके विचार बहुत संकीर्ण हो गये।

उस समय इङ्गलिस्तान आदि देशोंमें पढ़ने लिखनेका काम विशेष कर पादरी लोग ही करते थे। इन्होंने पृथ्वीकी आयुके प्रश्न पर विचार किया है और जहां तक इनकी कल्पना शक्ति व मस्तिष्कने काम दिया इन्होंने इस प्रश्नका उत्तर निकालनेकी चेष्टाकी। इनके अनुसार पृथ्वीकी आयु ६,००० वर्षसे अधिक नहीं हो सकती। आर्क बिशप (महापादरी) उशरने तो यहां तक कहा कि पृथ्वीकी सृष्टि ईसासे ४,००४ वर्ष पूर्व जनवरी मासके प्रथम सप्ताह में हुई थी। यह तारीख़ आजकल भी अंग्रेज़ीकी प्रत्येक बाइबिलके पृष्ठोंके किनारों पर छपी रहती है।

इसकालमें जो कुछ वैज्ञानिक प्रयास हुए उनका फल भी बहुत ही कम आया है। तत्कालीन वैज्ञानिकोंके अनुसार पृथ्वीकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है। कुछ विशेष शक्तियाँ (forces) और तनाव (tension) के कारण एक बहुत बड़ा टुकड़ा सूर्य से टूट कर अलग हो गया और यही बादमें पृथ्वी बना। सूर्यसे अलग होनेके समय पृथ्वी बहुत ही गरम थी। और तबसे यह बराबर ठंडी होती जा रही है। बफ़न नामी वैज्ञानिक ने गणना की थी कि पृथ्वीको उस ऊँचे तापक्रमसे साधारण तापक्रम तक आनेमें ७५,००० वर्ष लगे होंगे। उसके अनुसार यही पृथ्वीकी आयु है।

इसी प्रकार और भी जितनी गणनायें इस मध्यकालीन समयमें हुईं हैं उन सभी का फल बहुत ही कम है। परन्तु अर्वाचीन समयमें आते ही एक बार फिर हम पृथ्वीके बहुत ही पुरानी और बूढ़ी होनेका स्वप्न देखने लगते हैं। और बहुत सम्भव है कि यह गणनायें यदि बिलकुल ठीक नहीं तो बहुत अंशमें ठीक ही हैं।

यहाँ पर एक और विचार का वर्णन करना अनुचित न होगा। हिन्दू पुराणों और अर्वाचीन भूतत्व शास्त्रके काल विभागोंमें एक आश्चर्य जनक समता प्रतीत होती है। पुराणोंके अनुसार समय के चार महाभाग हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। इसी प्रकार भूतत्व शास्त्रमें भी वैदिक (Primary), पौराणिक (Secondary) द्रविड़ (Tertiary) और आर्य (Quaternary) चार कल्प हैं। यहाँ तक कि इनका नामकरण भी लगभग पर्य्यायवाची ही है, केवल क्रमका अन्तर है। अर्थात् पौराणिक त्रेता वैज्ञानिक Secondary (पौराणिक) है और पौराणिक द्वापर वैज्ञानिक Tertiary (द्रविड़) है। सतयुग Primary (प्राथमिक) और कलियुग Quaternary या आधुनिक के समानान्तर हैं।

इसके अतिरिक्त एक और भी समानता है। भौतत्विक काल विभागमें यह कल्प २० छोटे छोटे विभागोंमें विभाजित हैं। भूतत्व विज्ञोंके अनुसार इनमें से प्रत्येक विभाग पृथ्वीके पदार्थका एक परिभ्रमण (अर्थात् उसका वायु, जल, वर्षा, नदी, बर्फ़, सर्दी, गर्मी आदिके प्रभावसे टूटना, समुद्र झील अथवा किसी जलाशयकी तह पर जमना और फिर पृथ्वीके किसी आन्तरिक बल अथवा अन्य किसी कारणसे जम कर पर्याप्त ठोस और कड़ा होकर जलके ऊपर निकल आना) का द्योतक है। अर्थात् पृथ्वीके जीवन भरमें अब तक इसके पदार्थके लगभग २० परिभ्रमण हो चुके हैं। हो सकता है कि प्राचीन पौराणिक हिन्दुओंका भी यही मत हो। अभी तक इतिहासज्ञोंके अनुसार जो कि हिन्दू सभ्यताका समय ठीक ठीक निश्चित नहीं कर सकते हैं, पुराण केवल बड़ी बड़ी गल्पमालायें हैं। यह बात ठीक नहीं है—यह तो निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता परन्तु गल्पमाला के अतिरिक्त यह कुछ और भी हो सकते हैं। इसके विरुद्ध भी कोई विशेष प्रमाण नहीं है।

सम्भव है कि यह पुराण भी पृथ्वीके इतिहास की कहानियाँ हों जिनमें कि इनके लेखकों ने अपनी कल्पनाके अनुसार पृथ्वीकी अवस्था—दैहिक, दैविक, भौतिक—का वर्णन किया हो। पुराणोंकी

संख्या (१८) और पृथ्वीके परिभ्रमणोंकी संख्या (१८—२०) में समानता होनेसे इस अनुमानकी पुष्टि होती है। पुराणोंमें लगभग एक ही प्रकारकी कहानियाँ हैं—वही राक्षसों और दैत्योंका अत्याचार देवताओंकी तपस्यामें विघ्न, विष्णुका अवतार लेना, दुष्टोंका संहार आदि आदि। अस्तु, प्रत्येक पुराण पृथ्वीके एक परिभ्रमणका इतिहास हो सकता है।

विभाग

१—उर्ध्व टरशरी
२—निम्न टरशरी
३—उर्ध्व क्रिटेशस
४—निम्न क्रिटेशस
५—जूरासिक
६—ट्राइसिक
७—परमो ट्राइसिक
८—परमो कारबोनीफ़रस
९—उर्ध्व कारबोनीफ़रस
१०—मध्य कारबोनीफ़रस
११—निम्न कारबोनीफ़रस
१२—उर्ध्व डेवोनियन
१३—मध्य डेवोनियन
१४—निम्न डेवोनियन
१५—साईलूरियन
१६—ऊर्ध्व आरडोवीसियन
१७—मध्य आरडोवीसियन
१८—निम्न आरडोवीसियन
१९—ऊर्ध्व केम्ब्रियन
२०—निम्न केम्ब्रियन
केम्ब्रियन से पूर्व

इन पौराणिक अवतारोंके विषयमें भी एक बात और विशेष उल्लेखनीय है। सब अवतार २४ हैं जिनमेंसे कृष्ण, राम, परशुराम आदि तो मनुष्य रूपमें हैं परन्तु कुछ जैसे मत्स्य, कच्छ बाराह आदि दूसरे जीवोंके रूपमें हैं और यही अन्य जीवों अवतार पहले माने जाते हैं। जीव विकास सिद्धान्तके अनुसार भी यही जीव पहले उत्पन्न हुए हैं। मनुष्यकी उत्पत्ति बहुत बादमें हुई है। अस्तु, उस पुराणमें जिसमेंकी पृथ्वीकी मात्स्यिक अवस्था (अर्थात् वह काल जब कि मत्स्य ही सबसे अधिक विकसित और उन्नत जीव था) का वर्णन है मत्स्य ही को ईश्वरके अवतारका रूप दिया है और इसी प्रकार सर्पी अवस्था (age of reptiles) (अर्थात् वह काल जब कि विसर्पी जीवों ही का आधिक्य था) में कच्छ (reptile) का अवतार हुआ माना जा सकता है।

बहुत सम्भव है कि यह कोरी कपोल कल्पना हो अथवा केवल आकस्मिक सम्मेलन ही हो परन्तु इसमें कुछ सत्यता भी हो सकती है। अस्तु, जो कुछ भी हो यदि इसी धारा में इस प्रश्न पर कुछ अन्वेषण किया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा बहुत सा प्राचीन इतिहास जो कि अभी तक घोर अन्धकारमें पड़ा है प्रकाशमें लाया जा सकता है।

जीव वैज्ञानिक प्रयास

जीव विज्ञानका इस विषयमें बहुत कम भाग है। न तो जीव शास्त्र विशारदोंके पास कोई ऐसा आधार ही है जिस पर कि वे गणना कर सकें और न उन्होंने कभी पृथ्वीकी आयुको संख्या-विशेषमें देनेका प्रयास ही किया है। किन्तु फिर भी वे पृथ्वीकी वासयोग्य अवस्थाके लिये एक ऐसी संख्या चाहते हैं जिसमें कि जीवोंका सम्पूर्ण विकास सम्भव हो।

डारविनका जीवविकासका सिद्धान्त कि उच्चश्रेणीके जीव निम्नश्रेणीके जीवोंसे उत्पन्न हुए हैं अब भली भांति मान्य हो चुका है। इस विकासके प्रमाण पत्र बिश्वकी स्तरसंस्थित (Stratified) चट्टानोंमें जीवावशेष (Fossil) के रूपमें वर्तमान हैं और इन्हींसे पृथ्वीके जीवइतिहासका पता चलता है। जैसा कि हक्सले (Huxley) ने कहा कि जीव सास्त्र अपना समय भूतत्व शास्त्रसे

लेता है और यदि भूतत्व शास्त्रकी घड़ी गलत हो तो जीव-शास्त्र-वेत्ताओंके केवल अपने विकासकी गति के विचारोंको तदनुसार सुधार लेना होगा। परन्तु साथ ही साथ जितने जीवावशेष प्रमाण मिल सकते हैं उन सबको सामने रख कर जीव विकासकी गतिके विषयमें कोई भी ठीक अनुमान करना यद्यपि असम्भव नहीं तो सरल भी नहीं है। सबसे पुराने जीवावशेष 'क्रसटेसिया'(Crustacea) और 'ट्राइलोबाइट्स' (Trilobites) और उनके जीवित निकटस्थ सम्बन्धित जातियों, जैसे बिच्छू इत्यादि, की शरीर व्यवच्छेद सम्बन्धी (Anatomical) परीक्षासे भली भांति पता चलता है कि आधुनिक जीव न तो इन्द्रिय कर्त्तव्योंमें ही कुछ अधिक सिद्ध हुए हैं (perfection of organic function) और न शारीरिक बनावटमें ही कुछ अग्रसर हुए हैं (specialization and advancement of structure)। उन प्राचीन जीवावशेषोंके उत्तराधिकारी निरन्तर अपने आपको संवारने और सुधारनेकी चेष्टा करते रहे हैं परन्तु इतने अधिक समयमें भी कोई ऐसा जीव उत्पन्न नहीं कर सके जिसको उनसे कुछ भी उच्च श्रेणीमें रक्खा जा सके।

फिर इस असीम अवधिमें क्या हुआ है? निस्सन्देह नाना प्रकारके जीवधारी, जिनका कि सबसे प्राचीन पत्थरोंमें कहीं लवलेश भी नहीं मिलता है उत्पन्न हुए हैं, परन्तु यह किस प्रकार हुआ, इसका पता नहीं। डारविन और वालेसका विश्वास था कि इस विकासके लिये कमसे कम करोड़ों वर्षोंकी आवश्यकता हुई होगी।

किन्तु सबसे दुःखकी बात यह है कि पृथ्वी भर में कहीं भी कोई ऐसा चिह्न वा प्रमाण नहीं मिलता जिससे जीवका आरम्भ वा उसकी अवस्था जानी जा सके। सबसे प्राचीन स्तरसंस्थित चट्टानोंके जीवावशेष भी जीव विकासकी सीढ़ीमें यथेष्ट ऊपर आते हैं। उस समयके सबसे अधिक विकसित जीव 'ट्राइलोबाइट्स' (Trilobites) हैं जो कि आधुनिक बिच्छू वर्गसे बहुत मिलते जुलते हैं और प्राणि वर्ग-क्रम (Zoological classification) में एरथोपोडा (Arthopoda) विभागमें आते हैं।

विकास सिद्धान्तानुसार जीव प्रारम्भमें एक कोष्ठिक रहा होगा और वह क्रमशः बढ़ता और विकसित होता गया जिससे कि नाना प्रकारके जीव उत्पन्न हो गये। गतिके प्रारम्भकी ही भांति इस रूपान्तरका प्रारम्भ भी बहुत ही धीरे धीरे हुआ होगा। परन्तु एक बार गति शक्ति (momentum) के उत्पन्न हो जानेसे क्रिया बराबर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वेगसे होती रही होगी। अस्तु, डारविन के विचार कि "केम्ब्रियन (Cambrian) से पहिले का समय, केमब्रियनसे आज तकके समयके बराबर अथवा इससे भी अधिक होगा" में बहुत कुछ सत्यता प्रतीत होती है।

पृथ्वीकी दीर्घ आयुके इस मतके विरुद्ध लार्ड कैलविन ने अपनी भौतिक गणनाओंके आधार पर कहा कि पृथ्वी दस करोड़ वर्षोंसे अधिक पुरानी नहीं हो सकती। एक दूसरे भौतिकज्ञ, प्रोफेसर टेट ने इस संख्याको केवल एक करोड़ ही कर दिया। प्राणि-शास्त्र-विज्ञों ने इन गणनाओं पर बहुत आपत्ति की क्योंकि उनकेअनुसार वनस्पतियों और जीव जन्तु दोनों ही में पूर्ण विकास होनेके लिये इससे कहीं अधिक समय की आवश्यकता है। परन्तु वे किसी प्रकार भी प्रमाणित न कर सके कि लार्ड कैलविन अथवा टेटकी गणनायें अशुद्ध हैं। इसके विपरीत भौतिकज्ञों ने अपनी गणनाओंके पक्षमें यह सिद्ध करनेके लिये कि जीवोंका सम्पूर्ण विकास इतने थोड़े समयमें भी हो सकता है बहुत से काल्पनिक सिद्धान्त बनाये परन्तु वे किसी प्रकार भी प्राणि-शास्त्र-विज्ञोंको सन्तुष्ट न कर सके।

लार्ड कैलविन ने कहा कि बहुत सम्भव है कि कोई टूटता हुआ तारा (meteorite) किसी दूसरे ग्रहसे जीवको पहिले पृथ्वीमण्डल पर लाय हो। इस प्रकार विकास का प्रारम्भ तो किसी दूसरे ही ग्रह पर हुआ और पृथ्वी पर उसका केवल उत्तरार्ध हुआ हो परन्तु प्राणि-शास्त्र-विशारदोंके

समयकी समस्या पूर्ति इस प्रकार नहीं होती। उनका कथन है कि हम तो विकासके कमसे कम उस भागके लिये समय चाहते हैं जिसके प्रमाण जीवावशेष स्वरूप पृथ्वी पर मिलते हैं और जो कि निश्चय ही पृथ्वी पर हुआ है, अन्यत्र नहीं। निस्सन्देह जीवके प्रारम्भसे ट्राइलोबाइट और नाटीलस (Nautilus) (सबसे पुराने प्राणि अवशेष) ऐसे उच्च जीवों तकके विकासमें भी बहुत ही अधिक समय लगा होगा परन्तु यह तो केवल उक्त समय को और भी अधिक बढ़ा देता है।

एक दूसरे मतके अनुसार वह जीव जो कि टूटते हुए तारे द्वारा सबसे पहिले पृथ्वी पर आये स्वयमेव यथेष्ट विकसित थे। पृथ्वी पर आनेके बाद इनमेंसे कुछ ने तो विकसित होकर अपनेसे उच्च श्रेणीके जीवोंको उत्पन्न किया और कुछ विकासकी सीढ़ीमें नीचेकी ओर चलने लगे जिससे कि उत्तरोत्तर निम्न श्रेणीके जीवोंका विकास होता गया। इस प्रकार विकास धन (Positive) और ऋण (negative) दोनों दिशाओंमें बराबर साथ साथ होता रहा। यदि यह क्रिया हो तो निस्सन्देह प्राणि-शास्त्रज्ञों द्वारा मांगा हुआ विकास का समय आधा ही रह जायगा। परन्तु सब ही प्रमाण इस सिद्धान्तका खण्डन करते हैं। उत्तरोत्तर नई चट्टानोंकी परतों (Beds) में बराबर अधिक विकसित जन्तुओंके अवशेष मिलते जाते हैं। निम्न श्रेणीके जीव भी मिलते अवश्य हैं परन्तु किसी नई परतमें किसी निम्न जीवकी उत्पत्ति पहिली ही बार कभी नहीं होती।

प्रोफेसर टेट ने एक और सिद्धान्त बनाया था। इसके अनुसार यह जीव विकास किसी अज्ञात ग्रहमें किसी भी अज्ञात गतिसे होता रहा है और वहाँसे यह जीव-जन्तु सब ही नये २ विकसित जीवोंकी बानगी (Sample) स्वरूप टूटते हुए तारों द्वारा आते रहे हैं। पृथ्वी पर अलग कोई विकास हुआ ही नहीं। परन्तु यह सिद्धान्त तो देखने ही में ऐसा निरर्थक ऊटपटाँग व हास्यास्पद प्रतीत होता है कि इस पर किसी प्रकारका वाद-विवाद करना भी व्यर्थ ही जान पड़ता है।

वनस्पति साम्राज्यका विकास भी पृथ्वीकी दीर्घ आयुके मतका समर्थन करता है। छत्र बीजक (Angiosperms) सबसे उच्चश्रेणीके पेड़, द्रविड़ कल्पके लगभग अन्तिम भागमें उत्पन्न हुए परन्तु बीजोत्पादक वृक्ष—टेरीडोस्परम्स (Pteridosperms) और कारडाइटीज़ (cordaites) चिलगोजाके निकट सम्बन्धी पौराणिक कल्पके डेवोनियन विभाग तकमें पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि केवल बीजोत्पादक वृक्षोंके विकासमें ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ कल्प लग जाते हैं। अस्तु, उस समयका जिसमें कि वृक्षोंके और विभागों-समाङ्गोद्भिद (Thallophyta) शैलयोद्भिद (Bryophyta), और पर्नाङ्गोद्भिद (Pteridophyta) जिनमें कि असंख्य वंश (Family) वर्ग (order), गोष्ठियाँ (Genera) और जातियाँ (Species) हैं—का विकास हुआ होगा अनुमान लगाया जा सकता है।

संक्षेपमें प्राणि-वर्गोंके विकासमें अनन्त समय लगा होगा। अस्तु, जैसा कि लार्ड सैलिसबरी ने एक बार कहा था कि 'यदि गणितज्ञोंकी गणना ठीक है तो प्राणिशास्त्र वेत्ताओंको वाञ्छित समय नहीं मिल सकता, तब जैलीफिशकी जीवन लीला बहुत शीघ्र ही समाप्त हो जाती और उसे उस लाभदायक इन्द्रिय परिवर्त्तनके परखने व दिखाने का समय कदापि न मिल सकता जिसमें कि वह मनुष्यका पूर्वज बननेमें समर्थ होती हैं।

जो कुछ भी हो, जब तक कि प्राणि-शास्त्र-वेत्ता, प्राणि साम्राज्य के विकास की गतिसे अनभिज्ञ हैं, वे पृथ्वीकी आयु संख्या-विशेषमें नहीं कह सकते। जब तक कि जीवों के पूर्ण विकासके लिये यथेष्ट समय मिलता है, पृथ्वीकी आयुके लिये कोई भी संख्या ग्रहण करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं। अपनी ओरसे तो वे केवल यही कह सकते हैं कि पृथ्वी कमसे कम करोड़ों वर्ष बूढ़ी है।

रबर

[ले० श्री सत्य प्रकाश एम-सी०]

आधुनिक सभ्यतामें रबरको भी बड़ा ऊँचा स्थान मिला है। साइकिलके टायर, ट्यूब, मोटरके पहिये, तरह तरहके खिलौने और यही नहीं, कहीं कहीं तो सड़कें भी रबरकी बनने लगी हैं। रबरकी मांग प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

रबर उत्पन्न करनेवाले देश ये हैं:—दक्षिणी अमेरिकाके अमेज़न और पैराके प्रान्त, पूर्व और पश्चिमी अफ्रीका, दक्षिणी भारतका मालाबारी तट, बर्मा, सीलोन, मलाया प्रायद्वीप, स्याम कोचीन-चीन। दक्षिणी अमरीकामें हेविया जातिके वृक्षोंसे रबरका दूध प्राप्त किया जाता है। इन वृक्षोंके दो मुख्य भेद हैं—साइबेरी और ब्रज़िलियनसिस। प्रत्येक वृक्ष से प्रतिवर्ष लगभग ११ सेर रबर प्राप्त होती है।

रबर वृक्षका दूध है। अमरीकामें ये वृक्ष स्वतः जंगली प्रान्तोंमें उगते हैं, इनकी कोई खेती नहीं की जाती। ज़मीनसे कोई दो गज़की ऊँचाई पर चाकू या अन्य तेज़ औज़ारोंसे पेड़में दराज़ कर दी जाती हैं, और इन दराज़ोंमें से दूध निकलने लगता है जिन्हें टीनके प्यालोंमें जमा किया जाता है। अधिकतर पेड़में प्रातःकाल दराज़ बनाये जाते हैं क्योंकि इस समय सबसे अधिक दूध निकलता है। प्रतिदिन प्रातःकाल नये दराज़ बनाये जाते हैं। प्रत्येक स्थलसे एक सप्ताहके लगभग दूध निकलता रहता है, अतः टीनके प्याले ७—८ दिनों तक दराज़ के नीचे लटका दिये जाते हैं। बूँद बूँद करके रबरका दूध टपकता रहता है। एक सप्ताहके बाद, रबरका दूध सामान्य विधिसे छाना जाता है, और और फिर इसे जंगली लकड़ियोंके घने धुएँमें रखा जाता है। ऐसा करनेसे यह जम जाता है।

मैक्सिको और दक्षिणी अमरीकामें कैस्टीलोआ कोस्टरीकाना जातिके वृक्षसे भी रबर प्राप्त करते हैं पर इन वृक्षोंमें रबर कम होती है। प्रत्येक वृक्षसे प्रति वर्ष २—२½ छटांक रबर ही मिलती है। दक्षिणी अमरीकामें पार्थेनियम आर्जेण्टेम नामका एक पौधा भी होता है जिसे काट लेते हैं और काट कर इसके तन्तुओंमें से रबर छुटा लेते हैं। इस रबरका नाम ग्वैले-रबर है।

अफ्रीकाके उष्ण प्रदेशोंमें कई जातिकी लतायें, पौधे और वृक्ष हैं जिनसे रबर मिल सकती है। हरएकसे रबर निकालनेकी पृथक् २ विधि है। पुराने समयमें यह किया जाता था कि किसी विशेष स्थल के सब पौधे काट डाले जाते थे और उनसे रबर प्राप्त की जाती थी, इस विधिसे रबरके पौधोंकी शीघ्र समाप्ति की सम्भावना होने लगी, अतः अफ्रीकाके भिन्न भिन्न राज्योंमें पृथक् पृथक् वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाने लगा है। वस्तुतः अफ्रीका के पौधे इस योग्य नहीं हैं कि छेद करके उनमें से दूध चुआ लिया जाय। अतः वे इस प्रकार काट दिये जाते हैं कि उनकी जड़ सुरक्षित रहे, और पौधा पुनः पनप सके। कटे हुए पौधेको चूर चूर करके उसकी रबरको पृथक् कर लेते हैं। पृथक् करनेमें किसी विशेष रासायनिक विधिका प्रयोग नहीं किया जाता है।

एशियामें रबरके जंगली पेड़ नहीं हैं, यहाँ तो रबरकी खेती की जाती है। सीलोन और मलाया राज्योंमें बृटिश ने, सन् १८७६ में० जावा, सुमात्रा और बेर्नियामें सन् १८८२ में डच लोगों ने और टौङ्किन, कम्बोडिया और लाओसमें सन् १८८५ में फ्रांसीसियों ने रबरकी खेती आरम्भ की। ये वृक्ष अधिकतर हेविया जातिके हैं जिनके या तो बीज बोये जाते हैं या कलम काट कर लगाई जाती है। पेड़की आयु जब ६ से १० वर्ष तक की हो जाती है तो वे इस योग्य समझे जाते हैं कि इससे समुचित मात्रामें रबर प्राप्त हो सके। इनसे रबर प्राप्त करनेकी वही विधि है जो अमरीकाके पेड़ोंके लिये थी, अर्थात् भिन्न भिन्न स्थलों पर दराज़ कर दी जाती हैं और रबरका दूध चुआ लिया जाता है, प्रारम्भिक अवस्थामें नये वृक्षोंसे प्रति वर्ष दूध

नहीं चुआया जाता, हर तीसरे वर्ष इनसे नया दूध प्राप्त किया जाता है पर जब वृक्ष काफी पुराने पड़ जाते हैं तो इनसे प्रति वर्ष रबर मिल सकती है। रबर प्राप्त करनेका समय वर्षाऋतुके बादका है, और फूल लगनेके समयमें रबर कभी नहीं चुआयी जाती। प्रत्येक प्रौढ़ वृक्षसे प्रति वर्ष डेढ़ सेरसे ढाई सेर तककी रबर प्राप्त होती है।

सन् १६०८ से १६१७ तक अमेज़न प्रान्तके जंगलोंसे प्रति वर्ष ३८००० टन रबर मिलती रही। खेती द्वारा सन् १६०८ में २२०० टन रबर मिली थी पर १६१८ में २१०००० टन मिलने लगी। सम्पूर्ण रबर की ७०—८० प्रतिशत मात्रा बृटिश साम्राज्यके अन्दर पायी जाती है। सन् १६१८ में इसका ब्योरा इस प्रकार था—

खेतीसे २१०००० टन
दक्षिणी अमरीका
के जंगलोंसे ३८००० टन
अन्य प्रकार १२००० टन

सन् १६२० में खेतीसे ३४००० टन रबर मिली। खेतीकी रबर बिलकुल शुष्क होती है पर पैरा की जंगली रबरमें २० प्रतिशत पानी भी होता है। अतः यह स्पष्ट है कि संसारमें ८०—६० प्रतिशत रबर खेती द्वारा प्राप्त की जाती है। आज कल ऐसा विश्वास किया जाता है कि दक्षिणी अमरीका और अफ्रीकामें रबरकी उपजकी मात्रा अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई है और उसकी वृद्धिकी कोई सम्भावना नहीं है। वैज्ञानिक विधियोंके प्रयोगसे रबरकी खेती दिन प्रतिदिन बढ़ रही है और रबर सस्ती भी हो रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि खेती द्वारा लगाये गये वृक्ष जंगली वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक सुकुमार होते हैं, और बारबार दूध निकालने पर उनकी शक्ति शनैः शनैः क्षीण हो जाती है। ऐसी अवस्थामें उनमें कृमि रोग भी हो जाते हैं और दीमक भी उनमें लगनी आरम्भ हो जाती है।

२

मेनीहोट और केस्टीलोआ जातिके वृक्षोंकी खेतीका भी प्रयत्न किया गया पर उनमें उतनी सफलता न मिली जितनी हेविया जातिके वृक्षोंमें। वस्तुतः हेवियाके अतिरिक्त अन्य जातिके पौधोंकी रबर व्यापारिक जगतमें बहुत ही कम देखनेको मिलती है। हेविया, मेनीहोट और केस्टीलोआ पौधोंकी कच्ची-रबरमें कूड़ा अधिक होता है और राल (रेज़िन) कम (२—७ प्रतिशत ही)। आज कल लोगोंका ध्यान ऐसी रबरकी ओर गया है जिसमें रेज़िन अधिक हो। इस प्रकारकी रबरमें 'जेट्लौङ्ग' या 'मृत-बोर्नियो' अधिक प्रसिद्ध है जो एल्सटोनिया कोस्टुलाटा और डायरा कोस्टुलाटा जातिके पौधोंसे प्राप्त की जाती है। इनमें ४०—५० प्रतिशत पानी, ३०—४० प्रतिशत सिरकोन में घुलनशील रेज़िन और १५—२० प्रतिशत कूड़ा होता है। रेज़िन को निष्कर्षण द्वारा निकाल लेने के पश्चात् जो रबर प्राप्त होती है वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है। रेज़िन भी व्यापारिक उपयोगमें आ जाते हैं।

रबरका दूध
(LATEX)

हेविया जातिके पौधेका दूध गायके दूधके समान श्वेत होता है। रबरकी मात्राके अनुसार इसमें चपचपाहट भी होती है। इसका घनत्व भी रबर की मात्रा पर निर्भर है। जैसे पानी और तैलके मिला देनेसे दूधिया पायस (Emulsion) बन जाता है उसी प्रकार इस दूधको भी एक प्रकारका रबर और पानीका पायस या इमलशन समझना चाहिये। इसमें बहुतसे द्राक्षोसिद, शर्करायें, राल, प्रत्यमिन, प्रेरकाणु, कार्बनिक अम्ल और खनिज लवण मिले रहते हैं। इन पदार्थोंकी मात्रा भिन्न २ दूधोंमें भिन्न २ है। पेड़की जाति और आयु पर तो ये निर्भर हैं ही पर इस बात पर भी कि पेड़ किन अवस्थाओंमें लगाया गया है और दूध ज़मीन से कितनी ऊँचाई पर निकाला गया है। जितना

ही पेड़ पुराना होता जाता है, उसके दूधमें रबरकी मात्रा उतनी ही बढ़ती जाती है। वस्तुतः ६—१० वर्ष पूर्व तो पेड़मेंसे दूध निकालना ही नहीं चाहिये। जितनी ही ऊँचाई परकी शाखसे दूध निकाला जायगा, उतनी ही उसमें रबरकी मात्रा कम होगी नीचे दी गई सारिणीसे दूधके पदार्थोंका अनुमान लगाया जा सकता है।

	अमेज़न प्रान्तका	सीलोनकी खेतीका
पानी	४७'०	५५'२
कूचू	३२'०	४१'३
खनिजलवण	६'७	०'४
प्रत्यमिन	२'३	२'२
राल	६'०	२'०
शर्करा	—	०'४

अधिकतर प्रत्येक दूधमें शर्करा या द्राक्षोसिद कम-अधिक रहते ही हैं, ये शर्करायें इनोसेटोल समूहकी होती हैं न कि द्राक्षोज़ समूहको।

लिटमस द्योतक पत्रसे परीक्षा करने पर पता चलता है कि बहुतसे ताजे दूध क्षारीय होते हैं, पर थोड़ी देर रख देने पर उनमें प्रेरकाणुओंके कारण खमीरण होने लगता है और दुग्धिकाम्ल आदि अम्ल उत्पन्न हो जाते हैं। इन अम्लोंके कारण दूधमें अधःक्षेपण आरम्भ हो जाता है और दूध जमने लगता है (जैसे दूधसे दही बनता है)। फिकस जातिके पौधेका दूध अम्लीय होता है। यह आम्लिकता किसी विशेष कार्बनिकाम्लके कारण है जिसके सैन्धक और पांशुज लवण अनघुल हैं। दूधमें ओषदेज कीटाणु भी विद्यमान रहते हैं, जिनके कारण हवामें खुला रखने पर यह भूरा होने लगता है और कुछ घण्टोंमें बिलकुल काला पड़ जाता है। यदि दूधमें सैन्धक-अर्ध गन्धित मिला दिया जाय तो दूधका काला पड़ना बन्द हो जाता है और रबरके गुणोंमें भी कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पौधोंमें इस दूधकी क्या उपयोगिता है? कुछ लोगोंका विचार है कि पेड़के खाद्य पदार्थ इस दूधमें संचित और सुरक्षित रहते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि यह पेड़का दूषित रस है जैसे पसीना या मूत्र आदि। तीसरे दलके व्यक्तियोंकी यह कल्पना है कि यह दूध पेड़ोंके क्षतोंको शीघ्र निरोग करनेके लिये एवं कृमियों और कीटोंसे इनकी रक्षा करनेके लिये प्रदान किया गया है। वस्तुतः इस दूधके बहुतसे लाभ हैं। पेड़ोंका खाद्य पदार्थ भी इसमें संचित रहता है। पेड़के जिस अंगमें जिस प्रकार के पदार्थकी आवश्यकता पड़ती है, यह दूध वहां उसको पहुँचा देता है। यही नहीं, यह दूध अनेक आक्रमणोंसे पेड़की रक्षा भी करता है।

दूधका जमना

रबरके दूधको जमाने या अधःक्षेपित करनेकी तीन विधियां हैं—(१) धूम्रविधि (२) अम्ल विधि (३) स्वतः विधि।

धूम्रविधि—अमेज़न प्रान्तकी धूम्रविधिका नामोल्लेख पहले किया जा चुका है। धुएँमें दो गुण होते हैं, एक तो इसकी गर्मी और दूसरे इसके आम्लिक पदार्थ। गरम धुएँके संसर्गसे रबरके दूधका पानी शीघ्र भाप बन कर उड़ने लगता है और फिर धुएँके अम्ल जैसे कार्बनिकाम्ल, पिपीलिकाम्ल या सिरकाम्ल इस दूधका अधःक्षेपण कर देते हैं अर्थात् इसे जमा देते हैं। धुएँके कोलतारमें क्रिओसोट नामक पदार्थ होता है जिसके कारण दूधकी सड़नसे रक्षा होती है। रबरके दूधको लकड़ीके एक बड़े तख्ते पर घने धुएँमें फिराते हैं। जब तक तख्ते पर १०-५० सेर रबर न जमा हो जाय तब तक यह क्रिया जारी रखी जाती है। यह रबर व्यापारिक क्षेत्रमें 'उत्तम पैरा' के नामसे प्रसिद्ध है। धूम्र द्वारा संचालित करनेके लिये अनेक प्रकारकी मशीनें भी आविष्कृतकी गई हैं।

अम्लविधि—धूम्रविधि भी एक प्रकारकी अम्लविधि है क्योंकि धुएँका मुख्य प्रभाव उसके अम्लोंके

कारण ही है। अम्लविधिमें अधिकतर सिरकाम्ल का व्यवहार किया जाता है। अन्य अम्ल और अम्लीय पदार्थोंका भी व्यवहार किया जा सकता है जैसे पिपीलिकाम्ल, दुग्धिकाम्ल, गन्धकाम्ल, सैन्धक उदजन गन्धेत, फिटकरी, गन्धसाम्ल आदि का। योरोपीय महायुद्धके समय जब सिरकाम्ल दुष्प्राप्य हो रहा था तब इन पदार्थोंका बहुधा उपयोग किया जाने लगा था। इस विधि द्वारा अधःक्षेपण करने पर आवश्यकता पड़ती है कि कच्ची रबरको भली प्रकार धोकर अम्लोंसे मुक्त कर दिया जाय।

अधःक्षेपणके योग्य अनेक पदार्थों के पेटेण्ट लिये गये हैं पर उनमेंसे कितने वस्तुतः उपयोगी हैं यह कहना कठिन है क्योंकि अधःक्षेपणके उपरान्त रबरमेंसे उन पदार्थों को धोकर निकालनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। रबरमें इन पदार्थों को अधिशोषित करनेके प्रबल गुण विद्यमान हैं, ऐसी अवस्था में अधःक्षेपक पदार्थोंको पृथक् करना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव हो जाता है। यदि ये पदार्थ अलग न हो सके तो अच्छी रबर प्राप्त नहीं होती है। गन्धक द्वारा रबरको पक्की करने पर यदि अन्य अशुद्धियां रहगयीं तो रबर जल्दी खराब हो जानेकी आशंका है।

दूधकी मात्राके अनुसार १-२ प्रतिशत हैम सिरकाम्लका उपयोग किया जाता है पर यह मात्रा कुछ सीमा तक न्यूनाधिक भी की जा सकती है। अधिक सिरकाम्लके उपयोगसे रबरके खराब हो जानेकी सम्भावना है। दूधको अधःक्षेपित करनेके लिये जितने सिरकाम्लकी आवश्यकता होती है उससे कम ही सिरकाम्ल डाला जाता है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि अधःक्षेपणका मुख्य कारण एक प्रकारका कीटाणु है जो सिरकाम्लकी विद्यमानतामें उत्तेजित एवं अधिक क्रियाशील हो जाता है। वस्तुतः यह विधि उसी प्रकारकी है जिस प्रकार दूधसे दहीका जमना। दूधमें थोड़ासा अम्ल डाला जाता है जिसकी विद्यमानतामें दूधके कीटाणु इसे दहीमें परिणत कर देते हैं। यदि रबरके दूधमें अधिक अम्ल डाल दिया जाय तो सम्भवतः कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और दूधके जमने का कारण अम्लके अधःक्षेपक गुणोंके कारण होता है। रबरके कलोद घोल पर ऋण संचार है जो अम्लके धन-उदजन-यवन द्वारा शिथिल हो जाता है और दूध जमने लगता है।

स्वतः अधःक्षेपण विधि—यदि रबरके दूधमें ०·२ प्रतिशत द्राक्षशर्कराका घोल मिला दिया जाय तो रख छोड़ने पर स्वयं अपने आप १८ घंटेके लगभग समयमें जम जाता है। इसका क्या कारण है, यह कहना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि शर्करा की विद्यमानतामें रबरका भ्रष्ट होना बन्द हो जाता है। यदि शर्कराकी विद्यमानतामें अधःक्षेपण किया जाय तो अधःक्षेपित रबरमें मीठी सुगन्ध मिलेगी। पर यदि शर्कराके बिना अधःक्षेपण किया जाय तो रबरमें असह्य दुर्गन्ध उठती है। यदि अधःक्षेपण वायुकी अनुपस्थितिमें किया जाय तो यह पूरा नहीं होता है। अधःक्षेपणकी यह स्वतः विधि मलाया प्रायद्वीपमें व्यवहृत होती है और सम्भव है कि समय आने पर यह अम्लीय विधिका पूर्ण स्थान ले लेगी।

पैरा रबर जिसमें धूम्र विधिका उपयोग किया जाता है, कुछ लोगोंके विचारसे खेती द्वारा प्राप्त रबरकी अपेक्षा जिसके जमानेमें मुख्यतः अम्ल-विधिका उपयोग करते हैं, अधिक अच्छी होती है क्योंकि अम्ल विधिमें अम्लको दूर करनेके लिये धोना आवश्यक है जिसके कारण रबर कुछ खराब हो जाती है। पर कुछ लोगोंका विचार है कि खेतीकी रबर ब्रेज़िल पैराकी अपेक्षा अच्छी होती है क्योंकि इसमें पैराके समान धूलके कण नहीं होते। यह स्वच्छ होती है। पर बहुधा 'उत्तम पैरा' खेतीकी रबरकी अपेक्षा अधिक दाममें बिकती है। खेतीकी रबरमें एक खराबी है, वह यह कि यह गन्धकीकरण द्वारा पैराके समान शीघ्र पक्की नहीं बनाई जा सकती। सीलोन आदि स्थानोंमें अम्ल-

विधि द्वारा बनाई गई रबरको फिर धूम्रसे प्रभावित कर देते हैं। इस प्रकार अम्ल विधिके दोषोंके साथ साथ रबरमें धूम्रविधिके कुछ गुण भी आ जाते हैं।

कच्ची रबर या कूचू

उपर्युक्त विधियों द्वारा अधःक्षेपित रबरमें पृथक् पृथक् कण इस प्रकारसे आपसमें संयुक्त रहते हैं कि सम्पूर्ण रबरका लचकीला थक्का बन जाता है। इस थक्के (Clot) की रचना भिन्न भिन्न विधियों द्वारा प्राप्त रबरमें भिन्न भिन्न होती है। यदि अधःक्षेपणके लिये हलके अधःक्षेपकोंका उपयोग किया जाय तो थक्केकी गठन पोली होगी और रबरमें लचक कम होगी पर यदि तीव्र अधःक्षेपकों द्वारा थक्का बनाया जाय तो रबर ठोस और बहुत अधिक लचकीली होगी।

अन्य जेलियोंके समान रबर एक प्रकारके उद-कर्बन $(क_{१०} उ_{१६})_न$ का पायस घोल है जिसमें इसके बहुत छोटे छोटे कण ऐसे माध्यममें बिखरे रहते हैं जो कुछ तो प्रत्यमिन पदार्थों का पर मुख्यतः रबरका रूपान्तर ही होता है। इस प्रकार रबरको रबरका रबरमें घोल समझना चाहिये।

अधःक्षेपणके समय रबरके साथ साथ कुछ राल, प्रत्यमिन और खनिज लवण भी अवक्षेपित हो जाते हैं। पैरा रबरमें खेतीकी रबरकी अपेक्षा ये अशुद्धियाँ अधिक होती हैं। इसमें कुछ नोषजनीय पदार्थोंका होना लाभप्रद ही है क्योंकि यह रबरके शोधनमें और आगेकी क्रियायोंमें सहायता देते हैं।

रबरकी बहुत सी अशुद्धियाँ इसको किसी उपयुक्त घोलकमें घोल कर दूरकी जा सकती हैं। रबरको घोलकके संसर्गमें लाते ही यह फूलने लगती है और इसके पश्चात् अत्यन्त स्निग्ध घोल प्राप्त होता है। यह घोल इतना स्निग्ध होता है कि इसे छानना कठिन हो जाता है। बानजावीनका उपयोग घोलकके रूपमें किया जाता है। यदि इस स्निग्ध घोलमें थोड़ासा त्रि-हर-सिरकाम्ल डाल दिया जाय इसकी स्निग्धता कम हो जाती है और यह पतला हो जाता है। अब छान कर इसकी अशुद्धियाँ दूरकी जा सकती हैं। कर्बन द्विगन्धिद, हरीद्रिन (क्लोरो फार्म) या बानजावीनके घोल बिलकुल स्वच्छ और पारदर्शक होते हैं। यदि ज्वलक या पैट्रोलियम ज्वलकका व्यवहार किया जाय तो धुन्धले घोल प्राप्त होंगे। इसका कारण यह है कि इन घोलकोंमें रबर अधिक घुलनशील नहीं है और कुछ अनघुल कण घोलकमें छितरे रहते हैं और इसीलिये घोल धुँधला प्रतीत होता है। यदि बानजावीनके घोलको अति-सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाय तो इस घोलमें भी रबरके कण घूमते हुए दिखाई पड़ेंगे। इसी प्रकार यदि रबरका पैट्रोलियममें २ प्रतिशत घोल बनाया जाय और इसे किसी तीव्र पराकासनी प्रकाशके सामने रक्खा जाय तो यह घोल भी धुन्धला हो जावेगा।

पैरा रबरमें ६ प्रतिशत ऐसा अनघुल पदार्थ होता है जिसमें ओषजन अधिक होता है। इसमें ये पदार्थ होते हैं—

(१) कुछ ऐसे पदार्थ जो पूर्ण रूपसे रबर नहीं बन पाये।

(२) रबरका ओषजनयुक्त यौगिक

(३) अधिक संघट्टित उदकर्बन

(४) प्रत्यमिन

(५) ओषदेज आदि प्रेरक जीवाणु जो रबरको नीरंग कर सकते हैं।

कच्ची रबरकी राल और प्रत्यमिन अशुद्धियां बहुधा पृथक् नहींकी जाती हैं, क्योंकि ऐसा करनेसेमें व्यय अधिक पड़ता है और रबरका मूल्य बढ़ जाता है। इसका एक और भी कारण है। रालकी विद्यमानतामें रबर ओषजन द्वारा सड़ने नहीं पाती और इसके प्रत्यमिन पदार्थ गन्धकीकरण द्वारा रबरको पक्की बनानेमें सहायता देते हैं।

रबरके घुलनशील भागमें $(क_{१०} उ_{१६})_न$ उदकर्बन रहता है पर बहुधा यह भी ओषजनसे संयुक्त रहता है। पैरा रबरमें ०·६१ प्रतिशत ओषजन होता है। कच्ची रबर या कूचूके बहुतसे यौगिक भी बन सकते हैं—जैसे—

कूचू चतुर्-अरुणिद—$क_{१०} उ_{१६} रु_४$

कूचू नैलिद—$क_{१०} उ_{१६} नै_२$

कूचू उदहरिद—$क_{१०} उ_{१८} ह_२$

कूचू नोषोसित—$(क_{१०} उ_{१६} नो_२ ओ_३)_न$

इन यौगिकोंका अध्ययन करके कूचूके संगठन का अनुमान किया गया है। इसका सामान्य सूत्र $(क_{१०} उ_{१६})_न$ है। न का मान बहुधा ६—८ माना जाता है, भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें इसका मान भिन्न भिन्न है। १८०°श तक गरम करने पर रबरका संगठन यही रहता है यद्यपि भौतिक गुण परिवर्तित हो जाते हैं। पर अधिक गरम करनेसे रबर विभाजित होने लगती है और तैलीय पदार्थ प्राप्त होते हैं जिनमें ८४% रबरका अंश रहता है। इस तैलीय पदार्थमें रबर साधारण तापक्रम पर ही घुलन-शील है।

पक्की रबर बनाना या रबर का गन्धकीकरण

कच्ची रबर या कूचू इस योग्य नहीं होती कि इसका व्यवहार अनेक प्रकारसे किया जा सके। इस उद्देश्यसे इसका शोधन किया जाता है और पक्की रबर बनाई जाती है। शोधन का तात्पर्य्य यह नहीं है कि कच्ची रबरकी कुछ अशुद्धियाँ दूर कर दी जाती हैं प्रत्युत इसका अर्थ यह है कि कच्ची रबरमें कुछ ऐसी चीजें मिला दी जाती हैं जिससे रबर अधिक उपयोगी हो जाती है।

पक्की रबर बनानेके लिये गन्धक अथवा गन्धक हरिदका उपयोग किया जाता है। सन् १८४६ में पार्क्स ने गन्धकीकरण की शीतविधिका उपयोग किया। इस विधिमें कच्ची रबरके पतले पत्र गन्धक हरिदके किसी घोलकमें डुबोये जाते हैं अथवा रबरके पत्रोंको गन्धक हरिद की वाष्पों के संसर्गमें प्रभावित करते हैं। ऐसी अवस्थामें रबर और गन्धक हरिदमें कोई रासायनिक परिवर्तन होता है। यदि गन्धक हरिद बानजावीन में घोला जावे और इस घोल की अधिक मात्राका प्रयोग किया जावे, तो $(क_{१०} उ_{१६})_२ ग_२ ह_२$ सूत्र का यौगिक बनता है। पर पक्की रबरमें इतना गन्धक हरिद नहीं लगता जितना इस सूत्रके अनुसार लगना चाहिये, कुछ कम ही लगता है।

गरम विधि द्वारा भी गन्धकीकरण किया जाता है। कच्ची रबर को गन्धकके साथ मिलाया जाता है और मिश्रण को १३५°-१६०° तापक्रम पर रक्खा जाता है। गन्धकके अतिरिक्त अनेक गन्धक यौगिक अथवा गन्धकसे मिश्रित पदार्थोंका प्रयोग भी इस कार्य्यके लिये उचित बताया जाता है। रबरके गुण इस बात पर बहुत कुछ निर्भर हैं कि इसको गन्धकीकरण की प्रक्रिया द्वारा कितनी देर तक प्रभावित किया गया है। एक अवस्था तक तो गन्धकीकरणकी मात्रा बढ़ाने तक रबरकी लचक कम होती जाती है पर साथ साथ इसकी तनाव शक्ति बढ़ती जाती है। यदि गन्धकीकरण की मात्रा और बढ़ाई जाय (अर्थात् यदि तापक्रम और बढ़ा दिया जाय या अधिक देर तक गन्धक का संसर्ग रखा जाय) तो भंजनशील रबर बन जाती है जो बिलकुल ही व्यर्थ होती है और इससे कुछ लाभ नहीं उठाया जा सकता है। रबरके दो ही मुख्य गुण हैं, लचक और तनाव शक्ति। भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न लचकों की रबरोंकी आवश्यकता पड़ती है, और यह परिणाम भिन्न अवस्थाओं तकके गन्धकीकरण द्वारा प्राप्त हो सकता है।

पीची ने सन् १६१६ में गन्धकीकरणकी एक विधि और प्रस्तुत की थी। इस विधिमें कच्ची रबरके पतले पत्रों अथवा किसी घोलकमें इसके घोलको गन्धक द्विओषिद और उदजन गन्धिदके वायव्यों द्वारा एक ही साथ प्रभावित करते हैं। गन्धक द्विओषिद और उदजन गन्धिद दोनों

परस्पर प्रभावित होकर गन्धक देते हैं और यह गन्धक रबरके गन्धकीकरणमें प्रयुक्त होता है।

$$२ उ_२ ग + ग ओ_२ = २ उ_२ ओ + ३ ग$$

यह गन्धकीकरण सामान्य ठंडे तापक्रम पर पर ही किया जाता है, गरम करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

रबरके गन्धकीकरण को समझनेके लिये कई सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। वीबर का कहना है कि रबर और गन्धकमें कुछ तो रासायनिक संयोग हो जाता है और कुछ रबर और गन्धक का मिश्रण बन जाता है। वूल्फगेङ्ग ओस्टवाल्ड ने १९१० में यह विचार प्रस्तुत किया कि रबर गन्धक का अधिशोषण मात्र कर लेती है। अधिशोषणके गुण उसी प्रकारके हैं जिनसे कलोद रसायनिक परिचित हैं। आजकल कुछ लोगोंका विचार है कि पहले तो गन्धक और रबरमें रासायनिक यौगिक बनता है और फिर यह यौगिक शेष रबर द्वारा अधिशोषित हो जाता है। औस्ट्रोमिसलेन्सकीके प्रयोग भी इसी विचार का समर्थन करते हैं। इसने प्रयोगोंसे यह दिखाया है कि यदि कच्ची रबर में कूचू उदहरिद या कूचू चतुर् अरुणिद यौगिक थोड़ी सी मात्रामें मिला दिये जायँ और फिर मिश्रणको गरम किया जाय तो गन्धकीकरण द्वारा प्राप्त रबरके समान ही पक्की रबर प्राप्त हो जायगी। इससे स्पष्ट है कि सम्भवतः गन्धकीकरणमें पहले रबर और गन्धक का रासायनिक यौगिक बनता है। बेरीके मतानुसार यह यौगिक $(क_{१०}उ_{१६})_{२०}ग_{२}$ है। यह यौगिक शेष रबर द्वारा अधिशोषित हो जाता है। इस अधिशोषणके समय अथवा इसके उपरान्त ही रबरके गुणोंमें भौतिक परिवर्तन उत्पन्न होता है और अन्ततोगत्वा पक्की रबर प्राप्त होती है।

व्यवहारमें बहुधा ९५ भाग कच्ची रबरमें ५ भाग गन्धक मिलाते हैं और भिन्न भिन्न समयों तक किसी स्थिर तापक्रम पर (उदाहरणतः ५० पौंड दबावकी भाप द्वारा) गन्धकीकरण होने देते हैं। नीदरलेण्ड गवर्नमेण्ट इन्सटीट्यूटमें ९२·५ भाग कच्ची रबर और ७·५ भाग गन्धकको ५२ पौण्ड भापके दबाव पर १½ घण्टे तक प्रभावित करते हैं। भिन्न भिन्न अवसरों पर रबरके भौतिक गुणोंकी जांच करते रहते हैं। समय और तापक्रमको घटा बढ़ाकर या गन्धक और रबरके अनुपातमें परिवर्तन करके अभीष्ट रबर तैयार कर लेते हैं। रबरमें प्रतिशत कितना गन्धक संयुक्त है इसको गन्धकीकरण का गुणक कहते हैं—

$$\text{गन्धकीकरणका गुणक} = \frac{\text{संयुक्त गन्धक} \times १००}{\text{रबर}}$$

संयुक्त गन्धकका तात्पर्य्य उस गन्धकसे है जो सिरकोन द्वारा पृथक् नहीं किया जा सकता है। स्पेन्सके मतानुसार पक्की रबरके गन्धकीकरणका गुणक २·८—३ होना चाहिये। पर और लोग अधिकतम तनावशक्ति वाली रबरोंका गुणक ४-५ मानते हैं।

बहुधा वह रबर भी जिसमें संयुक्त गन्धक ३ प्रतिशतसे कम हो ७०° तापक्रम पर ६६ घण्टे तक रखने पर उतनी ही तनावशक्ति वाली हो जाती है जितनी की ५ प्रतिशत गन्धक वाली पक्की रबर, इसे जीर्णताका प्रभाव कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि रबरके गन्धकीकरण करनेसे पूर्व यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस रबरका व्यवहार किन प्रकारके कार्यों में होगा क्योंकि इसकी तनाव शक्ति पर जीर्णताका बहुत प्रभाव पड़ेगा। यदि गन्धकीकरण का गुणक ३·५ से अधिक है तो १२ महीनेमें ही रबर इतनी जीर्ण हो जायगी कि वह काम लायक नहीं रहेगी, पर यदि गुणक ३·२ है तो यह कई वर्ष तक खराब न होगी। अतः गन्धकीकरण विधिमें तापक्रम, गन्धकीकरण का समय, और रबर और गन्धकका अनुपात आदि विषयों पर सदा ध्यान रखना चाहिये।

यदि कच्ची रबरमें से प्रत्यमिन पदार्थ निकाल लिये जायँ तो गन्धककीरण धीरे धीरे होगा। पैरा रबर और खेतीकी रबरके गन्धकीकरणों की भिन्नता का यही कारण होता है। खेतीकी रबरमें सिरकाम्लका प्रयोग किया जाता है और फिर इस अम्लको पृथक् करनेके लिये रबर धोयी जाती है। धोनेके कारण इसके प्रत्यमिन पदार्थ भी धुल कर अलग हो जाते हैं, अतः इसके कम हो जानेके कारण खेतीकी रबर कठिनतासे धीरे धीरे पक्की बन पाती है। ईटन और ग्रैन्थमका विचार है कि यदि कच्ची अधःक्षेपित रबरके टुकड़े गन्धकीकरणके पूर्व ८—१० दिन छोड़ रखे जावें तो इनसे बहुत ही अच्छी पक्की रबर तैयार की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रख छोड़ने पर प्रेरकाणु प्रत्यमिन पदार्थोंको नष्ट कर डालते हैं और बहुतसे नोषजनीय पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जो धोकर अथवा सुखाकर अलग नहीं किये जा सकते। ऐसा कूचू गन्धकीकरणमें पहले कूचूकी अपेक्षा $\frac{१}{२}$ समय ही लेता है।

पक्की रबर बनानेके लिये गन्धकका प्रयोग सर्वथा आवश्यक नहीं है। औस्ट्रोमिस्लेन्सकी ने अनेक पदार्थोंका प्रयोग बतलाया है जिससे अच्छी रबर तैयार की जा सकती है। समसंगतिक त्रिनोष बानजावीन लिथार्ज (सीसओषिद) की विद्यमानतामें आसानीसे पक्की रबर बना सकता है, बानजोइल परौषिद भी इस कार्य्यमें सफलतापूर्वक व्यवहृत हो सकता है

एबोनाइट या वल्केनाइट—कच्ची रबरको गन्धक की अधिक मात्राके साथ गरम करनेसे जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे एबोनाइट या वल्केनाइट कहते हैं इसके १०० भाग में ६५ भागके लगभग कच्चीरबर और ३५ भागके लगभग गन्धक होता है। गन्धक से संयुक्त करनेकी प्रक्रिया ऊँचे तापक्रम पर अधिक समय तक की जाती है। इस प्रकार रबर के सम्पूर्ण भौतिक गुण विलुप्त हो जाते हैं और भञ्जनशील पदार्थ प्राप्त होजाता है। इस पदार्थका आनुमानिक रासायनिक सूत्र (क$_{५}$ उ$_{८}$ ग) है।

अन्य पदार्थ—रबरके बहुतसे पदार्थोंमें केवल गन्धकीकृत कूचू ही नहीं होता, प्रत्युत इनमें कई प्रकारके भरतू पदार्थ मिला दिये जाते हैं। इनके मिलानेके दो उद्देश्य हैं, एक तो ऐसा करनेसे सस्ते दामोंकी रबर बन जाती है, और दूसरे, ऐसा करने पर रबरके भौतिक गुणोंमें भी कुछ उपयोगी परिवर्तन हो जाते हैं। बहुतसे ऐसे स्थानोंमें जहां रबरको बारी बारी बहुत सिकुड़ना और फैलाना पड़ता है, रबरमें दस्तओषिद या मगनीस ओषिद मिला दिया जाता है। यदि नोरंग रबर प्राप्त करना हो तो 'श्वेत-रबर-स्थानापन्न' नामक पदार्थ मिला दिया जाता है। यह स्थानापन्न पदार्थ रेप-तैल पर गन्धक एक-हरिदकी प्रक्रियासे बनाया जाता है। रंगीन रबर बनानेके लिये कई प्रकारके पदार्थोंका उपयोग किया जाता है। आंजन गन्धिद का प्रयोग तो इस कार्य्यके लिये बहुत ही किया जाता है, पर संदीणम्का पीला गंधिद, रागओषिद, दस्त रागेत, अल्ट्रामेरीन, और दीपकज्जलका बहुत व्यवहार किया जाता है। भरतू पदार्थके रूपमें सरेस का भी उपयोग किया जाता है।

रबरके साथ साथ बहुधा 'शोधित रबर' और बिस्यूमेन भी मिलाये जाते हैं। शोधित रबरसे तात्पर्य्य उस रबरसे है जो पुरानी, या ख़राब रबर को चूर्णरूप पीस कर अम्ल या क्षार द्वारा प्रभावित करनेके उपरान्त जलसे धोकर दबावकी भाप द्वारा लचकीली बनायी जाती है। गन्धकीकृत रबरके समान यह शोधित रबर उन घोलकोंमें भी अनघुल है जिनमें कच्ची रबर घुल जाती है। इसकी शोधन-प्रक्रियामें रबरका गन्धक नष्ट नहीं होने पाता और न इसके भरतू पदार्थ ही बहुत खराब होते हैं।

इस लेखमें बनावटी रबरके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है। इसका उल्लेख फिर कभी किया जावेगा।

(अनूदित)

सिर पीड़ा

[ले० श्री हरिकुमार प्रसाद वर्मा एम० एस-सी०]

ऐसे भाग्यशाली लोग बहुत कम होंगे जो यह कह सकें कि उन्हें जिन्दगी भरमें कभी सिर दर्द नहीं हुआ। छोटी सी मामूली बीमारी होने पर भी सिरमें दर्द होने लगता है। बहुतसे लोगोंको तो यह तकलीफ इतनी बार हो चुकी होगी कि वे इससे भली भाति परिचित होंगे। बदनमें किसी भी विकारके उत्पन्न होने की यह स्वाभाविक प्रति क्रिया है।

सिरमें पीड़ा चाहे किसी भी कारण क्यों न हो उसके चिह्न एकसे होते हैं। यह अवश्य होता है कि कभी तकलीफ कम होती है और कभी ज्यादा। उसकी ठीक प्रक्रिया क्या है यह वैज्ञानिक अभी निश्चित नहीं कर पाये हैं। उनका कथन है कि शिर दर्द पैदा करने वाली बीमारियोंमें बृहत्-मास्तिष्क सौषुम्न्य द्रव (Cerebro-spinal flvid) पर जो सुषुम्ना और मस्तिष्क को घेरे हुए है दबाव बढ़ जाता है मगर साथ ही यह भी देखनेमें आया है कि अगर किसी मनुष्यके शिरमें पीड़ा न हो और थोड़ा सा यही सौषुम्न्य द्रव निकाल लिया जाय तो उसका सिर दुखने लगता है।

सिर दर्द चार प्रकार का होता है (१) अन्य-रोगोद्भूत सिर पीड़ा (Symptomatic headachle) किसी खास बीमारीके साथ जो सिर दर्द उत्पन्न होता है वह बदनके और बहुतसे विकारोंमें से जो उस वक्त मौजूद होते हैं एक है। इस प्रकार का दर्द निम्नलिखित बीमारी होने पर बहुधा हो जाता है। (क) किसी प्रकार की लगनी बीमारीमें ज्वर आनेके कारण सिर दुखने लगता है। यह जरूरी नहीं है कि शिर दर्द तभी बहुत ज़ोर का हो जब बहुत तेज बुखार चढ़ा हुआ हो। उसका ज्वरकी तीव्रतासे कोई सम्बन्ध नहीं होता। बीमारीके शुरू होने पर ज्वर हो जाना या सिर दुखना मामूली बात है। (ख) कई प्रकारके जहरीले या नशीले पदार्थ जैसे कच्ची शराबके सेवनसे भी दर्द हो जाता है। बहुत सी दवायें सिरमें दर्द पैदा कर देती हैं और दूसरी प्रकारकी दवायें उसे अच्छा कर देती हैं। (ग) विशेष अंगों की बीमारियाँ जैसे दिल की बीमारी या पेट अथवा आंतोंके विकार या स्त्रियोंके वस्ति गह्वरके रोग (pelvic disorders) में बहुधा सिर में दर्द हो जाता है। (घ) गुर्देके बीमारियोंमें सिर दर्द बहुत ही तीव्र होता है और इसे खास महत्व दिया जाता है। डाक्टरी जाँचसे यह बात भली प्रकार जानी जा सकती है कि दर्द गुर्दे की बीमारीके कारण है या नहीं। (ग) सबसे अधिक दुखदाई सिर दर्द मस्तिष्कके व्रण (tumor) के उपरान्त होता है। इस प्रकार का दर्द बहुत कम लोगोंके होता है और बहुत आसानीसे पहचाना जा सकता है। इस प्रकारके शिर दर्द का महत्व और इलाज उन रोगों पर निर्भर है। जो इसका कारण होती हैं। डाक्टरको जाँच करते समय उन सब बातों को ध्यानमें रखना चाहिये जिनकी वजहसे दर्द उत्पन्न हो सकता है।

(२) स्वाभाविक शिर पीड़ा (Habitual or recurrent headache) बहुतसे मनुष्योंका कोई अन्य रोग न होते हुए भी कभी कभी सिर दुखने लगता है या सदा दुखा करता है। यह दर्द इतना तीव्र नहीं होता कि रोगी अपना रोज का कारबार छोड़ बैठे मगर उसे वह बे मनसे करता है, इससे काम भी अच्छा नहीं होता और उन्हें भी अपने कामसे तसल्ली नहीं होती। ऐसे मनुष्योंके बदनकी बनावट इस प्रकारकी होती है कि छोटेसे छोटे विकारोंसे भी (जिनका कि मामूली आदमीको पता भी नहीं लगता) उनका सिर दर्द करने लगता है। यह आदत बहुधा खानदानी होती है। ऐसे मनुष्योंको यह भली भाँति समझ लेना चाहिये कि अन्य लोगोंके मुक़ाबिलेमें उनमें बरदाश्त करनेकी शक्ति कम है और इसलिए अपने रहन सहनमें उन्हें बहुत सावधानीसे काम लेना चाहिये।

बहुधा वात मण्डल (nervous system) के अधिक थकाए जानेसे सिरमें दर्द होने लगता है। हाथके बारीक कामोंके कारण (जैसे बुनना या काढ़ना जिनमें बहुत देर तक ध्यान जमा कर काम करना होता है) भी पीड़ा होने लगती है। आंखों पर अधिक जोर डालना, घबड़ाहट या लड़ाई झगड़े भी शिर दर्द के कारण होते हैं।

बहुत से लोग इतने छुई मुई होते हैं कि ऐसी बातोंसे जिनसे कि दूसरों को मामूली सा दर्द हो उन्हें बहुत जल्दी और बहुत तीव्र दर्द होने लगता है। अगर गर्मीके कारण एक बार सिर दर्द हो जाय तो फिर धूपमें निकलते ही दर्द होने लगता है। शोर व गुल या देर तक लगातार जोर की आवाज़ सुननेसे भी सिर दर्द करने लगता है। बहुतोंका तो भीड़में या किसी नाटक या सिनेमामें जहां बहुतसे मनुष्य जमा हों, जाते ही सिर दर्द शुरू हो जाता है। सिर दर्दके कारणकी जांच करते हुए इसीलिए इस बातका ख्याल रखना आवश्यक है कि रोगीका स्वास्थ कैसा है, उनकी प्रकृति और स्वभाव कैसा है और किन बातोंका उस पर प्रभाव पड़ता है और उसकी असहनशीलतासे लाभ उठानेके लिए उसके बाह्यपरिस्थितियोंमें कोई विशेष बात तो नहीं हो गई है।

(३) न्यूरलजिक शिर पीड़ा (Neuralgic Headache) कभी कभी मन और हृदयावेशोंकी गड़बड़ी (जिसका कारण मनोवैज्ञानिक संघर्ष बताया जाता है) के साथ सिरमें दर्द भी होने लगता है। इस प्रकारका दर्द बिलकुल निराले ही ढङ्गका होता है। सिरकी न्यूरलजिया उस नाड़ीके प्रदेशमें किसी असाधारणताका नतीजा होती है। इस प्रकारके दर्दमें किसी न्यूरोलोजिस्ट की सलाह लेना उचित है।

(४) एक-स्थानिक शिर पीड़ा (Migraine अथवा sick headache)—यह मामूली सिर दर्द से भिन्न होता है। इसमें एक ख़ास जगह पर सिरके एक ही ओर थोड़ी थोड़ी देर ठहर कर बहुत ही ज़ोर का दर्द होता है। जब बहुत ही ज्यादा दर्द होता है तो उबकाई भी आती है। बहुधा ऐसा होता है कि आंखोंसे ठीक ठीक नहीं दिखाई पड़ता। यह रोग नाड़ी मण्डलमें ऐसे विकार होनेसे उत्पन्न होता है जिसका कारण या स्वभाव ठीक ठीक नहीं मालूम हो सका है। यह बीमारी विशेष कर स्त्रियोंको छोटी आयुसे लगभग पचास वर्षकी तक सताती रहती है। नियमित रहन सहनसे अगर रोग चला नहीं जाता तो उसके वेगमें कमी जरूर हो जाती है।

शिर दर्दका इलाज—किसी मनुष्यको पहलेसे पीड़ा न हो और ज़ोरका दर्द सिरमें होने लगे तो समझ लेना चाहिये कि शरीरमें कुछ गड़बडी जरूर है। अगर उसका कारण (जैसे बीमारी या अधिक मदिरा पी लेनेके उपरान्त शिर दर्द) न समझमें आए तो डाक्टरसे हाल कहना चाहिये। डाक्टरका पहला काम उस हालतका पता लगाना है जिसे सिर दर्द ने सुझाया है। कभी उसे रोगीमें मेनिंजिटिस (meningitis) ऐसे भीषण रोग मिलेंगे जिनका फौरन ही इलाज करना चाहिये। अगर कोई फिक्रकी बात न होगी तो डाक्टर महाशय ऐसा कह देंगे। उनकी बात पर विश्वास करना चाहिये। रोगीका दर्द कम करनेके लिए उसके सरसे बरफ़से ठंडे किये हुए पानीका भीगा कपड़ा लपेटना चाहिये और पैरोंको गुनगुने पानीमें डिबोना चाहिये। तकियेमें सिर गड़ा कर लेटनेसे भी आराम मिलता है। कुछ रोगियोंको अंधेरे कमरेमें चुपचाप लेटे रहनेसे आराम मिलता है। बहुधा कम तकलीफ़ होने पर रोगी बातचीत करके अपनी तबीअत बहलाते हैं। जब दर्द बहुत ज्यादा होता है तो डाक्टर जो दवाएँ निश्चित करते हैं उनमें सिरक नीलिद (Acetanilide) ही ख़ास गुणकारी वस्तु रहती है। ऐसी औषधियोंका सोच विचार कर सेवन करना चाहिये क्योंकि कभी कभी रोगीकी जान पर आ बनती है। अगर

सिरके दर्दके दौरे बार बार हों तो बजाय उसी समय दर्द कम होनेकी कोशिश करनेके डाक्टरसे इस बातकी परीक्षा भली भाँति करानी चाहिये कि कोई जीर्ण रोग तो नहीं है। उन बातोंको दूर करना परमावश्यक है जिनकी वजहसे सिर दर्द होनेका शक भी हो। अगर कोई अन्य रोग न हो तो दर्द शरीर-विकारका नतीजा है। ऐसा होते हुए भी शिर दर्दके कारण हर मौकों पर भिन्न भिन्न हो सकते हैं। जिस दिन सिरमें दर्द मालूम हो उसके २४ घण्टा पहलेकी बातोंकी परीक्षा करने पर मालूम हो जायगा कि किस कारण यह रोग सम्भवतः उत्पन्न हुआ है। उदाहरणके तौर पर, एक मनुष्यका यह हाल था कि वह हर शनिवारको सिनेमा देखने जाया करता था और रविवार को सिरमें पीड़ासे परेशान रहता था।

ऐसे मनुष्यों को जिन्हें सर्वदा सिर दर्दकी शिकायत रहती है हर तरहकी अतिसे बचना चाहिये और वक्त पर रोज़मर्राके कार्य्य करने और नियमित आदत बनानेकी कोशिश करना चाहिये। जिन कामोंके करनेसे तकलीफ़ शुरू हो जाती हो उनसे ख़ास तौरसे बचना चाहिये।

सिरके दर्दसे छुटकारा पानेके लिए लोग पीड़ा चूर्ण (headache powders) का सेवन करने लगते हैं। ऐसी औषधियोंका लगातार सेवन योंही बुरा है और किसे अच्छे डाक्टरकी सम्मति बिना सेवन कर बहुत हानि सम्भव है। ख़ुराक से ज्यादा खा लेने से यह औषधियां घातक हो जाती हैं। बहुतसे मनुष्योंकी तो एक आदत सी हो जाती है कि छोटी सी छोटी तकलीफ़ होने पर वह औषधियोंका सेवन करने लगते हैं। इससे उन्हें शारीरिक हानि तो अक्सर नहीं होती मगर अंतमें उन्हें अपने सदा रोगी रहनेका अटल विश्वास हो जाता है, चाहे बीमारी हो या न हो। बहुतोंकी तो अफ़मचीओंकी तरह लत पड़ जाती है। इसलिए मुनासिब है कि सिरके दर्दकी औषधियों का सेवन ऐसे ही कभी ज़रूरत पड़ने पर करना चाहिये। जिन रोगियोंको बार बार दर्द उठ खड़ा होता हो उन्हें किसी भी औषधिसे तुरन्त ही पूर्ण लाभकी आशा बिलकुल ही न रखनी चाहिये। मुनासिब इलाजसे धीरे धीरे आराम होता है।

अपिन एवम् कर्पूर

[ले० श्री व्रजबिहारीलाल दीक्षित, एम० एस-सी०]

फलन्द्रिन भी एक चक्रिक अपिन वाले समुदायका ही सदस्य है। नोषस अम्लके संयोगसे इससे एक सुन्दर रवेदार नोषोसित प्राप्त होता है और इसी रूपमें कहूर साहेबने इसको सन् १६०२ में प्राप्त किया था। उसके बाद यह दोनों ही प्रकाशसमरूपकोंमें प्राप्त हो चुका है। अम्लोंसे बहुत ही शीघ्र इसका रूप बदल जाता है और मद्यील गन्धकाम्ल द्वारा अपिनीन उत्पन्न होती है। वालक साहेबने इस पर भी बहुत कुछ कार्य्य किया है और उन्होंने साधारण अथवा क—फलन्द्रिनके अतिरिक्त एक ख—फलन्द्रिनकी भी विद्यमानता सिद्धकी है। पूर्वका रूप $\triangle^{3,4}$ द्वि उपश्यामिन था क्योंकि नोषोफलन्द्रिन पुदीनोन में बड़ी ही सरलता से परिवर्त्तित किया जा सकता है। अन्तिम अथवा ख—फलन्द्रिनका रूप सूत्र २ में दर्शाया गया है क्योंकि वह $\triangle^{3}$ समअग्रील चाक्रिक षष्ठोनोन द्वारा संश्लेषित किया जा सकता है। इस प्रकार—

क उ$_3$ | उ क = क—क उ | क उ$_2$—क उ—क उ | क उ$_3$—क उ—क उ$_3$

१

क—फलन्द्रिन

क उ$_3$ || क उ$_2$—क — क उ | क उ$_2$—क उ—क उ | क उ$_3$—क उ—क उ$_3$

२

ख—फलन्द्रिन
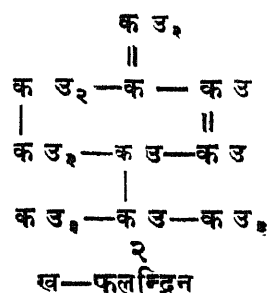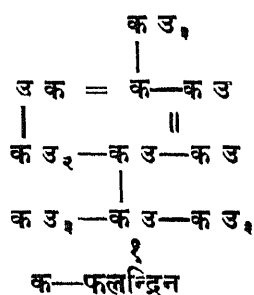
क—फलन्द्रिनका वास्तवमें यही रूप है, इसके अनेक प्रमाण हैं। स्वयम् द—पुदीनोन ही निम्नांकित क्रियासे फलन्द्रिनमें परिवर्त्तित किया जा सकता है। पुदीनोन प्रथम स्फुर पंचहरिदसे प्रतीकृत किया जाता है और प्राप्त हरिद् कुनोलिनके संसर्गमें उबालनेसे हरिद फलन्द्रिनमें परिवर्त्तित हो जाता है। इसको दारील मद्यमें दस्तचूर्ण द्वारा अवकृत करनेसे क—फलन्द्रिन प्राप्त होता है। एक दूसरी क्रिया इस प्रकार भी है कि पुदीनोनका ओषिम प्राप्त करके उसको $\triangle^6$ पुदिन अमिनमें अवकृत कर लेते हैं और फिर इस पदार्थको स्फुरिक अम्लके साथ कम वायु भारमें स्रवित कर देनेसे क—फलन्द्रिन प्राप्त हो जाता है। सूत्र रूप इस प्रकार—
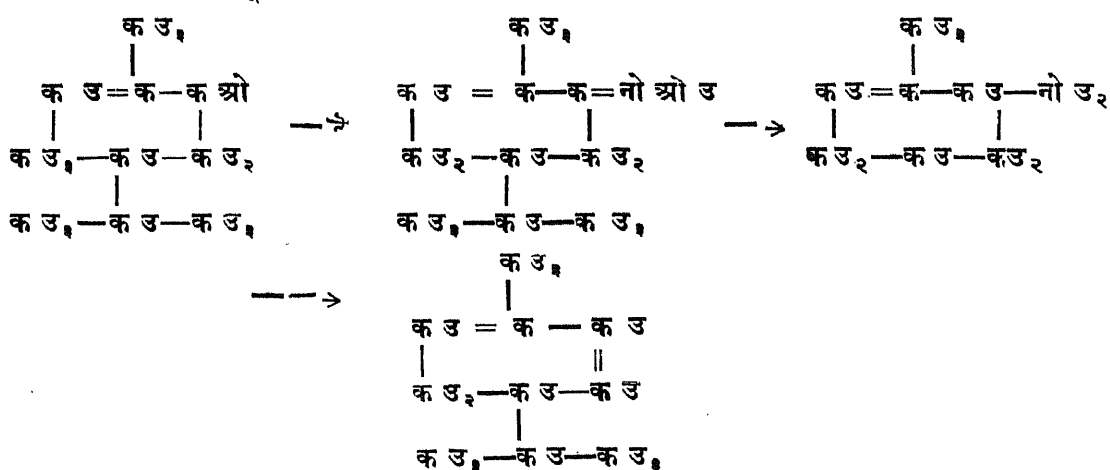
इस प्रकार जितनी त्रपिनोंका विवरण दिया जा चुका है उससे स्पष्ट ही है कि क—त्रपिन्योलका सम्बन्ध बहु संख्यक त्रपिनोंसे है। कुछ सम्बन्ध निम्नांकित सारिणी में अंकित है—
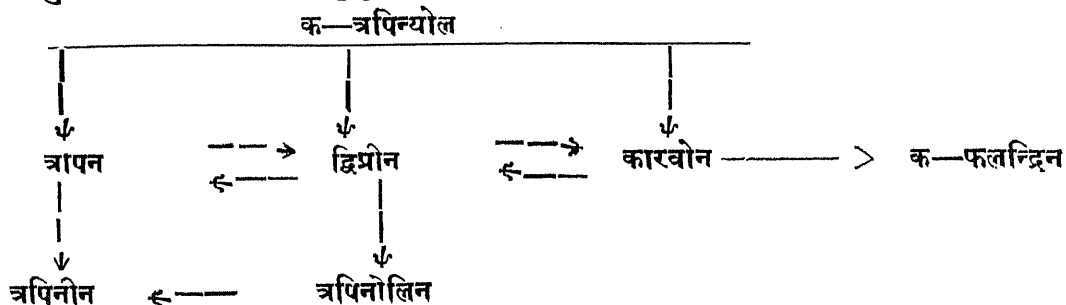
इस क—त्रपिन्योलके अतिरिक्त इस सूत्रके अनेक सदस्य और भी हैं जैसे कि ग—त्रपिन्योल ख—त्रपिन्योल अथवा अन्य पुदीन्योल। परन्तु उनका रूप बहुत कुछ महत्व का नहीं है।

यह तो हुईं वह त्रपिनें जो उप-समुदायकी पुदिनद्वीनोंसे सम्बन्ध रखती हैं। इस समुदायके अतिरिक्त कुछ ऐसी त्रपिनें भी हैं जो मध्य-रूपकी पुदिनद्वीनोंसे सम्बन्ध रखती हैं। इनमेंके प्रसिद्ध तो केवल कारवेस्त्रीन अथवा सिलवेस्त्रीन ही हैं।

सिलवेस्त्रीन सर्व प्रथम अटरवर्ग साहेबने सन् १८७७ में प्राप्तकी थी। यह स्वीडेन देशमें होने वाले चीड़के वृक्षोंसे उत्पन्न होती है, सर्व प्रथम भी इसी वस्तुसे निकाली गई थी और यद्यपि उसकी प्राप्तिका मुख्य पदार्थ वही है परन्तु नन्हीं नन्हीं चीड़से भी और चीड़के कोलतारसे भी कुछ कुछ प्राप्तकी जाती है। विशुद्ध रूपमें प्राप्त करने लिए अशुद्ध पदार्थमें उदहरिकाम्लके डालनेसे जो द्वि उदहरिद प्राप्त होता है उसे नीलिन्से साथ उबालते हैं। यह पूर्ण स्थाई पदार्थ है और अपनी प्रकाश भ्रामक शक्ति २५०°श तक नहीं नष्ट होने देती। मद्यिक गन्धकाम्लके संसर्गसे भी बहुत ही न्यून परिवर्त्तन होता है। हालमें जो गवेषणायें हुई हैं उनसे यह पता चलता है कि यह अपने इसी रूपमें तारपीनमें नहीं होती है। वास्तवमें उसमें $\triangle^{8}$ केरीण होती है जो उदहरिकाम्लके द्वारा अवलेपित किये जाते ही शीघ्र ही इस रूपमें परिवर्त्तित हो जाती है। इस त्रपिनको सिरकअनाद्रिदमें घोलकर जब उसमें एक बूंद तीव्र गन्धकाम्ल डाल देते हैं तो एक गहरा नीलारंग बन जाता है और किसी त्रपिनके साथ यह प्रतिक्रिया नहीं होती। पूर्णतया अरुणीकृत करके दस्तचूर्ण एवम् उदहारिकाम्ल द्वारा अवकृत करनेसे और फिर उसे सैन्धकम् एवम् मद्य द्वारा अवकृत करनेसे यह मध्यश्यामीन में परिवर्त्तित हो जाती है। कारवेस्त्रीन भी इस प्रतिक्रियासे मध्यश्यामीन हीमें परिवर्त्तित हो जाती है। इस और इसी प्रकार अन्य सम्बन्धोंके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनोंका रूप एक ही है।

कारवेस्त्रीन एक संश्लेषित पदार्थ है जिसको बायर साहेबने सन् १८९४ में वेस्त्रिलामिन उद-हरिदको स्रवण करनेसे प्राप्त किया था। इस क्रियामें अनेक रूपान्तरों द्वारा यह पदार्थ प्राप्त होता है। कारवोनका सर्व प्रथम अवकृत यौगिक द्वि-उदकारवोन है। यह उद्अरुणिकाम्लके साथ शीघ्र ही योग करता है और इस यौगिकमेंसे दारील मद्यिक पांशुजक्षार द्वारा उद्अरुणिकाम्लका एक अणु बड़ी ही सरलतासे निकल जाता है। परन्तु इसके निकल जानेसे एक पूर्णतः नवीन यौगिक ही प्राप्त होता है और वह है सम्पृक्त द्विचाक्रिक कीतोन, कैरोन। इस प्रकार—
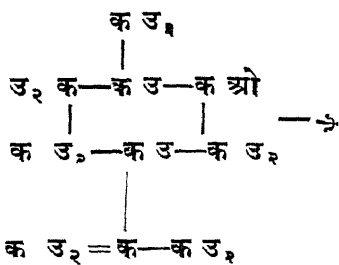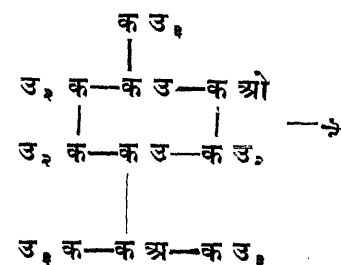
द्वि—उद कारवोन द्वि—उद कारवोन उद्अरुणिद कैरोन
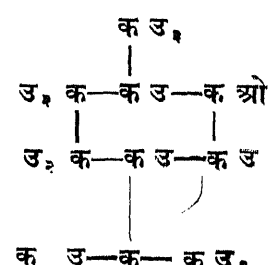
कैरोनमें कर्पूर अथवा पिपरमेंटकी सी गन्ध होती है और जिस प्रकारके कारवोनसे प्राप्त किया जावे उसीके अनुसार प्रकाश भ्रामक शक्ति भी होती है। कैरोनका यह रूप केवल कल्पना मात्र ही है, ओषदीकारणसे इसमेंसे एक अम्ल कैरोनिकाम्ल, प्राप्त होता है और जिसका संश्लेषण द्वारा द्विदारील चाक्रिक अग्रेन कारवोषिकाम्ल होना सिद्ध किया जा चुका है। इस प्रकार—
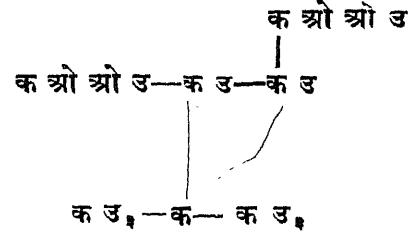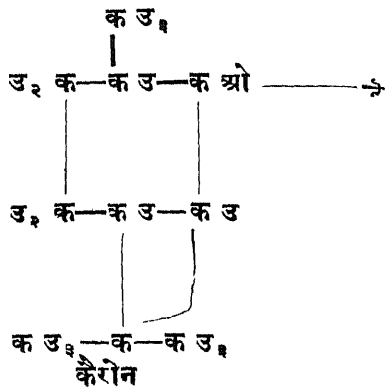
कैरोन　　　कैरोनिक अम्ल

इस प्रकार कैरोनमें एक द्विदारील चक्रका होना सिद्ध ही है। इसके और भी प्रमाण हैं। तपाने पर यह कारविनोनमें परिवर्त्तित हो जाता है जो कि एक असम्पृक्त कीतोन है और द्विउद्कारवोनको अम्लोंके साथ उबालनेसे भी एक समरूपक परिवर्त्तन द्वारा प्राप्त होता है। इसके त्रपिनीनमें परिवर्त्तित हो जानेसे, कारविनोनमें के द्विबन्धका ज्ञान उसी भांति लगता है जैसे कि कारवोतन सिरकोनमें के द्विबन्धका ज्ञान उसके क—फलन्द्रिनमें परिवर्त्तन होनेसे लगता है।

कैरोन　　　कारविनोन　　　द्वि—उद्कारवोन
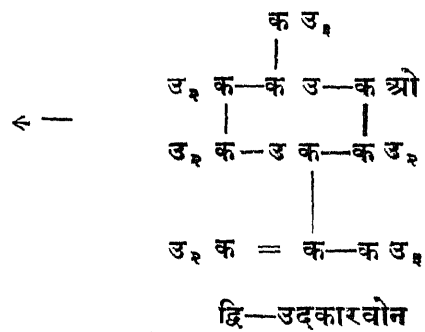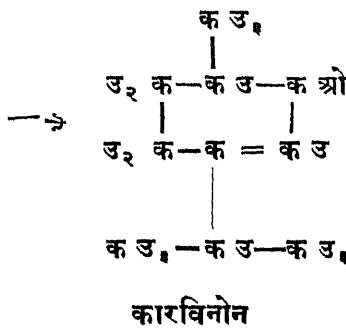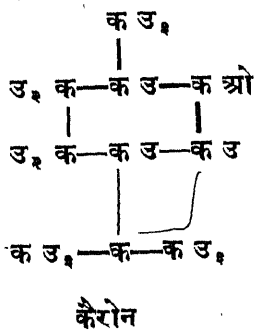
कीतोन होनेके कारण कैरोनसे एक ओषिम प्राप्त होता है जो कि अमिनमें अवकृत किया जा सकता है। यदि इस अमिनका मद्यिक घोल वायव्य उदहरिकाम्लसे सम्पृक्त किया जावे तो असम्पृक्त वेश्नील अमिन प्राप्त होता है जिसके उदहरिदके स्रवणसे कारवेस्त्रीन प्राप्तकी जा चुकी है। इस प्रकार सूत्ररूप—

कारवेस्त्रीनका संश्लेषण भी हो चुका है और वह इस प्रकार है। मध्य उदौष बानजाविकाम्ल को अवकृत करके सर्व प्रथम षष्ठ उदयौगिक प्राप्त कर लेते हैं और फिर उसे ओषदीकृत करके चाक्रिक-षष्ठीनोन-३-कारवोषिकाम्ल प्राप्त कर लेते हैं। तत्पश्चात् कीतोनिक मूलके स्थानमें दारील एवम् औषील मूल ग्रिगनार्ड प्रतिक्रिया द्वारा योग किए जा सकते हैं फिर उदौषील मूलको अरुणिन्से स्थापित करके एक उदअरुणिदका अणु पिरीदिन द्वारा निकाला जा सकता है जिससे आवश्यक स्थानमें एक कर्बन द्विबन्ध स्थापित हो जाता है। इससे दो पदार्थ प्राप्त होते हैं। △[१] चतुरोद मध्यटोलिवकाम्ल और दूसरा △[६] चतुरोद मध्य टोलिवकाम्ल, किन्तु अधिकांशमें प्रथम पदार्थ ही बनता है जिसका सम्मेल प्राप्त करके उसको ग्रिगनार्ड क्रियाके अनुसार मगनीसम्-दारील नीलिद द्वारा प्रतीक्रित करने पर कारवोषिक सम अग्रील मूलसे स्थापित हो जाता है और प्राप्त पदार्थ कारवेस्त्रीन ही होता है। सूत्ररूप इस प्रकार—

संश्लेषित एक चक्रिक त्रपिन

इस सम्बन्धमें अत्यन्त ही कार्य्य कुशल प्रतिक्रिया बायर साहेबकी है जिससे आपने सर्व प्रथम सन् १८९३ में काम किया था। इसमें किसी प्राकृतिक पदार्थकी सहायता नहीं लेनी पड़ती है और इस प्रकार यह संश्लेषण शुद्ध एवम् वास्तविक है। प्रारम्भिक पदार्थ रालो-रालिक अम्ल है। इसके सम्मेलको एक अणु सैन्धक ज्वलालोषिद् एवम् एक अणु सम अग्रील नैलिदसे प्रतिक्रित करते हैं जिससे एक सम अग्रील यौगिक प्राप्त होजाता है। यह क्रिया पुनः प्राप्तपदार्थ पर दुहराई जाती है परन्तु अबकी सम अग्रील नैलिदके स्थान पर दारील नैलिदका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सम अग्रील दारील यौगिक गन्धकाम्लके संसर्गमें तपाया जाता है जिससे उद्विश्लेषण हो जाता है और साथ ही साथ कर्बन द्विओषिद भी बहिष्कृत हो जाता है जिससे दारील समाग्रील द्विकीतोन चाक्रिक षष्ठेन प्राप्त हो जाता है। कीतोनके स्थानमें अवकृत करके मद्यिल मूल स्थापित कर दिए जाते हैं और फिर उनके स्थानमें अरुणिन् मूलको दे दिये जाते हैं और इसको कुनोलिनके साथ उबालनेसे उद्अरुणिकाम्लके दो अणु सरलता हीसे बहिष्कृत हो जाते हैं। इस प्रकार एक पर-पुदिनद्वीन प्राप्त हो जाती है जो, कि त्रपिनीनसे अधिकांशमें मिलते हुए भी उससे भिन्न ही है। इस प्रकार—
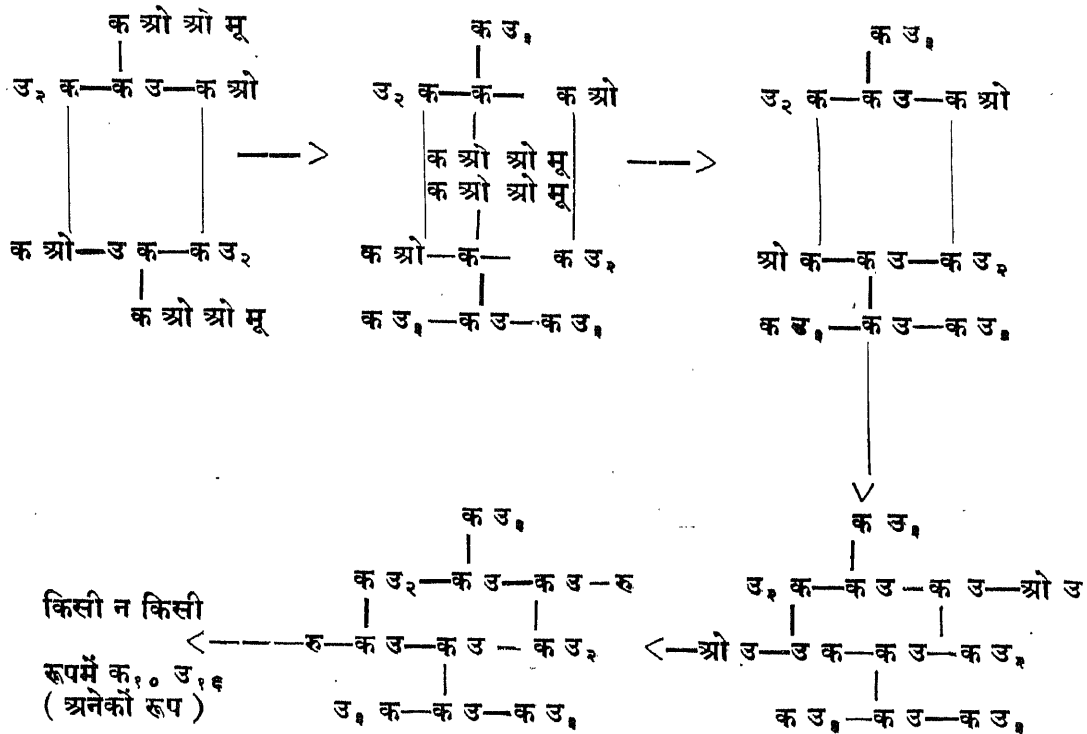
कुछ ही समय हुआ आशां साहेबने एक नवीन ही विधिका प्रचार किया है जिससे उन्होंने कुछ नए नए रूपोंकी त्रपिनें प्राप्तकी है। सन् १९२४ में उन्होंने कर्बन द्विओषिदके वायु मंडलमें सम्प्रीनके शनैः संघट्टन द्वारा एक त्रपिन प्राप्त की थी जिसका प्रायः यह रूप था—
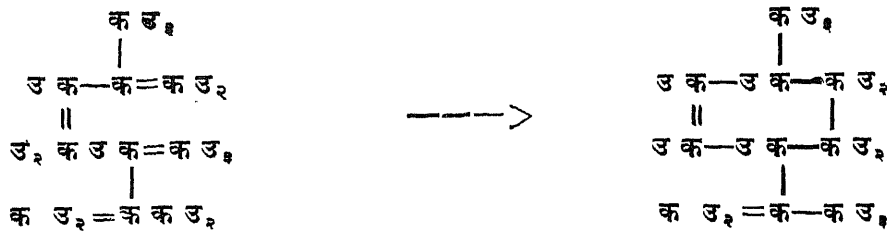
सम्प्रीन (दो अणु) द्विप्रीन

इनके अतिरिक्त परकिन साहेबके संश्लेषण विशेष महत्वके ही हैं। उनकी क्रियायें अधिकांशमें तो कारवेस्त्रोन तथा सिलवेस्त्रीनके विवरणोंमें आ चुकी हैं पर इनके अतिरिक्त इस क्रियाके किञ्चिद् परिवर्तनसे ही कितने ही उन मध्य, एवम् पर—त्रपिनें, पुदिन द्वीनें, त्रपिन्योल अथवा अन्य अगणित सम्बन्धी यौगिक प्राप्त हो चुके हैं। इसी क्रियासे चाक्रिक पंचेनके भी तत्सम्बन्धी अनेकानेक यौगिक भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इनकी क्रिया अनेकानेक रूपोंमें होती है। सर्वमहत्वपूर्ण तो वह विधि है जिसमें टोलिवकाम्लको अवकृत करके उसका षष्टोद यौगिक प्राप्त कर लेते हैं। फिर उसे अरुणीकृत करके उदअरुणिकाम्लका एक अणु किसी भी साधारण क्रिया द्वारा निकाल लेनेसे एक ऐसी चतुर्-टोलिवक अम्ल प्राप्त होता है जिसमें एक कर्बन द्विबन्ध क-ख स्थानमें होता है। इसका सम्मेल प्राप्त करके उसे ग्रिगनार्ड रसके संसर्गमें लाते हैं जिससे सम्मेल मूलके स्थानमें समाग्रील मूल स्थापित हो जाता है। इसी प्रतिक्रिया द्वारा पुदोन्योल, पुदेन अथवा पुदीन भी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार—
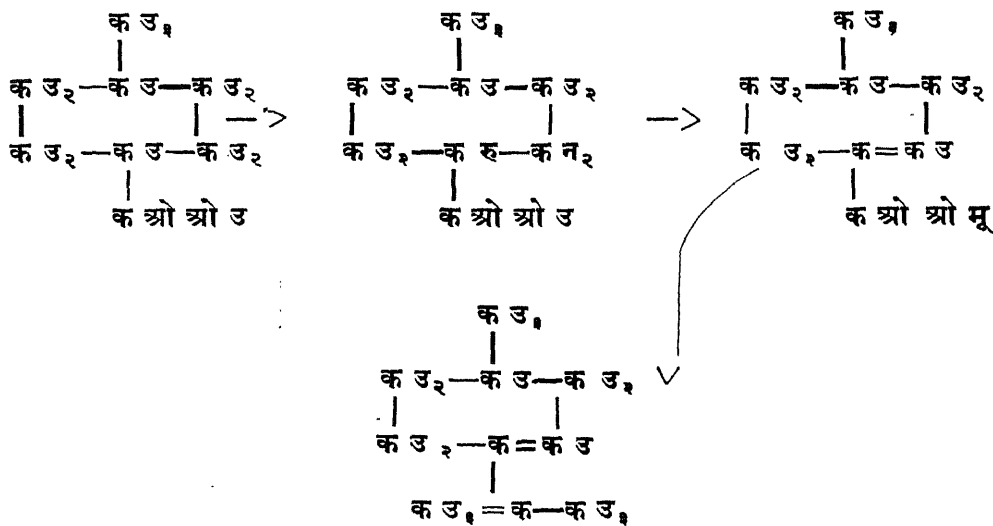
टोलिवकाम्ल न लेकर उसके स्थानमें उदौष टोलिवकाम्ल लिया जावे और उसे अवकृत कर दिया जावे जिससे प्राप्त यौगिकमें उदौष मूलको अरुणिनसे स्थापित कर देनेके बाद उसमेंसे एक अणु उद-अरुणिकाम्लका निकाल देनेसे एक द्विबन्ध स्थित हो जाता है। अम्लको सम्मेल कर देनेके पश्चात् उसे ग्रिगनार्द रस द्वारा उसके स्थानमें सरलतासे समाग्रोल मूल लगाया जा सकता है। इस प्रकार मध्य-टोलिवकाम्लसे मध्य पूदिनद्वीन श्रेणीका सम्बन्धी जन एवम् पर-टोलिवक अम्लसे पर-पूदिनद्वीनका सम्बन्धी जन प्राप्त होता है।

टोलिवकाम्ल न लेकर उदौष बानजाविक अम्ल भी लिये जा सकते हैं जिनके ओषदीकरणसे कीतोनिक अम्ल प्राप्त हो जाते हैं। फिर ग्रिगनार्ड रस द्वारा कीतोन मूलके स्थानमें दारील और सम्मेल मूलके साथमें समाग्रिल मूल लगानेसे कोई न कोई त्रपिनीन सरलतासे प्राप्त हो जाती हैं।

यदि कोई अम्ल न भी लिया जावे तो भी चाक्रिक षष्ठीनोन लेकर उसमें सैन्धकामिद एवम् कर्बन द्विओषिदकी क्रियाओं द्वारा एक कर्बोषील मूल स्थापित किया जा सकता है। फिर अवकृत करनेसे कीतोनिक स्थानमें उदौष मूल, उदौषके स्थानमें अरुणिन् और अन्ततोगत्वा एक द्विबन्ध स्थापित हो सकता है। तत्पश्चात् सम्मेल पर ग्रिगनार्ड रसकी क्रियासे कोई न कोई त्रपिन प्राप्त किया जा सकता है।

चाक्रिक षष्ठीनोन, २:४ द्विकारवोषिक सम्मेलके सैन्धक यौगिक पर दारील नैलिद्का प्रभाव डालनेसे दारील यौगिक प्राप्त हो जाता है जिसके उदविश्लेषणसे दारील चाक्रिक षष्ठीनोन कारवोषिक अम्ल प्राप्त हो जाता है। बस फिर कीतोनको अवकृत कर उसके स्थानमें उदौष मूल स्थापित कर देते हैं और फिर अरुणिन द्वारा यहां पर एक द्विबन्ध भी स्थापित कर दिया जाता है। कर्बोषील मूलके स्थानमें भी समाग्रिक मूल साधारण रीत्यनुसार स्थापित हो जाता है। कारवेस्त्रोन इस प्रकार संश्लेषितकी गई है। प्रतिक्रिया इस प्रकार है—
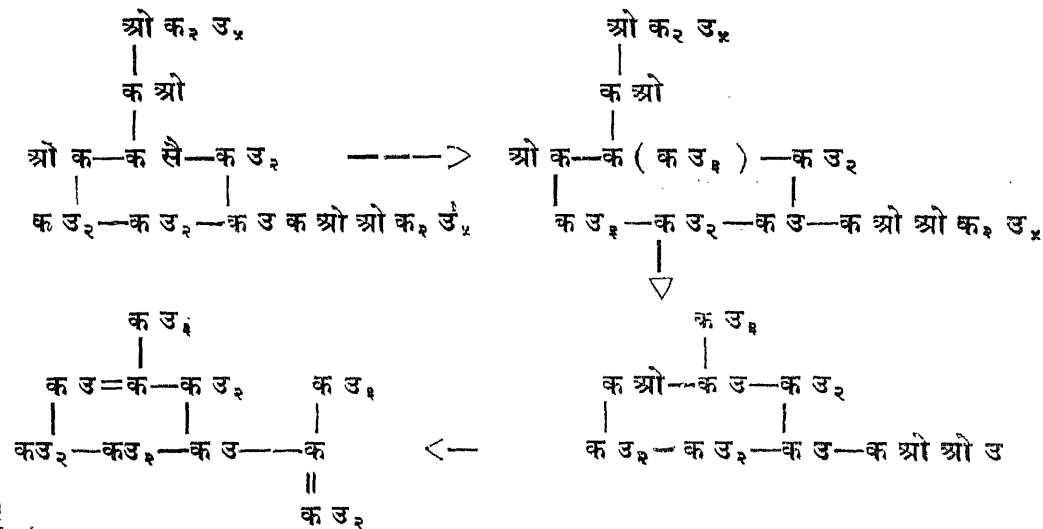
किन्तु इन क्रियाओंसे एक वास्तविक भिन्न विधि और भी है जो परकिन एवम् वालक साहेब दोनों ही महापुरुषोंके परिश्रमका फल है और १६१०-१६११ से कार्य्य क्षेत्रमें लाई गई है। इसमें चाक्रिक कीतोनको दस्तपूर्णकी विद्यमानतामें अरुणा-अग्रीलिक सम्मेलसे सम्मिलित करते हैं। फिर उदविश्लेषण द्वारा प्राप्त मुक्त अम्ल तो केवल तापसे ही विश्लेषित हो कर जल एवम् कर्बन द्विओषिद बहिष्कृत कर देता है और उत्पन्न यौगिक नोषोसो हरिदमें परिवर्त्तित कर दिया जाता है जिसमेंसे उदहरिकाम्ल बहिष्कृत करनेसे ओषिम और इसके उदविश्लेषणसे एक कीतोन प्राप्त होता है। इस प्रकार—
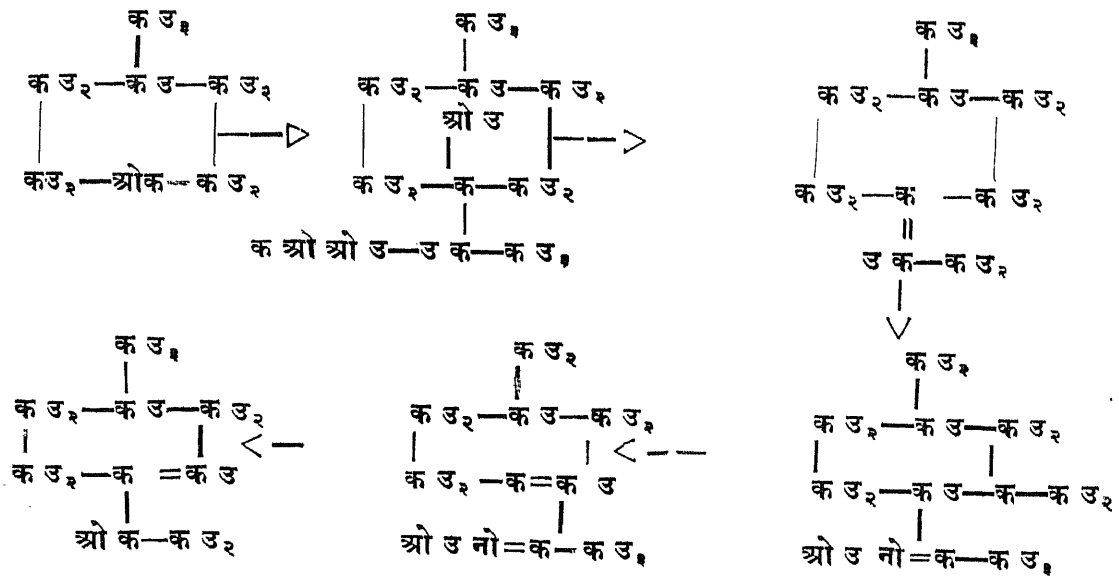
तत्पश्चात् केवल ग्रिगनार्ड रसका ही प्रयोग शेष रह जाता है जिससे अनेकानेक पुदीनोल एवम् पुदीनीन बनाई जा सकती है।

फुफ्फुस रोगों के लक्षण और चिह्न

[ले० डा० कमला प्रसाद जी० एम० बी०]

[लक्षण से तात्पर्य फुफ्फुस रोग जनित उन कष्टों से है जिन्हें रोगी स्वयं अनुभव करते हैं। ये ५ हैं

(१) खांसी

(२) हँफनी वा श्वास-कष्ट।

(३) बलगम निकलना

(४) छातीमें दर्द

(५) रक्तक्षरण (मुख द्वारा फुफ्फुससे रक्त निकलना)

रक्त फुफ्फुस वा श्वासोच्छ्वास संस्थानके किसी भागसे आ रहा है कि नहीं इसके जाननेके लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(क) रक्तक्षरणके पहले एवं कुछ क्षण बाद तक सुर्सुराहटके साथ २ खांसी होती रहती है।

(ख) रक्त निकलनेके उपरान्त भी कुछ समय तक रोगी खाँसता ही रहता है।

(ग) रक्त का रङ्ग गहरा लाल होता है। यह क्षारीय (alkaline) होता है और इसमें वायुके बुलबुले भरे रहते हैं। किन्तु अधिक परिमाणमें रक्तक्षरण होने पर रक्तका रङ्ग कुछ काला हो सकता है और उसमें बुलबुले नहीं भी मिल सकते हैं।

(घ) परीक्षा करने पर फुफ्फुस रोगके कुछ चिह्न पाये जाते हैं। (यद्यपि यक्ष्मा की प्रारम्भक अवस्थामें रक्तक्षरण सम्भव है, पर उस समय परीक्षा करने पर फुफ्फुस रोगके कुछ लक्षण नहीं भी मिल सकते हैं।)

(ङ) रोगीका पूर्व-इतिहास फुफ्फुस या हृदय के रोगकी ओर संकेत कर सकता है। चिह्न* उन्हें कहते हैं जिन्हें चिकित्सक परीक्षा कर जान सकते हैं। ये चार प्रकारसे जाने जाते हैं—देख कर (दर्शन, Inspection), स्पर्श (Palpitation) द्वारा, विघातन (Percussion) द्वारा, और शब्द-परिचायक यन्त्र द्वारा (Stethoscope) सुन कर।

दर्शन

रोगीके वक्षस्थलसे कपड़े हटा दिये जांय और चिकित्सक इसकी भली भांति देख भाल करें। केवल दर्शन से ही बहुत सी बातों का पता चल सकता है विशेष कर निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान देना उचित है—

(१) श्वासकी गति और प्रकृति (Rate and character of Breathing)—साधारणतः मिनटमें १५ से २० बार तक हम लोग श्वास लेते हैं। अर्थात् नाड़ीकी गति (जो प्रति मिनट ६५ से ८० मानी जाती है। और श्वासकी गतिसे ४ और १ का सम्बन्ध रहता है। इस सम्बन्धसे किसी प्रकारका परिवर्त्तन होना रोग का द्योतक है। अन्य ध्यान देने योग्य बातें हैं श्वासकी गतिकी कमी-वेशीका किसी प्रकार की अनियमितता (Irregularity) तथा दोनों ओरके अस्थि पञ्जर एक साथ समान रूपसे चलते हैं वा नहीं। वक्ष-स्थलके किसी भागका चिपटा हो जाना अथवा उसकी गति (श्वासके समय का अवरुद्ध हो जाना उस अंशके रोगग्रस्त होनेका संकेत है। उदाहरणार्थ, यदि फुफ्फुस का कोई अंश ठोस हो जाय तो श्वासके समय उस अंशकी गति रुकी रहेगी। पर्शुकान्तर स्थानों (Intercostal space) के चिपटे होने एवं बाहरकी ओर निकल पड़नेसे ज्ञात होता है कि उस अंशमें कोई तरल पदार्थ भर गया है।

(२) वक्षस्थलके आकार प्रकार—साधारणतः वक्षस्थल अंडाकार वृत्त (Ellipse) के आकारका का होता है, जिसका बड़ा व्यास एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तक रहता है। वक्षस्थल दोनों ओर एक सा दीखता है, कहीं धंसा हुआ नहीं जान पड़ता।

यक्ष्माक्रान्त वक्ष एक ढ़पगोल होता है और उसकी ऊपर-नीचेकी लम्बाई अपेक्षाकृत बड़ी रहती है और इसका पूर्वपाश्चात्य व्यास (Antereoposterior diameter) परिपार्श्विक व्यास (lateral diameter) से बड़ा होता है।

(३) वक्षस्थलकी धारण-शक्ति (Chest Capacity) प्रत्येक बार अन्तःश्वसनके समय वक्षस्थलकी धारक-शक्ति बढ़ जाती है और यदि फुफ्फुसोंका पूर्ण वितान हुआ तो वक्षस्थल प्रायः २ इञ्च (हृष्टपुष्ट युवक का) वा इससे कुछ अधिक (२½ वा ३ इञ्च तक) भी बढ़ जाता है। वह धारक शक्ति फुफ्फुसकी लचक शक्तिके नष्ट हो जानेके कारण कम हो जाती है।

स्पर्श (Palpitation)

चिकित्सक अपने दोनों हाथोंकी उंगलियों को सटा कर तलहत्नोंसे रोगीका वक्षस्थल स्पर्श करते हैं और इस समय रोगी को "एक दो तीन" वा "एक एक" इत्यादि शब्द उच्चारण करनेके लिए कहा जाता है। चिकित्सकका उंगलियां उस समय फुफ्फुसका स्वर-स्पन्दन स्पर्श कर

* यह विषय इतना कठिन है कि कोई मनुष्य अपनी सारी आयु बिता कर इसमें पाण्डित्य प्राप्त कर सकता है। निरन्तर वर्षोंके अभ्याससे यह कुछ कुछ समझमें आता है। केवल पुस्तकें पढ़ कर बिना किसी योग्य गुरुकी सहायताके ही इसकी जानकारी असम्भव है और जो ऐसी चेष्टा करते हैं, अथवा इसी क्षुद्र ज्ञान पर अपने को परम पण्डित समझने लगते हैं, वे किसी प्रकार इसकी योग्यता नहीं प्राप्त कर सकते, केवल अपनी मूर्खता प्रदर्शित करते हैं।

सकती हैं। यह स्वर-स्पन्दन एक प्रकारकी चर्रचराहट का सा जान पड़ता है। यह साधारणतः स्त्रियों और बच्चोंमें नहीं स्पर्श किया जा सकता और युवकोंमें बायें फुफ्फुस-शिखरकी अपेक्षा दाहिने फुपफुस-शिखर पर अधिक ज्ञात हो जाता है। जब फुफ्फुसका कोई अंश ठोस हो जाता है (जैसे यक्ष्मा वा फुफ्फुस-प्रदाहमें) तब स्वर-स्पन्दन बढ़ जाता है। दूसरे पक्षमें जब फुपफुस एवं वक्ष की दीवारके बीच कोई तरल पदार्थ इकट्ठा हो जाता है, फुपफुसावरक मोटा होजाता है, कोई गुल्म उत्पन्न हो जाता है अथवा वायु प्रवेश कर जाती है तब यह स्वर-स्पन्दन कम हो जाता है।

विघातन (Percussion)

चिकित्सक बायें हाथकी एक वा दो उंगलियों को रोगीके पर्शु कान्तर स्थानोंसे क्रमशः (एक के बाद दूसरे पर्शु कान्तर स्थान से) सटा कर दूसरे हाथकी एक वा दो उंगलियोंसे ठोकते हैं। यह इस प्रकार किया जाता है मानों बायें हाथको उंगलियाँ निहाईका काम करती हैं और दाहिने हाथकी उंगलियां हथौड़े का। किन्तु चोट धीरे धीरे दी जाती है क्योंकि उंगलियां रोगीके वक्षस्थलसे सटी रहती हैं और अप्रत्यक्षरूप से चोट उसी पर पड़ती है। इस प्रकार किसी घड़े पर उंगलियोंसे ठोकने की भांति सारे वक्षस्थलको ठोकते तथा इसके भिन्न भिन्न अंशोंसे भिन्न भिन्न शब्द उत्पन्न करते हैं। साधारणतः ठोक ठोक कर एक ओरके शब्दको दूसरी ओरके शब्दके साथ तुलना करते हैं। इस क्रिया द्वारा बहुत सी बातों का पता चलता है। निरोग अवस्थामें वक्षस्थल को इस प्रकार ठोकने पर उनसे फुफ्फुसका झंकार युक्त शब्द (Resonant sound) निकलता है। यदि फुफ्फुसका कोई अंश ठोस हो जाय, वा वक्षस्थलमें द्रव इकट्ठा हो जाय, फुफ्फुसावरण का कोई अंश मोटा हो जाय या किसी स्थानमें कोई गुल्म उत्पन्न हो जाय तो यह झंकार कम हो जाती है। दूसरे पक्षमें यदि फुपफुसतल पर कोई गर्त्त हो या फुफ्फुसावरणके दोनों तलोंके बीच वायु प्रवेश कर गया हो तो यह झंकार और भी बढ़ जाती है। फुपफुसके किसी बड़े गर्त्त से ठीक वही शब्द निकलता है जो एक फूटी हांड़ीको उंगलीसे ठोकने पर निकालता है। यह क्षयाक्रान्त फुफ्फुसमें बहुधा पाया जा सकता है।

शब्द-परिचायक यन्त्र द्वारा सुनना

(Ascultation by means of stethoscope)

यह यन्त्र तीन अङ्गोंका बना रहता है—कर्णांश, वक्षांश और रबरकी नली। कर्णांशमें धातुकी ऐंठी हुई हुई दो नला रहती हैं जो बीचमें लचकदार पत्तर द्वारा जुड़ी रहती हैं। इसकी बनावट ऐसी रहती है कि यह किसी सुननेवालेके कानोंमें ठिकानेसे बैठ सके। वक्षांश भी धातुके बने एक चोंगे सा रहता है जिसके दो ओरसे धातुकी दो छोटी नलिकायें लगी रहती हैं। इन दोनों अंशोंको रबरके दो नल मिला देते हैं। इस यन्त्र द्वारा सुननेसे वक्षस्थलके स्वर स्पष्ट सुन पड़ते हैं। इससे चार बातोंका पता लगता है।

(१) श्वास जनित शब्दोंकी प्रकृतिः—साधारणतः ये स्वर वायुकोषों (फुपफुस) में वायुके प्रवेश करने एवं उनसे निर्गत होनेके कारण उत्पन्न होते हैं। ये शब्द मधुर (श्रवण-मधुर) होते हैं। बहिःश्वासन का शब्द बहुधा नहीं सुन पड़ता और यदि सुन भी पड़ता है तो इसके और अन्तःश्वासन के शब्दके बीचमें कोई निस्तब्धता नहीं रहने पाती। बच्चोंमें ये शब्द ज़ोरसे सुने जाते हैं।

ये शब्द यदि उच्चस्वरसे सुने जायँ तो इनका तात्पर्य यह होगा कि उक्त स्थानक फुफ्फुसका कुछ अंश ठोस हो गया है। इन्हें नल-श्वसन वा नलाकार श्वसन (Bronchial or tubular breathing) कहते हैं। ये शब्द फुपफुस प्रदाह या फुफ्फुस-यक्ष्माकी आरम्भिक अवस्थाओंमें सुने जा सकते हैं।

दूसरी जिन अवस्थाओंमें ये शब्द मिल सकते हैं, वे हैं कुछ फुफ्फुस तन्तुओंका ढह कर आपसमें मिल जाना वा बड़ी श्वासनलिकाओं और फुफ्फुस तलके बीचमें किसी प्रकारके गुल्मका प्रादुर्भाव होना। इन अवस्थाओंमें श्वासोत्पन्न शब्द बड़ी नलिकाओं (वायुनलिकाओं) से सीधे कानको पहुँचते हैं और इसी कारण स्वर कुछ उच्च जान पड़ता है। इस प्रकारके शब्दके तीन गुण हैं—

(क) बहिःश्वसन् और अन्तःश्वसन् में ठीक बराबर समय लगता है।

(ख) दोनों शब्दोंके बीच कुछ क्षणके लिए निस्तब्धता हो जाती है।

(ग) दोनोंके स्वर कर्कश (rough) होते हैं।

इन शब्दोंमें अत्यधिक उच्चता आ जाने पर उन्हें गर्त्त-शब्द (Cavernous Breath sound) कहते हैं। जब फुफ्फुसमें कोई गर्त्त हो जाता है अथवा कोई वायुनलिका बहुत फैल जाती है (Dilatation) तब यह गर्त्त शब्द सुना जाता है। किसी बहुत बड़े गर्त्त (फुफ्फुस के) से निकले हुए शब्दको बृहद् गर्त्त-शब्द (Amphoric Sound) कहते हैं। यह ठीक वैसा ही ज्ञात होता है जैसा किसी कांसेके नांदमें प्रवेश करती हुई वायुका शब्द होता है।

यदि श्वास शब्द की उच्चता कम हो जाय तो उसका तात्पर्य होगा—

(क) फुफ्फुस और वक्षके बीचमें कुछ द्रवका इकट्ठा होजाना, गुल्म उत्पन्न होना या फुफ्फुसावरण का मोटा हो जाना, वा

(ख) किसी श्वासनलिकामें किसी प्रकारकी रुकावट हो जानेके कारण उसमें वायुका प्रवेश नहीं कर सकना।

(२) वास्तवमें अन्तःश्वसन् की अपेक्षा बहिःश्वसन् में अधिक समय लगता है (दोनोंमें १०:१२ का सम्बन्ध है) किन्तु शब्द परिचायक यन्त्र द्वारा सुनने पर साधारणतः ऐसा जान पड़ता है कि अन्तःश्वसन् में बहिःश्वसनकी अपेक्षा तिगुना अधिक समय लगता है। यदि किसी प्रकार बहिःश्वसन्में अधिक समय लगता हुआ जान पड़े तो इसका अर्थ होगा कि फुफ्फुस के उस अंश की लचक शक्ति कम हो गई है जैसा कि यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्थाओंमें पाया जाता है।

(३) बाहरी शब्द—(Adventitious sounds) ये कई प्रकारके हैं जिनमें प्रधान हैं—

(क) घर्षण शब्द (Friction sound)—फुफ्फुसावरण के दो तल किसी प्रकारके प्रदाहके कारण मोटे हो जाते हैं और तब श्वास लेते समय वा फेंकते समय इन तलोंके परस्पर घर्षण से यह शब्द उत्पन्न होता है।

(ख) जब बड़ी वायुनलिकाओंमें श्लेष्मा भर जाती है तो उनसे उसी प्रकारका शब्द निकलता है जैसा कि पानी भरे बर्तन में वायु प्रवेश करानेसे। इस शब्दको बृहद्राल्स (Large or Bubbling rabs) कहते हैं। क्षुद्र वायुनलिकाओंमें श्लेष्मा भर जानेके कारण उनसे उत्पन्न इसी प्रकारके क्षीण स्वरको लघुराल्स वा कुर्कुराहट (Small rabs or crepitation) कहते हैं। यह शब्द वैसा ही जान पड़ता है जैसा कि कागज़के दो छोटे छोटे टुकड़ोंको कानके निकट रगड़नेसे उत्पन्न होता है।

(ग) यदि श्वास नलिकाओंकी श्लेष्मा झिल्लियाँ शुष्क हो जायँ और उनमें कुछ थोड़ेसे जलकण रह जायँ तो उनसे जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे ठीक उसी प्रकार सुन पड़ते हैं जैसे कि गहरी नींदमें सोये मनुष्यकी नाकसे निकली हुई घर्घराहटकी आवाज़। इसे नासा-शब्द (Ronchi) कहते हैं।

(४) उच्चारण-स्वर-झंकार—(Vocal resonance) जब रोगी कुछ बोलता रहता है तो उसके वक्षःस्थलसे एक प्रकार का स्वर निकलता है। इसे उच्चारण-स्वर-झंकार कहते हैं। यह झंकार यदि उच्च हो तो इसका अर्थ होगा कि फुफ्फुसके उस अंश में कोई गर्त्त हो गया है अथवा वह ठोस

हो गया है। यदि यह धोमा हो गया हो तो यह जाना जायगा कि फुफ्फुसतल और वक्षके बीच कोई द्रव पदार्थ वा वायु इकट्ठी हो गई है वा फुफ्फुसावरण मोटा हो गया है।]

× × × × ×

१. नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा

किसी अवयव में एक यक्ष्मा गांठ स्थापित हो जाती है। फुफ्फुसमें एक गर्त्त हो जाता है और तब इन स्थानोंसे रोगाणु सारे शरीरमें फैल जाते हैं। ये कीटाणु रक्तमें नहीं बढ़ने पाते किन्तु भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहुँच कर उनमें जम जाते हैं। अङ्गविकृतिके अनुसार रोग तीन रूप धारण करता है:—

(१) नूतन सर्वाङ्ग बहुसंख्यक यक्ष्मा—जिसमें शरीरके कई अवयवोंमें ये कीटाणु (बड़ी संख्यामें) बैठ जाते हैं और बहुसंख्यक छोटी एवं बड़ी गांठें प्रस्तुत करते हैं।

(२) एक इस प्रकारका यक्ष्मा जिसमें एक वा अनेक अवयवोंमें थोड़ेसे कीटाणु प्रवेश कर पाते हैं।

(३) सारे शरीरमें बहुतसे केन्द्रोंका स्थापित होना सम्भव है किन्तु यह अवस्था कुछ जीर्ण सी होती है।

निदान भेद

निदानकी दृष्टिसे नूतन बहुसंख्यक यक्ष्माके तीन रूप माने जाते हैं।

(१) सर्वाङ्ग वा त्रिदोष-ज्वर रूपक यक्ष्मा— (General or Typhoid Form) इसको कभी कभी भूलसे त्रिदोष-ज्वर भी समझ लेते हैं। वास्तवमें इसके लक्षण उस ज्वरके लक्षणोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। कुछ समय तक रोगी कुछ अस्वस्थ जान पड़ता है, उसे भूख नहीं लगती और ज्वर आता है तथा कमज़ोरी दिन दिन बढ़ती जाती है। कभी कभी रोग बड़ी तेज़ी से आक्रमण करता है, किन्तु बहुधा वास्तविक त्रिदोष ज्वर का ही अनुकरण करता है। धीरे धीरे रोगीका तापक्रम बढ़ता जाता है, नाड़ी तेज़ीसे चलती है किन्तु दुर्बल होती जाती है। जीभ सूखती है, गाल आरक्त हो जाते हैं और मूर्छा होने लगती है। कोई विशेष श्वास लक्षण नहीं प्रकट होते—जो साधारणतः त्रिदोष—ज्वरमें सम्भव हैं उनसे अधिक कदापि नहीं। साधारण-श्वासनल प्रदाह (Ordinary Bronchitis) हो सकता है। तापक्रमकी अपेक्षा नाड़ीकी अधिक द्रुतगति रहती है, किन्तु सबसे महत्वकी बात यह है कि इससे तापक्रमकी विरूपता (Irregularity) पाई जाती है*। कभी कभी भोरके समय यह ९८.४° से भी कम रहता है। साधारणतः संध्या समय १०३° वा १०४° की उष्णता पाई जाती है और भोर को कुछ कम (एक वा दो अंश)। कभी कभी उलटे प्रकार का तापक्रम—जिसमें भोरको ही अधिक ज्वर आता है एवं संध्या समय कम जाता है—देखा जाता है। कभी कभी ज्वर एक दम नहीं आता किन्तु ऐसे बहुत कम रोगी देखे जाते हैं। (औस्लर साहेबने केवल तीन ऐसे दृष्टान्त उधृत किये हैं)।

बहुतसे रोगियोंमें श्वासकी गति द्रुततर हो जाती है और विकीर्ण श्वासनल प्रदाहके चिह्न पाये

* त्रिदोष ज्वर धीरे धीरे बढ़ता जाता है, भोरके समय तापक्रम कुछ कम हो जाता है (किन्तु पहले दिनकी अपेक्षा नहीं) और संध्या समय कुछ बढ़ जाता है। इस प्रकार प्रथम सप्ताहमें इसकी निरन्तर वृद्धि होती जाती है। दूसरे सप्ताहमें यह ज्यों का त्यों बना रहता है और तीसरे सप्ताहमें कुछ उसी प्रकार घटने लगता है जिस प्रकार पहले सप्ताहमें बढ़ा था। अस्तु, इसके तापक्रमको रेखाबद्ध करने पर वह ठीक सीढ़ियोंका सा जान पड़ेगा।

हैं। परिसमाप्ति के समय शेनी-स्टोक्स* निश्वसन् दिखाई पड़ता है। सुस्ती छा जाती है और ज्ञान शून्यता धीरे धीरे बढ़ती जाती है। यह अवस्था पूर्ण अचेतनामें परिणत हो जाती है और अन्तमें रोगोकी मृत्यु हो जाती है।

निदान—(Diagnosis)—किसी स्थानीय चिह्नकी अनुपस्थितिमें सर्वाङ्ग संख्यक यक्ष्माको त्रिदोष ज्वरसे पृथक् करना कठिन है। तापक्रमके वक्र (Temperature curve) की विरूपता एक ध्यान देने योग्य बात है। श्वासकी द्रुतगति और चेहरे पर कुछ नीलापन छा जाना (जो रक्त पूर्णतः संशोधित नहीं होनेके कारण होता है) यक्ष्मामें ही विशेषकर पाये जाते हैं। यक्ष्मामें रेचन नहीं होता, कुछ कोष्ठबद्धता ही रहती है। (किन्तु दस्त आना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है।) प्लीहा बढ़ जाती है जरूर, किन्तु उतना जल्द नहीं, जितना कि त्रिदोष ज्वरमें। बहुतसे रोगियोंके मूत्रसे अण्डसित गिरता है और यक्ष्मा कीटाणु भी पाये जा सकते हैं। यक्ष्मामें लाल चकत्ते (जैसा कि त्रिदोषमें पाये जाते हैं) नहीं पाये जाते किन्तु साधारणतः श्वेत फोले (Herpes) निकल आते हैं। यदि यक्ष्माने यकृत पर भी आक्रमण किया हो तो आँखोंमें हरापन छा जाता है।

पुनश्च त्रिदोष ज्वरके रोगियोंके रक्तकी एक विशेष परीक्षा (Widalis Test) की जा सकती है जो यक्ष्मा-रोगियोंके रक्तकी नहीं हो सकती है, प्रत्युत इनके रक्तमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जा सकते हैं। यक्ष्मामें श्वेताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है और त्रिदोषमें कम हो जाती है। मस्तिष्क-सुषुम्नाके द्रव पदार्थ (Cerebrospinal fluid) में यक्ष्मा कीटाणु बहुत प्रचुर परिमाणमें मिलते हैं।

* यह शब्द डबलिनके दो विख्यातनामा चिकित्सकों (Chenye और Stokes) के नामसे सम्बन्ध रखता है। इस प्रकारका श्वास चलना बहुधा मृत्युका ही द्योतक है। श्वास पहले एकदम धीमा हो जाता है, फिर खूब शीघ्रतासे चलता है, पुनः धीमा होता जाता है और कुछ क्षणके लिए एकदम बन्द हो जाता है और तब धीरे धीरे आरम्भ हो कर बढ़ने लगता है। इस प्रकारका श्वास चलना बार बार दुहराया जाता है।

(२) फुफ्फुसीय नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा

(Acute Pulmonary urilliary Tuberculosis)

लक्षण—आरम्भसे ही बहुतसे श्वास-सम्बन्धी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। सम्भवतः रोगीको महीनोंसे अथवा वर्षोंसे खांसी होती हो, किन्तु उसके स्वास्थ्यका विशेष ह्रास नहीं हुआ हो, या वह निश्चित् रूपसे जीर्ण फुफ्फुस-यक्ष्माका रोगी हो अथवा (जैसा बहुधा बच्चोंमें देखा जाता है) उस पर अन्य रोगों (जैसे कुक्कुर खांसी Whooping Cough इत्यादि) के उपरान्त इसका आक्रमण हुआ हो तथा यह रोग आरम्भमें स्वर-नल-प्रदाहका रूप धारण किये हुए हो। आरम्भमें बहुधा श्वास-नल प्रदाह (Bronchitis) पाया जाता है जो विकीर्ण (Diffuse) रहता है। बहुत खांसी होती है। बलगम (खखार) में श्लेष्मा एवं पीवके से पदार्थ मिलते हैं और कभी कभी यह कुछ ललाई लिये रहता है। कभी कभी रक्त-क्षरण भी देखा जाता है। बहुत समय पहलेसे हँफनी बनी रहती है, जो यक्ष्मा चिन्होंकी अपेक्षा कहीं अधिक होती है। होठों और अंगुलियोंके अग्र-भाग नीले हो जाते हैं और गण्डस्थल आरक्त रहता है। श्वास नलिका-प्रदाहके चिह्न पाये जाते हैं। बच्चों के फुफ्फुसाधार (Base) में साधारण स्वर-झंकार कम हो जाती है क्योंकि उनमें स्थान स्थान पर वायुनल-फुफ्फुस प्रदाह (Bronchopneumonia) भी हो जाता है। कभी कभी ठोकनेसे (विघातन द्वारा) जो शब्द निकलता है वह साफ और प्रकृत होता है तथा फुफ्फुसकी आयत (जैसी कि मृत्युके उपरान्त देखी जाती है) बढ़ जाती है। शब्द परिचायक यन्त्र द्वारा सुनने पर राल्स पाये जाते हैं जो कड़े वा सूक्ष्म तीव्र मध्यम होते हैं। कभी

कभी फुफ्फुसावरणमें यक्ष्मा गांठोंके उपस्थिति रहनेके कारण सूक्ष्म कुर्कुराहट भी सुन पड़ती है। बच्चोंके फुफ्फुसके निम्न भाग वा मूलमें नलाकृति स्वर (Tubular Sound) सुन पड़ते हैं। अन्त अवस्था तक ये रालस अच्छी तरह सुने जाते हैं। तापक्रम १०२ से १०३° तक जाता है, तथा उल्टे प्रकारका तापक्रम भी पाया जाता है। नाड़ी तेज और कमज़ोर रहती है। नितान्त नूतन अवस्था में प्लीहा बहुत बढ़ जाती है। यह रोग १० से १२ दिनों तक (अथवा कभी कभी दो महीने तक भी) रहता है एवं रोगीकी मृत्यु अवश्य हो जाती है।

निदान—इसके निदानमें कठिनाई नहीं होती। पूर्व इतिहाससे यह ज्ञात होता है कि रोगी कुछ दिनोंसे खांसीसे पीड़ित था, वा इसके फुफ्फुसमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो गया था अथवा इसकी ग्रन्थियों तथा अस्थियोंकी अवस्था ठीक नहीं थी। बहुधा ऐसे रोगियोंके खखारमें यक्ष्मा कीटाणु मिलते हैं। इन लक्षणोंके अतिरिक्त फुफ्फुस यक्ष्माके और भी चिह्न पाये जायँगे।

(३) मस्तिकावरणका नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा (Acute milliary Tuberculosis of the meninges)

इस प्रकारके यक्ष्मामें, मस्तिष्कावरण एवं कभी कभी सुषुम्नावरण (विशेष कर अंतरावरण) पर आक्रमण होता है।

रोग एकसे पांच वर्षके बच्चोंमें बहुत देखा जाता है। पहलेसे भी अंत्रधारक झिल्लियोंकी अथवा श्वास नलिकाओंकी ग्रन्थियोंमें यक्ष्माकेन्द्र वर्तमान रहता है। ऐसा बहुत कम होता है कि प्राथमिक आक्रमण मस्तिष्कावरण पर ही हो।

लक्षण—सम्भव है बच्चेका स्वास्थ्य कुछ सप्ताहों से खराब होता चला आया हो, या वह अन्य किसी रोगसे पीड़ित हो वा कभी ज़ोरसे गिर पड़ा हो। बच्चा दुबला होता जाता है, चिड़ चिड़ा हो जाता है, उसे भूख नहीं लगती और उसकी प्रकृति एकदम बदल जाती है। इसके उपरान्त इस रोगके लक्षण प्रकट होते हैं। रोग एकाएक कँप कँपी (Convulsions) के साथ आरम्भ हो जाता है, वा धीरे धीरे शिरदर्द, वमन और ज्वरके साथ आरम्भ हो जाता है। शिरदर्द कभी कभी इतने ज़ोरसे रहता है कि बच्चा इससे छटपटाता है, शिरकी ओर अपना हाथ उठाता है और जब दर्द और भी बढ़ जाता है, तो वह एकदम चीख़ उठता है। कभी कभी तो इतना चिल्लाता है कि जब तक वह थक न जाय चिल्लाना बन्द नहीं करता। निरन्तर वमन (जिसका भोजनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता), होता रहता है। साथ ही कोष्ठबद्धता भी होती है। ज्वर आरम्भमें कम रहता है किन्तु धीरे धीरे १०२° से १०३° अंश तक चला जाता है। नाड़ी पहले तेज़ रहती है फिर अनियमित और सुस्त हो जाती है। श्वासकी गतिमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता। नींदमें भी बालक बेचैन रहता है। उसके हाथ पाँव या अन्य स्थानों की मांसपेशियां खिंचती रहती हैं और वह बहुत बार डर डर कर जाग उठता है। आँखोंकी पुतलियां छोटी हो जाती हैं। आरम्भमें सारे लक्षण प्रदाहकी मात्रा पर निर्भर रहते हैं।

द्वितीय अवस्थामें ये ज्वालायें बन्द हो जाती हैं। वमन नहीं होता, उदर धँस कर नौकाकार बन जाता है। कोष्ठबद्धता बढ़ जाती है, बच्चा शिरदर्द का संकेत नहीं करता प्रत्युत सुस्त और चेष्टाहीन (Apathetic) बन कर पड़ा रहता है। जागने पर निरर्थक बातें बकता है। उसका शिर खिंच जाता है और वह जब कभी चिल्ला उठता है, पुतलिया बड़ी और अनियमित आकार की हो जाती हैं। कभी कभी निर्भय दृष्टि (Squint) भी देखी जाती है। श्वाससे मानो आह निकलती है, कँपकँपी हो सकती हैं। एक ओर की वा एक अंग की मांसपेशियां कठोर हो जा सकती हैं। तापक्रम १०० से १०२·५° तक रहता है। कभी कभी

शरीरमें लाल चकत्ते पाये जाते हैं। किसी उंगली के नखसे रोगीके शरीर पर एक रेखा खींचने पर एक लाल रेखा उग आती है, किन्तु इसका कोई मूल्य नहीं होता।

तीसरी वा अन्तिम अवस्था पक्षाघात (Parlysis) की होती है। अचेतना इतनी बढ़ जाती है कि बालकको होशमें नहीं लाया जा सकता। कँपकँपी अधिक होती है और पीठ एवं गलेकी मांसपेशियां कभी कभी कठोर हो कर खिंच जाती हैं। चाक्षुष नाड़ी (Optic nerve) में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है जिससे आंखें करीब करीब अंधी हो जाती हैं। नेत्रकी मांस पेशियोंमें भी पक्षाघात होता है, पुतली बड़ी हो जाती है, पलक आधे ही झिपते हैं, आंखें ऊपरको उलट जाती हैं जिससे उनकी कनीनिका (श्वेतांश-Cornea) ही दिखाई पड़ती है। इस समय दस्त होने लगते हैं, अवस्था और भी खराब होती चली जाती है और अचेतन अवस्थामें मल-मूत्र त्याग होने लगता है। तापक्रम कम हो जाता है—कभी कभी तो ९३° वा ९४° तक हो जाता है। किसी किसी रोगीका तापक्रम मृत्युके कुछ क्षण पहले बढ़ कर १०६° तक चला जाता है। रोगीकी सभी अवस्थाओंमें श्वेताणुओंकी संख्या बढ़ी ही रहती है।

उपर्युक्त घटनाओंके क्रममें कभी कभी बड़ी तेज़ी देखी जाती है और रोग कभी कभी जीर्ण रूप भी धारण करता है।

इस रोगकी कई विशेषतायें हैं।

प्रथम और द्वितीय अवस्थाओंमें नाड़ी सुस्त और बेठिकाने चलती है और अन्तिम अवस्थामें ज्यों ज्यों हृदयकी शक्ति क्षीण होती जाती है त्यों त्यों यह तेज़ होती जाती है। तापक्रम अधिक रहता है किन्तु किसी किसी रोगीमें यह १००° से बढ़ने नहीं पाता तथा अन्तिम अवस्थामें ९५° वा ९४° तक गिर जाता है।

नेत्र सम्बन्धी लक्षण—प्रारम्भिक अवस्थामें पुतलियां छोटी हो जाती हैं किन्तु पीछे कुछ बड़ी होती जाती हैं। नेत्रकी मांस पेशियोंकी संचालक नाड़ियां क्षतग्रस्त हो जाती हैं। सांवेदनिक पटल (Retina) में प्रदाह उत्पन्न होता है।

चालक नाड़ी (Motor nerves) सम्बन्धी लक्षण—किसी अंगकी मांस पेशियां बहुत समय तक खिंची रह सकती है। उंगलियां थर्थराती हैं और उनमें एक विचित्र चालन (Athetoid movements) देखा जाता है। एक वा दोनों ओरके अङ्गोंमें पक्षाघात सम्भव है। कभी कभी मौखिक-पक्षाघात (Facial paralysis) भी देखा जाता है और तब बोलनेकी शक्ति जाती रहती है। कर्निगका चिह्न* कभी कभी पाया जाता है तथा बैबिंस्कीका प्रत्यावर्त्तन † भी देखा जाता है।

ये लक्षण रोगजनित अङ्ग-विकृति पर निर्भर करते हैं। मस्तिष्काधार (Base of the brain) के अंतरावरण (मस्तिष्कको ढंकनेवाली सबसे अन्तिम झिल्ली Piameter) पर बहुत सी यक्ष्मा गांठें प्रदुर्भूत होती हैं। इनसे भिन्न भिन्न आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity) के द्रव निर्गत होते हैं, जिसके फल स्वरूप—

* Kering's Sign यह मांसपेशियोंके अधिक तनावका द्योतक है। स्नानावस्थामें यदि जंघोंको उदरके साथ एक समकोण बनाते हुए मोड़ना चाहे, तो यह तबतक सम्भव नहीं होगा जब तक पाँव टेहुनेके बल मुड़ न जाये। यह परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है—रोगीको चित सुला कर उसके दोनों पैर फैला देते हैं। अब एक पाँवकी एँड़ीको पकड़ कर (जंघेको उदर पर मोड़नेकी इच्छासे) ऊपरकी ओर उठाते हैं। दूसरा पाँव भी साथ ही साथ अनायास उठ जाता है।

† Babinski's Reflex action—साधारणतः यदि पाँवके तलवेको किसी भोथरी वस्तुसे गुदगुदावें तो अँगूठा एवं अन्य उंगलियाँ तलवेकी ओर झुक जाती हैं, किन्तु रोगकी हालतमें ये उंगलियाँ ऊपरकी ओर खिंच जाती हैं।

(क) मस्तिष्कके भिन्न भिन्न अंशों पर बहुत दबाव पड़ता है और उनमें प्रदाह उत्पन्न होता है जिससे—

(१) प्रथमा (वा घ्राण) नाड़ी पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

(२) चाक्षुष नाड़ीमें प्रदाह उत्पन्न होता है—→ रोगीको सूझता नहीं।

(३) तीसरी, चौथी और छठी नाड़ियोंमें प्रदाह होता है—→ तिर्यक् दृष्टि (Squint) पलकोंका झुक जाना, पुतलियोंकी असमानता एवं प्रकाशसे अपरिवर्त्तित* रहना (Loss of reaction to light) सम्भव है।

(४) त्रिपथगा नाड़ी (Trigewinal nerve) का प्रदाह होता है जिससे चर्वणक मांस-पेशियोंमें दर्द होता है और ये शक्तिहीन हो जाती हैं।

(५) मौखिकी-नाड़ी-प्रदाह—→ मुखके एक वा दोनों ओर शक्तिहीनता वा पक्षाघात हो जाता है।

(६) श्रावणी नाड़ी (Auditory nerve) के प्रदाहसे बहरापन हो जाता है।

(७) जिह्वा कंठ नाड़ी (Glossopharyngeal) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(८) वक्षोदर मध्यस्था नाड़ी (Vagus nerve) आरम्भमें प्रदाहके कारण उत्तेजित रहती है, जिससे हृदयकी गति मन्द हो जाती है किन्तु जब यह नाड़ी क्षतग्रस्त होती है तो हृदयकी गति अनियमित और द्रुततर हो जाती है।

(९) सौषुम्न सहायक नाड़ी (Spinal accessory) के उत्तेजित होनेके कारण शिर पीछेकी ओर खिंच जाता है।

(१०) जिह्वाधोवर्त्ती (Hypoglossal) नाड़ी पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(११) मस्तिष्क पर चाप पड़नेके कारण एकांग वा अर्धाङ्ग पक्षाघात (Monoplagia or Hemiplagia) हो जाता है।

(ख) साधारण अंतर मास्तिष्क दबाव (General intracrainal Pressure) बढ़ जाता है जिससे मस्तिष्क एवं इसके आवरणमें प्रदाह-जनित उत्तेजना होती है और उन पर दबाव भी पड़ता है जिससे—

(१) दर्द—बच्चा कभी कभी शिरदर्दसे चीख भी उठता है।

(२) वमन—प्रारम्भिक अवस्थामें तो रक्तके विषाक्त होनेके कारण होता है किन्तु पीछे इस दाबाधिक्यके कारण होता है।

(३) श्वासोच्छ्वासकी गति बदल जाती है। शेनीस्टोक्स श्वसन् होता है या श्वास तेज़ीसे चलता है।

(४) नाड़ी (नब्ज़) तेज़ और बे ठिकाने चलती है।

(५) कँपकँपी होती है।

(६) उदर धंस कर नौकाकार हो जाता है।

(७) मानसिक कष्ट—रोगी उत्तेजित रहता है, सिकुड़ कर सोना चाहता है, प्रकाशसे बचना चाहता है, प्रश्नका उत्तर नहीं देना चाहता और वास्तवमें किसी प्रकार चिढ़ाया जाना नहीं चाहता।

(८) टैशो सेरिब्रेल (Tache Cerebrale) अर्थात् नखसे रोगीके शरीर पर एक रेखा खींची जाय तो एक वास्तविक लाल रेखा खिंच जाती है।

(९) तापक्रम—रोगकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न भिन्न होता है।

(१०) करनिगके चिह्न इत्यादि।
सम्भव हैं।

* साधारणतः प्रकाशमें पुतलियां छोटी हो जाती हैं और अँधेरेमें कुछ बड़ी।

निदान—केवल त्रिदोष ज्वर (Typhoid) से इसे पृथक् करना पड़ता है अन्यथा इस रोगको पहिचानना कठिन नहीं है।

त्रिदोष ज्वर।	यक्ष्माकृत मस्तिष्कावरण प्रदाह
(क) शिरदर्द—केवल आरम्भमें होता है और बादको नहीं पाया जाता।	बहुत ज़ोरसे होता है और ज्यों ज्यों रोग बढ़ता जाता है त्यों त्यों यह भी बढ़ता जाता है।
(ख) नेत्र चिह्न—नहीं पाये जाते।	सदैव वर्त्तमान रहते हैं।
(ग) लाल चकत्ते—पाये जाते हैं (७ से १० दिनोंके भीतर)	नहीं पाये जाते।
(घ) तिर्यक् दृष्टि—नहीं पाई जाती।	पाई जाती है।
(ङ) अन्य स्थानोंमें यक्ष्मा केन्द्र—नहीं मिलता।	मिलना बहुत सम्भव है।
(च) तापक्रम—नियमित रहता है।	अनियमित रहता है।
(छ) रक्त परीक्षा—एक विशेष परीक्षाकी जा सकती है जिसे वीडल-परीक्षा (Widal's Test) कहते हैं।	रक्त-परीक्षासे कुछ पता नहीं चलता।

चिकित्सा—वास्तवमें नूतन बहुसंख्यक यक्ष्माकी कुछ भी चिकित्सा नहींकी जा सकती है। "औषधिः जाह्नवी तोयम्, वैद्यः नारायणो हरिः।" रोगीको पुष्टिकारक पथ्य देना उचित है, और यथा सम्भव औषधियों द्वारा उसकी बेचैनी कमकी जा सकती है। मस्तिष्कावरण प्रदाहमें कुछ मस्तिष्क सौषुम्न द्रव निकाल देनेसे रोगीको कुछ चैन मिलती है।

चुम्बकीय क्षेत्र

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

साधारण चुम्बकोंसे तो सभी परिचित हैं पर इनको छोड़ कर चुम्बकीय क्षेत्र कैसे पैदा किये जाते हैं और उनका उपयोग क्या है यह बहुत लोगोंको नहीं मालूम। चुम्बकत्वका पहला दिग्दर्शन तो चुम्बक पत्थर द्वारा ही हुआ पर फिर पता चला कि लोहे इत्यादिके कृत्रिम चुम्बक भी बनाये जा सकते हैं। एक लोहेकी छड़को चुम्बक पत्थर से रगड़ने पर यह लोहे की छड़ चुम्बक हो जाती है। यहां चुम्बकीय क्षेत्रोंकी तीव्रताके विषयमें कुछ कहना आवश्यक होगा—इसका अन्दाज़ा इस प्रकार लगाया जाता है। मान लीजिये कि एक चुम्बक रखा हुआ है। यदि दूसरा चुम्बक इसके पास लाया जाय तो सम ध्रुव (Poles) एक दूसरेसे दूर भागेंगे और असम एक दूसरेको आकर्षित करेंगे। इस आकर्षणके परिमाणसे इन क्षेत्रोंकी तीव्रताका अन्दाज़ा किया जाता है।

यह भी प्रयोगोंसे मालूम हुआ कि यदि एक चुम्बकको आप लटका दें तो वह उत्तर-दक्षिणकी ओर घूम कर ठहर जायगा। यही कुतुबनुमाका सिद्धान्त है। पर यह क्यों होता है? इसका कारण यह बतलाया जाता है कि पृथ्वी भी एक चुम्बक है और यह लटका हुआ कृत्रिम चुम्बक उसीसे प्रभावित हो उस उत्तर-दक्षिण दिशामें ठहर जाता है। पृथ्वीका चुम्बकीय क्षेत्रका मान संसार

के भिन्न भिन्न स्थानों पर बदलता रहता है। प्रयागमें यह क्षेत्र तीव्रताकी इकाईका तिहाई भाग है। प्रयोगोंसे यह भी पता चला कि सूर्यमें भी चुम्बकीय क्षेत्र है। सूर्यकी सतह पर इसकी तीव्रता ५० गाउस (क्षेत्रकी तीव्रताकी इकाई) के लगभग है पर सूर्यमें जो काले धब्बे हैं वहां यह बढ़कर ५००० गाउस हो जाती है।

विद्युत और चुम्बकत्वका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे आधुनिक ज्ञानके भरोसे यह कहा जा सकता है कि वैद्युतिक प्रवाहके कारण ही चुम्बकत्व का प्रादुर्भाव होता है। १८२० ई० में ओस्टेंड ने प्रयोग करके यह पाया कि यदि तार में विद्युत्धारा बह रही हो तो उसे एक लटके हुए चुम्बक पर ले जाने से वह प्रभावित होता है। इसके पश्चात् धीरे धीरे वैद्युतिक चुम्बकों की सृष्टि हुई। साधारण चुम्बक तो बहुत बलवान नहीं बन सकते पर यह पाया गया की यदि एक लोहे का टुकड़ा ले उसके चारों ओर एक तांबे का तार लपेट कर इस तार में से विद्युत्धारा बहायें तो तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होगा। जितनी आप धारा बढ़ायेंगे उतना ही क्षेत्र भी तीव्र होता जायगा। इस प्रकार के चुम्बक का प्रयोग बहुत हुआ है। लोहा बनाने के बड़े २ कारखानों में तो यह लोहा ढोनेके काममें लाया जाता है। रेल, ट्राम इत्यादि में इसकी सहायता चलती गाड़ी रोकने में ली जाती है। पर इसका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग बिजली उत्पन्न करनेमें या उससे काम लेनेमें हुआ। बिजलीघरसे जो आपको बिजली मिलती है उसको उत्पन्न करनेमें चुम्बकीय क्षेत्र का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसी क्षेत्रमें एक तांबेके तारोंका समूह घुमानेसे बिजलीकी धारा उत्पन्न होती है। बिजलीकी घण्टी, तार भेजनेका यन्त्र इत्यादि सब इसीके उपयोगके उदाहरण हैं। इस प्रकार अधिकसे अधिक १०००० गाउसका क्षेत्र उत्पन्न हो सकता है। वैज्ञानिकों को इससे अधिक तीव्र क्षेत्रोंकी आवश्यकता हुई, पर क्यों?

इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये हमें पदार्थोंके विषयमें कुछ छानबीन करनी होगी। मान लीजिये कि एक तांबेके टुकड़ेको हम तोड़ते जांय। पर हम उसके कितने छोटे टुकड़े कर सकते हैं? इसको तोड़ते तोड़ते हम अणु तक पहुँच सकते हैं। इस गोलेका

व्यास $\frac{१}{१००००००००}$ श०मी०के लगभग होगा और

बोझ $\frac{१}{१०००००००००००००००००००००००}$ ग्रामके

लगभग पर इसके आगे क्या होगा? भौतिक शास्त्रज्ञोंकी खोजसे यह पता चला कि यह छोटा सा परमाणु भी तोड़ा जा सकता है। यह एक अतीव छोटे सूर्य मण्डलके समान है। जिस प्रकार सूर्यके चारों ओर पृथ्वी, मंगल, बुध, शनिश्चर इत्यादि ग्रह घूमते हैं उसी प्रकार तांबेके एक अणुमें सूर्यके स्थान पर धन विद्युतका एक बिन्दु है और इस बिन्दुके चारों ओर ऋणाणु अलग अलग घेरोंमें चक्कर लगाते हैं। उदाहरणार्थ, तांबेमें २९ ऋणाणु अर्थात् ऋण विद्युत्के कण चक्कर लगाते हैं, लोहेमें २६, गंधकमें १६ इत्यादि आधुनिक वैज्ञानिकोंका मुख्यध्येय इस विषयमें अधिक जानना ही है। अब यह तो हम कह आये हैं कि चुम्बकत्व का उद्भव वैद्युतिक धाराके कारण होता है पर धारा क्या है? यही न कि विद्युत कि कुछ मात्रा किसी वेगसे बहती है। अब तांबेके अणुमें यही तो हो रहा है अर्थात् एक ऋण विद्युत्का बिन्दु किसी वेगसे चक्कर लगाता है अतएव यह भी एक प्रकार की धारा ही है। इसलिये प्रत्येक अणु चुम्बक होना चाहिये। प्रसिद्ध वैज्ञानिक फैरेडे ने कुछ प्रयोग किये जिनसे पता चला कि लोहे या इसके समान कुछ तत्वोंके सिवा और भी कई वस्तुएं चुम्बकत्व दिखातीं हैं पर बहुत थोड़ी मात्रामें। रेडियमकी आविष्कारक मैडेम क्यूरीके पति श्री क्यूरीके प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ कि लगभग सब वस्तुएं चुम्बक हो सकती हैं।

यदि हमें अणुओंके अन्दरकी गठनका पता लगाना हो तो हमें यह जाननेसे कि चुम्बकीय क्षेत्रोंका अणुपर क्या प्रभाव पड़ता है बहुत सहायता मिलेगी। ज़ीमेन असरमें यही किया जाता है। जब एक अणु प्रकाश दे रहा हो तो उसे एक चुम्बकीय क्षेत्र में रख दिया जाता है और देखा जाता है कि उस क्षेत्रका उस प्रकाश पर क्या प्रभाव पड़ता है, और भी भीतर घुस कर अणुका रहस्य लेनेके लिये अतिशय तीव्र चुम्बकीय क्षेत्रोंकी आवश्यकता है।

यही नहीं यदि एक क्षेत्रमें एक धातुका तार रखा जाय तो उसकी बाधा बढ़ जायगी। यह भी एक महत्वपूर्ण बात है और तीव्र चुम्बकीय क्षेत्रोंकी इस प्रकारकी खोजके लिये भी आवश्यकता है। फिर यह पाया जाता है कि यदि एक लोहे की छड़को चुम्बक बनाया जाय तो उसकी लम्बाई बढ़ जायगी। साधारण क्षेत्रोंमें यह प्रभाव लोहे में ही दिखाई देता है पर तीव्र क्षेत्रोंमें क्या होता है यह भी खोजका विषय है। इसी प्रकारके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे अतिशय तीव्र चुम्बकीय क्षेत्रोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

इस प्रयोगको करनेका श्रेय केम्ब्रिज विश्व विद्यालयकी कैवन्डिश प्रयोगशालाके श्री केपिज़ा को है। इन्होंने ३००००० गाउस तकके क्षेत्र उत्पन्न कर डाले। इनके प्रयोगोंका वर्णन यहां इसलिये किया जाता है कि इस प्रयोगमें इतनी बुद्धिमानीसे कठिनताओंका सामना किया गया जिसको देख कर चकित होना पड़ता है।

लोहेका वैद्युतिक चुम्बक ६०००० गाउससे अधिक क्षेत्र नहीं दे सकता इसका कारण यह है कि लोहा एक सीमासे अधिक चुम्बकत्व नहीं ले सकता अर्थात् वह 'छक' जाता है। इसलिये केवल एक ही उपाय रह जाता है अर्थात् बिना लोहा अन्दर डाले एक तारके बेठनमें एक बड़ी धारा प्रवाहित करना। पर चाहे जितनी धारा एक तारमें से नहीं भेज सकते क्योंकि जब एक बाधामें धारा बहती है तो तार गरम हो जाता है और यदि अत्यधिक परिमाण में ताप उत्पन्न हो तो तार गल जानेका भय होता है। मान लीजिये कि हमें १०० लाख गाउसका क्षेत्र चाहिये। अब इसके लिये जो धारा हम भेजेंगे यदि वह एक सेकिण्ड तक जाती रहे तो तारका तापक्रम १००००°श तक पहुँच जायगा और तार जल कर समाप्त हो जायगा। पर यदि यही धारा $\frac{१}{१००}$ सेकिण्ड तक रहे तो केवल १०००°श तक तापक्रम बढ़ेगा। यह इतना बुरा नहीं है। केपिज़ा ने यही किया। उन्होंने तांबेके तारकी बेठनमें ३०००० एम्पीयर की धारा $\frac{१}{१००}$ सेकिण्डके लिये भेजी।

यही कितनी बड़ी बात है इसका अनुभव आप कर सकेंगे यदि आपको बताया जाय कि साधारण बिजली की बत्तीमें १ एम्पीयर का छोटा सा भाग जाता है और फिर तापक्रम इतना बढ़ जाता है कि तार इतना प्रकाश देता है।

इस प्रयोगमें बड़ी कठिनाइयां हुई। पहला प्रश्न था कि यह धारा कहां से आये? इसके लिये एक विशेष प्रकारका उत्पादक यन्त्र बनाया गया। यह उलटी सीधी धारा (Alternating current) दे सकता था। और जब इसके दो सिरों को जोड़ दिया जाता था तो बड़ी भारी धारा इस बेठनमें जाती थी। इसके बनवानेमें कपीजाकी प्रतिभाका पूरा दिग्दर्शन मिला।

पाठक बिजली की बत्तीको जलाने वाले बटन या स्विचसे परिचित होंगे। जब धारा प्रवाहित करना हो तो यह काममें आता है। यदि आप इसका ढकना खोल कर इसे काममें लायें तो आप देखेंगे कि एक चिनगारी सी उड़ती है। यह तो होता है जरा सी धारामें फिर ३०००० एम्पीयर का क्या कहना! और फिर यह सारा काम

अर्थात् धाराका स्थापन $\frac{१}{१००००}$ सेकिण्ड में हो जाना चाहिये क्योंकि क्षेत्र कुल $\frac{१}{१००}$ सेकिण्ड तक ही रहना है। अब उलटी सीधी धारामें एक क्षण ऐसा होता है कि धारा का मान शून्यके लगभग रहता है बस यह स्विच ऐसे काम करता था कि धारा उसी क्षण पर तोड़ी जाय। इसको बनाना बड़ा भारी काम था।

अब जिस समय डायनमोसे धारा ली जाती थी तो घूमने वाली बेठनको एक धक्का पहुँचता था और इस कारण जिस मकानमें यह प्रयोग हो रहा था उसकी नीव तक हिल जाती थी और एक भूचाल सा आता था। यदि इस कारण प्रयोगका सामान डांवाडोल हो जाय तो प्रयोगसे कोई भी नाप लेना असंभव होता, इसलिये यह पता लगाया कि यह हलचल किस गतिसे आगे बढ़ती है। फलस्वरूप डायनमोसे ५० फीट दूर प्रयोग किया किया जाता था जिससे कि जबतक भूचाल की हलचल प्रयोग के स्थान पर पहुँचे वह समाप्त हो चुके।

अब एक और कठिनाई हुई। इस बड़ी धाराके कारण जिस बेठनमें क्षेत्र पैदा किया जाता था वह इस क्षेत्रके कारण फटने लगी। उस पर प्रति वर्ग इञ्च ५० या ६० मन की शक्ति लग जाती थी जिसके कारण उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। यह इसको रोकनेके लिये बेठनको लोहेकी रस्सियोंसे जकड़ दिया गया पर वह भी टूट गईं। अब यह बड़ी समस्या थी। इतने समय और धनके व्ययके पश्चात इस जरा सी बात ने सब मिट्टी कर दिया। पर आधुनिक वैज्ञानिकोंके लिये कोई समस्या भी बड़ी नहीं है। गणितसे हिसाब लगा कर एक ऐसी बेठन बनाई गई जो प्रभावित होने पर बढ़ जाती थी। क्षेत्र तो मिल गया पर अब जो प्रयोग इसमें किये जाँय उनमें यह आवश्यक था कि वह सब $\frac{१}{१००}$ सेकिण्डमें पूर्ण हो जांय। अर्थात् ज़ीमेन असरकी तस्वीरें इस छोटेसे समयमें ली गईं।

यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि इस समय में हाथसे कुछ भी करना असम्भव है। सारा काम बिजलीकी सहायतासे होता था। एक बटन दबाते ही एक भारी ताम्रपट गिरता था। यही धारा को प्रवाहित कर गिरते गिरते दूसरे बटनोंको दबा चित्र लेने का, धारा नापनेका और क्षेत्र नापनेका काम करता था और अन्तमें धाराको बन्द करता था। यदि इसके काममें $\frac{१}{१००००}$ सेकिण्डकी भी देर हो जाती तो कदाचित सारी प्रयोगशाला और प्रयोगके सामानका नाश हो जाता। इस क्षेत्रको काममें लाकर आणविक चुम्बकत्व पर बहुत महत्व-पूर्ण खोजें हुई हैं जिनका यहां वर्णन देना उचित न होगा। भविष्यमें इससे बहुत कुछ आशा है।

इण्डियन साइन्स कांग्रेस नागपुर जन्तु शास्त्र विभाग

प्रिन्सपल बी० एल० भाटियाके सभापतित्व-भाषण का सारांश

[ले० डा० रामशरण दास जी डी० एस-सी०]

जन्तु शास्त्र विभागके सभापति चुने जाने पर प्रिन्सपल बी० एल० भाटिया ने साइन्स कांग्रेस कमेटी को धन्यवाद दिया। उन्होंने लाहौर के जन्तु शास्त्रके स्कूलसे अपना लम्बा सम्बन्ध बतलाते हुए कर्नल स्टीफेन्सन, एफ० आर० एस०, की बड़ी प्रशंसा की। इन्होंने लाहौरमें सन् १६०६ में जन्तु शास्त्रका स्कूल खोला था। इन्होंने अपने व्यक्तिगत उदाहरण और लगनसे अपने सहकारियों और विद्यार्थियों को जन्तु शास्त्र की उन्नति करने के लिये बहुत उत्साहित किया। यह स्कूल कर्नल स्टीफेन्सन की अध्यक्षता में और स्वयम् भाटिया महोदय की सहायता से इतना सफल हुआ है कि वहांके ग्रेजुएट अन्दमानसे लेकर पेशावर और कोलम्बोसे लेकर श्रीनगर तक फैले हुए हैं। ये अनुसन्धान कर्त्ता और शिक्षकों के पदों पर नियुक्त हैं, और उनमेंसे चार साइन्स कांग्रेसके जन्तु-शास्त्र विभागके सभापति भी रह चुके हैं। उन्होंने अपने भाषणमें आदि प्राणियों (Protozoa) के विषयमें बतलाया जो कि एक कोष वाले अणुवीक्षणीय जन्तु होते हैं। गत पचास वर्षों में यह मालूम हुआ है कि परोपजीवी (Parasitic Protozoa) आदि प्राणी ऐसे आकस्मिक जीव हैं जो मनुष्यों और प्राणियोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। आगे चल कर उन्होंने स्मिथ और किलबोर्नके उन अन्वेषणोंका उल्लेख किया जिनमें इन दो महाशयों ने यह सिद्ध किया है कि ढोरोंके टेक्सस (Taxas) ज्वरके फैलाने वाले टिक्स कीटाणु हैं। लेवर्न, गाल्गी, रास, और ग्रासीके अन्वेषणों का भी उल्लेख किया जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्यों और पक्षियोंमें रोग फैलाने वाले विशेष प्रकारके परोपजीवी हैं, जो मच्छड़ों द्वारा स्थान परिवर्तन करते हैं। इसी सम्बन्धमें ब्रूस महाशयके ट्राइपेनोसम नामी आफ्रिकाके ढोरोंके नगना (Nagana) और उसका टिसटिसी (Tsetse) मक्खियों द्वारा स्थान परिवर्तनके विषयमें कुछ बतलाया। इन सब अनुसन्धानों ने आदि प्राणियोंके बृहत् अध्ययन और अनुसंधान के लिये नया मार्ग खोल दिया है।

जो लोग रोगोंके पहिचान या रोगोंके अवरोध उपचर्याके लिये आदि-प्राणियोंका अध्ययन करते हैं उनके ऊपर विज्ञानकी उन्नति करने वाले विद्वानों का भारी ऋण है। इसी प्रकार जन्तु शास्त्री को भी मानना पड़ेगा कि चिकित्सक लोगोंके कामोंमें जन्तु शास्त्रकी लगातार उन्नति हो रही है।

इसके उपरान्त भाटिया महोदय ने उन अनुसंधानोंका वर्णन किया जो गत बीस वर्षोंमें हुए हैं। आदि-प्राणी बहुत ही साधारण प्रकारके जन्तु समझे जाते हैं। उनने शार्प, योकम और टेलरकी रचनाओं की ओर संकेत किया। इन महोदयों ने सूक्ष्मदर्शी निरीक्षण प्रणाली द्वारा सिद्ध किया है कि इन जन्तुओंकी नसोंमें गति सम्बन्धी यंत्र विद्यमान है परन्तु ये जन्तु 'Multum in parvo' अवस्थामें इतने जटिल होते हैं कि जिसका स्वप्नमें अनुमान करना कठिन है।

कोष्ठज्ञान (Cytological) रीति द्वारा अनुसंधानों ने न केवल मिटोकोण्ड्रिया और गोल्गी यन्त्र पर विस्तृत प्रकाश डाला है वरन् यह आशा दिलाई है कि इसकी स्थिति, उत्पत्ति, प्रकार और इनके संयोगित कार्योंके विषयमें अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। उन्होंने इस विषय की आधुनिक रचनाओं के विषय में बतलाया फिर डर्बी और दूसरे विद्वानों की आधुनिक रचनाओंके अनुसार इस बात पर विवाद किया कि उद्जन यवन का पानीमें रहने वाले जन्तुओं पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है।

संयोग का सिद्धान्त

उन्होंने कालकिन्स, जेनिंग, और उडूफके सिलियेटोंमें संयोगके विषयकी रचनाओंका वर्णन किया और यह बतलाया कि संयोग जीवन और उत्पत्तिके लिये आवश्यक नहीं है। वे इसके बिना भी बने रह सकते हैं परन्तु इस प्रकार का जीवन एकसा और परिवर्तनहीन होता है। द्विजातीय उत्पत्ति पर दो माता पिता की विशेषताओंके मिश्रण और नई नई जातियोंकी उत्पत्तिके लिये संयोग आवश्यक है।

परोपजीवी और पालक विशेष में उनकी स्थिति— चिकित्सक और जन साधारण गृहस्थके लिये परोपजीवी वे जन्तु हैं जो भिन्न भिन्न प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं, और जो बहुधा प्राणघातक सिद्ध होते हैं। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि परोपजीवीका अपने पालकको मार डालना उसे लाभदायक नहीं होता। प्रकृतिमें परोपजीवी और पालकका ऐसा संयोग है कि वह अपने पालकको उचित रूपसे कहीं थोड़ी हानि पहुँचाता है। मलेरियाके परोपजीवी मच्छड़ोंमें बहुत आरामसे रह सकते हैं और उन्हें बहुत थोड़ी हानि पहुँचाते हैं। मानव जातिके इतिहासमें यह एक आकस्मिक घटना होगी कि वे मनुष्यके रक्तमें पहुँच गये परन्तु इसके सिवाय कि मलेरिया ज्वर हजारों वर्षोंसे चला आया है। मनुष्य पालक और परोपजीवी का संयोग दृढ़ नहीं है और मनुष्य ने अपने को उन्हींके भरोसे पर नहीं छोड़ दिया है। कुछ परोपजीवी अपने विशेष पालकके सिवाय दूसरेमें नहीं रह सकते। यह एक मनोहर प्राकृतिक नियम है, और भिन्न भिन्न आदि-प्राणियोंके भागोंमें पाया जाता है। लेखक ने स्वयम् केंचुएके मोनोसिस्टिड परोपजीवीके विषयमें दिखलाया है कि ये पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पालक विशेषमें ही रहते हैं। उन्होंने कोफायड, स्वेज़ी, और क्लेवलैंड की रचनाओंके सम्बन्धमें बतलाया कि लगभग सभी प्रकारके दीमक अपने विशेष प्रकारके आदि प्राणी परोपजीवी रखते हैं जो कि दीमकके जीवनके लिये नितान्त आवश्यक हैं, क्योंकि वे वह लकड़ी खाते हैं जिस पर दीमक अपना जीवन निर्वाह करता है।

भारतमें आदि प्राणीका ज्ञान

अंतमें उन्होंने संक्षेपमें उन अनुसंधानों का वर्णन किया जो भारतमें हुए। भारतमें न तो पश्चिमीय अन्वेषणोंके केन्द्रों की उत्तेजना है, और न यहां प्रोत्साहन की पर्य्याप्त सुविधा है। फिर भी यहाँ ऐसा काम हुआ है जिस पर हमें अभिमान हो जाता है। टी० आर० लेविस (१८७०,७८) और डी० डी० कनिंग हम (१८७१,१८८५) और दूसरे मनुष्योंके परोपजीवी और अंतड़ियोंके अमीबा के काम करनेवालोंमें मुखिया हैं। रोनाल्डरास ने डिम्ब मलेरियाके मच्छड़ोंका पहिले पहिल अन्वेषण किया था। डिम्बके मलेरियाके मच्छड़ मलेरियाके बीमारोंके रुधिर पर निर्वाह करते हैं। आगे चल कर उन्होंने मच्छड़ोंके सम्बन्धमें परोपजीवियोंके जीवनचक्र पर प्रकाश डाला। भारतमें चिकित्सा सम्बन्धी आदि प्राणियोंके विकाशमें बहुतसे चिकित्सकोंने भारी सहायता की है। गत शताब्दीके मध्यमें बम्बईके एच० जे० कार्टर, कलकत्तेके एकेन्द्रनाथ घोष और लाहोरके स्वयम् व्याख्यानदाता की रचनाओंको छोड़ कर आदि-प्राणियोंके विषयमें बहुत थोड़ा काम हुआ है। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि आदि-प्राणियों का अध्ययन बहुत आवश्यक है। चाहे वे जमीन, पानी, अंतड़ियों, खून या शरीरके दूसरे दूसरे भागोंमें ही क्यों न मिलें। अन्वेषण का पुरष्कार स्वयं अन्वेषण ही है। प्रत्येकका यह कर्त्तव्य है कि वह सामग्री इकट्ठा करनेमें आनन्द ले और विज्ञान मन्दिर की रचनामें कुछ ईंटे चुने।

काँचके गिलास और उनका प्रयोग

[ले० श्री सुशीलकुमार जी अग्रवाल]

कोई भी समझदार भारतवासी इस बातके माननेमें आपत्ति नहीं करेगा कि फ़ैशन का भूत हमारे युवक—युवतियों पर बड़ी प्रचंड गतिसे चढ़ रहा है। फ़ैशनमें अन्धे समाजके इस समुदायको इसमें किसी प्रकारका कोई भी सन्देह नहीं होता। यदि हुआ समझदार तथा उन व्यक्तियोंके कहने-सुननेसे जिनको इनकी दयार्द्र दशा पर दया आती है तो वह अपनेको सभ्य समझा हुआ समुदाय उनको उन चेतावनियोंको अपनी धुनिमें अन्धे होनेके कारण उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता है। उनको इन समझदार तथा जिम्मेवार व्यक्तियों की इन अर्थपूर्ण चेतावनियोंमें कोई सार नहीं दिखाता। ये फैशनमें मदमाते भारतके भावी-शासन-विधानके विधायक इनको अपने आगे कुछ महत्त्व नहीं देते!

फैशन तथा उपयोगिताके कारण आज कल भारतवर्षमें कांचके बर्तनोंको और उसमें भी विशेष कर कांचके गिलासोंको एक उच्च स्थान प्राप्त है। इनका प्रचार जिस तीव्र गतिसे होता है उसका अनुमान सन् १९२६-२७ ई० की सरकारी रिपोर्टसे लगाया जा सकता है कि इस समयमें २,५२,८८,२३९ रुपयोंका कांचका सामान भारतवर्षमें विदेशों से आया। इसके अलावा भारतके अन्दर भी कई बड़े बड़े कांचके कारखाने हैं, जो पर्याप्त संख्यामें प्रतिवर्ष करोड़ोंका माल देते हैं। इस प्रकार अनुमानन ४ करोड़ रुपयेका सामान भारतमें बिका। परन्तु इसमें सबसे बड़ी संख्यायें जो थीं उनमें इनकी भी है। प्रत्येक भारतीय—अधिकतर शिक्षित समुदाय—के घरोंमें चाहे वे धनी हों अथवा निर्धन, आपको कांचके गिलास देखनेको मिलेंगे, शायद ही कोई ऐसा हतभागी शिक्षित गृहस्थ होगा जो कम से कम अपने मित्रोंको कांचके गिलासमें पानी न पिलाता हो।

कांचके गिलासोंके इस्तैमाल करनेमें एक बहुत बड़ा आराम सुभीता रहता है, जिस कारण ये फ़ैशनेबिल समुदायके अतिरिक्त सर्वसाधारण—क्या गरीब, सबके यहाँ प्रस्तुत रहते हैं। धातुके गिलास, जो पीतल, कलई और कांसे आदिके बने हुये होते हैं, एक बार काममें आनेके पश्चात् मिट्टी से मांजने पड़ते हैं, और इस प्रकारसे अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करना पड़ता है; परन्तु काँचके गिलासके इस्तैमालसे इन सब कष्टोंसे छुटकारा बड़ी सुगमतासे मिल जाता है। जैसे, मान लीजिये कि एक साधारण स्थितिके मनुष्यके वहाँ दो चार मित्र आ जांय, यदि वहाँ पीतल या कांसेका एक गिलास हुआ, तो उसको उनको कई बार मांजना पड़ेगा, जब तक वे लोग पी चुकना समाप्त करेंगे। एक मनुष्यको पिलानेके बाद दूसरेको मांज कर बार बार पिलाना भद्दा तथा फ़ैशनके बाहर मालूम पड़ता है, और साथमें कष्ट प्रद भी होता है। और वहां यदि कांच का एक गिलास हुआ, तो उससे कुछ भी भद्दापन नहीं टपकता तथा सब मनुष्य बिना मांजने का कष्ट उठाये आनन्दसे पीते हैं और प्रत्येक बार साधारणतया पानी डाल कर और खलबला कर फेंकनेसे ही गिलास शुद्ध तथा स्वच्छ मान लिया जाता है, बारबार मांजनेका कष्ट बड़ी सुन्दरतासे निवारण हो जाता है। तिस पर भी फ़ैशन तथा शानमें बट्टा न लग कर जो शान कई गिलासोंके रखनेसे समझी जाती, वह केवल कांच के एक गिलासके कारण उससे भी बढ़ कर मान ली जाती है। पीने वालों को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं होती वरन प्रसन्नता का ही अनुभव होता है। तिस पर कांचके गिलास जितने पैसों में तीन चार आते हैं, उतनेमें पीतलका एक आता है, जो निर्धनोंके लिये सर्वथा अधिक है। इसमें एक गुण और भी है कि इस गिलाससे वे मनुष्य भी पानी पी सकते हैं और छू सकते हैं, जो धातुके गिलासमें पानी पीने तथा छूनेके कदापि अधिकारी नहीं हैं, और फिर पानी पिलानेके बाद गिलास

को स्वयं ब्राह्मण भी धोके फेंकने तथा पीनेमें किसी प्रकार का संकोच नहीं करता है। इस कारण बहुतसे मनुष्य, जिनके बर्तनोंमें ब्राह्मण पानी नहीं पी सकते हैं, रखते हैं, क्योंकि इनमें वे बिना किसी संकोचादिके पानी पी लेते हैं।

जब ये बातें देखने में आती हैं तब फिर उनकी सफाईकी ओर ध्यान जाता है। परन्तु जब उस पर विचार किया जाता है, तब इसका उत्तर सर्वथा असन्तोष-जनक ही मिलता है। यह बात तो प्रत्येक मनुष्यको विदित ही है कि मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करनेवाले सूक्ष्म कीटाणु (Germs) होते हैं जो अत्यन्त शीघ्रतासे एक व्यक्तिके शरीरसे दूसरे व्यक्तिके शरीरमें केवल स्पर्शमात्रसे प्रवेश हो जाते हैं तथा भांति-भांतिके संक्रामक रोग फैलाते हैं। जब एक मनुष्य एक गिलाससे पानी पीता है तब उसके थूक और मुँहमें जो कीटाणु (Germs) होते हैं, उसमें लग जाते हैं, जो नाना प्रकारके भीषण रोग उत्पन्न करनेकी शक्ति रखते हैं। यदि दुर्भाग्यवश उसी पात्रमें कोई अन्य व्यक्ति जलपान करता है तो वही बीमारी उस मनुष्यको भी हो जानेकी पूर्ण सम्भावना रहती है। एकके बर्तनोंमें दूसरेको खाने-पीनेको मना करनेका यही एक मात्र कारण प्रतीत होता है। परन्तु शुद्ध मिट्टी या राखसे मांजनेसे उसके कीटाणु बहुत अंशोंमें नष्ट हो जाते हैं और शेष मांजनेसे छूट जाते हैं। इससे दूसरा मनुष्य जब पीता है तो उसके कीटाणु उस पर अपना प्रभाव उपस्थित न होनेके कारण नहीं दिखा पाते और वह इन रोगोंसे इस प्रकार बच जाता है। इसीलिये जूठे बर्तनोंको शुद्ध मिट्टी या राख से मांजनेका रिवाज हमारे समाजमें प्रचलित है। परन्तु आज कल कांचके गिलासोंका प्रयोग बढ़ रहा है, वहां यह न मांजे जानेके कारण अनेक विनाशकारी एवं हानिकारी संक्रामक रोगोंको भी बढ़ा रहे हैं। ऐसा देखा गया है कि मनुष्य इनको बहुत कम मांजते हैं, मगर धो अवश्य लेते हैं, जिससे इनके कीटाणु नष्ट न हो कर अधिक संख्यामें पैदा हो जाते हैं और वे दूसरों पर अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं; इस प्रकार उनका धोना व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि ये कुछ खास सावधानियोंको ध्यानमें रख कर स्वच्छता एवं शुद्धतासे इस्तेमालमें आवें, तो अवश्य लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं और तभी मनुष्य इनके अवश्यम्भावी दुष्परिणामोंसे बच सकते हैं। यदि इनके इस्तैमाल करनेके तरीकेमें किसी प्रकारका परिवर्तन न हुआ और वही धोनेकी प्रथा प्रचलित रही, तो ये हमारे ख्यालसे लाभके बजाय हानि ही पहुँचावेंगे।

इसी प्रकार अन्य प्रकारके बर्तनोंका भी प्रचार दिनोदिन बढ़ रहा है। उनको भी प्रायः इसी ढङ्गसे काममें लाया जाता है और मिट्टीसे मांजनेके बजाय धोने तक ही उनकी भी सीमा भी परमित रहती है। ये भी गिलासोंके साथ अनेक प्रकारके रोगोंको बढ़ा कर भारतकी ग़रीब जनताके धनकी बरबादीमें हाथ बंटा रहे हैं।

इस लेखमें हमने एक प्रयोग को भी लिख देना उचित समझा, जिसको मैंने जन साधारणके इस्तेमाल करनेमें देखा जिससे प्रत्येक व्यक्ति उनको स्वयं करके देख सके और इसकी सत्यता या असत्यताके बारेमें अपनी राय स्पष्ट दे सके। जनसाधारणके इस्तेमाल करनेमें जो त्रुटियां देखीं और समझीं उनको ध्यान में रख कर कुछ सावधानियोंको भी लिख दिया है। मेरा अनुमान है कि इनको ध्यानमें रख कर कांचके गिलासोंके इस्तेमालसे सम्भवतः हानि कम पहुंचेगी। सम्भवतः शब्द इसलिये कि बहुत सी बातोंकी हमसे भी छूट जानेकी सम्भावना है। मुझे आशा है कि पाठक गण इन पर ध्यान देंगे और अपनी सम्मति समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करावेंगे या मुझको ही लिखनेकी कृपा करेंगे।

प्रयोग

देखनेमें आया है कि मनुष्य एक बार पानी कांचके गिलासमें पी चुकने पर इसमें कुछ दूसरा

पानी डाल कर धोनेके मतलबसे खलखला कर फेक देते हैं। ऐसी दशामें दो बातें ध्यान देने योग्य और एतराज़ करने लायक़ प्रतीत होती हैं कि पानी जो खलखलाया जाता है, प्रायः अन्दरकी ओर नीचेका ही हिस्सा साफ़ करता है। ऊपरका हिस्सा बिना धुला रह जाता है। दूसरी बात यह है कि गिलासका बाहरी कांच (Outer surface) बिना धुला रह जाता है। वास्तवमें यही दोनों स्थान धोने चाहिये जो बिना धुले रह जाते हैं क्योंकि जब मनुष्य पानी पीता है, कांचके या किसी अन्य प्रकारके धातुके बर्तनसे, तो उसके ओष्ठ किनारेको एक ऊपरी तरफसे और दूसरा नीची तरफसे दबा लेता है और थूकादि भी इसी कारण इन्हीं दो जगहों पर विशेष रूपसे लगते हैं इन्हींके धोनेमें विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। इस प्रकार पहिली तरहका धोनेका तरीक़ा व्यर्थ होता है। कारण स्पष्ट है कि थूकादिके कण जिनको दूर करनेके उद्देशसे धोया जाता है, सर्वथा वहीं और उसी दशामें बने रहते हैं। जब फिर उसको दूसरा इस्तेमाल करेगा तो संसर्गसे कीटाणु एकसे दूसरेके मुँहमें क्यों न प्रवेश हो जावेंगे!

यदि उसी गिलासके ऊपरी हिस्से पर—भीतर और बाहर दोनों तरफ—हाथ फेर कर देखा जाय तो कुछ चिकनापन मालूम होगा; यही थूक होनेका द्योतक है। बहुतसे मनुष्योंके एक ही बर्तनमें इस प्रकार पानी पीनेसे चिकनाहटकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है और यह धीरे धीरे गिलासमें पहुंचने लगती है। इस बातको जाननेमें भी कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि उसमें पानी भर कर आप बाहर फेंक दें तो पानी सब न फिंक कर थोड़ा अन्दर बूंदोंके रूपमें उसी चिकनाहटके कारण रह जायगा और इसी प्रकारका प्रयोग अगर आप उसी गिलास को शुद्ध पीली मिट्टी या राखसे खूब मांजनेके बाद फेकें तो सब बाहर निकल जायगा और अन्दर एक बूंद भी नहीं दिखाई देगी। उस दशामें जब कि थोड़ी सी बूंदे रह जांय, दूसरा मनुष्य पानी पीवे तो वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तके अनुसार कि एक मिनटमें एक कीटके सैकड़ों बच्चे पैदा हो जाते हैं—उसके कीटाणुओंसे लबरेज़ पानी पीनेको मिलेगा! इसका मनुष्यके स्वास्थ्य पर जो असर पड़ेगा उसका स्मरण मात्र ही बस है। अब हम कुछ नियम (Precautions) भी लिखे देते हैं, इन पर भी पाठक विचार करें। मैं एक बात यहां स्पष्ट स्वीकार करता हूँ कि मैं न कोई वैद्य और न कोई डाक्टर हूँ; ऐसी दशामें इस विषय पर लिखना सर्वथा अनधिकार चेष्टा है। अतएव मेरे लिये इसकी बातोंके ठीक होनेका दावा करना सर्वथा निर्मूल है। इसलिये तीनोंको इस लेख पर प्रकाश डालना चाहिये—सम्भव है मेरी सादी बातें भ्रान्तिमूलक हों या पूर्ण रूपेण ठीक हों।

सावधानियां

(१) कांचके गिलासको शुद्ध पीली मिट्टी अथवा राखसे मांजना सर्वोत्तम है। केवल पानीसे धोनेसे यह साफ नहीं हो सकता क्योंकि इससे कीटाणुओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न उनकी संख्यामें कमी होती है।

(२) गिलासको मिट्टीसे नियम १ के अनुसार मांज कर हमेशा उल्टा रखना चाहिये ताकि उसमें एक बूंद पानी शेष न रह जाया करे।

(३) एकके इस्तेमाल कर चुकने के पश्चात् मिट्टीसे मांज कर दूसरे को इस्तेमाल करना चाहिये, धो कर नहीं।

(४) गिलासको मांजते समय अन्दर और बाहर के किनारों परका कांच विशेष तौरसे मांजना चाहिये, थूकादि जिससे छूट जावे। यह बात प्रत्येक प्रकार—धातुके भी गिलासोंको मांजते समय ध्यानमें रखना अधिक उत्तम है।

उलटे रक्खे हुए गिलाससे जब जब पानी पिये बराबर पानीसे खलबला कर पिये और हाथ डाल कर धोवे साथमें किनारों पर भी हाथ फेरे जिससे

रखे रहनेसे जो कुछ जम गया हो, धुल जाय अच्छी तरह।

यदि गिलासको एक ही व्यक्ति इस्तेमाल करे तो दिन भरमें गिलासको एक बार मांजना ही प्रयाप्त है और अन्य समय धोना। यदि बहुतसे लोग इस्तेमाल करें तो नियम तीन लागू करनेकी आवश्यकता है।

बिजली

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

भविष्यके इतिहासवेत्ता जब आधुनिक युग का इतिहास लिखेंगे तो इसे अवश्य बिजली का युग कहेंगे। वैज्ञानिक अनुसन्धानों के फल स्वरूप भौतिक शास्त्रज्ञों ने सिद्ध कर दिया है कि सारे पार्थिव पदार्थ विद्युत् मय है। सच तो यह है कि इसी भूलोक का नहीं, पर सारे सूर्यमंडल, सारे ब्रह्माण्ड का निर्माण दो प्रकार की बिजली से हुआ है। यह तो हुई गहरी छानबीन पर हमारे दैनिक जीवन में मनुष्य द्वारा उत्पादित बिजली दिन पर दिन अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। हम भारतवासी तो अभी इस सार्वभौमिक साम्राज्य के अन्दर पूर्ण रूपसे नहीं आये हैं पर अमेरिका तो सारा का सारा, क्या घर क्या बाहर, विद्युत् मय हो रहा है। छोटा से छोटा और बड़े से बड़ा काम इसीकी सहायतासे होता है।

साधारण रूप से देखिये—भोजन बनाना, पानी भरना ट्राम इत्यादि सवारियां, टेलीफोन, बेतारका तार, प्रकाशके लिये बत्ती, बरफ बनानेकी कलें इत्यादि सब इसी पर निर्भर हैं। इस छोटेसे लेखमें केवल बिजली द्वारा प्रकाश और तापकी उत्पत्ति का विवेचन किया जावेगा।

पहले यह बताना आवश्यक है कि बिजली कैसे उत्पन्न होती है। यह तो बहुत लोग जानते हैं कि कांच या आबनूसके डंडे को रगड़नेसे उसमें विद्युत् पैदा हो जाती है। यह आसानीसे देखा जा सकता है। जैसोके बने या जर्मनी या जापानके बने बाल सँवारनेके जो कंघे आते हैं उनसे सूखे बाल सँवारिये। शीघ्रतासे ऐसा करने के बालोंमें चिनगारियों का शब्द सुनाई देगा। अंधेरेमें उनका प्रकाश दिखाई देगा। अब कागजके छोटे छोटे टुकड़े धरती पर फैला दीजिये और इस कंघे को उनके ऊपर ले जाइये। टुकड़े कुछ आकर्षित हो कंघेसे चिपट जावेंगे और कुछ हिलने लगेंगे। बिजली ही इस तमाशे का कारण है। इस रीतिसे पैदा की गई विद्युत् को घर्षण विद्युत कहते हैं पर इसका उपयोग अधिक नहीं है।

दूसरी रीति है बाटरियां। आजकल मोटरोंके कारण बाटरियोंसे बहुत लोग परिचित हैं। कुछ ऐसी होती हैं कि उनमें रासायनिक परिवर्तनोंके फल स्वरूप बिजली उत्पन्न होती हैं पर जो बाटरियां मोटरमें लगती हैं। उनमें पहले बिजली जमा करली जाती है और फिर निकाल ली जाती है। अधिक परिमाणमें सस्ती बिजली इस रीतिसे नहीं बन सकती है।

आजकल बिजली डायनमो या उत्पादक यन्त्रों से ली जाती है। एक चुम्बकके दोनों सिरोंके बीच में यदि तांबेकी एक बेठन घूमे तो उसमें बिजली पैदा होगी। बड़े २ यन्त्रोंमें तांबेके तारोंका एक विशेष रूपसे गठित समूह एक बड़े भारी चुम्बकके क्षेत्रमें तेजीसे घुमाया जाता है और उन तारोंके सिरेसे फिर बिजली मिलती है। तारोंका घुमाना या तो भाप या तेलके एञ्जिन द्वारा किया जाता है या पानी द्वारा। जिन लोगों ने पनचक्की देखी हो वह यह समझ सकेंगे कि पानी द्वारा बिजली कैसे पैदा की जा सकती है। यदि पानीकी एक धार ऊपरसे पढ़ रही हो तो उसके नीचे यदि एक पहिया रख दिया जाय तो पहिया उस धारसे घूमने लगेगा और इसके द्वारा डायनमो चलाया जा सकता है। उदाहरण रूप अमेरिका के नायगरा प्रपातकी शक्ति से करोड़ों रुपयेकी वैद्युतिक शक्ति उत्पन्न की जाती

है। भारतवर्ष में भी कुछ समय से जल शक्तिके उपयोगकी ओर ध्यान दिया जाने लगा है। बम्बई प्रान्तमें टाटाका विशाल आयोजन चल ही रहा है। इसमें पश्चिमीय घाटोंकी ऊँचाई का उपयोग कर खापोली, लोणवाला इत्यादिमें लाखों अश्वबलकी शक्ति उत्पन्न की जाती है। यहींसे बम्बईके कारखानों, बम्बई नगर और बम्बई पूनाके बीचमें दौड़नेवाली बिजलीकी गाड़ोके किये वैद्युतिक धारा दी जाती है। संयुक्तप्रान्तमें रुड़कीके निकट इसी प्रकार शक्ति उत्पन्न कर यहाँके नगरोंमें धारा दी जा रही है। इस प्रकार बिजली बहुत सस्ती उत्पन्न हो सकती है। अस्तु।

बिजली का एक प्रधान उपयोग जिससे हम सब परिचित हैं वह है प्रकाश उत्पन्न करना। वैसे तो बिजलीकी बत्ती जलाना आजकल इतना साधारण काम मालूम होता है कि इसके पीछे क्या क्या विचित्र बातें हैं—यह हम भूल से जाते हैं। बिजलीकी आविष्कार होनेके पहले प्रकाश के लिये वैद्युतिक चाप (Electric arc) काममें लाई जाती थी। यह इङ्गलैंडके प्रख्यात वैज्ञानिक डेवीका आविष्कार कही जाती है। दो कोयलेके टुकड़ोंको यदि बाटरीके दो सिरोंसे जोड़ कर पास लाकर फिर अलग कर दिया जाय तो बड़ा तेज प्रकाश होगा। इसीको चाप कहते हैं। यह ऐसे बनाये जाते हैं कि कर्बन छड़ जल जाने पर बुझ न जाय। जब थोड़ा सा हिस्सा जल जाता है तो छड़ एक विद्युत् चुम्बककी सहायतासे पास सरक आती है। बहुत दिनों तक यह सड़कों पर रोशनी करने के काम आता था और सिनेमामें भी परदे पर चित्र डालनेके लिये इनका उपयोग किया जाता था।

पारद चापका आविष्कार १६०१ में कूपर-हिविट ने किया। यदि एक नलीके दे। सिरों पर पारा भरा हो और उसे धारा वाले दे। तारोंसे जोड़ दिया जाय तो इस दोनों सिरों परके पारे के। एक बार मिला कर अलग करने से कुछ हरी नीली सी रोशनी निकलती है। यह प्रकाश तेज तो बहुत होता ही है पर और भी कई विशेषतायें होती हैं। इसमें पराकासनी भाग अधिक होता है। इस बातके समझनेकी आवश्यकता है। यदि प्रकाश का किसी रीतिसे मान लीजिये कि त्रिपार्श्व से विश्लेषण किया जाय तो साधारणतः मोटे रूप से ७ रंग—इन्द्रधनुष से मिलते जुलते दिखाई देंगे। यदि हम लाल से नीले की ओर चलें तो बैंजनी रंग पार करनेके पश्चात् साधारणतः प्रकाश न मालूम होगा पर वास्तवमें वहां भी प्रकाश है वह केवल हमें दीख नहीं पड़ता। यदि उस जगह एक तस्वीर छापने का कागज़ रख दें तो वह काला हो जायगा। प्रकाशके इस अदृश्य भागमें रासायनिक प्रक्रियाओंको उत्तेजित करने की शक्ति होती है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्रमें इन किरणोंका उपयोग बढ़ता जा रहा है। त्वचाके रोगोंमें, बच्चोंके सूखिया रोगमें तथा क्षयमें यह उपयोगी सिद्ध हुई है। फैक्टरी या खदानोंमें काम करने वाले मजदूरोंको जिनको कि सूर्यका प्रकाश न मिलनेके कारण कई रोग हो जाते हैं इस पारद चापमें से निकलने वाली किरणोंसे स्नान कराया जाता है। साधारणतः किवाड़ोंमें लगने वाला कांच इन किरणोंको रोकता है इसलिये अमेरिका इत्यादिमें खोज करके ऐसा कांच बनाया गया है जो सूर्यके प्रकाशकी इन स्वास्थ्यप्रद किरणों को निकलते देता है और घरोंमें अब यही लगाया जा रहा है। वैज्ञानिक कामोंमें और फोटोग्राफीमें इस चापका उपयोग बहुत होता है पर उन सबका वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है। इससे ५०० से ३००००० बत्तियोंके समान तीव्र प्रकाश मिल सकता है।

सन् १८७८ में ग्रामाफोनके प्रख्यात आविष्कर्ता एडिसन ने आधुनिक बल्ब जैसी बिजलीकी बत्ती बनाने की चेष्टा की। इनमें एक तारमें से बिजली की धारा बहती है और इसलिए तार गरम हो जाता है और इतना गरम हो जाता है कि इतना श्वेत प्रकाश निकलने लगता है। बहुत प्रयोग

करनेके पश्चात् एडिसन ने देखा कि धातुके तार ठीक काम नहीं देते पर कर्बनके तार ठीक जलते हैं। पुराने पंखेके टूटे हुये बांसमें का तार सबसे अच्छा पाया गया। जलने पर यह कर्बन हो जाता है। १२०० प्रकारके बांसों पर प्रयोग करनेके पश्चात् पता लगा कि दक्षिणी अमेरिका का एक बांस सर्वोत्तम है। इस शोधमें एडिसन को लगभग ३ लाख रुपये व्यय करने पड़े। कांचके बल्बके भीतर कर्बनका तार रख कर उस बल्बमें से हवा निकाल ली जाती थी फिर बाहरसे धारा जाने पर तार प्रकाश देता था। इस बत्तीके बनने पर घर घर बिजलीका प्रचार होने लगा। कई वर्ष तक लोग इसको काममें लाये।

एडिसन ने कहा था कि धातु ठीक काम नहीं देती पर और वैज्ञानिकों ने प्रयोग करना न छोड़ा। १६०३ में वेल्सबेच ने वासम् (Osmium) के तार वाला एक लम्प बनाया और उसके पश्चात्, साइमन और हालस्के ने तन्तालम् के तारका वाली बत्ती बनायी। इस धातुके बहुत बारीक तार बन सकते हैं इसीलिये इसका उपयोग हुआ। परन्तु कुछ समय पश्चात् इस कामके लिये वुल्फ्रामम् अच्छा प्रतीत हुआ। उसी खर्चमें इस धातुके तारसे कर्बन की अपेक्षा चौगुना प्रकाश मिलता था। इसको खूब गरम करके हथौड़ेसे पीटा जाता है जिससे तार खींचनेमें सुविधा होती है।

इसके तार हीरेके सांचोंमें से खींचे जाते हैं। इस प्रकार बने हुए लम्पोंमेंसे वायु खींच ली जाती है।

प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ कि यदि इस निर्वात् स्थानमें नोषजन या इस प्रकार का कोई निश्चेष्ट वायव्य रख दिया जाय तो प्रकाशकी मात्रा लगभग दुगुनी हो जाती है और यह जल्दी काले भी नहीं होते। इस प्रकारकी बत्तियोंको "अर्धवाट" कहते हैं क्योंकि इनमें एक वाटके बराबर सामर्थ्य खर्च करने पर २ मोमबत्तियोंका प्रकाश मिलता है।

आजकल बड़ा तीव्र प्रकाश देने वाले लम्प बनते जा रहे हैं। हाल ही में खबर थी कि कोई महाशय उत्तरी ध्रुवकी यात्रा सबमरीन द्वारा करना चाहते हैं और समुद्रके नीचे प्रकाश फेंकनेके लिये कई लाख बत्तियोंके प्रकाश वाला एक बल्ब बनाया गया है। सिनेमाकी फिलम बनानेके लिये भी बड़े उज्ज्वल प्रकाश देने वाले लम्प बनते हैं।

स्वर्गवासी रायसाहेब प्रोफेसर सतीशचन्द्र जी देव, एम० ए०

हमें यह समाचार देते हुए अत्यन्त खेद और शोक होता है कि सोमवार २३ मार्च सन् १६३१ को प्रातःकाल रायसाहेब प्रोफेसर सतीशचन्द्र जी देव का देहावसान हो गया। आप कई माससे रोगग्रस्त थे और आपके स्वास्थ्यके विषयमें हम सभी को बड़ी चिन्ता थी। हमारा यह विश्वास था कि आप शीघ्र ही नीरोग हो जांयगे पर ऐसा न हुआ और आपका हमसे वियोग हो ही गया।

प्रोफेसर देव जी हमारी विज्ञान-परिषद्के कई वर्ष मंत्री रह चुके थे और इस वर्ष आप इसके उप-सभापति थे। परिषद्के कार्योंसे आपको विशेष स्नेह था और रोगग्रस्त एवं वयोवृद्ध होने पर भी परिषद्के अधिवेशनोंमें आप सदा विद्यमान रहते और अपने अनुभवशील परामर्श द्वारा हमें सदा प्रोत्साहित किया करते थे। अब हमें इस बात का शोक है कि हम आपके अनुभवों से सर्वथा वंचित ही रहेंगे।

प्रोफेसर देवका जन्म सन् १८७७ में हुआ था और आप प्रयागके म्योर सैन्ट्रल कालेजके पुराने विद्यार्थी थे। यहीं पर आपने सन् १८६६ में 'स्टुडेण्ट डिमान्सट्रेटर' के पद पर नौकरी आरम्भ की, पर अपने परिश्रम एवं अध्यवसायशीलताके कारण आप शनैः शनैः म्योर सैन्ट्रल कालेजके

रसायन विभागके अध्यक्ष बना दिये गये। ६ वर्ष तक आप इस सर्वोच्च पद पर सम्मानित रहे। प्रयाग विश्वविद्यालयके पुनः संगठित होने पर आप रसायन विभागमें सर्वोच्च रीडर नियुक्त हुए। तबसे आप अब तक इसी पद पर थे। इस समय आपकी आयु केवल ५४ वर्ष की थी और आगामी वर्ष आप पेन्शन लेने वाले थे, पर यह दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि आप इसको भी न भोग सके।

प्रोफेसर देव जी इस विश्व-विद्यालयके सबसे वयोवृद्ध अध्यापक थे। आपके विद्यार्थी संयुक्त प्रान्तके प्रत्येक स्थलोंमें फैले हुए हैं। इस प्रान्तमें रसायन की शिक्षाके विस्तारका बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। इसी सेवाके उपलक्षमें आपको सन् १९२७ में सरकारने रायसाहेब की उपाधि भेंट की थी।

प्रोफेसर देवके सरल स्वभाव, उदार विचार और निष्कपट हृदयमें भला किसको सन्देह हो सकता है। विद्यार्थियों को आपसे बड़ा स्नेह था और आप भी उन पर सदा कृपा दृष्टि रखते थे। इस अवसर पर हमारी यही प्रार्थना है कि परमात्मा विगत आत्माको सद्गति और उनके शोक-ग्रस्त कुटुम्बको सान्त्वना एवं धैर्य प्रदान करे।

सत्यप्रकाश

समालोचना

रसयोग सागर—द्वितीय भाग—लेखक और प्रकाशक वैद्य पं० हरिप्रपन्न शर्मा, श्री भास्कर-औषधालय, तीसरा भोईवाडा, बम्बई, पो० नं० २। पृ० सं० ७०४+५२, सजिल्द, कागज़ और छपाई सुन्दर। मूल्य १०)

श्री हरिप्रपन्न शर्मा जी ने ३-४ वर्ष हुए रसयोग सागरका प्रथम भाग प्रकाशित किया था जिसमें अकारसे नकार तकके १८०० रसों का विवरण था। इस दूसरे भागमें पकारसे ज्ञ पर्यंत २०८२ रसोंका संकलन किया गया है। इतने बड़े ग्रन्थके प्रकाशित एवं सम्पादित करनेमें कितने धैर्य्य और पांडित्य की आवश्यकता है, इसको तो लेखक महोदय ही जानते होंगे। इस ग्रन्थ की समाप्ति पर हम अपने विद्वान् लेखक को किन शब्दों बधाई दें; यह समझमें नहीं आता। इतना बड़ा कार्य पूर्ण करके श्री हरिप्रपन्न जी ने अपने को अमर कर दिया है।

इस ग्रंथमें अकारादि क्रमसे रसों का विस्तृत उल्लेख भाषाटीका सहित दिया गया है। इसके अतिरिक्त सिद्ध सम्प्रदाय अर्थात् अगस्त्य और व्यास प्रोक्त रस प्रकरण भी दिया गया है जो बहुत ही महत्व का है। आन्ध्रादि देश प्रसिद्ध कृष्णभूपालीय प्रभृति ग्रन्थों के प्रयोग भी दिये गये हैं। इनके अन्तमें कुछ ऐसे रसोंका संग्रह भी दे दिया गया है जो किसी कारणवश पहले छूट गये थे। इसके बाद आपाततः प्रतीयमान विभिन्न रसों के एकीकरण का दिग्दर्शन कराया गया है। ग्रंथके अन्तमें सम्पूर्ण रसोंकी एक बहुत ही उपयोगी सूची भी दी गई है। सारांश यह है कि ग्रंथ को उपयोगी करने के लिये जो कुछ भी संभव था, सब कुछ किया गया है। हरिप्रपन्न जी ने रसोंका इतना बड़ा कोष तैयार करके हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है उससे हम कभी उऋण नहीं हो सकते हैं। हमें पूर्ण आशा है कि हमारे चिकित्सक और वैद्य महोदय इस ग्रंथ से भली प्रकार लाभ उठावेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि रसयोग सागर का सर्वत्र ही सम्यक् समादर होगा।

सप्तदश अध्याय

अति-परवलय

[ले० 'गणितज्ञ']

२१७—अति परवलयका समीकरण निकालना—सूक्त १३३ में कहा जा चुका है कि यदि शंकुच्छिन्न की उत्केन्द्रता, उ, इकाईसे अधिक हो तो यह शंकुच्छिन्न अतिपरवलय कहलाता है।

कल्पना करो कि मद नियत रेखा है और स नाभि है तथा सम रेखा नियत रेखाके लम्बरूप खींची गई है। सम पर कोई न कोई एक बिन्दु अ इस प्रकार स्थित होगा कि—

(चित्र संख्या ६४)

स अ = उ. अम ....(१)

क्योंकि उ > १, अतः समको दूसरी ओर बढ़ा कर एक बिन्दु आ इस प्रकारका और लिया जा सकता है कि—

स आ = उ. आम ....(२)

कल्पना करो कि अ आपकी लम्बाई २ क है और इसका मध्य बिन्दु न है। समीकरण (१) और (२) को घटानेसे—

२ क = स आ − अ स = अ आ

= उ (आ म − अम)

= उ (आन + नम) − उ (न अ − नम)

= उ. २ न म

क्योंकि न अ = आन

अतः $न\, म = \frac{क}{उ}$ ....(३)

समीकरण (१) और (२) को जोड़नेसे—

उ (आ म + अ म) = स आ + सअ

= २ नस

अर्थात् उ. अआ = २ उ. क = २ नस

∴ नस = उ. क ......(४)

मान लो कि न मूल बिन्दु है और नसय य-अक्ष है और इसके लम्ब-रूप एक रेखा नर र-अक्ष है। कल्पना करो कि वक्र पर कोई बिन्दु, ब, स्थित है जिसके युग्मांक (य, र) हैं। ब बिन्दुसे नियत-रेखा पर ब त एक लम्ब खींचो। अआ पर बथ लम्ब भी खींचो।

नाभि स के युग्मांक (क उ, ०) हैं।

$सब^{२} = उ^{२}\, बत^{२} = उ^{२}\, म\, थ^{२}$

अतः $(य - क\, उ)^{२} + र^{२} = उ^{२} \left(य - \frac{क}{उ} \right)^{२}$

अर्थात् $य^{२} - २\, क\, उ\, य + क^{२}\, उ^{२} + र^{२}$

$= उ^{२}\, य^{२} - २\, क\, उ\, य + क^{२}$

∴ $य^{२}\, (उ^{२} - १) - र^{२} = क^{२}\, (उ^{२} - १)$

∴ $\frac{य^{२}}{क^{२}} - \frac{र^{२}}{क^{२}\, (उ^{२} - १)} = १$ ......(५)

अति परवलयमें उ > १ अतः $क^{२}\, (उ^{२} - १)$ सदा धनात्मक है। मान लो कि—

$क^{२}\, (उ^{२} - १) = ख^{२}$

तो अति परवलयका समीकरण यह हुआ—

$\frac{य^{२}}{क^{२}} - \frac{र^{२}}{ख^{२}} = १$ ....(६)

इसमें $ख^{२} = क^{२}\, उ^{२} - क^{२} = नस^{२} - न\, अ^{२}$ ...(७)

अतः $नस^{२} = क^{२} + ख^{२}$ .....(८)

२१८—गत सूक्तका समीकरण (६) इस रूपमें भी लिखा जा सकता है—

$$\frac{र^2}{ख^2} = \frac{य^2}{क^2} - १$$

$$= \frac{य^2 - क^2}{क^2}$$

$$= \frac{(य+क)\,(य-क)}{क^2}$$

अर्थात् $\frac{बथ^2}{ख^2} = \frac{अथ\,.\,थ\,आ}{क^2}$

अतः $ब\,थ^2 : अथ.\,थ\,आ :: ख^2 : क^2$

यदि य=०, तो समीकरण (६) $र^2 = -ख^2$ रूप धारण कर लेता है जिससे स्पष्ट है कि वक्र अक्ष न र से काल्पनिक बिन्दुओंमें मिलता है।

टिप्पणी—बिन्दु अ और आ अतिपरवलयके शीर्ष कहलाते हैं, न को केन्द्र कहते हैं, अआ परागत अक्ष कहलाता है और टटाको प्रतिबद्ध-अक्ष कहते हैं। ट और टा बिन्दु र—अक्ष पर इस प्रकार स्थित हैं कि टा न=ट न=ख

२१९—नाभि स के युग्मांक (क उ, ०) हैं अतः यदि नाभिको मूल बिन्दु माना जाय तो अतिपरवलयका समीकरण यह होगा—

$$\frac{(य+क\,उ)^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} = १$$

अर्थात् $\frac{य^2}{क^2} + २\,\frac{य\,उ}{क} - \frac{र^2}{ख^2} + उ^2 - १ = ०$

इसी प्रकार यदि शीर्ष अ को मूल बिन्दु माना जाय तो समीकरण यह होगा—

$$\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} + \frac{२\,य}{क} = ०$$

तथा यदि नियत रेखाका पद म मूल बिन्दु माना जाय तो समीकरण यह होगा—

$$\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} + \frac{२\,य}{क\,उ} = १ - \frac{१}{उ^2}$$

२२०—वक्रकी दूसरी नाभि और दूसरी नियत रेखा निकालना—

सन रेखाको बायीं ओर बढ़ा कर एक बिन्दु सा इस प्रकार लो कि—

$$स\,न = न\,सा = क\,उ$$

तथा दूसरा बिन्दु मा इस प्रकार लो कि—

$$म\,न = न\,मा = \frac{क}{उ}$$

मा ता एक रेखा अआ के लम्ब खींचो और बत को बायीं ओर इस प्रकार बढ़ाओ कि यह इस रेखाको ता पर काटे।

सूक्त २१७ का समीकरण (५) इस रूपमें लिखा जा सकता है—

$$य^2 + २\,क\,उ\,य + क^2\,उ^2 + र^2 = उ^2 य^2 + २\,क\,उ\,य + क^2$$

अर्थात्

$$(य + क\,उ)^2 + र^2 = उ^2 \left(\frac{क}{उ} + य\right)^2$$

अतः—

$$साब = उ^2\,(\,मा\,न + न\,थ\,)^2 = उ^2.\,बता^2$$

अतः वक्र पर कोई भी बिन्दु ब इस प्रकार स्थित है कि इसकी सा से दूरी इसकी मा धा से दूरीकी उ-गुणा है। अतः यदि सा को नाभि और मा धा को नियत रेखा तथा उ उत्केन्द्रता मान कर कोई वक्र खींचा जाय तो यह वक्र पूर्व वक्र ही होगा। इस प्रकार प्रत्येक अतिपरवलयकी दो नाभियां और दो नियत रेखायें होती हैं।

२२१—अतिपरवलय परके किसी बिन्दुकी नाभि-दूरियोंका अन्तर परागत अक्षके बराबर होता है।

सूक्त २१७ के चित्रमें

$$स\,ब = उ.\,बत$$

$$सा\,ब = उ.\,ब\,ता$$

अतः सा ब − स ब = उ (बता − बत) = उ. तता
= उ. ममा = २ उ. नम
= २ क
= परागत अक्ष अआ

तथा स ब = उ. बत = उ. थम = उ (न थ − नम)
= उ. नथ − उ. न म
= उ या − क

और सा ब = उ. बता = उ. थमा = उ (नमा + न थ)
= उ. नमा + उ. नथ
= उ या + क

इनमें या बिन्दु ब का भुज है जब कि केन्द्र न को मूल बिन्दु माना जाय।

२२२—अति-परवलयका ऊर्ध्व भुज निकालना—कल्पना करो कि लसला ऊर्ध्वभुज (अर्थात् नाभि स से हो कर जाने वाली वक्रकी द्विगुण कोटि) है। वक्रके नियमके अनुसार ऊर्ध्वभुज लस—

= उ × (ल की नियत रेखासे दूरी)
= उ. सम = उ (नस − नम)
= उ. नस − उ. नम = क उ^{२} − क
$= \frac{ख^{२}}{क}$

(सूक्त २१७ के समीकरण ३, ४ और ७ के अनुसार)

२२३—वक्र $\frac{य^{२}}{क^{२}} - \frac{र^{२}}{ख^{२}} = १$ को खींचना

इस समीकरणको इस रूपमें भी लिख सकते हैं—

$$र = \pm ख \sqrt{\frac{य^{२}}{क^{२}} - १} \quad \cdots\cdots (१)$$

$$अथवा \quad य = \pm क \sqrt{\frac{र^{२}}{ख^{२}} + १} \cdots (२)$$

समीकरण (१) से स्पष्ट है कि यदि य^{२} < क^{२} अर्थात् यदि य का मान क और—क बीचमें हो तो र का मान काल्पनिक होगा, अतः वक्रका कोई भी भाग अ और आ बिन्दुओंके बीचमें नहीं हो सकता है।

यदि य^{२} > क^{२}, तो य के प्रत्येक मानके लिये र के समान पर विपरीत धनर्णके दो मान होंगे अतः वक्र य-अक्षके समसंगतिक होगा। ज्यों ज्यों य का मान बढ़ेगा, त्यों त्यों र का मान भी बढ़ता जावेगा; यहां तक कि य के अनन्त हो जाने पर र भी अनन्त हो जावेगा।

समीकरण (२) से प्रकट है कि र के प्रत्येक मानके लिये य के समान पर विपरीत धनर्ण संकेत के दो मान होंगे अतः वक्र र—अक्षके भी सम संगतिक होगा।

य के भिन्न भिन्न मान देनेसे र के तत्सम्बन्धी मान उपलब्ध हो सकते हैं। इस प्रकार वक्रके अनेक बिन्दु प्राप्त हो सकते हैं और वक्र खींचा जा सकता है। सूक्त ११७ के चित्रसे स्पष्ट है कि वक्र के दो भाग होते हैं, एक तो य-अक्षकी धनात्मक दिशामें अनन्तता तक जाता है और दूसरा ऋणात्मक में अनन्तता तक जाता है।

२२४—$\frac{या^{२}}{क^{२}} - \frac{रा^{२}}{ख^{२}} = १$ का धनात्मक, शून्य अथवा ऋणात्मक होना बिन्दु (या, रा) की स्थिति पर निर्भर है—

कल्पना करो कि बिन्दु भ के युग्मांक (या, रा) हैं और भ बिन्दुसे होकर जानेवाली कोटि वक्रको ब बिन्दु पर काटती है।

अतः सूक्त २१७ के समीकरण (६) के अनुसार

$$\frac{या^{२}}{क^{२}} - \frac{ब थ^{२}}{ख^{२}} = १$$

$$\frac{ब थ^{२}}{ख^{२}} = \frac{या^{२}}{क^{२}} - १$$

यदि भ बिन्दु वक्रके अन्दर स्थित हो तो रा अर्थात् भ थ की लम्बाई ब थ से कम होगी अतः

$$\frac{रा^{२}}{ख^{२}} < \frac{ब थ}{ख^{२}} \text{ अर्थात् } < \frac{या^{२}}{क} - १$$

अतः $\frac{या^2}{क^2} - \frac{रा^2}{ख^2} - १ > ०$ अर्थात् धनात्मक है।

इसी प्रकार यदि बिन्दु भ वक्रके बाहर स्थित हो तो रा > ब थ और इसलिये

$\frac{या^2}{क^2} - \frac{रा^2}{ख^2} - १ < ०$ अर्थात् ऋणात्मक है।

यदि भ बिन्दु वक्र पर ही स्थित हो तो

$\frac{या^2}{क^2} - \frac{रा^2}{ख^2} - १ = ०$

२२५—किसी ऐसे केन्द्रीय व्यासार्धकी लम्बाई निकालना जो किसी ज्ञात दिशामें खींचा गया है—

सूक्त २१७ के समीकरण (६) को जब ध्रुवीय युग्मांकोंमें परिणत करते हैं तो उसका रूप यह हो जाता है—

$$न^2\left(\frac{कोज्या^2 थ}{क^2} - \frac{ज्या^2 थ}{ख^2}\right) = १$$

अर्थात् $$\frac{१}{न^2} = \frac{कोज्या^2 थ}{क^2} - \frac{ज्या^2 थ}{ख^2}$$

$$= \frac{कोज्या^2 थ}{ख^2}\left(\frac{ख^2}{क^2} - स्पर्श^2 थ\right) \cdots\cdots (१)$$

परागत अक्षके साथ थ° कोण बनानेवाला कोई केन्द्रीय व्यासार्ध इस समीकरण द्वारा निकाला जा सकता है।

जब तक स्पर्श थ < $\frac{ख^2}{क^2}$, समीकरण (१) से न के दो समान पर विपरीत धनर्ण संकेतके मान प्राप्त हो सकते हैं।

यदि स्पर्श^{2}थ > $\frac{ख^2}{क^2}$, तो तत्सम्बन्धी $\frac{१}{न^2}$ का मान काल्पनिक होगा अतः न के मान काल्पनिक होंगे।

अतः कोई व्यासार्ध जो स्पर्श$^{-१}\frac{ख}{क}$ से अधिक कोण पर झुका होता है वह वक्रको वास्तविक बिन्दुओं पर नहीं काट सकता है। अतः सम्पूर्ण वक्र उन दो सरल रेखाओंके बीच में स्थित होता है जो न से होती हुई न य के साथ ±स्पर्श$^{-१}\frac{ख}{क}$ का कोण बनाती हुई खींची गई हैं।

समीकरण (१) को इस रूपमें भी लिख सकते हैं—

$$न^2 = \frac{ख^2}{कोज्या^2 थ \left(\frac{ख^2}{क^2} - स्पर्श^2 थ\right)} \cdots (२)$$

इससे स्पष्ट है कि जब हरका मान अधिकतम होगा, न का मान न्यूनतम हो जायगा। हर का मान अधिकतम तब होगा जब थ° = ० अतः नाभि-श्रुत व्यासार्ध न अ सबसे छोटा है।

जब स्पर्श थ = ±$\frac{ख}{क}$, तब र का मान अनन्त होगा।

यदि थ का मान ०° और स्पर्श$^{-१}\frac{ख}{क}$के बीचमें हो, तो न के तत्सम्बन्धी धनात्मक मान सूक्त २१७ के चित्रमें वक्र का अच भाग देते हैं तथा न के तत्सम्बन्धी ऋणात्मक मान आचा भाग देते हैं।

यदि थ° का मान ०° और −स्पर्श$^{-१}\frac{ख}{क}$के बीचमें हो तो र के धनात्मक मान वक्रके अच, भाग को तथा ऋणात्मक मान आचा, भागको उपलब्ध कराते हैं।

दीर्घवृत्त और अतिपरवलय दोनोंके केन्द्र न इस प्रकारके होते हैं कि शंकुच्छिन्नके इन केन्द्रसे होकर जाने वाले चापकर्ण इन केन्द्रों पर समद्विभाजित हो जाते हैं। अतः दीर्घवृत्त और अति परवलय को **केन्द्रीय शंकुच्छिन्न** कहते हैं।

२२६—गत अध्यायोंमें दीर्घवृत्तकी स्पर्शरेखा, अवलम्ब आदिके समीकरण निकाले गये हैं। अतिपरवलयकी स्पर्शरेखा, अवलम्ब आदि निका-

दीर्घवृत्त	आधार सूक्त	अतिपरवलय
१. वक्रका समीकरण $\frac{य^{२}}{क^{२}} + \frac{र^{२}}{ख^{२}} = १$	१७४	$\frac{य^{२}}{क^{२}} - \frac{र^{२}}{ख^{२}} = १$
२. [illegible] त के प्रत्येक मानके लिये स्पर्शरेखा है— $र = त\,य + \sqrt{क^{२}\,त^{२} + ख^{२}}$	१८७	$र = त\,य + \sqrt{क^{२}\,त^{२} - ख^{२}}$
३. विन्दु (या, रा) परकी स्पर्शरेखा का समीकरण— $\frac{य\,या}{क^{२}} + \frac{र\,रा}{ख^{२}} = १$	१८६	$\frac{य\,या}{क^{२}} - \frac{र\,रा}{ख^{२}} = १$
४. बिन्दु ($य_{१}, र_{१}$) के ध्रुवीय का समीकरण— $\frac{य\,य_{१}}{क^{२}} + \frac{र\,र_{१}}{ख^{२}} = १$	२०१	$\frac{य\,य_{१}}{क^{२}} - \frac{र\,र_{१}}{ख^{२}} = १$
५. बिन्दु (या, रा) के अवलम्ब का समीकरण— $\frac{य - या}{\frac{या}{क^{२}}} = \frac{र - रा}{\frac{रा}{ख^{२}}}$	१६४	$\frac{य - या}{\frac{या}{क^{२}}} = \frac{र - रा}{\frac{या}{-ख^{२}}}$
६. सरलरेखा य कोज्या थ + र ज्या थ = ल वक्रका स्पर्श करेगी यदि $ल^{२} = क^{२}$ कोज्या^{२} थ + $ख^{२}$ ज्या^{२} थ	१६१ (१)	$ल^{२} = क^{२}$ कोज्या^{२} थ − $ख^{२}$ ज्या^{२} थ
७. सरलरेखा काय + खार = गा वक्र का स्पर्श करेगी यदि $क^{२}का^{२} + ख^{२}खा^{२} = गा^{२}$	१६१ (२)	$क^{२}\,का^{२} - ख^{२}\,खा^{२} = गा^{२}$
८. प्रधान वृत्त का समीकरण— $य^{२} + र^{२} = क^{२} + ख^{२}$	१६८	$य^{२} + र^{२} = क^{२} - ख^{२}$ [जब क < ख, तो प्रधान वृत्त काल्पनिक हो जावेगा और जब क = ख तो यह बिन्दुवृत्त हो जावेगा ।]
९. सूक्त १६७ में सिद्ध किये गये	दीर्घवृत्तके सब	गुण कुछ परिवर्तनके साथ अति परवलयमें
भी पाये जा सकते हैं ।		
१० वक्र के उन सब चापकर्णोंके मध्य बिन्दुओंका बिन्दु पथ जो रेखा र = त य के समानान्तर हैं $र = त_{१}\,य$ है जिसमें $त\,त_{१} = -\frac{ख^{२}}{क^{२}}$	२०४	$त\,त_{१} = \frac{ख^{२}}{क^{२}}$

लनेकी भी विधि बिलकुल वैसी ही है अतः उसको दोहरानेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। नीचेकी सारिणीमें हम केवल कुछ परिणाम ही देते हैं। उनके सिद्ध करनेके लिये केवल यही आवश्यक है कि गताध्यायोंके परिणामोंमें ख² के धनर्ण संकेतको परिवर्तित कर दिया जाय।

२२७—गत सूक्तके परिणाम ६ में लिखा जा चुका है कि दीर्घवृत्तके वे सब गुण जो सूक्त १६६ और १६७ में सिद्ध किये गये हैं कुछ आवश्यकीय परिवर्तनोंके साथ अतिपरवलयमें भी उपयुक्त हो सकते हैं। पाठक इनको स्वयं सिद्ध कर सकते हैं। यहाँ केवल चित्र ही दिया जाता है। अतिपरवलय की अवस्थामें स्पर्श रेखा नाभिदूरियाँ सब और सा ब के आन्तरिक कोणोंको समद्विभाजित करती हैं और अवलम्ब बाह्यकोणको समद्विभाजित करता है।

(चित्र नं० ६५)

इससे यह स्पष्ट है कि यदि स और सा को अतिपरवलय और दीर्घवृत्त दोनोंकी नाभियाँ मानी जायँ तो वे दोनों वक्र किसी उभय-बिन्दु ब में समकोण पर मिलेंगे, क्योंकि दोनोंकी अवस्थाओं में स्पर्श रेखायें क्रमानुसार स ब सा कोणके आन्तरिक और बाह्य समद्विभाजक हैं। अतः स्पर्श-रेखायें परस्परमें लम्बरूप हैं।

२२८—अतिपरवलयमें कोई भी कोटि उस वृत्त से वास्तविक बिन्दुओं पर नहीं मिलती जो अ आ को व्यास मानकर खींचा गया है। अतः अतिपरवलयमें दीर्घवृत्तके समान उत्केन्द्र कोण नहीं हो सकता।

जब कभी वक्रके किसी बिन्दुके युग्मांक एक विषमके पदोंमें देने हों तो निम्न परिणाम उपयुक्त किये जा सकते हैं—

य = क छेदन फ°

र = ख स्पर्श फ°

क्योंकि स्पष्टतः ये सूक्त २१७ के समीकरण (३) की पूर्ति करते हैं।

उत्केन्द्र कोण फ° को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं

गत सूक्तके चित्रमें अ आ पर एक विक्षेपवृत्त खींचो और किसी कोटि बथ के पद थ से एक स्पर्श रेखा पच खींचो और न च को संयुक्त करदो। अतः

न च = न प कोज्या प न च

∴ य = न प = क छेदन प न च

कोण प न च उत्केन्द्र कोण फ है।

तथा प च = न प स्पर्श फ

= क स्पर्श फ

अतः प ब : प च :: ख : क

अतः अतिपरवलयकी कोटि और इसके पद से विक्षेप वृत्त पर खींची गई स्पर्श रेखाकी लम्बाई में एक निश्चित निष्पत्ति है।

कोण फ° का अतिपरवलय में उतना उपयोग नहीं है जितना दीर्घवृत्त में।

२२९—यह स्पष्ट है कि बिन्दु (क छेदन फ, ख स्पर्श फ) और (क छेदन फा, ख स्पर्श फा) को संयुक्त करने वाली रेखा का समीकरण यह होगा—

र—ख स्पर्श फ=

$$\frac{\text{ख स्पर्श फा—ख स्पर्श फ}}{\text{क छेदन फा—क छेदन फ}}(\text{य—क छेदन फ})$$

त्रिकोणमितिके प्रयोग से इसे इस रूपमें लिखा जा सकता है -

$$\frac{\text{य}}{\text{क}}\text{को ज्या}\ \frac{\text{फा—फ}}{2} - \frac{\text{र}}{\text{ख}}\text{ज्या}\ \frac{\text{फा}+\text{फ}}{2}$$

$$=\text{को ज्या}\ \frac{\text{फा}+\text{फ}}{2}$$

यदि फा° = फ° तो उस बिन्दु (क छेदन फ, ख स्पर्श फ) परकी स्पर्श रेखा का समीकरण निकल आवेगा।

$$\frac{\text{य}}{\text{क}} - \frac{\text{र}}{\text{ख}}\text{ज्या फ} = \text{को ज्या फ}$$

इसी प्रकार अवलम्बका समीकरण यह होगा—

$$\text{क य ज्या फ} + \text{खर} = (\text{क}^2 + \text{ख}^2)\ \text{स्पर्श फ}$$

२३०—समभुजीय या समचतुरस्र अतिपरवलय—यदि परागत तथा प्रतिबद्ध अक्षों की लम्बाई बराबर हो तो उस अवस्थामें अतिपरवलय को समभुजीय या समचतुरस्र अतिपरवलय कहेंगे।

इस अवस्था में ख=क; अतः अतिपरवलय का समीकरण यह होगा—

$$\text{य}^2 - \text{र}^2 = \text{क}^2$$

इस अति परवलयकी उत्केन्द्रता $\sqrt{2}$ होगी क्योंकि सूक्त २१७ के समीकरण (७) से

$$\text{उ}^2 = \frac{\text{क}^2 + \text{ख}^2}{\text{क}^2} = \frac{2\,\text{क}^2}{\text{क}^2} = 2$$

$$\therefore \text{उ} = \sqrt{2}$$

प्राप्ति स्वीकार

१—क्षत्रिय मित्रका होलिकांक। सम्पादक प्रकाशक—सरस्वती प्रसाद सिंह रघुवंशी भोजूवीर बनारस कैण्ट।

हमें उपर्युक्त होलिकांक प्राप्त हुआ है। इसमें सुधार सम्बन्धी कई अच्छे लेख हैं, हास्यरसके भी लेख हैं, व्यंग्यचित्र भी है।

२—आत्मानन्द—सम्पादक श्री वंशीधर जी जैन, अम्बाला पंजाब। हिन्दी उर्दू में प्रकाशित जैन धर्मीय पत्रिका है। लेख उदार और मननशील हैं। जैन समाज की विचार-संकीर्णताके दूर करने में यह पत्रिका सहायक होगी।

३—आयुर्वेद विज्ञान—सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य अमृतसर, पंजाब।

इसके फर्वरी और मार्चके संयुक्तांक में रसायन का अधिक अंश है। खेद है कि लेखक महोदय ने नये पारिभाषिक शब्द बनाने का व्यर्थ श्रम किया है।

अष्टादश अध्याय

अतिपरवलय–असीम-पथ (Asymptotes)

२३१—असीमपथ—परिभाषा—असीमपथ उस रेखा का नाम है जो शंकुच्छिन्न से अनन्त दूरी पर स्थित दो बिन्दुओं पर मिलती है पर स्वयं सम्पूर्णतः अनन्तता पर स्थित नहीं होती।

२३२—अतिपरवलय $\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} = १$ के असीमपथ निकालना—

सूक्त १८८ के समीकरण (४) के समान सरल रेखा

$र = तय + ग \cdots (१)$

अति परवलय से जिन बिन्दुओं पर मिलेगी उनके भुज निम्न समीकरण द्वारा उपलब्ध हो सकेंगे—

$य^2 (ख^2 - क^2 त^2) - २ क^2 त ग य - क^2 (ग^2 + ख^2) = ० \cdots (२)$

यदि समीकरण (१) द्वारा सूचित रेखा असीमपथ हो तो समीकरण (२) के दोनों मूल अनन्त होने चाहिये अतः $य^2$ और य के गुणक बीजगणित के सिद्धान्त के अनुसार शून्य होने चाहिये।

$\therefore ख^2 - क^2 त^2 = ०$

और $क^2 त ग = ०$

अतः $त = \pm \frac{ख}{क}$ और $ग = ०$

इन मानों को समीकरण (१) में स्थापित करने से असीमपथ का अभीष्ट समीकरण यह होगा—

$$र = \pm \frac{ख}{क} य$$

अतः अतिपरवलय के दो असीमपथ होते हैं। दोनों केन्द्र पर आकर मिलते हैं और य-अक्ष से दोनों बराबर का कोण बनाते हैं। यह कोण स्पर्श—$^1\frac{ख}{क}$ के बराबर होता है।

दोनों असीम-पथों के समीकरणों को एक समीकरण में इस प्रकार सम्मिलित किया जासकता है—

$$\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} = ०$$

उपसिद्धान्त—यदि $त = \pm \frac{ख}{क}$ तो, ग के प्रत्येक मान के लिये समीकरण (२) का एक मूल अनन्त होगा ही, अतः प्रत्येक रेखा जो असीमपथके समानान्तर है वक्र को एक सान्त बिन्दु और एक अनन्त बिन्दु पर काटती है।

२३३—असीमपथ अनन्तता पर स्थित दो पराच्छादित बिन्दुओं से होकर जाता है अर्थात् यह वक्र का अनन्तता पर स्पर्श करता है। इस बात की परीक्षा के लिये वक्र की उन स्पर्शरेखाओं का समीकरण ज्ञात होना चाहिये जो असीमपथ $र = \frac{ख}{क} य$ पर स्थित बिन्दु ($य_1, \frac{क}{ख} य_1$) से होकर जाती हैं।

सूक्त २२६ के परिणाम (२) के अनुसार इस बिन्दु से होकर जाने वाली किसी स्पर्श रेखा का समीकरण यह होगा—

$$र = तय + \sqrt{क^2 त^2 - ख^2}$$

$$\therefore \frac{क}{ख} य_1 = त य_1 + \sqrt{क^2 त^2 - ख^2}$$

$$\therefore त^2 (य_1^2 - क^2) - २ त \frac{क}{ख} य_1^2 + (य_1^2 + क^2) \frac{क^2}{ख^2} = ०$$

इस समीकरण का एक मूल $त = \frac{ख}{क}$ है अतः उस बिन्दु से होकर जाने वाली एक स्पर्श रेखा का समीकरण $र = \frac{ख}{क} य$ होगा अर्थात् असीमपथ स्वयं स्पर्श-रेखा होगा।

२३४—असीमपथों का खींचना—कल्पना करो कि अ आ परागत अक्ष है और प्रतिबद्ध अक्ष में से न ट=नटा=ख काटो। ट और टा से परागत अक्ष के समानान्तर रेखायें खींचो। अ और आ से भी प्रतिबद्ध अक्ष के समानान्तर रेखायें खींचो। मान लो कि ये पूर्व समानान्तर रेखाओं से $ठ_1$, $ठ_2$, $ठ_3$ और $ठ_4$ बिन्दुओं पर मिलती हैं, स्पष्टतः $ठ_1$ न $ठ_3$ और $ठ_2$ न $ठ_4$ के समीकरण ये हैं—
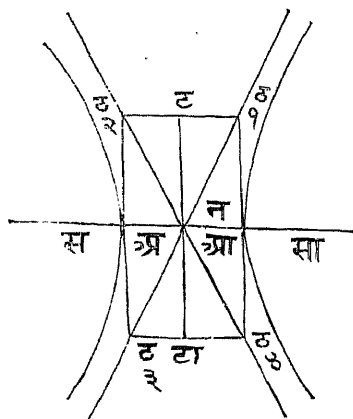
(चित्र नं० ६६)

$$र = \frac{ख}{क} य \quad और \quad र = -\frac{ख}{क} य$$

अतः ये असीमपथ के समीकरण हैं। इस प्रकार असीमपथ $ठ_1$ न $ठ_3$ और $ठ_2$ न $ठ_4$ खींचे जा सकते हैं।

२३५—कल्पना करो कि वक्र पर किसी बिन्दु ब का द्विगुण कोटि बथबा दोनों ओर बढ़ाया गया है। यह असीमपथों से भ और भा बिन्दुओं पर मिलता है।

मान लो कि भुज न थ=या। ब बिन्दु वक्र पर है अतः

$$\frac{य}{क} \quad \frac{ब\, थ^2}{ख^2} = १$$

$$\therefore \quad ब\, थ = \frac{ख}{क}\sqrt{या^2 - क^2}$$

बिन्दु भ असीम पथ पर है और इस असीम पथ का समीकरण $र = \frac{ख}{क} य$ है अतः
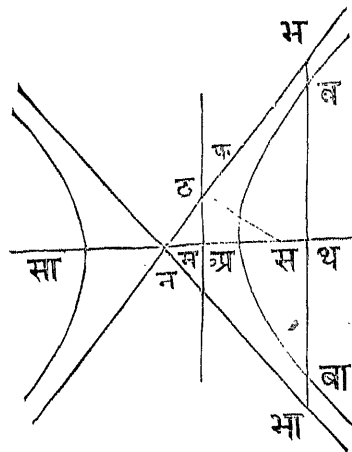
(चित्र नं० ६७)

$$भ\, थ = \frac{ख}{क} या$$

अतः ब भ = भ थ − ब थ

$$= \frac{ख}{क} \left(या - \sqrt{या^2 - क^2} \right)$$

इसी प्रकार बा भ = भ थ + बा थ

$$= भ\, थ + ब\, थ$$

$$= \frac{ख}{क} \left(या + \sqrt{या^2 - क^2} \right)$$

अतः ब भ. बा भ

$$= \frac{ख^2}{क^2} \left(या - \sqrt{या^2 - क^2}\right)\left(या + \sqrt{या^2 - क^2}\right)$$

$$= \frac{ख^2}{क^2} \left(या^2 - या^2 + क^2 \right)$$

$$= ख^2$$

अतः यदि असीमपथ परके किसी बिन्दु से एक सरल-रेखा परागत अक्षके लम्ब रूप खींची जाय तो इस रेखा की उन अवधाओं का गुणन फल जो बिन्दु और वक्र के बीच में काटी जाती हैं, सदा अर्ध-प्रतिबद्ध अक्षके वर्ग के बराबर होता है।

$$\text{ब भ} = \frac{\text{ख}}{\text{क}}\left(\text{या} - \sqrt{\text{या}^2 - \text{क}^2}\right)$$

$$= \frac{\text{ख}}{\text{क}} \cdot \frac{\text{क}^2}{\text{या} + \sqrt{\text{या}^2 - \text{क}^2}}$$

$$= \frac{\text{क ख}}{\text{या} + \sqrt{\text{या}^2 - \text{क}^2}}$$

अतः ब भ सदा धनात्मक होता है। अतः वक्र का वह भाग जिसके बिन्दुओंके युग्मांक धनात्मक हैं, सम्पूर्णतः असीमपथ और परागत अक्ष के बीच में स्थित रहता है।

यह स्पष्ट है कि ज्यों ज्यों या का मान बढ़ता जाता है अर्थात् ज्यों ज्यों बिन्दु ब केन्द्र न से दूर हटता जाता है, ब भ की लम्बाई बराबर घटती जाती है और अन्तमें जब या अनन्त हो जाता है, ब भ बहुत ही छोटा रह जाता है तथा असीमपथ वक्रका स्पर्श करता प्रतीत होता है। इस प्रकार असीमपथ वक्रसे कभी मिलता तो नहीं है पर बहुत बड़ी दूरी पर वक्र और असीमपथमें भिन्नता प्रत्यक्ष नहीं होती है।

२३६—यदि नाभिसे असीम पथ पर सफ लम्ब खींचा जाय तो बिन्दु फ विक्षेप वृत्त पर स्थित होगा। यह ठीक ही है क्योंकि असीम पथ वक्रकी वह स्पर्शरेखा है जिसका सम्पर्क बिन्दु अनन्तता पर स्थित है। इसको इस प्रकार भी सिद्ध किया जा सकता है—

$$\text{न फ} = \text{न स कोज्या स न फ}$$

$$= \text{न स}\ \frac{\text{न अ}}{\text{न ठ}}$$

$$= \sqrt{\text{क}^2 + \text{ख}^2}\ \frac{\text{क}}{\sqrt{\text{क}^2 + \text{ख}^2}}$$

$$= \text{क}$$

तथा म नियतरेखाका पद होनेके कारण

$$\text{क}^2 = \text{न अ}^2 = \text{न स. न म}$$

(सूक्त २१७ के समीकरण (३) और (४) के उपयोग से)

$$\therefore \text{न फ}^2 = \text{न स. न म}$$

अर्थात् न स:न फ : : न फ. न म

रेखागणितके अनुसार $\angle$न म फ $= \angle$नफ स $=$ समकोण

अतः बिन्दु फ नियत रेखा पर स्थित है। अतः नाभियोंसे किसी असीमपथ पर खींचे गये लम्ब असीमपथसे उन्हीं बिन्दुओं पर मिलते हैं जिन पर ये तत्सम्बन्धी नियतरेखा पर मिलते हैं और ये अन्तरखण्ड बिन्दु विक्षेपवृत्त पर स्थित रहते हैं।

२३७—समभुजीय या समचतुरस्र अतिपरवलय—सूक्त २३० में लिखा जा चुका है कि समभुजीय या समचतुरस्र अतिपरवलयमें क = ख अतः इसके असीमपथोंके समीकरण र = ±य हैं अर्थात् य-अक्षके साथ ±४५° का कोण बनाते हैं। इसलिये ये असीम पथ परस्परमें लम्बरूप हैं। इसीलिये इस अतिपरवलयको समचतुरस्र अतिपरवलय कहा जाता है।

२३८—प्रतिबद्ध अतिपरवलय—वह अतिपरवलय जिसमें टटा को परागत अक्ष माना जाय और अ आ को प्रतिबद्ध अक्ष, उसे उस अतिपरवलयका प्रतिबद्ध अतिपरवलय कहा जाता है जिसका परागत अक्ष अ आ और प्रतिबद्ध अक्ष ट टा है।

इस प्रकार अति परवलय

$$\frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2} - \frac{\text{य}^2}{\text{क}^2} = 1 \cdots\cdots\cdots (1)$$

निम्न अतिपरवलयका प्रतिबद्ध है—

$$\frac{\text{य}^2}{\text{क}^2} - \frac{\text{र}^2}{\text{ख}^2} = 1 \cdots\cdots (2)$$

सूक्त २३२ के अनुसार समीकरण (१) के असीमपथ निम्न हैं—

$$\frac{र^2}{ख^2} - \frac{य^2}{क^2} = 0$$

और यही असीम पथ समीकरण (२) के भी हैं। इस प्रकार अति परवलय और प्रतिबद्ध अति-परवलय दोनोंके असीम पथ एक ही होते हैं।

२३९—अतिपरवलय और युगल प्रतिबद्ध व्यासोंके अन्तरखण्ड बिन्दु—

सरलरेखा $र = त_1 य$ जिन बिन्दुओं पर अति परवलय

$$\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} = १$$

को काटती है उनके भुज निम्न समीकरण द्वारा दिये जाते हैं—

$$य^2\left(\frac{१}{क^2} - \frac{त_1^2}{ख^2}\right) = १$$

अर्थात् $य^2 = \dfrac{क^2 ख^2}{ख^2 - क^2 त_1^2}$

अतः ये बिन्दु वास्तविक अथवा काल्पनिक होंगे यदि

$$क^2 त_1^2 < (अथवा) > ख^2$$

अर्थात् यदि

$$त_1 < अथवा > \frac{ख}{क} \quad \cdots\cdots (१)$$

अर्थात् ये बिन्दु वास्तविक होंगे यदि सरलरेखा द्वारा य-अक्ष पर बनाया गया कोण असीमपथ द्वारा बनाये गये कोणसे कम हो, और यदि अधिक होगा तो बिन्दु काल्पनिक होंगे।

सूक्त २२६ के परिणाम (१०) के अनुसार सरलरेखायें $र = त_1 य$ और $र = त_2 य$ तब प्रतिबद्ध व्यास होंगी, जब

$$त_1 त_2 = \frac{ख^2}{क^2} \quad \cdots\cdots (२)$$

अतः $त_1$ और $त_2$ में से एक का मान तो $\frac{ख}{क}$ से कम होना चाहिये और दूसरेका $\frac{ख}{क}$ से अधिक। कल्पना करो कि $त_1 < \frac{ख}{क}$, अतः सरलरेखा $र = त_1 य$ अतिपरवलयसे वास्तविक बिन्दुओं पर मिलती है।

समीकरण (२) के अनुसार $त_2 > \frac{ख}{क}$ होना चाहिये अतः सरलरेखा $र = त_2 य$ अतिपरवलय से काल्पनिक बिन्दुओं पर मिलेगी अतः यह स्पष्ट है कि प्रतिबद्ध व्यासोंका केवल एक युगल ही अति-परवलयसे वास्तविक बिन्दुओं पर मिल सकता है।

२४०—यदि व्यासोंका एक युगल किसी एक अति-परवलयकी अपेक्षासे प्रतिबद्ध है तो वह इसके प्रतिबद्ध अतिपरवलयकी अपेक्षासे भी प्रतिबद्ध होगा।

सरलरेखायें $र = त_1 य$ और $र = त_2 य$ अति-परवलय $\frac{य^2}{क^2} - \frac{र^2}{ख^2} = १$ से प्रतिबद्ध होंगी यदि

$$त_1 त_2 = \frac{ख^2}{क^2} \quad \cdots\cdots (१)$$

प्रतिबद्ध अतिपरवलय के समीकरण और अतिपरवलय के उपर्युक्त समीकरणमें केवल इतना भेद है कि इसमें $क^2$ के स्थानमें $-क^2$ और $ख^2$ के स्थानमें $-ख^2$ होना है, अतः इस हिसाबसे उपर्युक्त सरल रेखा प्रतिबद्ध-अतिपरवलयके प्रतिबद्ध तब होगी जब—

$$त_1 त_2 = \frac{-ख^2}{-क^2} = \frac{ख^2}{क^2} \quad \cdots\cdots (२)$$

समीकरण ( ) और (२) एक ही हैं अतः यदि व्यासोंका एक युगल एक अतिपरवलयकी अपेक्षासे प्रतिबद्ध हो तो वह इसके प्रतिबद्ध अतिपरवलयकी अपेक्षा से भी प्रतिबद्ध होगा।

२४१—यदि व्यासोंका युगल एक अतिपरवलयकी अपेक्षा से प्रतिबद्ध है तो उनमेंसे एक व्यास अतिपरवलयसे वास्तविक बिंदुओं पर मिलेगा और दूसरा व्यास प्रतिबद्ध-अतिपरवलयसे वास्तविक बिंदुओं पर मिलेगा।

कल्पना करो कि व्यासोंके समीकरण $र=त_१ य$ और $र=त_२ य$ है और $त_१ त_२=\frac{ख^२}{क^२}$......(१)

सूक्त २३६ के अनुसार यदि

$$त_१<\frac{ख}{क} \text{ तो } त_२>\frac{ख}{क}$$

अतः सरल रेखा $र=त_१ य$ अतिपरवलयसे वास्तविक बिन्दुओं पर मिलती है।

तथा सरलरेखा $र=त_२ य$ प्रतिबद्ध अतिपरवलय $\frac{र^२}{ख^२}-\frac{य^२}{क^२}=१$ से जिन बिन्दुओं पर मिलती है उनके भुज निम्न समीकरण द्वारा दिये जाते हैं—

$$य^२\left(\frac{त_२^२}{ख^२}-\frac{१}{क^२}\right)=१$$

अर्थात् $य^२=\frac{क^२ ख^२}{क_२^२ त^२-ख^२}$

परन्तु $त_२>\frac{ख}{क}$ अतः ये भुज वास्तविक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त धारणा प्रमाणित हो गई।

२४२—यदि प्रतिबद्ध व्यासोंका एक युगल अतिपरवलय और इसके प्रतिबद्ध अतिपरवलयसे ब और द बिन्दुओं पर मिलता हो तो—

(चित्र नं० ६८)

$$न ब^२-नद^२=क^२-ख^२$$
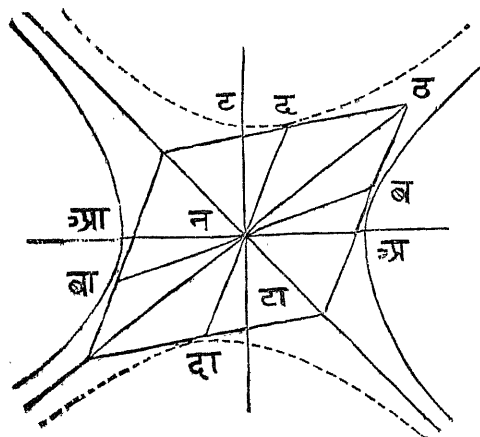
कल्पना करो कि ब और द के युग्मांक क्रमशः (या, रा) और (यि, रि) हैं, तो न ब और न द के समीकरण ये होंगे—

$$\frac{य}{या}-\frac{र}{रा}=०$$

$$\text{और } \frac{य}{यि}-\frac{र}{रि}=०$$

व्यासोंके प्रतिबद्ध होनेके लिये नियम यह है कि $तता=\frac{ख^२}{क^२}$, अतः

$$\frac{यायि}{क^२}-\frac{रारि}{ख^२}=०...(१)$$

$$\text{अर्थात्} \quad \frac{या^२ यि^२}{क^४}=\frac{रा^२ रि^२}{ख^४}$$

बिन्दु (या, रा) अतिपरवलय $\frac{य^२}{क^२}-\frac{र^२}{ख^२}=१$ पर है और (यि, रि) बिन्दु $\frac{र^२}{ख^२}-\frac{य^२}{क^२}=१$ पर है

अतः

$$\frac{या^२}{क^२}\left(\frac{रि^२}{ख^२}-१\right)=\frac{रि^२}{ख^२}\left(\frac{यि^२}{क^२}-१\right)$$

$$\text{अर्थात्} \quad \frac{या^२}{क^२}=\frac{रा^२}{ख^२}$$

$$\therefore \quad \frac{रि}{ख}=\pm\frac{या}{क}......(२)$$

अतः परिणाम (१) से

$$\frac{यि}{क}=\pm\frac{रा}{ख}........(३)$$

$$\text{अतः } न ब^२-नद^२=या^२+रा^२-यि^२-रि^२$$

$$=या^२+रा^२-\frac{क^२}{ख^२}रा^२-\frac{ख^२}{क^२}या^२$$

$$=(क^२-ख^२)\left(\frac{या^२}{क^२}-\frac{रा^२}{ख^२}\right)$$

परन्तु $\frac{या^2}{क^2} - \frac{रा^2}{ख^2} = १$

अतः $न ब^2 - नद^2 = क^2 - ख^2$

२४३—ब, बा, द, दा पर खींची गयी स्पर्शरेखाओं द्वारा बनाये गये समानान्तर चतुर्भुजका क्षेत्रफल स्थिर रहता है—

समानान्तर चतुर्भुजका क्षेत्रफल

$= ४ \text{ नब. नद. ज्या ब न द}$

$= ४ \text{ नद. नफ}$

जिसमें नफ वह लम्ब है जो न बिन्दुसे ब पर की स्पर्शरेखा पर खींचा गया है। ब बिन्दुकी स्पर्शरेखाका समीकरण यह है—

$$\frac{य या}{क^2} - \frac{र रा}{ख^2} = १$$

$$\therefore \quad न फ^2 = \frac{१}{\frac{या^2}{क^2} + \frac{रा^2}{ख^2}}$$

$$\text{तथा} \quad नद^2 = \frac{क^2}{ख^2} रा^2 + \frac{ख^2}{क^2}. या^2$$

$$= क^2 ख^2 \left(\frac{या^2}{क^4} + \frac{रा^2}{ख^4} \right)$$

अतः $\text{नद. नफ} = कख$

$\therefore$ क्षेत्रफल $= ४$ कख.

क और ख दो स्थिर मात्रायें हैं अतः क्षेत्रफल भी स्थिर है।

२४४—असीमपथ बद और बदा को समद्विभाजित करते हैं —

कल्पना करो कि बदके मध्यबिन्दुके युग्मांक (य, र) हैं। अतः

$$२ य = या + यि$$

$$\text{तथा} \quad २ र = रा + रि$$

$$\therefore \quad \frac{य}{र} = \frac{या + यि}{रा + रि}$$

$$= \frac{या \pm \frac{क}{ख} रा}{रा \pm \frac{ख}{क} या} = \pm \frac{क}{ख}$$

अतः बद और ब दाके मध्य बिन्दु निम्नरेखाओं में से किसी एक रेखा पर हैं—

$$\frac{य}{र} = \pm \frac{क}{ख}$$

न ब ठ द एक समानान्तर चतुर्भुज है अतः न ठ रेखा ब द या ब दा को समद्विभाजित करती है। अतः न ठ एक असीमपथ है। इस प्रकार असीमपथ ब द और ब दा को समद्विभाजित करते हैं।

२४५—असीम पथों को युग्मांकोंके अक्ष मान कर अतिपरवलयका समीकरण निकालना—

कल्पना करो कि न ठ और न ठा असीम पथ हैं और कोण अ न ठ = $प^\circ$

अतः $\quad \text{स्पर्श } प = \frac{ख}{क}$

(चित्र नं० ६९)

वक्र पर कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक (य, र) हों। मान लो कि इस बिन्दु ब के युग्मांक असीमपथोंको अक्ष मानने पर (या, रा) होंगे। न ठ के समानान्तर त ब रेखा खींचो। यह न ठा असीमपथ से त बिन्दु पर मिलती है। पदागत अक्ष के लम्बरूप ब थ रेखा खींचो।

अतः　न त = या ; त ब = रा

न थ = य ; थ ब = र

न थ = न त कोज्या प + त ब कोज्या प

∴ य = (या + रा) कोज्या प ......(१)

अब　ब थ = त ब ज्या प − न त ज्या प

र = (रा − या) ज्या प ....(२)

इन मानोंको निम्न समीकरणमें उपयुक्त करनेसे अतिपरवलयका समीकरण प्राप्त हो सकता है—

$$\frac{य^२}{क^२} - \frac{र}{ख^२} = १$$

$$\frac{(या + रा)^२ \text{ कोज्या}^२ प}{क^२} - \frac{(रा - या)^२ \text{ ज्या}^२ प}{ख^२} = १ \text{.........(३)}$$

परन्तु स्पर्श $प = \frac{ख}{क}$

अतः $\frac{\text{ज्या}^२ प}{ख^२} = \frac{\text{कोज्या}^२ प}{क^२} = \frac{१}{क^२ + ख^२}$

$$\therefore (या + रा)^२ - (रा - या)^२ = क^२ + ख^२$$

$$\therefore ४ \text{ या रा} = क^२ + ख^२$$

(या, रा) कोई भी बिन्दु लिया जा सकता है अतः अतिपरवलय का सामान्य समीकरण—

$४ \text{ य र} = क^२ + ख^२$ हैं

$$\therefore \text{य र} = \frac{क^२ + ख^२}{४}$$

इसको कभी कभी $\text{य र} = ग^२$ रूपमें भी लिखते हैं जिसमें $४ ग^२$ अतिपरवलयके अर्धाक्षोंके वर्गके योगके बराबर है।

इसी प्रकार प्रतिबद्ध अतिपरवलयका समीकरण यह है—

$$\text{य र} = - \frac{क^२ + ख^२}{४}$$

२४६—अतिपरवलय $\text{य र} = \frac{क^२ + ख^२}{४}$ के किसी बिन्दु (या, रा) पर की स्पर्शरेखाका समीकरण निकालना—

वक्र परके किन्हीं दो बिन्दुओं (या, रा) और (यि, रि) को संयुक्त करने वाली रेखाका समीकरण यह है—

$$र - रा = \frac{रि - रा}{यि - या} (य - या) \text{...(१)}$$

ये दोनों बिन्दु वक्र पर स्थित हैं अतः

$$\text{या रा} = \frac{क^२ + ख^२}{४} = \text{यि रि}$$

$$\therefore रि - रा = \frac{\text{या रा}}{यि} - रा$$

अर्थात् $\frac{रि - रा}{रा} = \frac{या - यि}{यि}$ ....(२)

समीकरण (१) और (२) से

$$\frac{र - रा}{रा} = -\frac{य - या}{यि}$$

यदि (या, रा) और (यि, रि) बहुत निकट हों तो रा = रि, और या = यि, अतः (या, रा) पर की स्पर्श रेखाका समीकरण यह है—

$$\frac{र - रा}{रा} + \frac{य - या}{या} = ०$$

$$\therefore \frac{य}{या} + \frac{र}{रा} = २ \text{...(३)}$$

ग का उपयोग करनेसे इसको इस रूपमें भी लिख सकते हैं—

$$\text{य रा} + \text{या र} = २ ग^२ \text{......(४)}$$

उपसिद्धान्त—समीकरण (३) से स्पष्ट है कि स्पर्श रेखामें से अक्षों द्वारा काटे हुए भागों की लम्बाई २ या, और २ रा है। अतः असीमपथों के बीचमें स्थित स्पर्शरेखाका भाग सम्पर्क बिन्दु पर समद्विभाजित होता है।

किसी स्पर्शरेखा द्वारा असीमपथोंमें से काटे गये त्रिकोणका क्षेत्रफल समीकरण (३) से

$$= २ \text{ या रा ज्या ल}$$

$$\text{पर } ४ \text{ या रा} = क^२ + ख^२$$

$$\text{और ज्या ल} = \frac{२ क ख}{क^२ + ख^२}$$

∴ क्षेत्रफल = क ख

२४७—किसी बिन्दु ($य_1, र_1$) का ध्रुवीय इसी प्रकार यह होगा—

$$\frac{य}{य_1} + \frac{र}{र_1} = २ \cdots\cdots (१)$$

अथवा $य र_1 + र य_1 = २ ग^2 \cdots\cdots (२)$

२४८—बिन्दु (या, रा) परके अवलम्बका समीकरण र − रा = त (य—या) है जिसमें त का मान इस प्रकार लिया गया है कि यह रेखा निम्न स्पर्श रेखाके लम्ब रूप हो—

$$र = -\frac{रा}{या} य + \frac{२ ग^2}{या}$$

यदि असीमपथोंके बीचका कोण ल° हो तो

$$त = \frac{या—रा \text{ कोज्या } ल}{रा—या \text{ कोज्या } ल}$$

(सूक्त ७८ के अनुसार)

अतः अवलम्बका अभीष्ट समीकरण यह है—

र (रा − या कोज्या ल)—य (या − रा कोज्या ल)

$= रा^2 - या^2$

तथा कोज्या ल = कोज्या २ प

$= कोज्या^2 प - ज्या^2 प$

$$= \frac{क^2 - ख^2}{क^2 + ख^2}$$

यदि अतिपरवलय समचतुरस्र हो तो ल° = ९०°, अतः अवलम्बका समीकरण य या − र रा = $या^2 - रा^2$ होगा।

२४९—असीमपथों की अपेक्षा से समीकरण—

समीकरण $य र = ग^2$ में य = ग ट और र = $\frac{ग}{ट}$ का उपयोग किया जा सकता है—

अतः ट के प्रत्येक मानके लिए वह बिन्दु जिसके युग्मांक (ग ट, $\frac{ग}{ट}$) हैं वक्र पर स्थित है। इस बिन्दु परकी स्पर्शरेखा का समीकरण यह है—

$$\frac{य}{ट} + र ट = २ ग$$

(सूक्त २४६ के अनुसार)

गत सूक्त के अनुसार अवलम्ब यह है—

र (१ − $ट^2$ कोज्या ल) − य ($ट^2$ − कोज्या ल)

$$= \frac{ग}{ट} (१ - ट^4)$$

यदि अतिपरवलय समचतुरस्र हो तो अवलम्ब का समीकरण यह होगा—

$$र—य ट^2 = \frac{ग}{ट} (१—ट^4)$$

बिन्दु '$ट_1$' और '$ट_2$' परकी स्पर्श रेखाओंके समीकरण यह हैं—

$$\frac{य}{ट_1} + र ट_1 = २ ग$$

$$\frac{य}{ट_2} + र ट_2 = २ ग$$

अतः स्पर्शरेखायें जिस बिन्दु पर मिलती हैं उसके युग्मांक ये हैं—

$$\left(\frac{२ ग ट_1 ट_2}{ट_1 + ट_2}, \frac{२ ग}{ट_1 + ट_2} \right)$$

बिन्दु $ट_1$ और $ट_2$ को संयुक्त करनेवाली रेखा अर्थात् ध्रुवीयका समीकरण सूक्त २४७ के अनुसार यह है—

$$य + र ट_1 ट_2 = ग (ट_1 + ट_2)$$

उदाहरणमाला १३

१. निम्न अतिपरवलयोंमें उनके अक्ष ही युग्मांक अक्ष माने गये हैं, ऐसी अवस्थामें इन अतिपरवलयोंके समीकरण क्या होंगे—

(क) जिसके परागत और प्रतिबद्ध अक्ष क्रमशः ३ और ४ हों।

[उत्तर ६१६ $य^2 - ९ र^2 = ३६$]

(ख) जिसका प्रतिबद्ध अक्ष ५ और जिसकी नाभियोंमें १३ का अन्तर है।

[उत्तर २५ $य^2 - १४४ र^2 = ९००$]

(ग) जिसका प्रतिबद्ध अक्ष ७ और जो (३,—२) बिन्दुसे होकर जाता हो।

[उत्तर ६५ य^{२} — ३६ र^{२} = ४४१]

२. २५ य + १२ र — ४ ५ = ० सरलरेखा २५ य^{२} — ६ र^{२} = २२५ अतिपरवलयको किन किन बिन्दुओं पर काटती है ? [उत्तर ५, — $\frac{२०}{३}$

३. सिद्ध करो कि $\frac{य}{क} + \frac{र}{ख} = \frac{१}{त}$ और $\frac{य}{क} - \frac{र}{ख}$ = त द्वारा सूचित सरलरेखायें सदा एक अतिपरवलय पर ही मिलती हैं।

४. ४ य^{२} — ६ र^{२} = १ अतिपरवलय की उस स्पर्श रेखा का समीकरण निकालो जो ४ र = ५ य + ७ सरल रेखा के समानान्तर हो।

[उत्तर २४ र — ३० य = ± √ १६१

५. २५ य^{२} — १६ र^{२} = ४०० अतिपरवलय के उस चापकर्ण का समीकरण निकालो जो बिन्दु (५, ३) पर समद्विभाजित होता हो।

[उत्तर = १२५ य — ४८ र = ४८१

६. सिद्ध करो कि उस वृत्त के केन्द्र का बिन्दुपथ एक अतिपरवलय होता है जो दो दिये हुए वृत्तों को बाहर स्पर्श करता है।

७. किसी अतिपरवलय के धनात्मक शीर्ष से एक स्पर्श रेखा खींची गई है। बताओ, यह प्रतिबद्ध अतिपरवलय पर कहाँ मिलेगी।

[उत्तर (क, ± ख √ २) बिन्दुओं पर

८. यदि अतिपरवलय और प्रतिबद्ध अतिपरवलय की उत्केन्द्रतायें क्रमशः उ और ऊ हों तो सिद्ध करो कि

$$\frac{१}{उ^{२}} + \frac{१}{ऊ^{२}} = १$$

९—सिद्ध करो कि अतिपरवलयके वे चापकर्ण जो प्रतिबद्ध अतिपरवलयका स्पर्श करते हों, सम्पर्क बिन्दु पर समद्विभाजित होते हैं।

१०—२ य^{२} + ५ यर + २ र^{२} + ४ य + ५ र = ० वक्रके असीम पथ निकालो और उन अतिपरवलयों का सामान्यतम समीकरण भी निकालो जिनके वही असीमपथ हों।

[उत्तर (२ य + र + २) (य + २ र + १) = ०,
(२ य + र + २) (य + २ र + १)
= स्थिर मात्रा]

११—क ओ ख और ग ओ घ दो सरलरेखायें हैं जो एक दूसरेको समकोण बनाती हुई समद्विभाजित करती हैं। सिद्ध करो कि यदि कोई बिन्दु ब इस प्रकार भ्रमण करे कि बक. बख = बग. बघ, तो उसका बिन्दुपथ एक समचतुरस्र अतिपरवलय होगा।

सूर्य-सिद्धान्त

(गतांकसे आगे)

चिड़ियोंके अपने घोंसले तक पहुँच जानेका कारण यह है कि जब चिड़िया आकाशमें उड़ जाती है तब भी भूभ्रमणका जो वेग उसमें घोंसलेमें रहता है वह उतना ही आकाशमें भी बना रहता है, इसलिए जिस वेगसे घोंसला पूर्वकी ओर घूमता जाता है उसी वेगसे चिड़िया भी घूमती जाती है, हां उसको जान नहीं पड़ता। साथ ही साथ वह अपनी गति भी उत्पन्न कर सकती है जिससे वह घोंसलेसे दूर जहां चाहे जाती है। जैसे रेलगाड़ी पर चढ़ा हुआ आदमी उस वेगका अनुभव नहीं करता जिससे गाड़ी स्वयम् चल रही है, पर उसमें वह वेग वर्तमान रहता है। इस वेगके रहते हुए भी वह अपनी इच्छा शक्तिसे डब्बेमें इधर उधर चल फिर सकता है, उछल कूद सकता है, गेंद खेल सकता है। क्योंकि गाड़ीमें रखी हुई जितनी वस्तुएँ हैं सबमें गाड़ीका वेग वर्तमान रहता है इसलिए यह वेग सबमें समान रूपसे रहनेके कारण मालूम नहीं होता। इसका पता भी सहज ही लगाया जा सकता है। यदि बहुत तीव्र चलती हुई गाड़ीमें बैठ कर एक कंकड़ बाहरकी ओर सीधा फेंका जाय तो जब तक वह पृथ्वीको नहीं छू लेता तब तक गाड़ीके साथ ही साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ता है। यह बात उस समय और भी स्पष्ट देख पड़ती है जब कंकड़ उस समय फेंका जाय जिस समय गाड़ी किसी नदीके पुल पर चलने लगे क्योंकि ऐसी दशामें कंकड़को धरातल तक पहुँचनेमें कुछ देर लगेगी इसलिए वह देर तक गाड़ीके साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ेगा और उस जगह नहीं गिरेगा जिस जगह लक्ष्य करके फेंका जाय वरन् आगे बढ़ कर ठीक अपने ही सीधमें गिरेगा। इससे जाना जा सकता है कि जब कोई वस्तु किसी वेगसे चलती हुई गाड़ी, वायुयान आदिसे अलग होती है तब भी उसमें वह वेग वर्तमान रहता है जो गाड़ीमें था और जब तक वह वस्तु किसी दूसरे वस्तुपर ठहर नहीं जाती तब तक उसका वेग नष्ट नहीं होता, इसी कारण यदि चलती हुई गाड़ीसे कोई कूदता है तो वह गाड़ीके वेगके कारण आगे बढ़ कर गिर पड़ता है।

इस बातकी दूसरी परीक्षा इस प्रकारकी जा सकती है। यह तो सभीको मालूम है कि यदि कोई गरुई चीज़ कुछ ऊँचाईसे छोड़ दी जाय तो वह अपने ठीक नीचे पृथ्वी पर गिरती है। बड़ी रेलगाड़ीके डब्बेकी ऊँचाई फ़र्शसे १० फुटके लगभग होती है। इसलिए यदि छतके पाससे पत्थरका टुकड़ा नीचे गिराया जाय तो फ़र्श पर पहुँचनेमें उसे ९, १० फुट चलना पड़ेगा और इसमें उसे पौन सेकंडके लगभग लगेगा। इतनी देरमें यदि गाड़ी ३० मील प्रति घंटेकी चालसे चलती हो तो ३३ फुट आगे बढ़ जाती है। इसलिए यदि बराह मिहिरका तर्क ठीक हो तो पत्थरको उस स्थान पर नहीं गिरना चाहिये जो उस स्थानसे ठीक नीचे है जहांसे पत्थर गिराया जाता है वरन् ३३ फुट पीछे गिरना चाहिये। परन्तु ऐसा देख नहीं पड़ता। देखनेमें तो वह वहीं गिरता है जिसके ठीक ऊपरसे गिराया जाता है। इसका कारण यह है कि पत्थर जिस समय छतसे गिराया जाता है उस समय उसमें गाड़ीकी जो गति वर्तमान रहती है वह गिरनेके समय भी वर्तमान रहती है इसलिए नीचे गिरते रहनेके साथ साथ वह गाड़ीके साथ आगे भी बढ़ता जाता है और ठीक वहीं गिरता

है जिसके ऊपरसे गिराया जाता है। सर्कसके खेलमें दौड़ते हुए घोड़ेकी पीठ परसे ऊपर उछल जाना और फिर उसीकी पीठ पर आजाना इसी नियमका परिणाम है।

अब रही ध्वजाकी बात। ध्वजाके प्रत्येक कणमें पृथ्वीका वेग रहता है। इसी तरह हवामें भी जो पृथ्वीका एक अंग ही है वह वेग वर्तमान रहता है इसीलिए ध्वजाका कपड़ा पृथ्वीकी गतिके कारण पश्चिमकी ओर उड़ता हुआ नहीं देख पड़ता। गाड़ी, मोटर या रेलगाड़ीके बाहर ध्वजा लगी हुई हो तो वह पीछेकी ओर उड़ती हुई देख पड़ती है क्योंकि रेलगाड़ी या मोटरकी गतिसे बाहरकी हवाका कोई लगाव नहीं रहता, यह तो हवाको चीरती हुई चलती हैं इसलिए यह पीछेकी ओर बढ़ती है और ध्वजा पताका इत्यादिको पीछेकी ओर उड़ाती है। हाँ यदि रेलगाड़ी या मोटरके सब द्वार बन्द कर दिये जांय तो इसके भीतर की हवाका सम्बन्ध बाहरकी हवासे टूट जाता है और उसमें गाड़ीका वेग वर्तमान रहता है इसलिए उसमें ध्वजाको पीछे उड़ानेकी शक्ति नहीं रहती। इसी प्रकार पृथ्वीका वातावरण भी ध्वजाको पीछे उड़ानेमें असमर्थ होता है क्योंकि पृथ्वी वातावरणको चीरती हुई नहीं चलती वरन् साथ लिए हुई चलती है इसलिए उसमें भी वही वेग रहता है।

आचार्य ब्रह्मगुप्तका यह तर्क कि पृथ्वीके घूमनेसे ऊँचे ऊँचे घरों, पर्वतों आदिकी चोटी कभी ऊपर और कभी नीचे हो जाती और जब नीचे हो जाती तो यह अवश्य गिर पड़ते परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए पृथ्वी नहीं घूमती, बिलकुल लंगड़ा है। ऊँचाई और नीचाईकी कल्पना पृथ्वीके ही विचारसे की जाती है। पृथ्वीकी ओर जो दिशा है वह नीचेकी दिशा कही जाती है और इससे उल्टी आकाशकी ओरकी दिशाको ऊँची दिशा कही जाती है और जो वस्तुएँ गिरती हैं वे पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिके कारण ही पृथ्वी पर गिरती है इसलिए यदि कोई गोला पृथ्वीके ऊपर हवामें घुमाया जाय और उसमें कोई ऐसी वस्तु चिपका दी जाय जो पृथ्वीकी ओर होने पर पृथ्वी पर गिर पड़े तो यह बिलकुल ठीक है। परन्तु जहां पृथ्वीके ही घूमनेका प्रश्न है वहां इसके नीचे क्या है जिसके आकर्षणसे भूपृष्ठके ऊँचे घर या पर्वत उस ओर गिर कर चले जांय। पृथ्वीके चारों ओर आकाश ही आकाश है इसलिए वह चाहे जितनी घूमे उसपरके घरों और पर्वतोंकी चोटी सदैव आकाश की ही ओर रहेगी और नीव पृथ्वीकी ओर इसलिए वे गिर कर कहाँ जा सकते हैं।

यहां तक तो शंकाओंका समाधान किया गया। अब उदाहरण दे कर गणितशास्त्रके आधार पर सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वीमें गति है।

अर्वाचीन विज्ञानसे पृथ्वीके अक्ष भ्रमणके प्रमाण—

यह साधारण अनुभवकी बात है कि पहियेका वह बिन्दु जो धुरीसे दूर है धुरीके पासवाले बिन्दुसे अधिक चलता है और पहियेके किनारे पर जो बिन्दु है उसमें उन सब बिन्दुओं से अधिक वेग रहता है जो बीचमें होते हैं। यदि पृथ्वी ऐसे अक्ष पर घूमती हुई मानी जाय जिसका एक सिरा उत्तरी ध्रुव पर और दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर हो तो यह स्पष्ट है कि किसी ऊँचे पेड़, मकान या मीनारकी चोटी उसके आधारकी अपेक्षा पृथ्वीके अक्षसे अधिक दूरी पर है इसलिये चोटीकी गति

उसके आधारकी गतिसे अधिक होगी। इसलिए यदि कोई वस्तु किसी ऊँचे मीनारकी चोटीसे गिरायी जाय तो वह अधिक वेगके कारण ठीक नीचे न गिर कर कुछ पूरबकी ओर बढ़कर गिरेगी क्योंकि उसके ठीक नीचेवाले बिन्दुकी चाल

(चित्र नं० १२८)

उससे मंद है। मान लो स एक मीनारकी चोटी है जहांसे वस्तु नीचे गिरायी जाती है और प मीनारका मूल है जो स के ठीक नीचे है इसलिये लम्बरेखा स प बढ़ाने पर पृथ्वीके केन्द्र क पर पहुँचेगी। यदि मान लिया जाय कि जितनी देरमें वस्तु पृथ्वी तल पर पहुँचती है मीनारकी चोटी स से सा तक घूम गयी तो मीनारका मूल प से पा तक पहुँचेगा क्योंकि चोटी और मूलको मिलानेवाली रेखा पृथ्वीके केन्द्र को सदैव जायगी। यह स्पष्ट है कि प पा स सा से कम है। यह भी स्पष्ट है कि स की भ्रमण गति प की भ्रमण गतिसे कम है। परन्तु जो वस्तु स बिन्दुसे गिरायी जायगी उसकी गति स की गतिके समान होगी इसलिये वह गिरते हुए भी अपनी ऊपरवाली गतिको धारण किये रहेगी इसलिये वह पा पर न गिर कर पि पर गिरेगी जहाँ प पि स सा के समान अर्थात् वह वस्तु लम्बरेखासे कुछ पूरबकी ओर बढ़कर गिरेगी।

इसलिये यदि परीक्षा करके यह सिद्ध किया जासके कि ऊपरसे गिरी हुई वस्तु पृथ्वी पर पहुँचते २ यथार्थमें कुछ पूरबकी ओर बढ़ जाती है तब यह कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है कि पृथ्वी पूरबकी ओर भ्रमण करती है। परन्तु यह परीक्षा कठिन है क्योंकि इतना ऊँचा स्थान नहीं बनाया जा सकता कि इसकी चोटी और मूलकी भ्रमण गतियोंमें इतना अन्तर हो कि वह साफ साफ देख पड़े क्योंकि पृथ्वीकी त्रिज्या ४००० मीलके लगभग है और मीनारकी चोटी १००० फुट भी नहीं हो सकती। बोलोन और हेमवर्गमें इस सम्बन्धमें जितनी परीक्षाएँकी गयीं उनसे सिद्ध हुआ कि २५० फुटकी ऊँचाईसे गिरी हुई वस्तु लम्बरेखासे तिहाई इंच पूरब बढ़ जाती है। गणना करके यह देखा जा सकता है कि जितनी देरमें कोई वस्तु २५० फुट नीचे गिरती है उतनी देरमें चोटी मूलकी अथवा स और प बिन्दुओंको भ्रमण गतियोंका अन्तर भी इतना ही होता है। इसलिये इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वीमें भ्रमण गति है। इस प्रयोगकी पूरी गणना यहां नहीं दी जा सकती क्योंकि बिना उच्च गणितकी जानकारीके वह समझमें नहीं आ सकती। इसलिये यहाँ केवल सारमात्र दिया गया है।

इस प्रयोगकी कल्पना पहले पहले निउटनने की थी। ऊपर जो चित्र दिया गया है वह विषुवत् रेखा पर स्थित देशोंके लिये उपयुक्त है। अन्य स्थानों के लिये इसकी गणनामें कुछ परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि विषुवत् रेखासे अन्य स्थानोंमें गिरनेवाली वस्तुमें दो गतियां हो जाती हैं जिनकी दिशाएँ

भिन्न होती हैं। एक गति तो पृथ्वीके दैनिक भ्रमणकी होती है जो गिरनेवाली वस्तुको मीनारकी चोटीसे प्राप्त होती है और पृथ्वीके अक्षके समकोण तल पर होती है और दूसरी गति पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके कारण होती है जिससे वस्तु पृथ्वीके केन्द्रकी ओर गिरती है। इसलिये वस्तु लम्ब दिशासे पूरबकी ओर तो बढ़ जाती है, साथ ही साथ कुछ दक्षिण या उत्तर भी हो जाती है। गिरते समय वस्तु पर हवाकी रगड़का भी कुछ प्रभाव पड़ता है परन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी मूल सिद्धान्तमें कोई अन्तर नहीं होता।

यह प्रयोग कोयलेकी गहरी खानोंमें भी किया जाता है क्योंकि यहां गिरनेके लिये गहराई अधिक मिल सकती है। ५०० फुटकी ऊँचाईसे गिरायी हुई वस्तु लम्ब दिशासे १ इञ्चके लगभग पूरब बढ़ जाती है। यह कई प्रयोगोंका मध्यमान है; गणनासे भी यही बात सिद्ध होती है।

(२) परन्तु इससे भी सहज और स्पष्ट प्रयोग फूकोका (Foucault) लोलक-प्रयोग (Pendulum experiment) है। गणित शास्त्रसे यह सिद्ध है कि यदि कोई लोलक केवल गुरुत्वाकर्षणके प्रभावसे स्पन्दन करे या झूले तो इसका स्पन्दन तल (झूलनेकी दिशा) वही बना रहेगा और इस तलकी दिशा पर लोलकके आधारकी गतिका प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि ऐसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है जो इसे इस तलसे विचलित कर सके। यह सहज ही देखा जा सकता है कि यदि एक भारी लोलक एक पतले तारसे लटका कर घड़ियोंके लोलककी तरह झुलाया जाय और यदि वह आधार जिसमें लोलक लटकाया जाता है घुमाया जाय तो इसके घूमनेसे लोलकके स्पन्दन-तलमें कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि जिस तार या डोरेमें लोलक बंधा रहता है उसका जरा सा ऐंठ जाना अधिक सहज है न कि भारी लोलकका ही अपने स्पन्दन तलको बदलना जब कि वह पहले ही से एक तलमें झूल रहा है। इसलिये यह सिद्ध है कि यदि पृथ्वी अचल हो तो लोलकके स्पन्दनकी दिशा भी आस पासकी वस्तुओं तथा आधारके विचारसे अचल रहेगी और यदि इसमें भ्रमणगति होगी तो लोलकके स्पन्दन तलकी अपेक्षा भूतलकी दिशाओंमें परिवर्तन हो जायगा और लोलकका स्पन्दन तल ही बदलता हुआ देख पड़ेगा। इसलिये इस लोलक-प्रयोगसे पृथ्वीकी भ्रमण गतिका ही पता नहीं लगेगा वरन इसकी दिशाका भी पता लगेगा।

फूकोने यह प्रयोग आजसे ७६ वर्ष पहले सन् १८५१ ई० या १६०८ वि० में पेरिसमें किया था। उसने अपने लोलकको पैन्थियन नामक विशाल भवनके गुम्बजसे लटकाया। इसका तार २०० फुट लम्बा था और गोलेकी तोल १ मनके लगभग (८० पौंड) थी। जिस समय लोलक झूलता था गोलेके नीचे निकली हुई सुई अपने झूलनेका चिह्न बालू तल पर बनाता थी और यह देख पड़ता था कि बालूका तल अपसव्य दिशामें अर्थात् दहनेसे बायें पच्छिमसे पूरब घूमता जाता था।

इस प्रयोगमें दो बातोंकी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। लोलकका तार जितना ही लम्बा हो उतना हो अधिक देर तक यह झूलता रहेगा नहीं तो अपनी तीव्र गतिसे हवाका रगड़ खा कर जल्द रुक जायगा। दूसरे इसका गोला जितना हो भारी हो अच्छा है क्योंकि इससे लटकानेके दोषोंका तथा हवाकी रगड़का प्रभाव बहुत कम पड़ जाता है।

इस प्रयोगको बहुत सफलता पूर्वक करनेका उद्योग अमेरिकाके एक विज्ञानवेत्ता रसेल डेबलू पोर्टरने* किया है।
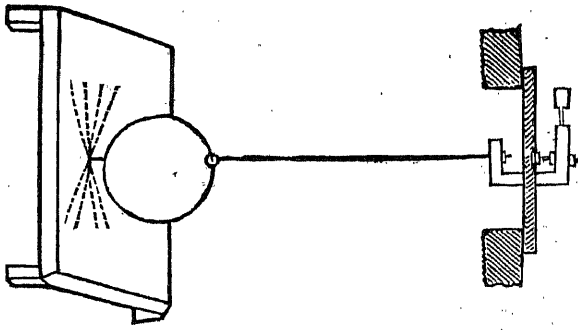
(चित्र नं० १२६)

इन्होंने पियानो बाजाके लगभग १२ फुट लम्बे तारसे ढलवे लोहेका कोई ४० पौंड या २० सेरका गोला छतकी धरनसे लटकाया। यह देखा गया है कि लोलककी गति धीरे धीरे मंद पड़ जाती है परन्तु यदि इनका लोलक लम्ब दिशासे तीन फुट तक खींच कर झुलाया जाय तो आधे घंटेके बाद भी वह लम्बरेखासे २ फुट इधर उधर झूलता रहता है।

हां, इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जिस छतमें लोलक लटकाया जाय उसमें किसी प्रकारका स्पन्दन न हो और कमरेकी हवामें किसी प्रकारका झोंका न हो। लोलक लटकने पर प्रायः घूमता रहता है जिससे डोरे या तारमें ऐंठन पड़ जाती है। इससे लोलकमें एक दूसरी गति उत्पन्न हो जाती है। इसलिये इसे रोकनेके लिये इन्होंने तारको एक पीतलके हुकमें लटकाया जिसका आकार प्रश्नवाचक चिह्नकी तरह था और हुककी नोक एक छिछली प्यालीमें थांभ दी गयी जो धरन पर अच्छी तरह कसी हुई थी। प्यालाका नतोदर तल अच्छी तरह चिकना कर दिया था।

लोलकको झुलानेके पहले बिल्कुल निश्चल रखना चाहिये। इसलिये गोलेमें एक डोरा बांध कर डोरेको इतना खींच कर दीवालमें बांध देना चाहिये कि गोला धरण बिन्दुकी लम्बरेखा से २, ३ फुट हट जाय। अब यदि डोरेको जला दिया जाय तो गोला हिलने लगेगा और बराबर एक ही तलमें झूलता रहेगा। यदि ऐसा न किया जाय तो गोला एक लम्बे दीर्घ-वृत्तमें झूलने लगता है और यदि आरंभमें ज़रा सी भी गड़बड़ हो तो कुछ देरमें बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है।

लोलकके झूलनेकी दिशा चाहे जो हो परन्तु यदि आरम्भ उत्तर दक्षिण दिशासे किया जाय तो अच्छा है। गोलेके नीचे जो सुई निकली हुई हो वह मेजके इतने पास हो कि उस पर रखी हुई कागजकी तख़्तीके छूनेसे तनिक ही बची रहे। गोला झुलानेके बाद कागजकी तख़्ती पर एक सीधी रेखा पेंसिलसे खींच कर तख़्तीको मेज पर इस प्रकार सरका दो कि सुई छू न जाय और खींची हुई रेखा सुईके झूलनेके तलसे ठीक

* देखो जुलाई सन् १६२८ ई० के सायंटिफिक अमेरिकन Scientific American पृष्ठ ११, १२।

मल जाय। अब तख़्तीकी रेखाके दक्षिणी किनारेको ध्यानसे देखना चाहिये। दो ही तीन मिनटमें तख़्तीकी रेखाका दक्षिणी सिरा पच्छिमसे पूरबको अर्थात् अपसव्य दिशामें या घड़ीकी विरुद्ध दिशामें घूमता हुआ देख पड़ेगा। कारण यह कि तख़्ती पृथ्वीके साथ पच्छिमसे पूरबको घूमती रहती है। यह प्रयोग यदि विषुवत् रेखासे दक्षिणके देशोंमें किया जाय तो तख़्तीकी रेखा घड़ीकी अनुकूल दिशामें घूमती हुई देख पड़ेगी।

अब देखना है कि प्रयोगका परिणाम गणनासे कहां तक मिलता है।

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो कि लोलक उत्तरी ध्रुव पर लटकाया जाय तो लोलककी लम्ब रेखा और पृथ्वीका अक्ष एक ही दिशामें होंगे। इसलिए जैसे जैसे पृथ्वी पच्छिम से पूरबकी ओर घूमती जायगी इसके साथ दर्शकके खड़ा होनेका तल भी पच्छिमसे पूरबको घूमेगा और लोलकका स्पन्दन तल पूरबसे पच्छिमकी ओर हटता हुआ जान पड़ेगा क्योंकि दर्शक पृथ्वीके घूमनेको नहीं देख सकता। इसलिए लोलकका स्पन्दन तल उलटी दिशामें २३ घंटे ५६ मिनट ४ सैकंडमें एक चक्कर लगा लेनेकी गतिसे घूमता हुआ देख पड़ेगा।

यह सम्भव नहीं कि एक बारका झुलाया हुआ लोलक लगातार २४ घंटे तक झूलता रहे। परन्तु जितनी देर तक वह झूलता रहेगा उतनी ही देरमें इसका स्पन्दन तल इतना घूमा हुआ देख पड़ेगा कि उससे अनुपात द्वारा सहज ही जाना जा सकता है कि एक चक्कर लगानेका समय क्या हो सकता है।
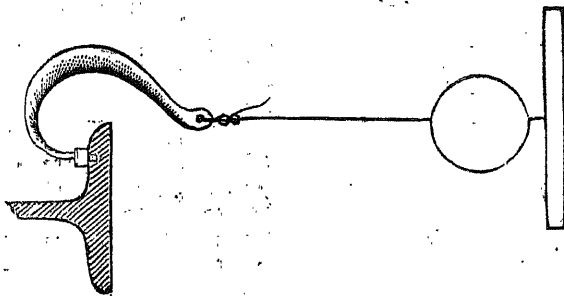
(चित्र नं० १३०)

पोर्टर ने अपने लोलकको इस प्रकार लटकाया था। एक पीतलकी हुक जिसकी मोटाई ¼ इञ्च थी एक फौलादकी प्यालीमें रखा गया है जिससे ऐंठन न पड़े।

यदि विषुवत् रेखा पर लोलक झुलाया जाय तो इसकी नोकसे बनी हुई लकीर एक दूसरेके ऊपर होगी क्योंकि यहाँ इसके दोनों किनारोंकी पच्छिमसे पूरबवाली गति समान है इसलिए लोलकका स्पन्दन तल घूमता हुआ नहीं देख पड़ेगा वरन् एक ही लकीर पर चलता रहेगा।

परन्तु विषुवत् रेखासे भिन्न स्थानोंमें यह बात नहीं होगी क्योंकि लोलकके ठीक नीचेके धरातलके उस भागमें जो विषुवत् रेखाके पास है पृथ्वीके घूमनेकी गति उससे अधिक है जो ध्रुवके पास है इसलिए इसका परिणाम यह होगा कि लोलककी नोकसे जो लकीर बालू पर बनेगी उसका वह किनारा जो विषुवत् रेखाकी ओर है ध्रुवकी ओर वाले किनारे से अधिक वेगसे घूमनेके कारण पूरबकी ओर हटता हुआ और ध्रुवकी ओर वाले किनारेका चक्कर लगाता हुआ देख पड़ेगा परन्तु यह चक्कर २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंडसे अधिक समयमें पूरा होगा जैसा कि नीचेकी गणनासे सिद्ध है।

कल्पना करो कि परीक्षाके स्थान स का उत्तरी अक्षांश अ है। वि वी विषुवत् रेखा, क पृथ्वीका केन्द्र, ध धा पृथ्वीका अक्ष और ध उत्तरी ध्रुव है। ध धा अक्ष पर घूमने वाला पृथ्वी का कोणीय वेग व गति-विज्ञानके अनुसार दो भागोंमें बांटा जा

(चित्र नं० १३१)

सकता है, जिसका एक भाग क स पर और दूसरा भाग क प पर घूमता हुआ समझा जा सकता।

वेगका यह भाग जो क स पर है व कोटिज्या (९०°-अ) अथवा व ज्या अ के समान होगा और जो भाग कप पर है वह व कोज्या अ के समान होगा। परन्तु कप पर घूमने वाला वेग क स के समानान्तर होगा इसलिए इसका प्रभाव लोलक पर वैसा ही पड़ेगा जैसा विषुवत् रेखा पर पड़ता है अर्थात् इसके कारण लोलकसे खींचने वाली लकीरकी दिशामें कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु क स पर घूमने वाला वेग झूलते हुए लोलककी सुईसे बनी हुई लकीरकी दिशामें परिवर्तन करेगा जिससे लकीरका दक्षिणी सिरा पच्छिमसे पूरब को ओर खसकता हुआ देख पड़ेगा और जान पड़ेगा मानों लोलक का स्पन्दन तल ही पूरबसे पच्छिमकी ओर घूम रहा है क्योंकि पहली लकीरसे दूसरी लकीर पच्छिम की ओर बनती चली जांयगी।

अब यह देखना है कि कितनी देरमें लोलकका स्पन्दनतल यदि लगातार झूलता रहा तो एक चक्कर लगा लेगा। यह मान लिया गया है कि पृथ्वीके अक्ष पर घूमता हुआ वेग व है और स स्थान पर इसका खण्ड वेग व ज्या अ है इसलिए यह जानना सहज है कि जब व वेगसे एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है तब व ज्या अ वेगमें एक चक्कर अधिक समयमें पूरा होगा इसलिए लोलकसे बनी हुई लकीरोंका पूरा चक्कर $\frac{\text{व} \times \text{२४ घंटा}}{\text{व ज्या अ}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या अ}}$ समयमें पूरा होगा।

जहां अ स्थानका अक्षांश है। यदि प्रयागमें यह प्रयोग किया जाय तो एक चक्कर $\frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या २५° २५'}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{·४२६२}} = \text{५५ घंटा}$ ५५ मिनट या मोटे हिसाबसे ५६ घंटेमें होगा। इसलिये यदि आधे घंटे भी लोलक झूलता रहे तो स्पन्दनतलकी दिशामें पर्याप्त परिवर्तन देख पड़ेगा क्योंकि जब ५६ घण्टेमें पूरा चक्कर होता है तब आधे घण्टेमें $\frac{१}{२} \times ३६० \times \frac{१}{५६}$ अंश $= \frac{४५}{१४} = ३$ अंश १३ कलाके लगभग परिवर्तन हो जायगा। जो सहज ही देखा जा सकता है क्योंकि यदि लोलक लम्बसे २ फुट भी हटा कर झुलाया जाय तो ३ अंशके परिवर्तन में लोलक १ इञ्चसे अधिक दूर हट जायगा।

इस प्रकारके प्रयोग भिन्न भिन्न अक्षांशों पर भिन्न भिन्न विज्ञान वेत्ताओंने किये और सबके प्रयोगोंसे यही बात सिद्ध होती है कि लोलकसे बनी हुई रेखाके पूरा घूम जाने का समय $= \frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$ और एक घण्टेमें घूमने का परिमाण इस प्रकार निकलेगा $\frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$: १ घंटा : : ३६० अंश : इष्ट परिमाण

∴ इष्ट परिमाण $= \frac{\text{३६० × ज्या अक्षांश}}{\text{२४}} = \text{१५ ज्या}$ अक्षांश (अंशोंमें), नीचेकी सारिणीसे* भिन्न भिन्न प्रयोगोंका परिणाम दिया जाता है—

प्रयोग का स्थान	अक्षांश (अंश कला)	१ घंटे में स्पन्दनतल की दिशामें परिवर्तन प्रयोग से	१ घंटे में स्पन्दनतल की दिशामें परिवर्तन गणना से	प्रयोगकर्ताका नाम
सीलोन	६ ५६	१.८७० अंश	१.८१५ अंश	Schaw and Lamprey
न्यूयार्क	४० ४४	६.७३३	६.८१४	Leomis
Provinces R.I.	४० ४६.५	६.६५५	६.८३३	Carowell and Norton
न्यू हेवन	४१ १८.५	६.६७०	६.९२७	Dufair and Warman
जेनेवा	४६ १२	१०.५२२	१०.८५६	Foucault
पेरिस	४८ ५०	११.५००	११.३२३	Bunt
ब्रिटिश	५१ २७	११.७८८	११.७६३	Galbraith & Houghton
डबलिन	५३ २०	११.६१५	१२.०६५	Gerard
एबरडीन	५७ ९	१२.९००	१२.६२८	

* उर्दू के वैज्ञानिक मासिक पत्र 'रोशनी' अप्रैल १९१६ ई० पृष्ठ २८०, ८१ के आधार पर जो (Movements of the earth by Norman Lockyer F. R. S) से लिया गया है।

इस सारणी से प्रत्यक्ष हो जाता है कि लोलक के स्पन्दन तल की दिशा का परिवर्तन पृथ्वी की ही भ्रमण गति से होता है। यह सब प्रयोग विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों के लिए है। विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में भी परिवर्तन इसी नियम से होता है।

(३) पृथ्वी की भ्रमणगति सिद्ध करने के लिए एक तीसरी रीति भी है, जिसे फूको ने ही निकाली थी। यदि किसी चक्र का किनारा बहुत भारी हो और उसका अक्ष उसके केन्द्र से जाता हुआ उसके धरातल से समकोण बनाता हो और वह चक्र अपने अक्षपर बहुत वेग से घूम सकता हो तो ऐसे चक्र को घुमना पहिया (gyrostat) कहते हैं। यदि इसके साथ इसका आधार भी हो जिससे यह थमा रहता है तो इसका नाम घुमना चक्र (gyroscope) हो जाता है। एक साधारण घुमना चक्र का चित्र यह है—

क ख चक्र समधरातल अक्ष ग घ पर घूम सकता है और जिस चक्र पर ग घ अक्ष है वह च छ समधरातल अक्ष पर घूम सकता है। छ अक्षर चित्र में स्पष्ट नहीं है। यह घ के पास औ यंत्र के कुछ पाछे है)। च छ अक्षर कुल को लेता हुआ ज म लम्ब अक्ष पर घूम सकता है। यह यंत्र ऐसा बनाना चाहिए कि इसके घूमते समय रगड़ कम से कम हो। ये तीनों अक्ष एक दूसरे से समकोण पर होते हैं, ग घ और च छ अक्ष समधरातल में और ज म अक्ष लम्ब दिशा में। यदि रगड़ बहुत कम हो जिससे प्रत्येक अक्ष की गति पूरी तरह स्वतन्त्र हो तो घुमने-यंत्र में अनेक अद्भुत गुण पाये जाते हैं जब कि क ख चक्र खूब तेजी से घूम रहा हो। एक महत्व का गुण यह है कि यदि क ख चक्र तेज़ी से चला दिया जाय तो ग घ अक्ष की दिशा सर्वदा एक ही बनी रहती है। जब कि घुमना-चक्र एक जगह से दूसरी जगह ज म को पकड़ कर हटाया जाता है। जब घुमना चक्र के अक्ष की दिशा पृथ्वी के अक्ष के समानान्तर रखी जाती है तब तो इसकी दिशा आस पास की
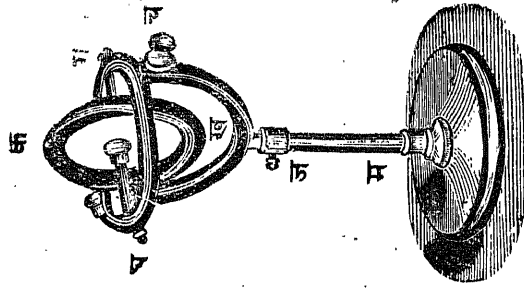
(चित्र नं० १३२)

वस्तुओं की दृष्टि से स्थिर रहती है परन्तु यदि इसका अक्ष किसी अन्य दिशा में करके यह घुमाया जाय तो अक्ष उसी प्रकार दिशा बदलता है जैसे तारे। यदि अक्ष किसी विशेष तारे की दिशा में करके चक्र घुमाया जाय तो जब तक वह चक्र घूमता रहेगा अक्ष सदा उसी तारे की दिशा में रहेगा।

१०

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि तारों की दिशा स्थिर है और उनका प्रतिदिन का पूरब से पच्छिम को घूमना पृथ्वी की दैनिक गति के कारण है।

इन प्रयोगों के सिवा बहुत सी घटनाएं ऐसी हैं जिनसे पृथ्वी का अक्ष भ्रमण सिद्ध होता है। उत्तर गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा घड़ी की प्रतिकूल दिशा में घूमती है वैसे ही यहां बवंडरों के घूमने की दिशा भी होती है। परन्तु
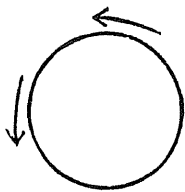
उत्तर गोलमें बवंडरोंकी दिशा
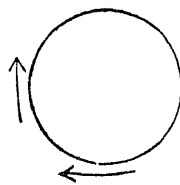
दक्षिण गोल में बवंडरों की दिशा

(चित्र १३३)

दक्षिण गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा तथा बवंडरों की दिशा घड़ी को अनुकूल दिशा में घूमती हैं। जो हवाएं विषुवत् रेखा से ध्रुव की ओर चलती हैं वे उत्तर गोल में पूरब की ओर अर्थात् अपने दाहिने और दक्षिण गोल में भी पूरब की ओर अर्थात् अपने बायें मुड़ जाती हैं। इसका कारण सिवा इसके और क्या हो सकता है कि जब विषुवत् रेखा के ऊपर की हवा गरम होकर हलकी होती है तब यह ऊपर उठती है इसलिए इसकी जगह भरने के लिए ध्रुवों के पास की ठंडी हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है। परन्तु विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की गति पूर्व की ओर अत्यन्त तीव्र होती है और ज्यों ज्यों ध्रुवों की ओर जाओ त्यों त्यों यह गति मंद पड़ती जाती है इस लिए जो हवा विषुवत् रेखा से चलती है उसकी भी पूर्व को ओर की गति तीव्र रहती है इस लिए जब यह ध्रुवों की ओर के देशों में पहुंचती है जिनकी पूर्वी गति मंद रहती है तब यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इसी प्रकार जो हवा ध्रुवों से विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह पच्छिम की ओर को मुड़ जाती है।

समुद्र की धाराओं की दिशा भी इसी प्रकार की होती है। मेक्सिको की खाड़ी से जो विषुवत् रेखा के पास है जो गरम जलधारा अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर चलती है वह आगे चलकर पूरब की ओर मुड़ जाती है और उत्तर पूरब दिशा में चलती हुई अटलांटिक महासागर की दूसरी ओर फ्रांस, इंगलैंड, नारवे आदि देशों में पहुंचती है तथा उत्तर की ठंडी धारा ग्रीनलैंड से उत्तरी अमेरिका की ओर जाती है। इसीका फल है कि नारवे का हैमर फैस्ट का बंदरगाह जो ७०° उत्तरी अक्षांश पर है बारहों महीने बर्फ से मुक्त रहता है जब कि उत्तरी अमेरिका का पूरबी किनारा ४० अक्षांश तक जाड़ा भर और गरमी के भी अधिक भाग तक बर्फ से ढका रहता है।

इसी प्रकार हिन्द महासागर के द्वीप समूह से गरम जल धारा उत्तर की ओर को चलती है वह पूरब की ओर को मुड़ कर जापान के पूरवी भाग को गरम रखती है और उत्तर से ठंडी जलधारा जापान के पच्छिमी किनारे से होती हुई चीन सागर में ठीक उलटी दिशा में आती है।

उ

व विषुवतरेखा वि
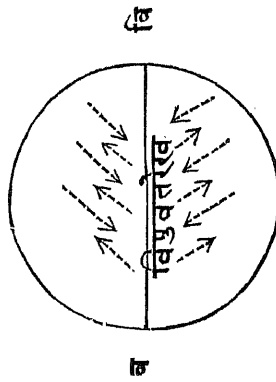
द

उ=उत्तर ध्रुव

द=दक्षिण ध्रुव

व वि=विषुवत्

(चित्र १३४)

यह संक्षेप में बतलाया गया है कि पृथ्वी की दैनिक गति के कारण हवाओं और धाराओं की दिशाओं में क्या परिवर्तन हो जाता है। यदि इस विषय पर अधिक जानना हो तो भूगोल की अच्छी पुस्तकों से काम लेना चाहिए।

इस अक्षभ्रमण के सिवा पृथ्वी में एक दूसरी गति भी होती है जिससे यह वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा कर लेती है परन्तु जान पड़ता है मानों सूर्य ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी की इस गति का प्रमाण और भी सूक्ष्म है जिसका विचार आगे कहीं किया जायगा। इस समय केवल इतना स्मरण करा देना पर्याप्त होगा कि पृथ्वी की इस गति के ही कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गतियां देख पड़ती हैं (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२६—१४०, १४५—१५६)।

६३ श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि ग्रह कक्षाएं भी भचक्र में बंधी हुई पूरब से पच्छिम को जा रही हैं। परंतु इन सब गतियों का कारण पृथ्वी की दैनिक गति ही है।

(क्रमशः)

बीज ज्यामिति

अथवा

भुजयुग्म रेखा गणित

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक बातें

१—वर्गात्मक समीकरण—बीज ज्यामितिका परिचय प्राप्त करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बीज गणितके साधारण सिद्धान्तोंका परिज्ञान हो। बीज गणितके वर्गात्मक समीकरणोंका व्यवहार बीज ज्यामितिमें अनेक स्थलों पर आता है, अतः इनका सूक्ष्म विवरण दे देना उपयोगी होगा।

वर्गात्मक समीकरण साधारणतया इस प्रकार सूचित किया जाता है:—

$$\text{क}\,\text{य}^2+\text{ख}\,\text{य}+\text{ग}=0 \quad \cdots\cdots(1)$$

$$\therefore\ \text{क}\text{य}^2+\text{ख}\text{य}=-\text{ग}$$

$$\therefore\ \text{य}^2+\frac{\text{ख}}{\text{क}}\,\text{य}=-\frac{\text{ग}}{\text{क}}$$

$$\therefore\ \text{य}^2+\frac{\text{ख}}{\text{क}}\,\text{य}+\frac{\text{ख}^2}{4\text{क}^2}=-\frac{\text{ग}}{\text{क}}+\frac{\text{ख}^2}{4\,\text{क}^2}$$

$$\therefore\ \left(\text{य}+\frac{\text{ख}}{2\,\text{क}}\right)^2=-\frac{\text{ग}}{\text{क}}+\frac{\text{ख}^2}{4\,\text{क}^2}$$

$$=\frac{-4\,\text{क}\text{ग}+\text{ख}^2}{4\,\text{क}^2}$$

$$\therefore\ \text{य}+\frac{\text{ख}}{2\,\text{क}}=\frac{\pm\sqrt{(\text{ख}^2-4\,\text{क}\text{ग})}}{2\,\text{क}}$$

$$\therefore\ \text{य}\ =\frac{-\text{ख}\pm\sqrt{(\text{ख}^2-4\,\text{क}\text{ग})}}{2\,\text{क}}$$

इस प्रकार वर्गात्मक समीकरण (१) के दो मूल हैं—

$$(1)\quad \frac{-\text{ख}+\sqrt{(\text{ख}^2-4\text{क}\text{ग})}}{2\,\text{क}}$$

$$\text{और}\ (2)\quad \frac{-\text{ख}-\sqrt{(\text{ख}^2-4\,\text{क}\text{ग}(}}{2\,\text{क}}$$

यदि $\text{ख}^2=4\,\text{क}\text{ग}$, तो दोनों मूल समान होंगे। यदि $\text{ख}^2>4\,\text{क}\,\text{ग}$ तो दोनों मूल वास्तविक और भिन्न होंगे। पर यदि $\text{ख}^2<4\,\text{क}\text{ग}$ तो दोनों मूल काल्पनिक होंगे, क्योंकि ऋणात्मक संख्याओंका वर्गमूल काल्पनिक होता है।

२—किसी बीज-समीकरणके मूलों और समीकरणके पदोंके गुणकोंमें सम्बन्ध—

यदि दो घातोंका कोई समीकरण इस प्रकार लिखा जाय कि सबसे उच्चतम घातके पदका गुणक इकाई हो तो बीजगणित द्वारा यह स्पष्ट है कि

(१) समीकरणके दोनों मूलोंका योग दूसरे पदके गुणकके बराबर होगा पर धनर्ण संकेत (ऋण या धन संकेत) परिवर्तित हो जायगा।

उदाहरण—$\text{य}^2-7\ \text{य}+12=0$ समीकरणके मूल ४ और ३ हैं। द्वितीय पद, य, का गुणक -7 है जो स्पष्टतः मूलोंके योग $(4+3)$ के बराबर है। भेद इतना ही है कि मूलोंका योग धनात्मक है, पर गुणक ऋणात्मक है।

(२) दोनों मूलोंका गुणनफल तीसरे गुणकके बराबर होगा। यह भी उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट है। मूल ४ और ३ थे जिनका गुणनफल १२ हुआ। तीसरा पद भी १२ है।

यदि $\text{क}\,\text{य}^2+\text{ख}\,\text{य}+\text{ग}=0$ समीकरणके मूल अ_1 और अ_2 हों तो ये $\text{य}^2+\frac{\text{ख}}{\text{क}}\,\text{य}+\frac{\text{ग}}{\text{क}}=0$ समीकरणके भी मूल होंगे अतः

$$\text{अ}_1+\text{अ}_2=-\frac{\text{ख}}{\text{क}}$$

$$\text{और}\quad \text{अ}_1.\,\text{अ}_2=\frac{\text{ग}}{\text{क}}$$

३—$\text{क}\,\text{य}^2+\text{ख}\,\text{य}+\text{ग}=0$ यह दो घातोंका वर्गात्मक समीकरण है। इसी प्रकार $\text{क}\,\text{य}^3+\text{ख}\,\text{य}^2+\text{ग}\,\text{य}+\text{घ}=0$ तीन घातोंका समीकरण है। सूक्त २ में दिये गये नियमका कुछ परिवर्तनके साथ

तीन घातोंके समीकरणोंमें भी व्यवहार किया जा सकता है।

यदि $अ_1$, $अ_2$ और $अ_3$ तीन घातोंवाले उपर्युक्त समीकरणके मूल हों तो ये निम्न समीकरणके भी मूल होंगे—

$$य^3 + \frac{ख}{क} य^2 + \frac{ग}{क} य + \frac{घ}{क} = ०$$

इसका उच्चतम पद $य^3$ का गुणक इकाई है। अतः ऐसे समीकरणोंमें—

$$अ_1 + अ_2 + अ_3 = -\frac{ख}{क}$$

$$अ_1 अ_2 + अ_2 अ_3 + अ_1 अ_3 = \frac{ग}{क}$$

$$अ_1 \; अ_2 \; अ_3 = -\frac{घ}{क}$$

उदाहरण—$य^3 + ३ \; य^2 - १० \; य - २४ = ०$ समीकरणके मूल (−४), ३ और (−२) हैं।

इनसे स्पष्ट है कि—

−४+३−२= −३ जो $य^2$ का गुणक है, केवल धनर्ण संकेतमें भेद है।

(−४. ३) + (३. −२) + (−२. −४) = −१० जो तीसरे पद य का गुणक है।

−४. ३. −२= २४ जो अन्तिम पद है।

इसी प्रकार अन्य उच्च घातोंके लिये भी समीकरण बनाये जा सकते हैं। इनकी विस्तृत विशेष व्याख्या श्री पं० सुधाकर द्विवेदी रचित समीकरण-मीमांसा नामक ग्रन्थमें देखी जा सकती है।

४—यदि दो समीकरण इस रूपमें लिखे जांय :—

$$क_1 \, य + ख_1 \, र + ग_1 = ०$$

और $क_2 \, य + ख_2 \, र + ग_2 = ०$

तो स्पष्टतः

$$\frac{य}{ख_1 ग_2 - ग_1 ख_2} = \frac{र}{ग_1 क_2 - क_1 ग_2} = \frac{१}{क_1 ख_2 - ख_1 क_2}$$

उदाहरण—

$$८ य + ४ र - ५२ = ०$$

और $२ य - ६ र + ८ = ०$

इन समीकरणोंका हल करनेके लिये—

$$\frac{य}{४. ८ - (-५२) \; (-६)} = \frac{र}{(-५२). २ - ८. ८} = \frac{१}{(८)(-६) - ४. २}$$

अतः य = ५ और र = ३ यह इन दोनों समीकरणोंके हल हैं।

कनिष्ठ फल

५—$क_1 ख_2 - ख_1 क_2$ को दूसरे रूपमें लिखने की एक और प्रणाली है। इसे

$$\begin{vmatrix} क_1 & क_2 \\ ख_1 & ख_2 \end{vmatrix}$$

रूपमें भी लिख सकते हैं। इसमें $क_1$, $क_2$ की एक प्रकार की पंक्ति है और $क_1$, $ख_1$ की दूसरे प्रकारकी ऊपर-नीची पंक्ति है। इन्हें क्रमशः तिर्यक् पंक्ति और ऊर्ध्वाधर पंक्ति कहते हैं। $क_1$ $क_2$ तथा $ख_1$ $ख_2$ तिर्यक् पंक्तियाँ हैं और $क_1$ $ख_1$ तथा $क_2$ $ख_2$ ऊर्ध्वाधर पंक्तियां हैं। इस कनिष्ठ फलमें $क_1$, $ख_1$, $ख_2$, $क_2$ ये चार वर्ण हैं जिनसे मिल कर $क_1 ख_2$ और $क_2 ख_1$ ये दो पद बनते हैं।

प्रथम तिर्यक् पंक्तिके प्रथम वर्ण को द्वितीय तिर्यक् पंक्ति के द्वितीय वर्णसे गुणा करो और फिर इस गुणनफलमें से प्रथम तिर्यक् पंक्तिके द्वितीय वर्णको द्वितीय तिर्यक् पंक्तिके प्रथम वर्णसे गुणा करके घटाओ तो

$$क_1 ख_2 - क_2 ख_1$$

प्राप्त होगा। इस फल को ही लाघव से

$$\begin{vmatrix} क_1 & क_2 \\ ख_1 & ख_2 \end{vmatrix}$$

इस रूपमें लिखते हैं और इसी लिये यह उपर्युक्त मानका कनिष्ठ फल कहलाता है।

अभ्यास—(१) $\begin{vmatrix} ५ & ७ \\ ६ & ९ \end{vmatrix} = ५.९ - ६.७ = ३$

(२) $\begin{vmatrix} ४य & ८र \\ ३य & ५र \end{vmatrix} = २०\,य\,र - २४\,य\,र = -४\,यर$

(३) $\begin{vmatrix} ५य & -३प \\ ८ज & -५फ \end{vmatrix} = -२५\,य\,फ + २४\,प\,ज$

इन कनिष्ठफलों की प्रत्येक पंक्तिमें २ वर्ण हैं अतः यह द्विवार्णिक कनिष्ठ फल कहलाता है।

६—निम्न कनिष्ठ फल त्रिवार्णिक हैं—

$$\begin{vmatrix} क_१ & क_२ & क_३ \\ ख_१ & ख_२ & ख_३ \\ ग_१ & ग_२ & ग_३ \end{vmatrix}$$

इसका मान निकालनेके लिये पहले प्रथम तिर्यक् पंक्तिके प्रथम वर्णको लेकर उसको उस द्विवार्णिक कनिष्ठ फलसे गुणा करना चाहिये जो प्रथम तिर्यक् पंक्ति और ऊर्ध्वाधर पंक्तिको छोड़ देनेके उपरान्त शेष रहता है। इसमेंसे फिर प्रथम तिर्यक् पंक्तिके द्वितीय वर्ण और उस कनिष्ठ फलके गुणन फल को घटाना चाहिये जो प्रथम तिर्यक् पंक्ति और द्वितीय ऊर्ध्वाधर पंक्ति का छोड़ देनेसे बनता है। तत्पश्चात् इस मानमें प्रथम तिर्यक् पंक्तिके तृतीय वर्ण और उस कनिष्ठ फलके गुणन फलको जोड़ना चाहिये जो प्रथम तिर्यक् पंक्ति और तृतीय ऊर्ध्वाधर पंक्ति को छोड़ देनेसे बनता है।

इस प्रकार उपर्युक्त त्रिवार्णिक कनिष्ठ फलका मान यह होगा—

$$क_१ \begin{vmatrix} ख_२ & ख_३ \\ ग_२ & ग_३ \end{vmatrix} - क_२ \begin{vmatrix} ख_१ & ख_३ \\ ग_१ & ग_३ \end{vmatrix} + क_३ \begin{vmatrix} ख_१ & ख_२ \\ ग_१ & ग_२ \end{vmatrix}$$

इन द्विवार्णिक कनिष्ठ फलोंका मान सूक्त ५ के अनुसार निकालने पर—

$$= क_१ (ख_२ ग_३ - ख_३ ग_२) - क_२ (ख_१ ग_३ - ख_३ ग_१) + क_३ (ख_१ ग_२ - ख_२ ग_१)$$

$$= क_१ (ख_२ ग_३ - ख_३ ग_२) + क_२ (ख_३ ग_१ - ख_१ ग_३) + क_३ (ख_१ ग_२ - ख_२ ग_१)$$

७—अभ्यास—(१) निम्न कनिष्ठ फल का मान निकालो—

$$\begin{vmatrix} २ & -३ & -१ \\ -४ & ४ & -२ \\ ५ & -६ & ३ \end{vmatrix}$$

$$= २\begin{vmatrix} ४ & -२ \\ -६ & ३ \end{vmatrix} - ३\begin{vmatrix} -२ & -४ \\ ३ & ५ \end{vmatrix} - १\begin{vmatrix} -४ & ४ \\ ५ & -६ \end{vmatrix}$$

$$= २(१२-१२) - ३(-१०+१२) - १(२४-२०)$$

$$= ० - ६ - ४ = -१०$$

अभ्यास (२) निम्न कनिष्ठ फल का मान निकालो—

$$\begin{vmatrix} क & ग & ख \\ ख & ख & क \\ क & क & ग \end{vmatrix}$$

$$= क(खग - क^२) + ग(क^२ - खग) + ख(कख - कख)$$

$$= कखग - क^३ + गक^२ - खग^२$$

८—नीचे एक चतुःवार्णिक कनिष्ठ फल दिया जाता है—

$$\begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} & क_{३} & क_{४} \\ ख_{१} & ख_{२} & ख_{३} & ख_{४} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{३} & ग_{४} \\ घ_{१} & घ_{२} & घ_{३} & घ_{४} \end{vmatrix}$$

इसका मान निकालनेके लिये इसको पहले त्रिवार्णिक कनिष्ठ फलमें परिणत कर लेते हैं और फिर सूक्त ६ के अनुसार त्रिवार्णिक कनिष्ठ फलोंका मान निकाला जा सकता है—

$$=क_{१}\begin{vmatrix} ख_{२} & ख_{३} & ख_{४} \\ ग_{२} & ग_{३} & ग_{४} \\ घ_{२} & घ_{३} & घ_{४} \end{vmatrix} - क_{२}\begin{vmatrix} ख_{१} & ख_{३} & ख_{४} \\ ग_{१} & ग_{३} & ग_{४} \\ घ_{१} & घ_{३} & घ_{४} \end{vmatrix}$$

$$+क_{३}\begin{vmatrix} ख_{१} & ख_{२} & ख_{४} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{४} \\ घ_{१} & घ_{२} & घ_{४} \end{vmatrix} - क_{४}\begin{vmatrix} ख_{१} & ख_{२} & ख_{३} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{३} \\ घ_{१} & घ_{२} & घ_{३} \end{vmatrix}$$

९—किसी कनिष्ठफलमें तिर्यक् और ऊर्ध्वाधर पंक्तियोंके पारस्परिक परिवर्तनसे मानमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

$$\begin{vmatrix} क_{१} & ख_{१} \\ क_{२} & ख_{२} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} \\ ख_{१} & ख_{२} \end{vmatrix}$$

क्योंकि $\begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} \\ ख_{१} & ख_{२} \end{vmatrix} = क_{१}ख_{२} - क_{२}ख_{१} = \begin{vmatrix} क_{१} & ख_{१} \\ क_{२} & ख_{२} \end{vmatrix}$

इसी प्रकार

$$\begin{vmatrix} क_{१} & ख_{१} & ग_{१} \\ क_{२} & ख_{२} & ग_{२} \\ क_{३} & ख_{३} & ग_{३} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} & क_{३} \\ ख_{१} & ख_{२} & ख_{३} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{३} \end{vmatrix}$$

१०—द्विवार्णिक कनिष्ठफलके मानमें २ पद थे। त्रिवार्णिक कनिष्ठफलमें $२ \times ३ = ६$ पद थे और चतुः वार्णिक कनिष्ठफलमें $२ \times ३ \times ४ = २४$ पद होते हैं। इसी प्रकार यदि पंच वार्णिक कनिष्ठफल हो तो उसमें $५ \times ४ \times ३ \times २ = १२०$ पद होंगे। इसीप्रकार और को भी समझना चाहिये।

अभ्यास—सिद्ध करो कि—

(१) $\begin{vmatrix} ५ & -६ \\ ८ & -७ \end{vmatrix} = -१०७$

(२) $\begin{vmatrix} १ & २ & ३ \\ ४ & ५ & ६ \\ ७ & ८ & ९ \end{vmatrix} = ०$

(३) $\begin{vmatrix} -क & ख & ग \\ क & -ख & ग \\ क & ख & -ग \end{vmatrix} = ४\ कखग$

कनिष्ठफलके विशेष अध्ययनके लिये 'समीकरण-मीमांसा' (पृ० ३५५-४३३) देखो।

लुप्तीकरण या निराकरण

११—$क_{१}\ य + क_{२}\ र = ०$ ......(१)

$ख_{१}\ य + ख_{२}\ र = ०$ ......(२)

ये दो समीकरण हैं जिसमें य और र अव्यक्त हैं। इनके चारों गुणक $क_{१}, क_{२}, ख_{१}$ और $ख_{२}$ में कोई सम्बन्ध अवश्य होगा क्योंकि समीकरण (१) से—

$$\frac{य}{र} = -\frac{क_{२}}{क_{१}}$$

और समीकरण (२) से

$$\frac{य}{र} = -\frac{ख_{२}}{ख_{१}}$$

य और र के इन दोनों मानों को तुलना देने पर

$$\frac{क_{२}}{क_{१}} = \frac{ख_{२}}{ख_{१}}$$

अर्थात् $क_{१} ख_{२} - क_{२} ख_{१} = ०$ ...(३)

$$\therefore \begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} \\ ख_{१} & ख_{२} \end{vmatrix} = ०$$ (सूक्त ५ के अनुसार)

परिणाम (३) की अवस्था पूर्ण होने पर दोनों समीकरणोंमें य और र का मान तुल्य ही होगा। इस अवस्थाके निकालनेकी विधिको समीकरणोंमेंसे य और र का निराकरण या लुप्ताकरण करना कहते हैं।

१२—निम्न तीन समीकरणोंकी विवेचना करनी चाहिये—

$$क_{१} य + क_{२} र + क_{३} ल = ० \quad ...(१)$$
$$ख_{१} य + ख_{२} र + ख_{३} ल = ० \quad ...(२)$$
$$ग_{१} य + ग_{२} र + ग_{३} ल = ० \quad ...(३)$$

इसमें य, र और ल तीन अव्यक्त हैं।

समीकरण (२) और (३) से—

$$\frac{य}{ख_{२} ग_{३} - ग_{२} ख_{३}} = \frac{र}{ख_{३} ग_{१} - ग_{३} ख_{१}} = \frac{ल}{ख_{१} ग_{२} - ग_{१} ख_{२}}$$

इन मानोंको समीकरण (१) में स्थापित करनेसे

$$क_{१} (ख_{२} ग_{३} - ग_{२} ख_{३}) + क_{२} (ख_{३} ग_{१} - ग_{३} ख_{१}) + क_{३} (ख_{१} ग_{२} - ग_{१} ख_{२}) = ० \quad ...(४)$$

समीकरण (४) वह परिणाम है जो य, र और ल को तीनों समीकरणोंमेंसे लुप्ताकरण या निराकरण करने पर उपलब्ध होता है।

सूक्त (६) के अनुसार समीकरण (४) इस रूपमें लिखा जा सकता है—

$$\begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} & क_{३} \\ ख_{१} & ख_{२} & ख_{३} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{३} \end{vmatrix} = ०$$

यह कनिष्ठफल तीनों समीकरणोंके गुणकोंको पृथक् करने पर शून्यसे तुलयता देके प्राप्त हो सकता है।

१३—अभ्यास—बताओ कि क को क्या मान दिया जाय कि निम्न तीनों समीकरणोंमें य, र और ल का एक ही मान हो—

$$क य + ५ र - ३ ल = ० \quad ......(१)$$
$$४ य - २ र - २ ल = ० \quad ......(२)$$
$$य - ५ र + ल = ० \quad ......(३)$$

सूक्त १२ के अनुसार य, र और ल का निराकरण करने पर—

$$\begin{vmatrix} क & ५ & -३ \\ ४ & -२ & -२ \\ १ & -५ & १ \end{vmatrix} = ०$$

अर्थात् $क (-२-१०) + ५ (-२-४) - ३ (-२०+२) = ०$

$$\therefore -१२ क = ३० - ५४ = -२४$$
$$\therefore \quad क = २$$

१४—निम्न समीकरण में ४ अज्ञात य, र, ल और व हैं—

$$क_{१} य + क_{२} र + क_{३} ल + क_{४} व = ०$$
$$ख_{१} य + ख_{२} र + ख_{३} ल + ख_{४} व = ०$$
$$ग_{१} य + ग_{२} र + ग_{३} ल + ग_{४} व = ०$$
$$घ_{१} य + घ_{२} र + घ_{३} ल + घ_{४} व = ०$$

इनमें य, र, ल और व का निराकरण करने पर निम्न चतुःवार्णिक कनिष्ठ फल प्राप्त होगा—

$$\begin{vmatrix} क_{१} & क_{२} & क_{३} & क_{४} \\ ख_{१} & ख_{२} & ख_{३} & ख_{४} \\ ग_{१} & ग_{२} & ग_{३} & ग_{४} \\ घ_{१} & घ_{२} & घ_{३} & घ_{४} \end{vmatrix} = ०$$

इसी प्रकार अन्य समीकरणोंके विषयमें भी कहा जा सकता है। यह सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि समीकरणोंके दाहिने भाग में सदा शून्य विद्यमान रहता है। यदि शून्य न होगा, तो उपर्युक्त नियमोंका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

उदाहरणमाला १

निम्न समीकरणोंके मूल निकालो—

१. $३ य^{२} - १७ क + २४ = ०$

[उत्तर ३, $२\frac{२}{३}$

२. $- ९ य^{२} + २५ = ६ य — १०$

[उत्तर $\frac{५}{३}, - \frac{७}{३}$

३. $२ य^{३} + ५ य^{२} — ४ य — ३ = ०$

[उत्तर—३, १,—$\frac{१}{२}$

४. $य^{३} + य^{२} — ४ य — ४ = ०$

[उत्तर—१, २,—२

५. उन वर्गात्मक समीकरणोंको लिखो जिनके मूल नीचे दिये हुए हैं—

(क) ३, २; (ख) ८,—१३; (ग) ३,—$\frac{४}{५}$

[उत्तर (क) $य^{२} — ५ य + ६ = ०$, (ख) $य^{२} + ५ य — १०४ = ०$, (ग) $५ य^{२} — १२ य — ९८ = ०$

निम्न समीकरण हल करो—

६. $८ य + ३ र = ३१$

$३ य — ५ र = ३०$

७. $३ य — २ र + क + २ ख = ०$

$क य + ख र = क^{२} + २ क ख + ख^{२}$

[उत्तर (६) ५,—३; (७) क, २ क + ख

८. निम्न कनिष्ठ फलों का मान निकालो—

(क) $\begin{vmatrix} ८ & -४ \\ ६ & ३ \end{vmatrix}$ (ख) $\begin{vmatrix} य & २ र \\ -३ र & २ य \end{vmatrix}$

(ग) $\begin{vmatrix} ४ & ५ & ६ \\ ४ & ५ & ६ \\ २ & ३ & ७ \end{vmatrix}$ (घ) $\begin{vmatrix} य & र & ल \\ २ य & २ र & ३ ल \\ ३ य & ३ र & ३ ल \end{vmatrix}$

[उत्तर (क) ४८ (ख) $२ य^{२} + ६ र^{२}$ (ग) ० (घ) ०

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,

एम० ए०, बी० ए-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,

एम० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०

श्री युधिष्ठिर भार्गव,

एम० एस-सी०

भाग ३२

तुला—मीन १९८७

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

औद्योगिक रसायन

गणित और ज्योतिष

जीवनचरित्र

भौतिक शास्त्र

रसायन

वैद्यक शास्त्र

मिश्रित